पडता है कि इस समय आयुर्वेदोद्धारके संबन्धमें जैसा निस्सार प्रयत्न हो रहा है उससे उसकी उपयोगिताका लेश भी लोगोंके ध्यानमें नहीं आ सकता, अतः सुचारुरूपसे सुदृढ प्रयत्न होनेकी अति शीघ्र आवश्यकता है। सर्व साधारणको स्वशरीर-रक्षोपयोगी वैद्यक संबन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके साधन और स्त्रियोंको अपने गर्भ व बालकोंका पालन-पोषण एवं गार्हस्थ्य जीवनको उत्तम दशामें लानेके लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करनेकी सुविधाओंका प्रबन्ध सबसे प्रथम होना चाहिये। अथवा वैद्यकसंस्था-आयुर्वेदिक पाठशालाओंको स्थापित कर उनमें विद्यार्थियोंको अनुभवके साथ पूर्ण शिक्षा देनेका नियमबद्ध प्रबन्ध हो, आयुर्वेदीय सब प्रकारकी औषधोंका देशमें सर्वत्र प्रचुर प्रचार होकर, राजा रंक सबको समान रूपसे सुलभ इसके लिये एक विशाल कार्यालय खोलकर उसमें उनके निर्माणका विराट् आयोजन करते हुए स्थान स्थानपर उक्त कार्यालयकी शाखायें इस ढंगसे खोली जायँ कि जिससे यत्र तत्र धार्मिक धनिकों, सभाओं और संयुक्त-वाणिज्य-समितियों (कंपनियों) की ओरसे जो अंग्रेजी डाक्टरोंकी अध्यक्षतामें औषधोंके दातव्य औषधालय खोले जाते हैं वे विद्वान् वैद्योंके तत्त्वावधानमें देशी औषधोंके खोले जायें कि जिनसे " यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं स्मृतम् " इस सिद्धान्तके अनुसार प्रकृति विरुद्ध और धर्मरुद्ध अभक्ष्य, भक्षण और अपेय-पानरूप तामसी विदेशी चिकित्साके क्षणिक और कृत्रिम स्वास्थ्यके दुष्परिणामसे देशी जनता सदाके लिये रोगी अंग्रेजी औषधोंका दास न बनकर सात्विक धर्मानुकूल देशी चिकित्सामें यथार्थ लाभ उठाते हुए सदाके लिये स्वस्थ बनें और साथ ही देशका धार्मिक और आर्थिक लाभभी हो।

जैन धर्म कि जिसकी मूल भित्ति " अहिंसा परमो धर्मः " इस वचन पर ही है उसके अनेक अनुयायी और शौच, आचार तथा

अहिंसाको प्रधान माननेवाले वैदिक धर्मानुयायी अनेक वैष्णवादि भी मद्यमांसादिनिर्मित अंग्रेजी औषधोंका स्वयं निःसंकोच व्यवहार करते हुए अन्य दीन अनाथोंके लिये भी डाक्टरोंकी निरीक्षकतामें अंग्रेजी औषधोंके दातव्य औषधालय खोलकर धर्मके बदले अपरिमित अधर्मका संग्रह कर रहे हैं यह कितने शोक और लज्जाकी बात है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

ऐसी अवस्थामें आयुर्वेदकी उन्नति आवश्यक है इसे कौन न मानेगा; क्योंकि सारी देशोन्नतिका मूलाधार यही है यह इस लेखसे भली भांति प्रमाणित हो चुका।

परमावश्यक आयुर्वेदका विकास होनेके लिये सर्व प्रथम सबसे अधिक आवश्यकता तत्सम्बन्धी ग्रंथोंके प्रचुर परिमाणमें प्रकाशित होनेकी है। उनमेंसे बहुतसे ग्रंथोंके प्रकाशित होजानेपर भी अभी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न अप्रकाशित ही हैं।

नवीन शोध, कलाकौशल, वाणिज्य, व्यवसाय और विद्यामें सभी यूरोपीय राज्योंकी अपेक्षा जो अमेरिका आगे बढा हुआ है और जहांके विद्वानोंका मत आज सारे संसारमें सर्वमान्य हो रहा है, वहांके अग्रगण्य विद्वान् कहते हैं कि "भारतीय प्राचीन वैद्यक शास्त्रानुसार रोगियोंका उपचार किया जाय तो आधुनिक मरणसंख्यामें बहुत बडी घटती हो" इसी प्रकार इंग्लैंड और जर्मनीके विद्वान् भी भारतीय वैद्यकको बडे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। जब कि हमारे देशबन्धु विदेशी टिंक्चर, वाइन आदि औषधोंकी चमक दमकपर मुग्ध होकर भारतीय प्राचीन वैद्यक शास्त्रकी हँसी उडाते हुए अपनी अल्पबुद्धिका परिचय दे रहे हैं तब पाश्चात्य विद्वान् हमारे शास्त्रोंके अनुसार नवीन शोध और अनुभव प्राप्त करनेमें तल्लीन होरहे हैं यह कैसे शोककी बात है पर ध्यान रहे कि वर्तमान समयमें जो बिना पढे लिखे मूर्खव्यक्ति वैद्य बननेका ढोंग रचते हैं और जो ज्ञानलवदुर्विदग्ध पण्डितंमन्य

प्राचीन वैद्यक ग्रंथोंके अस्त व्यस्त भाषान्तर कर उन्हें प्रकाशित करते हुए ग्रन्थकार तथा प्रकाशकका नाट्य दिखाते हैं वह वैद्यक नहीं किंतु वैद्यकाभास है। जिसकी विदेशी विद्वान् मुक्तकण्ठसे भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं वह भारतीय पुरातन वैद्यक उन्हीं ऋषि, महर्षियों व आचार्योंके बनाये हुए महानिबन्ध हैं कि जिन विख्यातनामा श्रीवाग्भटाचार्यभी हैं। सुनाजाता है कि इन्होंने वैद्यकसंबन्धी चार पांच ग्रंथ रचे हैं किंतु उनमेंसे संप्रति " अष्टाङ्गहृदय " और " रसरत्नसमुच्चय " ये दो ही उपलब्ध हैं। शोक है कि सामग्री न मिलनेके कारण इनके जीवन वृत्तान्तके सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं लिख सकते। हमारे कतिपय अदूरदर्शी भाई यह आशंका करते हैं कि " अष्टाङ्गहृदय " की कृतिके साथ " रसरत्नसमुच्चय " कृति मिलती नहीं और चरक, सुश्रुत, वाग्भटके समय रसविद्याका प्रचार ही न था इससे " रसरत्नसमुच्चय " श्रीवाग्भटाचार्यका बनाया नहीं है। उन्हें यह सोचना चाहिये कि जब स्वयं वाग्भटाचार्य ही आरंभमें " एतेषां क्रियतेऽन्येषां तन्त्राण्यालोक्य संग्रहः " इत्यादि वाक्यके द्वारा अपनेको रचयिता न कहकर संग्रहकर्ता लिख रहे हैं तब उनकी संग्रह की हुई अन्य आचार्योंकी कृतिके साथ उनकी कृतिका मिलान कैसे मिल सकता है। और, जब कि चरकादिकोंने रसायन प्रकरणोंमें कहीं कहीं धातु भस्म और रसोंका उपयोग किया है तथा " शिवसंहिता " के, कुछ स्फुट भाग व " नागार्जुनसंहिता " के कुछ स्फुट अध्याय इस समय भी मिलते हैं एवं सिंहलद्वीपस्थ एक संन्यासीको ताडपत्र लिखित " रावणसंहिता " भी मिली है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि रसविद्या चरकादिकोंके समयमें न थी। क्योंकि " शिवसंहितादि " रसग्रन्थ चरकादिकोंसे भी अतिप्राचीन हैं। ऐसी अवस्थामें पूर्वापर अनुसंधान न कर कूपमण्डूक–न्यायसे निर्मूल आक्षेप करना कदापि उचित नहीं। अस्तु।

इस " रसरत्नसमुच्चय " ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रतियां तो यत्र तत्र उपलब्ध थीं किन्तु यह अमूल्य ग्रन्थरत्न सुचारुरूपसे अद्यावधि कहीं भी छपा न था। हां, कुछ दिन पहले पूनेमें ' आनन्दाश्रमकी ओरसे इसका एक संस्करण ऐसा प्रकाशित हुआ था जो बहुत ही अस्तव्यस्त और अनेक विचित्र टिप्पणियों द्वारा विद्वानोंको भी भ्रमजनक हो रहा था; इससे इसकी शुद्धप्रति प्राप्त कर इसे सर्वोपयोगी शुद्ध रूपमें प्रकाशित करनेकी चिरकालसे उत्कट उत्कण्ठा लग रहीथी । क्योंकि हम अपने सदाके नियमानुसार अप्राप्य ग्रन्थरत्नोंको येनकेनाप्युपायेन प्राप्त कर उन्हें सुचारुरूपसे प्रकाशित करनेकी चेष्टामें सतत उद्यत रहते हैं । तदनुसार जामनगर निवासी आयुर्वेद शास्त्रके अप्रतिम अनुभवी विद्वान् प्रज्ञाचक्षु जगत्प्रसिद्ध वैद्यराज बावाभाई (विजयशंकर) अचलजीके प्रधान शिष्य रसप्रसाद–औषधालयाध्यक्ष वैद्यराज जीवराम कालिदासजीके द्वारा शुद्ध प्रति प्राप्त कर आवश्यक परिवर्त्तन, परिवर्द्धन और परिष्करणोंद्वारा सुपरिष्कृत तथा गुजराती भाषानुवादसे विभूषित कर सं० १९६५ में इसका प्रथम संस्करण हमने प्रकाशित किया जिसका गुर्जर जनताने बडा गौरव किया किन्तु हिन्दी जनता इसके हिन्दी भाषानुवादसे अलंकृत संस्करणके लिये चिरकालसे नितान्त लालायित हो रही थी। उसके सदनुरोधसे उसी अपने गुर्जरभाषाविभूषित प्रथम संस्करणके आधारपर " आयुर्वेदोद्धारक–औषधालय " के अध्यक्ष तथा "वैद्य" नामक मासिकके सम्पादक वैद्यराज शंकरलाल हरिशंकरजीके द्वारा शुद्ध और सरल हिन्दी भाषानुवाद बनवाकर उससे विभूषित मूलसहित " रसरत्नसमुच्चय " का यह द्वितीय संस्करण अनेक नवीन विशेषताओंसे विशेषित कर प्रकाशित किया है, विशेष क्या लिखें ? दृष्टिगोचर होनेपर इसकी उत्तमताका अनुभव आप स्वयमेव करेंगे ।

यह ग्रन्थ पूर्व और उत्तर नामक दो खण्डोंमें विभक्त है। पूर्व खण्डमें ग्यारह और उत्तर खण्डमें उन्नीस अध्याय हैं। आरंभमें ग्रन्थकारने पारदकी उत्तमता बतलाकर अभ्रक, वैक्रान्त, सुवर्णमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक, गन्धक, हरताल, मनसिल आदि अनेक रस, उपरस, माणिक, मोती, मूंगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम आदि रत्न, सोना, रूपा, तांबा, सीसा, रांगा, लोहा आदि धातु, और विष उपविष आदि अनेक खनिज पदार्थोंकी उत्पत्ति लक्षण, शोधन, मारण, जारण आदिका वर्णन किया है। तदनन्तर गुरु शिष्यके लक्षण, शिष्यको दीक्षा देनेका क्रम, रसशाला, रसस्थापन, रससिद्धिके लिये संग्राह्य पदार्थ, रससिद्धिके निमित्त भिन्न २ जनोंके सहायकी आवश्यकता, परिभाषा, खरल, मूषा, पुट व कोठी आदि यन्त्र बनानेकी रीति, औषधग्रहणपरिभाषा तथा पारदके संस्कार, पारदबन्ध तथा भस्म आदि बनानेकी रीति बताकर पूर्वखण्डकी समाप्ति की गयी है।

ज्वरप्रकरणसे उत्तरखण्डका प्रारंभ हुआ है। प्रत्येक रोगका संक्षिप्त निदान लिखकर चिकित्साके प्रकरण लिखे गये हैं। कतिपय बडे बडे रोगोंके उपचारार्थ सारे अध्याय भरमें रसादिकोंका वर्णन किया गया है। ज्वरप्रकरणके अनन्तर रक्तपित्त, श्वास, खांसी, क्षय, हृदयरोग, मदात्यय, वमन, तृष्णा, अर्श, उदावर्त, अतिसार, संग्रहणी, अजीर्ण, विषूचिका (कालरा) मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, विद्रधि, वृद्धि, गुल्म, शूल, उदररोग, पाण्डु, कुष्ठ, वातरोग, वातरक्त, वन्ध्यास्त्रीरोग, बालरोग, उन्माद, अपस्मार, नेत्र-कर्ण-नासा-मुख–मस्तकरोग, भगंदर, क्षुद्ररोग, गलगण्ड, उपदंश, विषविकार आदि समस्त रोगोंकी चिकित्सा पृथक्-पृथक् प्रकरणोंमें वर्णित है। उपसंहारमें रसायनप्रकरण, वाजीकरणप्रकरण, धातुकल्प, विषकल्प और रसकल्पका वर्णन कर ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

उपरि लिखित रोगोपचार यद्यपि अधिकांशमें रसोंद्वारा ही लिखा गया है तथापि सर्व साधारणके लाभार्थ प्रत्येक रोगपर सामान्य वनौषधियोंके सुलभ प्रयोग भी लिखे गये हैं इससे यह संग्रहग्रन्थ होनेपर भी विद्वद्वर्ग इसकी ओर सचकित आदरकी दृष्टिसे देखते हैं।

इस ग्रन्थकी लिखित और मुद्रित प्रतियोंसे प्रयोग ढूंढ निकालनेमें साधारण और विद्वान् सभीको बडी असुविधा थी। पूनेवाली छपी पुस्तकपर विविध पाठभेदसूचक अनेक टिप्पणियां शुद्ध पाठ निश्चित करनेमें व्यामोह उत्पन्न करती थीं, इससे उन भ्रामक टिप्पणियोंको निकाल शुद्ध और उचित पाठ बना दिया है। कई प्रयोगोंमें नामोंके शीर्षक थे ही नहीं, जिनमें थे उनमें कहीं कुछ आगे,कहीं कुछ पीछे, इस प्रकार नितान्त अस्तव्यस्त थे अतः उन्हें भी यथास्थान और यथार्थ रूपमें लिख दिया है। दूसरी असुविधा अनेक स्थलोंपर यह थी कि कितने ही रोगोंकी चिकित्साका आरंभ हो जानेपर भी उनका नाम व निदान न होनेके कारण वाचकको यह निश्चय करना कठिन था कि यह चिकित्सा किस रोगकी है, अतः शीर्षकमें रोगका नाम और संक्षिप्त निदान लिखकर यह दोष भी दूर कर दिया है। सबसे बडी अव्यवस्था यह थी कि किसी रोगकी चिकित्सामें प्रथम एक दो रस, फिर चूर्ण, फिर रस, फिर सामान्य उपाय, फिर तैल या गोली. फिर रस लिखा हुआ होनेके कारण किसी रोगपर किसी रस आदि विशेष प्रकारकी औषध देखनेके लिये सारा अध्याय बांचे विना पता लगना बडा कठिन था। इस कारण उचित परिवर्तन कर नियमानुसार रसादि औषधोंकी क्रमबद्ध योजना की है। जैसे कि क्षयप्रकरणमें प्रथम समस्त क्षयारिरस. फिर गोली, चूर्ण, तैल और अंतमें वनौषधियोंके क्षयहर सामान्य उपाय लिखे गये हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रमबद्ध योजना होजानेसे चाहे जिस रोगपर चाहे जिस प्रकारकी औषध

सहजमें देखी जा सकती है । धातु, विष और रसकल्पमें यही क्रम रखा है । इतना सब होनेपर भी समस्त ग्रन्थका एक भी श्लोक घटाया बढाया नहीं, किंतु सर्व साधारणकी सुगमताके लिये आवश्यक और उचित योजनामात्र की है । आरंभमें पृष्ठाङ्क सहित विषय सूची लगी रहनेके कारण इच्छित विषय तत्काल ढूंढा जा सकता है ।

उपसंहारमें विद्वान् वैद्य महोदय तथा सहृदय सद्गृहस्थोंसे सविनय निवेदन यह है कि वे इस अनुभवसिद्ध ग्रंथका संग्रह कर इसके द्वारा इच्छित लाभ उठाके प्राचीन ऋषि, मुनि और श्रीवाग्भटाचार्यजीको धन्यवाद दें जिससे हम भी अपना श्रम सफल समझें ।

निवेदयिता-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुम्बई.

अथ ।
रसरत्नसमुच्चयस्थ विषयानुक्रमणिका ।
पूर्वखण्डः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

अथ उत्तर खण्डः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

इति रसरत्नसमुच्चयस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

श्रीवाग्भटाचार्यकृत-

रसरत्नसमुच्चयः ।

भाषाटीकोपेतः ।



पूर्वखण्डस्य प्रथमोऽध्यायः ।

ग्रन्थकारकृत मङ्गलाचरण ।

यस्यानन्दभवेन मङ्गलकलासम्भावितेन स्फुर-
द्धाम्ना सिद्धरसामृतेन करुणावीक्षासुधासिन्धुना ।
भक्तानां प्रभवप्रसंह्वातिजरारागादिरोगाः क्षणा-
च्छांतिं यांति जगत्प्रधानाभिषजे तस्मै परस्मै नमः १॥

भाषाटीकाकारकृत मंगलाचरण ।

ध्यात्वा जिनेश्वरं देवं भवरोगनिषूदनम् ।
भाषाटीकान्वितं कुर्वे रसरत्नसमुच्चयम् ॥ १ ॥
सच्चिन्तोपचयं जितेन्द्रियचयं सँस्तौति लोकश्च यं
यो लोकेऽसहयोगयोगलतयाऽरीणां मनोऽचालयत् ॥
योऽयं विश्वजनीनवृत्तिरनघोऽहिंसाव्रते तत्परः
सोऽयं गान्धिरुदारधीर्विजयतां मान्यो महात्मा कलौ२॥

शिव और पार्वतीके सम्भोगरूपी आनन्दसे उत्पन्न हुआ मङ्गलमय (कल्याणकारिणी) कलाओंसे युक्त, जिसका तेज अत्यन्त देदीप्यमान है, एवं सिद्ध रसेन्द्ररूपी अमृतसे परिपूर्ण, कृपादृष्टिरूप

सुधाके समुद्रके समान, समस्त जगत्को प्रकाशित करनेवाला ऐसा जो शिवका तेज है, उसको यथाविधि सेवन करनेवाले भक्तजनोंके जन्म, मृत्यु, जरा और राग द्वेषादि समस्त भवरोग क्षणभरमें नाशको प्राप्त होते हैं ऐसे जगत्के प्रधान वैद्यस्वरूप पारदको नमस्कार है ॥ १ ॥

अत्र गृहीतसाहाय्यग्रन्थकृन्नामादि ।

आदिमश्चंद्रसेनश्च लंकेशश्च विशारदः ।
कपाली मत्तमाण्डव्यौ भास्करः[1] शूरसेनकः ॥ २ ॥
रत्नकोषश्च[2] शंभुश्च सात्त्विको नरवाहनः ।
इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्व्याडिरेव[3] च ॥ ३ ॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधी यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको[4] हरिः
सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ॥ ४ ॥

इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने जिन प्राचीन ग्रन्थकारोंसे सहायता ली है, उनके नामादिका वर्णन इस प्रकार है, आदिम (इस शब्दका कोई शङ्कर, कोई आद्य ग्रन्थकार और कोई इसी नामके आचार्यविशेष ऐसा अर्थ करते हैं), चन्द्रसेन, लङ्केश (रावण), विशारद, कपाली, मत्त, माण्डव्य, भास्कर, शूरसेन, रत्नकोष, शम्भु सात्त्विक, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्बलि, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधी, यशोधन, खण्ड, कापालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक और हरि ये सत्ताईस आचार्य रससिद्धि प्रदान करनेवाले हैं ॥ २-४ ॥

रसांकुशो भैरवश्च नन्दी स्वच्छन्दभैरवः ॥ ५ ॥
मन्थानभैरवश्चैव काकचण्डीश्वरस्तथा ।
वासुदेव ऋषि[5]:शृङ्गः क्रियातन्त्रसमुच्चयी ॥ ६ ॥

---

१ भासुर इति । २ रत्नघोष इति । ३ काम्बलिः तथा कापिल इति । ४ लम्बकः तथा लाम्पट इति । ५ ऋष्यशृंग इति सर्वत्र पाठभेदः ।

रसेन्द्रतिलको योगी भालुकी मैथिलाह्वयः ।
महादेवो नरेन्द्रश्च वासुदेवो हरीश्वरः ॥ ७ ॥
एतेषां क्रियतेऽन्येषां तन्त्राण्यालोक्य संग्रहः ।
रसानामथ सिद्धानां चिकित्सार्थोपयोगिनाम् ॥ ८ ॥
सूनुना सिंहगुप्तस्य रसरत्नसमुच्चयः ।
रसोपरसलोहानां यन्त्रादिकरणानि च ॥ ९ ॥
शुद्ध्यर्थमपि लोहानां तन्त्रादिकरणानि च ।
शुद्धिः सत्त्वं द्रुतिर्भस्मकरणं च प्रवक्ष्यते ॥ १० ॥

रसाङ्कुश, भैरव, नन्दी, स्वच्छन्दभैरव, मन्थानभैरव, काकचण्डीश्वर, वासुदेव, रसक्रियाके सिद्धान्तोंका संग्रह करनेवाले ऋषिशृंग, रसेन्द्र-तिलक, योगी, भालुकी, मैथिल, महादेव, नरेन्द्र, वासुदेव और हरीश्वर इनके तथा अन्यान्य आचार्योंके शास्त्रोंको अवलोकन करके, सिंहगुप्तका पुत्र मैं (वाग्भट) चिकित्सा करनेके लिये परमोपयोगी सिद्धरसों-का संग्रह है जिसमें ऐसे इस रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रंथको निर्माण करता हूँ। इसमें रस, उपरस, स्वर्ण-लोहादि धातुओंकी शुद्धि, सत्त्व-पातन, द्रुतिकरण और भस्मकरण आदिकी विधि एवं इन क्रियाओं के साधनभूत दोला मूषादि यंत्र और लोहादि धातुओंकी शुद्धिके लिए भिन्न भिन्न प्रकारकी क्रियायें और प्रयोग कहे जाते हैं ॥ ७-१० ॥

हिमालयका वर्णन ।

अस्ति नीहारनिलयो महानुत्तरदिङ्मुखे ।
उत्तुङ्गशृङ्गसंघातलङ्घिताभ्रो महीधरः ॥ ११ ॥
विश्रामाय वियन्मार्गविलङ्घनघनश्रमः ।
अवतीर्ण इव क्षोणीं शरदम्बुमुचां गणः ॥ १२ ॥

---

१ रत्नाकरहरीश्वरावीति पाठभेदः ।

राशिराशीविषाधीशफणाफलकरोचिषाम् ।
भित्त्वा भुवमिवोत्तीर्णो यो विभाति भृशोन्नतः ॥ १३ ॥
ज्वलदौषधयो यस्य नितम्बमणिभूमयः ।
नक्तमुद्दामतडितामनुकुर्वन्ति वार्मुचाम् ॥ १४ ॥
कटके सञ्चरन्तीनां यस्य किन्नरयोषिताम् ।
पादेषु धातुरागेण लाक्षाकृत्यमनुष्ठितम् ॥ १५ ॥
अवतंसितशीतांशुराच्छादितदिगम्बरः ।
यो गुहाधिगतो लोकैर्गिरीश इति गीर्यते ॥ १६ ॥

उत्तर दिशामें बडे बडे ऊँचे शिखरोंके समूहसे मेघोंको उल्लंघन करनेवाला और हिम (बरफ) का स्थान होनेसे हिमालय नामवाला बहुत बडा पर्वत है वह ऐसा मालूम होता है मानो–आकाशमार्गमें निरन्तर भ्रमण करनेसे कठिन श्रम (थकावट) को प्राप्त हुआ शरद् ऋतुके मेघोंका समूह विश्राम करनेके लिये पृथ्वी पर उतर आया है और मानो नागराज शेषजीके फणोंकी मणियोंकी कान्तिका बडा ऊँचा ढेर पृथ्वीको विदीर्ण (फोड) कर बाहर निकल आया है और जो अत्यन्त उन्नत होनेसे विशेष शोभायमान हो रहा है । जिसके नितम्बरूप अनेक स्थानोंमें मणिविभूषित भूमियाँ और अपने तेजसे दीपकके समान प्रज्वलित होती हुई औषधियाँ रात्रिके समय मेघमण्डलमें चमकती हुई बिजलीका अनुकरण (नकल) करती हुईसी मालूम होती हैं । जिस हिमालके शिखरोंपर भ्रमण करती हुई किन्नरियोंके चरणोंमें लगी हुई गेरू आदि धातुओंकी लालीसे उनके महावरकीसी शोभा होती है । एवं जिसने आभूषणरूपसे चन्द्रमाको धारण कर रक्खा है तथा जो दिशारूप वस्त्रोंसे आच्छादित अर्थात् नग्न है और जो अनेक गुफाओंसे युक्त है, ऐसा जो महादेवके समान हिमालय पर्वत है, उसको मनुष्य गिरिराज कहते हैं ॥ ११–१६ ॥

महादेवकी स्तुति ।

निमीलितदृशो नित्यं मुनयो यस्य सानुषु ।
प्रत्यक्षयन्ति गिरिशमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १७ ॥
शिलातलप्रतिहतैर्यस्य निर्झरसीकरैः ।
अह्न्यपि निरीक्षन्ते यक्षास्ताराङ्कितं नभः ॥ १८ ॥
नीहारपवनोद्रेकानिस्सहा यत्र पूरुषाः ।
निजस्त्रीणां निषेवन्ते कुचोष्माणं निरन्तरम् ॥ १९ ॥
संचरन्कटके यस्य निदाघेऽपि दिवाकरः ।
उद्दामहिमरुद्धोष्मा न शीतांशोर्विभिद्यते ॥ २० ॥
गुहागतेषु कस्तूरीमृगनाभिसुगन्धिषु ।
गायन्ति यत्र किन्नर्यो गौरीपरिणयोत्सवम् ॥ २१ ॥
चकास्ति तत्र जगतामादिदेवो महेश्वरः ।
रसात्मना जगत्त्रातु जातो यस्मान्महारसः ॥ २२॥

जिस (हिमालय) के शिखरोंपर नेत्र मींचकर ध्यानस्थित हो करके बैठे हुए मुनिलोग, वाणी और मनसे भी ध्यानमें न आनेवाले शङ्कर भगवान्का अन्तर्दृष्टिसे नित्य प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं । जिसके शिखरोंपर निवास करनेवाले यक्षलोग बडी २ शिलाओंसे टकराते हुए झरनोंके कणोंके द्वारा दिनमें भी आकाशको तारोंसे व्याप्तसा देखते हैं । जिस हिमालय पर रहनेवाले पुरुष, बरफसे मिली हुई वायुके वेगको न सह सकनेसे निरन्तर अपनी स्त्रियोंके कुचोंकी उष्णताको प्राप्त करते हैं (अर्थात् उनको आलिङ्गन करते रहते हैं), जिसके शिखरोंपर भ्रमण करते हुए सूर्यकी ग्रीष्मऋतुमें भी अत्यन्त बरफके कारण उष्णता अवरुद्ध (कम) हो जाती है इसलिये सूर्य और

चन्द्रमामें कोई भेद नहीं मालूम होता । और जिस पर कस्तूरीवाले मृगोंकी नाभिगत कस्तूरीसे सुगन्धित गुफाओंमें बैठी हुई किन्नरियाँ श्रीपार्वतीके विवाहोत्सवके गीत गाया करती हैं ऐसे दिव्य शोभासम्पन्न उस हिमालय पर्वत पर जगत्के आदिदेव शङ्कर भगवान् रसरूपसे विराजमान हैं । उन्हींकी रसरूप आत्मासे जगत्की रक्षा करनेके लिये महारस (अर्थात् सम्पूर्ण रसोंमें प्रधान रस पारा) उत्पन्न हुआ है ॥ १७–२२ ॥

पारदकी महिमा ।

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात् ।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् २३॥
विधाय रसलिङ्गं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत् ।
जगत्त्रितयलिङ्गानां पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥
भक्षणं स्पर्शनं दानं ध्यानं च परिपूजनम् ।
पञ्चधा रसपूजोक्ता महापातकनाशिनी ॥ २५ ॥
हन्ति भक्षणमात्रेण पूर्वजन्माघसम्भवम् ।
रोगसंघमशेषाणां नराणां नात्र संशयः ॥ २६ ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं सद्यो नश्यति देहिनाम् ।
सुगन्धपिष्टसूतेन यदि शंभुर्विलेपितः ॥ २७ ॥
अभ्रकं त्रुटिमात्रं यो रसेन परिजारयेत् ।
शतक्रतुफलं तस्य भवेदित्यब्रवीच्छिवः ॥ २८ ॥
यश्च निन्दति सूतेन्द्रं शम्भोस्तेजः परात्परम् ।
स पतेन्नरके घोरे यावत्कल्पविकल्पना ॥ २९ ॥

सैकडों अश्वमेध यज्ञ करनेसे अथवा करोडों गौओंका दान करनेसे या हजारों मन सुवर्णका दान करनेसे अथवा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान

करनेसे जो पुण्य होताहै वह पुण्य मनुष्योंको केवल पारेका दर्शन करनेसे प्राप्त होताहै । जो मनुष्य पारेका शिवलिंग बनाकर भक्ति-सहित उसका पूजन करता है तो उसको त्रिलोकी-(भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकों) में स्थित शिवलिंङ्गोंके पूजन करनेका फल प्राप्त होताहै । भक्षण (खाना), स्पर्शन (छूना), दान (देना), ध्यान और पूजन करना यह पाँच प्रकारकी रस (पारे) की पूजा कही गयी है । यह बडे २ भयङ्कर पापोंको नाश करनेवाली है । पारेको यथाविधि भक्षण करनेसे सम्पूर्ण मनुष्योंके पूर्वजन्ममें किये पापोंसे उत्पन्न हुए रोगोंके समूह निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं । गन्धकके साथ पारेको पीस कर कज्जली करके उसके द्वारा शिवलिंग-पर लेपन करनेसे मनुष्योंके पूर्वजन्मकृत पाप शीघ्र नष्ट होते हैं । जो मनुष्य पारेके साथ एक चुटकी भर अभ्रकको जारण करता है, उस-को १०० अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होताहै । ऐसा शिवजी महाराजने कहा है । जो मनुष्य शिवजीके परम श्रेष्ठ तेजः स्वरूप है (वीर्यरूप) पारेकी निन्दा करता है, वह कल्पान्तपर्यन्त घोर नरकमें पडता है ॥ २३–२९ ॥

रोगिभ्यो यो रसं दत्ते शुद्धिपाकसमन्वितम् ।
तुलादानाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ ३० ॥
सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्यमयं जगत् ।
रसध्यानामिति प्रोक्तं ब्रह्महत्यादिपापनुत् ॥ ३१ ॥
अभ्रग्रासो हि सूतस्य नैवेद्यं परिकीर्तितम् ।
रसस्येत्यर्चनं कृत्वा प्राप्नुयात्क्रतुजं फलम् ॥ ३२ ॥
उदरे संस्थिते सूते यस्योत्क्रामति जीवितम् ।
स मुक्तो दुष्कृताद्धोरात् प्रयाति परमं पदम् ॥ ३३ ॥

जो वैद्य उत्तम प्रकारसे शुद्ध करके भस्म किये हुए अथवा जारण किये हुए पारेको योग्य रीतिसे रोगियोंको देता है, उसको निरन्तर तुलादान अथवा अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है । रस (पारे) के सिद्ध हो जाने पर मैं जगत्को दरिद्रतासे मुक्त कर दूँगा इस प्रकार किया हुआ ध्यान रसका ध्यान कहा जाता है । यह ध्यान ब्रह्महत्याको आदि लेकर समस्त पापोंको नष्ट करता पारेकी पूजा-विधिमें अभ्रकका ग्रास देना पारेका नैवेद्य कहा जाता है । इस प्रकार पारेका पूजन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करनेके फलको प्राप्त होता है । पारेके उदरमें स्थित रह जाने पर जिस मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो वह भयंकर दुष्कर्मोंसे मुक्त होकर परम पद (मोक्ष) को प्राप्त होजाता है ॥ ३०-३३ ॥

मूर्च्छितादि पारदके गुण ।

मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ३४ ॥
सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।
श्वित्रं तदपि च शमयति यस्तस्मात्कः पवित्रतरः सूतात् ॥
रसबन्ध एव धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमिति करुणा ।
सेत्स्यति रसे करिष्ये महीमहं निर्जरामरणाम् ॥ ३६ ॥

मूर्च्छित किया हुआ पारा रोगको नष्ट करता है, बद्ध पारा मुक्ति देता है, और मृत (अर्थात् भस्म किया हुआ) पारा मनुष्यको अमर कर देता है; इस लिये पारेसे बढकर दूसरा करुणाकर कौन है ? देव, गुरु, गौ और ब्राह्मणादिकी हिंसाकरणरूप पापसमूहसे उत्पन्न हुए असाध्य श्वेतकुष्ठको भी जो अवश्य नष्ट कर देता है, उस पारेसे अधिक पवित्र दूसरा पदार्थ कौन है ? जो मनुष्य प्रारम्भमें ही रस (पारे) के बन्धनके लिये उद्योग करता है, वह धन्य है और उसके

सिद्ध हो जानेपर सम्पूर्ण पृथ्वीको अजर, अमर करनेकी जिसकी इच्छा होती है, वही मनुष्य अपने रसबन्ध रूप कार्यमें सफलता प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

देहको अजर, अमर करनेकी और उसमें पारद सेवनकी आवश्यकता ।

सुकृतफलं तावदिदं सुकुले यज्जन्म धीश्च तत्रापि ।
सापि च सकलमहीतलतुलनफला भूतलं च सुविधेयम् ३७
भूतलविधेयतायाः फलमर्थास्ते च विविधभोगफलाः ।
भोगाः सन्ति शरीरे तदनित्यमतो वृथा सकलम् ॥३८॥
इति धनशरीरभोगान्मत्वाऽनित्यान्सदैव यतनीयम् ।
मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥ ३९ ॥
तत्स्थैर्ये न समर्थं रसायनं किमपि मूललोहादि ।
स्वयमस्थिरस्वभावं दाह्यं क्लेद्यं च शोष्यं च ॥ ४० ॥

पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मोंका फल यह है कि उत्तम कुलमें जन्म हो उसमें भी उत्तम बुद्धि हो और वह बुद्धि भी सम्पूर्ण पृथ्वीके भारको तोलनेमें समर्थ हो । फिर ऐसी बुद्धिके द्वारा समस्त भूमण्डलको समृद्धिशाली बनानेका उपाय करना पृथ्वीके उत्तम होनेसे धनधान्यादिकी वृद्धि होती है और धनकी वृद्धि होनेसे नानाप्रकारके भोग विलास प्राप्त होते हैं । किन्तु वे भोग शरीरसे भोगे जाते हैं और वह शरीर अनित्य (नाशवान्) है, इसलिये पृथ्वीके ऐश्वर्यादि सम्पूर्ण पदार्थ व्यर्थ हैं । (अर्थात् जब यह शरीर जरा मरणसे कदापि मुक्त नहीं हो सकता तो इसके लिये जो कार्य्य किये जाते हैं, वे सब निष्फल माने जा सकते हैं ।) अत एव धन, शरीर और भोग विलासादिको अनित्य मान कर मनुष्यको सदैव मुक्तिको प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये । किन्तु वह मुक्ति यथार्थ ज्ञान होनेसे

मिलतीहै । वह ज्ञान योगाभ्याससे और योगाभ्यास आरोग्ययुक्त शरीरके स्थिर रहने पर होता है । परन्तु इस शरीरको स्थिर रख सकनेमें काष्ठ, धातु और रसायनादि कोई भी औषध समर्थ नहीं है। क्योंकि वे काष्ठादि तथा धात्वादि औषधियाँ स्वयं अस्थिर स्वभाववाली होती हैं । वे अग्निसे जल जाती हैं, जलसे भीग जाती हैं और सूर्यके तेजसे सूख जाती हैं । किन्तु पारा इन सब दोषोंसे रहित है, इसलिये शरीरको स्थिर रखनेकी शक्ति पारेके सिवा और किसी भी पदार्थमें नहीं है, अतः देहकी स्थिरताके लिये पारद सेवन करना आवश्यक है ॥ ३७-४० ॥

सम्पूर्ण औषधियोंका पारेमें समावेश ।

काष्ठौषध्यो नागे नागो वंगेऽथ वंगमपि शुल्वे ।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥४१॥
अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः ।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ ४२ ॥
परमात्मनीव सततं भजति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ ४३ ॥
स्थिरदेहेऽभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्भववासजन्मदुःखानि ॥ ४४ ॥

काष्ठादिक औषधियाँ नाग (सीसे) में, नाग वंगमें, वंग ताम्रमें, ताँवा चाँदीमें, चाँदी सोनेमें और सोना पारेमें लीन हो जाता है । जिस प्रकार योगीजन शिवकी मूर्त्तिमें लीन होकर मोक्ष पदको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार अभ्रकका ग्रास किये हुए पारेमें स्वर्णादि समस्त धातुयें लय हो जाती हैं । जिस प्रकार परमात्मामें ही निरन्तर लीन रहनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी संसारसागरसे मुक्ति हो जाती है, उसी-

प्रकार एकमात्र पारेको सेवन करनेसे मनुष्यका शरीर अजर और अमर हो जाता है । पारेके सेवन करनेसे शरीरके स्थिर होजाने पर मनुष्य योगाभ्यासके द्वारा अष्टगुणसम्पन्न आत्मज्ञानको प्राप्त करके ब्रह्मपदको प्राप्त होता है । और फिर वह उत्पन्न होकर गर्भवास, जन्म मरण आदि सांसारिक दुःखोंको नहीं भोगता है ॥४१–४४॥

पारेसे ब्रह्मकी प्राप्ति ।

एकांशेन जगद्युगपदवष्टभ्यावास्थितं पदं ज्योतिः ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृतं सुलभं न विरक्तिमात्रेण ॥ ४५ ॥
नहि देहेन कथंचिद् व्याधिजरामरणदुःखविधुरेण ।
क्षणभङ्गुरेण सूक्ष्मं तद्ब्रह्मोपासितुं शक्यम् ॥ ४६ ॥
नामापि देहसिद्धेः को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
तद्योगगम्यममलं मनसोऽपि न गोचरं तत्त्वम् ॥ ४७ ॥
यज्ञाज्ज्ञानात्तपसो वेदाध्ययनाद्दमात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किल योगवशादात्मसंवित्तिः ॥ ४८ ॥

जो एक अंशसे व्याप्त हुए सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे सर्वजगतमें भरी हुई है, ऐसी अमृतरूपी परम ज्योति (परब्रह्म) केवलविरक्तिमात्रसे प्राप्त नहीं होती । परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी आवश्यकता है । रोग और जरा, मरण आदि अनेक दुःखोंसे व्याकुल रहनेवाले और क्षणभंगुर शरीरसे उस सूक्ष्म ब्रह्मकी उपासना कदापि नहीं हो सकती । और स्थूल शरीरके विना शरीरकी सिद्धिका तत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि वह निर्मल तत्त्वज्ञान मनसे नहीं जाना जाता, केवल योगसेही जाना जा सकता है । योगाभ्यासके द्वारा प्राप्त किया हुआ आत्मज्ञान यज्ञ, ज्ञान, तप,

वेदाध्ययन, इन्द्रियदमन और सदाचार इन सबसे अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ४५–४६ ॥

ब्रह्मप्राप्तिका आनन्द ।

भ्रूमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्येन्दुवज्जगद्भाति ।
केषांचित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः ४९॥
परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥ ५० ॥
तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति ॥ ५१ ॥
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचारा मृषारहिताः ।
सर्वत्र निर्विशेषा भवन्ति चिद्ब्रह्मसंस्पर्शात् ॥ ५२ ॥
तिष्ठन्त्यणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानन्दाः ।
ब्रह्मस्वभावममृतं संप्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः ॥ ५३ ॥

दोनों भृकुटिओंके मध्यमें रहनेवाली जो परं ज्योति (ब्रह्मतेज) अग्नि, बिजली, सूर्य और चन्द्रमाकी समान जगत्को प्रकाशित कर रही है, वह सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मकी ज्योति किसी पुण्यात्माको ही प्रत्यक्ष होतीहै केवल परमानन्दनस्वरूप, एक रस, जिसमें विकल्प अथवा द्वैत नहीं है ऐसी अर्थात् अद्वैतरूप, सब प्रकारके दुःखोंसे रहित, शान्त और परमात्मशक्तिसे जानने योग्य ऐसी ब्रह्मकी ज्योति जानने योग्य है उस परम ज्योतिमें चञ्चल मनको अच्छे प्रकारसे लगा कर जो मनुष्य इस प्रकाशमान जगत्को चैतन्यरूप देखता है, वह सम्पूर्ण कर्मबन्धनोंसे मुक्त होकर इस लोकमें रहता हुआ ही ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है । उस चैतन्यरूप ब्रह्मका आविर्भाव होनेसे मनुष्य राग, द्वेष

और असत्य आदि दोषोंसे निर्मुक्त हो जाते हैं और सदाचारी तथा असत्यवादी होकर भेदभावसे रहित हो जाते हैं। अर्थात् सर्वत्र समान रूपसे व्यवहार करते हैं। एवं तेजस्वि शरीरसे सदैव आनन्दमें मग्न रहते हैं तथा अणिमादि अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं और परब्रह्म रूप अमृतको प्राप्त करके कृत कृत्य होते हैं ॥ ४९–५३ ॥

आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥५४॥
प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ५५ ॥
यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविवशं च ।
योग्यं तन्न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियप्रसरम् ॥ ५६ ॥

सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्गके मूलको प्राप्त करानेके लिये केवल एक अजर, अमर शरीरको छोड कर और कोई दूसरा उत्तम साधन नहीं है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा (अर्थात् नेत्रोंके द्वारा दीखनेवाले) देहको अजर अमर करनेवाले पारेको नहीं जानता, वह निराकार, अदृश्य और चिदानन्द रूप परब्रह्मको किस प्रकार जान सकता है जो शरीर जरा (वृद्धावस्था) से जर्जर हो गया हो तथा कास, श्वासादि अनेक रोगोंसे पराधीन बन गया हो और जिसकी बुद्ध्यादि इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो गई हो ऐसा शरीर समाधिके योग्य नहीं होता ॥ ५४–५६ ॥

बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलम्पटः परतः ।
यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ ५७ ॥
अस्मिन्नेव शरीरे येषां परमात्मनो न संवेदः ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषां तद्ब्रह्म दूरतरम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्मादयो यतन्ते तस्मिन्दिव्यां तनुं समाश्रित्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनयः ॥ ५९ ॥
तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात् ॥ ६० ॥

सोलह वर्षकी अवस्थातक तो मनुष्य बालक रहता है, इसलिये वह इस अवस्थामें ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता इसके पश्चात् युवावस्था आने पर मनुष्य विषय वासनाके रसका आस्वादन करनेमें लंपट बन जाता है और वृद्धावस्थामें विचार शक्ति कम हो जाती है इस प्रकार सम्पूर्ण आयुष्य व्यतीत हो जाने पर मनुष्य मुक्तिको किस प्रकार प्राप्त कर सकता है इस मनुष्य शरीरमें जिनको परमात्माका ज्ञान नहीं होता, उनको देह त्यागके पश्चात् उस ब्रह्मका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। ब्रह्म प्राप्तिके लिये ब्रह्मादिक देवता दिव्य शरीरको धारण करके और उसी प्रकार कल्पान्त पर्यन्त जीवित रहनेवाले अनेक जीवन्मुक्त मुनि निरन्तर यत्न करते रहते हैं। इसलिये जीवन्मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगियोंको प्रथम पारा और गन्धकके द्वारा अपने शरीरको दिव्य अर्थात् अजर अमर बना लेना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

रसकी उत्पत्ति ।

शैलेऽस्मिञ्छिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया ।
संप्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकीक्षोभकारिणि ॥ ६१ ॥
विनिवारयितुं वह्निः सम्भोगं प्रेषितः सुरैः ।
कांक्षमाणैस्तयोः पुत्रं तारकासुरमारकम् ॥ ६२ ॥
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम् ।
अपाक्षिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलाविलोकिनम् ॥ ६३ ॥

तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा ।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ॥ ६४ ॥
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गंगायामपि सोऽपतत् ।
वह्निः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया ॥ ६५ ॥
संजातास्तन्मलाध्मानाद्धातवः सिद्धिदायकाः ।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः ॥ ६६ ॥
शतयोजननिम्नास्ते जाता कूपास्तु पंच च ।
तदाप्रभृति कूपस्थ तद्रेतः पंचधाऽभवत् ॥ ६७ ॥

एक समय इस हिमालय पर्वतपर अत्यन्त प्रीतिके बोध परस्पर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे शिव और पार्वतीमें (अर्थात् प्रकृति-पुरुष-अथवा जडचेतनमें) त्रिलोकिको क्षोभ उत्पन्न करनेवाला सम्भोग होने लगा उस समय उनके रज और वीर्य्यसे, तारकासुरको मारनेवाले पुत्र अर्थात् तारकरूप अंधकारको विनाश करनेवाले प्रकाशके उत्पन्न होनेकी इच्छासे देवताओंने उस सम्भोगको निवारण करनेके लिये वहाँ अग्निको भेजा अग्नि. कबूतर (अर्थात् अत्यन्त श्वेतवर्ण) का रूप धारण करके हिमालयकी गुफामें बैठ कर प्रकृति पुरुषकी कामक्रीडाके विसालको देख कर अपने प्रकृत स्वभावके कारण अत्यन्त क्षुब्ध होनेलगा इस प्रकारसे बैठे हुए पक्षिरूप अग्निको देख कर शिवजीनें अत्यंत लज्जित होकर सम्भोगको त्याग दिया और उस समय पतित हुए वीर्यको अपने हाथमें लेकर उन्होंने अग्निके मुखमें डाल दिया । उस वीर्यरूप तीव्र तेजको न सह सकनेके कारण अग्निदेव गंगामें कूद पडा गंगाभी उस तेजसे जलने लगी इसलिये उसने उस तेजके सहित अग्निदेवको अपनी तरंगोंसे बाहर निकाल कर फेंक दिया उस मलके पडे रह जानेसे वहाँ रससिद्धिके लिये उपयोगी अनेक धातुयें उत्पन्न हो गयीं । और अग्निके मुखसे जहाँ कभी

भी पृथ्वीके ऊपर वह वीर्य गिरा, वहाँ पर सैकडा योजन गहरे पाँच कुएं बन गये तबसे उन कुओंमें रहनेवाला वह वीर्य पाँच प्रकारका हो गया है ॥ ६१-६७ ॥

रसके भेद ।

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पंचविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः ॥ ६८ ॥
रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषैरसायनः ।
संजातास्त्रिदशास्तेन नीरुजा निर्जरामराः ॥ ६९ ॥
रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽतिचंचलः ।
रसायिनोऽभवंस्तेन नागा मृत्युजरोज्झिताः ॥ ७० ॥
देवनागैश्च तौ कूपौ पूरिता मृद्भिरश्मभिः ।
तदाप्रभृति लोकानां तौ जातावतिदुर्लभौ ॥ ७१ ॥
ईषत्पीतश्च रूक्षांगो दोषमुक्तश्च सूतकः ।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ ७२ ॥
अथान्यकूपजः कोऽपि स चलः श्वेतवर्णवान् ।
पारदो विविधैर्योगैः सर्वरोगहरो हि सः ॥ ७३ ॥
मयूरचन्द्रिकाच्छायः सः रसो मिश्रको मतः ।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीव सिद्धिदः ॥ ७४ ॥
त्रयः सूतादयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि ।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोऽतिमात्रया ॥ ७५ ॥

भिन्न भिन्न स्थानोंमें उत्पन्न होनेके कारण पारा, रस, रसेन्द्र, सूत पारद और मिश्रक इन भेदोंसे पाँच प्रकारका है । रस नामक पारा लाल रंगका होताहै । वह सब प्रकारके दोषोंसे रहित और रसायन है

है । इसके सेवनसे ही देवता आरोग्य और अजर अमर रहते हैं । रसेन्द्र नामवाला पारा निर्दोष होता है । एवं श्याव (कुछ नीलासा) वर्णवाला, रूक्ष और अत्यन्त चञ्चल होता है । इस रसायनके प्राप्त होनेसे नागदेवता जरा मरणसे मुक्त रहते हैं । परन्तु उन रस और रसेन्द्रके दोनों कुओंको देवता और नागोंने मिट्टी, पत्थरादिसे पाट दिया है, इस कारण उक्त दोनों प्रकारके पारे मनुष्योंको मिलने अत्यन्त कठिन होगये हैं । सूत नामक पारा कुछ पीला, रूक्ष और दोषरहित है । यह पारा अष्टादश संस्कारोंके द्वारा सिद्ध करके सेवन किया जानेपर देहको लोहेके समान दृढ कर देताहै । अन्य कुएंसे निकलनेवाले पारेको पारद कहते हैं, वह चञ्चल और श्वेत वर्णका होता है । यह पारा विविध प्रकारके योगोंके साथ सेवन किया जाने-पर सब प्रकारके रोगोंको दूर करता है । मोरपंखकी चन्द्रिकाके समान वर्णवाले पारेको मिश्रक कहते हैं । वह भी अष्टादश संस्कारोंके द्वारा सिद्ध होनेपर देह और लोहादि धातुओंको सिद्धि प्रदान करता है । यद्यपि सूत, पारद और मिश्रक ये तीनों प्रकारके पारे सकल सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, तथापि प्रत्येक पारा अनेक संस्कारोंके द्वारा सिद्ध किया जानेसे अधिकतर शक्तिशाली हो जाता है ॥ ६८–७५ ॥

पाँचों पारदोंकी पृथक् २ निरुक्ति ।

एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ।
आयुरारोग्यसन्तानं रससिद्धिं च विन्दति ॥ ७६ ॥
रसना सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते ।
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसोऽस्मृतः ॥ ७७ ॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्त्तितः ।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः ॥ ७८ ॥
रोगपंकाब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ।

सर्वधातुगतं तेजो मिश्रितं यत्र तिष्ठति ।
तस्मात्स मिश्रकः प्रोक्तो नानारूपफलप्रदः ॥ ७९ ॥

जो धार्मिक मनुष्य इस प्रकार कही हुई पारेकी उत्पत्तिको जानता है, वह आयु, आरोग्य, सन्तान और रससिद्धिको प्राप्त होता है । समग्र धातुओंको खाजानेसे (अर्थात् इसमें सब धातुओंके मिल जानेसे) पारेको रस कहते हैं । अथवा जरा, व्याधि और मृत्युका नाश करनेके लिये इसको सेवन किया जाता है, इसलिये भी इसको रस अथवा अमृत कहते हैं । रस और उपरसोंका राजा होनेसे पारेको रसेन्द्र कहते हैं ! एवं शरीर और लोहादि धातुओंकी सिद्धि करनेसे पारेको सूत कहते हैं । पारा रोगरूपी कींचडके समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको उससे पार कर देता है, इसलिये इसको पारद कहते हैं । जिसमें सम्पूर्ण धातुओंका तेज मिला हुआ रहता है, उसको मिश्रक कहते हैं । वह विविध प्रकारके फल प्रदान करता है ॥७६-७९॥

पारेमें स्थित कंचुकादि दोष ।

एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ॥ ८० ॥
प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्यबलायुषः ॥
तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम् ॥ ८१ ॥
दोषैश्च कंचुकाभिश्च रसराजो नियोजितः ॥
तदाप्रभृति सूतोऽसौ नैव सिद्ध्यत्यसंस्कृतः ॥ ८२ ॥
जलगो जलरूपेण त्वरितो हंसगो भवेत् ।
मलगो मलरूपेण सधूमो धूमगो भवेत् ॥ ८३ ॥
अन्या जीवगतिर्दैवी जीवोऽण्डादिव निष्क्रमेत् ।
स तांश्च जीवयेज्जीवांस्तेन जीवो रसः स्मृतः ॥ ८४ ॥
चतस्रो गतयो दृश्या अदृश्या पंचमी गतिः ।

मंत्रध्यानादिना तस्य रुध्यते पंचमी गतिः ॥ ८५ ॥
इति भिन्नगतित्वाच्च सूतराजस्य दुर्लभः ।
संस्कारस्तस्य भिषजा निपुणेन तु रक्षयेत् ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पारेके प्रभावसे मनुष्य जरा, मरण और व्याधिजालसे मुक्त होकर देवताओंकी समान बलवान् और आयुवाले होने लगे । उस समय इंद्रने उनको इस प्रकार बलवान् देखकर ईर्षाके कारण शिवजी महाराजसे प्रार्थना की तबसे उन्होंने पारेको कंचुकी आदि दोषोंसे युक्त कर दिया है । इस कारण उस समयसे बिना संस्कार किया हुआ पारा सिद्धिदायक नहीं होता पारा जलके संयोगसे जल-रूपसे, सूर्यकी किरणोंके संयोगसे किरणरूपसे धातुओंके संयोगसे धातुरूपसे और धूमके संयोगसे धूमरूपसे उडकर उस उसमें जाता है इस प्रकार सृष्टिके अटल नियमके अनुसार एक जीवमेंसे दूसरा जीव अण्डेके प्रमाण संक्रमण करता है । पारा सब जीवोंको जीवित करता है, इस लिये इसको जीव कहते हैं । उपर्युक्त पारेकी चार गतियां तो दृश्य हैं और पाँचवीं गति अदृश्य है । परन्तु उसकी पाँचवीं गति जीव मन्त्र ध्यानादि क्रियाओंके द्वारा रोकी जा सकती है । इस प्रकार भिन्न २ गतियोंके द्वारा उड जानेसे पारेका संस्कार होना अत्यन्त कठिन है अत एव विद्वान् और चतुर वैद्यको बडी होशियारीसे पारा सुरक्षित रखकर उसके संस्कार करने चाहिये ॥ ८०-८६ ॥

प्रथमे रजसि स्नातां हयारूढां स्वलंकृताम् ।
वीक्षमाणां वधूं दृष्ट्वा जिघृक्षुः कूपगो रसः ॥ ८७ ॥
उद्गच्छति जवात्सापि तं दृष्ट्वा याति वेगतः ।
अनुगच्छति तां सूतः सीमानं योजनोन्मिताम् ॥ ८८ ॥
प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसम्भवः ।
मार्गनिर्मितगर्तेषु स्थितं गृह्णंति पारदम् ॥ ८९ ॥

पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
स रसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ॥
तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्त्वा सूतं हरन्ति च ॥ ९० ॥

प्रथम बार ऋतुस्नान की हुई और उत्तम प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत तरुणी स्त्री घोडेपर चढकर पारेके कुएमें झांके तो रूप यौवनसमान स्त्रीको देखकर उसको प्राप्त करनेकी इच्छासे कुएमें स्थित पारा बडे वेगसे ऊपरको उछलता है। वह स्त्री उनको देखकर जब शीघ्रतासे चली जाती है तब पारा योजन पर्यन्त उसके पीछे २ भागता है जब वह स्त्री योजनकी सीमासे बहुत दूर निकल जाती है तब पारा लौटकर फिर उसी कुएँमें आकर गिर जाता है। उस समय मार्गमें बने हुए अथवा मनुष्योंके द्वारा बनाये हुए गड्ढोंमें गिरे हुए पारेको मनुष्य निकाल लेते हैं। जो पारा अत्यन्त भारी होनेके कारण अग्निके मुखमेंसे दरद देशमें गिर पडा था, वह मिट्टी और पत्थरोंके साथ मिलकर पृथ्वीमें लीन हो गया उस देशके रहनेवाले मनुष्य उस मिट्टीको ऊर्ध्वपातन यन्त्रमें डालकर पारेको निकाल लेते हैं॥८७-९०॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालकृतायां भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्यायः ।

अष्टौ महारसाः ।

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम् ।
चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वाऽष्टौ संग्रहेद्रसान् ॥

अभ्रक, वैक्रान्तमणि, सोनामाखी, विमला (रूपामाखी), शिलाजीत, नीलाथोथा, चपल (१२० तोले नागको गजपुटमें फूंकनेसे जब वह १ तोला बाकी रह जाता है, तब उस सत्त्वको चपल कहते

है। किन्तु कोई २ कहते हैं कि नाग और वंगसे चपल धातु बनती है)। और खपरिया ये आठ महारस हैं इन रसोंको उत्तम प्रकारसे परीक्षा कर संग्रह करना चाहिये ॥ १ ॥

गन्धक पार्वतीका रज है और अभ्रक पार्वतीदेवीका वीर्य है (क्षेपक)

अभ्रकके सामान्य गुण ।

गौरीतेजः परममृतं वातपित्तक्षयघ्नम् ।
प्रज्ञाबोधिः प्रशमितरुजं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ॥
बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यम् ।
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योम सूतेन्द्रबन्धि ॥ २ ॥
राजहस्तादधस्ताद्यत्समानीतं घनं खनेः ।
भवेत्तदुक्तफलदं निःसत्त्वं निष्फलं परम् ॥ ३ ॥

पार्वतीका तेज (अर्थात् वीर्यरूप) अभ्रक परम श्रेष्ठ अमृत है। यह वात, पित्त और क्षयको नष्ट करता है, बुद्धिको तीव्र करता है, सम्पूर्ण व्याधियोंको शमन करता है, विशेष कर वीर्यवर्द्धक, आयुकारक, बलकारक, स्निग्ध (अर्थात् शरीरके सब अवयवोंको कोमल बनानेवाला), रुचिकारक, कफको उत्पन्न न करनेवाला, अग्निदीपक और शीत वीर्य है। यह कफकारक न होनेसे भिन्न भिन्न प्रयोगोंके द्वारा सेवन करनेसे समस्त व्याधियोंको नष्ट करता है और पारेको बाँधता है। आठ हाथ गहरी खानको खोदकर जो अभ्रक निकाला जाता है, वह भारी और उपर्युक्त फलदायक होता है। इसके सिवा जिसके पत्र पतले होते हैं ऐसा सत्त्वहीन अभ्रक निष्फल होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अभ्रकके भेद ।

पीनाकनागमण्डूकवज्रमित्यभ्रकं मतम् ।
श्वेतादिवर्णभेदेन प्रत्येकं तच्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥

पीनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम् ।
तत्सेवितं मलं बद्ध्वा मारयत्येव मानवम् ॥ ५ ॥
नागाभ्रं नागवत्कुर्याद्ध्वानं पावकसंस्थितम् ।
तद्भुक्तं कुरुते कुष्ठं मंडलाख्यं न संशयः ॥ ६ ॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मंडूकं ध्मातं पतति चाभ्रकम् ।
तत्कुर्यादश्मरीरोगमसाध्यं शस्त्रतोऽन्यथा ॥ ७ ॥
वज्राभ्रं वह्निसंतप्तं विमुक्तोऽशेषवैकृतम् ।
देहलोहकरं तच्च सर्वरोगहरं परम् ॥ ८ ॥

पीनाक, नाग, मण्डूक और वज्र इस प्रकारसे अभ्रक चार प्रकारका है । इसके सिवा सफेद, लाल, पीला, और काला इन भेदोंसे उपर्युक्त प्रत्येक अभ्रक चार प्रकारका होता है । पीनाक अभ्रक अग्निमें तपानेसे पत्रोंको अलग २ छोड देता है । यह अभ्रक सेवन करते ही मलको बाँधकर मनुष्यको मार देता है । नाग अभ्रक अग्निमें तपानेसे सर्पके समान फुंकारसी मारता है । उसको सेवन करनेसे मण्डल नामक कुष्ठ रोग उत्पन्न होता है । मण्डूक नामक अभ्रक अग्निमें तपानेसे मंडूकके समान उछल उछलकर गिरता है और सेवन करनेपर असाध्य पथरी रोगको उत्पन्न करता है, जो कि शस्त्रक्रियाके विना दूर नहीं किया जा सकता । किन्तु वज्रनामक अभ्रकको अग्निमें तपानेसे उसमें कोई भी विकार उत्पन्न नहीं होता और यह सेवन करनेसे देह एवं लोहकी सिद्धि करता है तथा सब प्रकारके रोगोंको हरता है ॥ ४-८ ॥

चारों अभ्रकोंका उपयोग ।

श्वेतं रक्तं च पीतं च कृष्णमेवं चतुर्विधम् ।
श्वेतं श्वेतक्रियासूक्तं रक्ताभं रक्तकर्माणि ॥ ९ ॥
पीताभमभ्रकं यत्तु श्रेष्ठं तत्पीतकर्माणि ।

चतुर्विधं परं व्योम यद्यप्युक्तं रसायने ॥ १० ॥
तथापि कृष्णवर्णाभं कोटिकोटिगुणाधिकम् ।
स्निग्धं पृथुदलं वर्णसंयुक्तं भारतोऽधिकम् ॥ ११ ॥
सुखान्निर्मोच्य पत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम् ॥ १२ ॥

सफेद, लाल, पीला और काला इन वर्णभेदोंसे जो अभ्रक चार प्रकारका कहा गया है, इनमें सफेद अभ्रक श्वेतक्रिया (चाँदी आदिके बनाने) में लाल अभ्रक रक्तकर्म (अर्थात् रंगनेके काम) में और पीला अभ्रक पीतकर्म (सुवर्ण आदि बनानेके काम) में श्रेष्ठ कहा गया है । उपर्युक्त तीनों ही अभ्रक द्रव्य साधनके काममें आते हैं और चौथा कृष्णवर्णका अभ्रक रसायनोपयोगी है । श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण ये चारों प्रकारके अभ्रक रसायनकर्ममें श्रेष्ठ हैं तथापि इनमें काले रंगका अभ्रक सबकी अपेक्षा करोड गुना अधिक गुण करता है । स्निग्ध, मोटे पत्रवाला, उत्तम वर्णवाला, वजनदार और जिसके पत्र सहजमें न छूटें ऐसा अभ्रक अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है ॥ ९-१२ ॥

अभ्रकके गुण दोष ।

सचन्द्रिकं च किट्टाभं व्योम न ग्रासयेद्रसम् ।
ग्रासितश्च नियोज्योऽसौ लोहे चैव रसायने ॥ १३ ॥
निश्चन्द्रिकं मृतं व्योम सेव्यं सर्वगदेषु च ।
सेवितं चन्द्रसंयुक्तं मेहं मन्दानलं चरेत् ॥ १४ ॥
यैरुक्तं युक्तिनिर्मुक्तैः पत्राभ्रकरसायनम् ।
तैर्दिष्टं कालकूटाख्यं विषं जीवनहेतवे ॥ १५ ॥
सत्त्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।
अन्यथा त्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥ १६ ॥

चन्द्रिकायुक्त (चमकदार) और कीट (धातुमल) के समान अभ्रक (भस्म) पारेको नहीं ग्रसता धातुकी सिद्धि करने और रसायन-कर्ममें जो पारा उपयोगमें लिया जाता है उसको अभ्रक ग्रास किया हुआ लेना चाहिये । निश्चन्द्र (चमकरहित) अभ्रककी भस्म सम्पूर्ण रोगोंमें सेवन करनी चाहिये चन्द्रिकायुक्त अभ्रकको सेवन करनेसे प्रमेह और मन्दाग्नि रोग उत्पन्न होता है । जिन विचारशक्तिहीन मनुष्योंने पत्राभ्रक (जिसके पत्र सहजमें छूट जाते हैं) को रसायन कहा है, उन्होंने जीवनकी रक्षाके लिये मानो कालकूट विष सेवन करनेकी आज्ञा दी है । सत्त्व निकालनेके लिये या भस्म रूपसे सेवन करनेके लिये उत्तम प्रकारसे शुद्ध किया हुआ अभ्रक लेना चाहिये । अन्यथा अशुद्ध अभ्रक अनेक अवगुणोंको उत्पन्न करता है, जिनसे लाभके बदले हानि होती है ॥ १३–१६ ॥

अभ्रककी शुद्धि तथा भस्म ।

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं कांजिकेऽभ्रकम् ।
निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वापि गोजले ॥ १७ ॥
त्रिफलाक्वथिते वापि गवां दुग्धे विशेषतः ।
ततो धान्याभ्रकं कृत्वा पिष्ट्वा मत्स्याक्षिकारसैः १८॥
चक्रीं कृत्वा विशोष्याथ पुटेद्धर्मके पुटे ।
पुटेदेवं हि षड्वारं पौनर्नवरसैः सह ॥ १९ ॥
कलांशटंकणेनाथ संमर्द्य कृतचक्रिकम् ।
अर्धभाख्यपुटैस्तद्वत्सप्तवारं पुटेत्खलु ॥ २० ॥
एवं वासारसेनापि तण्डुलीयरसेन च ।
प्रपुटेत्सप्तवाराणि पूर्वप्रोक्तविधानतः ॥ २१ ॥
एवं सिद्धं हतं सर्वरोगेषु विनियोजयेत् ॥ २२ ॥

अभ्रकको अग्निमें तपा तपाकर कांजी, गोमूत्र, त्रिफलेका क्वाथ और विशेषकर गायका दूध इनमें सात २ बार बुझानेसे अभ्रक शुद्ध होता है। किन्तु प्रत्येक बुझावमें काँजी आदि पदार्थ नये नये डालने चाहिये । अभ्रकमारण विधि। फिर उसको धान्याभ्रक बनाकर मत्स्याक्षी (मछेछी) के रसमें अच्छे प्रकारसे खरल करके गोल २ टिकियां बना लेवे। फिर उसको सुखाकर अर्द्ध गजपुटमें पुट देवे। इस प्रकार ६ बार पुट देवे फिर सोलहवाँ भाग सुहागा उक्त अभ्रकके साथ पुनर्नवेके रसमें खरल करके टिकियां बनाकर अर्द्ध गजपुटमें सात बार पुट देवे । इसी प्रकार उक्त अभ्रकमें सोलहवाँ भाग सुहागा मिलाकर अडूसेके रसमें या चौलाईके रसमें खरल करके पूर्वोक्त विधिसे सात २ बार पुट देवे। इस प्रकार अभ्रककी भस्म होती है। इसको सब प्रकारके योगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १७-२२ ॥

धान्याभ्रक विधि।

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि कांजिके ।
निर्यातं मर्दनाद्धस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ २३ ॥
धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम् ।
पुटितं दशवारेण म्रियते नात्र संशयः ॥ २४ ॥

शुद्ध अभ्रकके चूर्णको शालि धानोंके साथ मजबूत वस्त्रमें ढीला बाँधकर काँजीमें भिजोकर दोनों हाथोंसे खूब मर्दन करे । जिससे कि उसका बारीक चूर्ण वस्त्रके छिद्रोंमेंसे निकलकर काँजीमें गिरता जाय। पश्चात् उस काँजीसे भरे हुए बर्त्तनको बिना हिलाये सहजमें एक जगह कुछ देरतक रख देवे। जब वह स्थिर हो जाय तब उस-मेंसे काँजीको हलकेसे उतार दे और तलीमें बैठे हुए अभ्रकको स्वच्छ पानी डालकर धो डाले। इसको धान्याभ्रक कहते हैं। मारणविधि। धान्याभ्रकको कसौंदीके रसमें खरल करके टिकियां बनाकर सुखा

लेवे और अर्द्ध गजपुटमें फूँक देवे । इस प्रकार दश पुट देनेसे अभ्रककी निःसन्देह भस्म हो जाती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

तद्वन्मुस्तारसेनापि तण्डुलीयरसेन च ।
पीतामलकसौभाग्यपिष्टं चक्रीकृताभ्रकम् ॥ २५ ॥
पुटितं षष्टिवाराणि सिन्दूराभ्रं प्रजायते ।
क्षयाद्यखिलरोगघ्नं भवेद्रोगानुपानतः ॥ २६ ॥

उसी प्रकार धान्याभ्रकको नागरमोथेके रसमें और चौलाईके रसमें खरल करके दश पुट देनेसे अभ्रककी भस्म हो जाती है । अभ्रकके साथ १६ वां भाग सुहागा मिलाकर उसको दारुहलदीके क्काथ और आमलेके रसमें क्रमसे खरल करके टिकियासी बनाकर अर्द्ध गजपुटमें रखकर ६० पुट देवे तो सिन्दूरके समान लाल वर्णवाली अभ्रककी भस्म होती है । यह भस्म रोगानुसार भिन्न २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे क्षयादि सम्पूर्ण दारुण रोगोंको नाश करती है ॥२५–२६॥

अन्य विधि ।

वटमूलत्वचाक्काथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ।
वासामत्स्याक्षिकाभ्यां वा मीनाक्ष्या सकटिल्लया२७॥
पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ।
भवेद्विंशतिवारेण सिंदूरसदृशप्रभम् ॥ २८ ॥

धान्याभ्रकको बडकी जडकी छाल अथवा बडकी डाढीके क्काथमें खरल करके टिकियां बनाकर गजपुटमें फूँके । इस प्रकार २० पुट देवे । अथवा नागरबेलके पानोंके रसमें किंवा अडूसेके और मछेछीके रसमें अथवा मत्स्याक्षी और करेलेके रसमें खरल करके २० पुट देवे । अथवा केवल बडके दूधमें खरल करके २० पुट देनेसे अभ्रककी सिन्दूरके समान लाल भस्म हो जाती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अभ्रकका सत्त्वपातन ।

पादांशटंकणोपेतं मुसलीपरिमर्दितम् ।
रुन्ध्यात्कोष्ठ्यां दृढं ध्मातं सत्त्वरूपं भवेद्धनम् ॥२९॥

काससर्दघनाधान्यवालानां च पुनर्भुवः ।
मत्स्याक्ष्याः काकवल्याश्च हंसपाद्या रसैः पृथक् ३०॥
पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रयत्नेन शोषयेद्धर्मयोगतः ।
पलं गोधूमचूर्णस्य क्षुद्रमत्स्याश्च टंकणम् ॥ ३१ ॥
प्रत्येकमष्टमांशेन दत्त्वा रुद्ध्वा विमर्दयेत् ।
मर्दने मर्दने सम्यक् शोषयेद्रविरश्मिभिः ॥ ३२ ॥
पञ्चाजं पञ्चगव्यं च पञ्चमाहिषमेव च ।
क्षिप्त्वा गोलान्प्रकुर्वीत किंचित्तिन्दुकतोऽधिकात् ३३
अधःपातनकोष्ठ्यां हि ध्मात्वा सत्त्वं निपातयेत् ।
कोष्ठ्यां किट्टं समाहृत्य विचूर्ण्य रवकान्हरेत् ॥ ३४॥
तत्किट्टं स्वल्पटंकेन गोमयेन विमर्द्य च ।
गोलान्विधाय संशोष्य धमेद्भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ ३५ ॥
भूयः किट्टं समाहृत्य मृदित्वा सत्त्वमाहरेत् ।
अथ सत्त्वकणाँस्ताँस्तु क्वाथयित्वाम्लकांजिकैः ॥ ३६
शोधनीयगणोपेतं मूषामध्ये निरुध्य च ।
सम्यग्द्रुतं समाहृत्य द्विवारं प्रथमेद्धनम् ॥ ३७ ॥
इति शुद्धं भवेत्सत्त्वं योज्यं रसरसायने ॥ ३८ ॥

धान्याभ्रकमें चौथाई भाग सुहागा मिलाकर उसको मुसलीके रसमें खरल करके घडियामें बंधकर अग्निमें फूँके तो अभ्रकमेंसे लोहेकी समान घन सत्त्व निकलताहै । अथवा कँसौंदी, नागरमोथा, धनियाँ, अडूसा, पुनर्नवा, मत्स्याक्षी (मछेछी), घुंघुची और लज्जालु इन औषधियोंके रस या काढेमें क्रमसे पृथक् २ खरल करे और प्रत्येक बार धूपमें सुखावे । फिर गेहूँका चूर्ण ४ तोले, छोटी मछली और सुहागा ये प्रत्येक अभ्रकसे अष्टमांश लेकर सबको अभ्र-

कमें अच्छे प्रकारसे मिलाकर खरल करे और प्रत्येक बार खरल करनेके पश्चात् धूपमें सुखावे । फिर अभ्रकमें पंचाज (बकरीका दूध दही, घी, मल और मूत्र इन पाँचोंको पञ्चाज कहते हैं), पञ्चगव्य और पञ्चमाहिष (गायके दूध, दही, घी आदि पाँचों पदार्थोंको पञ्चगव्य और भैंसके उक्त पाँचों पदार्थोंको पंचमाहिष कहते हैं ।) को समान भागसे मिलाकर खूब खरल करके १ तोलेसे कुछ बडे गोले बनाकर धूपमें सुखा लेवे । फिर उनको अधःपातन मूषायंत्रमें रखकर फूँके तो अभ्रकमेंसे सत्त्व निकलता है। पश्चात् मूषामेंसे कीटको निकालकर उसको पीसकर उसमें आठवाँ भाग सुहागा और समान भाग गायका गोबर मिलाकर खरल करके गोले बनाकर सुखावे । फिर उनको मूषामें रखकर उपर्युक्त विधिसे फूँके तो सत्त्व निकलता है । इस प्रकारसे जबतक उसमेंसे सम्पूर्ण सत्त्व न निकले तबतक कीटको उपर्युक्त विधिसे किंचित् सुहागे और गोबरके साथ खरल करके गोले बनाकर मूषामें रखकर अग्नि देवे । इस प्रकार अभ्रकका समस्त सत्त्व निकल आता है । फिर उन सब सत्त्वकणोंको एकत्रित करके खट्टी कांजीमें पका लेवे । पश्चात् उसमें शोधनीय गणकी सब औषधियोंका क्काथ डालकर तीन घंटे तक खरल करके गोले बनाकर धूपमें सुखा लेवे । फिर उनको मूषामें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर तीक्ष्ण अग्नि देवे । जब वह रसके समान पतला हो जाय तब शीतल करके फिर शोधनीय गणकी औषधियोंके क्काथमें घोटकर पूर्ववत् फूँके । इस प्रकार तैयार किया हुआ शुद्ध सत्त्व रस, रसायनादि कार्योंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २९-३८ ॥

अभ्रककी द्रुति ।

मधुतैलवसाज्येषु द्रावितं परिवापितम् ।
मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम् ॥ ३९ ॥

अभ्रक सत्त्वको अग्निपर गलाकर उसमें शहद, तेल, घी और चर्बी डालकर पकावे । इस प्रकार दस बार पकानेसे अभ्रक सत्त्व

मृदु हो जाता है । (इसी विधिसे अन्य कठिन धातुयें भी मृदु की जाती हैं) ॥ ३९ ॥

सत्त्वाभ्ररसायन ।

पट्टचूर्णं विधायाथ गोघृतेन परिप्लुतम् ।
भर्जयेत्सप्तवाराणि चुल्लीसंस्थितखर्परे ॥ ४० ॥
अग्निवर्णं भवेद्यावद्वारं वारं विचूर्णयेत् ।
तृणं क्षिप्त्वा दहेद्यावत्तावद्वा भर्जनं चरेत् ॥ ४१ ॥
ततः सगन्धकं पिष्ट्वा वटमूलकषायतः ।
पुटेद्विंशतिवाराणि वाराहेण पुटेन हि ॥ ४२ ॥
पुनर्विंशतिवाराणि त्रिफलोत्थकषायतः ।
त्रिफलामुंडिकाभृंगपत्रपथ्याक्षमूलकैः ॥ ४३ ॥
भावयित्वा प्रयोक्तव्यं सर्वरोगेषु मात्रया ।
एवं चेच्छतवाराणि पुटपाकेन साधितम् ॥ ४४ ॥
सत्त्वाभ्रान्नापरं किञ्चिन्निर्विकारं गुणोत्तरम् ।
गुणवज्जायतेऽत्यर्थं परं पाचनदीपनम् ॥ ४५ ॥

उपर्युक्त विधिसे तैयार किये हुए अभ्रकके सत्त्वको बारीक पीसकर कपडछान करके गायके घीमें मिलाकर खीपडे या कढाईमें डालकर और चूल्हेपर चढाकर उत्तम प्रकारसे भूने । कढाई जबतक अग्निके समान लाल न हो जाय और उसके ऊपर तिनकेको डालनेसे वह जलने न लगे तबतक बराबर भूने । फिर कढाईको नीचे उतारकर उसका चूर्ण करके समान भाग घृतमें मिलाकर पूर्ववत् भूने । इस प्रकार सात बार भूने और प्रत्येक बारमें चूर्ण करता जाय । फिर उसमें समान भाग गन्धक डालकर बडकी डाढीके काथमें घोटकर २० बार वाराह पुट देवे । परन्तु प्रत्येक पुटके अन्तमें बराबर

भाग गन्धक मिलाता जाय । फिर त्रिफलेके क्काथमें घोटकर २० बार वाराह पुट देवे । पश्चात् त्रिफला, मुंडी, भाँगरेके पत्ते, हरड, बहेडा और मूलीके पत्ते इन प्रत्येकके रस या क्काथमें क्रमसे भावना देवे तो सत्त्वाभ्ररसायन सिद्ध होती है । इसको समस्त रोगोंमें योग्य मात्रासे प्रयोग करना चाहिये । इस सत्त्वाभ्ररसायनको यदि बड और त्रिफलेके क्काथमें खरल करके बीस २ पुट देनेके बदले पचास २ वाराह पुट दिये जायँ तो शतपुटित अभ्रक भस्म होजाती है । सम्पूर्ण विकारोंसे रहित और उत्तरोत्तर गुण करनेवाली इस सत्त्वाभ्रकसे बढकर अन्य उत्कृष्ट औषध नहीं है । यह अत्यन्त गुणशाली, पाचक और अग्निप्रदीपक है ॥ ४०-४५ ॥

अभ्रक भस्मकी अन्यविधि ।

गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम् ।
अधोर्ध्वं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटैः खगम् ॥ ४६ ॥
क्षुधं करोति चात्यर्थं गुञ्जार्द्धमिति सेवया ।
तत्तद्रोगहरैर्योगैः सर्वरोगहरं परम् ॥ ४७ ॥

धान्याभ्रकमें समान भाग गुड मिलाकर उसको अण्डके पत्तोंके रसमें घोटकर टिकियां बना लेवे फिर उस टिकियाके नीचे, ऊपर बडके पत्ते रखकर उसको शराव सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँके। इस प्रकार तीन पुट देनेसे अभ्रककी निश्चन्द्र भस्म होती है । यह भस्म आधी २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे क्षुधाकी अतिशय वृद्धि होती है । और रोगानुसार प्रयोगोंके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

दिव्याभ्ररसायन ।

सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकांजिके ।
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहपारया ॥ ४८ ॥
संप्रताप्य घनस्थूलकणान्क्षिप्त्वाथ कांजिके ।

तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत् ॥ ४९ ॥
गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत्पूर्ववत्त्रिधा ।
धात्रीफलरसैस्तद्वद्धात्रीपत्ररसेन वा ॥ ५० ॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम् ।
ततः पुनर्नवावासारसैः कांजिकमिश्रितैः ॥ ५१ ॥
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गन्धकैः ।
एवं संशोधितं व्योमसत्त्वं सर्वगुणोत्तरम् ।
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने ॥ ५२ ॥
वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितम् ।
दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुरुग्ग्रहणिकाशूलामकुष्ठामयम् ॥
ऊर्ध्वश्वासगतं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरम् ।
मन्दाग्निं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान् ॥५३॥

अभ्रकके सत्त्वका गोला बनाकर उसको मूषामें रखकर कोयलोंकी अग्निमें तपावे जब वह खूब लाल हो जाय तब उसको चीमटेसे निकालकर धानोंकी कॉजीमें बुझावे फिर लोहेके खरलमें डालकर लोहेकी मुसलीसे खूब पीसे पश्चात् उसमें जो मोटे मोटे अभ्रकके कण रह जायँ उनको फिर उपर्युक्त विधिसे तपाकर और कॉंजीमें बुझाकर कूट पीस करके बारीक चूर्ण कर लेवे । फिर उस चूर्णको गौके घीमें मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे तीन बार भूने और प्रत्येक बार, पीसकर चूर्ण करता जाय । इसके पश्चात् आमलोंके रस अथवा आमलोंके पत्तोंके रसमें तीन २ बार भूने और प्रत्येक बारमें पीसता जाय । फिर पुनर्नवेका रस, अडूसेका रस और कॉजी इन तीनोंको एकत्र मिलाकर इनसे खरल करके दस बार गजपुट देवे । फिर गन्धकके साथ खरल करके दश पुट देवे । इस प्रकार सिद्ध की हुई दिव्याभ्ररसायन सम्पूर्ण गुणोंको करती है । इसको पारदके जारण करने और रसाय-

नकर्ममें यथेष्ट रूपसे व्यवहार करना चाहिये पश्चात् वायविडङ्ग और त्रिकुटा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उसमेंसे दो आने भर लेवे। उस चूर्णमें डेढ रत्ती इस रसायनको और घृतको मिलाकर प्रतिदिन सेवन करे। यह दिव्याभ्ररसायन क्षय, पाण्डुरोग, संग्रहणी, शूल, आमवात, कोढ, ऊर्ध्वश्वास, प्रमेह, अरुचि, दारुण खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग और अन्यान्य अनेक प्रकारके असाध्य रोगोंको भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे शीघ्र नष्ट करती है॥४९–५३॥

द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि दृढम् ।
विना शम्भोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन ॥ ५४ ॥

अभ्रकका द्रावण यद्यपि अनेक ग्रन्थोंमें कहा गया है, किन्तु यहाँ नहीं कहा। कारण, श्रीशंकर भगवान्‌की कृपाके विना यह क्रिया कदापि सिद्ध नहीं होती ॥ ५४ ॥

अथ वैक्रान्तपरीक्षा ।

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ५५ ॥
श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥ ५६ ॥

आठ कोने व आठ फलकवाला अथवा ६ कोनेवाला एवं चिकना भारी, शुद्ध और मिश्रित वर्णवाला ऐसा वैक्रान्त उत्तम होता है। सफेद, लाल, पीला, नीला, कबूतरकी समान वर्णवाला, श्यामवर्णवाला, काला और चितकबरा इन रंगोंके भेदसे वैक्रान्त आठ प्रकारका होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वैक्रान्तके गुण ।

आयुःप्रदश्च बलवर्णकरोऽतिवृष्यः प्रज्ञाप्रदः सक-
लदोषगदापहारी ॥ दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्त-

रस्वी वैक्रांतकः खलु वपुर्बललोहकारी ॥ ५७ ॥
रसायनेषु सर्वेषु पूर्वगण्यः प्रतापवान् ।
वज्रस्थाने नियोक्तव्यो वैक्रांतः सर्वदोषहा ॥ ५८ ॥

वैक्रान्त आयु, बल और वर्णकी वृद्धि करनेवाला, अत्यन्त वृष्य, बुद्धिवर्द्धक एवं वात, पित्तादि सम्पूर्ण दोषोंको हरनेवाला, जठराग्निको दीपन करनेवाला और हीरेके समान गुणकारी है । एवं इन्द्रियोंमें स्फूर्त्ति उत्पन्न करनेवाला और शरीरको बलवान् तथा लोहेकी समान दृढ करनेवाला है । यह सम्पूर्ण रसायनोंमें अग्रगण्य, प्रतापवान्, समस्त दोषनाशक और हीरेके अभावमें प्रयोग करने योग्य है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

वैक्रान्तकी उत्पत्तिभेद ।

दैत्येंद्रो माहिषः सिद्धः सहदेवसमुद्भवः ।
दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥५९॥
तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि ।
तत्र तत्र तु वैक्रांतं वज्राकारं महारसम् ॥ ६० ॥
विंध्यस्य दक्षिणे भागे ह्युत्तरे वास्ति सर्वतः ।
विकृंतयति लोहानि तेन वैक्रांतकः स्मृतः ॥ ६१ ॥
श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतच्छविः ।
मयूरकंठसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः ॥ ६२ ॥
देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम् ।
सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम् ॥ ६३ ॥
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रांतमिति सप्तधा॥ ६४ ॥

सहदेवसे उत्पन्न हुए प्रसिद्ध दैत्य महिषासुरको जब भगवतीने अपने त्रिशूलसे मारा था, उस समय उसका रुधिर जहाँ २ पृथ्व-

पर गिरा, वहीं २ हीरेके समान आकारवाला वैक्रान्त नामक महारस उत्पन्न हो गया । विन्ध्याचलके दक्षिण और उत्तर भागमें इसकी खानें हैं । यह लोहादि सम्पूर्ण धातुओंको काट डालता है, इसलिये इसको वैक्रान्त कहते हैं । यह सफेद, पीला, नीला, लाल, कबूतरके समान कांतिवाला, मोरके कण्ठके समान वर्णवाला और मरकतमणिके समान वर्णवाला इस प्रकार सात प्रकारका होता है । काला वैक्रान्त शरीरको सिद्धि (अर्थात् अजर, अमर) प्रदान करता है, पीला वैक्रान्त सोना आदि बनानेमें और सफेद वैक्रान्त चाँदी बनानेके काममें आता है । लाल और मरकतमणिके समान वर्णवाला वैक्रान्त शरीरमें धारण करनेसे सम्पूर्ण अर्थ सिद्धियोंको देता है । शेषके (अर्थात् नीला और कबूतरके समान वर्णवाला) दोनों वैक्रान्त निष्फल होते हैं, इसलिये उनको ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ ५९–६४ ॥

यत्र क्षेत्रे स्थितं चैव वैक्रांतं तत्र भैरवम् ।
विनायकं च सम्पूज्य गृह्णीयाच्छुद्धमानसः ॥ ६५ ॥
वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः ।
विषघ्नो रसराजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत् ॥ ६६ ॥

जिस स्थानमें वैक्रान्त स्थित हो, वहाँ शुद्ध चित्तसे भैरव और गणेशका पूजन करके उसको ग्रहण करे वैक्रान्त हीरेके समान गुण करनेवाला एवं शरीर और लोहादि धातुओंकी सिद्धि करनेवाला है । तथा विषनाशक, ज्वर, कुष्ठ और क्षयरोगको नष्ट करनेवाला और सब रसोंका राजा है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

वैक्रान्तका शोधन ।

वैक्रांतकाः स्युस्त्रिदिनं विशुद्धाः संस्वेदिताः
क्षारपटूनि दत्त्वा । अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थ-
रम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वाः ॥ ६७ ॥
कुलत्थक्वाथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्ध्यति ॥ ६८ ॥

वैक्रान्तको काँजी आदि अम्लवर्ग, मूत्रवर्ग, कुलथीका काढा, केलेका स्वरस अथवा कोदोंका काढा इनमें जवाखार, सज्जी और पाँचों नमक मिलाकर उसको दोलायन्त्रके द्वारा तीन दिन तक स्वेद देनेसे अथवा केवल कुलथीके क्वाथमें तीन दिन स्वेद देनेसे भी वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

वैक्रान्तकी भस्मविधि ।

म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवसंयुतः ।
वैक्रांतेषु च तप्तेषु हयमूत्रं विनिक्षिपेत् ॥ ६९ ॥
पौनःपुन्येन वा कुर्याद्द्रवं दत्त्वा पुटेत्त्वनु ।
भस्मीभूतं च वैक्रांतं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ ७० ॥

गन्धकको नीबूके रसमें खरल करके उसकी लुगदी बनाकर उसमें वैक्रान्तको रखकर गजपुट देवे । इस प्रकार आठ बार पुट देनेसे अथवा वैक्रान्तको कोयलोंकी अग्निपर तपा तपाकर बार बार घोडेके मूत्रमें बुझानेसे वैक्रान्तकी भस्म होजाती है । इस प्रकार की हुई वैक्रान्त भस्म हीरेकी जगह प्रयोग करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ ७० ॥

वैक्रान्तका सत्त्वपातन ।

मोक्षमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकंदनिशाकल्कफलचूर्णसमन्वितम् ।
तत्कल्कं टंकणं लाक्षाचूर्णं वैक्रांतसंभवम् ॥ ७१ ॥
नवसारसमायुक्तं मेषशृंगीद्रवान्वितम् ।
पिण्डितं मूकमूषस्थं ध्मापितं च हठाग्निना ॥ ७२ ॥
तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रांतस्य न संशयः ।
सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः ।
मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रांतः सत्त्वमुत्सृजेत् ॥ ७३ ॥

मोखा, मोरटलता और ढाक इनके खारोंको गोमूत्रमें पीसकर उसमें वैक्रान्तको भावना देवे । फिर वज्रकन्द और हल्दीका कल्क समान भाग एवं त्रिफलेका चूर्ण सुहागा, लाखका चूर्ण और नौसादर इनमें वैक्रान्तकी भस्मको मिलाकर मेढासिंगीके रसमें या क्वाथमें खरल करके गोलासा बना लेवे । उसको अन्धमूषामें रखकर कोयलोंकी तीक्ष्ण अग्नि देवे तो वैक्रान्तका अवश्य सत्त्व निकल आता है । अथवा आगे कहे हुए सत्त्वपातनके योगोंके साथ वैक्रान्तको घोट-कर गोला बनावे और उसको मूषामें रखकर एक घडी तक तीक्ष्ण अग्नि देवे तो भी वैक्रान्तका सत्त्व निकल आता है ॥ ७१-७३ ॥

वैक्रान्त रसायन ।

भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्ना मृतेनान्वितः,
पादांशेन कणाज्यवेल्लसहितो गुंजामितः सेवितः ।
यक्ष्माणं जरणं च पाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं,
दुष्टां च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद्दाहकृत् ७४॥

वैक्रान्तकी भस्म ४ भाग और सुवर्णभस्म १ भाग लेकर दोनोंको एकत्र खरल करके रखलेवे । फिर छोटी पीपल और वायविडंगका चूर्ण एक २ मासा लेकर उसमें घृत और उक्त भस्म १ रत्ती परिमाण मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, जरा, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, कठिन संग्रहणी, उरःक्षत और मुखके रोग दूर होते हैं और शरीरकी उत्तम सिद्धि होती है ॥ ७४ ॥

सूतभस्मार्धसंयुक्तं नीलवैक्रांतभस्मकम् ।
मृताभ्रसत्त्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ ७५ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुंजामात्रं निषेवितम् ।
निहंति सकलान्रोगान्दुर्जयानन्यभेषजैः ।
त्रिसप्तदिवसैर्नृणां गंगांभ इव पातकम् ॥ ७६ ॥

नीले वैक्रान्तकी भस्म १ भाग, पारेकी भस्म आधा भाग और अभ्रकभस्म दोनोंके बराबर भाग लेकर सबको एकत्र खरल कर लेवे। इसमेंसे एक रत्ती परिमाण लेकर शहद और घृतमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे। यह भस्म अन्यान्य औषधियोंके साथ मिलाकर २१ दिन तक सेवन करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण दारुण रोगोंको इस प्रकार नष्ट करती है, जैसे गंगाजल पापोंको शीघ्र दूर कर देता है ॥ ७५॥७६ ॥

सुवर्णमाक्षिककी उत्पत्ति, लक्षण और गुण ।

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना कांचनो रसः ।
तापीकिरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥ ७७ ॥
ताप्यः सूर्यांशुसंततो माधवे मासि दृश्यते ।
मधुरः कांचनाभासः साम्लो रजतसन्निभः ॥७८॥
किंचित्कषायमधुरः शीतः पाके कटुर्लघुः ।
तत्सेवनाज्जराव्याधिविषैर्न परिभूयते ॥ ७९ ॥
माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः ।
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम् ॥८०॥
तापतीतीरसंभूतं पंचवर्णसुवर्णवत् ।
पाषाणबहलः प्रोक्तस्ताराख्योल्पगुणात्मकः ॥ ८१ ॥
माक्षिकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेंद्रस्य परं हि वृष्यः ॥ दुर्मेललोहद्वयमेलनश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः ॥ ८२ ॥

सुमेरु पर्वतसे उत्पन्न हुए सुवर्ण रसको श्रीविष्णु भगवान्ने तापी नदी और उसके तीरवर्त्ती स्थानोंमें एवं किरात चीन और आबू आदि यवन देशोंमें निर्माण किया है। इसको स्वर्णमाखी कहते हैं । वैशा-

खके महीनेमें सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंके तपनेसे सोनामाखी दिखाई देती है । सुवर्णके समान कान्तिवाली माक्षिक धातु स्वादमें मधुर होती है और चाँदीके समान कान्तिवाली माक्षिक धातु अम्ल, मधुर, कुछ कषैली, शीतल, पाकमें कटु (चरपरी) और हल्की होती है । दोनों प्रकारकी माक्षिक धातुओंको सेवन करनेसे मनुष्यको वृद्धावस्था, रोग और विषकी बाधा नहीं होती । सोनामाखी और रूपामाखी इन भेदोंसे माक्षिक दो प्रकारका होता है । इनमें जो सोनामाखी कन्नौजमें उत्पन्न होती है, वह सोनेके समान कान्तिवाली होती है । किन्तु तापी नदीके किनारे पर उत्पन्न होनेवाली सोनामाखी पंचरंगी और अधिक सुवर्ण वर्णवाली होती है । रूपामाखीमें पत्थरका अंश अधिक होता है और वह अल्प गुणोंवाली होती है । दोनों प्रकारकी माक्षिक धातुयें सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाली पारेकी प्राणस्वरूप और अत्यन्त वृष्य हैं । अब दो धातुओंको आपसमें मिलाने पर बडी कठिनता पडती है तब ये उनको सहजमें मिला देती हैं । एवं सर्व गुणयुक्त और सब रसायनोंमें श्रेष्ठ है ॥७७-८२॥

माक्षिक शोधन ।

एरंडतैललुंगांबुसिद्धं सिद्धयति माक्षिकम् ।
सिद्धं वा कदलीकंदतोयेन घटिकाद्वयम् ।
तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमाप्नोतिमाक्षिकम् ॥ ८३ ॥

सोनामाखी वा रूपामाखीका चूर्ण करके खीपडेमें या कढाईमें डालकर अण्डीके तेलमें भून ले अथवा बिजौरे नींबूके रसमें या केलेकी जडके रसमें दो घडी पर्यन्त पकावे तो सोनामाखी वा रूपामाखी शुद्ध होती है । अथवा सोनामाखी वा रूपामाखीको अग्निमें खूब तपावे, जब लाल हो जाय तब त्रिफलेके काढेमें बुझानेसे शुद्ध होती है ॥८३॥

माक्षिक भस्मविधि ।

मातुलुंगांबुगंधाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम् ।
पंचक्रोडपुटे दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु ॥ ८४ ॥

एरंडस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुंगरसेन वा।
खर्परस्थं दृढं पक्वं जायते धातुसन्निभम् ॥ ८५ ॥
एवं मृतं रसे योज्यं रसायनविधावपि ॥ ८६ ॥

सोनामाखीके चूर्णमें समान भाग गन्धक मिलाकर बिजौरे नीबूके रसमें खरल करके गोला बनाकर और मूषामें रखकर वाराहपुट देवे। इस प्रकार पाँच पुट देनेसे निश्चय भस्म हो जाती है अथवा सोना-माखीके चूर्णको एक खीपड़ेमें डालकर अण्डीके तेल या गायके घीके साथ तबतक भूने जबतक कि वह अच्छे प्रकारसे लाल न हो जाय और लोहेकी करछीसे चलाता जाय। उसी प्रकार बिजौरे नीबूके रसमें पकावे। इस प्रकार करनेसे सोनामाखीकी लाल रंगकी उत्तम भस्म हो जाती है। इस भस्मको रस और रसायनकर्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८४-८६ ॥

सुवर्णमाक्षिकका सत्त्वपातन।

त्रिंशांशनागसंयुक्तं क्षारैरम्लैश्च मर्दितम्।
ध्मातं प्रकटमूषायां सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ८७॥
सप्तवारं परिद्राव्य क्षिप्तं निर्गुण्डिकाद्रवे।
माक्षीकसत्त्वसम्मिश्रं नागं नश्यति निश्चितम् ॥८८॥

सोनामाखीके चूर्णमें तीसवाँ भाग शीशा (अग्निपर गलाकर) मिलाकर क्षारवर्ग (जवाखार, सज्जी आदि) और अम्लवर्ग (काँजी नीबू आदि) के साथ खरल करे। अर्थात् उक्त दोनों पदार्थोंके समान यवक्षारादि खार मिलाकर काँजी आदि अम्ल पदार्थोंमें खरल करे। फिर उसका गोला बनाकर सत्त्वपातनकी मूषामें रखकर कोयलोंकी अग्निमें फूँके तो माक्षिक धातुका सत्त्व निकल आता है। किन्तु इस सत्त्वमें शीशा मिला होता है, इसलिये इस सत्त्वको गोस्तनी नामक मूषामें रखकर पतला होने पर निर्गुण्डीके रसमें बुझावे।

इस प्रकार सात बार करनेसे माक्षिक सत्त्वमें मिला हुआ शीशा अवश्य निकल जाता है ॥ ८७ ॥८८ ॥

सत्त्वकी दूसरी विधि ।

क्षौद्रगन्धर्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः ॥ ८९ ॥
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु ॥ ९० ॥

समान भाग मिले हुए शहद और अण्डीके तेलमें एवं गोमूत्र, गायका घी और केलेके कन्दका रस इन प्रत्येकमें अलग २ सोना-माखीके चूर्णको भावना देकर गोला बनाकर मूषामें रखकर बार बार अग्नि देवे तो, उसमेंसे ताँबेके समान लाल और मृदु सत्त्व निकलता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

सोनामाखीके सत्त्वकी परीक्षा ।

गुञ्जाबीजसमच्छायं द्रुतद्रावं च शीतलम् ।
ताप्यसत्त्वं विशुद्धं तद्देहलोहकरं परम् ॥ ९१ ॥

चोंटलीके समान लाल, अग्निमें रखनेपर तत्काल पिघलनेवाला और शीतल ऐसा सोनामाखीका सत्त्व श्रेष्ठ होता है । यह देह और लोहकी सिद्धि करनेवाला है ॥ ९१ ॥

सुवर्णमाक्षिक रसायन ।

माक्षीकसत्त्वं च रसेन पिष्टं कृत्वा विलीने च बलिं निधाय । सम्मिश्र्य सम्मर्द्य च खल्वमध्ये निःक्षिप्य सत्त्वं द्रुतिमभ्रकस्य ॥ ९२ ॥ विधाय गोलं लवणाख्ययंत्रे पचेद्दिनार्द्धं मृदुवह्निना च । स्वतः सुशीतं परिचूर्ण्य सम्यग्वल्लोन्मितं व्योषविडंगयुक्तम् ॥ ९३ ॥ संसेवितं क्षौद्रयुतं निहन्ति जरां

**सरोगामपमृत्युमेव । दुस्साध्यरोगानपि सप्तवा-
सरैर्नैतेन तुल्योऽस्ति सुधारसोऽपि ॥ ९४ ॥**

सोनामाखीका सत्त्व और पारा दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली बनावे इस प्रकार कज्जली करे कि जिससे दोनों अच्छे प्रकारसे मिल जायँ अलग २ कण दिखाई न दे । इस प्रकार दोनों पदार्थोंके मिल जानेपर उसमें सत्त्वके बराबर गन्धक मिलाकर खरल करे । जब गन्धक मिल जाय तब उसमें उक्त सत्त्वके बराबर अभ्रक सत्त्वकी द्रुति मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरल करके गोलासा बना लेवे । इस गोलेको शराव सम्पुटमें रखकर ऊपरसे कपरौटी करके लवणयन्त्रमें रखकर दो प्रहर तक मन्द मन्द अग्नि देवे । स्वाङ्ग शीतल होनेपर उसको निकालकर खरल कर लेवे । इसमेंसे एक वल्ल प्रमाण लेकर सोंठ, मिरच, पीपल और वायविडंग इनके समान भाग मिश्रित चूर्णमें मिलाकर शहदके साथ सेवन करे । इससे सब प्रकारके रोग, जरा और अत्यन्त कष्टसाध्य रोग केवल सात दिनमें आराम हो जाते हैं । इसके प्रभावसे अकालमृत्यु दूर होती है । विशेष क्या कहा जाय इसकी बराबरी अमृत भी नहीं कर सकता ॥ ९२-९४ ॥

माक्षिक द्रावण ।

**एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जा क्षौद्रं च टंकणम् ।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत् ॥ ९५ ॥**

अण्डीका तेल, घुंघुचीका चूर्ण, शहद और सुहागा इन सबको एकत्र खरल करके सोनामाखीके सत्वको (अग्निपर) गलाकर उसमें डालनेसे सोनामाखीका द्रावण होता है ॥ ९५ ॥

विमलाभेद ।

**विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या च लक्ष्यते ॥९६॥**

वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः ।
मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः ॥ ९७ ॥
पूर्वो हेमक्रियासूक्तो द्वितीयो रौप्यकृन्मतः ।
तृतीयो भेषजे तेषु पूर्वपूर्वगुणोत्तरः ॥ ९८ ॥

विमला माक्षिक धातुकाही भेद है । वहुत लोग विमलाको रूपामाखी कहते हैं । पर इस ग्रन्थमें जो विमलाके तीन भेद लिखे हैं, उनसे विमलाका रूपामाखी होना किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता । विमला धातु तीन प्रकारकी होती है; जैसे स्वर्ण विमला (सुवर्णकीसी कान्तिवाली), ताराविमला (रूपाकीसी कान्तिवाली) और काँस्यविमला (काँसीके समान कान्तिवाली) इस प्रकारकी कान्तिस ही विमलाके भेद लक्षित होते हैं । विमलामाखी गोलाकार, जिसमें चारों ओर कोण हों, स्निग्ध और फलकयुक्त ऐसी विमलामाखी श्रेष्ठ होती है । यह वात, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक और अत्यन्त रसायन है । विशेषकर स्वर्ण विमला स्वर्णके काममें, ताराविमला चाँदीके काममें और काँस्यविमला औषधिकार्यमें श्रेष्ठ है । इनमें एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी इस क्रमसे हीन गुणोंवाली होती है । अर्थात् स्वर्णविमलासे तारावमला और ताराविमलासे काँस्यविमला गुणहीन होती है ॥ ९६–९८ ॥

विमलाशुद्धि ।

आटरूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत् ।
जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा ॥
आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च यथा परे ॥ ९९ ॥

अडूसेके रसमें, जम्बीरी नींबूके रसमें अथवा मेढासिंगीके रसमें विमलाको दो घडीतक पकानेसे विमला शुद्ध होती है । इसी विधिसे अन्यान्य धातुयें भी शुद्ध होती हैं ॥ ९९ ॥

विमलामारण और सत्त्वपातन ।

गंधाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः ॥१००॥
सटंकलकुचद्रावैर्मेषशृंग्याश्च भस्मना ।
पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुध्य च ॥१०१॥
षट्प्रस्थकोकिलैर्ध्मातो विमलः शशिसंनिभम् ।
सत्त्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्स रसायनः ॥१०२॥
विमलं शिग्रुतोयेन कांक्षी कासीसटंकणम् ।
वज्रकंदसमायुक्तं भावितं कदलीरसैः ॥ १०३ ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मूकमूषगम् ।
सत्त्वं चंद्रार्कसंकाशं पतते नात्र संशयः ॥ १०४ ॥

विमलाके चूर्णमें समान भाग गन्धक मिलाकर बडहलके फलोंके रसमें अथवा नींबूके रसमें खरल करके गोला बनाकर गजपुटमें रखकर अग्नि देवे । इस प्रकार १० पुट देनेसे विमला धातुकी भस्म हो जाती है । विमलाकी भस्म, भस्मके बराबर भाग सुहागा और मेढाशिंगीकी भस्म लेकर सबको मेढासिंगीके रसमें एकत्र खरल करके उसका सत्त्वपातनकी मूषाके भीतर लेप कर देवे । जब लेप सूख जाय तब मूषाको बन्द करके ६ प्रस्थ कोयलोंमें रखकर धौंकनीसे फूंके । इस प्रकारसे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल सत्त्व निकलता है । इस सत्त्वको पारदके साथ मिला देनेसे वह उत्तम रसायनरूप हो जाता है । अथवा विमलामाखीकी भस्म, फटकरी, हीराकसीस, सुहागा, वज्रकन्द (जंगलीसूरण वजरकन्दा) इन सबको समान भाग लेकर सहिंजनेकी छालके क्काथमें और केलेके रसमें खरल करके गोला बनाकर उसको मूकमूषामें बन्द करके और उसमें मोखेका खार डालकरके अग्नि देवे तो चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल विमलामाखीका सत्त्व निकलता है ॥ १००–१०४ ॥

विमला रसायन ।

तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टं कृत्वा सुमर्दितम् ।
विलीनं गंधके क्षिप्त्वा जायते त्रिगुणात्मकम् ॥ १०५
शिलां पंचगुणां चापि वालुकायंत्रगे खलु ।
तारभस्म दशांशेन तावद्वैक्रांतकं मृतम् ॥ १०६ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पटेन परिगाल्य च ।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः ॥ १०७ ॥
लीढो व्योषवराान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेवितो,
हन्याद्दुर्भगकृज्ज्वरान्श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहाऽरुचीः ।
मूलार्त्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयं कामलाम्,
सर्वान्पित्तमरुद्भवान्किमपरैर्योगैरशेषामयान् ॥१०८॥

उपर्युक्त विधिसे तैयार किया हुआ विमला माखीका सत्त्व और पारा दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल कर लेवे । जब पारा अदृश्य हो जाय तब तीन भाग गन्धकको अग्निपर पिघलाकर उसके साथ उक्त चूर्णको जारण करे । फिर उसके साथ पाँच भाग मैन-सिलको खरल करके सबको एक आतसी शीशीमें भरकर वालुकायं-त्रमें ४ प्रहर तक अग्नि देवे । जब स्वांग शीतल हो जाय तब उसमेंसे निकालकर चूर्ण कर लेवे । फिर उसमें सब चूर्णसे दशवाँ भाग चाँदीकी भस्म और उसकी बराबर वैक्रान्त भस्म मिलाकर बारीक खरल करे और कपडछान करके शीशीमें भरकर रख देवे । उपर्युक्त विमला रसायनको एक या दो रत्तीकी मात्रासे त्रिकुटे और त्रिफलेके चूर्णके साथ एवं घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे भयंकर ज्वर, सूजन, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, शूल, राजयक्ष्मा, कामला, एवं सब प्रकारके वातजन्य और पित्तजन्य विकार नष्ट होते

है । यह रसायन इतनी श्रेष्ठ है कि इस अकेलीको ही भिन्न २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सब रोगोंका नाश होता है ॥ १०५-१०८॥

शिलाजीतका वर्णन ।

शिलाजतुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायनः ।
कर्पूरपूर्वकश्चान्यस्तत्राद्यो द्विविधः पुनः ॥ १०९ ॥
ससत्त्वश्चैव निःसत्त्वस्तयोः पूर्वो गुणाधिकः ।
ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः पादेभ्यो हिमभूभृतः ॥ ११० ॥
स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यः शिलाधातुर्विनिःसरेत् ।
स्वर्णगर्भगिरेर्जातो जपापुष्पनिभो गुरुः ॥ १११ ॥
स स्वल्पतिक्तः सुस्वादुः परमं तद्रसायनम् ।
रौप्यगर्भगिरेर्जातं मधुरं पाण्डुरं गुरु ॥ ११२ ॥
शिलाजं पित्तरोगघ्नं विशेषात्पाण्डुरोगहृत् ॥
ताम्रगर्भगिरेर्जातं नीलवर्णं घनं गुरु ॥ ११३ ॥
वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिंगाकारमधूमकम् ।
सलिलेऽथ विलीनं च तच्छुद्धं हि शिलाजतु ॥ ११४

शिलाजीत दो प्रकारका होता है । एक गोमूत्रके समान गन्धवाला और दूसरा कपूरके समान गन्धवाला, अर्थात् जिसमें कपूरकीसी गन्ध आती है । इनमें पहला (गोमूत्रकी गन्धवाला) शिलाजीत उत्तम रसायन है । यह दो प्रकारका होता है एक सत्त्वयुक्त और दूसरा निःसत्त्व । इनमें सत्त्वयुक्त शिलाजीत अधिक गुणवाला होता है । ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यके प्रचण्ड तापसे जब हिमालय पर्वत अत्यन्त सन्तप्त हो जाता है तब उसमेंसे पिघलकर यह रसरूपसे बाहर निकलता है । हिमालयके कितने ही शिखर सोनेकी खानवाले, कितने ही चाँदीकी खानवाले और कितने ही ताँबेकी खानवाले हैं ।

सोनेकी खानसे उत्पन्न होनेवाला शिलाजीत जवाके फूलके समान लाल और वजनमें भारी होता है। स्वादमें उत्तम, किंचित् कडवा और उत्कृष्ट रसायन है। रूपेकी खानसे निकलनेवाला शिलाजीत स्वादमें मधुर, रंगमें कुछ पीला, वजनमें भारी, पित्तविकारनाशक और विशेष कर पाण्डुरोगको नष्ट करनेवाला है। ताँबेकी खानका शिलाजीत नीले रंगका, घन (गाढा) और भारी होता है। शिलाजीतकी परीक्षा। जो अग्निपर डालनेसे फूलकर लिंगाकार या बतासासा हो जाता है और पानीमें डालनेसे तत्काल घुल जाता है, वह शिलाजीत उत्तम होता है ॥ १०९–११४ ॥

शिलाजीतके गुण।

नूनं सज्वरपाण्डुशोफशमनं मेहाग्निमांद्यापहं,
मेदश्छेदकरं च यक्ष्मशमनं शूलामयोन्मूलनम् ।
गुल्मप्लीहविनाशनं जठरहृच्छूलामयध्वंसनं,
सर्वत्वग्गदनाशनं किमपरं देहे च लोहे स्थितम् ११५
रसोपरससूतेंद्ररत्नलोहेषु ये गुणाः ।
वसंति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ ११६ ॥

शिलाजीत ज्वर, पाण्डुरोग, सूजन, प्रमेह, मन्दाग्नि, मेदरोग (स्थूलता), राजयक्ष्मा, शूल, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, हृदयशूल, और सब प्रकारके त्वचाके विकारोंको नष्ट करता है। शरीर और लोहकी सिद्धि करनेवाला है। अभ्रकादि रस, गन्धकादि उपरस, पारा, रत्न और सर्व प्रकारकी धातुओंमें जो गुण कहे गये हैं, वे सब जरा, मरणको दूर करनेकी इच्छासे मानो शिलाजीतमें एकत्र स्थित होकर रहते हैं ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

शिलाजीतकी शुद्धि।

क्षाराम्लगोजलैर्धौतं शुद्ध्यत्येव शिलाजतु ।
शिलाधातुं च दुग्धेन त्रिफलामार्कवद्रवैः ।

लोहपात्रे विनिक्षिप्य शोधयेदतियत्नतः ॥ ११७ ॥
क्षाराम्लगुग्गुलूपेतैः स्वेदनीयंत्रमध्यगैः ।
स्वेदितं घटिकामानाच्छिलाधातुर्विशुद्ध्यति॥११८॥

जवाखार, काँजी और गोमूत्र इन तीनोंको एकत्र करके इनके द्वारा शिलाजीतको धोनेसे शिलाजीत शुद्ध होता है । अथवा दूध त्रिफलेका काढा और भाँगरेका रस इनमेंसे किसी एक द्रवको लोहेके पात्रमें भरकर उसमें शिलाजीत डालकर तेज धूपमें रख देवे । इस प्रकार करनेसे शिलाजीतका श्रेष्ठ भाग ऊपर जम जाता है और मैल नीचे बैठ जाता है । अतः शिलाजीत शुद्ध हो जाता है । अथवा कांजी, जवाखार और गूगल सबको स्वेदन यन्त्रमें भरकर यथाविधिसे एक घडीतक स्वेद देनेसे शिलाजीत शुद्ध होता है ॥ ११७॥११८ ॥

शिलाजीतकी मारणविधि ।

शिलया गन्धतालाभ्यां मातुलुंगरसेन च ॥ ११९ ॥
पुटितं हि शिलाधातुर्म्रियतेऽष्टगिरीण्डकैः ॥ १२० ॥

मैनसिल, गन्धक और हरतालके साथ शिलाजीतको बिजौरे नीबूके रसमें घोटकर गोला बनाकर आठ अरने उपलोंकी पुट देनेसे शिलाजीतकी उत्तम भस्म हो जाती है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

शिलाजीत रसायन ।

भस्मीभूतशिलोद्भवं समतुलं कान्तं च वैक्रान्तकम्,
युक्तं च त्रिफलाकटुत्रिकघृतैर्वल्लेन तुल्यं भजेत् ।
पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहेषु मूलामये,
गुल्मप्लीहमहोदरे बहुविधे शूले च योन्यामये ॥१२१॥
सेवेत यदि षण्मासं रसायनविधानतः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १२२ ॥

शिलाजीतकी भस्म कान्तलोहभस्म और वैक्रान्तभस्म सबके समान भाग लेकर एकत्र खरल करके उसमेंसे एक वल्लप्रमाण लेकर त्रिफला और त्रिकुटेके चूर्णके साथ घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे पाण्डु० रोग, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि, प्रमेह, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अनेक प्रकारके शूल और स्त्रियोंके योनिरोग दूर होते हैं । इस रसायनको रसायनविधिके अनुसार ६ महीने तक सेवन करनेवाला मनुष्य वली (विना वृद्धावस्थाके शरीरमें बलोंका पडना) और पलितरोग (विनाही समय वालोंका श्वेत होने) से मुक्त होकर सुखपूर्वक १०० वर्ष तक जीता रहता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

शिलाजीतका सत्त्वपातन ।

पिष्ट्वा द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसंभवम् ।
क्षिप्त्वा मूषोदरे रुद्ध्वा गाढैर्ध्मातं हि कोकिलैः ॥
सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुस्तत्क्षणाल्लोहसन्निभम् ॥१२३॥

शिलाजीतको द्रावणवर्ग और अम्लवर्गकी औषधियोंके साथ उत्तम प्रकारसे खरल करके मूषामें रखकर कोयलोंकी तीक्ष्ण अग्नि देनेसे शिलाजीतमेंसे लोहेके समान सत्त्व निकलता है ॥ १२३ ॥

कर्पूरगन्धि शिलाजीत ।

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ १२४ ॥
एलातोयेन संभिन्नं सिद्धं शुद्धिमुपैति तत् ।
नैतस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ १२५ ॥

कपूरकी गन्धवाला शिलाजीत किंचित् पीला और रेतेके समान होता है । यह मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोगको दूर करता है । यह शिलाजीत इलायचीके काथमें खरल करनेसे शुद्ध होता है । इसकी भस्म व सत्त्वपातन आदि विधि आचार्योंने नहीं कही है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

सस्यक (नीलायोथा) की उत्पत्ति ।

पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता ॥
विषेणामृतयुक्तेन गिरौ मरकताह्वये ॥ १२६ ॥
तद्वान्तं हि घनीभूतं संजातं सस्यकं खलु ।
मयूरकण्ठसच्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥ १२७ ॥
द्रव्यं विषयुतं यत्तद्द्रव्याधिकगुणं भवेत् ।
हालाहलं सुधायुक्तं सुधाधिकगुणं तथा ॥ १२८ ॥
निःशेषदोषविषहृद्गुदशूलमूलकुष्ठाम्लपित्तिकाविबंधहरं परं च ॥ रसायनं वमनरेककरं गरघ्नं श्वित्रापहं गदितमत्र मयूरतुत्थम् ॥ १२९ ॥

प्राचीन कालमें जब गरुडजीने अमृत पान किया था, तब उन्होंने उसके ऊपर हालाहल विषभी पान कर लिया । इस लिये अमृत और विषके एकत्रित होनेसे मरकत (नीलगिरि) पर्वतपर उनको वमन हो गई । वह वमन कुछ कालमें गाढी होकर नीलेथोथेके स्वरूपमें परिणत हो गई । नीलेथोथेकी श्रेष्ठता । मोरके कण्ठके समान कान्तिवाला और वजनदार ऐसा नीलाथोथा उत्तम होता है । नीलेथोथेके गुण और उसकी श्रेष्ठताका कारण । कोई भी पदार्थ विषयुक्त होनेपर अधिक गुणवान् हो जाता है । कारण, विष स्वभावसे ही शीघ्र गुणकारी होनेसे उसके योगके द्वारा दूसरे पदार्थोंके भी गुण और प्रभाव अधिक बढ जाते हैं । इसी प्रकार हालाहल अमृतके साथ मिलकर अमृतसेभी अधिक गुणवाला हो जाता है । नीलायोथा—वातादि सम्पूर्ण दोष, विषबाधा, हृदयरोग शूल, बवासीर, कुष्ठ, अम्लपित्त और मलावरोधको दूर करता है । उत्तम रसायन है । वमन और विरेचनको करता है । गर अर्थात् कृत्रिम विषको नष्ट करता है और श्वेत कुष्ठको निर्मूल करता है ॥ १२६–१२९ ॥

नीलेथोथेका शोधन ।

तुत्थकं शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितम् ।
स्नेहवर्गेण संसिक्तं सप्तवारमदूषितम् ॥ १३० ॥
दोलायंत्रेण सुस्विन्नं सस्यकं प्रहरत्रयम् ।
गोमाहिष्यजमूत्रेण शुद्ध्यते तुत्थखर्परम् ॥ १३१ ॥

नीलेथोथेको रक्तवर्गकी भावना देनेसे शुद्ध होता है । अथवा स्नेह वर्गके द्रव्योंमेंसे घृतादि किसी एक स्नेह पदार्थके साथ ७ वार पका लेनेसे नीलाथोथा शुद्ध होता है । प्रत्येक वारमें घृतादि स्नेह पदार्थ नया बदल देना चाहिये उसी प्रकार गाय, भैंस और बकरीके मूत्रमें दोलायंत्रके द्वारा तीन प्रहर तक पकानेसे नीलाथोथा शुद्ध होता है ॥ १३०॥१३१ ॥

नीलेथोथेकी भस्म ।

लकुचद्रावगंधाश्मटंकणेन समन्वितम् ।
निरुध्य मूषिकामध्ये म्रियते कौक्कुटैः पुटैः ॥१३२॥

शुद्ध आमलासारगंधक और सुहागा दोनोंको समान भाग लेकर नीलेथोथेके साथ मिलाकर बडहलके फलके रसमें खरल करके मूषामें रखकर कुक्कुट पुट देवे । इस प्रकार तीन पुट देनेसे नीलेथोथेकी भस्म हो जाती है ॥ १३२ ॥

तुत्थसत्त्वपातन ।

सस्यकस्याथ चूर्णं तु पादसौभाग्यसंयुतम् ।
करंजतैलमध्यस्थं दिनमेकं निधापयेत् ॥ १३३ ॥
अंधमूषास्यमध्यस्थं ध्मापयेत्कोकिलत्रयम् ।
इंद्रगोपाकृति चैव सत्त्वं भवति शोभनम् ॥ १३४ ॥
निंबूद्रवाल्पटंकाभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च ।

ताम्ररूपं परिध्मातं सत्त्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥ १३५ ॥
शुद्धं सस्यं शिखिक्रांतं पूर्वभेषजसंयुतम् ।
नानाविधानयोगेन सत्त्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥ १३६ ॥

नीलेथोथेका चूर्ण और चौथाई भाग सुहागा दोनोंको एकत्र खरल करके एक दिनरात करंजके तेलमें भिजो देवे । इतना तेल डाल दे जिससे वह अच्छी तरह भीज जाय । पश्चात् उसका गोला बनाकर अन्धमूषामें रखकर कोयलोंकी अग्नि देवे तो इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के समान लाल रंगका सत्त्व निकलता है अथवा नीलेथोथेके चूर्णमें थोडा सुहागा मिलाकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके गोला बनाकर मूषामें बंद करके कोयलोंकी अग्निमें फूंके तो तांबेके समान लाल सत्त्व निकलता है । शुद्ध नीलेथोथेको पूर्वोक्त सत्त्वपातनकी औषधियोंके साथ मिलाकर भिन्न भिन्न सत्त्वपातनकी विधिसे अग्नि देनेसे सत्त्व निकल आता है ॥ १३३–१३६ ॥

तुत्थमुद्रिका (नीले थोथेकी अंगूठी) ।

सत्त्वमेतत्समादाय खरभूनागसत्त्वयुक् ।
तन्मुद्रिका कृतस्पर्शा शूलघ्नी तत्क्षणाद्भवेत् ॥ १३७ ॥
चराचरं विषं भूतडाकिनीदृग्गतं जयेत् ।
मुद्रिकेयं विधातव्या दृष्टप्रत्ययकारिका ॥ १३८ ॥
" रामवत्सुरसेनानी मुद्रितेऽपि तथाक्षरम् ।
हिमालयोत्तरे पार्श्वे अश्वकर्णो महाद्रुमः ।
तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव विलयं गतम् " ॥ १३९ ॥
मंत्रेणानेन मुद्रांभो निपीतं सप्तमंत्रितम् ।
सद्यःशूलहरं प्रोक्तमिति भालुकिभाषितम् ॥ १४० ॥

अनया मुद्रया तप्तं तैलमग्नौ सुनिश्चितम् ।
लेपितं हंति वेगेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ॥ १४१ ॥
सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ १४२ ॥

नीलेथोथेका सत्त्व और केंचुएका सत्त्व दोनोंको एकत्र अग्निमें गलाकर अंगूठी बनवावे । इस अंगूठीके स्पर्शमात्रसे ही तत्काल शूल नष्ट होता है । स्थावर और जंगम सर्व प्रकारका विष, भूतकी पीडा, डाकिनी शाकिनी आदिकी नजरका लगना इन सबको यह अंगूठी बहुत शीघ्र दूर करती है । यह प्रत्यक्ष अनुभव करानेवाली अंगूठी है । इसको वैद्योंको अवश्य तैयार करना चाहिये । रामनामके समान कार्त्तिकेयके नामसे अंकित की हुई यह मुद्रिका 'हिमालयोत्तरे पार्श्वे' इस मंत्रके द्वारा जलमें डालकर सात बार अभिमंत्रित करके उस जलको पान करनेसे तत्काल शूल शांत होता है । ऐसा भालुकी आचार्यने कहा है । इस अंगूठीको तिलके तेलमें डालकर अग्निपर अच्छी तरह पकावे । इस तैलको शरीरके किसी भी अंगमें लगानेसे कैसा ही शूल क्यों न हो लगानेसे तत्काल शांत हो जाता है । स्त्रीको यदि कष्टपूर्वक विलम्बसे प्रसव हो तो इसके तेलको लगानेसे शीघ्रही सुखपूर्वक प्रसव होता है और इसको नेत्रोंमें डालनेसे नेत्रोंके रोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ १३७–१४२ ॥

चपल धातुप्रकार और लक्षण ।

गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ।
हेमाभश्चैवताराभो विशेषाद्रसबंधनः ॥ १४३ ॥
शेषौ तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ।
वंगवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ १४४ ॥
चपलो लेखनः सिद्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णमधुरो मतः ॥ १४५ ॥

चपलः स्फटिकच्छायः षडस्त्री स्निग्धको गुरुः ।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबंधविधायकः ।
महारसेषु कैश्चिद्धि चपलः परिकीर्तितः ॥ १४६ ॥
जंबीरककौंटकशृंगवेरैर्विभावनाभिश्चपलस्यशुद्धिः १४७
शैलं तु चूर्णयित्वाथ धान्याम्लोपविषैर्विषैः ।
पिण्ड बद्धा तु विधिवत्पातयेच्चपलस्तथा ॥ १४८ ॥

चपला धातु गौर, श्वेत, रक्त और कृष्ण इन भेदोंसे चार प्रकारकी होती है, इनमें सुवर्णकी समान कांतिवाली (गौरवर्ण) और चांदीकी समान कांतिवाली (श्वेत वर्ण) दोनों प्रकारकी चपला धातु पारेके बांधनेमें अधिक उपयोगी हैं। लाल और काले रंगकी चपला धातु अग्निमें डालनेसे सहज ही लाखके समान पतली हो जाती है। यह दोनों प्रकारकी चपला निष्फल और निरुपयोगी है। यह धातु रंगकी समान अग्नि पर जल्दी तप जाती है। इस कारण इसको चपला कहते हैं। चपलाके गुण। चपला धातु लेखन, स्निग्ध, दे और लोहकी सिद्धि करनेवाली, पारेकी सहायक, रसमें तिक्त, उष्ण और मधुर जो फटकरीके समान स्वच्छ, छः कोनेवाली स्निग्ध और वजनमें भारी होती है ऐसे चपला धातु त्रिदोषनाशक वीर्यको बढानेवाली और पारेको बांधनेवाली जाननी। कितनेही ग्रंथकारोंने चपला धातुकी गणना महारसोंमें की है। चपला शुद्धि। चपला धातुका चूर्ण करके उसको नींबू, वन्ध्या कर्कोटकी (वांझ ककोडा) और अदरखके रसकी भावना देनेसे उसकी शुद्धि होती है। चपला धातुके चूर्णको कांजी, वत्सनाभ और उपविषों (भांग, धतूरा कनेर आदि) के काढेमें खरल करके गोला बनाकर अंध मूषामें रखकर विधिपूर्वक सत्त्व निकाले। इसीको भस्म कहते हैं। अथवा चपला धातुको उपर्युक्त औषधियोंमें घोटकर उसका गोला बनाकर

शरावसंपुटमें रखकर ऊपरसे कपरौटी करके गजपुटमें रखकर फूंकनेसे चपला धातुकी उत्तम भस्म हो जाती है ॥ १४३–१४८ ॥

रसक–खपरिया ।

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः ।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥ १४९ ॥
सत्त्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु ॥ १५० ॥
रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः ।
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरंजनः ॥ १५१ ॥
नागार्जुनेन संदिष्टौ रसश्च रसकावुभौ ।
श्रेष्ठौ सिद्धरसौ ख्यातौ देहलोहकरौ परम् ॥ १५२ ॥
रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः ॥ १५३ ॥

खपरिया दो प्रकारकी होती है । एक दर्दुर और दूसरी कारवेल्लक नामवाली । इनमें दर्दुर नामवाली खपरिया पत्रोंयुक्त और कारवेल्लक विना पत्रोंकी पिंडसी होती है । दर्दुरनामक खपरिया सत्त्व काढनेमें और कारवेल्लक संज्ञक खपरिया औषध आदिके कार्यमें ली जाती है । खपरिया सर्व प्रकारके प्रमेहोंको दूर करनेवाली, कफपित्तनाशक, नेत्रविकार और क्षयको नष्ट करती है । लौह (धातु) पारेको रंगनेवाली है । नागार्जुनने कहा है पारा और खपरिया दोनों सिद्ध रस हैं और यह दोनों शरीर और लोहकी सिद्धि करनेवाले हैं । जो मनुष्य पारे और खपरियाको अग्नि सहन करनेवाले (नहीं उडनेवाले) वना सकता है उसकी देह और लोहमयी सिद्धि दासी होजाती है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥ १४९–१५३ ॥

खर्पर शोधन ।

कटुकालाबुनिर्यास आलोड्य रसकं पचेत् ।
शुद्धं दोषविनिर्मुक्तं पीतवर्णं च जायते ॥ १५४ ॥

खर्परः परिसंततः सप्तवारं निमज्जितः ।
बीजपूररसस्यांतर्निर्मलत्वं समश्नुते ॥ १५५ ॥
नृमूत्रे वाऽश्वमूत्रे वा तक्रे वा कांजिकेथ वा ।
प्रताप्य मज्जितं सम्यक् खर्परं परिशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥
नरमूत्रे स्थितो मासं रसको रंजयेद्ध्रुवम् ।
शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्धस्वर्णसमप्रभम् ॥ १५७ ॥

रसक अथवा खपरियाको कडवी तोम्बीके रसमें पकावे जब वह अच्छी तरह सीज जाय और रस पककर सूख जाय तब वह दोष-मुक्त होकर शुद्ध होजाती है और उसका वर्ण नीला होजाता है। इसी प्रकार खपरियाको अग्निमें तपाकर सात वार बिजौरे नींबूके रसमें बुझानेसे खपरियाकी शुद्धि होती है। इसी प्रकार मनुष्यका मूत्र, घोडेका मूत्र, तक्र अथवा कांजी इन चारोंमेंसे एक किसी पदार्थमें खपरियाको अग्निमें तपाकर सात वार बुझानेसे खपरिया शुद्ध होती है। खपरियाको एक महीने पर्यन्त नरमूत्रमें भिजो रखे। पीछे निकालनेपर वह शुद्ध ताम्र, शुद्ध पारा, किम्वा शुद्ध रौप्य इनको सुवर्णके समान वर्णवाला कर सकती है ॥ १५४-१५७ ॥

रसकसत्त्वपातन ।

हरिद्रात्रिफलारालासिंधुधूमैः सटंकणैः ।
सारुष्करैश्च पादांशैः साम्लैः संमर्द्य खर्परम् ॥ १५८ ॥
लिप्तं वृंताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्य च ।
मूषामुखोपरि न्यस्य खर्परं प्रधमेत्ततः ॥ १५९ ॥
खर्परे प्रद्रुते ज्वाला भवेन्नीला सिता यदि ।
तदा संदंशतो मूषां धृत्वा कृत्वा त्वधोमुखीम् ॥
शनैरास्फालयेद्भूमौ यथा नालं न भिद्यते ॥ १६० ॥

वंगाभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत् ।
एवं त्रिचतुरैर्वारैः सत्त्वं सर्वं विनिःसरेत् ॥ १६१ ॥
साभयाजतुभूनागनिशाधूमजटंकणम् ।
मूकमूषागतं ध्मातं शुद्धं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ १६२ ॥

शुद्ध खपरियाका चूर्ण और हलदी, त्रिफला, राल, सैंधानमक घरका धुवांसा सुहागा और भिलावे यह प्रत्येक खपरियासे चौथाई भाग लेकर कांजीमें अथवा नींबूके रसमें खरल करके इस सब मिश्रणको वृंताक नामवाली मूषामें लेप करके सुखा देवे फिर उस मूषाके मुखके ऊपर मट्टीके खीपडेको ढककर कोयलोंकी अग्निमें फूंके । जब मूषामें खपरिया गलकर पतली होजाय और मूषामेंसे नीली, काली वा श्वेत रंगकी अग्निकी लपटें निकलने लगें तब संडासीसे मूषाको पकडकर अग्निमेंसे बाहर निकालकर उसका नीचेको मुख करके सहजमें भूमि पर लौट दे परन्तु मूषाकी नाल न टूट जाय इस पर विशेष ध्यान रखे । इस प्रकार करनेसे वंगके समान सत्त्व निकलता है । एक वारमें सम्पूर्ण सत्त्व नहीं निकलता, इस कारण तीन चार वार पूर्वोक्त विधिसे मूषाको अग्निमें फूंककर सत्त्व निकालना चाहिये इसको सब कार्योंमें प्रयोग करना चाहिये । अथवा हरड, लाख, केंचुए, हलदी, घरका धुआँसा और सुहागा इन सब चीजोंको खपरियासे चौथाई भाग लेकर उसमें खपरियाका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र नींबूके रसमें घोटकर सत्त्व पातन करनेवाली मूषामें रखकर फूंकनेसे शुद्ध सत्त्व निकलता है ॥ १५८–१६२ ॥

अन्य प्रकार ।

लाक्षागुडाऽऽसुरीपथ्याहरिद्रासर्जटंकणैः ।
सम्यक् संचूर्ण्य तत्पक्वं गोदुग्धेन घृतेन च ॥ १६३ ॥
वृंताकमूषिकामध्ये निरुध्य गुटिकीकृतम् ।

ध्मात्वा ध्मात्वा समाकृष्य ढालयित्वा शिलातले ।
सत्त्वं वंगाकृति ग्राह्यं रसकस्य मनोहरम् ॥ १६४ ॥
यद्वा जलयुतां स्थालीं निखनेत्कोष्ठिकोदरे ।
सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधोमुखीं क्षिपेत् ॥ १६५
मूषोपरि शिखित्रांश्च प्रक्षिप्य प्रधमेद्दृढम् ।
पतितं स्थालिकानीरे सत्त्वमादाय योजयेत् ॥ १६६॥
तत्सत्त्वं तालकोपेतं प्रक्षिप्य खलु खर्परे ।
मर्दयेल्लोहदण्डेन भस्मीभवति निश्चितम् ॥ १६७ ॥

लाख, गुड, फटकरी, हरड, हलदी, राल और सुहागा सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करले, उसमें चौगुना खपरियाका चूर्ण डालकर गायके दूधमें पकावे फिर गायके घृतमें पकावे । पश्चात् उसका गोला बनाकर उसको वृंताक नामवाली मूषामें रखकर मूषाके मुखको बंद करके पूर्वोक्त विधिसे कोयलोंकी अग्निमें फूंके । जब उसमेंसे नीली, काली वा लाल रंगकी ज्वाला निकलने लगें तब उसको संडासीसे पकडकर स्वच्छ और सपाट पत्थरपर लौट देवे । इस प्रकार तीन चार वार फूंकनेसे वंगके समान श्वेत सत्त्व निकल आता है । अथवा जलसे भरी हुई एक हांडी (मट्टी या अन्य किसी धातुकी बनी हुई) लेकर उसको जमीनमें गाड देवे और उसके मुखपर एक छिद्रवाला मट्टीका सकोरा ढक देवे । पश्चात् पूर्वोक्त गोलेको मूषामें रखकर और उसका मुख नीचेको करके उसके ऊपर कोयले डालकर धोंकनीसे अच्छे प्रकार तीव्र अग्नि देवे इस प्रकार करनेसे मूषामेंसे सत्त्व निकलकर हांडीके जलमें गिर जायगा उसको ग्रहण करके औषधादि कार्यमें प्रयोग करना चाहिये । उस सत्त्वमें समान भाग शुद्ध हरताल मिलाकर दोनोंको एकत्र मर्दन करके अग्निपर एक खीपडेमें या कढाईमें डालकर लोहेके डंडेसे

घोटता जाय इस प्रकार करनेसे खर्पर सत्त्वकी अवश्य भस्म होजाती है ॥ १६३–१६७ ॥

खर्पर रसायन ।

तद् भस्म मृतकांतेन समेन सह योजयेत् ॥ १६८ ॥
अष्ट गुंजामितं चूर्णं त्रिफलाक्काथसंयुतम् ।
कांतपात्रस्थितं रात्रौ तिलजं प्रतिवापकम् ॥ १६९ ॥
निषेवितं निहंत्याशु मधुमेहमपि ध्रुवम् ।
पित्तं क्षयं च पाण्डुं च श्वयथुं गुल्ममेव च ॥ १७० ॥
रक्तगुल्मं च नारीणां प्रदरं सोमरोगकम् ।
योनिरोगानशेषांश्च विषमाख्यान्ज्वरानपि ॥ १७१ ॥
रजःशूलं च नारीणां कासं श्वासं च हिध्मिकाम् १७२

खर्पर सत्त्वकी भस्म और उसके बराबर कान्तलोहभस्म दोनोंको एकमें खरल करके इसमेंसे ८ गुंजा परिमाण लेकर कांतलोहके पात्रमें त्रिफलेके ४ तोले क्काथमें रात्रिमें भिजो देवे । प्रातःकाल इसमें थोडा तिलोंका क्षार (खार) डालकर पान करे इससे मधुमेह नष्ट होता है । उसी प्रकार पित्तविकार, क्षय, पांडु, सूजन, गुल्म, स्त्रियोंका रक्त-गुल्म, प्रदर, सोमरोग, सर्व प्रकारके योनिरोग, विषमज्वर आर्तव-शूल, खाँसी, श्वास और हिचकी आदि रोग दूर होते हैं १६८–१७२॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालविरचितायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥

अष्ट उपरस ।

गंधाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलांजनम् ।
कंकुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि ॥ १ ॥

गंधक, गेरू, कसीस, फटकरी, हरताल, मैनशिल, अंजन और कंकुष्ठ ये आठ उपरस हैं । इनका रसकर्ममें उपयोग होता है ॥ १ ॥

गंधकोत्पत्ति ।

गंधकस्य तु माहात्म्यं तद्रहस्यं वद मे विभो ।
श्वेतद्वीपे पुरा देवि सर्वरत्नविभूषिते ।
सर्वकाममये रम्ये तीरे क्षीरपयोनिधेः ॥ २ ॥
विद्याधरीभिर्मुख्याभिरंगनाभिश्च योगिनाम् ।
सिद्धांगनाभिः श्रेष्ठाभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ ३ ॥
देवांगनाभी रम्याभिः क्रीडंतीभिर्मनोहरम् ।
गीतैर्नृत्यैर्विचित्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैस्तथा ॥ ४ ॥
एवं संक्रीडमानायाः प्राभवत्प्रसृतं रजः ।
तद्रजोऽतीव सुश्रोणि सुगंधि सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
रजसश्चातिबाहुल्याद्वासस्ते रक्ततां गतम् ।
तत्र त्यक्त्वा तु तद्वस्त्रं सुस्नाता क्षीरसागरे ॥ ६ ॥
वृता देवांगनाभिस्त्वं कैलासं पुनरागता ।
ऊर्मिभिस्तद्रजोवस्त्रं नीतं मध्ये पयोनिधेः ॥ ७ ॥
एवं ते शोणितं भद्रे प्रविष्टं क्षीरसागरे ।
क्षीराब्धिमथने चैतदमृतेन सहोत्थितम् ॥ ८ ॥
निजगंधेन तान्सर्वान्हर्षयन्दैत्यदानवान् ।
ततो देवगणैरुक्तं गंधकाख्यो भवत्वयम् ॥ ९ ॥
ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवंत्विति ।
रसस्य बंधनार्थाय जारणाय भवत्वयम् ॥ १० ॥

इति देवगणैः प्रीतैः पुरा प्रोक्तं सुरेश्वरि ।
तेनायं गंधको नाम विख्यातः क्षितिमंडले ॥ ११ ॥

इन आठों रसोंमेंसे पहले गन्धकका वर्णन किया जाता है । हे भगवन् ! गन्धकका जो गुप्त माहात्म्य है उसको मुझसे कहिये । इस प्रकार जब पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा तब शिव कहने लगे कि हे देवि ! पूर्वकालमें सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित और सकल मनोरथोंके पूर्ण करनेवाले श्वेतद्वीपमें क्षीरसागरके रमणीक तटपर श्रेष्ठ विद्याधरियों, योगिनियों, सिद्धांगनाओं, अप्सराओं और देवताओंकी स्त्रियोंके साथ नाना प्रकारके अत्यन्त मनोरम गीत नृत्य और भांति भांतिके बाजों-के साथ क्रीडा करते २ तुम्हारे रजःस्राव हो गया । हे सुश्रोणि ! वह रज अत्यन्त सुगन्धित और मनोहर था उस रजके अधिक निकलनेसे तुम्हारे वस्त्र उससे लाल हो गये । तब तुमने उन वस्त्रोंको वहीं छोड-कर क्षीरसागरमें स्नान किया और देवांगनाओंके साथ तुम फिर कैलासपर्वतको चली आई । इसके पश्चात् समुद्रकी लहरोंके द्वारा वस्त्र बहकर क्षीरसमुद्रमें पहुँच गये । हे भद्रे ! इस प्रकार तुम्हारा आर्त्तव क्षीरसागरमें प्रविष्ट हो गया । फिर क्षीरसागरको मथनेके समय वह रज अमृतके साथ प्रकट हुआ और उसने अपनी गंधसे उन सम्पूर्ण दैत्य और दानवोंको प्रसन्न कर दिया तब देवताओंने कहा कि यह गन्धक नामसे जगत्में प्रसिद्ध होगा यह पारेको बद्ध और जारण करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा इस कारण जो गुण पारेमें हैं वे सब गुण इसमें होंगे इस प्रकार आशीर्वाद दिया । हे सुरेश्वरि ! इस प्रकार पूर्व कालमें देवताओंके कहे अनुसार पृथ्वीतलमें यह गंधक नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ २-११ ॥

गंधकभेद ।

स चापि त्रिविधो देवि शुकचंचुनिभो वरः ।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः स्मृतः ॥ १२ ॥
चतुर्धा गंधको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु ।

श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे ॥ १३ ॥
तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत्पीतवर्णवान् ।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने ॥ १४ ॥
रक्तश्च शुकतुंडाख्यो धातुवादविधौ वरः ।
दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ॥ १५ ॥

हे देवि ! वह गन्धक तोतेकी चोंचके समान लालवर्णवाला उत्तम, पीले वर्णका मध्यम और श्वेतवर्णका अधम इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है । एवं किसीके मतसे गंधक श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण इन वर्णोंके भेदसे चार प्रकारका है । इनमें श्वेत गन्धक खडियाके समान होता है । इसलिये इसको खटिका कहते हैं यह लेप करने और धातुओंके मारनेमें उपयोगी है । जो पीले वर्णका होता है उसे आमलासार कहते हैं इसीका एक भेद (तोतेके समान वर्णवाला होता है) उसको शुकपिच्छ कहते हैं, यह रस और रसायनके काममें श्रेष्ठ होता है । तोतेकी चोंचकी समान लाल गंधक (शुकतुंड) धातुवाद (सोना, चांदी आदि धातुयें बनाने) के कार्यमें श्रेष्ठ है । काले रंगका गंधक जरा मृत्युको दूर करता है किन्तु यह दुर्लभ है ॥ १२–१५ ॥

गंधकगुण ।

गंधाश्मातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णो मतः ।
कण्डूकुष्ठविसर्पदद्रुदलनो दीप्तानलः पाचनः ॥
आमोन्मोचनशोषणो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदः ।
प्लीहाध्मानविनाशनः क्रिमिहरः सत्त्वात्मकः सूतजित् १६

गंधक उत्तम रसायन, मधुर, पाकमें कटु और गरम है । तथा खुजली, कुष्ठ, विसर्प और दादको नष्ट करनेवाला, अग्निप्रदीपक, पाचक, आमको दूर करनेवाला, शोषक, विषनाशक पारेको मिलकर पारेके वीर्यको बढानेवाला, सब प्लीहा (तिल्ली), आध्मान (अफरा) और कृमिरोगोंको नष्ट करनेवाला, सत्त्वरूप और पारेको जीतनेवाला है १६॥

गन्धकका माहात्म्य ।

बलिना सेवितः पूर्वं प्रभूतबलहेतवे ।
वासुकीं कर्षतस्तस्य तन्मुखज्वालया युता ॥ १७ ॥
वसा गंधकगंधाढ्या सर्वतो निःसृता तनोः ।
गंधकत्वं च संप्राप्ता गंधोऽभूत्सविषस्ततः ॥१८॥
तस्माद्बलिवसेत्युक्तो गंधकोऽतिमनोहरः ॥ १९ ॥

प्राचीन कालमें राजा बलिने अत्यन्त बलवान् होनेके लिये इसका सेवन किया था, फिर समुद्र मथनेके समय वासुकी (सर्पराज) को खैंचते हुए उसके मुखकी ज्वालासे मिली हुई राजा बलिके शरीरसे जो अत्यन्त गंधयुक्त वसा (चर्वी) निकली उस चर्वीके गंधकके साथ मिलनेसे गंधयुक्त होगया और वह वासुकीके सम्पर्कसे विषयुक्त होगया । इसीलिये उस अत्यन्त मनोहर गन्धकको बलिवसा या बलि कहते हैं । यह एक कहानी मात्र है । इसका तात्पर्य यह हैं कि गंधकमें विष होता है इसलिये उसको शुद्ध करके काममें लाना चाहिये ॥ १७–१९ ॥

गंधकशुद्धि ।

पयःस्विन्नो घटीमात्रं वारिधौतो हि गंधकः ।
गव्याज्यविद्रुतो वस्त्राद्गलितः शुद्धिमृच्छति ॥ २० ॥
एवं संशोधितः सोयं पाषाणानंबरांस्त्यजेत् ।
घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेति च ॥ २१ ॥
इति शुद्धो हि गंधाश्मा नापथ्यैर्विकृतिं व्रजेत् ।
अपथ्यादन्यथा हन्यात्पीतं हालाहलं यथा ॥ २२ ॥
गंधको द्रावितो भृंगरसे क्षिप्तो विशुध्यति ।
तद्रसैः सप्तधा स्विन्नो गंधकः परिशुध्यति ॥ २३ ॥

स्थाल्यां दुग्धं विनिक्षिप्य मुखे वस्त्रं निबध्य च ।
गंधकं तत्र निक्षिप्य चूर्णितं सिकताकृति ॥ २४ ॥
छादयेत्पृथुदीर्घेण खर्परेणैव गंधकम् ।
ज्वालयेत्खर्परस्योर्ध्वं वनच्छाणैस्तथोपलैः ।
दुग्धे निपातितो गंधो गलितः परिशुद्ध्यति ॥ २५ ॥
" शतवारं कृतश्चैवं निर्गंधो जायते बली ॥ "
इत्थं विशुद्धस्त्रिफलाज्यभृंगमध्वन्वितः शाणमितो
हि लीढः ॥ गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं करोति
रोगोज्झितदीर्घमायुः ॥ २६ ॥

गंधकको एक घडीपर्यन्त दूधमें पकाकर पानीसे धोडाले । पश्चात् गायके घीको कढाईमें चढाकर उसमें गंधकको डालकर अग्निपर पकावे । जब गंधक गलजाय तब उसको वस्त्रमें छानले तो गंधक शुद्ध होता है । इस प्रकार शुद्ध किये हुए गंधकमेंसे पत्थरका भाग और दूसरे मल निकल जाते हैं । गंधकका विष घृतमें अपने आप विन्दुरूपसे इकट्ठा हो जाता है । इस प्रकार गंधक शुद्ध होजाता है । (कोई इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि प्रथम गंधकको घृतके साथ लोहेके पात्रमें अग्निपर गलाकर फिर एक दूधसे भरे हुए पात्रके ऊपर बारीक वस्त्र ढककर उसमें उक्त गले हुए गंधकको छोड दे एक घडीतक उसको दूधमें पडा रहने दे फिर दूधमेंसे निकालकर जलसे धोडाले इस प्रकार गंधक शुद्ध होता है) शुद्ध किये हुए गंधकको सेवन करनेवाला मनुष्य उसपर कदाचित् पथ्यका सेवन न करे तो भी कोई वैसी हानी नहीं होती और विना शुद्ध किये हुए अर्थात् अशुद्ध गंधकको सेवन करनेवाला मनुष्य जराभी अपथ्यका सेवन करे तो वह शीघ्र ही हालाहल विषके समान प्राणोंका नाशक होता है । इस-लिये अशुद्ध गंधकको सेवन कदापि नहीं करना चाहिये । गंधकको

कढाई या तवेमें अग्निपर गलाकर भांगरेके रसमें छोड देवे । इस प्रकार सात वार करनेसे गंधक शुद्ध होता है । किन्तु प्रत्येक वारमें जलसे धोडालना चाहिये । अथवा गंधकको भांगरेके रसमें सात वार स्वेदन करनेसे गंधक शुद्ध होता है । अथवा एक हांडी या दूसरे किसी बरतनमें दूध भरकर उसके मुखके ऊपर एक वारीक वस्त्र बांध देवे उसपर गंधकका वारीक चूर्ण करके बिछा देवे और उसके ऊपर एक खीपडा रख देवे । उसपर आरने उपलोंकी अथवा साधारण उपलोंकी अग्नि रखे इस विधिसे गंधक तहकर नीचे दूधमें गिरता है और शुद्ध होता है । इस प्रकार सौ वार करनेसे गंधक सर्वथा गंधरहित होजाता है । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गंधक अपनी प्रकृतिके अनुसार १ मासेसे ३ मासेतक लेकर त्रिफलेके चूर्ण, घी, भांगरेके रस और शहदके साथ मिलाकर सेवन करनेसे गिद्धके समान दूर दृष्टि होती है और नेत्रोंकी कांति वढती है । और सब रोग दूर होकर आयुकी वृद्धि होती है ॥ २०–२६ ॥

गंधकद्रुति ।

कलांशव्योषसंयुक्तं गंधकं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टय तत् ॥ २७ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वाऽथ यामं तैले निमज्जयेत् ।
धृत्वा संदंशतो वर्तिमध्यं प्रज्वालयेच्च तत् ॥ २८ ॥
द्रुतो निपतितो गंधो बिंदुतः काचभाजने ।
तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिबिंदुकाम् ॥ २९ ॥
वल्लेन प्रमितं स्वच्छं सूतेंद्रं च विमर्दयेत् ।
अंगुल्याऽथ सपत्रां तां द्रुतिं सूतं च भक्षयेत् ॥ ३० ॥
करोति दीपनं तीव्रं क्षयं पाण्डुं च नाशयेत् ।
कासं श्वासं च शूलार्तिं ग्रहणीमतिदुर्धराम् ॥
आमं विनाशयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ॥ ३१ ॥

शुद्ध गंधकमें सोलहवां भाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर दोनोंको एकत्र खूब बारीक खरल करके उसको एक हाथ चौरस कपडेपर समान भावसे बिछाकर सहजमें उसको मोडकर उसकी दृढ बत्ती बना लेवे फिर उस बत्तीके ऊपर सूतका डोरा मजबूतीसे लपेटकर उसको तिलके तेलमें एक प्रहरतक भिजो रखे फिर उसको निकालकर बीचमेंसे चिमटेसे पकडकर जलावे और उसके नीचे एक कांचका बर्त्तन रख दे कि जिससे तेलकी बूंदे टपककर उसमें गिर जांय । जब सब तैल निकल आवे और सम्पूर्ण बत्ती जलजाय तब उस तेलको एक उत्तम कांचकी सीसीमें भरकर रख देवे । इसकी तीन बूंदें एक नागरवेलके पानमें डालकर और उसमें २ रत्ती शुद्ध पारा अंगुलीसे अच्छी प्रकार मिलाकर उस पानको भक्षण करले । इससे अत्यन्त भूख लगती है । एवं क्षय, पाण्डुरोग, खांसी, श्वास, शूल और असाध्य संग्रहणी रोग दूर होता है । आमविकार नष्ट होकर शरीरमें लघुता उत्पन्न होती है ॥ २७-३१ ॥

गंधकप्रयोग ॥

घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगंधकम् ।
घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत् ॥ ३२ ॥
हंति क्षयमुखान् रोगान्कुष्ठरोगं विशेषतः ।
गंधकस्तुल्यमरिचः षड्गुणात्रिफलान्वितः ॥ ३३ ॥
घृष्टः शम्याकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा ।
तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ ॥ ३४ ॥
दृष्टप्रत्यययोगोयं सर्वत्राप्रतिवीर्यवान् ।
श्रीमता सोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥
क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहिद्विदलं तथा ।
शुद्धगंधकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि ॥ ३६ ॥

गायके घृतको कढाईमें डालकर उसमें शुद्ध गंधक डालकर नीचे अग्नि जलावे और एक घी चुपडी करछीसे उसे चलाता जाय । जब वह गलकर पतला हो जाय तब उसको नीचे उतारकर पश्चात् उसका बारीक चूर्ण करके उसमेंसे १ निष्कसे लेकर २ निष्कतककी मात्रासे सेवन करे तो इससे क्षय और विशेषकर कुष्ठ रोग दूर होता है । शुद्ध गंधकका चूर्ण और उसकी बराबर काली मिर्चोंका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण गंधकसे ६ भाग सबको एकत्र खरल करके अमलतासकी जडके क्वाथके साथ उचित मात्रासे सेवन करे तो इससे सब प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं । इस प्रयोगको सेवन करनेवाले मनुष्यको प्रतिदिन अमलतासकी जडको पानीके साथ पीसकर उसका शरीर पर लेप करना चाहिये। कुष्ठरोगपर यह एक अनुभवसिद्ध उत्तम प्रयोग है। इसके द्वारा सब प्रकारके कुष्ठरोग दूर होते हैं । श्रीसोमदेवने इसको कहा है । गंधकको सेवन करनेवाला मनुष्य मनको वशमें रखकर क्षार (खारी पदार्थ), अम्ल (खट्टे पदार्थ), तेल, मदिरा, दाहकारक व तीक्ष्ण पदार्थ और दो दलवाले अन्न इन सबको त्याग दे ॥ ३२–३६ ॥

गन्धकका कण्डूनाशक प्रयोग ।

द्विनिष्कप्रमितं गंधं पिष्ट्वा तैलेन संयुतम् ॥ ३७ ॥
अथापामार्गतोयेन सतैलमरिचेन च ।
विलिप्य सकलं देहं तिष्ठेद् घर्मे ततः परम् ॥ ३८ ॥
तक्रभक्तं च भुंजीत तृतीये प्रहरे खलु ।
भजेद्रात्रौ तथा वह्निं समुत्थाय तथा प्रगे ॥ ३९ ॥
माहिषीछगणं लिप्त्वा स्नायाच्छीतेन वारिणा ।
ततोऽभ्यज्य घृतैर्देहं स्नायादिष्टोष्णवारिणा ॥ ४० ॥
अमुना क्रमयोगेन विनश्यत्यतिवेगतः ।

दुर्जया बहुकालीना पामा कण्डूः सुनिश्चितम् ॥४१॥
गंधकस्य प्रयोगाणां शतं तन्न प्रकीर्तितम् ।
ग्रंथविस्तारभीतेन सोमदेवेन भूभुजा ॥ ४२ ॥

शुद्ध गंधक ६ मासे और काली मिरचोंका चूर्ण ६ मासे दोनोंको एकत्र तिलोंके तेल और अपामार्ग (चिरचिटे) के काढेमें खरल करके उसका सम्पूर्ण शरीरमें लेप करके धूपमें जबतक सहन हो सके तब-तक बैठे । फिर तीसरे प्रहरमें मठेके साथ भातका भोजन करे । रात्रि-में अग्निसे तापना चाहिये दूसरे दिन प्रातःकालमें उठकर भैंसके गोब-रको सम्पूर्ण शरीरमें मलकर शीतल जलसे स्नान करना चाहिये । पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें घृत मलकर मंदोष्ण जलसे स्नान करे । गन्धकके इस प्रयोगके द्वारा सम्पूर्ण शरीरमें फैली हुई अत्यन्त दुस्तर एवं बहुत दिनोंकी पुरानी सब प्रकारकी खुजली शीघ्रही दूर हो जाती है । गंधकके सैकडों आशुफलप्रद प्रयोग हैं वे ग्रंथके विस्तार भयसे सोमदेवने अपने ग्रंथमें नहीं कहे हैं ॥ ३७-४२ ॥

गंधकतैल ।

अथवाऽर्कस्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ।
गंधकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्धनम् ॥ ४३ ॥
तद्वर्तिं ज्वलितां दंशे धृतां कुर्यादधोमुखीम् ।
तैलं पतेदधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥४४॥
शुद्धगंधो हरेद्रोगान्कुष्ठमृत्युजरादिकान् ।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ ४५ ॥

एक गजभर उत्तम स्वच्छ कपडा लेकर उसपर आकका दूध और थूहरका दूध प्रत्येकको सात सात वार लेप करके सुखालेवे एक वार लेप करके सुखा देवे फिर दूसरी वार लेप करके सुखा देवे । इस प्रकार प्रत्येक दूधका सात सात वार लेप करके सुखा लेवे । पश्चात् शुद्ध गंधकको घीमें घोटकर उस वस्त्रपर गाढा गाढा लेप करदेवे ।

फिर उसकी बत्ती बनाकर उसको चिमटेसे पकडकर और उसका नीचेको मुख करके एक सिरेसे जलावे और उसके नीचे एक कांचका वर्तन रख देवे । उस बर्तनमें जो तेल गिरे उसको लेकर भिन्न भिन्न रोगोंमें प्रयोग करे शुद्ध गंधक कुष्टादि भयंकर रोगोंको दूर करता है रसायनविधिसे मृत्यु और जराको दूर करता है । अ- ग्निको अत्यन्त प्रज्वलित करता है; अत्यन्त गरम है और वीर्यकी पुष्टि करता है ॥ ४३–४५ ॥

गैरिक ।

पाषाणगैरिकं चैकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम् ।
पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम् ॥ ४६ ॥
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ।
स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत् ॥ ४७॥
हिध्मावमिविषघ्नं च रक्तघ्नं स्वर्णगैरिकम् ।
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणैः ॥ ४८ ॥
गैरिकं तु गवां दुग्धैर्भावितं शुद्धिमृच्छति ।
गैरिकं सत्त्वरूपं हि नान्दिना परिकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
कैरंघ्युक्तं पतेत्सत्त्वं क्षाराम्लस्विन्नगैरिकात् ।
उपतिष्ठति सूतेन्द्रमेकत्वं गुणवत्तरम् ॥ ५० ॥

गेरु दो प्रकारका होता है । एक पाषाणगैरिक और दूसरा स्वर्ण- गैरिक । पाषाण गेरु कठिन और ताम्र वर्णका होता है । स्वर्ण गेरु अत्यन्त लाल स्निग्ध और मसृण (कोमल इकसार) होता है । यह स्वादमें मधुर, स्निग्ध वीर्य, शीतल, नेत्रोंको हितकर कसैला, रक्तपित्तना- शक एवं हिचकी, वमन और विषकी बाधाको दूर करता है तथा सर्व प्रकारके रुधिरके स्रावको रोकता है । पाषाणगेरुके भी गुण इसीके समान हैं, पर पाषाणगेरुमें इससे गुण कुछ न्यून हैं । उक्त दोनों प्रका-

रके गेरुओंको गायके दूधमें भावना देनेसे वे शुद्ध होजाते हैं । नन्दी-नामक रससिद्धने कहा है कि गैरिक धातु सत्त्वमय है इसलिये उसके सत्त्व निकालनेकी आवश्यकता नहीं । परन्तु कई ग्रंथकारोंका मत है कि क्षार और कांजीमें पकानेसे गेरुका सत्त्व निकलता है । वह सत्त्व पारेके साथ मिलनेवाला और गेरुकी अपेक्षा अधिक गुणोंवाला है ॥ ४६–५० ॥

कासीस रसायन ।

कासीसं वालुकाद्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् ।
क्षाराम्लागरुधूमाभं सोष्णवीर्यं विषापहम् ॥ ५१ ॥
वालुकापुष्पकासीसं श्वित्रघ्नं केशरञ्जनम् ॥ ५२ ॥
पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तं सोष्णं कषायाम्ल-
मतीव नेत्र्यम् । विषानिलश्लेष्मगदव्रणघ्नं
श्वित्रक्षयघ्नं कचरंजनं च ॥ ५३ ॥
सकृद्भृङ्गांबुना क्लिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ।
तुवरीसत्त्ववत्सत्त्वमेतस्यापि समाहरेत् ॥
कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियः ॥ ५४ ॥
वलिना हतकासीसं कांतं कासीसमारितम् ।
उभयं समभागं हि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ॥ ५५ ॥
विषमांशघृतक्षौद्रप्लुतं शाणमितं प्रगे ।
सेवितं हंति वेगेन श्वित्रं पाण्डुं क्षयामयम् ॥ ५६ ॥
गुल्मप्लीहगदं शूलं मूलरोगं विशेषतः ।
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ॥ ५७ ॥
आमसंशोषणं श्रेष्ठं मंदाग्निपरिदीपनम् ।
पलितं वलिभिः सार्धं विनाशयति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

कासीस दो प्रकारका होता है। एक वालुकासीस और दूसरा पुष्प-कासीस। वालुकासीस बालू (रेत) के समान धूलसा, कॉजी अगर धुयेंके समान रंगवाला, उष्ण वीर्य और विषनाशक है। पुष्पकासीस किंचित् पीले रंगका होता है। दोनों प्रकारके कासीस श्वेत कुष्ठको नष्ट करनेवाले और वालोंको काला करनेवाले हैं। दोनों कासीसोंमें पुष्पकासीस अधिक गुणोंवाला है। यह उष्ण वीर्य, कषैला, अम्लरसयुक्त, नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी तथा विष वायु और कफके विकार, व्रण, श्वित्र कुष्ठ और क्षय रोग-को नष्ट करता है। और बालोंको काला करनेवाला है। कासीसको भांगरेके स्वरसमें एक वार भिजोकर सुखा लेनेसे वह शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार जंगली पशुओंके पित्त और स्त्रियोंके रजमें कासीसको भिजोनेसे शुद्ध होता है। पहले फटकरीके सत्त्वको निकालनेकी जो विधि कही है उसी विधिसे कसीसका भी सत्त्व निकालना चाहिये। गंधकके द्वारा की हुई कासीसकी भस्म और कसीसके द्वारा मारण किया हुआ कान्त लोह (भस्म) दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके इसमेंसे दो रत्ती परिमाण लेकर चार मासे त्रिफला और वायविडंगके चूर्णमें मिलाकर फिर उसमें एक तोला घी और डेढ तोला शहद मिलाकर इसमेंसे ३ मासेकी मात्रासे प्रातःकाल सेवन करनेसे श्वित्रकुष्ठ, पांडुरोग, क्षय, गुल्म, पथरी, शूल और बवासीर निर्मूल होती है। यह योग आमदोषको शोषण करनेवाला और मन्दा-ग्निको दूर करनेवाला है। इसको रसायन विधिसे पथ्यपूर्वक एक वर्ष-तक सेवन करनेसे वली और पलितरोग (शरीरमें विना अवस्थाके ही बालोंका पकना और वालोंका सुफेद होना) दूर होकर नवयौवन प्राप्त होता है ॥ ९१–९८ ॥

फटकरी ।

सौराष्ट्राश्मनि संभूता मृत्स्ना सा तुवरी मता ।
वस्त्रमारंजयेद्यासौ मंजिष्ठारागबंधिनी ॥ ९९ ॥

तदेव किंचित्पीत तु पुष्पकासीसमुच्यते (आयुर्वेदप्रकाशे)

फटकी फुल्लिका चोति द्वितीया परिकीर्तिता ।
ईषत्पीता गुरुः स्निग्धा पीतिकाविषनाशिनी ॥ ६० ॥
व्रणकुष्ठहरा सर्वकुष्ठघ्नी च विशेषतः ॥ ६१ ॥
निर्भारा शुभ्रवर्णा च स्निग्धा साम्लाऽपरा मता ।
सा फुल्लतुवरी प्रोक्ता लेपात्ताम्रं चरेदियम् ॥ ६२ ॥
कांक्षी कषाया कटुकाम्लकंठ्या केश्या
व्रणघ्नी विषनाशिनी च । श्वित्रापहा नेत्रहिता
त्रिदोषशांतिप्रदा पारदजारणी च ॥ ६३ ॥
तुवरी कांजिके क्षिप्ता त्रिदिनाच्छुद्धिमृच्छति ।
क्षाराम्लैर्मर्दिता ध्माता सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ ६४ ॥
गोपित्तेन शतं वारान् सौराष्ट्रीं भावयेत्ततः ।
धामित्वा पातयेत्सत्त्वं क्रामणं चातिगुह्यकम् ॥ ६५ ॥

फटकरी सौराष्ट्रदेशमें उत्पन्न होनेवाली एक खनिज पदार्थ है । यह वस्त्रको रंगनेवाली और मँजीठके रंगको पक्का करती है । इसका एक दूसरा भेद फुल्लिका अर्थात् फूल फटकरी है । फटकरी किंचित् पीले रंगकी, तोलमें भारी, स्निग्ध, विष, व्रण और कुष्ठको नष्ट करती है । इसको पीतिका भी कहते हैं । फुल्लिका नामवाली फटकरी तोलमें हलकी, शुभ्रवर्णवाली, स्निग्ध, स्वादमें खट्टी और इसका लेप करनेसे तांबेकी भस्म सहजमें हो जाती है । फटकरी कषैली, किंचित् मधुर, खट्टी, कंठको हितकारी, केशोंको हितकारी, व्रण, विष और श्वित्र कुष्ठको नष्ट करनेवाली, नेत्रोंको हितकर, त्रिदोषोंको शमन करनेवाली और पारदको जारण करनेमें अत्यन्त उपयोगी है । फटकरीको तीन दिनतक कांजीमें भिजोनेसे वह शुद्ध होती है । इसको क्षार और अम्ल पदार्थोंके साथ खरल करके सत्त्वपातनकी विधिसे सत्त्व

निकालना चाहिये । अथवा इसको गायके पित्तेकी १०० भावना देकर कोयलोंकी तीव्र अग्निमें फूंककर सत्त्व निकाले । यह सत्त्व संक्रामक गुणोंवाला है इसलिये यह अत्यन्त गोप्य है ॥ ५९-६५ ॥

हरताल ।

हरतालं द्विधा प्रोक्तं पत्राद्यं पिण्डसंज्ञकम् ।
स्वर्णपत्रं गुरु स्निग्धं तनुपत्रं च भासुरम् ॥ ६६ ॥
तत्पत्रतालकं प्रोक्तं बहुपत्रं रसायनम् ।
निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पपत्रं तथा गुरु ॥
स्त्रीपुष्पहरणं तत्तु गुणाल्पं पिण्डतालकम् ॥ ६७ ॥
श्वेतरक्तविषवातभूतनुत्केवलं च खलु पुष्पहृत्स्त्रियः ।
स्निग्धमुष्णकटुकं च दीपनं कुष्ठहारि हरतालमुच्यते ६८॥

हरताल दो प्रकारकी होती है । एक स्वर्णपत्री (तपकी) और दूसरी पिण्डहरताल (गुवरिया) स्वर्णपत्री (तगकी) हरताल सुवर्णकी समान । पीली कान्तिवाली, वजनमें भारी, स्निग्ध पतले पत्रोंवाली और चमकदार होती है । तथा उसमेंसे बहुतसे पत्र निकलते हैं और यह रसायन गुणोंवाली है । पिण्डहरताल पत्ररहित पिंडके समान अथवा अल्पपत्रोंवाली और वजनमें अधिक भारी होती है । यह स्वर्णपत्री हरतालकी अपेक्षा गुणोंमें अल्प है । इसका विशेष गुण यह है कि यह स्त्रियोंके आर्तवको नष्ट करती है । हरतालके गुण । हरताल कफ, रुधिरविकार, विष, वायुके विकार, भूतबाधा और केवल इकली हरताल स्त्रियोंके आर्तवको नष्ट करनेवाली, स्निग्ध, उष्ण, कटु, अग्निप्रदीपक और कुष्ठको नष्ट करती है ॥ ६६-६८ ॥

हरतालशुद्धि ।

स्विन्नं कूष्मांडतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा ।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायंत्रेण शुद्ध्यति ॥ ६९ ॥

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ७० ॥
तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टंकणम् ।
जंबीरोत्थद्रवैः क्षाल्यं कांजिकैः क्षालयेत्ततः ॥ ७१ ॥
वस्त्रे चतुर्गुणे बद्ध्वा दोलायंत्रे दिनं पचेत् ॥ ७२ ॥
सचूर्णेनारनालेन दिनं कूष्मांडजे रसे ।
स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ७३ ॥

उत्तम तपकी हरतालको लेकर उसके टुकडे करके पेठेके रसमें अथवा तिलोंके खारयुक्त जलमें अथवा चूनेके पानीमें दोलायंत्रके द्वारा एक दिनतक पकावे तो हरताल शुद्ध होती है। अशुद्ध हरतालके दोष—अशुद्ध हरताल आयुको नष्ट करती है एवं कफ, वात और प्रमेह रोगको उत्पन्न करती है। तथा शरीरमें दाह फोडे और शिरा-स्नायु आदिका संकोच होना आदि विकारोंको उत्पन्न करती है इस कारण इसका प्रथम उत्तमविधिसे शोधन करके पश्चात् इसका उपयोग करना चाहिये ॥ ६९-७३ ॥

हरतालभस्मविधि ।

मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलजे ।
त्रिवारं तालकं भाव्यं पिष्ट्वा मूत्रेऽथ माहिषे ॥ ७४ ॥
उपलैर्दशभिर्देयं पुटं रुद्ध्वाथ पेषयेत् ।
एवं द्वादशधा पाच्यं शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ७५ ॥

प्रथम ढाककी जडका शहदके समान गाढा गाढा काढा बनाकर उसमें शुद्ध हरतालको तीन वार भावना देकर पश्चात भैंसके मूत्रमें घोटकर गोला बनालेवे। उसको सम्पुटमें रखकर उसपर कपरौटी करके दश उपलोंकी पुट देवे। इस प्रकार १२ पुट देनेसे

हरतालकी उत्तम भस्म होती है। इसको सर्व योगोंमें योजना करनी चाहिये ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

हरितालसत्त्वपातन ।

कुलित्थक्काथसौभाग्यमाहिष्याज्यमधुप्लुतम् ।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा विदध्याच्च मल्लेन च्छिद्रयोगिना ७६॥
सम्यङ्निरुध्य शिखिनं ज्वालयेत्क्रमवर्धितम् ।
एकप्रहरमात्रं हि रंध्रमाच्छाद्य गोमयैः ॥ ७७ ॥
यामांते छिद्रमुद्घाट्य दृष्टे धूमे च पाण्डुरे ।
शीतां स्थालीं समुत्तार्य सत्त्वमुत्कृष्य चाहरेत् ॥७८॥
सर्वपाषाणसत्त्वानां प्रकाराः संति कोटिशः ।
ग्रंथविस्तारभीत्या ते लिखिता न मया खलु ॥७९॥
पलालकं स्वेदुग्धैर्दिनमेकं विमर्दयेत् ।
क्षिप्त्वा षोडशिकातैले मिश्रयित्वा ततः पचेत् ॥८०॥
अनावृतप्रदेशे च सप्तयामावधि ध्रुवम् ।
स्वांगशीतमधःस्थं च सत्त्वं श्वेतं समाहरेत् ॥ ८१ ॥
छागलस्याथ वाऽलाभे बालिना च समन्वितम् ।
तालकं दिवसद्वंद्वं मर्दयित्वाऽतियत्नतः ॥ ८२ ॥
युक्तं द्रावणवर्गेण काचकुप्यां विनिःक्षिपेत् ।
त्रिधा तां च मृदा लिप्त्वा परिशोष्य खरातपे ॥८३॥
ततः खर्परकाच्छिद्रे तामधो चैव कूपिकाम् ।
प्रवेश्य ज्वालयेदग्निं द्वादशप्रहरावधि ॥ ८४ ॥
कूपीकंठस्थितं श्वेतं शुद्धं सत्त्वं समाहरेत् ।
पलार्धप्रमितं तालं बद्धा वस्त्रेऽसिते दृढे ॥ ८५ ॥

बालिनाऽऽलिप्य यत्नेन त्रिवारं परिशोष्य च।
द्राविते त्रिपले ताम्रे क्षिपेत्तालकपोटली ॥ ८६ ॥
भस्मनाच्छादयेच्छीघ्रं ताम्रेणावेष्टितं सितम् ।
मृदुलं सत्त्वमादद्यात्प्रोक्तं रसरसायने ॥ ८७ ॥

शुद्ध हरताल और सुहागा दोनोंको समान भाग लेकर कुलथीके क्काथ, भैंसके घी और शहदके साथ घोटकर गोला बनाकर एक हांडीमें रख देवे । उसके मुखपर छिद्रवाला ढक्कन अच्छे प्रकारसे जमाकर ढक देवे और उस ढक्कनकी चारों ओरकी संधियोंको उत्तम विधिसे बंद करके फिर उसको चूल्हेपर चढाकर कमसे कम एक प्रहरतक मंद, मध्य और तीव्र अग्नि देवे । पश्चात् उसमेंसे जब सुफेद धुआं निकलने लगे (पहले नीला व पीला धुआं निकलता है पीछे सुफेद निकलता है जबतक सुफेद धुआँ न निकलने लगे तबतक अग्नि देनेका प्रमाण जानना चाहिये । एक प्रहरकी तो एक सामान्य मर्यादा कही गई है) तब ढक्कनके छिद्रको गोबरसे अच्छे प्रकार बंद करदेवे । हांडीके स्वांगशीतल हो जानेपर उसको नीचे उतारकर ढक्कनकी सन्धि (जोड) को तोडकर हांडीमें जमे हुए सत्त्वको निकाललें । हरतालकी तरह (मैनाशिल, सोमल इत्यादि) सर्व प्रकारके खनिज पदार्थोंके सत्त्व निकालनेके अनेक प्रकार हैं । परन्तु मैंने ग्रंथके विस्तारभयसे यहाँ नहीं लिखे हैं। चार तोले शुद्ध हरतालको आकके दूधमें एक दिन खरल करके पश्चात् उसको एक तोला तिलके तेलमें मिलाकर वालुकायंत्रमें रखकर उसको सात प्रहरतक अग्नि देवे इस प्रकार करनेसे हरतालका श्वेत रंगका सत्त्व शीशीकी तलीमें जाकर जमजाता है। उस शीशीके स्वांग शीतल होनेपर उसमेंसे निकालले, यह सत्त्व खुले स्थानमें निकालना चाहिये । बकरेके मांस अथवा उसके अभावमें गंधक और उसकी बराबर शुद्ध हरताल दोनोंको एकत्र दो दिनतक खरल करके उसमें द्रावणवर्गकी वस्तुएँ (शहद, घी, सुहागा, चरबी आदि) मिलाकर एक मजबूत

काँचकी आतसी शीशीमें भरकर उसके ऊपर तीन वार कपरौटी करके तेज धूपमें सुखावे। पश्चात् एक मट्टीके खीपडे या कूंडेके बीचमें एक छेद करके उसमें आधी शीशी नीचेको निकाल दे और उसकी संधियोंको बंद करके ऊपरसे आधी शीशीतक उसमें बालू भरकर चूलेपर चढाकर वालुकायंत्रकी तरह १२ प्रहर तक अग्नि देवे। शीतल होनेपर शीशीकी तलीमें लगे हुए स्वच्छ श्वेत सत्त्वको निकालले। अथवा २ तोले शुद्ध हरताल लेकर एक उत्तम स्वच्छ और मजबूत कपडेमें बांधकर पोटली बनाले। उस पोटलीको चारों ओरसे डोरेसे अच्छी तरह सींकर मजबूत कर दे। फिर गंधकको गोमूत्रके साथ पीसकर उसका इस पोटलीके ऊपर तीन वार लेप करके धूपमें सुखालेवे। फिर १२ तोले तांबेको गलाकर उसमें बडी सफाईसे उक्त पोटलीको रखदे और उसके ऊपर उपलोंकी राख ढक देवे इस प्रकार ढके कि जिससे पोटलीके बाहरका तांबा अच्छे प्रकारसे ढकजाय और हरतालकी पोटली भीतर होजाय। तांबेके गाढे और शीतल होजानेपर उसमेंसे श्वेत रंगके कोमल सत्त्वको ग्रहण करले। इसको सम्पूर्ण रस रसायनादि कार्योंमें प्रयोग करना चाहिये॥ ७६-८७॥

मनःशिला।

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामाङ्गी कणवीरका।
खण्डाख्या चेति तद्रूपं विविच्य परिकथ्यते॥ ८८॥
श्यामा रक्ता सगौरा च भाराढ्या श्यामिका मता।
तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा कणवीरका॥ ८९॥
चूर्णीभूताऽतिरक्तांगी सभारा खण्डपूर्विका।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा भूरिसत्त्वा प्रकीर्तिता॥ ९०॥
मनःशिला सर्वरसायनाख्या तिक्ता कटूष्णा
कफवातहंत्री। सत्त्वात्मिका भूतविषाग्नि-

मांद्यकंड्वातिकासाक्षयहारिणी च ॥ ९१ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अशुद्धा कुरुते शिला ।
मंदाग्निं मलबंधं च शुद्धा सर्वरुजापहा ॥ ९२ ॥
अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवासरम् ।
शृंगवेररसैर्वापि विशुद्धयति मनःशिला ॥ ९३ ॥
जयंतीभृंगराजोत्थरक्तागस्त्यरसैः शिलाम् ।
दोलायंत्रे पचेद्यामं यामं छागोत्थमूत्रकैः ।
क्षालयेदारनालेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९४ ॥
अष्टमांशेन किट्टेन गुडगुग्गुलसर्पिषा ।
कोष्ठ्यां रुद्ध्वा दृढं ध्माता सत्त्वं मुंचेन्मनःशिला॥९५॥
भूनागसत्त्वसौभाग्यमदनैश्च विमर्दितैः ।
कारवल्लीदलांभोभिर्मूषां कृत्वाऽथ निक्षिपेत् ॥ ९६ ॥
शिलां क्षाराम्लनिष्पिष्टां प्रधमेत्तदनंतरम् ।
कोकिलाद्वयमात्रं हि ध्मानात्सत्त्वं सृजत्यसौ ॥ ९७ ॥

मैनाशिल तीन प्रकारकी होती है (१) श्यामाङ्गी (२ कणवीरका और (३) खण्डाख्या । इनका वर्णन आगे किया जाता है । जो मैनाशिल काली, लाल और किंचित् पीली इस प्रकार मिश्रित रंगकी और वजनमें भारी होती है उसको श्यामांगी कहते हैं । जो ताँबेके समान अत्यन्त चमकदार हो और जिसमें पीलापन नहीं हो उसको कणवीरक कहते हैं । और जो चूर्णरूप अथवा शीघ्र चूर्णित होजानेवाली, अत्यन्त लाल और तोलमें भारी ऐसी खण्डाख्य मैनाशिल होती है । तीनों प्रकारकी मैनाशिलोंमें क्रमसे सत्त्व अधिक होता है । इस कारण यह एकसे एक अधिक गुणोंवाली है । मैनाशिल सम्पूर्ण रसायनोंमें श्रेष्ठ है । किंचित् कडवी, चरपरी, गरम, कफ

और वातनाशक, अधिक सत्त्ववाली, एवं भूतबाधा, विषविकार, मंदाग्नि, खुजली, खांसी और क्षयरोगको नष्ट करती है । अशुद्ध मनसिल अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि और मलबन्धादि रोगोंको उत्पन्न करती है और शुद्ध मनसिल सब प्रकारके रोगोंको दूर करती है । मैनशिलशोधनविधि । मैनशिलको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें सात दिनतक घोटनेसे अथवा अदरखके रसमें सात दिनतक घोटनेसे वह शुद्ध होती है । अथवा अरणी, भाँगरा और लाल अगस्तियाके पत्तोंके रसमें मैनशिलको एक प्रहरतक दोलायंत्रमें पकावे । उसी प्रकार बकरीके मूत्रमें एक प्रहरतक मैनशिलको पकावे और फिर कांजीसे धोडाले । इस प्रकार करनेसे मैनशिल शुद्ध होजाती है । इस शुद्ध मैनशिलको सम्पूर्ण योगोंमें प्रयोग करना चाहिये मैनशिलसत्त्वपातनविधि । शुद्ध मैनशिलमें आठवां भाग लोहकीट (मण्डूर), गुड, गूगल और घृत मिलाकर सबको एकत्र घोटकर गोला बनाकर उसको सत्त्वपातनकी मूषामें रखकर अग्निमें फूँके तो मैनशिलका सत्त्व निकल आता है । अथवा केंचुएका सत्त्व सुहागा और मैनफल इन सबका एकत्र चूर्ण करके करलेके पत्तोंके रसमें खरल करके उसकी मूषा बनावे । और उस मूषामें क्षार और अम्ल पदार्थोंके साथ खरल की हुई मैनशिल रखकर उसको कोयलोंकी अग्निमें फूंकें तो मैनशिलका उत्तम सत्त्व निकलता है ॥८८-९७ ॥

अञ्जन ।

सौवीरमंजनं प्रोक्तं रसांजनमतः परम् ।
स्रोतोंजनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च ॥ ९८ ॥
नीलांजनं च तेषां हि स्वरूपमिह वर्ण्यते ।
सौवीरमंजनं धूम्रं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥ ९९ ॥
विषहिध्मादिरोगघ्नं व्रणशोधनरोपणम् ।
रसांजनं च पीताभं विषवक्त्रगदापहम् ॥ १०० ॥

श्वासहिध्मापहं वर्ण्यं वातपित्तास्रनाशनम् ।
स्रोतोंजनं हिमं स्निग्धं कषायं स्वादु लेखनम् ॥ १०१ ॥
नेत्र्यं हिध्माविषच्छर्दिकफपित्तास्ररोगनुत् ॥ १०२ ॥
पुष्पांजनं सितं स्निग्धं हिमं सर्वाक्षिरोगनुत् ।
अतिदुर्धरहिध्माघ्नं विषज्वरगदापहम् ॥ १०३ ॥
नीलांजनं गुरु स्निग्धं नेत्र्यं दोषत्रयापहम् ।
रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम् ॥ १०४ ॥
अंजनानि विशुध्यंति भृंगराजदलद्रवैः ।
मनोह्वासत्त्ववत्सत्त्वमंजनानां समाहरेत् ॥ १०५ ॥
वल्मीकशिखराकारं भंगे नीलोत्पलद्युति ।
घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं लक्षयेद्ध्रुवम् ॥ १०६ ॥
गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च ।
भावितं बहुशस्तं च शीघ्रं बध्नाति पारदम् ॥ १०७ ॥
सूर्यावर्तादियोगेन शुद्धिमेति रसाञ्जनम् ।
राजावर्तकवत्सत्त्वं ग्राह्यं स्रोतोंजनादपि ॥ १०८ ॥

अंजन पाँच प्रकारका होता है । जैसे १ सौवीराञ्जन (सादा सुरमा), २ रसाञ्जन (रसौत), ३ स्रोतोंजन (काला सुरमा), ४ पुष्पांजन (श्वेत सुरमा) और नीलाञ्जन (नीला व अधिक काला सुरमा) इनका आगे वर्णन किया जाता है । अंजनोंके स्वरूप और गुण । ऊपर कहे हुए पाँचों प्रकारके अंजनोंमें सौवीरांजन अधिक धूम्र वर्णका होता है । यह शीतवीर्य है । इस कारण रक्तपित्त, विष-बाधा, हिचकी, आदि रोगोंको दूर करता है । व्रणको शुद्ध करता है और व्रणको भरता है । रसाञ्जनको हिन्दी भाषामें रसौत कहते

हैं । यह कुछ पीला होता है । यह विषबाधा, मुखरोग, श्वास, हिचकी वातरक्त और पित्तरक्तको नष्ट करता है और शरीरके वर्णको उज्ज्वल करता है । स्रोतोंजन—शीतल, स्निग्ध, कसैला, मधुर, लेखन, नेत्रोंको हितकारी तथा हिचकी, विष, वमन, कफ, पित्त और रक्त-पित्तको नष्ट करता है । पुष्पाञ्जन सफेद रंगका होता है । यह स्निग्ध, शीतल, सर्व प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला तथा अत्यन्त दुस्तर हिचकी, विषबाधा और ज्वरको दूर करता है । नीलाञ्जन—भारी, स्निग्ध, नेत्रोंको हितकारी, त्रिदोषनाशक, रसायन, सुवर्णके मारनेमें अर्थात् सोनेके भस्म करनेमें यह बडा उपयोगी है । और लौहको मृदु (नरम) करता है । अंजनशुद्धि उपर्युक्त अंजनोंको भांगरेके पत्तोंके रसमें खरल करनेसे वे शुद्ध होजाते हैं । सत्त्वपातन विधि । सर्वप्रकारके अंजनोंका सत्त्व मैनशिलके सत्त्वकी तरह निकालना चाहिये । स्रोतोऽञ्जनके विशेष लक्षण—जो आकारमें बॅमईके अग्रभागके समान हो, जो तोडनेपर भीतरसे नील कमलके समान नीला दिखाई दे । और घिसनेपर जो गेरूके समान लालीको प्रकट करे उसको निश्चय स्रोतोऽञ्जन समझना । स्रोतोंजनको गोबरका रस गोमूत्र तथा घृत, शहद और चर्बी इनमें वारंवार भावना देकर खरल करे तो वह तत्काल पारेको बांधनेवाला होता है । रसाञ्जनशुद्धि—रसाञ्जन (रसौत) सूर्यावर्तादि (आगे कहे हुए) योगोंके द्वारा शुद्ध होता है । स्रोतोंजनका सत्त्वपातन—स्रोतोञ्जनादिका सत्त्व राजावर्तके सत्त्वके समान निकालना चाहिये ॥ ९८–१०८ ॥

कंकुष्ठम् ।

हिमवत्पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते ।
तत्रैकं नालिकाख्यं हि तदन्यद्रेणुकं मतम् ॥ १०९ ॥
पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कंकुष्ठमादिमम् ।
श्यामपीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं हि रेणुकम् ॥ ११० ॥

कोचिद्वदंति कंकुष्टं सद्योजातस्य दंतिनः ।
वर्चश्च श्यामपीताभं रेचनं परिकथ्यते ॥ १११ ॥
कतिचित्तोजिवाहानां नालं कंकुष्ठसंज्ञकम् ।
वदंति श्वेतपीताभं तदतीव विरेचनम् ॥ ११२ ॥
रसे रसायने श्रेष्ठं निःसत्त्वं बहु वैकृतम् ।
कंकुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम् ॥
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत ॥ ११३ ॥
सूर्यावर्तककदली वंध्याककोंटकी च सुरदाली ।
शिग्रुश्च वज्रकंदोनीरकणाकाकमाची च ॥ ११४ ॥
आसामेकरसेन तु लवणक्षाराम्लभाविता बहुशः ।
शुद्धयांति रसोपरसा ध्माता मुंचंति सत्त्वानि॥११५॥
कंकुष्ठं शुद्धिमायाति त्रिधा शुंठ्यंबुभावितम् ।
सत्त्वाकर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमयं हि तत् ११६
भजेदेनं विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया ।
नाशयेदामजार्तिं च विरेच्य क्षणमात्रतः ॥ ११७ ॥
भक्षितः सहतांबूलैर्विरिच्यासून्विनाशयेत् ॥११८॥
बर्बूरीमूलिकाक्काथो जीरसौभाग्यकं समम् ।
कंकुष्ठविषनाशाय भूयो भूयः पिबेन्नरः ॥ ११९ ॥

हिमालयपर्वतके पाद शिखरोंमें कंकुष्ठ उत्पन्न होता है । वह दो प्रकारका है एक नालिकाख्य और दूसरा रेणुक । नालिकाख्य कंकुष्ठ पीले रंगका, वजनमें भारी और चिकना ऐसा गुणोंमें श्रेष्ठ होता है और रेणुक कंकुष्ठ कुछ काले पीले मिश्रित रंगका, वजनमें हलका और सत्त्वहीन होनेके कारण गुणोंमें हीन समझा जाता है । बहुत

लोग कंकुष्ठको हाथीके तत्कालके उत्पन्न हुए बच्चेका मल बताते हैं। इसका रंग भी कुछ काला पीला मिले रंगका होता है और यह रेचक होता है। उसी प्रकार कितने ही आचार्य घोडेके तत्कालके उत्पन्न हुए बच्चेकी नालको कंकुष्ठ कहते हैं। इसका वर्ण कुछ सफेद और पीला मिश्रित रंगका होता है और यह अत्यन्त विरेचक है। रस और रसायन कर्ममें कंकुष्ठ अत्यन्त श्रेष्ठ है। निःसत्व अर्थात् सत्त्व-हीन कंकुष्ठ अनेक विकारोंको पैदा करता है। उत्तम कंकुष्ठ स्वादमें तिक्त (कडवा), कटु (चरपरा), उष्णवीर्य, अत्यन्त दस्तावर एवं व्रण, उदावर्त्त, शूल, गुल्म, प्लीहा और बवासीरकी पीडाको दूर करता है। सम्पूर्ण रसों और उपरसोंका शोधन और सत्त्व पातन विधि। सूरजमुखी (किसीके मतसे हुलहुल), केला वांझककोडा, देवदाली (वंदाल), सैंजना, वज्रकंद (जंगली कांदा), जलपीपल और मकोय इन सब औषधियोंके रसोंके साथ सैंधानमक, जवाखार और कांजी या नींबूका रस मिलाकर सबको एकाकार करके उसमें सर्व प्रकारके रस और उपरसोंको वारंवार भावना देनेसे वे शुद्ध होते हैं। एवं उक्त औषधियोंके कल्कमें किसी भी रस या उपरसको खरल करके सत्त्वपातनकी मूषामें रखकर अग्नि देनेसे सर्व प्रकारके रस और उपरसोंका सत्त्व निकल आता है। कंकुष्ठशुद्धि। कंकुष्ठको सोंठके काढेमें तीन वार भावना देनेसे वह शुद्ध होते हैं। सत्त्वपातन। कंकुष्ठ स्वयं सत्त्वरूप है इसलिये इसके सत्त्व निकालनेकी विधि नहीं कही। कंकुष्ठसेवनविधि-विरेचन (जुल्लाब) के लिये शुद्ध कंकुष्ठ एक यव एक रत्तीका छठा भाग परिमाण मात्रासे सेवन करना चाहिये। इससे शीघ्र ही दस्त होने लगते हैं, आमदोष समूल नष्ट होता है। कंकुष्ठको ताम्बूलके साथ भक्षण करनेसे अथवा कंकुष्ठको सेवन करके ऊपरसे पान खानेसे विरेचनके अतियोगके द्वारा प्राणोंका नाश होता है यदि कंकुष्ठको सेवन करनेपर दस्त बंद न हो तो बबूरकी जडके काथमें जीरा और सुहागेका चूर्ण डालकर वारंवार पान करे। इससे कंकुष्ठका विष नष्ट होजाता है ॥ १०९-११९ ॥

अष्ट साधारण रस ।

कंपिल्लश्चापरो गौरीपाषाणो नवसागरः ।
कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिंदुरहिंगुलौ ॥ १२० ॥
मृद्दारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।
रससिद्धिकराः प्रोक्ता नागार्जुनपुरःसरैः ॥ १२१ ॥

कबीला ।

कबीला, सोमल (शंखिया), नवसादर, कौडी, अग्निजार (अम्बर), सिन्दूर, सिंगरफ और मुरदासंग यह आठ साधारणरस हैं । नागार्जुनादि ग्रंथकारोंके मतसे यह रससिद्धिके लिये उपयोगी कहे गये हैं ॥ १२० ॥ १२१ ॥

इष्टिकाचूर्णसंकाशश्चंद्रिकाढ्योऽतिरेचनः ।
सौराष्ट्रदेशे चोत्पन्नः स हि कंपिल्लकः स्मृतः ॥ १२२ ॥
पित्तव्रणाध्मानविबंधहारी श्लेष्मोदरार्तिं
क्रिमिगुल्महारी । मूलामशोफज्वरशूलहारी
कम्पिल्लको रेचगदापहारी ॥ १२३ ॥

कबीला ईंटके चूर्णकी समान, चमकदार, अत्यन्त दस्तावर और सौराष्ट्र (सोरठ, काठियावाड) प्रदेशमें उत्पन्न होता है यह पित्त, व्रण, आध्मान, अफरा, मल, मूत्र, वायु, आदिका अवरोध, कफ, उदररोग, कृमिविकार, गुल्म, ववासीर, आमदोष, सूजन, ज्वर, शूल और सर्व प्रकारके विरेचनके द्वारा आरोग्य होनेवाले विकारोंको दूर करता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

गौरीपाषाण ।

गौरीपाषाणकः पीतो विकटो हृतचूर्णकः ।
स्फटिकाभश्च शंखाभो हरिद्राभस्त्रयः स्मृताः ॥ १२४ ॥
पूर्वपूर्वो गुणैः श्रेष्ठः कारवल्लीफले क्षिपेत् ।

स्वेदयेद्धंडिकामध्ये शुद्धो भवति मूषकः ॥ १२५ ॥
तालवद्ग्राहयेत्सत्त्वं शुद्धं शुभ्रं प्रयोजयेत् ।
रसबंधकरः स्निग्धो दोषघ्नो रसवीर्यकृत् ॥ १२६ ॥

गौरीपाषाण अर्थात् सोमल तीन प्रकारका होता है । १ पीला हलदीके समान रंगका, २ स्फटिकके समान चमकदार और कठिन और ३ शंखके समान श्वेत व चमकदार होता है । सोमलके उक्त तीनों प्रकारोंमें पीला गुणोंमें श्रेष्ठ होता है । स्फटिकके समान[1] मध्यम और शंखके समान सुफेद जघन्य जानना ॥ १२४-१२६ ॥

नवसार ।

करीरपीलुकाष्ठेषु पच्यमानेषु चोद्भवः ।
क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणाभिधः १२७॥
इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु ।
तदुक्तं नवसाराख्यं चूलिकालवणं च तत् ॥ १२८ ॥
रसेंद्रजारणं लोहद्रावणं जठराग्निकृत् ।
गुल्मप्लीहास्यशोषघ्नं भुक्तमांसादिजारणम् ।
बिडाख्यं च त्रिदोषघ्नं चूलिकालवणं मतम् ॥ १२९॥

---

१ सोमलकी शुद्धि । एक वडासा करेला लेकर उसको बीचमेंसे चीरकर उसके भीतरका सब गूदा निकालले फिर उसमें सोमलके छोटे २ टुकडे करके भर देवे और उसको सूत या बारीक वस्त्र आदिसे इस प्रकार बांध देवे जिससे सोमलके टुकडे करेलेमेंसे बाहर न निकले फिर उसको दोलायंत्रके द्वारा एक प्रहरतक पकावे । पश्चात् सोमलके टुकडोंको करेलेमेंसे निकालले इस प्रकार करनेसे सोमल शुद्ध होता है हरतालकी तरह सोमलका सत्त्व निकालना चाहिये यह सत्त्व शुभ्रवर्णका होता है । सोमल स्निग्ध वीर्य होनेके कारण पारदको शुद्ध करनेवाला और पारेके वीर्यको बढानेवाला है एवं त्रिदोषनाशक है ॥

करील और पीलू वृक्षकी लकडियोंकी अग्निमें जलाकर उस राखको पानीमें अच्छी तरह मिलाकर एक तरहके एक वर्त्तनमें भरकर रख दिया जाता है. जब राख नीचे वैठ जाती है तब ऊपरसे जलको उतार-कर कढाई आदिमें पकाया जाता है। समस्त पानीके जलजाने पर जो श्वेत रंगका क्षार नीचे वैठ जाता है उसको नवसार नवसादर नोसा-दर आदि कहते हैं । और उसीको चूलिका लवण भी कहते हैं । ईंटों-के भट्टे या पजायेमेंसे ईंटोंके जलनेसे जो क्षार निकलता है उसको भी नवसादर कहते हैं । इसका रंग कुछ पीलापन लिये सुफेद और हलका होता है, इसका भी नाम चूलिका लवण है । नवसादरके गुण। नवसादर पारेको जारण करने और संपूर्ण धातुओंके गलानेमें उपयो-गी है । जठराग्निके वलको वढानेवाला तथा गुल्म, प्लीहा और मुखशोष-को नष्ट करता है और यह खाये हुए मांसादि अतिदुर्जर पदार्थोंको शीघ्र पचा देता है । वहुत लोग विडलवण (विरियासंचर) नमकको नवसादर कहते हैं । यह त्रिदोषनाशक है ॥ १२७-१२९ ॥

वराटिका ।

पीताभा ग्रंथिला पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिका ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा चराचरसंज्ञिका ॥ १३० ॥
सार्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ १३१ ॥
परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी ।
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ॥ १३२ ॥
रसेंद्रजारणे शस्ता बिडद्रव्येषु शस्यते ।
तदन्ये तु वराटाः स्युर्गुरवः श्लेष्मपित्तलाः ॥ १३३ ॥
वराटाः कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयुः ॥ १३४ ॥

वराटिका (कौडी) कुछ पीली रंगकी पीठपर गांठदार और लम्बी गोल कौडीको वराटिका कहते हैं । रसवैद्य इसको चराचर कहते हैं । डेढ निष्क (छः मासे भरकी) वजनकी कौडी उत्तम होती है चार मासेकी मध्यम होती है और तीन मासे वजनकी कौडी जघन्य होती है कौडी—परिणामादिशूल (भोजनके पचनेपर होनेवाला शूल) संग्रहणी और क्षयरोगको दूर करती है । चरपरी, गरम, अग्निको दीपन करनेवाली, वीर्यजनक, नेत्रोंको हितकारी, वात और कफनाशक है । पारदके जारण करनेमें उपयोगी है, और विड द्रव्योंमें उत्तम है । ऊपर जो वराटिका कौडीके लक्षण लिख आये हैं उनको छोडकर और जो कौडी पीली नहीं है और जो ग्रंथिल (गांठदार) नहीं है उन्हें वराट कौडी कहते हैं । यह वजनमें भारी होती है । कफ और पित्तके रोगोंको उत्पन्न करती है । सर्व प्रकारकी कौडियोंको एक प्रहरतक कांजीमें पकानेसे वे शुद्ध होजाती हैं ॥ १३०–१३४ ॥

अग्निजार ।

समुद्रेणाग्निनक्रस्य जरायुर्बहिरुज्झितः ।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः ॥ १३५ ॥
अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।
वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥
तदब्धिक्षारसंशुद्धं तस्माच्छुद्धिं न हीष्यते ॥ १३६ ॥

अग्निजारको साधारण हिन्दीमें अम्बर कहते हैं बहुत लोग इस समुद्रफेन और बहुतसे समुद्रफल कहते हैं । पर उनकी यह भूल है । समुद्रफेन या समुद्रफल यह नहीं है । इसकी उत्पत्तिका रहस्य इस प्रकार कहा जाता है कि—समुद्रमें रहनेवाला अग्निनक्र नामका एक जलचर होता है उसका जरायु—गर्भकोष समुद्रकी लहरोंसे बहकर किनारेपर आजाता है और सूर्यकी धूपसे वह सूख जाता है । इसको अग्निजार (अम्बर) कहते हैं । अग्निजार—त्रिदोषनाशक, धनुर्वातादि

तीव्र वातरोगोंको दूर करनेवाला, पारेके वीर्यको वढानेवाला, अग्निको दीपन करनेवाला है । और पारद्के जारणमें उपयोगी है । यह समुद्रके क्षारसे शुद्ध होता है इसलिये इसकी अन्य किसी तरहकी शुद्धि करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

सिन्दूर ।

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणांतः स्थितो रसः ।
शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिंदूरसंज्ञया ॥ १३७ ॥
त्रिदोषशमनं भेदी रसबंधनमग्रिमम् ।
देहलोहकरं नेत्र्यं गिरिसिंदूरमीरितम् ॥ १३८ ॥

हिमालय, विन्ध्याचल आदि वडे २ पर्वतोके छोटे २ पत्थरोंमें जो लाल रस सूखकर जमजाता है उसको गिरिसिन्दूर कहते हैं । गिरिसिन्दूर त्रिदोषनाशक, भेदक, पारेको बांधनेवाला, देह और धातुओंके लिये उपयोगी और नेत्रोंको हितकर है । बाजारमें एक कृत्रिम सिंदूर विकता है । वह इसकी अपेक्षा गुणोंमें हीन है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

हिंगुल ।

हिंगुलः शुकतुंडाख्यो हंसपाकस्तथापरः ।
प्रथमोऽल्पगुणस्तत्र चर्मारः स निगद्यते ॥ १३९ ॥
श्वेतरेखः प्रवालाभो हंसपाकः स ईरितः ॥
हिंगुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः ॥ १४० ॥
सर्वरोगहरो वृष्यो जारणायातिशस्यते ।
एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगंधसमो गुणैः ॥ १४१ ॥
सप्तकृत्वार्द्रकद्रावैर्लकुचस्यांबुनाऽथ वा ।
शोषितो भावयित्वाऽथ निर्दोषो जायते खलु॥१४२॥
किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः क्षीरेण मेष्या बहु-

शोऽम्लवर्गैः। एवं सुवर्णं बहुघर्मतापितं करोति साक्षाद्दरकुंकुमप्रभम् ॥ १४३ ॥
दरदः पातनायंत्रे पातितश्च जलाशये।
तत्सत्त्वं सूतसंकाशं जायते नात्र संशयः ॥ १४४ ॥

हिंगुल (सिंगरफ) हिंगुल दो प्रकारका होता है। एक शुकतुण्ड और दूसरा हंसपाक। उनमें पहला शुकतुण्ड (तोतेकी चोंचके समान लाल) गुणोंमें कम है। इसको चर्मार भी कहते हैं। जिसका रंग प्रवाल (मूंगे) के समान लाल होता है और उसमें सफेद (पारेकी) रेखायें दीखती हैं। उसको हंसपाक कहते हैं। यह गुणोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ है।। हिंगुलके गुण सिंगरफ संपूर्ण दोषोंको नष्ट करनेवाला, अग्निप्रदीपन करनेवाला, उत्तम रसायन, सम्पूर्ण रोगनाशक, वीर्यवर्द्धक और पारदके जारण करनेमें उत्तम है। सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारा गंधकसे जारण किये हुए पारेकी समान गुण करता है। हिंगुलकी शुद्धि। हिंगुलको अदरखके रस अथवा बडहलके रसकी सात भावना देनेसे वह शुद्ध हो जाता है। अथवा हिंगुलको अग्निमें तपाकर भेंडके दूध और नीबूका रस, काँजी आदि खट्टे पदार्थोंकी बहुतसी भावना देकर वारंवार अग्निमें तपानेसे हिंगुलका रंग प्रायः सुवर्णके समान अथवा उत्तम केशरके समान लाल हो जाता है। इस प्रकार हिंगुल शुद्ध होता है। हिंगुलका सत्त्व पातन। हिंगुलको तिर्यक् पातन यंत्रमें डालकर उडानेसे पारेकी समान सत्त्व अथवा पारा ही सत्त्व रूपमें निकलता है। प्रथम हिंगुलको नीबूके रसमें घोटकर कल्क बनाकर उसको एक घडेके भीतर लेप करदे और उस घडेके मुखको सकोरे आदिका ढक्कन लगाकर उसको वंद कर देवे एवं उस घडेके गलेमें एक छिद्र करके उसमें आठ दस अंगुल लम्बी एक बांसकी पोली नली लगा देवे और उसका दूसरा सिरा एक दूसरे घडेमें छेद करके उसमें प्रविष्ट कर देवे, ऊपरसे दोनों घडोंके मुखको मट्टी आदिसे अच्छे प्रकार वंद

कर देवे और जो दोनों घडोंमें छेद करके जो बांसकी नली लगाई गई है उसकी संधियों (जोडों) को भी अच्छे प्रकार बंद कर देवे । फिर हिंगुलवाले घडेके नीचे अग्नि जलावे और दूसरे घडेमें पानी भर देवे । इस प्रकार करनेसे उस घडेमेंसे हिंगुल (सिंगरफ) मेंसे पारेके समान सत्त्व निकलकर नलीके द्वारा जलवाले घडेमें गिरता है उसमें शुद्ध संस्कृत पारेके समान गुण रहते हैं इसमें कुछ संशय नहीं ॥ १३९-१४४ ॥

मृद्दारशृंग ।

सदलं पीतवर्णं च भवेद्गुर्जरमण्डले ।
अर्बुदस्य गिरेः पार्श्वे जातं मृद्दारशृंगकम् ॥ १४५ ॥
सीससत्त्वं गुरु श्लेष्मशमनं पुंगदापहम् ।
रसबंधनमुत्कृष्टं केशरंजनमुत्तमम् ॥ १४६ ॥
साधारणरसाः सर्वे मातुलुंगार्द्रकांबुना ।
त्रिरात्रं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ १४७ ॥
यानि कानि च सत्त्वानि तानि शुध्यंत्यशेषतः ।
ध्मातानि शुद्धिवर्गेण मिलंति च परस्परम् ॥ १४८ ॥

मुरदासंग यह गुजरात प्रदेशमें प्रायः आबू पर्वतके समीपमें उत्पन्न होता है । इसका रंग पीला होता है । और इसके पत्र अलग अलग छूटते हैं । इसमेंसे सीसेके समान सत्त्व निकलता है । यह भारी, कफनाशक और पुरुषोंके उपदंश रोगको नष्ट करता है । पारेको बाँधता है और लेपके द्वारा बालोंको काला करता है । ऊपर कहे हुए सर्व प्रकारके साधारण रसोंको बिजौरे नींबूके रस और अदरखके रसमें तीन दिनतक भावित करके सुखा लेनेसे वे शुद्ध होजाते हैं । उसी प्रकार सम्पूर्ण धातुओंके सत्त्व, बिजौरे नींबूके रस और अदरखके रसोंकी तीन दिनतक भावना देनेसे वे शुद्ध होते हैं । एवं नींबू अदरख आदि संशोधनवर्गकी औषधियोंके साथ

सबोंको खरल करके घडियामें बंद करके कोयलोंकी अग्नि देनेसे सब परस्पर मिल जाते हैं ॥ १४६-१४८ ॥

राजावर्त ।

राजावर्त्तोऽल्परक्तोरुनीलिमामिश्रितप्रभः ।
गुरुश्च मसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ १४९ ॥
प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः ।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ १५० ॥
निंबूद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिताः खलु ।
द्वित्रिवारेण शुद्ध्यंति राजावर्तादिधातवः ॥ १५१
शिरीषपुष्पार्द्ररसै राजावर्तं विशोधयेत् ॥ १५२ ॥
लुंगांबुगंधकोपेतो राजावर्तः सुचूर्णितः ।
पुटनात्सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत् ॥ १५३ ॥
राजावर्तस्य चूर्णं तु कुनटीघृतमिश्रितम् ।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥ १५४ ॥
सौभाग्यपंचगव्येन पिण्डीबद्धं तु कारयेत् ।
ध्मापितं खदिरांगारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ १५५
अनेन क्रमयोगेन गैरिकं विमलं भवेत् ।
क्रमात्पीतं च रक्तं च सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १५६ ॥

राजावर्त (रेवटी) । राजावर्त कुछ लाल और अधिक नीले रंगका होता है । तोलमें भारी, स्निग्ध व कोमल ऐसा राजावर्त उत्तम होता है । इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारका मध्यम जानना । राजावर्त प्रमेह, धातुक्षय, बवासीर, पांडुरोग और वातकफको नष्ट करता है, अग्निप्रदीपक, पाचक, वीर्यवर्द्धक और शरीरमें रसायनके गुणोंको

पैदा करता है। राजावर्तका शोधन। नींबूका रस गोमूत्र और जवाखार इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें राजावर्तादि धातुओंको दो तीन बार पकानेसे वे सब शुद्ध होजाते हैं। शिरसके फूलोंके रस (अभावमें क्राथ) और अदरखके रसमें राजावर्त्तको एक प्रहरतक औटा देनेसे यह शुद्ध होता है। राजावर्त्तकी भस्म। राजावर्त्त और उसके समान भाग गंधक लेकर दोनोंको बिजौरे नींबूके रसमें एकत्र खरल करके सम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूंके। इस प्रकार सात पुट देनेसे राजावर्त्तकी भस्म होजाती है। राजावर्तका सत्त्वपातन। शुद्ध राजावर्त्तका चूर्ण और उसकी बराबर मैनशिल दोनोंको एकत्र घृतमें खरल करके फिर उसमें भैंसका दूध डालकर लोहेकी कढाईमें पकावे। जब दूध अच्छे प्रकार पककर खूब गाढा होजाय तब उसमें सुहागा मिलाकर पंचगव्य (गोमूत्र, गायका गोबर, गायका दूध, गायका दही और गायका घी) के द्वारा घोटकर गोला बना लेवे। पश्चात् उस गोलेको घडियामें रखकर खैरके कोयलोंकी अग्निमें रखकर फूंके तो उत्तम सत्त्व निकलता है। राजावर्त्तके समान गेरूकी शुद्धि होती है और इसके सत्त्व निकालनेकी विधिसे गेरूका भी सत्त्व निकलता है। राजावर्तका सत्त्व पीले रंगका और गेरूका सत्त्व लाल रंगका होता है ॥ १४९–१५६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालविरचितायां भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

रत्न।

मणयोपि च विज्ञेयाः सूतबन्धनकारकाः।
वैक्रांतः सूर्यकांतश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः ॥ १ ॥
चन्द्रकांतस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः।
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी ॥ २ ॥

पुष्परागं महानीलं पद्मरागं प्रवालकम् ।
वैडूर्यं च तथा नीलमेतेऽपि मणयो मताः ॥
यत्नतः संग्रहीतव्या रसबंधस्य कारणात् ॥ ३ ॥
पद्मरागेंद्रनीलाख्यो तथा मरकतोत्तमः ।
पुष्परागः सवज्राख्यः पंचरत्नवराः स्मृताः ॥ ४ ॥
माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि तार्क्ष्यं च पुष्पं भिदुरं
च नीलम् । गोमेदकं चाथ विडूरकं च क्रमेण
रत्नानि नवग्रहाणाम् ॥ ५ ॥ ग्रहानुमैत्र्या कुरु-
विंदपुष्पप्रवालमुक्ताफलतार्क्ष्यवज्रम् ॥ नीलाख्य-
गोमेदविडूरकं च क्रमेण मुद्राधृतमिष्टसिद्ध्यै ॥ ६ ॥
रसे रसायने दाने धारणे देवताऽर्चने ।
सुरक्ष्याणि सुजातीनि रत्नान्युक्तानि सिद्धये ॥ ७ ॥

रत्न भी पारेको बांधनेवाले हैं (इसके सिवाय और भी बहुतसे गुण रत्नोंमें विद्यमान हैं जिनके द्वारा वे शरीरके अनेक रोगोंको दूर करके शरीरको आरोग्य करते हैं) वैक्रान्त, सूर्यकांत, हीरा, मोती, मणि (सर्पादिके शरीरमें उत्पन्न होनेवाली), चन्द्रकान्त राजावर्त्त और पन्ना ये आठ मणि अर्थात् रत्न हैं । उसी प्रकार पुष्पराज (पुखराज) महानील माणिक प्रवाल (मूंगा) वैदूर्य (लहसुनिया) और नीलम ये भी रत्न हैं । यह पारेको बांधनेवाले होनेके कारण इनको यत्नपूर्वक संग्रह करना चाहिये। ऊपर कहे हुए रत्नोंमें माणिक्य महानील, पन्ना, पुखराज और हीरा यह पाँच रत्न सबमें श्रेष्ठ हैं । माणिक्य (लाल), मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नील गोमेद मणि, और वैदूर्यमणि (लहसुनिया) ये क्रमसे नवग्रहोंके नवरत्न हैं । अर्थात् माणिक सूर्यका, मोती चन्द्रमाका, मूँगा मंगलका, पन्ना बुधका, पुखराज बृहस्पतिका, हीरा शुक्रका, नीलम

शनिका, गोमेदमणि राहुका और वैदूर्यमणि केतुका रत्न है। (उक्त ग्रहोंके अरिष्ट निवारणके लिये) अथवा इष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये इन्हीं रत्नोंकी अंगूठी पहरनी चाहिये। रसक्रिया, रसायन कार्य, दान, धारण, देवपूजन और अनेक प्रकारके इष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिये उत्तम और निर्दोष रत्नोंका उपयोग करना चाहिये ॥ १-७ ॥

माणिक्य।

माणिक्यं पद्मरागाख्यं द्वितीयं नीलगंधि च ।
कुशेशयदलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं गुरु स्फुटम् ॥ ८ ॥
वृत्तायतं समं गात्रं माणिक्यं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ९ ॥
नीलं गंगांबुसंभूतं नीलगर्भारुणच्छवि ।
पूर्वमाणिक्यवच्छ्रेष्ठं माणिक्यं नीलगंधि तत् ॥ १० ॥
रंध्रकार्कश्यमालिन्यरौक्ष्याऽवैशद्यसंयुतम् ।
चिपिटं लघुवक्रं च माणिक्यं दुष्टमष्टधा ॥ ११ ॥
माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्त्तिनुत् ।
भूतवेतालपापघ्नं कर्मजव्याधिनाशनम् ॥ १२ ॥

माणिक्य (मानक, लाल, चुन्नी) दो प्रकारका होता है। एक पद्मराग लाल और दूसरा नीलगन्धि (कुछ नीलापन लिये) ये दोनों प्रकारके माणिक्य क्रमसे लाल कमल और नीले कमलके समान एक लाल और दूसरा कुछ नीले रंगका होता है जो स्निग्ध (चिकना), स्वच्छ, वजनदार, गोल, लम्बा, एक समान ऐसा माणिक्य (पद्म-राग) श्रेष्ठ होता है नीलमाणिक्य गंगासे उत्पन्न होनेवाला और उसका रंग बाहरसे लाली लिये हुए पर भीतरसे नीला दीखता है। उसको नीलगंधि माणिक्य कहते हैं। यह भी पद्मराग माणिक्यके समान श्रेष्ठ गुणोंवाला है। जो छिद्रयुक्त, कर्कशतायुक्त (खरखरा), मलिन (मैला), रूखा, जो आरपार नहीं दीखे, चपटा, हलका और

टेढावेढा ऐसा आठ दोषोंवाला माणिक्य निकृष्ट होता है। यह त्यागने योग्य है । माणिक्यके गुण । माणिक–जठराग्निको दीपन करनेवाला, शुक्रकी वृद्धि करनेवाला तथा कफ, वायु, क्षयरोग, भूतबाधा, वेतालबाधा, पाप और कर्मज रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ८–१२ ॥

ह्लादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवन्निर्मलं महत् ।
ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम् ॥१३ ॥
मुक्ताफलं लघु हिमं मधुरं च कांति-
दृष्ट्यग्निपुष्टिकरणं विषहारि भेदि ।
वीर्यप्रदं जलनिधेर्जनिता च शुक्ति-
र्दीप्ता च पक्तिरुजमाशु हरेदवश्यम् ॥ १४ ॥
रूक्षांगं निर्जलं श्यावं ताम्राभं लवणोपमम् ।
अर्धशुभ्रं च विकटं ग्रंथिलं मौक्तिकं त्यजेत् ॥ १५ ॥
कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमांद्यनुत् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ १६ ॥

मौक्तिक (मोती) जिसको देखते ही चित्तमें प्रसन्नता उत्पन्न हो, जिसका वर्ण श्वेत हो, वजनमें हलका, स्निग्ध, चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल, बडा, जलके समान (आबदार) गोल ऐसा मोती उत्तम होता है । और जो रूखा हो, जिसमें पानी (आब) नहीं हो जिसमें काली झांई दीखती हो अथवा जो ताँबेके समान लाल हो या सैंधेनमकके समान वर्णका हो, जिसका आधा भाग सफेद और आधा भाग दूसरे वर्णका हो, टेढा, वाँका या ऊँचा नीचा और गॉठदार ऐसा मोती निकृष्ट अर्थात् त्यागने योग्य है । मौक्तिकके गुण मोती लघु (हल्का), शीतल, मधुर, कान्तिवर्द्धक, नेत्रोंकी ज्योतिको बढानेवाला जठराग्निको दीप्त करनेवाला शरीरकी पुष्टि करनेवाला विषनाशक भेदक और वीर्यवर्द्धक है । समुद्रमें उत्पन्न हुई सच्चे मोतीकी सींप जठराग्निको

दीपन करनेवाली और परिणाम शूलको अवश्य नष्ट करनेवाली है । मोतीके विशेष गुण कफ, पित्त, क्षय, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि और दाहको नष्ट करता है एवं पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढाने-वाला है ॥ १३–१६ ॥

विद्रुम ।

पक्वबिंबफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ १७ ॥
पाण्डुरं धूसरं सूक्ष्मं सव्रणं कंडरान्वितम् ।
निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा ॥ १८ ॥
क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत् ॥ १९ ॥

प्रवाल (मूँगा) जो पकी हुई कन्दूरीके समान लाल रंगका हो, गोल, सरल (टेढावेडा न हो), स्निग्ध, छिद्ररहित और स्थूल (मोटा) ऐसा प्रवाल (मूंगा) उत्तम होता है । एवं जो पीलापन लिये फीके रंगका, धूसर रंगका, सूक्ष्म (बारीक या पतला), छिद्रयुक्त, रेखावाला, वजनमें हलका और सफेद रंगका होता है ऐसा प्रवाल उत्तम नहीं होता । प्रवालके गुण–प्रवाल (मूंगा)–क्षय, रक्तपित्त; खांसी, विष-विकार, भूतबाधा और नेत्ररोगको दूर करता है । तथा अग्निप्रदीपक पाचक और हलका है ॥ १७–१९ ॥

तार्क्ष्य (पन्ना) ।

हरिद्वर्णं गुरु स्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम् ।
मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम् ॥ २० ॥
कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं च लाघवम् ।
चिपिटं विकटं कृष्णं रूक्षं तार्क्ष्यं न शस्यते ॥ २१ ॥

ज्वरच्छर्दिविषश्वाससन्निपाताग्निमांद्यनुत् ।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजो विवर्धनम् ॥ २२ ॥

तार्क्ष्य (पन्ना) हरे रंगका, वजनमें भारी, स्निग्ध, उज्ज्वल किर॰ णोंवाला, तेजयुक्त, कर्कशतारहित और समान ऐसा पन्ना शुभ होता है और जो कपिलवर्ण अर्थात् भूरे रंगका, कर्कश (खरखरा, नीले रंगका) पाण्डुवर्ण (कुछ पीले रंगका) अथवा काले पीले मिश्रित रंगका, वजनमें हलका, चपटा, टेढावेढा, काला और रूखा ऐसा पन्ना निकृष्ट है। पन्नेके गुण । पन्ना–ज्वर, वमन, विषविकार, श्वास, सन्निपात, मंदाग्नि, ववासीर, पाण्डुरोग और सूजनको दूर करता है और ओजको बढानेवाला है ॥ २०–२२ ॥

पुष्पराज ।

पुष्परागं गुरु स्निग्धं स्वच्छं स्थूलं समं मृदु ।
कर्णिकारप्रसूनाभं मसृणं शुभमष्टधा ॥ २३ ॥
निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतश्यामं नतोन्नतम् ।
कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत् ॥ २४ ॥
पुष्परागं विषच्छर्दिकफवाताग्निमांद्यनुत् ।
दाहकुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ २५ ॥

पुष्पराज (पुखराज) वजनमें भारी स्निग्ध चिकना (स्वच्छ), निर्मल स्थूल (मोटा), समान (टेढावेढा न हो, मृदु (कोमल) और कर्णिकारके फूलके समान पीले रंगका और कर्कशतारहित ऐसा पुखराज उत्तम होता है। और जो कांतिहीन, कर्कश (खरखरा), रूखा, पीले काले मिश्रित रंगका। ऊंचा नीचा अथवा टेढावेढा, काले पीले मिश्रित रंगका, कालापन लिये भूरे रंगका और पांडु वर्ण (फीके रंगका) ऐसा पुष्पराज त्यागने योग्य है। पुख॰ राजके गुण। यह विष, वमन, कफ, वायु, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और

रुधिरके विकारोंको शमन करता है । अग्निको दीपन करनेवाला पाचक और हलका है ॥ २३-२५ ॥

वज्रहीरा ।

वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।
पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ २६ ॥
अष्टास्रं चाष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।
अंबुदेंद्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ २७ ॥
तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रं वर्तुलायतम् ।
वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किंचिद्गुरु नपुंसकम् ॥ २८ ॥
स्त्रीपुन्नपुंसकं वज्रं योज्यं स्त्रीपुन्नपुंसके ।
व्यत्यासान्नैव फलदं पुंवज्रेण विना क्वचित् ॥ २९ ॥
श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम् ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रं स्वस्ववर्णफलप्रदम् ॥ ३० ॥
उत्तमोत्तमवर्णं हि नीचवर्णफलप्रदम् ।
न्यायोऽयं भैरवेणोक्तः पदार्थेष्वखिलेष्वपि ॥ ३१ ॥
आयुःप्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यं दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम् । सूतेंद्रबंधवधसद्गुणकृत्प्रदीप्तं मृत्युंजयं तदमृतोपममेव वज्रम् ॥ ३२ ॥
ग्रासस्त्रासश्च बिंदुश्च रेखा च जलगर्भता ।
सर्वरत्नेष्वमी दोषाः पंच साधारणा मताः ॥
क्षेत्रतोयभवा दोषा रत्नेषु न लगंति ते ॥ ३३ ॥

वज्र (हीरा) तीन प्रकारका होता है । १ नर जातिका, २ स्त्रीजातिका और ३ तीसरा नपुंसकजातिका । यह तीन प्रकारके हीरे

उत्तरोत्तर रस, वीर्य और विपाकादिमें क्रमसे हीन गुणोंवाले हैं, अर्थात् नरजातिके हीरेसे स्त्रीजातिका हीरा और स्त्रीजातिके हीरेसे नपुंसकजातिका हीरा हीन गुणोंवाला है । आठ कोनेवाला, आठ पहलूवाला अथवा छः पलूवाला, अत्यन्त तेजयुक्त कमल अथवा इन्द्रधनुषके समान प्रकाशमान और जलमें तैरनेवाला ऐसा हीरा पुं अर्थात् नरजातिका होता है । जो हीरा चपटा, लम्बा और गोल होता है उसे स्त्रीजातिका जानना । नपुंसकजातिका हीरा गोल, कुंठित पहलूवाला और वजनमें कुछ भारी होता है । इस प्रकार यह पुरुष स्त्री और नपुंसकजातिके तीनों हीरे क्रमसे पुरुष, स्त्री और नपुंसक इन तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रयोग करने चाहिये । इसी प्रकार प्रयोग करनेपर गुणकारी होते हैं केवल पुरुषजातिके हीरेके सिवा शेष दोनों प्रकारके हीरोंके प्रयोगमें किसी प्रकारका उलट फेर नहीं करना चाहिये । क्योंकि विपरीत रीतिसे इसका उपयोग होनेसे निष्फल होता है किन्तु पुरुषजातिका हीरा तीनों प्रकारके मनुष्योंके लिये हितकारी है इसलिये वह सबको दिया जासकता है । उपर्युक्त तीनों प्रकारके हीरोंमें प्रत्येक हीरा सफेद, पीला, लाल और काला इन वर्णभेदोंसे चार प्रकारका है । यह क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके मनुष्योंको देना चाहिये । क्योंकि इसी क्रमसे देनेसे यह उन उन वर्णवाले मनुष्योंको फलप्रद होता है । उच्च वर्णका हीरा नीचवर्णके लिये हितकारी है किन्तु नीच वर्णका हीरा उच्च वर्णके लिये निरुपयोगी होता है । यही नीति भैरव नामक आचार्यने सम्पूर्ण पदार्थोंके विषयमें कही है । हीरेके गुण–हीरा आयुकी वृद्धि करता है, तत्काल शरीरमें अनेक गुणोंको प्रकट करता है, वीर्यकी वृद्धि करता है । त्रिदोषनाशक और समस्त रोगोंको नष्ट करता है । हीरेकी भस्म पारेको बाँधने, पारेकी भस्म करने और पारेके साथ मिश्रित होकर पारेके गुणोंको दीपन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है । यह अमृतके समान मृत्यु और रोगोंको जीतनेवाली है ।

रत्नोंके दोष ग्रास, त्रास, विन्दु, रेखा और जलगर्भता ये पाँच दोष साधारण रूपसे सब रत्नोंमें होते हैं। इस कारण उत्तम विधिसे परीक्षा करके इनको ग्रहण करना चाहिये। क्षेत्र और जलके दोष रत्नोंमें नहीं लगते ॥ २६-३३ ॥

वज्रशोधन।

कुलित्थक्काथके स्विन्नं कोद्रवक्कथितेन वा।
एकयामावधि स्विन्नं वज्रं शुध्यति निश्चितम् ॥३४॥

हीरेको कुलथी अथवा कोदोंके काथमें एक प्रहरतक दोलायंत्रके द्वारा पकानेसे हीरा शुद्ध होजाता है ॥ ३४ ॥

वज्रभस्म।

वज्रं मत्कुणरक्तेन चतुर्वारं विभावितम् ॥ ३५ ॥
सुगंधिमूषिकामांसैर्वर्तितैः परिवेष्ट्य च।
पुटेत्पुटैर्वराहाख्यैस्त्रिंशद्वारं ततः परम् ॥ ३६ ॥
ध्मात्वा ध्मात्वा शतं वारान्कुलत्थक्काथके क्षिपेत्।
अन्यैरुक्तं शतं वारान्कर्तव्योऽयं विधिः क्रमात् ॥३७॥
कुलत्थक्काथसंयुक्तलकुचद्रवपिष्टया।
शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च ॥ ३८ ॥
अष्टवारं पुटेत्सम्यग्विशुष्कैश्च वनोत्पलैः।
शतवारं ततो ध्मात्वा निक्षिप्तं शुद्धपारदे ॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत् ॥ ३९ ॥
सत्यवाक् सोमसेनानीरेतद्वज्रस्य मारणम्।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवान्रसकौतुकी ॥ ४० ॥
विलिप्तं मत्कुणस्यास्त्रैः सप्तवारं विशोषितम्।

कासमर्दरसापूर्णे लोहपात्रे निवेशितम् ॥ ४१ ॥
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु ।
ब्रह्मज्योतिमुनीन्द्रेण क्रमोयं परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥
नीलज्योतिर्लताकंदे घृष्टं घर्मे विशोषितम् ।
वज्रं भस्मत्वमायाति कर्मवज्ज्ञानवह्निना ॥ ४३ ॥
मदनस्य फलोद्भूतरसेन क्षोणिनागकैः ।
कृतकल्केन संलिप्य पुटेद्विंशतिवारकम् ॥ ४४ ॥
वज्रचूर्णं भवेद्वीर्यं योजयेच्च रसादिषु ।
तद्वज्रं चूर्णयित्वाथ किंचिट्टंकणसंयुतम् ॥ ४५ ॥
खरभूनागसत्त्वेन विंशेनावर्तयेद्ध्रुवम् ।
तुल्यस्वर्णेन तद्ध्मातं योजनीय रसादिषु ॥ ४६ ॥
त्रिगुणेन रसेनैव समर्द्यं गुटिकीकृतम् ।
मुखे धृतं करोत्याशु चलद्दंतविबंधनम् ॥ ४७ ॥

हीरेकी भस्मविधि—हीरेके चूर्णको खटमलोंके रुधिरमें चार बार भावना देकर पश्चात् उसको छछूंदरके मांसमें रखकर और चारों तरफसे उसे लपेटकर ऊपरसे कपरौटी करके बाराह पुट देवे । इस प्रकार ३० पुट देवे, फिर हीरेके चूर्णको एक मूषामें रखकर कोयलोंकी अग्निमें गरम करके कुलथीके काढेमें बुझावे । इस प्रकार सौ बार करनेसे हीरेकी उत्तम भस्म होती है । अथवा मैनशिलको कुलथीके क्काथ और बडहलके फलोंके रसमें खूब खरल करके उसका एक मूषाके भीतर लेप कर उसमें हीरेको रखकर ऊपरसे कपरमट्टी करके सुखा देवे । पश्चात् इसको उत्तम प्रकारसे सूखे हुए आरने उपलोंमें रखकर गजपुट देवे । इस प्रकार आठ पुट देने चाहिये । फिर हीरेको कोयलोंकी अग्निमें तपाकर शुद्ध पारेमें बुझावे इस प्रकार १०० बार कर-

नेसे हीरेकी निश्चय वारितर (जलमें तैरनेवाली) भस्म होती है सत्यवादी रसकौतुकी सोमसेनानी विद्वान्का कहा और अनुभव किया हुआ हीरेका मारण (भस्म करनेकी विधि) नीचे लिखा जाता है। खटमलके रुधिरका हीरेके ऊपर लेप करके सुखा देवे। इस प्रकार सात वार लेप करे और सात वार सुखावे। पश्चात् हीरेको कोयलोंकी अग्निमें खूब तपाकर कसौंदीके रसमें भरे हुए लोहेके पात्रमें बुझावे। इस प्रकार सात वार अग्निमें तपाकर सात वार बुझानेसे हीरेकी उत्तम भस्म होती है। ब्रह्मज्योति नामक मुनीन्द्रने हीरेकी भस्म करनेकी विधि इस प्रकार कही है। क्षीरकाकोलीके कन्दके साथ हीरेको दिनभर खूब घोटकर तेज धूपमें सुखावे, तो जिस प्रकार ज्ञानरूपी अग्निके द्वारा कर्म भस्म होते हैं उसी प्रकार उक्त विधिसे हीरेकी उत्तम भस्म होती है। मैनफलके रसमें अथवा काढेमें केंचुओंको खरल करके उसका कल्क बनाकर उसमें हीरेको रखकर सम्पुटमें बंद करके गजपुटमें फूँके। इस प्रकार २० पुट देनेसे हीरेकी उत्तम भस्म होजाती है। इसको समस्त रस और रसायन कार्योंमें प्रयोग करना चाहिये। हीरेका सत्त्व उस हीरेके चूर्ण (भस्म) में थोडा सुहागा और २० वां भाग केंचुओंसे निकाला हुआ सत्त्व (ताम्र) सबको एकत्र खरल करके फिर उसमें समान भाग सुवर्ण भस्म मिलाकर एक मूषामें रखकर कोयलोंकी तीक्ष्ण अग्निमें फूंके। इस प्रकार यह उत्तम हीरेकी रसायन तैयार होती है। इसको समस्त रसायन कर्मोंमें प्रयोग करना चाहिये। दाँतोंके दृढ करनेवाला प्रयोग। हीरेकी भस्म १ भाग और शुद्ध पारा २ भाग दोनोंको एकत्र खरल करके गोली बनालेवे। इस गोलीको मुखमें रखनेसे हिलते हुए दाँत दृढ होजाते हैं ॥ ३९–४७ ॥

वज्ररसायन ।

त्रिंशद्भागमितं हि वज्रभसितं स्वर्णं कलाभागिकं
तारं चाष्टगुणं सिताऽमृतवरं रुद्रांशकं चाभ्रकम् ।

पादांशं खलु ताप्यकं वसुगुणं वैक्रांतकं षड्गुणं
भागोऽप्युक्तरसै रसोऽयमुदितः षाड्गुण्यसंसिद्धये।४८।

हीरेकी भस्म ३० भाग, सुवर्णभस्म १६ भाग, रूपेकी भस्म ८ भाग, शुद्ध मीठा विष ११ भाग, अभ्रक भस्म चौथाई भाग, सुवर्णमाक्षिक भस्म ८ भाग और वैक्रान्त भस्म ६ भाग इन सबको एकत्र उत्तम प्रकारसे खरल करले। यह वज्ररसायन सर्व प्रकारकी देहकी सिद्धि देनेवाली है ॥ ४८ ॥

नीलमणि (नीलम)।

जलनीलेंद्रनीलं च शक्रनीलं तयोर्वरम् ।
श्वैत्यगर्भितनीलाभं लघु तज्जलनीलकम् ॥ ४९ ॥
कार्ष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम् ॥ ५० ॥
एकच्छायं गुरु स्निग्धं स्वच्छं पिण्डितविग्रहम् ।
मृदु मध्योल्लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम् ॥ ५१ ॥
कोमलं विहितं रूक्षं निर्भारं रक्तगंधि च ।
चिपिटाभं सुसूक्ष्मं च जलनीलं हि सप्तधा ॥ ५२ ॥
श्वासकासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।
विषमज्वरदुर्नामपापघ्नं नीलमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

नीलमणि (नीलम)—नीलम दो प्रकारका होता है। एक जलनील और दूसरा इन्द्रनील। इन दोनोंमें इन्द्रनील श्रेष्ठ समझा जाता है। जलनीलका रंग कुछ सफेदी लिये अर्थात् हलका नीला होता है और यह वजनमें भी हलका होता है और इन्द्रनीलका रंग कालापन लिये नीले रंगका अर्थात् गहरे नीले रंगका होता है और यह वजनमें भारी होता है। जो नील एकसी छायावाला, तोलमें भारी, चिकना, गोल (पिण्डाकार), कोमल (नरम) और जो बीचमेंसे अत्यंत उज्ज्वल (चमकदार) दीखता हो ऐसा सात प्रकारका नीलम उत्तम होता है।

जो तेजोहीन, अनेक वर्णका अर्थात् जिसमें आधेमें एक रंग और आधेमें दूसरा रंग दीखे रूखा (खरखरा), वजनमें हलका, जिसके भीतर लाल रंगकी छटा दिखाई देती हो, चपटा और बहुत छोटा एसा सात लक्षणोंसे युक्त जलनील होता है । यह जलनील हीन गुणों-वाला है । नीलमके गुण । नीलम--श्वास और खाँसीको नष्ट करने-वाला, वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, एवं विषमज्वर और ववासीरको दूर करता है और शरीरमें धारण करनेपर यह पापनाशक है ॥ ४९-५३ ॥

गोमेदमाणि ।

गोमेदः समरागत्वाद्गोमेदं रत्नमुच्यते ।
सुस्वच्छगोजलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं समं गुरु ।
निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥ ५४ ॥
विच्छायं लघु रूक्षांगं चिपिटं पटलान्वितम् ।
निष्प्रभं पीतकाचाभं गोमेदं न शुभावहम् ॥ ५५ ॥
गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयंकरम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥ ५६ ॥

गोमेदमाणि-(लहसुनिया) गायके मेद (चर्बी) के समान वर्णवाली होती है, इस लिये इसको गोमेदमाणि कहते हैं । स्वच्छ गोमूत्रके समान जिसकी छाया अर्थात् वर्ण हो, उज्ज्वल, चिकनी, समान (टेढी-वेढी या नीची ऊँची न हो), वजनमें भारी, निर्दल (परतरहित,) मसृण (कोमल) और प्रकाशमान इन आठ लक्षणों-वाली गोमेदमाणि उत्तम होती है । कान्तिहीन, वजनमें हलकी, रूखी, चपटी पटलयुक्त (परतदार), प्रभारहित और जो पीले काँचके समान ऐसी गोमेदमाणि शुभ नहीं है । गोमेदके गुण-यह कफ और पित्तनाशक, क्षय और पाण्डुरोगको नष्ट करनेवाली अग्निप्रदीपक, पाचक, रुचिकारक, त्वचाको हितकारी और बुद्धिको बढानेवाली है ॥ ५४-५६ ॥

वैडूर्यमणि (लहसुनिया)

वैडूर्यं श्यामशुभ्राभं समं स्वच्छं गुरु स्फुटम् ।
अभ्रशुभ्रोत्तरीयेण गर्भितं शुभमीरितम् ॥ ५७ ॥
श्यामं तोयसमच्छायं चिपिटं लघु कर्कशम् ।
रक्तगर्भोत्तरीयं च वैडूर्यं नैव शस्यते ॥ ५८ ॥
वैडूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम् ।
पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम् ॥ ५९ ॥

जिसका वर्ण कालापन लिये हुए सफेद हो, समान (टेढी वेढी न हो), निर्मल, वजनमें भारी, तेजयुक्त और जिसके भीतर सफेद रंगकी रेखा दीखती हों ऐसी वैडूर्यमणि (लहसुनिया) उत्तम होती है । और जो काले रंगकी हो, जलके समान छायावाली (कांतिहीन फीकी), चपटी, हलकी, खरखरी और जिसके भीतर लाल रंगकी रेखा दीखती हों ऐसी वैडूर्यमणि निकृष्ट होती है । वैडूर्यमणि (लहसुनियां) रक्तपित्तनाशक, बुद्धि आयु और बलको बढानेवाली, पित्त-प्रधान रोगोंकी नाश करनेवाली अग्निप्रदीपक और जमे हुए दोषोंको उखाडनेवाली है ॥ ५७-५९ ॥

सर्वरत्नशुद्धि ।

शुद्धयत्यम्लेन माणिक्यं जयंत्या मौक्तिकं तथा ।
विद्रुमं क्षारवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धकैस्तथा ॥ ६० ॥
पुष्परागं च संधानैः कुलत्थक्वाथसंयुतैः ।
तण्डुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ॥ ६१ ॥
रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः ॥ ६२ ॥

माणिक खट्टे पदार्थोंके रससे, मोती अरणीके क्वाथसे, प्रवाल (मूँगा) क्षारवर्गमें, पन्ना गायके दूधमें, पुखराज कुलथीका काढा

मिली हुई कांजीमें, हीरा चौलाईके रसमें, नीलम नीलके रस या काढेमें, गोमेदमणि गोरोचनके पानीमें और वैदूर्यमणि (लहसुनिया) त्रिफलेके काढेमें एक प्रहरतक पकानेसे शुद्ध होती है ॥ ६०-६२ ॥

सर्वरत्नोंकी भस्म करनेकी विधि ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागंधकतालकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियंतेऽष्टपुटैः खलु ॥ ६३ ॥

मैनाशिल, गंधक और हरताल इन तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र बडहलके रसमें खरल करके उस लुगदीमें रत्नोंका चूर्ण रखकर और मूषामें बंद करके गजपुट देवे । इस प्रकार आठ पुट देनेसे हीरेको छोडकर शेष सब रत्नोंकी भस्म होजाती है ॥ ६३ ॥

रत्नद्रुति ।

रामठं पंचलवणं क्षाराणां त्रितयं तथा ।
मांसद्रवोऽम्लवेतश्च चूलिकालवणं तथा ॥ ६४ ॥
स्थूलं कुंभीफलं पक्कं तथा ज्वालामुखी शुभा ।
द्रवंती च रुदंती च पयस्या चित्रमूलकम् ॥ ६५ ॥
दुग्धं स्नुह्यास्तथाऽर्कस्य सर्वं संमर्द्य यत्नतः ।
गोलं विधाय तन्मध्ये प्रक्षिपेत्तदनंतरम् ॥ ६६ ॥
गुणवन्नवरत्नानि जातिमंति शुभानि च ।
भूर्जे तं गोलकं कृत्वा सूत्रेणावेष्टय यत्नतः ॥ ६७ ॥
पुनर्वस्त्रेण संवेष्ट्य दोलायंत्रे निधाय च ।
सर्वाम्लयुक्तसंधानपरिपूर्णे घटोदरे ॥ ६८ ॥
अहोरात्रत्रयं यावत्स्वेदयेत्तीव्रवह्निना ।
तस्मादाहृत्य संक्षाल्य रत्नजां द्रुतिमाहरेत् ।
रत्नतुल्यप्रभा लघ्वी देहलोहकरी शुभा ॥ ६९ ॥

मुक्ताचूर्णं तु सप्ताहं वेतसाम्लेन मार्दितम् ।
जंबीरोदरमध्ये तु धान्यराशौ विनिक्षिपेत् ॥ ७० ॥
सप्ताहादुद्धृतं चैव पुटे धृत्वा द्रुतिर्भवेत् ॥ ७१ ॥
वज्रवल्यंतरस्थं च कृत्वा वज्रं निरोधयेत् ।
अम्लभाण्डगतं स्वेद्यं सप्ताहाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ ७२ ॥
श्वेतवर्णं तु वैक्रांतमम्लवेतसभावितम् ।
सप्ताहान्नात्र संदेहः खरघर्मे द्रवत्यलम् ॥ ७३ ॥
केतकीस्वरसं ग्राह्यं सैंधवं स्वर्णपुष्पिका ।
इंद्रगोपकसंयुक्तं सर्वं भाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ७४ ॥
सप्ताहं स्वेदयेत्तास्मिन्वैक्रांतं द्रवतां व्रजेत् ।
लोहाष्टके तथा वज्रवापनात्स्वेदनाद्द्रुतिः ॥ ७५ ॥
जायते नात्र संदेहो योगस्यास्य प्रभावतः ।
कुरुते योगराजोयं रत्नानां द्रावणं परम् ॥ ७६ ॥
कुसुंभतैलमध्ये तु संस्थाप्या द्रुतयः पृथक् ।
तिष्ठंति चिरकालं तु प्राप्ते कार्ये नियोजयेत् ॥ ७७ ॥

रत्नोंका द्रावण हींग, पाँचों लवण-सैंधा नमक, काला नमक, काचिया नमक, विरिया संचर नमक, साँभर नमक क्षारत्रय (जवाखार, सज्जीखार और सुहागा, मांसद्राव (मांसरस), अमलबेंत, नौसादर, कायफल, ज्वालामुखी (कालिहारी), गोरोचन, मूषाकानी, रुदन्ती, दुद्धी, चीतेकी जड, थूहरका दूध और आकका दूध इन सब औषधियोंको एकत्र खरल करके गोला बनालेवे । फिर इस गोलेमें जिस रत्नकी द्रुति करना हो तो गुणवान् और उत्तम जातिके रत्नोंको रखकर चारों तरफसे बंद करे, पश्चात् उसको भोजपत्रमें अच्छे प्रकारसे लपेटकर और सूतसे मजबूत बांधकर फिर उसे

एक कपडेमें बांधकर सर्व प्रकारके अम्ल पदार्थोंके रस और काँजीको एक घडेमें भरकर और उसके ढक्कनमें एक डोरा बांधकर उसमें उक्त गोलेको अच्छे प्रकारसे बांधकर लटका देवे और उसके नीचे तीन दिन और तीन रात्रितक तीव्र अग्नि दे इस प्रकार दोलायंत्रके द्वारा स्वेद देकर चौथे दिन पोटलीको बाहर निकालकर जलसे धोडाले और उसमेंसे सरल द्रुतिको ग्रहण करले । यह रत्नद्रुति-रत्नोंके समान कान्तिवाली, हलकी, तथा शरीर और धातुओंकी सिद्धि करनेवाली है । मौक्तिकद्रुति-मोतियोंके चूर्णको अम्लवेंतके रसमें खरल करके लुगदी बनाले फिर उस लुगदीको जम्भीरी नींबूमें चाकूसे छेद करके भरदे और उसे सूत आदिसे बाँधकर सात दिन-तक धानोंके ढेरमें गाडदे । फिर आठवें दिन उसे बाहर निकालकर मूषामें रखकर गजपुट देवे । इस प्रकार करनेसे मोतीकी उत्तम द्रुति होती है । अस्थिसंहारी (हडसंघारी) का कल्क बनाकर उसके बीचमें हीरेके चूर्णको रखकर उसका गोलासा बनाले, फिर उस गोलेको पूर्वोक्त विधिसे कपडेमें रखकर और उसके चारों तरफ डोरा बाँधकर और भोजपत्रमें लपेटकर सर्व प्रकारके खट्टे पदार्थोंके रस और काँजीसे भरे हुए पात्रमें दोलायंत्रकी विधिसे सात दिनतक स्वेद देवे । इससे हीरेकी उत्तम द्रुति होती है । वैक्रान्तद्रुति-सफेद वैक्रा-न्तके चूर्णको अमलवेंतकी भावना देकर खूब तेज धूपमें सुखावे । इस प्रकार सात दिन भावना देकर सात दिनतक धूपमें सुखानेसे वैक्रा-न्तद्रव रूप होजाता है । केतकी (केवडे) का स्वरस, सेंधा नमक, सत्यानाशी कटेरी और इन्द्रगोप (बीरबहूटी) इन सबका एकत्र कल्क बनाकर एक वर्त्तनमें भरकर दोलायंत्रकी विधिसे सात दिन-तक पकानेसे वैक्रान्तकी उत्तम द्रुति होती है । इस प्रकारकी हुई वैक्रान्तकी द्रुतिको किसी भी लोह (धातु) की भस्ममें मिलाकर उसको दोलायंत्रके द्वारा स्वेद देवे तो इस योगके प्रभावसे उस धातुका द्रावण होता है । उसी प्रकार इस योगके द्वारा अन्य सम्पूर्ण

रत्नोंकी द्रुति होती है । इन सब द्रुतियोंको अलग २ कसूमके तेलमें डालकर रखना चाहिये । इस प्रकार रखनेसे वे बहुत दिनोंतक ठहरसकती हैं । और जब आवश्यकता हो तब इनको उपयोगमें लाना चाहिये ॥ ६४-७७ ॥

रत्नधारण करनेके गुण ।

सूर्यादिग्रहनिग्रहापहरणं दीर्घायुरारोग्यदं
सौभाग्योदयभाग्यवश्यविभवोत्साहप्रदं धैर्यकृत् ।
दुश्छायाचलधूलिसंगतिभवाऽलक्ष्मीहरं सर्वदा
रत्नानां परिधारणं निगदितं भूतादिनिर्णाशनम् ॥७८॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये चतुर्थोऽध्यायः ४

उपर्युक्त नौ प्रकारके रत्नोंको धारण करनेसे सूर्यादि नवग्रहोंकी पीडा दूर होती है, दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होती है । सौभाग्यका उदय होता है । वशीकरणकी सिद्धि होती है । विभव और उत्साह बढते हैं, धैर्य उत्पन्न होता है, एवं अमंगल छाया दूषित हवा और धूल आदिसे उत्पन्न हुए अलक्ष्मी आदि दोष और भूत प्रेतादिकी बाधा दूर होती है ॥ ७८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

धातु (लोह आदि) ।

शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारं
पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवंगाभिधानम् ।
मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तं
धातुर्लोहे लुह इति मतः सोऽपि कर्षार्थवाची ॥ १ ॥

सम्पूर्ण लौह (सुवर्णादि धातुएँ) तीन प्रकारके हैं । उनमें सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा ये शुद्ध लौह कहे जाते हैं । सीसा और राँग पूतिलौह हैं । पीतल, काँसा और भरत मिश्र लौह कहे जाते हैं । लौह शब्दमें 'लुह' धातु आकर्षण अर्थात् खींचनेके अर्थमें व्यवहृत होती है । रोगोंको खींचकर निकालनेवाली होनेके कारण संपूर्ण धातुओंका 'लौह' नाम सार्थक है ॥ १ ॥

सुवर्ण (सोना) ।

प्राकृतं सहजं वह्निसंभवं खनिसंभवम् ।
रसेंद्रवेधसंजातं स्वर्णं पंचविधं स्मृतम् ॥ २ ॥
ब्रह्माण्डं संवृतं येन रजोगुणभुवा खलु ।
तत्प्राकृतमिति प्रोक्तं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मा येनावृतो जातः सुवर्णेन जरायुणा ।
तन्मेरुरूपतां यातं सुवर्णं सहजं हि तत् ॥ ४ ॥
विसृष्टमग्निना शैवं तेजः पीतं सुदुःसहम् ।
अभूत्सर्वं समुद्दिष्टं सुवर्णं वह्निसंभवम् ॥ ५ ॥
एतत्स्वर्णत्रयं दिव्यं वर्णैः षोडशभिर्युतम् ।
धारणादेव तत्कुर्याच्छरीरमजरामरम् ॥ ६ ॥
तत्र तत्र गिरीणां हि जातं खानिषु यद्भवेत् ।
तच्चतुर्दशवर्णाढ्यं भक्षितं सर्वरोगहृत् ॥ ७ ॥
रसेंद्रवेधसम्भूतं तद्वेधजमुदाहृतम् ।
रसायनं महाश्रेष्ठं पवित्रं वेधजं हि तत् ॥ ८ ॥
आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलं व्याधिविध्वंसि पुण्यं
भूतावेशप्रशांतिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि ।

गांगेयं चाथ रूप्यं गदहरमजराकारि मेहापहारि
क्षीणानां पुष्टिकारि स्फुटमतिकरणं वीर्यवृद्धिप्रकारि ॥ ९ ॥
स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यं
यक्ष्मोन्मादप्रशमनपरं देहरोगप्रमाथि ।
मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं
रुच्यं दीप्तिप्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ १० ॥
सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति रोगावर्तिं करोति च ।
अशुद्धममृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ ११ ॥

सुवर्ण पाच प्रकारका है । १ प्राकृत, २ सहज, ३ अग्निसम्भव, ४ खनिज और ५ वां वेधजन्य (रसायन विधिसे बनाहुआ) जो रजोगुणसे उत्पन्न हुआ और जिसके द्वारा यह सारा ब्रह्मांड व्याप्त है ऐसा प्राकृत-संज्ञक सुवर्ण देवताओंको भी दुर्लभ है । जिस सुवर्णके जरायुसे वेष्टित ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और जो सुमेरु पर्वतके रूपमें है ऐसा सुवर्ण सहजसंज्ञक है । तीसरा अग्निसे उत्पन्न होनेवाला पूर्वकालमें श्रीमहादेवका वीर्य अग्निदेवने जब भक्षण कर लिया था तब उन्हें वह सहन न हो सका, इस लिये उसे वमनके द्वारा बाहर निकाल दिया उससे जो सुवर्ण उत्पन्न हुआ, उसको अग्निसंभव कहते हैं । उपर्युक्त तीनों प्रकारके सुवर्ण, दिव्यगुणवाले और षोडशकलासम्पन्न है । इनको धारण करनेमात्रसे शरीर अजर और अमर होता है । अनेक पर्वतोंकी खानोंसे जो उत्पन्न होता है वह चौथा खनिज सुवर्ण है । यह चौदह कलायुक्त है । यह पूर्वोक्त तीनों सुवर्णोंकी अपेक्षा गुणोंमें हीन है और इसके भक्षण करनेसे सब रोग नष्ट होते हैं । पारेके वेधकर्म (रसायन कीमिया) से उत्पन्न हुआ सुवर्ण 'वेधज' कहा जाता है । यह श्रेष्ठ रसायन और पवित्र है । सुवर्ण—आयु, लक्ष्मी, कान्ति, बुद्धि और स्मरणशक्तिको बढानेवाला, सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला

पवित्र भूतबाधाको शमन करनेवाला, कामेच्छाको बढानेवाला,
सौख्यजनक और पुष्टिकारक है । सुवर्णके समान रौप्य (चांदी)
भी रोगोंको नष्ट करनेवाला, जरा (बुढापा) को दूर करनेवाला,
विशेषकरके प्रमेहको हरनेवाला क्षीणमनुष्योंको पुष्ट करनेवाला,
बुद्धिको उज्ज्वल करनेवाला और वीर्यको बढानेवाला है ।
सुवर्ण-स्निग्ध, मेधाजनक, विषके विकारोंको शमन करनेवाला,
पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक, यक्षोन्माद (एक प्रकारका उन्माद रोग)
और शरीरगत रोगोंको शमन करनेवाला, मेधा, बुद्धि और स्मरणश-
क्तिको उत्पन्न करनेवाला समस्त दोषोंको दूर करनेवाला, रुचि-
कारक, अग्निको दीपन करनेवाला, रोगोंको शमन करनेवाला,
और पचनेमें मधुर है । अशुद्ध और उत्तम प्रकारसे मारण
नहीं किया हुआ (अपक्व, कच्चा) सुवर्ण सौख्य, बल और वीर्यको
नष्ट करता है और रोगोंके समूहको उत्पन्न करता है । इस कारण
सदैव सोनेका प्रथम उत्तम प्रकारसे संशोधन कर पश्चात् यथाविधिसे
भस्म करके औषध कार्यमें लेना चाहिये ॥ २-११ ॥

सुवर्णशोधन ।

कर्षप्रमाणं तु सुवर्णपत्रं शरावरुद्धं पटुधातु-
युक्तम् । अंगारसंस्थं प्रहरार्धमानं ध्मातेन
तत्स्यान्ननु पूर्णवर्णम् ॥ १२ ॥

सोनेके सूक्ष्म पत्र सोनेके वर्क १ तोला लेकर उसमें सेंधानमक
और गेरूका चूर्ण समान भाग मिलाकर शरावसम्पुटमें बंद करके
अंगारोंपर आधे प्रहरतक धौंकनीसे फूंके तो सुवर्ण उत्तम प्रकारसे
शुद्ध होकर सुन्दर लाल वर्णका होजाता है ॥ १२ ॥

सुवर्ण भस्म ।

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना ।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गंधकादिभिः ।
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥ १२ ॥

कृत्वा कंटकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ।
लुंगांबुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटैः ॥ १४ ॥
द्रुते विनिक्षिपेत्स्वर्णे लोहमानं मृतं रसम् ।
विचूर्ण्य लुंगतोयेन दरदेन समन्वितम् ॥ ॥ १५ ॥
जायते कुंकुमच्छायं स्वर्णं द्वादशभिः पुटैः ॥ १६॥
हेम्नः पादं मृतं सूतं पिष्टमम्लेन केनचित् ।
पत्रे लिप्त्वा पुटैः पच्यादष्टभिर्म्रियते ध्रुवम् ॥ १७ ॥
एतद्भस्म सुवर्णजं कटुघृतोपेतं द्विगुंजोन्मितं
लीढं हंति नृणां क्षयाग्निसदनं श्वासं च कासारुचिम् ।
ओजोधातुविवर्धनं बलकरं पाण्ड्वामयध्वंसनं
पथ्यं सर्वविषापहं गरहरं दुष्टग्रहण्यादिनुत् ॥ १८ ॥
बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं
कोपयतीव काये । असौख्यकारं च सदैव
हेमापथ्यं सदोषं मरणं करोति ॥ १९ ॥

पारदभस्मके संयोगसे सभी धातुओंका मारण उत्तम होता है। वनौषधियोंके द्वारा धातुओंका मारण मध्यम है और गंधक आदिके द्वारा धातुओंकी भस्म करना अधम है। गंधकके योगसे धातुओंकी भस्म करना अत्यन्त अवगुणकारक है। सुवर्णके कंटकवेधी पत्र बनाकर उनके ऊपर पारेकी भस्मको बिजौरे नींबूके रसमें खरल करके लेप कर देवे। पश्चात् उन्हें शरावसम्पुटमें बंद करके उसके ऊपर कपरोटी करके गजपुटकी अग्नि देवे। इस प्रकार दश पुट देनेसे सुवर्णकी श्रेष्ठ भस्म होती है। सुवर्णको घडियामें गलाकर उसमें सुवर्णके समान पारेकी भस्म और पारेके भस्मके समान सिंगरफ डालकर बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर गोला बना लेवे। उस गोलेको

शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटकी अग्नि देवे इस प्रकार १२ पुट देनेसे सुवर्णकी केशरके समान लाल और सुंदर भस्म होजाती है । सुवर्णसे चौथाई भाग पारेकी भस्म लेकर उसको नींबूके रसमें घोटकर सोनेके पत्रोंके ऊपर लेप कर देवे । फिर उनको शरावसम्पुटमें बंद करके गजपुटकी अग्नि देवे । इस प्रकार आठ पुट देनेसे सोनेकी उत्तम भस्म होती है । किन्तु प्रत्येक पुटमें चौथाई भाग पारेकी भस्म डालनी चाहिये । सुवर्णकी भस्मके गुण–सोनेकी २ रती भस्मको काली मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर नित्य सेवन करनेसे क्षय, मंदाग्नि, श्वास, खांसी, अरुचि, पांडुरोग, विष, कृत्रिम विष, संग्रहणी आदि दुष्ट रोग नष्ट होते हैं । ओज धातुकी वृद्धि होती है, एवं समस्त धातुएँ पुष्ट होती हैं और बलकी वृद्धि होती है । अशुद्ध सुवर्णके दोष अशुद्ध-सुवर्णको सेवन करनेसे बल और वीर्यकी हानि होती है । शरीरमें अन्य प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है और असुख (बेचैनी) उत्पन्न होकर मृत्युतक होजाती है ॥ १३–१९ ॥

सुवर्ण द्रुति ।

मंडूकास्थिवसाटंकहयलालेंद्रगोपकैः ।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम् ॥ २० ॥
चूर्णं सुरेंद्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः ।
भावितं सदृशं हेम करोति जलवद्द्रुतम् ॥ २१ ॥

मेंडककी हड्डीका चूर्ण, सुहागा और इन्द्रगोप (वीरबहूटी) इन सबको एकत्र घोडेकी लार और मेंडककी चर्बीकी भावना देकर सोनेको मूषामें गलाकर उसमें इस मिश्रणको डालकर कुछ देरतक अग्निपर रखा रहने देवे इस विधिसे सोनेकी बहुत समयतक ठहरनेवाली पानीके समान पतली द्रुति हो जाती है । इन्द्रगोपों (वीरबहूटियों) का चूर्ण करके देवदाली (बंदाल) के रसमें अथवा काथमें घोटकर सुखादेवे । पश्चात् सुवर्णको गलाकर उसमें उक्त मिश्रण डालनेसे सुवर्ण जलके समान तरल होजाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

रूपा ।

सहजं खनिजातं च कृत्रिमं त्रिविधं मतम् ।
रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तमोत्तमम् ॥ २२ ॥
कैलासाद्यद्रिसंभूतं सहजं रजतं भवेत् ।
तत्स्पृष्टं हि सकृद्व्याधिनाशनं देहिनां भवेत् ॥ २३ ॥
हिमालयाद्रिकूटेषु यद्रूप्यं जायते हि तत् ।
खनिजं कथ्यते तज्ज्ञैः परमं हि रसायनम् ॥ २४ ॥
श्रीरामपादुकान्यस्तं वंगं यद्रूप्यतां गतम् ।
तत्पादरूप्यमित्युक्तं कृत्रिमं सर्वरोगनुत् ॥ २५ ॥
घनं स्वच्छं गुरु स्निग्धं दाहे छेदे सितं मृदु ।
शंखाभं मसृणं स्फोटरहितं रजतं शुभम् ॥ २६ ॥
दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं स्फुटं लघु ।
स्थूलांगं कर्कशांगं च रजतं त्याज्यमष्टधा ॥ २७ ॥
रौप्यं विपाकमधुरं तुवराम्लसारं शीतं
सरं परमलेखनकं च रुच्यम् ।
स्निग्धं च वातकफजिज्जठराग्निदीपि
बल्यं परं स्थिरवयस्करणं च मेध्यम् ॥ २८ ॥
रौप्यं शीतं कषायाम्लं स्निग्धं वातहरं लघु
रसायनविधानेन सर्वरोगापहारकम् ॥ २९ ॥

रौप्य (चाँदी) तीन प्रकारका है । सहज, खनिज और कृत्रिम इन तीनोंमें पूर्वपूर्व गुणोंमें श्रेष्ठ हैं । कैलासादि पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाला रूपा सहज संज्ञक है । इसके स्पर्शमात्रसे तत्काल प्राणियोंके संपूर्ण रोगोंका नाश होता है । हिमालयादि पर्वतोंके शिखरोंके ऊपर खानमें जो रूपा

उत्पन्न होता है उसको खनिज कहते हैं । यह उत्तम प्रकारकी रसायन है । तीसरे प्रकारका रौप्य (श्रीरामचन्द्रजीकी खडाऊँके स्पर्शसे जो वंग चाँदी होगई थी, उसको पादरूप्य कहते हैं) । यह कृत्रिम होता है । यह वंगके द्वारा रासायनिक (कीमिया) प्रक्रियासे तैयार होता है । रौप्य सम्पूर्ण रोगनाशक है । रूपेके गुणदोष-रूपा (चाँदी) घन (वजनदार), स्वच्छ (निर्मल) भारी, चिकना (आबदार), तपाने और छेदनेमें (कसौटीपर घिसने आदि) में श्वेत, नरम, शंखके समान उज्ज्वल और मसृण (कर्कशतारहित) और जिसमें गड्डे वगैरह न हों ऐसा रूपा श्रेष्ठ होता है । जो तपानेपर लाल, पीला या काला दीखता हो, रूखा हो, फूटकर बिखरनेवाला, वजनमें हलका, मोटे अँगवाला और कर्कश (खरदरा) ऐसा आठ प्रकारका रूपा त्याज्य है । रूपा-विपाकमें मधुर, कषैला, अम्लरसान्वित, शीतल, सारक, लेखन, रुचिकारक, स्निग्ध, वात और कफको नष्ट करनेवाला, जठराग्निको दीपन करनेवाला, बलकारक, अवस्थाको स्थिर करनेवाला और मेधाशक्तिको बढानेवाला है । रूपा-शीतल, कषैला, खट्टा स्निग्ध, वातनाशक, भारी और यह रसायनविधिसे सेवन करनेपर सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है ॥ २२-२९ ॥

रौप्यशोधन ।

तैले तक्रे गवां मूत्रे ह्यारनाले कुलत्थजे ।
क्रमान्निषेचयेत्तप्तं द्रावे द्रावे तु सप्तधा ॥
स्वर्णादिलोहपत्राणां शुद्धिरेषा प्रशस्यते ॥ ३० ॥
आयुः शुक्रं बलं हंति तापविड्बंधरोगकृत् ।
नागेन टंकणेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति ॥ ३१ ॥
अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतोऽन्यथा ।
तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे ॥ ३२ ॥

खर्परे भस्मचूर्णाभ्यां परितः पालिकां चरेत् ।
तत्र रूप्यं विनिक्षिप्य समसीससमन्वितम् ॥ ३३ ॥
जातसीसक्षयं यावद्धमेत्तावत्पुनः पुनः ।
इत्थं संशोधितं रूप्यं योजनीयं रसादिषु ॥ ३४ ॥

रौप्यशोधन–रूपेके पतले पत्र करके अग्निमें तपा २ कर तेल, तक्र, गोमूत्र, काँजी और कुलत्थीके काढेमें क्रमसे सात सात वार बुझानेसे रूपा शुद्ध होता है । सुवर्णादि अन्य धातुओंकी भी इसी प्रकार शुद्धि होती है । रूपेको गलाकर उसमें समान भाग सीसा और सुहागा डालकर उसको छानलेनेसे रूपेकी शुद्धि होती है । अशुद्ध रूपेके दोष–अशुद्ध और मारण नहीं किया हुआ (कच्चा अशुद्ध) रूपा आयु, शुक्र और बलका नाश करता है । शरीरमें संताप मलावरोध (कोष्ठबद्धता) और नाना प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है । इस कारण रूपेका प्रथम उत्तम प्रकारसे संशोधन कर पश्चात् उसका मारण करके सर्व कामोंमें लाना चाहिये । अन्य प्रकारसे रूपेका शोधन–रूपेके पतले पत्र करके उनको तीन दिनतक मालकांगुनीके तेलमें भिजोकर रखे पश्चात् चौथे दिन मट्टीके खीपडेमें चूना और राख इनकी पाली बनाकर उसमें रूपा और उसकी बराबर सीसा डालकर धौंकनीसे फूंके । जबतक सीसा गलकर रूपेमें न मिलजाय तबतक बराबर फूँकता रहे । इस प्रकार करनेसे रूपेकी शुद्धि होती है । और इस शुद्ध रूपेको सम्पूर्णरस रसायनादि कार्योंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३०–३४ ॥

रौप्य भस्म ।

लकुचद्रवसूताभ्यां तारपत्रं प्रलेपयेत् ॥ ३५ ॥
ऊर्ध्वाधो गंधकं दत्त्वा मूषामध्ये निरुध्य च ।
स्वेदयेद्वालुकायंत्रे दिनमेकं दृढाग्निना ॥ ३६ ॥

स्वांगशीतां च तां पिष्टीं साम्लतालेन मर्दिताम् ।
पुटेद्द्वादशवाराणि भस्मीभवति रूप्यकम् ॥ ३७ ॥
माक्षीकचूर्णलुंगांबुमर्दितं पुटितं शनैः ।
त्रिंशद्वारेण तत्तारं भस्मसाज्जायतेतराम् ॥ ३८ ॥
भाव्यं ताप्यं स्नुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ३९ ॥
तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जंबीरजद्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ ४० ॥
शोधयेदंधयंत्रे तात्रिंशदुपलकैः पचेत् ।
चतुर्दशपुटैरेवं निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

पारेकी भस्मको लेकर बडहलके रसमें खरल करके उसका रूपेके पत्रोंके ऊपर लेप करे । पश्चात् उन पत्रोंको एक मूषामें ऊपर नीचे गंधकका चूर्ण बिछाकर रखे और उसकी संधियोंको अच्छे प्रकारसे कपडमट्टी आदिसे बंद करके वालुका यंत्रमें आठ प्रहरतक तीव्र अग्नि देवे । स्वांगशीतल होनेपर रूपेके पत्रोंको पीसकर बारीक चूर्ण करले, फिर उसमें समान भाग शुद्ध तपकी हरताल डालकर नींबूके रसमें खरल करके संपुटमें रखकर गजपुटमें फूंके । इस प्रकार बारह पुट देनेसे रूपेकी भस्म होजाती है । रूपेका चूर्ण और सोनामाखीका चूर्ण दोनोंको बिजौरे नींबूके रसमें खरल करके गजपुट देवे । इस प्रकार तीस पुट देनेसे रूपेकी उत्तम भस्म होजाती है । अथवा सोना-माखीके चूर्णको थूहरके दूधमें खरल करके उसका रूपेके पत्रोंके ऊपर लेप करदेव । पश्चात् उनको सम्पुटमें बंद करके गजपुटमें फूंके । इस प्रकार करनेसे शीघ्र ही चाँदीकी निरुत्थ भस्म होती है । शुद्ध रूपेके पत्तर चार भाग लेकर उनपर एक भाग शुद्ध हरतालको

नींबूके रसमें घोटकर लेप कर देवे । पश्चात् उन्हें गर्भ यंत्रमें रखकर नीस उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार चौदह पुट देनेसे रूपेकी निरुत्थ भस्म होती है ॥ ३५-४१ ॥

रौप्य रसायन ।

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समौ व्योमभानू
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटुकवरं सारघाज्येन युक्तम् ॥
लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥ ४२ ॥

रूपेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और ताम्रभस्म ये तीनों समान भाग और सबकी बराबर त्रिकुटेका चूर्ण सबको एकत्र खरल करके उत्तम प्रकारसे मिलाकर रखदेवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल उचित मात्रासे लेकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे । यह राजयक्ष्मा, पांडुरोग, उदररोग, अर्श श्वास, खांसी, नेत्रविकार और सब प्रकारके पित्तरोगोंका नाश करता है ॥ ४२ ॥

रौप्यद्रुति ।

सप्तधा नरमूत्रेण भावयेद्देवदालिकाम् ।
तच्चूर्णवापमात्रेण द्रुतिः स्यात्स्वर्णतारयोः ॥ ४३ ॥

देवदाली (बंदाल) के फूलोंके चूर्णको नरमूत्रमें सात वार भावना देकर पश्चात् सोना या चांदीको अग्निपर गलाकर उसमें डाले इन दोनों धातुओंका द्रावण होता है ॥ ४३ ॥

ताम्र (तांबा) ।

म्लेच्छं नेपालकं चेति तयोर्नैपालकं वरम् ।
नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥
सितकृष्णारुणच्छायमतिवाभि कठोरकम् ।
क्षालितं च पुनः कृष्णमेतन्म्लेच्छकताम्रकम् ॥४५ ॥
सुस्निग्धं मृदुलं शोणं घनाघातक्षमं गुरु ।

निर्विकारं गुणश्रेष्ठं ताम्रं नेपालमुच्यते ॥ ४६ ॥
पाण्डुरं कृष्णशोणं च लघुस्फुटनसंयुतम् ।
रूक्षांगं सदलं ताम्रं नेष्यते रसकर्मणि ॥ ४७ ॥
ताम्रं तिक्तकषायकं च मधुरं पाकेऽथ वीर्योष्णकं
साम्लं पित्तकफापहं जठररुक्कुष्ठामजंत्वंतकृत् ॥
ऊर्ध्वाधःपरिशोधनं विषयकृत् स्थौल्यापहं क्षुत्करं ।
दुर्नामक्षयपाण्डुरोगशमनं नेत्र्यं परं लेखनम् ॥ ४८ ॥
अशुद्धं ताम्रमायुघ्नं कांतिवीर्यबलापहम् ।
वांतिमूर्च्छाभ्रमोत्क्लेदं कुष्ठं शूलं करोति तत् ॥४९ ॥
उत्क्लेदभेदभ्रमदाहमोहास्ताम्रस्य दोषाः खलु
दुर्धरास्ते ॥ विशोधनात्ताद्विगतस्वदोषं सुधासमं
स्याद्रसवीर्यपाके ॥ ५० ॥

तांबा दो प्रकारका है । एक म्लेच्छ नामवाला और दूसरा नैपाल-संज्ञक । इन दोनों ताम्रोंमें नैपालताम्र श्रेष्ठ है, नैपालप्रदेशमें होनेवाले ताम्बेके सिवा अन्य देशोंकी खानोंमें उत्पन्न होनेवाले समस्त ताम्र म्लेच्छ कहे जाते हैं । जिस ताम्बेमें सफेद, काली और लाल झलक हो, जो कठिन हो, और जो उत्तम प्रकारसे धोनेपर भी फिर काला होजाय उसको म्लेच्छताम्र कहते हैं । यह अत्यन्त वमनकारक है । जो अत्यन्त चिकना, नरम, लाल, घनकी चोटसे नहीं टूटनेवाला, वजनमें भारी और जिसका वर्ण बिगडकर काला न पडता हो ऐसा ताम्र नैपाली ताम्र कहा जाता है । यह गुणोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ है । जो साधारण रूपसे सफेद और पीले कुछ मिले हुए रंग, काला और लाल रंगका, वजनमें हलका, घन आदिकी चोटसे टूटकर बिखरने-वाला, रूखा (खरखरा) और पत्रोंयुक्त ऐसा तांबा रसकर्ममें उत्तम

नहीं है । ताम्रके गुण–तांबा कडवा, कषैला, पाकमें मधुर, उष्ण-वीर्य, अम्ल, पित्तकफनाशक, एवं उदररोग, कुष्ठ, आम, कृमि, विष, यकृत्वृद्धि, स्थूलता, बवासीर, राजयक्ष्मा और पाण्डुरोगको नष्ट करनेवाला है । वमन और विरेचन करनेवाला, क्षुधाको उत्पन्न करनेवाला, नेत्रोंको हितकारी और अत्यन्त लेखन है । अशुद्ध ताम्रके दोष–अशुद्ध तांबा, आयुनाशक एवं शरीरकी कांति, वीर्य और बलका नाश करनेवाला एवं वमन, मूर्च्छा, भ्रम, उत्क्लेश (उबकाई) कुष्ठ और शूलको उत्पन्न करता है ताम्रमें उत्क्लेद (उबकाई), भेद (दस्त), भ्रम, दाह और मोह उत्पन्न करना आदि अतिदुर्धर दोष रहते हैं । परन्तु इसकी यथाविधिसे शुद्धि कर ली जाय तो उक्त सब दोष नष्ट हो जाते हैं । और यह रस, वीर्य और विपाकमें अमृतके समान गुणकारी हो जाता है ॥ ४०–५० ॥

ताम्रकी शुद्धि ।

ताम्रं क्षाराम्लसंयुक्तं द्रावितं दत्तगैरिकम् ।
निक्षिप्तं महिषीतक्रे छगणे सप्तवारकम् ।
पंचदोषविनिर्मुक्तं भस्मयोग्यं हि जायते ॥ ५१ ॥
ताम्रनिर्मलपत्राणि लिप्त्वा निंबांबुसिंधुना ।
ध्मात्वा सौवीरकक्षेपाद्विशुध्यत्यष्टवारतः ॥ ५२ ॥
निंबांबुपटुलिप्तानि तापितान्यष्टवारकम् ।
विशुध्यंत्यर्कपत्राणि निर्गुंड्यारसमज्जनात् ॥ ५३ ॥
गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
शुद्ध्यते नात्र संदेहो मारणं चाप्यथोच्यते ॥ ५४ ॥

ताम्रशोधन–ताम्रचूर्ण, जवाखार और गेरू इन सबको एकत्र नींबूके रसमें घोटकर अग्निपर गलाकर भैंसके तक्र और भैंसके गोबरके रसमें सात सात वार बुझावे । इस प्रकार करनेसे तांबेकी शुद्धि

हो जाती है । और उसके वांति प्रभृति पंच दोष नष्ट होकर वह भस्म करने योग्य हो जाता है अथवा तांबेके पतले पत्र करके उनको नींबूके रसमें खरल करके उनपर सैंधे नमकका लेप करदेवे। फिर उनको अग्निमें, तपावे जब खूब लाल हो जांय तब कांजीमें बुझादेवे । इस प्रकार आठ बार करनेसे तांबेकी शुद्धि होती है। अथवा उपर्युक्त विधिसे तांबेके पत्रोंको अग्निमें तपा तपाकर निर्गुण्डी (सिम्हालू) के रसमें आठ बार बुझानेसे वे शुद्ध होते हैं। अथवा तांबेके पत्रोंको गोमूत्रमें डालकर खूब तेज अग्निसे एक प्रहरतक पकानेसे वे निश्चय शुद्ध हो जाते हैं । आगे तांबेका मारण कहा जाता है ॥ ५१-५४ ॥

ताम्रभस्म ।

जंबीररससंपिष्टरसगंधकलेपितम् ।
शुल्बपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पंचताम् ॥ ५५ ॥
अथवा मारितं ताम्रं मम्लेनैकेन मर्दितम् ।
तद्गोलं सूरणस्यांता रुद्धा सर्वत्र लेपयेत् ॥ ५६ ॥
शुष्कं गजपुटे पच्यात्सर्वदोषहरं भवेत् ।
वांतिं भ्रांतिं विरेकं च न करोति कदाचन ॥ ५७ ॥
ताम्रपत्राणि सूक्ष्माणि गोमूत्रे पंचयामकम् ।
क्षिप्त्वा रसेन भाण्डे तद् द्विगुणं देहि गंधकम्॥५८॥
अम्लपर्णीं प्रपिष्याथ ह्यभितो देहि ताम्रके ।
सम्यङ् निरुध्य भांडे तमग्निं ज्वालय यामकम्॥५९ ॥
भस्मीभवति ताम्रं तद्यथेष्टं विनियोजयेत् ॥ ६० ॥
सूताद् द्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसः प्लुतम् ।
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिक्षिपेत्॥ ६१ ॥
छन्नं शरावकेणैतत्तदूर्ध्वं लवणं न्यजेत् ।

मुखे शरावकं दत्त्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥
अवचूर्ण्यैव तच्छुल्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
पिप्पलीमधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ६३ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं अग्निमांद्यमरोचकम् ।
गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलं च पक्तिसंज्ञकम् ॥ ६४ ॥
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ।
रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ।
रसे रसायने ताम्रं योजयेद्युक्तमात्रया ॥ ६५ ॥

ताम्रभस्म-शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र नींबूके रसमें घोटकर उसका तांबेके पत्रोंके ऊपर लेप करके उनको शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटकी अग्नि देनेसे तीन पुटमें ताम्रकी भस्म हो जाती है । अथवा फिर उस तांबेकी भस्मको नींबूके रसमें खरल करके उसका गोला बनाकर एक जमीकंदके बीचमें चाकूसे चीरकर उसमें इस गोलेको रखकर ऊपरसे जमीकंदका गूदा भरकर कपरमट्टी आदिके द्वारा अच्छी तरह बंद करके सुखा देवे । सूख जानेपर गजपुटमें रखकर फूंके । इस प्रकार करनेसे तांबेकी निर्दोष भस्म होती है । और फिर वह वमन, भ्रम, विरेचन आदि विकारोंको कदापि उत्पन्न नहीं करता । अथवा तांबेके बारीक पत्र करके गोमूत्रमें पांच प्रहरतक पकावे । फिर अम्लपर्णी (नोनिया) के रसमें दुगुना गंधक डालकर खरल करके उसका गोला बनाकर एक मट्टीके बर्तनमें उक्त गोलेमें तांबेके पत्रोंको रखकर और उस बर्तनके मुखपर सकोरा ढकवार कपरमट्टी आदिसे अच्छे प्रकार बंद करके चूल्हेपर चढाकर एक प्रहरतक तीव्र अग्नि देवे, इससे तांबेकी उत्तम भस्म होती है । यह दोषरहित होनेके कारण सर्व रोगोंमें प्रयोग की जा सकती है । अथवा एक भाग पारा और दो भाग गंधक

दोनोंकी कज्जली तैयार करके उसमें गंधककी बराबर तांबेका चूर्ण मिलाकर घीग्वारके रसमें खरल करके गोला बनालेवे उस गोलेको एक मट्टीके बर्त्तनमें रखे और उसके ऊपर एक सिकोरा ढक देवे और सिकोरेके ऊपर नमक भरदेवे, फिर उस बर्तनके मुखपर एक दूसरा सिकोरा ढककर उसको चूल्हेपर चढाकर चार प्रहरतक तीव्र अग्नि देवे । इस योगसे तांबेकी उत्तम भस्म होती है । पश्चात् स्वांग शीतल होजानेपर उक्त गोलेको निकालकर पीसकर बारीक चूर्ण करले । इस भस्ममेंसे प्रतिदिन दो गुंजा परिमाण लेकर पीपल और मधुके अनुपानसे सम्पूर्ण रोगोंमें यथादोषानुसार प्रयोग करे । ताम्रभस्मके गुण । ताम्रभस्म—श्वास, खांसी, क्षय, पाण्डुरोग, मंदाग्नि, अरुचि, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, मूर्च्छा, शूल, परिणाम शूल और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए समस्त रोगोंको अनुपानके साथ दूर करती है, एवं उचित अनुपानके साथ यह धातुगत ज्वरको दूर करती है, इसे सब प्रकारके रस और रसायनकर्ममें युक्तिके साथ प्रयोग करना चाहिये ५९–६५॥

सोमनाथी ताम्रभस्म ।

शुल्बतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च ।
तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया ॥ ६६ ॥
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलसन्निभाम् ।
यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरांतरे ॥ ६७॥
कज्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत् ।
प्रपचेद्यामपर्यंतं स्वांगशीतं प्रचूर्णयेत् ॥ ६८ ॥
तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितम् ।
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम् ॥
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयम् ।
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद् ध्रुवमिदं श्रीसोमनाथाभिधम् ६९॥

पारा ८ तोले, गंधक ८ तोले, हरताल ४ तोले, मैनशिल२ तोले और शुद्ध किये हुए तांबेके पत्र ८ तोले लेवे । प्रथम ऊपर कहे हुए पारेसे लेकर मैनशिलतक चारों पदार्थोंकी खूब बारीक कज्जली तैयार करके एक शरावसम्पुटके बीचमें तांबेके पत्र रखकर और उनके ऊपर नीचे यह कज्जली बिछादेवे । पश्चात् गर्भयंत्रमें रख एक १ प्रहरतक तीक्ष्ण अग्नि देवे । स्वांग शीतल होनेपर खरलमें बारीक पीसकर चूर्ण करले । यह सोमनाथी ताम्र कहा जाता है । सोमनाथी ताम्रके गुण । यह सोमनाथी ताम्रभस्म चार गुञ्जा परिमाण लेकर यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल, उदररोग, उदरशूल, पांडुरोग, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, यकृत् क्षय, मंदाग्नि प्रमेह, अर्श और दुष्ट संग्रहणी रोगको नष्ट करती है ॥ ६६–६९ ॥

लौहम् (लोहा)

मुंडं तीक्ष्णं च कांतं च त्रिप्रकारमयः स्मृतम् ॥७०॥

लौह वर्णन–साधारणतः लोह मुंड, तीक्ष्ण और कान्त ऐसे तीन जातिका है । कान्त लोहको अयस्कांतभी कहते हैं ॥ ७० ॥

मुण्डलोह ।

मृदु कुण्ठं कडारं च त्रिविधं मुण्डमुच्यते ।
द्रुतद्रावमविस्फोटं चिक्कणं मृदु तच्छुभम् ॥७१॥
हतं यत्प्रसरेद् दुःखात्तत्कुण्ठं मध्यमं स्मृतम् ।
यद्धतं भज्यते भंगे कृष्णं स्यात्तत्कडारकम् ॥७२ ॥
मुण्डं परं मृदुलकं कफवातशूलमूलाममेहगदका-
मलपाण्डुहारि ॥ गुल्मामवातजठरार्तिहरं प्रदीपि
शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि ॥ ७३ ॥
अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कांतिविनाशि
निश्चितम् ॥ हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं
करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥ ७४ ॥

मुंडलोहके प्रकार भेद । मुंडलोहके मृदु, कुंठ और कंडारक ऐसे तीन भेद हैं । जो लौह अग्निपर तपानेसे शीघ्र गलजाता है, जो हथौडे या घनकी चोटसे फटता या विखरता नहीं, चिकना और नरम होता है उसको ' मृदुलोह ' कहते हैं । जो वहुत आघातसे वडी कठिनतासे बढता या फैलता है उसको ' कुंठ लोह ' कहते हैं । यह मध्यम गुणों-वाला है । और जो चोटके लगनेसे फटजाता है या टूटकर विखर-जाता है और जो तोडनेपर भीतरसे काले वर्णका निकलता है उसको ' कण्डारक लोह ' कहते हैं । मुंडलोहके गुण-मुंडलोहमें जो अत्यन्त मृदु लोह है वह कफ, वात, शूल, ववासीर, आम, प्रमेह, कामला, पांडुरोग, सूजन, गुल्म, आमवात और उदररोगको नष्ट करता है, जठराग्निको दीपन करता है, सूजनको दूर करता है, रुधिरको उत्पन्न करता है और कोठेको शुद्ध करता है । अशुद्ध लोहके सेवनके दोष-अशुद्ध लोहका सेवन करनेसे शरीरकी हानि होती है । आयु, बल और कान्तिका नाश होता है । हृदयमें पीडा उत्पन्न होती है और सम्पूर्ण शरीरमें शिथिलता उत्पन्न होकर अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इस कारण प्रथम लोहकी शुद्धि करके पश्चात् उसका मारण करना चाहिये ॥ ७१-७४ ॥

तीक्ष्णलोह ।

खरं सारं च ह्न्नालं तारावट्टं च वाजिरम् ।
काललोहाभिधानं च पड्विधं तीक्ष्णमुच्यते ॥ ७५ ॥
परुषं पोगरोन्मुक्तं भंगे पारदवच्छवि ।
नमने भंगुरं यत्तत्खरलोहमुदाहृतम् ॥ ७६ ॥
वेगभं गुरुधारं यत्सारलोहं तदीरितम् ।
पोगराभासकं पांडुभूमिजं सारमुच्यते ॥ ७७ ॥
कृष्णपांडुवपुश्चंचुबीजतुल्योरुपोगरम् ।

छेदने चातिपरुषं हृन्नालमिति कथ्यते ॥ ७८ ॥
अंगच्छाया च वंगं च पोगरस्याभिधात्रयम् ॥
चिकुरं भंगुरं लोहात्पोगरं तत्परं मतम् ॥ ७९ ॥
पोगरैर्वज्रसंकाशैः सूक्ष्मरेखैश्च सांद्रकैः ।
निचितं श्यामलांगं च वाजीरं तत्प्रकीर्त्यते ॥ ८० ॥
नीलकृष्णप्रभं सांद्रं मसृणं गुरु भासुरम् ।
लोहाघातेऽप्यभंगात्मधारं कालायसं मतम् ॥ ८१ ॥
रूक्षं स्यात्खरलोहकं समधुरं पाकेऽथवीर्ये हिमं
तिक्तोष्णं कफपित्तकुष्ठजठरप्लीहामपांड्वार्तिनुत् ॥
सद्यः शूलयकृद्गदक्षयजरामेहाम्रवातापहं
दीप्तं चातिरसायनं बलकरं दुर्नामदाहापहम् ॥ ८२ ॥
खरलोहात्परं सर्वमेकैकस्माच्छतोत्तरम् ॥ ८३ ॥

तीक्ष्ण लोह ६ प्रकारका है । १ खर, २ सार, ३ हृन्नाल, ४ तारा-वट्ट, ५ वाजिर और ६ काललोह । इनमें खरलोह कठिन होता है और उसमें रेखा अथवा कठिन तन्तु स्पष्ट नहीं दीखते और तोडनेपर वह भीतरसे पारेके समान चमकदार दिखाई देता है, और नवाने पर टूट जाता है जिस लोहेकी धार पतली होनेके कारण थोडेसे आघातसे ही मुडजाती है, उसको सारलोह कहते हैं । इसमें कुटिल रेखायें स्पष्ट दीखती हैं और यह पीली भूमिकी खानमें उत्पन्न होता है । जिसका काला और कुछ पीला मिश्रित वर्ण हो, जिसमें चंचुबीज अर्थात् चेंचु-नाके बीजके समान कुटिल रेखायें पडती हों और जो तोडनेमें अत्यन्त कठिन हो, उसको हृन्नाल लोह कहते हैं । अंग, छाया और वंग ये ऊपर कहे पोगरके तीन पर्याय हैं । यह पोगर चमकदार और मुडने-वाला होता है, इस कारण ऐसे लोहके भागको पोगर कहते हैं जिस

लोहेका पोगर वज्रके समान कठिन, चमकदार और सूक्ष्म रेखाओंसे युक्त हो, घन और वजनदार हो और जिसका वर्ण नीला कान्ति-युक्त हो उसको वाजीर नामक तीक्ष्णलोह जानना । जो नीला अथवा काले रंगका, वजनदार, चिकना, कान्तियुक्त और लोहेके आघातसे भी जिसकी धार न टूटती हो, उसे काललोह कहते हैं । खर लोह–रूखा, पाकमें मधुर, शीतवीर्य, कडवा, गरम, कफ, पित्त, कुष्ठ, उदररोग, प्लीहा, आम, पाण्डुरोग, शूल, यकृत, राजयक्ष्मा, जरा (बुढापा) प्रमेह और आमवात इन सब रोगोंको नष्ट करता है । अति उत्तम रसायन है, अग्निको दीपन करता है, बलको बढाता है एवं ववासीर और दाहको दूर करता है । तीक्ष्णलोहके अन्य भेद खरलोहकी अपेक्षा क्रमसे सौ सौ गुना अधिक गुणवाले जानने चाहिये ॥ ७९–८३ ॥

कान्तलोहके भेद ।

भ्रामकं चुंबकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा ।
एवं चतुर्विधं कांतं रोमकांतं च पञ्चमम् ॥ ८४ ॥
एकद्वित्रिचतुष्पंचसर्वतोमुखमेव तत् ।
पीतं कृष्णं तथा रक्तं त्रिवर्णं स्यात्पृथक् पृथक् ।
क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८५ ॥
स्पर्शवेधि भवेत्पीतं कृष्णं श्रेष्ठं रसायने ।
रक्तवर्णं तथा चापि रसबंधे प्रशस्यते ॥ ८६ ॥
भ्रामकं तु कनिष्ठं स्याच्चुंबकं मध्यमं तथा ।
उत्तमं कर्षकं चैव द्रावकं चोत्तमोत्तमम् ॥ ८७ ॥
भ्रामयेल्लोहजातं यत्तत्कांतं भ्रामकं मतम् ।
चुंबयेच्चुंबकं कांतं कर्षयेत्कर्षकं तथा ॥ ८८ ॥

साक्षाद्यद्द्रावयेल्लोहं तत्कांतं द्रावकं भवेत् ।
तद्रोमकांतं स्फुटिताद्यतो रोमोद्गमो भवेत् ॥ ८९ ॥
कनिष्ठं स्यादेकमुखं मध्यं द्वित्रिमुखं भवेत् ।
चतुष्पंचमुखं श्रेष्ठमुत्तमं सर्वतोमुखम् ॥ ९० ॥
भ्रामकं चुंबकं चैव व्याधिनाशे प्रशस्यते ।
रसे रसायने चैव कर्षकं द्रावकं हितम् ॥ ९१ ॥
मत्तोन्मत्तगजः सूतः कांतमंकुशमुच्यते ।
क्षेत्रं ज्ञात्वा ग्रहीतव्यं तत्प्रयत्नेन धीमता ॥ ९२ ॥
मारुताऽऽतपविक्षिप्तं वर्जयेन्नात्र संशयः ॥ ९३ ॥

कान्तलोह ५ प्रकारका होता है। जैसे—भ्रामक, चुम्बक, कर्षक, द्रावक और रोमकान्त । प्रत्येकके एक मुख, दो तीन मुख, चार मुख पाँच मुख और सर्वमुख होनेसे छः २ भेद होते हैं । और प्रत्येक पीला, काला, लाल इन वर्णोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है । इन प्रत्येकके क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये अधिष्ठातृ देवता हैं । इनमें पीला कान्तलोह स्पर्शमात्रसे ही अन्यधातुओंको सुवर्ण बनादेता है । कृष्णवर्णका कान्तलोह रसायन कर्ममें उत्तम है और लाल रंगका पारे आदिके बाँधनेमें श्रेष्ठ है । उपर्युक्त कान्तलोहोंमें भ्रामक नामवाला कान्तलोह गुणोंमें हीन, चुम्बक लोह मध्यम, कर्षक उत्तम और द्रावक नामवाला कान्तलोह उत्तमोत्तम कहा है । जो कान्तलोह अपने गुणोंसे अन्य लोहोंको भ्रमाता (चंचल करता) है, उसे भ्रामक कहते हैं । जो दूसरे लोहोंको स्पर्श करते ही चिपट जाता है, उसको चुम्बक कहते हैं । जो दूसरे लोहोंको अपने पास आकर्षित करता (खींचलेता) है, उसे कर्षक कहते हैं। जिसके संयोगसे अन्य लोह द्रवीभूत होजाते हैं, उसको द्रावक कहते हैं और जिस कान्तलोहको तोडनेपर बालोंके समान तन्तु दिखलाई दें, उसको रोमकान्त लोह कहते

हैं। एक मुखवाला कान्तलोह अधम दो और तीन मुखवाला मध्यम, चार और पाँच मुखवाला श्रेष्ठ और सर्वतोमुखवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है। भ्रामक और चुम्बक ये दो प्रकारका लोह रोगोंके नाश करनेमें श्रेष्ठ है। कर्षक और द्रावक लोह रस और रसायन कर्ममें श्रेष्ठ हैं। हाथीरूपी मदोन्मत्त पारेके लिये कान्तलोहरूपी अंकुश है। कान्तलोह उत्तम खानका ग्रहण करना चाहिये जो धूप (गरमी) हवा, सर्दी आदिमें पडा रहनेसे गुणहीन होगया हो ऐसे कान्तलोहको कार्यमें नहीं लेना चाहिये ॥ ८४-९३ ॥

कान्तलोहके लक्षण ।

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिंदुर्न लिप्तं
गंधं हिंगु त्यजति च तथा तिक्ततां निंबकल्कः ।
पाके दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ
कांतं लोहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं च नान्यत् ॥९४ ॥

जिसके जलसे भरे हुए पात्रमें तेलकी बूँदें डालनेसे फैलें नहीं, और न वह पात्र तेलसे सने, हींग अपनी गन्धको छोड दे और नीमका कल्क अपने कडुवेपनको छोड दे और जिसके पात्रमें दूधको पकानेसे वह शिखराकार होकर ऊपरको उफनकर जाय किन्तु वर्त्तनमेंसे नीचेको भूमिपर नहीं गिरे, उसे कान्तलोह कहते हैं ॥ ९४ ॥

कान्तलोहके गुण ।

कांतायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदं
स्निग्धं मेहहरं त्रिदोषशमनं शूलाऽऽमशूलापहम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनु-
त्तिक्तोष्णं हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ९५॥
सम्यगौषधकल्पानां लोहकल्पः प्रशस्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धं लोहं च मारयेत् ॥ ९६ ॥

नायः पचेत्पंचपलादर्वाग्नूर्ध्वं त्रयोदशात् ।
आदौ मंत्रस्ततः कर्म कर्तव्यं मंत्र उच्यते ॥ ९७ ॥
" ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा " अनेन लोहमारणम् ।
लक्षोत्तरगुणं सर्वं लोहं स्यादुत्तरोत्तरम् ।
कांतं कोटिगुणं तत्र तदप्येवं गुणोत्तरम् ॥ ९८ ॥

कान्तलोह अत्यन्त उत्तम रसायन है । स्वस्थ (निरोग) शरीरमें सेवन करनेसे आयुको बढाता है । स्निग्धवीर्य है प्रमेह त्रिदोष, शूल, आम, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, क्षय, पाण्डु और उदररोग इन सब व्याधियोंको नष्ट करता है । एवं कडवा, गरम, शीतवीर्य और नाना प्रकारके योगोंके साथ प्रयोग करनेसे सब प्रकारके रोगोंको दूर करता है । सम्पूर्ण औषधकल्पोंमें लोहकल्प अत्यन्त श्रेष्ठ है, इसलिये यत्नपूर्वक उत्तम शुद्ध लोहको लेकर मारना चाहिये । कान्तलोहको भस्म करनेके लिये पांच पल (२० तोले) से कम और तेरह पल (५२ तोले) से अधिक एकबारमें नहीं लेना चाहिये । प्रथम मंत्रका जप करे, फिर लोहका मारण करे । वह मन्त्र यह है-"ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा " इस मन्त्रको पढकर पश्चात् लोह, मारण क्रिया करनी चाहिये । प्रत्येक लोह मुण्डादि भेदक्रमसे एक दूसरेकी अपेक्षा लक्षाधिक गुणोंवाले हैं, उनमेंभी कान्तलोह करोड गुना अधिक गुणोंवाला है ॥ ९७-९८ ॥

सर्वलोहशुद्धि ।

शशक्षतजसंलिप्तं त्रिवारं परितापितम् ।
मुण्डादिसकलं लोहं सर्वदोषान्विमुंचति ॥ ९९ ॥
क्राथ्यमष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम् ।
तत्काथे पादशेषे तु लोहस्य पलपंचकम् ॥ १०० ॥

कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ।
एवं प्रलीयते धातुर्गिरिजो लोहसंभवः ॥ १०१ ॥
सामुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु ।
त्रिफलाक्वथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ १०२ ॥
चिंचापत्रजलक्काथादयोदोषमुदस्यति ।
यद्वा फलत्रयोपेतं गोमूत्रे क्वथितं खलु ॥ १०३ ॥

प्रथम लोहेके (चाहे किसी प्रकारका लोहा हो) छोटे छोटे टुकडे या पत्र करके उनके ऊपर खरगोशके रुधिरका लेप करके अग्निमें तपावे । इस प्रकार तीन वार करनेसे लोहके सम्पूर्ण दोप दूर होकर सब लोहे शुद्ध होजाते हैं । दूसरी विधि–२० तोले लोहेके पत्रोंको तपाकर ६४ तोले त्रिफलेके आठगुने जलमें किये हुए चतुर्थांश शेष क्वाथमें बुझावे । इस प्रकार सात वार बुझानेसे लोहेके खनिजदोष दूर होजाते हैं । तीसरी विधि–उपर्युक्त त्रिफलेका क्वाथ बनाकर उसमें समुद्रनमक डालकर लोहेके पत्रोंको तपाकर ७ बार बुझावे, तब लोहा शुद्ध होता है । चौथी विधि–इमलीके पत्तोंका रस निकालकर अथवा इमलीके पत्तोंका क्वाथ बनाकर या गोमूत्रसे सिद्ध किये हुए त्रिफलेके क्वाथमें लोहेके पत्रोंको तपा २ कर सात बार बुझावे तो सर्व प्रकारके लोह शुद्ध होते हैं ॥ ९९-१०३ ॥

सर्वलोहभस्मविधि ।

रेतितं घृतसंयुक्तं क्षिप्त्वाऽयः खर्परे पचेत् ।
चालयेल्लोहदण्डेन यावत्क्षिप्तं तृणं दहेत् ॥ १०४ ॥
पिष्ट्वा पिष्ट्वा पचेदेवं पंचवारमतः परम् ।
धात्रीफलरसैर्यद्वा त्रिफलाक्वथितोदकैः ।
पुटेल्लोहं चतुर्वारं भवेद्वारितरं खलु ॥ १०५ ॥

स्नेहाक्तं लोहरजो मूत्रे स्वरसेऽपि त्रिफलात्रिणाम् ।
पृथगेवं सप्तकृत्वो भर्जितमखिलामये योज्यम् ॥ १०६ ॥
तीक्ष्णलोहस्य पत्राणि निर्दलानि हठेऽनले ।
ध्मात्वा क्षिपेज्जले सद्यः पाषाणोलूखलोदरे ॥ १०७ ॥
खण्डयेद्घाटनैर्घातैः स्थूलया लोहपारया ।
तन्मध्ये स्थूलखण्डानि रुद्ध्वा मल्लद्वयान्तरे ॥ १०८ ॥
ध्मात्वा क्षिप्त्वा जले सम्यक् पूर्ववत्खण्डयेत्खलु ।
तच्चूर्णं सूतगंधाभ्यां पुटेद्विंशतिवारकम् ॥ १०९ ॥
पुटे पुटे विधातव्यं पेषणं दृढवत्तरम् ।
एवं भस्मीकृतं लोहं तत्तद्रोगेषु योजयेत् ॥ ११० ॥
हिंगुलस्य पलान्पंच नारिकेलान्येन पेषयेत् ।
तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत्पलपंचकम् ॥ १११ ॥
रुद्ध्वा गजपुटैः पच्यात्कषायैस्त्रिफलैः पुनः ।
जंबीरैरारनालैश्च विंशत्यंशेन हिंगुलम् ॥ ११२ ॥
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पचेल्लोहं तद्द्रवैः पाचयेत्पुनः ।
चत्वारिंशत्पुटैरेवं कांतं तीक्ष्णं च मुण्डकम् ।
म्रियते नात्र संदेहो दत्त्वा दत्त्वैव हिंगुलम् ॥ ११३ ॥
अथ पूर्वोदितं तीक्ष्णं वसुभल्लकवासयोः ॥ ११४ ॥
पुटितं पत्रतोयेन त्रिंशद्वाराणि यत्नतः ।
शोणितं जायते भस्म कृतसिंदूरविभ्रमम् ॥ ११५ ॥
यद्वा तीक्ष्णदलोद्भूतं रजश्च त्रिफलाजलैः ।

पिष्ट्वा दत्त्वौदनं किंचिच्चक्रिकां प्रविधाय च ॥ ११६ ॥
शोषयित्वाऽतियत्नेन प्रपचेत्पंचभिः पुटैः ।
रक्तवर्णं हि तद्भस्म योजनीयं यथातथम् ॥ ११७ ॥
मत्स्याक्षीगंधबाह्लीकैर्लकुचद्रवपेषितैः ।
विलिप्य सकलं लोहं मत्स्याक्षीकल्कलेपितम् ११८॥
भस्त्राभ्यां सुदृढं ध्मात्वा त्रिशूलीनिर्गमावधि ।
अथोद्धृत्य क्षिपेत्क्वाथे त्रिफलागोजलात्मके॥ ११९ ॥
तस्मादाहृत्य संताड्य मृतमादाय लोहकम् ।
पुनश्च पूर्ववद् ध्मात्वा वारयेदखिलायसम् ॥१२० ॥
खण्डयित्वा ततो गंधगुडत्रिफलया सह ।
पुटैस्त्रिंशतिवाराणि निरुत्थं भस्म जायते ॥ १२१ ॥
समगंधमयश्चूर्णं कुमारीवारिभावितम् ।
पुटीकृतं कियत्कालमवश्यं म्रियते ह्ययः ॥ १२२ ॥
जंबीररससंयुक्ते दरदे तप्तमायसम् ।
बहुवारं विनिक्षिप्तं म्रियते नात्र संशयः ॥ १२३ ॥
गोमूत्रैस्त्रिफलाक्वाथ्या तत्कषायेण भावयेत् ।
त्रिःसप्ताहं प्रयत्नेन दिनैकं मर्दयेत्पुनः ॥ १२४ ॥
रुद्ध्वा गजपुटे पच्यात्दिनं क्वाथेन मर्दयेत् ।
दिवा मर्द्यं पुटेद्रात्रावेकविंशद्दिनावधि ।
एकविंशत्पुटैरेवं म्रियते त्रिविधं ह्ययः ॥ १२५ ॥
यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिंदुर्न सर्पति ।
तारेणावर्तते यत्तत्कांतलोहं तनूकृतम् ॥ १२६ ॥

अयसास्तुत्तमं सिंचेत्तप्तं तप्तं वरारसे ।
एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित्॥१२७॥
मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटानले ।
पचेत्तुल्यस्य वा ताप्यगंधाश्महरतेजसः ॥ १२८ ॥
ततं क्षाराम्लसंलिप्तं शशरक्तेन दापितम् ।
कांतलोहं भवेद्भस्म सर्वदोषविवर्जितम् ॥ १२९ ॥
शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं खल्वेन कृतकज्जलम् ॥
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १३० ॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य तद्गोलं कांस्यपात्रके ।
आच्छाद्यैरंडपत्रैश्च यामार्धेत्युष्णतां व्रजेत् ॥१३१ ॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रीदिनांते समुद्धरेत् ।
संपेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥ १३२ ॥
कांतं तीक्ष्णं च मुंडं च निरुत्थं जायते मृतम् ।
स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णं कृत्वा च लोहवत् ॥१३३ ॥
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां सुमुखागतः॥१३४॥
अनुभूतं मया सत्यं सर्वरोगजरापहम् ।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १३५ ॥

मुंडादि सब प्रकारके लोहोंको रेतीसे रेतकर, घीमें मिलाकर और खरल करके खीपरे (या लोहेके पात्र) में डालकर तीक्ष्ण अग्निसे पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय, जब उसमें तृण डालनेसे जलजाय तब लाल होनेपर उतार ले । इस प्रकार वारम्वार घीके साथ मिलाकरके पांच वार पकावे तो लोहेकी उत्तम वारितर (पानीमें तैरनेवाली) भस्म होती है । अथवा लोहेके पत्रोंको आमलोंके रसमें या त्रिफलेके

काढेमें भावना देकर शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूँक देवे । इस प्रकार चार बार पुट देनेसे लोहेकी निश्चय (वारितर) भस्म होती है। तीसरी विधि–घृत मिले हुए लोहेके चूर्णको गोमूत्र, हल्दी और आमलोंके स्वरसमें पृथक् पृथक् सात २ बार खरल करके भूने तो लोहेकी श्रेष्ठ भस्म हो जाती है । यह भस्म सब प्रकारके रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये । तीक्ष्णलोहके अत्युत्तम और सूक्ष्म पत्रोंको लेकर तेजअग्निमें तबतक पकावे जबतक वे लाल न होजायँ । फिर उन पत्रोंको तत्काल निकालकर जलसे भरी हुई पत्थरकी ओखलीमें बुझादेवे और उनको जलमेंसे निकालकर लोहेके दंडेसे ओखलीमें डालकर खूब खरल करे, फिर उन खरल किये हुए पत्रोंमेंसे बचे हुए मोटे २ टुकडोंको निकालकर शरावसम्पुटमें बन्द करके तीक्ष्ण अग्निमें तपाकर जलमें बुझावे और उक्त विधिसे उनको लोहेके दंडेसे चूर्ण करलेवे । इसके पश्चात् उस चूर्णमें समान भाग पारे गन्धककी कज्जली मिलाकर बीस बार शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँके । इस प्रकार बीस पुट दे, किन्तु प्रत्येक पुट देते समय उसमें नवीन कज्जली मिलाता जाय और उत्तम प्रकारसे खरल करता जाय । इस प्रकार की हुई लोहेकी भस्म सब प्रकारके रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये सिंगरफको पांच पल लेकर स्त्रीके दूधमें खरल करके उसके द्वारा पांच पल लोहेके पत्रोंको लेपन करे, फिर उनको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँकदेवे । फिर त्रिफलेका काढा, जम्बीरी नींबूका रस और कॉजी इनसे २० तोले सिंगरफको खरल करके उसका २० तोले लोहेके पत्रोंपर लेप कर उनको शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूँकदेवे, फिर उन्हीमें खरल कर पकावे । इस प्रकार बारम्बार सिंगरफको डाल २ कर ४० बार पुट देनेसे कान्त, तीक्ष्ण और मुंड इन तीनों प्रकारके लोहोंकी निस्सन्देह शुद्ध और निरुत्थ भस्म हो जाती है । पूर्वोक्त तीक्ष्णलोहके चूर्णको अरलूके पत्तोंके रस या काढेकी भावना देकर १९ बार गजपुटमें फूँके । इसी प्रकार अडूसेके पत्तोंके रस या काढेकी भावना देकर १९ बार गजपुटमें फूँके । इस तरह तीस बार पुट देनेसे सिन्दूरकी कान्तिके समान लाल

रंगकी शुद्ध भस्म होजाती है । अथवा तीक्ष्णलोहके चूर्णको त्रिफलेके पानीमें खरल करके उसमें भात मिलाकर टिकियाँ बनालेवे, उन टिकियोंको यत्नपूर्वक सुखाकर पूर्वोक्त विधिसे पांच बार गजपुटमें फूंके तो लालवर्णकी श्रेष्ठ भस्म होजाती है । उसको सब प्रकारके रोगोंमें व्यवहार करना चाहिये । आठवीं विधि–मछेछी, गन्धक, हींग, और बडहल इनके रसमें पीसे हुए इन्हींके कल्कसे लोहपत्रोंको लेपन करके उनको मछेछीकी लुगदीमें रखकर भट्टीमें तेज कोयलोंकी अग्निसे तबतक फूँके जबतक अग्निमें लाल, हरे, पीले आदि रंग दिखाई न दें । फिर उन पत्रोंको निकालकर समान भाग मिश्रित त्रिफलेके काढे और गोमूत्रमें बुझावे उसमेंसे निकालकर उस मृत लोहको खरल करके फिर पूर्वोक्त विधिसे तपाकर बुझावे और खरल करे । इसके पश्चात् उस लोहचूर्णके समान भाग गन्धक, गुड और त्रिफला लेकर उन सबके साथ उक्त चूर्णको खरल करके गोला बनाकर उसको गजपुटमें फूँकदेवे । इस प्रकार तीस बार पुट देनेसे लोहेकी निरुत्थ भस्म होजाती है । नववीं विधि-लोहेके चूर्णके बराबर गन्धक लेकर दोनोंको घीग्वारके रसमें खरल करके शरावसंपुटमें बन्द कर गजपुटमें फूँकदेवे । इस प्रकार आठ, दस बार पुट देनेसे लोहेकी अवश्य भस्म होजाती है । दशवीं विधि–नींबूके रसमें सिंगरफको खरल करके लोहेके पत्रोंपर लेपन कर उनको तपावे, इस प्रकार १० । १५ वार करनेसे निस्सन्देह लोह भस्म हो जाता है । ग्यारहवीं विधि–गोमूत्रमें त्रिफलेका काढा बनाकर उसमें लोहेके चूर्णको भावना देकर गजपुटमें दिनमें फूँके। इसमें उक्त क्वाथसे खरल करे और रात्रिको गजपुटमें फूँके इस प्रकार इक्कीस दिनतक अखण्ड २१ पुट देवे तो तीनों प्रकारके लोहोंकी भस्म होजाती है । बारहवीं विधि–जिस लोहेके जलसे भरे हुए पात्रमें तेलकी बूँद डालनेसे हिलानेपर भी नहीं फैले उसको कान्तलोह कहते हैं । इस कान्तलोहके बारीक पत्रोंको लेकर तेज अग्निसे तपाकर त्रिफलेके क्वाथमें बुझावे । इस प्रकार अनेक बार करनेसे शुद्ध हुए लोहको किसी अम्ल

पदार्थके द्वारा खरल करके फिर उसको चतुर्थांश पारेकी भस्मसे लेपन कर गजपुटमें फूँक देवे तो कान्तलोहकी भस्म होजाती है । कान्तलोहके पत्रोंको खरगोशके रुधिरसे लेपन कर तपावे और नमक मिश्रित नींबूके रसमें बुझावे । पश्चात् सुवर्णमाक्षिक, गन्धक, पारा इनको समभाग लेकर नींबूके रसमें खरल करके लोहेके पत्रोंपर लेप कर गजपुटमें फूँके तो सब दोषरहित कान्तलोहकी उत्तम भस्म होती है । एक भाग पारा और दो भाग गन्धककी कज्जली करके उस कज्जलीके बराबर भाग लोहेका चूर्ण लेवे दोनोंको घीग्वारके रसमें दो प्रहरतक खरल करके गोला बनालेवे । फिर उस गोलेको कांसीके पात्रमें रखकर अण्डके पत्तोंसे लपेटकर और तेज धूपमें आध प्रहर-तक सुखाकर तीन दिनतक धान्यराशिमें गाडकर रक्खे । पश्चात् उसको निकालकर खरल करके कपडेमें छानले तो कान्त तीक्ष्ण और मुण्ड इन सब प्रकारके लोहोंकी उत्तम वारितर और निरुत्थ भस्म होजाती है । इस लोहभस्मके समान ही स्वर्ण आदि धातुओंकी भस्म करनी चाहिये अनेक रसग्रन्थकार सिद्ध और आयुर्वेद जानने-वाले वैद्योंके मुखसे प्राप्त जो यह अत्यन्त विख्यात सिद्धयोग है । यह मेरा अनुभूत योग है । यह सब रोगों और बुढापेको नाश करता है । इसको त्रिफला और शहदके साथ सम्पूर्ण रोगोंमें व्यव-हार करना चाहिये ॥ १०४-१३५ ॥

लोहभस्मके गुण ।

कांतायः कमनीयकांतिजननं पाण्ड्वामयोन्मूलनं
यक्ष्मव्याधिनिबर्हणं गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ॥
नानाकुष्ठविनाशनं बलकरं वृष्यं वयःस्तम्भनं
सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नाऽपरम् ॥१३६॥
एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं लोहस्य दिव्यामृतं
सम्यक् सिद्धरसायनं त्रिकटुकीवेल्लाज्यमध्वान्वितम् ॥

हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
दिष्टं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः १३७॥
लोहं जंतुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामयस्थौ-
ल्याशोंग्रहणीज्वरार्तिकफजिच्छोफप्रमेहप्रणुत् ॥
गुल्मप्लीहविषापहं बलकरं कुष्ठाग्निमांद्यप्रणुत् सौ-
ख्यालं विरसायनं मृतिहरं किंहं च कांतादिवत् १३८॥
मृतानि लोहानि रसीभवंति निघ्नंति युक्तानि
महामयांश्च ॥ अभ्यासयोगाद् दृढदेहसिद्धिं
कुर्वंति रुग्जन्मजराविनाशम् ॥ १३९ ॥
पक्वजंबूफलच्छायं कांतलोहं तदुत्तमम् ॥ १४० ॥

कान्तलोहकी भस्म–सुन्दर कान्तिको उत्पन्न करती है, पाण्डु रोग, राजयक्ष्मा, कृत्रिमविष, त्रिदोषविकार और अठारह प्रकारके कुष्ठको नष्ट करती है। बलको बढाती है, वीर्यवर्द्धक, आयुको स्थापन करनेवाली, वाजीकरण, सर्वरोगनाशक और अत्युत्तम रसायन है। पृथ्वीमें अमृतके समान गुणकारी इससे बढकर दूसरा और कोई पदार्थ नहीं है। यह लोहभस्म अमृतके समान दिव्य और सिद्ध रसायन है। इसके सेवनसे मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। यह तीन मासे त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), वायविडंग, घी और शहदमें मिलाकर खानेसे जरा (बुढापा), मरण और सब प्रकारके रोगोंको नष्ट करती है और सत्पुत्रको देती है। श्रीमहादेवजीने पूर्वकालमें कालयवनके पिताको सन्तान होनेके लिये यह भस्म बनवाई थी, उसीके प्रभावसे कालयवन दैत्यकी उत्पत्ति हुई थी। यह लोहभस्म कृमिविकार, पांडु-रोग, वातरोग, क्षीणता, पित्तके रोग, स्थूलता, अर्श, संग्रहणी, ज्वर, कफ, शोथ, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, विष, कुष्ठ और मंदाग्नि इन सब रोगोंको नष्ट करती है, बलको बढाती है, सुखकारक, उत्तम रसायन

और मृत्युको हरनेवाली है । लोहेकी किट्ट (मंडूर) भी कान्तलोह-के समान ही गुणकारक है । भरी हुई लोह आदि धातुओंका रसायन कहते हैं । युक्तिपूर्वक सेवन की हुई रसायन बडे बडे कठिन रोगोंको नष्ट करदेती है । इसके नित्य सेवन करनेसे शरीर लोहेके समान दृढ होजाता है तथा वृद्धावस्था और जन्मजन्मान्तरगत अनेक प्रकारके राग नाश होते हैं । पकी जामुनके रंगके समान कान्तलोह उत्तम होता है ॥ १३६–१४० ॥

लोहद्रावण ।

त्रिःसप्तकृत्वो गोमूत्रे जालिनीभस्मभावितम् ।
शोषयेत्तस्य वापेन तीक्ष्णं मूषागतं द्रवेत् ॥ १४१ ॥
सुरदालिभस्मगलितं त्रिः सप्तकृत्वोऽथ गोजले शुष्कम् ।
वापेन सलिलसदृशं करोति मूषागतं तीक्ष्णम् १४२॥
सुरदालिभवं भस्म नरमूत्रेण गालितम् ।
त्रिःसप्तवारं तत्क्षारवापात्कांतद्रुतिर्भवेत् ॥ १४३ ॥
गंधकं कांतपाषाणं चूर्णयित्वा समं समम् ।
द्रुते लोहे प्रतीवापो देयो लोहाष्टकं द्रवेत् ॥ १४४ ॥
देवदाल्याद्रवैर्भाव्यं गंधकं दिनसप्तकम् ।
तेन प्रवापमात्रेण लोहं तिष्ठति सूतवत् ॥ १४५ ॥

कडवी तोरईकी भस्म (राख) को गोमूत्रमें २१ बार भावना देकर सुखालेवे, फिर लोहेकी मूषामें लोहेको गलाकर उसमें उक्त चूर्ण डालता जाय तो लोहका द्रावण होता है । अथवा कडवी बंदालकी भस्मको २१ बार गोमूत्रमें भावना देकर सुखालेवे, पश्चात् मूषायन्त्रमें लोहेको रखकर तीक्ष्ण अग्निसे तपावे और उक्त चूर्ण डालता जाय तो लोहेकी पानीके समान द्रुति होती है । अथवा कडवी बंदालकी भस्मको मनु-

व्यके मूत्रकी २१ भावना देकर उसका क्षार निकालले, पश्चात् अग्नि-पर लोह रखकर ऊपरसे क्षार डालकरके तपावे तो लोहद्रुति होती है । गन्धक और कान्तलोहको समान भाग लेकर चूर्ण करके तपते हुए लोहे-के ऊपर डाले तो लोहद्रुति होती है । इस प्रकार करनेसे आठों प्रकारके लोहोंकी द्रुति होजाती है । देवदालीके रसमें गन्धकको सात वार भावना देकर पूर्वोक्त रीतिसे लोहेके ऊपर डालनेसे लोहा पारेकी समान द्रवीभूत होजाता है ॥ १४१–१४५ ॥

अशुद्ध लोहेके दोष ।

अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कांति-विनाशि निश्चितम् ॥ हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥ १४६ ॥

अशुद्ध लोहेका सेवन करना हितकर नहीं है । अशुद्ध लोहेको सेवन करनेसे आयु, बल और कान्ति इनका नाश होता है, हृदयमें रोग और व्याकुलता उत्पन्न होती है और अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होती है, इसलिये लोहेको शुद्ध करके भस्म करना चाहिये ॥ १४६ ॥

लोहोंकी परस्पर गुणाधिकता ।

किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शतोन्मितम् । तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कांतं भक्षणात्कुरुते गुणान् ॥ १४७ ॥ तस्मात्कांतं सदा सेव्यं जरामृत्युहरं नृणाम् ॥ १४८ ॥ आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगप्रहर्ता मद-नस्य कर्ता । अयःसमानं न हि किंचिदन्य-द्रसायनं श्रेष्ठतमं हि जंतोः ॥ १४९ ॥

मुण्डलोह किट्टलोहेसे दसगुना अधिक गुणोंवाला है, तीक्ष्णलोह मुण्डसे सौगुना अधिक गुणोंवाला और कान्तलोह तीक्ष्णसे लाख-गुना अधिक गुणोंवाला है । ये लोह सेवन करनेसे इस प्रकार अधि-काधिकगुणोंको करते हैं । इसलिये मनुष्योंको बुढापा और मृत्युको

हरनेवाला, कान्तलोह सदैव सेवन करना चाहिये। आयुको बढानेवाला, बल वीर्यकी वृद्धि करनेवाला, रोगोंको हरनेवाला और कामदेवको बढा-नेवाला लोहेके समान दूसरा कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। यह रसायन प्रत्येक मनुष्यके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १४७-१४९ ॥

मण्डूर ।

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ।
सेचयेदक्षपात्रांतः सप्तवारं पुनः पुनः ॥
मंडूरोऽयं समाख्यातश्चूर्णं श्लक्ष्णं नियोजयेत् १५० ॥
गोमूत्रैस्त्रिफला क्वाथ्या तत्क्वाथे सेचयेच्छनैः ।
लोहकिट्टं सुसंतप्तं यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ।
तच्चूर्णं जायते पेष्यं मंडूरोयं प्रयोजयेत् ॥ १५१ ॥
ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुण्डकिट्टके ।
तस्मात्सर्वत्र मण्डूरं रोगशांत्यै प्रजोजयेत् ॥ १५२ ॥

लोहेसे पैदा हुए किट्टको बहेडेके कोयलोंकी तेज अग्निमें तपाकर, बहेडेके बने हुए पात्रमें गोमूत्र भरकर उसमें बुझावे । इस प्रकार सात बार करनेसे लोहकिट्ट शुद्ध होता है। इसको मण्डूर कहते हैं। इसका बारीक चूर्ण करके भस्म करे। मण्डूरके चूर्णको गोमूत्रके द्वारा सिद्ध किये हुए त्रिफलेके क्वाथमें भावना देकर तेज अग्निमें तबतक फूँके जबतक वह अपने आप जीर्ण न होजाय। फिर उसको खरल करलेवे। यह मण्डूर सब रोगोंमें प्रयोग करने योग्य है। जो गुण मारे हुए मुण्डलोहमें हैं वे ही गुण मुण्डकिट्टमें हैं, इस लिये रोगोंको शमन करनेके लिये सर्वत्र मण्डूरका प्रयोग करे ॥ १५०-१५२ ॥

वंगका शोधन, भेद व लक्षण ।

खुरक मिश्रकं चोति द्विविधं वंगमुच्यते ।
खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न हितं मतम् ॥ १५३ ॥

धवलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावं सगौरवम् ।
निःशब्दं खुरवंगं स्यान्मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ १५४ ॥
वंगं तिक्तोष्णकं रूक्षं ईषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च मेदोघ्नं कृमिनाशनम् ॥ १५५ ॥
द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्तं निर्गुंडिकारसे ।
विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवंगं न संशयः ॥ १५६ ॥
अम्लतक्रविनिक्षिप्तं वर्षाभूविषतिंदुभिः ।
कट्फलांबुगतं वंगं द्वितीयं परिशुद्ध्यति ॥ १५७ ॥
शुद्ध्यति नागो वंगो घोषो रविरातपेऽपि भूनिसंकुर्यैः ।
निर्गुण्डीरससेकैस्तन्मूलरजःप्रवापैश्च ॥ १५८ ॥

वंग दो प्रकारकी है-१ खुरवंग और २ मिश्र वंग । खुरवंग उत्तम गुणोंवाली है और मिश्रवंग गुणहीन है । खुरवंग श्वेत, कोमल, चिकनी, जल्दी द्रव होनेवाली, वजनदार और शब्दरहित है । मिश्र-वंग काली और श्वेतमिश्रित रंगकी है । वंगके गुण । वंग-कडवी, गरम, रूखी और कुछ वायुको कुपित करनेवाली है । प्रमेह, कफ, मेद और कृमिजनित रोगोंको नष्ट करती है । वंगशुद्धि । वंगको गलाकरके हल्दी मिले हुए निर्गुण्डीके रसमें बुझावे, इस प्रकार तीन बार करनेसे खुरवंग निस्सन्देह शुद्ध होजाती है और दूसरी मिश्र-वंग पुनर्नवा (साँठि) और कुचलेके चूर्णसे मिले हुए खट्टे तक्रमें बुझानेसे अथवा कायफलके काढेमें २ बार बुझानेसे शुद्ध होती है । रांग, सीसा, काँसी और ताँबा इनको निर्गुण्डीके रसमें डालकर मिट्टीके वर्त्तनमें भरकर ७ दिनतक धूपमें रखे । अथवा उक्त धातु-ओंको मट्टीके पात्रमें अग्निसे गलाकर उसमें निर्गुण्डीकी मूलका चूर्ण डालकर पकावे इस प्रकार सात बार करसेसे सम्पूर्ण लोह शुद्ध होते हैं ॥ १५३-१५८ ॥

वंगभस्म ।

सतालेनार्कदुग्धेन लिप्त्वा वंगदलानि च ।
बोधिचिंचात्वचः क्षारैर्दद्याल्लघुपुटानि च ॥ १५९ ॥
मर्दयित्वा चरेद्भस्म तद्रसादिषु शस्यते ।
प्रद्राव्य खर्परे वंगं षोडशांशं रसं क्षिपेत् ॥ १६० ॥
स्वल्पस्वल्पाऽऽलकं दत्त्वा भारद्वाजस्य काष्ठतः ।
मर्दयित्वा चरेद्भस्म तद्रसादिषु शस्यते ॥ १६१ ॥
पलाशद्रवयुक्तेन वंगपत्रं प्रलेपयेत् ।
तालेन पुटितं पश्चान्म्रियते नात्र संशयः ॥ १६२ ॥
भल्लाततैलसंलिप्तं वंगं वस्त्रेण वेष्टितम् ।
चिंचापिप्पलपालाशकाष्ठाग्नौ याति पञ्चताम् ॥ १६३ ॥

शुद्ध वंगके पतले पत्र करके उनके ऊपर आकके दूधमें घोटी हुई हरतालका लेप करे, फिर उनके नीचे, ऊपर पीपल और इमलीकी छालका खार बिछाकर दो सकोरोंमें बन्द करके लघुपुट देवे । इस प्रकार तीन, चार पुट देनेसे वंगकी भस्म होजाती है। फिर उसको खरलमें अच्छी तरह घोटकर शीशीमें भरकर रखदेवे यह रस रसायन कार्यमें विशेष उपयोगी है । दूसरी विधि–मट्टीके खीपरेमें वंगको कोयलोंकी अग्निके द्वारा गलाकर उसमें वंगका १६ वाँ हिस्सा शुद्ध पारा डाले, फिर उसमें थोडा थोडा शुद्ध हरतालका चूर्ण डालता जाय और उसको बराबर घोटता जाय, इस प्रकार करनेसे हरतालका चूर्ण सब अग्निमें जल जायगा; किन्तु इसके धुयेंसे आँख, नाक, मुँहको बचाये रखना चाहिये । पश्चात् जंगली कपासके डंडेसे घोटनेपर इसकी भस्म हो जाती है । यह भस्म रस और रसायन कार्यमें उपयोगी है । तीसरी विधि–ढाकके गोंदके साथ हरतालको खरल करके उसका वंगके पत्रोंपर लेप कर हलकी अग्निके द्वारा पुट देवे । इस प्रकार २

पुट देनेसे वंगकी उत्तम भस्म होजाती है । शुद्ध वंगके पत्रोंको लेकर उनपर भिलावेके तेलका लेप करके या उनको भिलावेके तेलमें भिजो-कर और गाढे कपडेमें बांधकर इमली, पीपल और ढाक इनमेंसे किसी एककी लकडियोंकी अग्निमें पुट देवे तो वंगकी अच्छी भस्म होती है । यदि अग्निकी न्यूनतासे या पत्रोंके मोटे होनेसे कुछ पत्र कच्चे रहजांय तो उनको फिर आकके दूध या इमलीके खार अथवा ढाकके गोंदके साथ खरल करके शरावसंपुटमें बन्द कर फिर गजपुटमें फूंके । इस प्रकार एक दो पुट देनेसे समस्त वंगकी उत्तम भस्म हो जाती है ॥ १५९–१६३ ॥

वंग रसायन ।

वंगभस्मसमं कांतं व्योमभस्म च तत्समम् ।
मर्दयेत्कनकांभोभिर्निंबपत्ररसैरपि ॥ १६४ ॥
दाडिमस्य मयूरस्य रसेन च पृथक् पृथक् ।
भूपालावर्तभस्माथ विनिक्षिप्य समांशकम् ॥ १६५ ॥
गोमूत्रकाशिलाधातुजलैः सम्यग्विमर्दयेत् ॥
ततो गुग्गुलुतोयेन मर्दयित्वा दिनाष्टकम् ॥ १६६ ॥
विशोष्य परिचूर्ण्याथ समभागेन योजयेत् ।
घृष्टं बंधुकनिर्यासैर्नाकुलीबीजचूर्णकैः ॥ १६७ ॥
ततः क्षिपेत्करण्डांतर्विधाय पटगालितम् ।
गोतक्रपिष्टरजनीसारेण सह पाययेत् ॥ १६८ ॥
चतुर्भिर्वल्लकैस्तुल्यं रम्यं वंगरसायनम् ।
निश्चितं तेन नश्यंति मेहा विंशतिभेदकाः ॥ १६९॥
शाल्यो मुद्गसूपं च नवनीतं तिलोद्भवम् ।
पटोलं तिक्ततुंडीरं तक्रं पथ्याय शस्यते ॥ १७० ॥

वंगभस्म, कान्तलोहभस्म और अभ्रकभस्म इन तीनोंको समान भाग लेकर धतूरेके पत्तोंके और नीमके पत्तोंके रसमें एक २ दिनतक खरल करे, फिर अनारके रस और चिरचिटेके रसकी एक एक भावना देवे । पश्चात् उसमें राजावर्त्त (रेवटी) की भस्म १ भाग मिलाकर गोमूत्र-गन्धविशिष्ट शिलाजीतके पानीकी १ भावना देवे । फिर शुद्ध गूगलके पानीकी आठ दिनतक भावना देकर सुखाकर चूर्ण कर लेवे । उस चूर्णको दुपहरियाके फूलोंके रसकी एक भावना देकर उसमें वंगभस्मकी बराबर सेमलके बीजोंका चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र खरल करलेवे और वस्त्रमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे । यह उत्तम वंगरसायन ४ वल्ल (१२ रत्ती) परिमाण लेकर हल्दीके चूर्ण और गौके तक्रके साथ सेवन करनी चाहिये । इसको सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह निश्चय नष्ट होते हैं । इस रसायनके सेवन करनेपर शालिचावलोंका भात मूँगकी दाल, नैनी घी, तिलका तेल, परवल, करेला, कडवी कन्दूरी और तक्र (मट्ठा) ये सब पथ्य हैं ॥ १६४–१७० ॥

नाग (सीसा) ।

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णसमुज्ज्वलम् ।
पूतिगंधं बहिः कृष्णं शुद्धं सीसमतोऽन्यथा ॥१७१ ॥
अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् ।
प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत् ॥१७२ ॥

जो अग्निपर डालनेसे शीघ्र तैजाय, अधिक वजनदार, तोडनेपर काला और चमकदार हो दुर्गन्धयुक्त और बाहरसे देखनेमें काला हो ऐसा सीसा श्रेष्ठ होता है–और इससे हीन लक्षणोंवाला सीसा हीन जानना । सीसेके गुण–सीसा अत्यन्त गरम, स्निग्ध, तिक्तरसवाला (कडवा), वातकफनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला तथा प्रमेह, जलके दोषसे उत्पन्न होनेवाले रोग और आमवातको नष्ट करनेवाला है ॥ १७१–१७२ ॥

सीसेकी शुद्धि ।

सिंदुवारजटाकौंतीहरिद्राचूर्णकं क्षिपेत् ।
द्रुते नागेऽथ निर्गुंड्यास्त्रिवारं निक्षिपेद्रसे ॥ १७३ ॥
नागः शुद्धो भवेदेवं मूर्च्छास्फोटादिनाचरेत् ॥१७४॥

सीसेको एक खीपरेमें डालकर अग्निपर चढाकर गलावे, फिर उसमें सिम्हालूकी जडका चूर्ण रेणुकाका चूर्ण और हलदीका चूर्ण डाले, जबतक ये चूर्ण जल न जायँ तबतक उसको चूल्हेपरसे न उतारे । फिर उसको निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें तीन वार बुझावे । इस प्रकार करनेसे सीसा शुद्ध होजाता है और वह मूर्च्छा, स्फोट (फोडे) आदि विकारोंको उत्पन्न नहीं करता ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

नागभस्म ।

तिर्यगाकारचुल्ल्यां तु तिर्यग्वक्रघटं न्यसेत् ।
तं च वक्रं विना सर्वं गोपयेद्यत्नतो मृदा ॥
अधृयंत्राभिधे तस्मिन्यंत्रे सीसं विनिक्षिपेत् ॥१७५॥
पलविंशतिकं नागमधस्तीव्रानलं क्षिपेत् ।
द्रुते नागे क्षिपेत्सूतं शुद्धं कर्षमितं शुभम् ॥१७६॥
घर्षयित्वा क्षिपेत्क्षारमेकैकं हि पलं पलम् ॥ ।
अर्जुनस्याक्षवृक्षस्य महाराजगिरेरपि ॥ १७७ ॥
दाडिमस्य मयूरस्य क्षिप्त्वा क्षारं पृथक्पृथक् ।
एकविंशतिरात्राणि पचेत्तीव्रेण वह्निना ।
विघट्टयन्दृढं दोर्भ्यां लोहदर्व्या प्रयत्नतः ॥ १७८ ॥
रक्तं तज्जायते भस्म कपोतच्छायमेव वा ।
नागं दोषविनिर्मुक्तं जायतेऽतिरसायनम् ॥ १७९ ॥

हृतमुत्थापितं सीसं दशवारेण सिध्यति।
तन्मृतं सीसकं सर्वदोषमुक्तं रसायनम् ॥ १८० ॥
अश्वत्थचिंचात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशतः।
क्षिपेन्नागं पचेत्पात्रे चालयेल्लोहचाटुना ॥ १८१ ॥
यावद्भस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्या मनःशिला।
कांजी रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ १८२ ॥
स्वांगशीतं पुनः पिष्ट्वा विंशत्यंशशिलायुतम्।
अम्लेनैव तु यामैकं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे।
एवं षष्टिपुटैः पक्को नागः स्यात्सुनिरुत्थकः ॥ १८३॥
शिलया रविदुग्धेन नागपत्राणि लेपयेत्।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते तथा ॥ १८४ ॥

तिरछे आकारवाला चूल्हा बनाकर उसपर एक घडा तिरछे करके रखे, घडेके मुँहको छोडकर उसके शेष सर्वांगको चारों तरफ मिट्टीसे लेकर ढकदेवे। इसको भ्राष्ट्रयन्त्र (भाड) कहते हैं। उस यन्त्रमें २० पल शुद्ध सीसा डालकर उसके नीचे तीक्ष्ण अग्नि जलावे। सीसेके गल जानेपर उसमें १ तोला शुद्ध पारा डालकर लोहेकी करछीसे खूब घोटे। फिर उसमें अर्जुनकी छाल, बहेडा, अमलतास, अनार और चिरचिटा इन प्रत्येकका क्षार चार २ तोले डालकर २१ दिनतक अग्निसे पकावे और लोहेकी करछीसे दोनों हाथोंसे अच्छी तरह घोटता जाय। इस प्रकारसे सीसेकी लाल रंगकी अथवा कबूतरके समान रंग-वाली उत्तम भस्म होती है। यह भस्म निर्दोष और अत्यन्त रसायन है। सीसेकी भस्मके निरुत्थ होनेके लिये यही विधि (या अन्यविधि) दसवार करनी चाहिये। इससे सीसेकी भस्म निश्चय निरुत्थ होकर सर्वदोषमुक्त और उत्तम रसायन होजाती है। दूसरी विधि शुद्ध सीसेसे

चौथाई भाग पीपल और इमलीकी छालकी राख लेवे । फिर सीसेको कढाईमें डालकर चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे । जब सीसा गलजाय तब उपर्युक्त पीपल और इमलीकी राख डालकर लोहेके डंडेसे तबतक घोटे जबतक अच्छे प्रकारसे सीसेकी भस्म न होजाय। फिर उसको चूल्हेपरसे नीचे उतारकर उसमें भस्मकी बराबर शुद्ध मैनसिल डालकर जम्बीरी नींबूके रसमें या खट्टी कांजीमें घोटकर गोला बनालेवे, उसको सम्पुटमें रखकर कपरोटी करके गजपुटमें फूंक देवे । स्वांगशीतल होनेपर उसमें फिर बीसवॉ भाग मैनसिल मिलाकर नींबूके रसमें या कॉंजीमें एक प्रहरतक घोटे, फिर पूर्वोक्त विधिसे सम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूंके । इस प्रकार ६० पुट देनेसे सीसेकी निरुत्थ भस्म होजाती है । तीसरी विधि–शुद्ध सीसेकी बराबर शुद्ध मैनसिल लेकर आकके दूधमें खरल करके उसको सीसेके पत्रोंके ऊपर लेप कर उनको सम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूँकदे । इस प्रकार ७–८ पुट देनेसे सीसेकी निरुत्थ भस्म होजाती है ॥ १७९–१८४ ॥

नागरसायन ।

एवं नागोद्भवं भस्म ताप्यभस्मार्धभागिकम् ॥ १८५ ॥
पादं पादं क्षिपेद्भस्म शुल्बस्य विमलस्य च ।
कांताभ्रसत्त्वयोश्चापि स्फटिकस्य पृथक् पृथक् १८६ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पुटेत्त्रिफलवारिणा ।
त्रिंशद्वनगिरिण्डैश्च त्रिंशद्वारं विचूर्ण्य च ॥ १८७ ॥
व्योषवेल्लकचूर्णैश्च समांशैः सह मेलयेत् ॥ १८८ ॥
मध्वाज्यसहितं हंति प्रलीढं वल्लमात्रया ।
अशीतिवातजान्रोगान्धनुर्वातं विशेषतः ॥ १८९ ॥
कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं श्वयथुं शीतकज्वरम् ॥ १९० ॥

ग्रहणीमामदोषं च वह्निमांद्यं सुदुर्जयम् ।
सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥ १९१ ॥

उपर्युक्त विधिसे तैयार की हुई सीसेकी भस्म ४ तोले, सुवर्णमाक्षिक भस्म २ तोले, ताम्रभस्म १ तोला, विमलामाक्षिकभस्म १ तोला, कान्तलोहभस्म १ तोला, अभ्रकसत्त्व १ तोला और स्फटिकभस्म १ तोला सबको एकत्र मिलाकर त्रिफलेके क्वाथमें अच्छी तरह घोटकर सम्पुटमें रखकरके ३० आरने उपलोंकी अग्नि देवे । स्वांगशीतल होने-पर चूर्ण करके फिर त्रिफलेके क्वाथमें घोटे और सम्पुटमें रखकर ३० आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार ३० पुट देवे फिर इस नागभ-स्ममें समानभाग त्रिकुटेका और वायविडंगका चूर्ण मिलाकर उसको दो २ रत्तीकी मात्रासे शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे इससे ८० प्रकारके वातरोग, विशेषकर धनुर्वात, सब प्रकारके कफरोग, मूत्ररोग, श्वास, खांसी, क्षय, पाण्डुरोग, सूजन, शीतज्वर, ग्रहणीरोग, आमदोष, मन्दाग्नि और जलदोषसे होनेवाले सब प्रकारके विकार भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे नष्ट होते हैं ॥ १८९–१९१ ॥

पीतलके भेद, लक्षण, गुण ।

रीतिका काकतुंडी च द्विविधं पित्तलं भवेत् ।
संतप्ता कांजिके क्षिप्ता ताम्राभा रीतिका मता ।
एवं या जायते कृष्णा काकतुंडीति सा मता॥१९२॥
रीतिस्तिक्तरसा रूक्षा जंतुघ्नी सास्रपित्तनुत् ।
कृमिकुष्ठहरा योगात्सोष्णवीर्या च शीतला ॥१९३॥
काकतुंडी गतस्नेहा तिक्तोष्णा कफपित्तनुत् ।
यकृत्प्लीहहरा शीतवीर्या च परिकीर्तिता ॥ १९४ ॥
गुर्वी मृद्वी च पीताभा सारांगी ताडनक्षमा ।
सुस्निग्धा मसृणांगी च रीतिरेताहशा शुभा॥१९५॥

पाण्डुपाती खरा रूक्षा बर्बरी ताडनक्षमा ।
पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥ १९६ ॥
तप्ता क्षिप्त्वा च निर्गुंडीरसे इयामारजोन्विते ।
पञ्चवारेण संशुद्धिं रीतिरायाति निश्चितम् ॥ १९७ ॥

पीतल दो प्रकारका होता है । एक रीतिका और दूसरा काक-तुण्डी । जो अग्निमें तपाकर कॉजीमें बुझानेपर ताँबेके समान लाल वर्णका होजाय, उसको रीतिका और जिसका रंग काला होजाय उसको काकतुण्डी जानना चाहिये । रीतिका नामक पीतल—कडवा, रूखा, कृमिनाशक, रक्तपित्त और कुष्ठको नष्ट करनेवाला है । शीतल पदार्थोंके योगसे शीतवीर्य और उष्णपदार्थोंके योगसे उष्णवीर्य है । काकतुण्डी नामवाला पीतल—रूखा, कडवा, उष्णवीर्य कफपित्तनाशक एवं यकृत् और प्लीहाको शमन करनेवाला, शीतवीर्य और उष्ण औषधादिके साथ मिलनेपर उष्णवीर्य है । उत्तम पीतलके लक्षण—जो वजनमें भारी हो, नरम, पीले रंगका, चमकदार, चोटसे नहीं टूटनेवाला, चिकना और एकसा (जिसमें गड्ढे वगैरह न हों) ऐसा पीतल श्रेष्ठ होता है । और जो पीलापन लिये हुए सफेद रंगका हो, खरखरा, रूखा, मिश्रित वर्णका, बुरे शब्दवाला, आघातसे (चोटसे) टूटनेवाला, दुर्गन्धयुक्त और वजनमें हलका ऐसा पीतल श्रेष्ठ नहीं होता । इसको रसायनादि कार्योंमें प्रयोग नहीं करना चाहिये । पीतलकी शुद्धि । पीतलके पत्रोंको अग्निमें तपा तपाकर हल्दीके चूर्ण मिले हुए सिम्हालूके रसमें बुझावे । इस प्रकार पाँच बार करनेसे पीतल शुद्ध हो जाता है ॥ १९२–१९७ ॥

पीतलकी भस्मविधि ।

निंबूरसशिलागंधवेष्टिता पुटिताऽष्टधा ।
रीतिरायाति भस्मत्वं ततो योज्या यथायथम् ।
ताम्रवन्मारणं तस्याः कृत्वा सर्वत्र योजयेत् ॥ १९८ ॥

शुद्ध पीतलके पतले पत्र बनाकर उनकी बराबर शुद्ध गन्धक और उतनी ही शुद्ध मैनासिल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके उक्त पत्रोंपर लेप करे, फिर उन पत्रोंको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँके । इस प्रकार आठ पुट देनेसे पीतलकी उत्तम भस्म होजाती है । अथवा ताँबेकी भस्मके समान पीतलकी भस्म करके यथायोग्य सर्वत्र प्रयोग करे ॥ १९८ ॥

पित्तलरसायन ।

मृतारकूटकं कांतं व्योमसत्त्वं च मारितम् ॥ १९९ ॥
त्रयं समांशकं तुल्यव्योषजंतुघ्नसंयुतम् ।
ब्रह्मबीजाजमोदाऽग्निभल्लाततिलसंयुतम् ॥ २०० ॥
सेवितं निष्कमात्रं हि जंतुघ्नं कुष्ठनाशनम् ।
विशेषाच्छ्वेतकुष्ठघ्नं दीपनं पाचनं हितम् ॥ २०१ ॥

पीतलकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म और अभ्रकके सत्त्वकी भस्म इन तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करे, फिर उसमें त्रिकुटा, वायविडंग, ढाकके बीज (ढकपन्ना), अजमोद, चीता, भिलावे और काले तिल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके मिला देवे । इस पित्तल रसायनको ३-४ मासेकी मात्रामें उपर्युक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे कृमि, कुष्ठ और विशेषकर श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है । यह रसायन अग्निको दीपन करती है और आमको पचाती है ॥ १९९-२०१ ॥

पीतलकी द्रुति ।

सुवर्णरीतिकाचूर्णं भक्षितं वेष्टितं पुनः ।
छागेन कृष्णवर्णेन मत्तेन तरुणेन च ॥ २०२ ॥
तद्विष्टं खर्परे दग्धं द्रुतिं मुञ्चाति शोभनाम् ॥ २०३ ॥

चतुर्दशलसद्वर्णसुवर्णसदृशच्छविः ।
देहलोहकरी प्रोक्ता युक्ता रसरसायने ॥ २०४ ॥

उत्तम पीले रंगके पीतलको लेकर उसको लोहे या पत्थरपर घिसकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको किसी खानेके पदार्थके साथ मिलाकर काले रंगके जवान और पुष्ट बकरेको खिलादेवे, फिर उस बकरेका जो मल हो उसको द्रावणवर्गकी औषधियोंके साथ घोटकर एक मट्टीके खीपरेके भीतर लेप करे और उस खीपरेको चूल्हेके ऊपर चढाकर नीचे तीक्ष्ण अग्नि देवे तो पीतलकी उत्तम द्रुति होती है । इस द्रुतिका वर्ण चौदह प्रकारके भिन्न भिन्न जातीके सुवर्णकी कान्तिके समान दीखता है । यह रस और रसायनकर्ममें प्रयोग करनेपर शरीर और लौहादि धातुओंको सिद्ध करती है ॥ २०२–२०४ ॥

कांस्यवर्णन ।

अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागखुरकेण च ।
विद्रुतेन भवेत्कांस्यं तत्सौराष्ट्रभवं शुभम् ॥ २०५ ॥
तीक्ष्णशब्दं मृदु स्निग्धमापच्छ्यामलशुभ्रकम् ।
निर्मलं दाहरक्तं च षोढा कांस्यं प्रशस्यते ॥ २०६ ॥
तत्पीतं दहने ताम्रं खरं रूक्षं घनासहम् ।
मर्दनादागतज्योतिः सप्तधा कांस्यमुत्सृजेत् ॥२०७॥
कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम् ।
कृमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं दीपनं हितम् ॥ २०८ ॥
घृतमेकं विना चान्यत्सर्वं कांस्यगतं नृणाम् ।
भुक्तमारोग्यसुखदं हितं सात्म्यकरं तथा ॥ २०९ ॥

आठ भाग तांबा और दो भाग खुरवंग इन दोनोंको एकत्र मिलानेमें कांसा (कांसी) बनता है। सौराष्ट्रदेशमें बननेवाला कांस उत्तम

समझा जाता है । जिसकी आवाज तीक्ष्ण हो, जो नरम, चिकना, चमकदार, कुछ श्यामलता लिये हुए श्वेतवर्ण और उज्ज्वल हो और अग्निमें तपानेसे जिसका वर्ण लाल होजाय, वह कांसा उत्तम होता है । त्याज्य कांसा–जिसका रंग पीला हो, अग्निमें तपानेसे जो तांबेके समान लाल रंगका दिखाईदे, खरखरा, रूखा और हथौडे आदिकी चोटको नहीं सहसकता (अर्थात् किसी चीजका जोरसे आघात होनेसे टूट जाता है) और घिसनेसे जिसमें अग्नि निकलती है, ऐसा कांसा त्याज्य है । कांसेके गुण । कांसा–हलका, कडवा, गरम, लेखन, दृष्टिको प्रसन्न करनेवाला एवं कृमि, कुष्ठ और वातपित्तको नाश करनेवाला है । अग्निको दीपन करता है और हितकर है । कांसेके पात्रमें एक घृतके सिवा और सभी पदार्थ रखकर खानेसे आरोग्य और सुख प्राप्त होता है । कांसेके पात्रमें भोजन करना सदैव हितकर और सात्म्य है ॥ २०५–२०९ ॥

कांसेका शोधन मारण ।

तप्तं कांस्यं गवां मूत्रे वापितं परिशुध्यति ।
म्रियते गंधतालाभ्यां निरुत्थं पंचभिः पुटैः ॥ २१० ॥
त्रिक्षारं पञ्चलवणं सप्तधाऽम्लेन भावयेत् ॥
कांस्याऽऽरकूटपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ।
रुद्ध्वा गजपुटे पक्वं शुद्धभस्मत्वमाप्नुयात् ॥ २११ ॥

काँसेके पत्रोंको अग्निमें खूब तपाकर गोमूत्रमें बुझावे इस प्रकार ५–७ बार बुझानेसे काँसा शुद्ध होजाता है । काँसेकी बराबर गन्धक और हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके काँसेके पत्रोंपर लेप करे, फिर उनको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूंके । इस प्रकार पांच पुट देनेसे काँसेकी उत्तम भस्म होजाती है । दूसरी विधि–जवाखार, सज्जी, सुहागा, पांचों नमक (सैंधानमक, काला

नमक, काचिया नमक, साँभर और समुद्र नमक) इन सबको एकत्र मिलाकर नींबूके रसकी ७ भावना देवे । फिर इस कल्कका काँसे, या पीतलके पत्रोंपर लेप करके उनको शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूंके । इस प्रकार ९ पुट देनेसे काँसे या पीतलकी उत्तम भस्म होती है ॥ २१० ॥ २११ ॥

वर्त्तलोह (भरत)

कांस्यार्करीतिलोहाऽहिजातं तद्वर्त्तलोहकम् ।
तदेव पंचलोहाख्यं लोहविद्भिरुदाहृतम् ॥ २१२ ॥
हिमाम्लं कटुकं रूक्षं कफपित्तविनाशनम् ।
रुच्यं त्वच्यं कृमिघ्नं च नेत्र्यं मलविशोधनम् ॥२१३॥
तद्भाण्डे साधितं सर्वमन्नव्यंजनसूपकम् ।
अम्लेन वर्जितं चातिदीपनं पाचनं हितम् ॥ २१४ ॥
द्रुतमश्वजले क्षिप्तं वर्तलोहं विशुध्यति ॥ २१५ ॥
म्रियते गंधतालाभ्यां पुटितं वर्तलोहकम् ।
तेषु तेष्विह योगेषु योजनीयं यथाविधि ॥ २१६ ॥

काँसा, तांबा, पीतल लोहा और सीसा इन पांचों धातुओंको एकत्र गलानेसे जो मिश्रित धातु तैयार होता है, उसको वर्त्तलोह (भरत) कहते हैं । इसका दूसरा नाम पंचलोहभी है । बहुत लोग इसको जर्मन, सिलवर कहते हैं परन्तु यह उनकी भूल है । वर्त्तलोह जर्मन सिलवर नहीं है । वर्त्तलोहके गुण । वर्त्तलोह या पंचरस विशिष्ट धातु (भरत) शीतवीर्य्य, खट्टा, कटु, रूखा, कफ पित्त विनाशक, रुचिकारक, त्वचाके लिये हितकारी, कृमिनाशक, नेत्रोंको उपयोगी और मलशोधक है । वर्त्तलोह (भरत) के वर्त्तनमें सिद्ध किये हुए एक खटाईके सिवा और सब प्रकारके भोजन, व्यंजन,

शाक, दाल आदि सब पदार्थ अग्निको दीपन करनेवाले, पाचक और हितकर होते हैं। किसी भी खटाईके पदार्थ इसमें रखनेसे बिगड जाते हैं॥ वर्त्तलोहका शोधन, मारण। वर्त्तलोह (भरत) को अग्निमें गलाकर घोडेके मूत्रमें बुझावे तो वह शुद्ध हो जाता है। वर्त्तलोहके पतले २ पत्र करके उनके ऊपर गन्धक और हरतालको नींबूके रसमें घोटकर लेप कर दे, फिर उन पत्रोंको शरावसम्पुटमें रखकर गजपुटमें फूंके। इस प्रकार ७ पुट देनेसे वर्त्तलोहकी उत्तम भस्म हो जाती है। यह अनेक योगोंमें यथा विधि प्रयोग की जासकती है॥२१२॥२१६॥

रसोपरस और लोहोंके संस्कारकी विशेष आवश्यकता।

जातिमद्भिर्विशुद्धैश्च विधिना परिसाधितैः।
रसोपरसलोहाद्यैः सूतः सिध्यति नान्यथा॥ २१७॥
रत्नानि लोहानि वराटशुक्तिपाषाणजातं खुरशृंगशल्यम्। महारसाद्येषु कठोरदेहं भस्मीकृतं स्यात्खलु सूतयोग्यम्॥ २१८॥

उत्तम जातिके यथाविधि शुद्ध किये हुए और विधिपूर्वक भस्म किये हुए रस उपरस और लोह, आदि धातुओंके, द्वारा ही पारद सिद्ध होता है। इनके विना पारद उत्तम गुणकारी नहीं होता। इस कारण उक्त सम्पूर्ण पदार्थोंका शोधन, मारण शास्त्रोक्त विधिसे करना चाहिये। सब प्रकारके रत्न, सुवर्ण आदि धातुएँ, कौडी, सीप, पाषाणसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके खानिज पदार्थ खुर, सींग, शल्य, महारस, उपरस आदिमें जो अभ्रक, सोनामाखी, विमला, वैक्रान्त आदि कठिन पदार्थोंका वर्णन है, वे सब उत्तम प्रकारसे भस्म करनेपर भी पारदके कार्यमें प्रयोग करने योग्य होते हैं॥ २१७॥ २१८॥

भूनागसत्त्वपातनविधि ।

वज्राणां द्रावणार्थाय सत्त्वं भूनागजं ब्रुवे ।
तदेव परमं तेजः सूतराजेंद्रवज्रयोः ॥ २१९ ॥

भूनाग (केंचुआ) का सत्त्व हीरेका द्रावण करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है और यह पारे तथा हीरेका परम तेज है ॥ २१९ ॥

भूनागसत्त्व ।

धौतभूनागसंभूतं मर्दयेद्भृंगजद्रवैः ।
निंबूद्रवैश्च निर्गुंड्याः स्वरसैस्त्रिदिनं पृथक् ॥ २२० ॥
तद्द्रावणगणोपेतं संमर्द्य वटकीकृतम् ।
निरुध्य दृढमूषायां द्विदण्डं प्रधमेद् दृढम् ॥ २२१ ॥
स्वतःशीतं समाहृत्य पट्टके विनिवेश्य तत ।
रवकान् राजिकातुल्यान्रेणूनातिभरान्वितान् ।
द्वादशांशार्कसंयुक्तान्धमित्वा रवकान्हरेत् ॥ २२२ ॥
प्रक्षाल्य रवकानाशु समादाय प्रयत्नतः ।
वज्रादिद्रावणं तेन प्रकुर्वीत यथेप्सितम् ॥ २२३ ॥
खरसत्त्वमिदं प्रोक्तं रसायनमनुत्तमम् ।
द्वित्रिमूषासु चैकस्यां सत्त्वं भवति निश्चितम् ॥ २२४ ॥
भुजंगमानुपादाय चतुष्प्रस्थसमन्वितान् ।
सुवर्णरूप्यताम्रायस्कांतसंभूतिभूमिजान् ॥ २२५ ॥
प्रक्षाल्य रजनीतोयैः शीतलैश्च जलैरपि ॥ २२६ ॥
उपोषितं मयूरं वा शूरं वा चरणायुधम् ।
क्रमेण चारयित्वाथ तद्विषः समुपाहरेत् ॥ २२७ ॥

क्षाराम्लैः सह संपेष्य विशोष्य च खरातपे ।
ततः खर्परके क्षिप्त्वा भर्जयित्वा मर्षीं चरेत् ॥२२८॥
मर्षीं द्रावणवर्गेण संयुक्तां संप्रमर्दिताम् ।
निरुध्य कोष्टिकामध्ये प्रधमेद्घटिकाद्वयम् ।
शीतलीभूतमूषायाः खोटमाहृत्य पेषयेत् ॥ २२९ ॥
प्रक्षाल्य खकानाशु समादाय प्रयत्नतः ॥
सुवर्णमानवद् ध्मात्वा खं कृत्वा नियोजयेत् ॥२३०॥

केंचुओंको लेकर उनको जलसे धोकर भाँगरा, नींबू और निर्गुण्डी इन प्रत्येकके रसमें तीन तीन दिनतक खरल करके सुखालेवे, फिर उसमें द्रावणवर्गकी औषधियाँ मिलाकर खरल कर उसकी बडी बडी गोली बनालेवे और उनको एक मजबूत मूषामें बन्द करके ४८ मिनट तक तेज अग्निके द्वारा फूँके । स्वांगशीतल होनेपर उनको निकालकर खरल करके वस्त्रमें छानलेवे । पश्चात् राईके दानेके समान जो सत्त्वके कण वस्त्रके ऊपर दिखाईदेते हैं, वे बहुत वजनदार होते हैं । ऐसे सत्त्वकणोंको एकत्र करके उनमें १२ वाँ भाग शुद्ध ताँबेका चूर्ण मिलाकर मूषामें रखकर खूब अग्नि देवे । इस प्रकार संपूर्ण सत्त्वके कणोंको निकालकर पानीसे धोकर स्वच्छ करले । इस भूनाग सत्त्वके द्वारा वज्र (हीरा) आदिका द्रावण करना चाहिये । यह सत्त्व ' खर-सत्त्व ' कहलाता है- और यह उत्तम रसायन है । उक्त सत्त्वको निकालनेके लिये २-३ मूषा लेनी चाहिये क्योंकि सभी मूषाओंमें सत्त्व नहीं निकलता । यदि मूषा अच्छी हो तो एकमेंही निकल आता है । दुसरी विधि । सोना, चाँदी, ताँबा, कान्तलोह आदि धातुएँ जिन खानमेंसे निकलती हैं उन खानोंकी मिट्टीमें पैदा होनेवाले केंचुए ४ प्रस्थ (२५६ तोले) लेकर उनको प्रथम हल्दीके काढेसे धोवे, फिर शीतल जलसे धोकर स्वच्छ करले । इसके पश्चात् उसको एक भूखे

मोर या जवानमुर्गेको खिलादेवे और उनकी विष्ठाको लेकर क्षार और अम्लवर्गकी औषधियोंके साथ घोटकर तेज धूपमें सुखालेवे । पश्चात् उसको चूल्हेके ऊपर मिट्टीके खीपरेमें भूनकर राख करले । फिर उस राखको द्रावणवर्गकी औषधियोंके साथ घोटकर मूपामें रखकर दो घडीतक अग्नि देवे । मूषाके शीतल होजानेपर उसकी तलीमें जमे हुए सत्त्वके गोलेको निकालकर उसका चूर्ण करले । फिर उसको धोकर मूषामें रखकरके सुवर्ण गलानेकी विधिसे उसको गला· कर चूर्ण करके यथा योगोंमे प्रयोग करे ॥ २२०–२३० ॥

भूनागसत्त्व मुद्रिका ।

भूनागोद्भवसत्त्वमुत्तममिदं श्रीसोमदेवोदितं
दत्तं पादमितं द्विशाणकनकेनैकं गतेनोर्मिकाम् ।
तद्धौतांबुविलेपितं स्थिरचरोद्भूतं विषं नेत्ररुक्
शूलं मूलगदं च कर्णजरुजो हन्यात्प्रसूतिग्रहम् ॥ २३१

उपर्युक्त विधिके अनुसार श्रीसोमदेवका कहा हुआ उत्तम भूना· गसत्त्व १॥ मासा और सोना ६ मासे लेकर दोनोंको एकत्र गला करके उसकी एक अँगूठी बनडालेवे । उस अंगूठीके धुले हुए पानीके स्पर्शसे सब प्रकारके स्थावर और जंगम विष, नेत्ररोग, शूल, बवासीर, कर्णरोग और प्रसवका अवरोध (अटकना) ये सब रोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ २३१ ॥

तैलपातनाविधि ।

मूलान्युत्तरवारुण्या जर्जरीकृत्य कांजिके ।
क्षिपेदंकोल्लबीजानां पेषिकां जर्जरीकृताम् ॥
तत्तैलं घृतवत्स्त्यानं ग्राह्यं तत्तु यथाविधि ॥ २३२ ॥
संपेष्योत्तरवारुण्या पेटकायां दलान्यथ ॥ २३३॥
कांजिकेन ततस्तेन कल्केन परिमर्दयेत् ॥ २३४ ॥

रजश्चांकोल्लबीजानां तद्बध्वा विरलांबरे ।
तद्विलंब्यातपे तीव्रे तस्याधश्चषकं न्यसेत् ।
तस्मिन्निपतितं तैलमादेयं श्वित्रनाशनम् ॥ २३५ ॥
अंकोल्लबीजसंभूतं चूर्णं संमर्द्य कांजिकैः ॥
एकरात्रोषितं तत्तु पिण्डीकृत्य ततः परम् ॥ २३६ ॥
स्वेदयेत्कंदुके यंत्रे घटिकात्रितयं ततः ।
तां च पिण्डीं दृढे वस्त्रे बद्धा निष्पीड्य काष्ठतः२३७॥
अधःपात्रस्थितं तैलं समाहृत्य नियोजयेत् ।
एवं कंदुकयंत्रेण सर्वतैलान्युपाहरेत् ॥ २३८ ॥
अंकोलस्यापि तैलं स्यात्काकतुंड्या समूलया ।
लाकुचीदेवदाल्योश्च कर्कोटीमूलतो भवेत् ॥ २३९ ॥
अपामार्गकषायेण तैलं स्याद्विषमुष्टिजम् ।
मूलक्वाथैः कुमार्याश्च तैलं जेपालकं हरेत् ॥ २४० ॥
कृष्णायाः काकतुंड्याश्च बीजचूर्णानि कारयेत्२४१॥
कांतपाषाणचूर्णं च एकीकृत्य निरोधयेत् ।
धान्यराशिगतं पश्चादुद्धृत्य तैलमाहरेत् ॥ २४२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये पंचमोऽध्यायः ५

रस, उपरस आदिमें अनेक प्रकारके तेलोंका उपयोग होता है । इस कारण यहां तेल निकालनेकी विधि कही जाती है । इन्द्रायनकी जडको कांजीमें बारीक पीसकर फिर उसमें अंकोलके बीजोंको पीसकर एक कपडेकी ढीली पोटलीमें बांधकरके, उसको तेज धूपमें लटका देवे । नीचे जो तेल गिरे उसको किसी पात्रमेंग्रहण कर लेवे । यह

तेल घीके समान गाढा होता है । अथवा इन्द्रायनके पत्ते, पेटारीके पत्ते और अंकोलके बीजोंका चूर्ण इन तीनोंको समान भाग लेकर कांजीमें घोटकर एक छीदे कपडेकी पोटलीमें बांधकर उसको तेज धूपमें अधर लटका देवे और नीचे कांचका प्याला रखदेवे । उसमें जो तेल गिरे उसको ग्रहण करलेवे । यह तेल श्वेत कुष्ठको नष्ट करता है । तीसरी विधि-अंकोलके बीजोंको कांजीमें पीसकर रातभर रखा रहने देवे । दूसरे दिन उसका गोला बनाले । पश्चात् एक हांडीको लेकर उसको आधा पानीसे भरकर उसके मुँहके ऊपर कण्ठतक एक कपडा बांधदेवे । उस कपडेके ऊपर उक्त गोलेको रक्खे और उसके ऊपरसे एक सकोरा ढककर अच्छी तरह बंद करदेवे । पश्चात् उस यंत्रको चूल्हे-पर चढाकर दो घडी (४९ मिनट तक) अग्नि देवे । फिर उस गोलेको एक मजबूत कपडेमें बांधकर काष्ठके यन्त्र (प्रेस) में दबाकर तेल निकाले । इस प्रकार कन्दुक यन्त्रके द्वारा सब प्रकारके तेल निकाले जाते हैं घुंघुची और घुंघुचीकी जडके क्वाथमें अंकोलके बीजोंका उपर्युक्त विधिसे कन्दुक यन्त्रके द्वारा तेल निकाला जासकता है । बांझककोडे-की जडके स्वरस या क्वाथमें बापची और बन्दालके बीजोंको पीसकर पूर्वोक्त विधिसे तेल निकाला जासकता है । चिरचिटेके क्वाथमें कुचले-को पीसकर उसका तेल निकाला जासकता है । घीग्वारकी जडके क्वाथमें जमालगोटोंको पीसकर उक्त विधिसे तेल निकाला जासकता है । काली घुंघुचीके बीजोंका चूर्ण और चुम्बक पत्थरका चूर्ण दोनोंका एकत्र पानीसे पीसकर गोला बनाकर कांसेके सम्पुटमें बन्द करके धानोंके ढेरमे तीन दिनतक गाडकर रक्खे । फिर चौथे दिन निकाल-कर इसका तेल निकाल लेवे ॥ २३२-२४२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालविरचितायां भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

शिष्यका वर्णन ।

रसशास्त्राणि सर्वाणि समालोच्य यथाक्रमम् ।
साधकानां हितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना ॥ १ ॥
न क्रमेण विना शास्त्रं न शास्त्रेण विना क्रमः ।
शास्त्रं क्रमयुतं ज्ञात्वा यः करोति स सिद्धिभाक् ॥ २ ॥

अथ क्रमपूर्वक सम्पूर्ण रसशास्त्रोंका अवलोकन करके रससिद्धिकी इच्छा करनेवाले साधकोंके हितके लिये रसविद्या प्रकट की जाती है । क्रमके विना शास्त्र नहीं और शास्त्रके विना क्रम नहीं इस कारण जो साधक क्रमानुसार शास्त्र ज्ञान प्राप्त करके कार्य करता है, उसको अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १-२ ॥

रसायनाचार्य ।

आचार्यो ज्ञानवान्दक्षो रसशास्त्रविशारदः ।
मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ॥ ३ ॥
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ।
सर्वाम्नायविशेषज्ञः कुशलो रसकर्माणि ।
एवं लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ४ ॥

रसविद्याका आचार्य्य पूर्ण ज्ञानवान्, सब कार्योंमें दक्ष (चतुर) रसशास्त्रमें निपुण, मन्त्रमें सिद्धि प्राप्त किया हुआ, शूरवीर, स्थिरचित्त, शिवका भक्त, उसी प्रकार देवीका भक्त, सदैव धीरवीर, देव, यज्ञादि कार्य्योंको करनेवाला, सब वेदोंको जाननेवाला और रसकर्ममें कुशल इन लक्षणोंवाला मनुष्य रसविद्याका गुरु वा आचार्य होता है ॥ ३-४ ॥

रसविद्याका अधिकारी शिष्य ।

गुरुभक्ताः सदाचाराः सत्यवंतो दृढव्रताः ॥ ५ ॥
निरालस्याः स्वधर्मज्ञाः सदाऽऽज्ञापरिपालकाः ।
दंभमात्सर्यनिर्मुक्ताः कुलाऽऽचारेषु दीक्षिताः ॥ ६ ॥
अत्यंतसाधकाः शांता मंत्राऽऽराधनतत्पराः ।
इत्येवं लक्षणैर्युक्ताः शिष्याः स्युः सूतसिद्धये ॥ ७॥

गुरुभक्त, सदाचारी, सत्यव्रती, दृढप्रतिज्ञ, आलस्यरहित, अपने धर्मको जाननेवाला, गुरुकी आज्ञाका सदैव पालन करनेवाला, दम्भ (पाखण्ड ढोंग) और मात्सर्य (डाह दूसरेकी सम्पत्तिको देखकर जलना, ईर्ष्या, क्रोध आदि) से रहित, अपने कुलके आचार विचारोंमें चतुर, साधक होनेके लिये अत्यन्त उत्साही, शान्त और मंत्र साधनमें तत्पर ऐसे लक्षणोंवाला शिष्य रससिद्धिका अधिकारी जानना ॥ ५–७ ॥

सेवक–(सहायक) ।

सहायाः सोद्यमास्तत्र यथा शिष्यास्ततोऽधिकाः ।
कुलीनाः स्वामिभक्ताश्च कर्तव्या रसकर्मणि ॥ ८ ॥

सदैव उद्योगशील, शिष्यसे भी अधिकगुणोंवाला, कुलीन और स्वामिभक्त ऐसे सहायक वा अनुचरोंको रसकार्यमें नियुक्त करना चाहिये ॥ ८ ॥

अयोग्य शिष्य ।

नास्तिका ये दुराचाराश्चुंबका गुरुतोऽपरात् ।
विद्यां ग्रहीतुमिच्छंति चौर्यच्छद्मबलोत्सवात् ॥ ९ ॥

न तेषां सिध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ।
कुर्वंति यदि मोहेन नाशयंति स्वकं धनम् ॥१० ॥
इह लोके सुखं नास्ति परलोके तथैव च ।
तस्माद्भक्तिबलादेव संतुष्यति यदा गुरुः ॥ ११ ॥
तदा शिष्येण सा ग्राह्या रसविद्याऽऽत्मसिद्धये ।
हस्तमस्तकयोगेन वरं लब्ध्वा सुसाधयेत् ॥ १२ ॥

जो गुरुसे या दूसरोंसे चोरी छल-कपट, धूर्त्तता अथवा हास्यजनक क्रियाओंसे रसविद्या प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे नास्तिक, दुराचारी, चोर, धूर्त और लम्पट हैं । ऐसे शिष्योंको मणि, मन्त्र और औषधादिकमें कुछ भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती । ऐसे मनुष्य यदि मूर्खतासे रससिद्धि आदि कार्योंके लिये उद्योग करते हैं तो वे अपने द्रव्यको व्यर्थ नष्ट करते हैं । उनको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें । इस कारण जब भक्तिभावसे गुरु अच्छे प्रकारसे प्रसन्न होजाँय तब उनसे आत्मसिद्धिके लिये रसविद्या ग्रहण करनी चाहिये । दोनों हाथोंको जोडकर और मस्तकको नवाकर गुरुके पाससे आशीर्वाद ग्रहण करके रसविद्याका साधन करे ॥ ९–१२ ॥

रससाधनके स्थान, रसशाला और रसमण्डप ।

आतंकरहिते देशे धर्मराज्ये मनोरमे ।
उमामहेश्वरोपेते समृद्धे नगरे शुभे ।
कर्तव्यं साधनं तत्र रसराजस्य धीमता ॥ १३ ॥
अत्यंतोपवने रम्ये चतुर्द्वारोपशोभिते ॥ १४ ॥
तत्र शाला प्रकर्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा ।
सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रिता ॥ १५॥

तत्समीपे समे दीप्ते कर्तव्यं रसमण्डपम् ।
अतिगुप्तं सुविस्तीर्णं कपाटार्गलशोभितम् ॥ १६ ॥
ध्वजछत्रवितानाढ्यं पुष्पमालाविलंबितम् ।
भेरीकाहलघंटादिशृङ्गीनादविनादितम् ॥ १७ ॥
भूः समा तत्र कर्तव्या सुदृढा दर्पणोपमा ।
तन्मध्ये वेदिका रम्या कर्तव्या लक्षणान्विता ॥ १८ ॥

रोगरहित देशमें, धर्मराज्ययुक्त, रमणीक, सम्वृद्धिशाली और जहां शिव-पार्वतीका मन्दिर हो ऐसे शुभ नगरमें बुद्धिमान् साधकोंको रस-साधन करना चाहिये उक्त नगरमें चार द्वारवाला एक सुन्दर उपवन (बगीचा) तैयार करावे । उसमें लम्बी चौडी अत्यन्त रमणीक, खिडकी व झरोखोंसे युक्त और अनेक प्रकारके उत्तम चित्रोंसे विभूषित ऐसी रसशाला बनवावे । उस रसशालाके समीप समान भूमिमें प्रकाशवाले स्थानमें रसमण्डप बनावे । यह मण्डप अत्यन्त गुप्त (सुरक्षित), सुविस्तीर्ण, सुन्दर किवाडों और मूसलेसे सुशोभित होना चाहिये उसपर ध्वजा, पताका, छत्र, चन्दोवा, पुष्पमाला आदि टांगने चाहिये और वहां ढोल, घंटा, घडियाल शंख आदि बाजे बजते रहने चाहिये । उस मण्डपकी भूमि समान (चौरस), कठिन और शीशेके समान चमकदार बनानी चाहिये और उसके बीचमें मनोहर और उत्तम लक्षणोंसे युक्त वेदी तैयार करनी चाहिये ॥ १३-१८ ॥

रसलिंगकी स्थापना आदि ।

निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेंद्रं नवनिष्ककम् ।
अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिंगं तु कारयेत् ॥ १९ ॥
दोलायंत्रे सारनाले जंबीरस्थं दिनं पचेत् ।

तल्लिंगं पूजयेत्तत्र सुशुभैरुपचारकैः ॥ २० ॥
लिंगकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिंगार्चनाद्भवेत् ॥ २१ ॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याश्चायुतानि हि ।
तत्क्षणाद्विलयं यांति रसलिंगस्य दर्शनात् ॥२२ ॥
स्पर्शनात्प्राप्यते मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥२३॥
आग्नेय्यां श्रीअघोरेण मन्त्रराजेन चार्चयेत् ।
अष्टादशभुजं शुभ्रं पंचवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
प्रेतारूढं नीलकंठं रसलिंगं विचिन्तयेत् ॥ २४ ॥
तस्योत्संगे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम् ।
अक्षमालांकुशं दक्षे वामे पाशाभयं शुभम् ॥ २५ ॥
दधतीं तप्तहेमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् ॥ २६ ॥
" वाङ्मयी श्रीः कामराजशक्तिर्बीजं रसाङ्कुशा ।
यैः समा द्वादशांशैव ज्ञेया विद्या रसांकुशा "॥२७॥
अनया पूजयेद्देवीं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ।
नन्दीभृंगीमहाकालकुलीरान्पूर्वादिक्क्रमात् ॥
पूजयेन्नाममंत्रैश्च प्रणवादिनमोन्तकैः ॥ २८ ॥
एवं नित्यार्चनं तत्र कर्तव्यं रससिद्धये ॥ २९ ॥

सोनेके वर्क ३ निष्क (९ मासे) और उत्तम पारा ९ निष्क परिमाण लेकर दोनोंको एकत्र नींबूके रसमें एक प्रहरतक खरल करके उसका शिवलिंग बनावे । फिर उस शिवलिंगको जम्बीरी नींबूके भीतर रखकर दोलायन्त्रमें काँजीके द्वारा एक दिनतक पकावे । इस

प्रकार करनेसे उक्त रसलिंग दृढ होजाता है । फिर उस लिंगको वेदीके ऊपर स्थापन करके उसका सुन्दर उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करे ॥ रसलिंगार्चनका फल । सहस्रकोटि शिवलिंगोंका पूजन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे भी करोडों गुना अधिक फल रसलिंगका पूजन करनेसे प्राप्त होता है । हजारों ब्रह्महत्यायें और लाखों गोहत्यायें इत्यादि बडे बडे भयंकर पाप केवल रसलिंगके दर्शन करनेसे नष्ट होते हैं और रसलिंगके स्पर्शमात्रसे मोक्षकी प्राप्ती होती है । यह बात श्रीमहादेवजीने कही है ॥ पूजनविधि । अग्निकोणमें रसलिंगकी स्थापना करके श्रीअघोर मन्त्रराज (ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः) इसके द्वारा रसलिंगकी पूजा करे । रसलिंगका ध्यान जिनके १८ भुजायें हैं, शुभ्रवर्ण है, जिनके ५ मुख और तीन नेत्र हैं । जो प्रेत (मृतक) के ऊपर आरूढ हैं और जिनका कण्ठ नीलवर्ण है, ऐसे रसलिंगका ध्यान करे । उस रसलिंगके गोदमें महादेवी श्रीपार्वतीकी स्थापना कर उसका इस प्रकार ध्यान करे—यह देवी एक मुखी, चार भुजावाली, दहने हाथमें रुद्राक्षमाला और अंकुश एवं बायें हाथमें शुभ पाश और दूसरे हाथसे अभय प्रदान करती हुई, संतप्त सुवर्णकी कान्तिके समान पीले वस्त्रोंको धारण करे हुए है "ॐ वाङ्मयी श्रीः—" इत्यादि २७ वें श्लोकमें कहा हुआ "रसाङ्कुशा विद्या—महाविद्या" का मन्त्र पढकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे श्रीउमादेवीका पूजन करे । रसलिंगके पूर्वमें नन्दी, पश्चिममें भृंगी, उत्तरमें महाकाल और दक्षिणमें कुलीरगणकी स्थापना करे और उनका नाममंत्रादिसे पूजन करे । नामके आदिमें ॐकार और अन्तमें नमःशब्दका उच्चारण करे । जैसे ॐ नन्दिने नमः, ॐ भृंगिणे नमः, ॐ महाकालाय नमः, ॐ कुलीराय नमः इत्यादि; इस प्रकार रसशालाके मण्डपके मध्य वेदीमें नित्यप्रति रसकी सिद्धिके लिये रसलिंग (शिव) उमा (पार्वती) और उनके नन्दी आदि गणोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १९–२९ ॥

शिष्यको दीक्षाविधि ।

रसविद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकाय वै ।
यथोक्तेन विधानेन गुरुणा मुदितात्मना ॥ ३० ॥
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे चंद्रताराबलान्विते ।
कलशं तोयसंपूर्णं हेमरत्नफलैर्युतम् ॥ ३१ ॥
स्थापयेद्रसलिंगाग्रे दिव्यवस्त्रेण वेष्टितम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्नैवेद्यैश्च सुपूजयेत् ॥ ३२ ॥
पूजांते हवनं कुर्याद्योनिकुंडे सुलक्षणे ।
तिलाज्यैः पायसैः पुष्पैः शतपुष्पादिकैः पृथक्॥३३॥
अघोरेण रसांकुश्या होमांते शिष्यमाह्वयेत् ।
कालिनी शक्तिसंयुक्ता रससिद्धिपरायणा ॥ ३४ ॥
यस्यास्तु कुंचिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना ।
सुरूपा तरुणी भिन्ना विस्तीर्णजघना शुभा ॥ ३५ ॥
संकीर्णहृदया पीनस्तनभरेण नाम्रिता ।
चुंबनालिंगनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी ॥ ३६ ॥
अश्वत्थपत्रसदृशयोनिदेशसुशोभिता ।
कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी कालिनी स्मृता ॥ ३७॥
रसबन्धे प्रयोगे च उत्तमा सा रसायने ।
तदभावे सुरूपा तु या काचित्तरुणाङ्गना ॥ ३८ ॥
तस्या देयं त्रिसप्ताहं गन्धकं घृतसंयुतम् ।
कर्षैककं प्रभाते तु सा भवेत्कालिनीसमा ॥ ३९ ॥

एवं शक्तियुतो योऽसौ दीक्षयेत्तं गुरूत्तमः ।
सुस्नातमभिषिंचेत मंत्रेण कलशोदकैः ।
अघोरामंकुशीं विद्यां दद्याच्छिष्याय सद्गुरुः ॥४०॥
यथाशक्त्या सुशिष्येण दातव्या गुरुदक्षिणा ॥
अथाज्ञया गुरोर्मंत्रं लक्षं लक्षं पृथग्जपेत् ॥ ४१ ॥
अनया पूजयेद्देवीमिमां विद्यां रसांकुशीम् ।
दशांशेन हुनेत्कुंडे त्रिकोणे हस्तमात्रके ।
जातिपुष्पं त्रिमध्वक्तं पूर्णांते कन्यकार्चनम् ॥ ४२ ॥

श्रीशिवजीकी कही हुई रसविद्याको गुरु प्रसन्नमनसे योग्य शिष्यके लिये शास्त्रोक्त विधिसे प्रदान करे। विधि इस प्रकार है चन्द्रबल और ताराबलसे युक्त शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमें जलसे भरा हुआ १ कलश लेकर उसमें सुवर्ण रत्न और फल फूल आदि डालकर और उसको दिव्य वस्त्रोंसे वेष्टित कर रसलिंगके आगे स्थापन करे फिर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसकी यथाविधि पूजा करे। पूजाके अन्तमें शास्त्रोक्त विधिसे बनाये हुए उत्तम लक्षणोंवाले योनिकुण्डमें (योनिके समान आकारवाले कुण्ड) में तिल, घृत, खीर, पुष्प, सौंफ आदि पृथक् पृथक् पदार्थोंके द्वारा श्रीअघोर मंत्रसे रसांकुशी नामवाली विद्या देवीके निमित्त हवन करे और हवनके अन्तमें महाशक्ति सम्पन्नकालिनी स्त्रीकी सहायता प्राप्त गुरु दीक्षाके लिये शिष्यका आवाहन करे। कालिनीस्त्रीके लक्षण। जिस स्त्रीके केश सुन्दर, घूँघरवाले हों, श्यामवर्ण हो, कमलके समान नेत्र हो, जो सुन्दर स्वरूपवाली, युवती (यौवनके मदसे भरी हुई), विस्तीर्ण जंघाओंवाली शुभलक्षणोंसे युक्त, संकीर्ण हृदयवाली, पुष्ट पयोधरोंके भारसे नम्र हुई, चुम्बन, आलिङ्गन और स्पर्शमें अत्यन्त कोमल, मधुर और

प्रिय बोलनेवाली, जिसकी योनि पीपलके पत्तेके समान सुशोभित हो और जो कृष्ण पक्षमें ऋतुमती होती हो, ऐसी स्त्रीको कालिनी जानना चाहिये। कालिनी स्त्री रसायनकर्म्ममें और रसबन्धके प्रयोगोंमें बडी उत्तम है। यदि इस प्रकारकी कालिनी स्त्री न मिले तो किसी सुन्दर स्वरूपवाली तरुणी स्त्रीको प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला शुद्ध गन्धक घृतके साथ मिलाकर २१ दिनतक खिलावे इस प्रकार करनेसे वह स्त्री कालिनीके समान होजाती है। रसबन्ध प्रयोग और रसायन कर्ममें यह कालिनी स्त्री सिद्धिको देनेवाली कही है। रसविद्याके गुरु इस प्रकार शक्तिसम्पन्न होकर (शक्तिस्वरूपकालिनी स्त्री जिसकी सहकारिणी हो) शिष्यको दीक्षा देवे। प्रथम स्नान किये हुए शिष्यको कलशके जलसे मंत्रोंद्वारा अभिषिक्त करे, फिर अघोरा और अंकुशी विद्या उसको देवे। पश्चात् शिष्य यथाशक्ति गुरुदक्षिणा देवे गुरुजीकी आज्ञासे अघोर मन्त्र और रसांकुशी इनका अलग २ एक एक लक्ष जप करे। रसांकुशी मन्त्रसे रसांकुशी देवीका पूजन करे। फिर एक हाथ चौडा और त्रिकोण आकारवाला (तिखूँटा) एक कुण्ड बनाकर उसमें त्रिमधु अर्थात् शहद, घृत और खांड एवं चमेलीके फूलोंके द्वारा जपका दशांश (१० हजार) हवन करे हवनके समाप्त होनेपर कुमारी कन्याओंका पूजन करे ॥ ३०-४२ ॥

देवतादिकी पूजनविधि।

कृत्वाथ प्रविशेच्छालां शुद्धां लिप्तां सवेदिकाम् ॥ ४३ ॥
षट्कोणं मण्डलं तत्र सिंदूरेण द्विहस्तकम्।
वेदिकायां लिखेत्सम्यक् तद्बहिश्चाष्टपत्रकम्।
कमलं चतुरस्रं च चतुर्द्वारैः सुशोभितम् ॥ ४४ ॥
कर्णिकायां न्यसेत्खल्वं लोहजं स्वर्णलेखितम्।
तन्मध्ये रसराजं तु पलानां शतमात्रकम् ॥ ४५ ॥

पंचाशत्पंचविंशद्वा पूजयेद्रसलिंगवत् ॥ ४६ ॥
वज्रवैक्रान्तवज्राभ्रकान्तपाषाणटंकणम् ।
भूनागे शक्तयश्चैताः षट्पत्रे पूजयेत्क्रमात् ॥ ४७ ॥
गन्धतालककासीसाशिलाकंकुष्ठभूषणम् ।
राजावर्तो गैरिकं च ख्याता उपरसा अमी ।
पूज्या अष्टदले चैते पूर्वादीशान्तगं क्रमात् ॥ ४८ ॥
रसकं विमला ताप्यं चपला तुत्थमंजनम् ।
हिंगुलं सस्यकं चैव ख्याता एते महारसाः ।
पूर्वादीशानपर्यंतं पत्राग्रेषु प्रपूजयेत् ॥ ४९ ॥
पूर्वद्वारे स्वर्णरौप्ये दक्षिणे ताम्रसीसके ॥ ५० ॥
पश्चिमे वंगकान्तौ च उत्तरे मुण्डतीक्ष्णके ।
सर्वमेतदघोरेण पूजयेदंकुशान्वितम् ॥ ५१ ॥
बिडं कांजिकयंत्राणि क्षारम्लुलवणानि च ।
कोष्ठी मूषा वंकनाली तुषांगारवनोपलाः ॥ ५२ ॥
भस्त्रिका दण्डिकानेका शिला खल्वान्युलूखलम् ।
स्वर्णकारोपकरणं समस्ततुलनानि च ॥ ५३ ॥
मृत्काष्ठताम्रलोहोत्थपात्राणि विविधानि च ।
दिव्यौषधीनां वर्गाश्च रंजकस्नेहनानि च ॥ ५४ ॥
एतानि द्वारबाह्ये तु मूलमंत्रेण पूजयेत् ।
वाङ्मायां ह्रीं ततः क्षें च क्ष्मरश्च पञ्चाक्षरो मनुः ।
अनेन मूलमंत्रेण भैरवं तत्र पूजयेत् ॥ ५५ ॥

इसके पश्चात् शुद्ध पदार्थोंसे लिपी हुई उत्तम वेदीवाली रसशालामें प्रवेश करे । फिर वेदीके ऊपर दो हाथ लम्बा चौडा सिन्दूरसे षट्कोण मण्डल बनावे । उसके बाद आठ दलवाला कमल लिखे उसके चारों द्वारोंपर चतुरस्र (चौकोन) मण्डल बनावे । मण्डलकी कर्णिकाके मध्यमें उत्तम लोहेका बना हुआ खरल स्थापन करे और उसमें सोनेकी लकीरें काढदेवे । उस खरलमें १०० पल अथवा ५० पल या २५ पल पारा डालकर उसका रसलिंगके समान पूजन करे । हीरा, वैक्रान्त वज्राभ्रक, कान्तपाषाण (चुम्बक पत्थर), सुहागा और भूनाग इन ६ शक्तियोंको षट्दल कमलमें क्रमसे स्थापन करके पूजे । एवं गन्धक, हरताल, कसीस, मैनसिल, कंकुष्ठ, अंजन, राजावर्त्त और गेरू ये आठ उपरस हैं । इनको अष्टदल कमलमें क्रमसे पूर्वदिशासे लेकर ईशानकोण पर्यन्त स्थापन कर पूजन करे । अर्थात् गन्धकको पूर्व दिशामें, हरतालको अग्निकोणमें, कसीसको दक्षिण दिशामें, मैनसिलको नैर्ऋत्य कोणमें, कंकुष्ठको पश्चिमदिशामें, अंजनको वायव्य कोणमें, राजावर्त्तको उत्तर दिशामें और गेरूको ईशान कोणमें स्थापन करे । खपरिया, रूपामाखी, सोनामाखी, चपल धातु तूतिया, अभ्रक, हिंगुल और सस्यक (नीलाथोथा) ये आठ महारस हैं । इन आठों महारसोंको क्रमसे पूर्वदिशासे ईशानकोण पर्यन्त अष्टदल मंडलकी पंखडियोंके अग्रभागमें स्थापन करके पूजन करे । वेदीके जो चार द्वार कहे हैं उन पूर्वके द्वारपर सुवर्ण और रूपेका, दक्षिण द्वारपर ताम्र और सीसेका, पश्चिम द्वारपर वंग और कान्तलोहका और उत्तर द्वारपर मुण्डलोह और तीक्ष्णलोहका रसांकुशी और अघोरमंत्रसे पूजन करे । विडादि पदार्थोंकी पूजन विधि—विड (पारेमें धातु भक्षण करनेके लिये क्षारादि पदार्थोंको डालकर जो बनाया जाता है), कॉंजी, अनेक प्रकारके यंत्र, क्षार, मृत्तिका, लवण, छोटी व बडी मूषा, वंकनाल, तुष (भुस) कोयले, आरने उपले, धौंकनी, अनेक प्रकारके दण्ड, शिल, खरल,

ऊखल, सुनारके अनेक प्रकारके उपकरण (औजार), समस्त तुले हुए मिट्टीके, लकडीके, तांबेके और लोहेके बने हुए अनेक प्रकारके पात्र, विविध प्रकारकी दिव्यौषधियां, रंजक (रंगनेवाली) औष-धियां और समस्त स्नेहवर्ग (घृत, तैलादि) इन सब पदार्थोंको द्वारके बाहर स्थापन करके मूलमंत्रसे इनकी पूजा करे । वह मूलमंत्र इस प्रकार है—वाङ्मायां ह्रीं ततः क्षें च क्ष्मश्च पंचाक्षरो मनुः । " "वाङ्मायां, ह्रीं, तत, क्षें, क्ष्मः" पंचाक्षरी मंत्र है । इसी मूलमंत्रके द्वारा द्वारके बाहर भैरवका पूजन करे ॥ ५२. ५५ ॥

रससिद्धाचार्योंका पूजन, स्मरण आदि ।

सर्वेषां रससिद्धानां नाम संकीर्तयेत्तदा ॥ ५६ ॥
व्यालाचार्यश्चंद्रसेनः सुबुद्धिर्नरवाहनः ।
नागार्जुनो रत्नघोषः सुरानंदो यशोधनः ॥ ५७ ॥
इंद्रधूमश्च मांडव्यश्चर्पटी सूरसेनकः ।
आगमो नागबुद्धिश्च खण्डः कापालिको मतः ॥ ५८॥
कामारिस्तांत्रिकः शंभुर्लंको लंपकशारदौ ।
बाणासुरो मुनिश्रेष्ठो गोविंदः कपिलो बलिः ॥ ५९ ॥
एते सर्वे तु राजेन्द्रा रससिद्धा महाबलाः ।
चरंति सर्वलोकेषु निःस्या भोगपरायणाः ॥ ६० ॥
सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ।
वंद्याः पूज्याः प्रयत्नेन ततः कुर्याद्रसार्चनम् ॥ ६१ ॥
हर्षयन्द्विजदेवानां तर्पयेदिष्टदेवताः ।
कुमारीयोगिनीयोगीश्वरान्मेलकसाधकान् ॥ ६२ ॥

तर्पयेत्पूजयेद्भक्त्या यथाशक्त्यनुसारतः ॥ ६३ ॥
इत्येवं सर्वसंभारयुक्तं कुर्याद्रसोत्सवम् ।
सर्वविघ्नप्रशांत्यर्थं सर्वेप्सितफलप्रदम् ॥ ६४ ॥
अन्यथा यो विमूढात्मा मंत्रदीक्षाक्रमादिना ।
कर्तुमिच्छति सूतस्य साधनं गुरुवर्जितः ॥ ६५ ॥
नासौ सिद्धिमवाप्नोति यत्नकोटिशतैरपि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शास्त्रोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥ ६६ ॥

इस प्रकार रसशाला, वेदी, उपकरण आदिकी तैयारी होजानेपर समस्त रससिद्धाचार्योंके नामोंका उच्चारण करे । रससिद्धाचार्य । व्यालाचार्य, चन्द्रसेन, सुबुद्धि, नरवाहन, नागार्जुन, 'रत्नघोष, सुरानन्द, यशोधन, इन्द्रधूम, माण्डव्य, चर्पटी, सूरसेनक, आगम, नागबुद्धि खण्ड, कापालिक, कामारि, तान्त्रिक, शम्भु, लंक, लम्पक, शारद, वाणासुर, मुनिश्रेष्ठ, गोविन्द, कपिल और बली ये सब २७ सत्ताईस राजेन्द्र और अत्यन्त सामर्थ्यवान् रससिद्ध हैं । ये नित्य भोगपरायण होकर सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हैं और रससिद्धिको देनेवाले हैं । इनका विधिपूर्वक वन्दन और पूजन करके फिर रस (पारद) की पूजा करनी चाहिये । एवं ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना चाहिये और अपने इष्टदेवका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। उसी प्रकार कन्यामें, योगिनी योगीश्वर और रसमिश्रणका साधन करनेवाले आदिका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिभावसे तर्पण और पूजन करे। समस्त विघ्नोंकी शान्ति और सम्पूर्ण इच्छित फलोंकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार समारोहसे सम्पूर्ण रसोत्सव करने चाहिये । जो मूर्ख मनुष्य इस विधिको छोड कर मंत्र, दीक्षा आदिके क्रमको न करके गुरुके विना रसको सिद्ध करनेकी इच्छा करता है उसको सैकडों कोटि यत्न करनेपर भी सिद्धि

प्राप्त नहीं होसकती । इस कारण विशेष यत्नके साथ प्रथम सम्पूर्ण शास्त्रोक्त विधि करके फिर रसका साधन करना चाहिये॥५६-६६॥

पारद (रस) की कैसे मनुष्यको सिद्धि होती है ।

सम्यक्साधनसोद्यमा गुरुयुता राजाज्ञयाऽलंकृता
नानाकर्मपराङ्मुखा रसपराश्चाढ्या जनैश्चार्थिताः ।
मात्रायंत्रसुपाककर्मकुशलाः सर्वौषधे कोविदा-स्तेषां
सिध्यति नान्यथा विधिबलाच्छ्रीपारदः पारदः ॥६७॥
रसशास्त्रं प्रदातव्यं विप्राणां धर्महेतवे ।
राज्ञे वश्याय वृद्ध्यर्थं दास्यार्थमितरस्य च ॥ ६८ ॥
गुरौ तुष्टे शिवस्तुष्येच्छिवे तुष्टे रसस्तथा ।
रसे तुष्टे क्रियाः सर्वाः सिध्यंत्येव न संशयः ॥ ६९ ॥
रसविद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिव ध्रुवम् ।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात् ॥ ७० ॥
रोगिणां बहुभिर्ज्ञातं भवेन्निर्वीर्यमौषधम् ।
न रोगिविदितं कार्यं बहुभिर्विदितं तथा ॥ ७१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये षष्ठोऽध्यायः ।

जिसके पास उत्तम प्रकारके साधन हैं या जो उत्तम प्रकारके साधन तैयार करसकता है; अत्यन्त उद्योगशील, गुरुके द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ, जिसको राजाका आश्रय हो, अन्य समस्त कार्योंको छोडकर दिनरात रस कर्ममें ही तत्पर रहनेवाला, धनवान् और लोकोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर रसका साधन करनेवाला, मात्रा, प्रमाण, यन्त्र, पाक आदि कर्ममें कुशल, सर्व प्रकारकी औषधियोंको जाननेवाला, और जिनका प्रारब्ध बलवान् हो ऐसे मनुष्योंको सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाले पारदकी सिद्धि होती है । अन्यथा किसी प्रकार भी चाहे

जितना परिश्रम किया जाय पारेकी सिद्ध नहीं होती । रसशास्त्र कौनकौनसे मनुष्योंको किस किस प्रयोजनके लिये देना चाहिये । रसशास्त्र ब्राह्मणोंको धर्मकार्यकरनेके लिये, राजा (क्षत्रिय) और वैश्य (धनाढ्य, व्यापारी) लोगोंको उक्त शास्त्रकी वृद्धिके लिये और अन्य जनों (शूद्रों) को दास्यकर्ममे अपने कर्त्तव्य पालनेकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये रसशास्त्र पढाना चाहिये । गुरुका महत्त्व गुरुके प्रसन्न होनेपर श्री महादेवजी प्रसन्न होते हैं और महादेवके प्रसन्न होनेपर रस (पारा) प्रसन्न होता है और रसके सन्तुष्ट होनेपर सम्पूर्ण क्रियायें निश्चय सिद्ध होती हैं रसविद्याको गुप्त रखना चाहिये रसविद्याको माताके गुप्त स्थानके समान अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये । रसविद्याको गुप्त रखनेसे वह वीर्य्यवती रहती है- और उसका प्रकाशन करनेसे वह निर्वीर्य (सामर्थ्यहीन) होजाती है औषधियोंकी गुप्तता । जो औषधि रोगी और और बहुतसे मनुष्योंके द्वारा जानी हुई होती है वह वीर्यहीन होती है, अर्थात् कुछ गुण नहीं करती; इस कारण वैद्यको रोगी और बहुतसे मनुष्योंकी जानी हुई क्रिया नहीं करनी चाहिये ॥ ६८–७१ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यशङ्करलालविरचितायां भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥

रसशाला ।

रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जिताम् ।
सर्वौषधमये देशे रम्ये कूपसमन्विते ॥ १ ॥
यक्षत्र्यक्षां सहस्राक्षां दिग्विभागे सुशोभने ।
नानोपकरणोपेतां प्राकारेण सुशोभिताम् ॥ २ ॥
शालायाः पूर्वदिग्भागे स्थापयेद्रसभैरवम् ।

वह्निकर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाणकर्म च ॥ ३ ॥
नैर्ऋत्ये शस्त्रकर्माणि वारुणे क्षालनादिकम् ।
शोषणं वायुकोणे च वेधकर्मोत्तरे तथा ॥ ४ ॥
स्थापनं सिद्धवस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ।
पदार्थसंग्रहः कार्यो रससाधनहेतुकः ॥ ५ ॥

जहांपर सब प्रकारकी औषधियां मिल जांय, जहां कूप बावडी हो ऐसे रमणीय देशमें उत्तर ऐशान्य तथा प्राचीके सुशोभन भागमें सर्व बाधासे रहित एक रसशाला बनावे, वह शाला सब तरहके उपकरणोंसे तथा प्राकारसे सुशोभित हो शालाके पूर्वदिशामें रस भैरवकी स्थापना करे, आग्नेय दिशामें अग्निसार्य करे दक्षिण दिशामें पाषाणका कर्म करे, नैर्ऋत्यमें शस्त्रकर्म करे, पश्चिमदिशामें क्षालनकर्म (धोना आदि) करे, वायव्य दिशामें शोषण कर्म करे, उत्तर दिशामें वेधकर्म करे, ऐशानी दिशामें सब सिद्ध वस्तुओंका स्थापन करै और रससाधनमें उपयुक्त पदार्थोंका संग्रह करै ॥ १-५ ॥

रसमें साधनेयोग्यपदार्थ ।

सत्त्वपातनकोष्ठीं च सुराकोष्ठीं सुशोभनाम् ।
भूमिकोष्ठीं चलत्कोष्ठीं जलद्रोण्योऽप्यनेकशः ॥ ६ ॥
भस्त्रिकायुगलं तद्वन्नालिके पङ्कलोहयोः ।
स्वर्णायोघोषशुल्बाश्मकुंडचश्मकृतां तथा ॥ ७ ॥
करणानि विचित्राणि द्रव्याण्यपि समाहरेत् ।
कण्डणीपेषणीखल्वाद्रोणीरूपाश्च वर्तुलाः ॥ ८ ॥
आयसास्तप्तखल्वाश्च मर्दकाश्च तथाविधाः ॥ ९ ॥
सूक्ष्मच्छिद्रसहस्राढ्या द्रव्यगालनहेतवे ।
चालनी च कटत्राणि शलाकाऽहिश्च कुंडली ॥ १० ॥

चालनी त्रिविधा प्रोक्ता तत्स्वरूपञ्च कथ्यते ।
वैणवीभिः शलाकाभिर्निर्मिता ग्रथिता गुणैः ।
कीर्त्तिता सा सदा स्थूलद्रव्याणां गालने हिता ॥ ११ ॥
चूर्णचालनहेतोश्च चालन्यन्यापि वंशजा ।
कर्णिकारस्य शाल्मल्या हरिजातस्य कम्बया ॥ १२ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारयुक्तया निर्मिता शुभा ।
कुण्डल्यरत्निविस्तारा छागचर्माभिवेष्टिता ॥ १३ ॥
वाजिबालाम्बरानद्धतला चालनिकाऽपरा ।
तया प्रचालनं कुर्याद्धर्तुं सूक्ष्मतरं रजः ॥ १४ ॥

सत्त्वपातन करनेकी मूषा, आसव तैयार करनेकी मूषा-तैल निकालनेकी भूमिमें गडी हुई टंकी, पारद संस्कारके लिये उपयोगी चलायमान कोठी और जल भरनेके लिये अनेक द्रोणाकार पात्र ये सब उपकरण रसशालाके बीचमें रखने चाहियें । दो भट्टियें मट्टीकी अथवा लोहेकी दो नलियें (फूँकनी), उसी प्रकार सुवर्ण, लोह, काँसा, ताँबा आदि धातुओंकी तथा चर्मकी बनी हुई अनेक प्रकारकी कूँडियें, और अनेक प्रकारके उपकरण तथा द्रव्योंको संग्रह करना चाहिये ओखली, ओषधियोंको पीसनेके लिये चक्की, द्रोणाकार खरल, गोल खरल, लोहेके तप्त खरल और लोहेके ही मूसले, ओषधियोंको छाननेके लिये हजारों बारीक छिद्रोंवाली चलनी और धातुओंको काटनेवाली शलाका (छैनी) और सर्पकुण्डलनी इन सब चीजोंको एकत्र करे । चलनी तीन प्रकारकी होती है, उसका स्वरूप इस प्रकार कहाः-१ बाँसकी तुलियोंसे बनी हुई, और मजबूत डोरीसे बँधी हुई होनी चाहिये । वह चलनी मोटी २ वस्तुओंको छाननेके लिये उपयोगी होती है । दूसरी चूर्णको छाननेके लिये बाँसकी बनी

हुई अथवा और किसी चीजकी बनी हुई बारीक चलनी लेवे। इसके अतिरिक्त चार अँगुल ऊँची कनेरकी, सेमलकी, चन्दनकी अथवा हाथीदाँतकी उत्तम प्रकारसे चलनी बनाकर उसको चारोंतरफसे बकरेके चर्मसे मढदेवे। उसकी लम्बाई चौडाई एक बालिश्त परिमाण रखनी चाहिये और उसके तलभागको घोडेके बालों अथवा वस्त्रसे बाँधकर तैयार करे और वह कुंडलीके समान गहरी हो, ऐसी एक और चलनी होनी चाहिये। उस चलनीसे अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण छानना चाहिये ॥९-१४॥

मूषामृत्तुषकार्पासवनोपलकपिष्टकम् ।
त्रिविधं भेषजं धातुजीवमूलमयं तथा ॥ १५ ॥

मूषा, मिट्टी (कपरोटा करनेके लिये), तुस (भुस), बिनौले, आरने उपले, गोबर आदि पदार्थ तथा धातु (खनिज), प्राणिज और वनस्पतिजन्य इस प्रकार तीनप्रकारकी ओषधियोंका संग्रह करना चाहिये ॥ १५ ॥

शिखित्रा गोवरं चैव शर्करा च सितोपला ।
शिखित्रा पावकोच्छिष्टा अँगारा कोकिला मता॥१६॥
कोकिलाश्चेतिताङ्गारा निर्वाणाः पयसा विना ।
पिष्टकं छगणं छाणमुपलं चोत्पलं तथा ॥ १७ ॥
गिरिण्डोपलसाठी च संशुष्कछगणाभिधाः ।
काचायोमृद्वराटानां कूपिका चषकाणि च ॥ १८ ॥
कूपिका कुपिका सिद्धा गोला चैव गिरिण्डिका ।
चषकं च कटोरी च वाटिका खारिका तथा ॥ १९॥
कंचोली ग्राहिका चेति नामान्येकार्थकानिहि ।

कोयले, गोबर, रेता और सफेदरेता इन सब चीजोंको संग्रह करे। शिखित्र, पावकोच्छिष्ट, अङ्गार और कोकिल ये सब कोयलोंके नाम हैं। जो कोयले विना जलके बुझाये जाते हैं, उनको कोकिल कहते हैं। पिष्टक, छगण, छाण, उपल, उत्पल, गिरिण्डोपल, साठी ये नाम सूखे हुए उपलोंके हैं। कॉच, लोहा, मिट्टी और कौडियें इनकी तैयार कीहुई शीशियें और प्याले एकत्र करे। कूपिका, कुपिका, सिद्धा, गोला और गिरिण्डिका ये नाम शीशियोंके हैं तथा चषक, कटोरी, वाटिका, खारिका, कंचोली और ग्राहिका ये सब नाम चषकके पर्यायवाची हैं॥ १६-१९॥

शूर्पादिवेणुपात्राणि क्षुद्राः क्षिप्राश्च शंखिकाः॥२०॥
क्षुरप्राश्च तथा पाक्यो यच्चान्यत्तत्र युज्यते।
पालिका कर्णिका चैव शाकच्छेदनशस्त्रकाः॥२१॥
शालासम्मार्जनाद्यं हि रसपाकान्तकर्म यत्।
तत्रोपयोगि यच्चान्यत् तत्सर्वं परविद्यया॥ २२॥
श्रीरसाङ्कुशया सर्वं मन्त्रयित्वा समर्चयेत्।
अन्यथा तद्गतं तेजः परिगृह्णन्ति भैरवाः॥ २३॥

सूप आदि बाँसके बने हुए पात्र, छोटी कौडी, शंख, चूरी, पाक करने योग्य पात्र और वहाँ जो वस्तु उपयोगी समझी जाय वह सब संग्रह करके रखनी चाहिये। उसी प्रकार पालिका और कर्णिका नामक शाकादिको काटनेवाले शस्त्र, रसशालाको सम्मार्जन करनेके लिये सम्मार्जनी आदि और रसपाकके अन्तमें जो काममें आनेवाले उपयोगी पदार्थ हों उन सबका वहाँ संग्रह करे और ब्रह्मविद्यारूप श्रीरसांकुशा विद्यासे उन सब वस्तुओंको अभिमन्त्रित करके पूजे। ऐसा न करनेसे प्रत्येक वस्तुके तेजको भैरव हरलेते हैं॥२०-२३॥

रससाधक वैद्योंके लक्षण ।

रससञ्चिन्तका वैद्या निघण्टुज्ञाश्च वार्त्तिकाः ।
सर्वदेशजभाषाज्ञाः संग्राह्यास्तेऽपि साधकैः ॥ २४ ॥
रसपाकावसानं हि सदाघोरञ्च धारयेत् ।

रससिद्धिका विचार करनेवाले वैद्य जो निघण्टु (औषधियोंके नाम, गुण, दोष प्रयोग आदि) और वार्तिक (परिभाषा) के जाननेवाले और सब देशोंकी भाषाओंके जाननेवाले हों ऐसे रससाधक वैद्योंका भी साधकोंके द्वारा संग्रह करना चाहिये । रस सिद्ध होनेके पश्चात् सदैव अघोर मन्त्रका जप करवावे ॥ २४ ॥

परिचारक कैसे होने चाहियें ।

सोद्यमाः शुचयः शूराः बालष्टाः परिचारकाः ॥२५॥

रसकी सिद्धि करनेमें उद्योगी, सदाचारी, शूरवीर, और बलवान् ऐसे परिचारक (सेवक) लेने चाहिये ॥ २५ ॥

रसवैद्योंके विशेष गुण ।

धर्मिष्ठः सत्यवाग्विद्वान् शिवकेशवपूजकः ।
सदयः पद्महस्तश्च संयोज्यो रसवैद्यके ॥ २६ ॥
पताकाकुम्भपाथोजमत्स्यचापांकपाणिकः ।
अनामाधस्थरेखाङ्कः सस्यादमृतहस्तवान् ॥ २७ ॥
अदेशिकः कृपामुक्तो लुब्धो गुरुविवर्जितः ।
कृष्णरेखाकरो वैद्यो दग्धहस्तः स उच्यते ॥ २८ ॥

धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, विद्वान्, शिव और विष्णुकी उपासना करनेवाला दयालु, जिसका हाथ कमलके समान हो अथवा जिसके हाथमें कमलका चिह्न हो, ऐसे वैद्यको रसकी सिद्धि

करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये । जिसके हाथमें ध्वजा, घट, कमल, मत्स्य और धनुष, इनमेंसे एक दो, अथवा अधिक चिह्न हों और जिसकी अनामिका अंगुलिके नीचे रेखा हो उस मनुष्यको 'अमृतहस्त' कहते हैं (ऐसे मनुष्यके हाथसे ही रस सिद्ध होता है) जो वैद्य परदेशी, निर्दयी लोभी, निठुर व चोर और गुरुदीक्षासे रहित हो और जिसके हाथमें काली रेखा हो, उसको दग्धहस्त कहते हैं । ऐसे वैद्यके हाथसे कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ २६-२८ ॥

रससाधकोंकी विशेष योजना ।

भूतनिग्रहमंत्रज्ञास्ते योज्याः निधिसाधने ।
बलिष्ठाः सत्यवन्तश्च रक्ताक्षाः कृष्णविग्रहाः ॥ २९॥
भूतत्रासनविद्याश्च ते योज्या बलिसाधने ।
निर्लोभाः सत्यवक्तारो देवब्राह्मणपूजकाः ॥ ३० ॥
यमिनः पथ्यभोक्तारो योजनीया रसायने ।
धनवन्तो वदान्याश्च सर्वोपस्करसंयुताः ॥ ३१ ॥
गुरुवाक्यरता नित्यं धातुवादेषु ते शुभाः ।
तत्तदौषधनामज्ञाः शुचयो वंचनोज्झिताः ॥ ३२ ॥
नानाविषयभाषाज्ञास्ते योज्या भेषजाहृतौ ।

भूतप्रेतादिको दूर करनेके मन्त्रोंको जाननेवाले जो पुरुष हों उनको रसकर्मके अन्तमें पदार्थोंको सुरक्षित रखनेके लिये नियुक्त करे । जो बलवान् सत्यवादी हों जिनके नेत्र लाल और शरीर कृष्ण हो, और जो भूतोंको भयभीत करनेकी विद्याको जानते हों ऐसे पुरुषोंको बलिकर्ममें प्रयुक्त करे । जो लोभरहित, सत्य बोलनेवाले, देवता और ब्राह्मणोंके उपा-

सक, संयमी, (जितेंद्रिय और मनोजयी) और सदा पथ्य-पदार्थोंका आहार करनेवाले ऐसे वैद्योंको रसायनके सिद्ध करनेमें नियुक्त करना चाहिये जो धनवान्, उदार, सर्वसाधन संपन्न और गुरुके वाक्योंपर श्रद्धा रखनेवाले हों ऐसे मनुष्योंको धातुओंके शोधन मारणादि कर्ममें उत्तम समझना चाहिये । जो प्रत्येक औषधिका हरएक भाषामें नाम जानते हों जिनका अन्तरात्मा पवित्र हो, जो छलकपटसे रहित हों और जो विविध प्रकारकी भाषाओंको जानते हों ऐसे मनुष्योंको औषधि लानेके लिये नियुक्त करे ॥ २९-३२ ॥

शुचीनां सत्यवाक्यानामास्तिकानां मनस्विनाम् ।
सन्देहोज्झितचित्तानां रसः सिद्ध्यति सर्वदा॥ ३३ ॥

बाह्य और आभ्यन्तरसे पवित्र, सत्यवक्ता, आस्तिक, मनको जीतनेवाले और सब प्रकारके सन्देहोंसे रहित ऐसे पुरुषोंको ही (रस पारद) की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥

दृष्टाष्टक्रियया सिद्धे रसेऽसौ साधकोत्तमः ।
महारसोऽयमित्युक्त्वा सेवेतान्यत्र तं रसम् ॥ ३४ ॥
रससिद्धो भवेन्मर्त्यो दाता भोक्ता न याचकः ।
जरामुक्तो जगत्पूज्यो दिव्यकान्तिः सदा सुखी॥ ३५ ॥

अष्टादश १८ संस्कारोंके द्वारा पारदको उत्तम प्रकारसे सिद्ध कर लेनेपर उत्तम साधको उस रसका महारस कहकर सर्वत्र उसका उपयोग करे । जिस मनुष्यको रसकी सिद्धि प्राप्त होती है वह दाता और भोक्ता होताहै और वह कभी किसीसे याचना नहीं करता वह जरा (वृद्धावस्थासे) रहित, समस्त जगत्में पूज्य, दिव्य कान्तिवाला और सदा सुखी रहता है॥ ३४-३५॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य विरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

परिभाषा ।

कथ्यते सोमदेवेन मुग्धवैद्यप्रबुद्धये ।
परिभाषा रसेन्द्रस्य शास्त्रैः सिद्धैश्च भाषिता ॥ १ ॥

अब सोमदेव नामक रसशास्त्रके विद्वान् अल्पबुद्धिवाले वैद्योंको सहजमें ज्ञान होनेके लिये शास्त्र और सिद्धजनोंके द्वारा सम्मत रससम्बन्धी परिभाषाको कहते हैं ॥ १ ॥

अर्द्धं सिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्य भागोऽष्टमः
संसिद्धाऽखिललोहचूर्णवटकादीनां तथा सप्तमः ।
यो दीयेत भिषग्वराय गदिभिर्निर्दिश्य धन्वन्तरिं
सर्वारोग्यसुखाप्तये निगदितो भागः स धन्वन्तरेः ॥ २ ॥

रोगी रोगनिवारण करनेके लिये उपयोगी औषधका जो भाग धन्वन्तरिके उद्देश्यसे तथा सब प्रकारकी आरोग्यता और सुखप्राप्तिके लिये औषधनिर्माण कर्त्ता वैद्यके लिये देता है, वह धन्वन्तरिका भाग कहलाता है। उस भागका प्रमाण इस प्रकार है सिद्धरसका आधा भाग सिद्धतैल, सिद्धघृत और अवलेहका आठवाँ भाग, तथा सिद्ध की हुई लोह आदि धातु, चूर्ण और गुटिका आदिका सातवाँ भाग वैद्यको देना चाहिये ॥ २ ॥

भैषज्यक्रीणितद्रव्यभागोऽप्येकादशो हि यः ।
वणिग्भ्यो गृह्यते वैद्यै रुद्रभागः स उच्यते ॥ ३ ॥

व्यापारियोंसे औषधियाँ खरीद कर उसमेंसे जो वैद्य ग्यारहवाँ भाग लेते हैं, वह रुद्रभाग कहा जाता है ॥ ३ ॥

प्रगृह्याधिकरुद्रांशं योऽसमीचीनमौषधम् ।
दापयेल्लुब्धधीर्वैद्यः सः स्याद्विश्वासघातकः ॥ ४ ॥

जो लोभी वैद्य रुद्रभागको अधिक परिमाणमें लेकर अयोग्य औषध (कम कीमती और अल्पगुणवाली) देता है, वह वैद्य विश्वासघाती होता है ॥ ४ ॥

धातुभिर्गन्धकाद्यैश्च निर्द्रवैर्मर्दितो रसः ।
सुश्लक्ष्णः कज्जलाभोऽसौ कज्जलीत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

गन्धक आदि धातुओंके साथ पारेको विना किसी द्रवपदार्थके खूब बारीक खरल करे । जब वह चिकना और कज्जलके समान हो जाता है तब उसको कज्जली कहते हैं ॥ ५ ॥

सद्रवा मर्दिता सैव रसपंक इति स्मृतः ॥ ६ ॥

उसी कज्जलीको यदि किसी द्रव पदार्थके साथ खरल किया जाता है तब उसको रसपङ्क कहते हैं ॥ ६ ॥

अर्कांशतुल्याद्रसतोऽथ गन्धा-
न्निष्कार्धतुल्यात्कुट्टितोऽभिखल्वे ।
अर्कातपे तीव्रतरे विमर्द्या
पिष्टी भवेत्सा नवनीतरूपा ॥ ७ ॥

गन्धक आधा निष्क (१॥ माशे) और पारा गन्धकसे १२ वॉ भाग लेकर दोनोंको खरलमें डालकर खूब तीक्ष्ण धूपमें मर्दन करे । जब वह नैनीघीके समान चिकनी होजाय तो उसे नवनीतपिष्टी कहते हैं ॥ ७ ॥

खल्वे विमर्द्य गन्धेन दुग्धेन सह पारदम् ।
पेषणात्पिष्टतां याति सा पिष्टीति मता परैः ॥ ८ ॥

पारे और गन्धकको समानभाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर उसको खरलमें डालकर दूधके साथ घोटे । घुटते २ जब वह पिट्ठीके समान वारीक होजाती है तब उसको पिष्टी कहते हैं ॥ ८ ॥

चतुर्थांशसुवर्णेन रसेन कृतपिष्टिका ।
भवेत्पातनपिष्टी सा रसस्योत्तमसिद्धिदा ॥ ९ ॥

एक भाग पारेको चौथाई भाग सुवर्णके साथ घोटकर जो पिष्टी (कज्जली) की जाती है उसको पातनपिष्टी कहते हैं । वह पारदको उत्तम सिद्धि प्रदान करती है ॥ ९ ॥

रूप्यं वा जातरूपं वा रसगन्धादिभिर्हतम् ।
समुत्थितं च बहुशः सा कृष्टी हेमतारयोः ॥ १० ॥

पारा, गन्धक आदिके द्वारा भस्म किये हुए सुवर्ण अथवा रूपेका जो अनेक औषधियोंके द्वारा पुनरुत्थापन किया जाता है, उसको सुवर्ण और रौप्यकी कृष्टी कहते हैं ॥ १० ॥

कृष्टीं क्षिपेत्सुवर्णान्तर्न वर्णो हीयते तया ।
स्वर्णकृष्ट्या कृतं बीजं रसस्य परिरंजनम् ॥ ११ ॥

उत्तम प्रकारसे की हुई कृष्टीको सुवर्णमें (अग्निपर गलाकर) मिलानेसे सुवर्णका वर्ण कम नहीं होता है । इस स्वर्णकृष्टीके द्वारा सिद्ध किया हुआ बीज पारेका रंजक (रंगनेवाला) होता है ॥ ११ ॥

ताम्रं तीक्ष्णसमायुक्तं द्रुतं निःक्षिप्य भूरिशः ।
सगन्धलकुचद्रावे निर्गतं वरलोहकम् ॥ १२ ॥

तीक्ष्णलोहके साथ ताँबेको अग्निमें गला गलाकर उसको अनेक बार गन्धक मिले हुए वडहलके रसमें बुझावे । इस प्रकार करनेसे लोहा वरलोह कहा जाता है ॥ १२ ॥

तेन रक्तीकृतं स्वर्णं हेमरक्तीत्युदाहृतम् ।
निक्षिप्ता सा द्रुते स्वर्णे वर्णोत्कर्षविधायिनी ॥ १३॥
तारस्य रंजनी चापि बीजरागविधायिनी ।
एवमेव प्रकर्तव्याताररक्ती मनोहरा ॥
रंजनी खलु रूप्यस्य बीजानामपि रंजनी ॥ १४ ॥

उस वरलोहके साथ गलानेसे सुवर्ण रक्तवर्ण (लाल) हो जाता है, उसको हेमरक्ती कहते हैं । यह हेमरक्ती स्वर्णको गलाकर उसमें मिलानेसे सुवर्णके वर्णको उत्तम बनाती है । इसी प्रकार वरलोहके साथ रूपेको गलाकर ताररक्ती बनानी चाहिये । वह रूपेको रंगनेवाली और रूपेके बीजेंके रंगकोभी बढानेवाली है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मृतेन वा बद्धरसेन वान्यल्लोहेन वा साधितम-
न्यल्लोहम् । सितत्वपीतत्वमुपागतं तद्दलं हि
चन्द्रानलयोः प्रसिद्धम् ॥ १५ ॥

मृत अथवा बद्ध पारेके साथ या किसी लोह आदि धातुके साथ सिद्ध की हुई कोई धातु जब श्वेतवर्णकी होती है तब उसको चन्द्रदल कहते हैं और जो पीतवर्णकी होती है तो उसे अग्निदल कहते हैं ॥ १५ ॥

आवासकृतबद्धेन रसेन सह योजितम् ।
साधितं वान्यलोहेन सितं पीतं च तद्दलम् ॥ १६ ॥

मृत अथवा बद्ध पारेके साथ या अन्य किसी धातुके साथ सिद्ध की हुई किसी भी धातुको श्वेतवर्णकी होनेपर सितदल और पीतवर्णभी होनेपर पीतदल कहते हैं ॥ १६ ॥

माक्षिकेण हतं ताम्रं दशवारं समुत्थितम् ।
तद्वद्विशुद्धनागं हि द्वितयं तच्चतुष्पलम् ॥ १७॥

नीलाञ्जनहतं भूयः सप्तवारं समुत्थितम् ।
इति संशुद्धमेतद्धि शुल्बनागं प्रकीर्त्यते ॥ १८ ॥
साधितस्तेन सूतेन्द्रो वदने विधृतो नृणाम् ।
निहन्ति मासमात्रेण मेहव्यूहं विशेषतः ॥ १९ ॥
पथ्याशनस्य वर्षेण पलितं वलिभिः सह ।
गृध्रदृष्टिलसत्पुष्टिः सर्वारोग्यसमन्वितः ॥ २० ॥

सोनामाखीके साथ तांबेकी भस्म करे और फिर उत्थापित करे । इस प्रकार दस बार भस्म कर और दस बार उत्थापन करे । इस प्रकार की हुई ताम्रभस्म और शुद्ध नाग (सीसा) दोनोंको चार पल लेकर नीले सुरमेके साथ घोटकर सात बार भस्म करे और फिर सात बार उत्थापन करे । इस प्रकार शुद्ध किये हुए इस ताम्र और नागको शुल्ब नाग कहते हैं । इस शुल्बनागके द्वारा सिद्ध किये हुए पारेकी गोली बनाकर मुखमें रखनेसे मनुष्योंके बीस प्रकारके प्रमेह एक महीनेमें ही नष्ट हो जाते हैं । इसी प्रकार जो मनुष्य एक वर्षपर्यन्त इस गोलीको मुखमें धारण करे और पथ्य पदार्थोंका भोजन करे तो उसके बली (असमय शरीरमें झुर्रियोंका पडना) और पलित (विना समय बालोंका पकना) रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं । एवं उस मनुष्यकी गिद्धके समान दूरदृष्टि हो जाती है, शरीरमें कान्ति और पुष्टि होती है और वह मनुष्य सब प्रकारकी आरोग्यतासे सम्पन्न होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

लोहं लोहान्तरे क्षिप्तं ध्मातं निर्वापितं द्रवे ।
पाण्डुपीतप्रभं जातं पिंजरीत्यभिधीयते ॥ २१ ॥

एक धातुको किसी दूसरी धातुमें मिलाकर अग्निमें फूँके, फिर किसी द्रव (पतले) पदार्थमें डालकर बुझावे । इस

प्रकार करनेसे जब वह धातु श्वेत और पीतवर्णकी कान्ति- वाली होजाती है तब उसको पिंजरी कहते हैं ॥ २१ ॥

भागाः षोडश तारस्य तथा द्वादश भास्वतः ।
एकत्रवर्त्तितास्तेन चन्द्रार्कमिति कथ्यते ॥ २२ ॥

रूपा (चांदी) १६ भाग और ताम्र १२ भाग लेकर दोनोंको एकत्र गलाकर जो रस तैयार किया जाता है, उसको चन्द्रार्क कहते हैं ॥ २२ ॥

साध्यलोहेऽन्यलोहं चेत्प्रक्षिप्तं वङ्कनालतः ।
निर्वापणं तु तत्प्रोक्तं वैद्यैर्निर्वाहणं खलु ॥ २३ ॥
क्षिपेन्निर्वापणं द्रव्यं निर्वाह्योसमभागिकम् ।
आवाह्यं चापनीये च भागे दृष्टे च दृष्टवत् ॥ २४ ॥

जब किसी एक धातुका संस्कार अथवा सिद्धि की जा रही हो; अर्थात् गलाई जा रही हो उसी समय दूसरी धातुको गलाकर वंकनालके द्वारा उसमें मिला देवे । इस प्रकारसे एक धातुमें दूसरी धातुके डालनेको प्राचीन वैद्योंने निर्वापण और जिस धातुमें दूसरी धातु मिलाई जाती है उसको निर्वाहण कहा है । निर्वापण और निर्वाहण इन दोनों द्रव्योंका परि- माण समानभाग होना चाहिये । अथवा जिसने यह क्रिया करी हो वह मनुष्य यदि उचित समझे तो निर्वापण द्रव्यको निर्वाह्य द्रव्यसे न्यूनाधिक परिमाणमेंभी डाल सकता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

मृतं तरति यत्तोये लोहं वारितरं हि तत् ॥ २५ ॥

जिस धातुकी भस्म जलमें तैरने लगती है, उसको वारितर भस्म कहते हैं ॥ २५ ॥

अङ्गुष्ठतर्जनीस्पृष्टं यत्तद्रेखान्तरे विशेत् ।
मृतलोहं तदुद्दिष्टं रेखापूर्णाभिधानतः ॥ २६ ॥

अँगूठा और तर्जनी अँगुलीके द्वारा रगडनेमें जो भस्म उनकी रेखाओंके भीतर प्रविष्ट हो जाय उस धातुकी भस्मको रेखापूर्ण कहते हैं ॥ २६ ॥

गुडगुंजासुखस्पर्शमध्वाज्यैः सह योजितम् ।
नायाति प्रकृतिं ध्मानादपुनर्भवमुच्यते ॥ २७ ॥
तस्योपरि गुरु द्रव्यं धान्यं चोपनयेद्ध्रुवम् ।
हंसवत्तीर्यते वारिण्युत्तमं परिकीर्तितम् ॥ २८ ॥

गुड, चोंटली, सुहागा, शहद और घी इनके साथ किसी भी धातुकी भस्मको मिलाकर अग्निमें फूँकनेसे वह धातु फिर अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त नहीं होती अर्थात् जीवित नहीं होती। इसको अपुनर्भव भस्म कहते हैं। उस अपुनर्भव भस्मको पानीमें डालकर उसके ऊपर धान्य आदि किसी गुरु द्रव्यको डाले, जब वह हंसके समान जलके ऊपर तैरने लगता है तब उसको उत्तम भस्म कहते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

रौप्येण सह संयुक्तं ध्मातं रौप्ये न चेल्लगेत् ।
तदा निरुत्थमित्युक्तं लोहं तदपुनर्भवम् ॥ २९ ॥

लोहभस्मको रूपेके पत्रोंके साथ मूषामें रखकर अग्निमें फूँके, जब वह भस्म उक्त पत्रोंके साथ न लगे तब उसको अपुनर्भव अथवा निरुत्थ भस्म कहते हैं ॥ २९ ॥

निर्वापणविशेषेण तत्तद्वर्णं भवेद्यदा ।
मृदुलं चित्रसंस्कारं तद्बीजमिति कथ्यते ॥
इदमेव विनिर्दिष्टं वैद्यैरुत्तरणं खलु ॥ ३० ॥

जब कि निर्वापण द्रव्यके डालनेसे निर्वापण और निर्वाहण इन दोनों धातुओंका वर्ण बदलकर एकरूप हो जाय और वह धातु मृदु (नरम) हो जाय तब इस प्रकार विचित्र संस्कार की हुई उस धातुको बीज कहते हैं। इसी बीजको वैद्योंने उत्तरण कहा है ॥ ३० ॥

संस्पृष्टलोहयोरेकलोहस्य परिसाधनम् ।
प्रध्मातं वंकनालेन तत्ताडनमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥

दो धातुओंको एकत्र मिलाकर उनमेंसे जब एक धातुको सिद्ध करना हो तो उनको मूषामें रखकर वंकनालके द्वारा इस प्रकार फूंके कि दोनों धातुएँ गलकर एकरूप हो जांय । इस क्रियाको ताडन कहते हैं ॥ ३१ ॥

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके ।
निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥

अभ्रकके चूर्णको शालिधानोंमें मिलाकर एक वस्त्रमें बांधकर पोटली बनालेवे, उस पोटलीको कॉजीमें भिजोकर खूब कूटे । कूटनेपर वस्त्रमेंसे जो बारीक चूर्ण निकलता है उसको धान्याभ्र कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षाराम्लद्रावकैर्युक्तं ध्मातमाकरकोष्ठके ।
यस्ततो निर्गतः सारः सत्त्वमित्यभिधीयते ॥ ३३॥

क्षारवर्ग, अम्लवर्ग और द्रावणवर्गकी ओषधियोंके साथ किसी धातुकी भस्मको मिलाकर उसको मूषामें रखकर अग्निमें फूँके । इस प्रकार फूकनेसे उसमेंसे जो सार निकालता है उसको सत्त्व कहते हैं ॥ ३३ ॥

कोष्ठिकाशिखरापूर्णैः कोकिलैर्ध्मानयोगतः ।
मूषाकण्ठमनुप्राप्यैरेककोलीसको मतः ॥ ३४ ॥

एक मूषामें अनेक पकाने योग्य द्रव्योंको भरकर उसको कण्ठपर्यन्त कोयलोंकी अग्निमें रखकर फूँके। इस प्रकार फूँकनेसे जब मूषागत द्रव्य मूषाके कण्ठमें जा लगे तब उस द्रव्यको एककोलीसक कहते हैं ॥ ३४ ॥

द्रावणे सत्त्वपाते च माधूकाः खादिराः शुभाः।
निर्द्रवे वंशजास्ते तु स्वेदने बादराः शुभाः ॥ ३५ ॥

किसी धातुका द्रावण अथवा सत्त्वपातन करनेमें महुवेके अथवा खैरके कोयले उत्तम होते हैं। तथा द्रावणके विना किसी पदार्थको फूँकना हो तो बांसके और स्वेदनसंस्कार करनेमें बेरीके कोयले उत्तम होते हैं ॥ ३५ ॥

विद्याधराख्ययन्त्रस्थाद्दार्द्रकद्रवमर्दितात्।
समाकृष्टो रसो योऽसौ हिंगुलाकृष्ट उच्यते ॥ ३६ ॥

हिंगुल (सिगरफ) को अदरखके रसमें घोटकर विद्याधर नामक यन्त्रोंमें उसका लेप करके अग्निमें फूँके इस प्रकारसे जो पारा निकाला जाता है उसको हिंगुलाकृष्ट रस कहते हैं ॥३६॥

स्वल्पतालयुतं कांस्यं वंकनालेन ताडितम्।
मुक्तरंगं हि तत्ताम्रं घोषाकृष्टमुदाहृतम् ॥ ३७ ॥

काँसा और ताँबा इन दोनों धातुओंको थोडीसी हरतालके साथ मिलाकर वंकनालके द्वारा अग्निमें फूँके। जब काँसेको निकालनेसे वह वर्णरहित होजाता है तब उस ताम्रको घोषाकृष्ट कहते हैं ॥ ३७ ॥

तीक्ष्णं नीलाञ्जनोपेतं ध्मातं हि बहुशो दृढम्।
मृदु कृष्णं द्रुतद्रावं वरनागं तदुच्यते ॥ ३८ ॥

तीक्ष्ण लोहको काले सुरमेके साथ मिलाकर वारम्वार

अग्निमें फूंकनेसे जब वह अत्यन्त कोमल, काला और शीघ्र पिघलनेवाला हो जाता है तब उसको वरनाग कहते हैं ॥ ३८ ॥

मृतस्य पुनरुद्भूतिः संप्रोक्तोत्थापनाख्यया ।
द्रवद्रव्यस्य निक्षेपो द्रवे तड्ढालनं मतम् ॥ ३९ ॥

भस्म की हुई किसी स्वर्णादि धातुको जो फिर द्रावणवर्गकी औषधियोंके साथ मिलाकर धातु बनाया जाता है; (अर्थात् उस भस्मको धातुके असली रूपमें लाया जाता है) उसको उत्थापन कहते हैं । एवं अग्निपर गलाई हुई किसी धातुको दूसरी पतली धातुमें जो डाला जाता है, उसको ढालन कहते हैं ॥ ३९ ॥

त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम् ।
विमर्द्य पुटयेत्तावद्यावत्कर्षावशेषितम् ॥ ४० ॥
न तत्पुटसहस्रेण क्षयमायाति सर्वदा ।
चपलोऽयं समादिष्टो वार्त्तिकैर्नागसम्भवः ॥ ४१ ॥
इत्थं हि चपलः कार्यो वंगस्यापि न संशयः ।
तत्स्पृष्टहस्तसंस्पृष्टः केवलो बध्यते रसः ॥ ४२ ॥
स रसो धातुवादेषु शस्यते न रसायने ।
अयं हि खर्वणाख्येन लोकनाथेन कीर्त्तितः ॥ ४३ ॥

तीस पल (१२० तोले) सीसेको लेकर आकके दूधमें खरल करके गजपुट देवे । फिर सीसा जलते २ जब एक तोला परिमाण शेष रह जाय तबतक बारम्बार आकके दूधमें घोटकर बारम्बार गजपुट देवे । इस प्रकार पुट देनेसे जो १ तोला सत्त्व शेष रहता है वह फिर हजार पुट देनेसे भी नष्ट नहीं होता है। वार्तिककारोंने इसीको नागजनित चपल कहा है

इसी प्रकार वंगकाभी चपल बनाना चाहिये । इस चपलका ऐसा प्रभाव है कि इस चपलको हाथोंसे मलकर केवल पारेको स्पर्श करनेसे पारा बँध जाता है । नागचपल अथवा वंगचपल इनके द्वारा बद्ध किया हुआ पारा धातुवाद (कीमिया करने) में उपयोगी होता है, उसको रसायन कर्ममें प्रयोग नहीं करना चाहिये । यह विधि खर्वण नामक लोकपालने कही है ॥ ४०-४३ ॥

भूभुजङ्गशकृत्तोयैः प्रक्षाल्यापहृतं रजः ।
कृष्णवर्णं हि तत्प्रोक्तं धौताख्यं रसवादिभिः ॥ ४४ ॥
द्रव्ययोर्मर्दनाद् ध्मानाद् द्वन्द्वानंपरिकीर्तितम् ।
भागाद् द्रव्याधिके क्षेपमनुवर्णसुवर्णके ॥ ४५ ॥
द्रवैर्वा वह्निकाह्लासो भञ्जनी वादिभिर्मता ।
पतङ्गा कल्कतो जाता लोहे तारे च हेमता ॥४६॥
दिनानि कतिचित्स्थित्वा यात्यसौ चुल्लिका मता ।
रंजिताद्धि चिराल्लोहाद् ध्मानाद्वा चिरकालतः ॥४७॥
विनिर्यासः स निर्दिष्टः पतंगीरागसंज्ञकः ॥ ४८ ॥

केंचुओंकी विष्ठाको बारम्बार जलमें धोनेसे उसमेंसे जो काले रंगका चूर्ण निकलता है उसको रसशास्त्रविशारदोंने धौत कहा है । दो धातुओंको एकत्र मर्दन करनेसे अथवा एकत्र फूँकनेसे जो एकीकरण किया जाता है उसको द्वन्द्वान कहते हैं । सुवर्ण आदि धातुओंमें जब किसी अन्य द्रव्यका भाग मिलाया जाता है तब उसको अनुवर्ण और सुवर्णक कहते हैं । किसी धातुको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्निमें तपाकर किसी द्रव (पतले) पदार्थमें बुझावे इस क्रियाको रसवादियोंने भंजनी

कहा है । किसी औषधिके कल्कसे जब रौप्य अथवा लोहेमें सुवर्णकासा वर्ण आजाता है तो वह पतङ्गी कहलाता है। इस प्रकारसे उत्पन्न हुआ स्वर्णवर्ण कुछ दिनोंतक स्थित रह-कर जब नष्ट होजाता है तब उसको चुल्लिका (वल्लिका) कहते हैं । चिरकालतक धातुको रंगनेसे अथवा चिरकालतक धातुको फूँकनेसे उसमेंसे जो प्रवाही सत्त्व निकलता है, उसको पतंगी राग कहते हैं ॥ ४४–४८ ॥

द्रुते द्रव्यान्तरक्षेपो लोहाद्ये क्रियते हि यः ।
स आवापः प्रतीवापस्तदेवाच्छादनं मतम् ॥ ४९ ॥

लोह आदि धातुको अग्निमें गलाकर उसमें जो और कोई पदार्थ डाला जाता है, वह आवाप, प्रतीवाप अथवा आच्छा-दन कहा जाता है ॥ ४९ ॥

द्रुत वह्निस्थिते लोहे विरम्याष्टानिमेषकम् ।
सलिलस्य परिक्षे :साऽभिषेक इति स्मृतः ॥५०॥

किसी धातुको अग्निपर गलाकर उसको भट्टीसे नीचे उतारले, फिर आठ निमेष तक ठहरकर उसमें थोडा थोडा जल डाले, इसको अभिषेक कहते हैं ॥ ५० ॥

ततस्याप्सु विनिक्षेपो निर्वापः स्नपनं च तत् ।
प्रतीवापादिकं कार्यं द्रुत लोहे सुनिर्मल ॥५१॥

तपाई हुई धातुको जलमें अथवा औषधिके रसमें जो बुझाया जाता है, उसको निर्वाप और स्नपन कहते हैं। जब किसी धातुमें प्रतीवाप करना हो तो उस धातुको पहले अग्नि-पर तपाकर उत्तम प्रकारसे निर्मल कर लेवे, फिर उसमें प्रती-वाप आदि करे ॥ ५१ ॥

यदा हुताशो दीप्तार्चिः शुक्लोत्थानसमन्वितः ।
शुद्धावर्त्तस्तदा ज्ञेयः स कालः सत्त्वनिर्गमे ॥ ९२ ॥

जब अग्नि अच्छे प्रकारसे प्रज्वलित हो जाय और उसमेंसे स्वच्छ लपटें निकलने लगें तब उसको शुद्धावर्त कहते हैं। सत्त्व निकालनेका वही उत्तम समय है ॥ ९२ ॥

द्रावद्रव्यनिभा ज्वाला दृश्यते धमने यदा ।
द्रावस्योन्मुखता सेयं बीजावर्तः स उच्यते ॥ ९३ ॥

जब द्रावण करनेके लिये किसी धातुको अग्निपर रखकर फूँका जाता है, उस समय उसी धातुके वर्णवाली अग्निकी जो ज्वाला दिखाई देती है उसको बीजावर्त्त कहते हैं। इसी समय द्रव्यका द्रावण होना शुरू होता है ॥ ९३ ॥

वह्निस्थमेव शीतं यत्तदुक्तं स्वांगशीतलम् ॥
अग्नेराकृष्य शीतं यत्तद्बहिः शीतमुच्यते ॥ ९४ ॥

जो वस्तु अग्निम पकाई जाय, वह अग्निमेंही रक्खी हुई अग्निके साथ २ शीतल होजाय तो उसको स्वांगशीतल कहते हैं। एवं अग्निमेंसे निकालकर या उतारकर जो वस्तु शीतल की जाती है उसको बहिःशीत कहते हैं ॥ ९४ ॥

पारद संस्कार ।

क्षाराम्लैरौषधैर्वापि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि ।
पचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम् ॥९५॥

क्षार (जवाखार आदि) और अम्लवर्गकी औषधियोंके साथ पारेको अथवा धातु उपधातुको दोलायन्त्रमें रखकर जो पकाया जाता है, उसको स्वेदन संस्कार कहते हैं। यह स्वेदन उस पदार्थके मलको शिथिल करता है ॥ ९५ ॥

उदितैरौषधैर्वापि सर्वाम्लैः काञ्जिकैरपि ।
पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बहिर्मलविनाशनम् ॥ ५६ ॥

उपर्युक्त ओषधियोंके साथ अथवा सब प्रकारके अम्ल पदार्थोंके साथ या केवल काँजीके साथ पारेको जो घोटा जाता है उसको मर्दन संस्कार कहते हैं । इस संस्कारके द्वारा पारेका बाह्य मल नष्ट होजाता है ॥ ५६ ॥

मर्दनादिष्टभैषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि वंगादिभुजकंचुकनाशनम् ॥ ५७ ॥

मर्दनके लिये कही हुई औषधियोंके साथ पारेको घोटकर पिष्टी अथवा कज्जली करके जो उसका सूक्ष्म चूर्ण किया जाता है, उसको मूर्च्छन संस्कार कहते हैं । इस संस्कारसे पारद आदि पदार्थोंमें रहनेवाले वंग सीसा आदि कंचुकी दोष नाश हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत् ।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥ ५८ ॥

अग्निमें स्वेदन करके अथवा धूपमें तपाकर मूर्च्छित किये हुए पारेको जो फिर उसके पूर्व रूपमें लाया जाता है, उसको उत्थापन संस्कार कहते हैं । इसके द्वारा मूर्च्छाके कारण उत्पन्न हुए पारेके विकार दूर हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि यत् ।
विद्वद्भिर्निर्जितः सूतो नष्टपिष्टिः स उच्यते ॥ ५९ ॥

पारेकी कज्जली करनेपर प्रकृतस्वरूपके नष्ट हो जानेसे बन्धनको प्राप्त हो जाता है । इस प्रकारसे जीते हुए पारदके विद्वान् लोग नष्टपिष्टी संस्कार कहते हैं ॥ ५९ ॥

---

१ सार्धमित्यपिपाठः ।

उक्तौषधैर्मर्दितपारदस्य
यन्त्रस्थितस्योर्ध्वमधश्च तिर्यक् ।
निर्यातनं पातनसंज्ञमुक्तं
वंगादिसंपर्कजकंचुकघ्नम् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त औषधियोंके साथ पारेको मर्दन करके उसको ऊर्ध्व-पातन, अधःपातन और तिर्यक्पातन यन्त्रोंमें क्रमसे लेप करके जो उडाया जाता है, उसको पातन कहते हैं । यह पातन संस्कार वंग, और सीसेके सम्पर्कसे उत्पन्न हुए कंचुकी दोषको दूर करता है ॥ ६० ॥

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिरास्थापनीकुम्भे याऽसौ रोधनमुच्यते ॥ ६१ ॥

मिट्टीके घडेमें पानी और सैंधा नमक भरकर उसमें पारेको कपडेकी पोटलीमें बांधकर डाल देवे और उस घडेको तीन दिनतक बराबर वैसे ही रक्खा रहने देवे । इसको रोधन संस्कार कहते हैं ॥ ६१ ॥

रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये ।
क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥ ६२ ॥

रोधन संस्कारसे शक्तिको प्राप्त हुए पारेकी चपलताको निवारण करनेके लिये पारेमें जो स्वेद दिया जाता है; (अर्थात् उसको पानीमें पकाया जाता है) उसको नियमन संस्कार कहते हैं ॥ ६२ ॥

धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यगः ।
ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेदो दीपनं तन्मतं बुधैः ॥ ६३ ॥

धातु, उपधातु और वनस्पतियोंके मूल आदिके साथ पारेको एक घडेमें भरकर तीन दिनतक स्वेद देवे (पकावे),

इसको विद्वान् लोग दीपन संस्कार कहते हैं । इस संस्कारके द्वारा पारेमें अन्य लोह आदि धातुओंके ग्रास करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ६३ ॥

इयन्मानस्य सूतस्य भोज्यद्रव्यात्मिका मितिः ।
इयतीत्युच्यते याऽसौ ग्रासमानं समीरितम् ॥ ६४ ॥

इतना परिमाणवाला पारा इतने परिमाणवाले दूसरे धातुका ग्रास कर सकता है, इस प्रकार जो मापका निश्चय किया जाता है, उसको रस परिभाषामें इयती अथवा ग्रासमान कहते हैं ॥ ६४ ॥

ग्रासस्य चारणं गर्भे द्रावणं जारणं तथा ।
इति त्रिरूपा निर्दिष्टा जारणा वरवार्त्तिकैः ॥ ६५ ॥
ग्रासः पिण्डः परीणामस्तिस्रश्चाख्याः पराः पुनः ।
समुखा निर्मुखा चेति जारणा द्विविधा पुनः ॥६६॥

पारेके गर्भ (बीच) में मिलाये जानेवाले पदार्थको ग्रास कहते हैं । (१) उस ग्रासको जब बिना अग्निके संयोगके पारेके गर्भमें मिलाया जाता है तब गर्भ चारण कहते हैं । (२) जब ग्रासपदार्थको द्रावण करके द्रवीभूत पारेमें मिलाया जाता है तब उसको गर्भद्रावण कहते हैं और (३) जब तपते हुए पारेमें ग्रास पदार्थको डालकर जलाया जाता है उसको गर्भ-जारण कहते हैं इस प्रकार उत्तम वार्त्तिककारोंने तीन प्रकारका जारण संस्कार कहा है । इस जारण संस्कारके ग्रास, पिण्ड और परिणाम ये तीन नाम हैं । फिर जारणके संमुख जारणा और निर्मुख जारणा ये दो भेद हैं ॥ ६५–६६ ॥

निर्मुखा जारणा प्रोक्ता बीजाऽऽदानेन भागतः ।
शुद्धं स्वर्णं च रूप्यं च बीजमित्यभिधीयते ॥ ६७॥

पारा कहीं २ चौथाई भागवाले बीज (सुवर्ण या रौप्य) को ही ग्रास कर सकता है इसको निर्मुखा जारणा कहते हैं । शुद्ध सुवर्ण और शुद्ध रौप्य (चांदी) को बीज कहते हैं ॥६७॥

चतुःषष्ट्यंशतो बीजप्रक्षेपो मुखमुच्यते ।
एवं कृते रसो ग्रासलोलुपो मुखवान् भवेत् ॥ ६८ ॥
कठिनान्यपि लोहानि क्षमो भवति भक्षितुम् ।
इयं हि समुखा प्रोक्ता जारणा मृगचारिणा ॥ ६९ ॥

पारेमें ६४ भाग बीज (सुवर्ण, रौप्य) के मिलानेको पारेका मुख कहते हैं । ऐसा करनेपर पारा जब मुखवाला हो जाता है, तब वह धातुओंका ग्रास करनेके योग्य होता है । ऐसा पारा कठिन लोहादि धातुओंके भक्षण करनेको भी समर्थ होता है । मृगचारी नामवाले रसशास्त्रके विद्वान्ने इसीको समुखा जारणा कहा है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

दिव्यौषधिसमायोगात्स्विन्नः[1] प्रकटकोटिषु ।
भुंजीताखिललोहाद्यं योऽसौ राक्षसवक्त्रवान् ॥ ७० ॥

दिव्य वनस्पतियोंके साथ मिलाकर खुली हुई मूषामें (अग्निपर) रक्खा हुआ पारा यदि सर्व प्रकारकी लोहादि धातुओंको भक्षण कर जावे तो उसे राक्षसमुखवाला कहते हैं । (यह जारणका एक भेद है) ॥ ७० ॥

रसस्य जठरे ग्रासक्षेपणं चारणा मता ।
ग्रस्तस्य द्रावणं गर्भे गर्भद्रुतिरुदाहृता ॥ ७१ ॥

पारेके उदर (बीच) में ग्रास (किसी धातु) के डालनेको चारणा कहते हैं । ऐसे ग्रस्त अथवा मिश्रित पदार्थका गर्भमें द्रावण होकर जब वह पारेमें मिल जाता है तब उसको गर्भद्रुति कहते हैं ॥ ७१ ॥

---

१ स्थितः इत्यपि पाठः ।

बहिरेव द्रुतिं कृत्वा घनसत्त्वादिकं खलु ।
जारणाय रसेन्द्रस्य सा बाह्यद्रुतिरुच्यते ॥ ७२ ॥

जो कठिन पदार्थ अथवा धातुओंके सत्त्वआदिको द्रावण करके पारेके बीचमें जारण करनेके लिये मिलाया जाता है, उसको बाह्यद्रुति कहते हैं ॥ ७२ ॥

निर्लेपत्वं द्रुतत्वं च तेजस्त्वं लघुता तथा ।
असंयोगश्च सूतेन पञ्चधा द्रुतिलक्षणम् ॥ ७३ ॥

१ पतलापन, २ चमकदारपन, ३ हल्कापन, ४ निर्लेपता; अर्थात् अत्यन्त पतलापन होनेके कारण पात्रसे न लिपटना और पारेके साथ संयोग न होना ये ५ पांच प्रकारके लक्षण उत्तम द्रुति होनेके निदर्शक हैं ॥ ७३ ॥

औषधाध्मानयोगेन लोहधात्वादिकं तथा ।
सन्तिष्ठते द्रवाकारं सा द्रुतिः परिकीर्त्तिता ॥ ७४ ॥

जब किसी विशेष औषधि और अग्निसंस्कारके द्वारा लोह आदि धातुयें द्रवीभूत (पिघलकर) होकर उसी रूपमें रहती हैं तब उसको द्रुति कहते हैं ॥ ७४ ॥

द्रुतग्रासपरीणामो विड्यन्त्रादियोगतः ।
जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्ति कोटिशः ॥ ७५ ॥

विड यन्त्र आदिके योगसे पारेके द्रुत होने पर ग्रास (लोहादि धातु) का जो टिकाऊ परिणाम होता है उसको जारणा कहते हैं । उसके करोडों प्रकार हैं ॥ ७५ ॥

क्षारैरम्लैश्च गन्धाद्यैर्मूत्रैश्च पटुभिस्तथा ।
रसग्रासस्य जीर्णार्थं तद्बिडं परिकीर्त्तितम् ॥ ७६ ॥

क्षार (जवाखारादि), अम्लपदार्थ, गन्धक आदि धातु, गोमूत्र, और पञ्चलवण इनके सहयोगसे पारेके ग्रास (पारेमें

मिलाई हुई धातु) को जारण करनेके लिये प्रस्तुत किये हुए प्रयोगको बिड कहते हैं ॥ ७६ ॥

सुसिद्धबीजधात्वादि जारणेन रसस्य हि ।
पीतादिरागजननं रञ्जनं परिकीर्त्तितम् ॥ ७७ ॥

विशेष संस्कारोंके द्वारा उत्तम प्रकारसे सिद्ध किये हुए बीज स्वर्ण, रौप्य अथवा अन्य धातुओंके द्वारा पारेको जारण करके उसमें जो पीत, रक्त आदि वर्ण उत्पन्न किया जाता है उसको रञ्जन कहते हैं ॥ ७७ ॥

सूते सतैलयन्त्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं च यत् ॥
वेधाधिक्यकरं लोहे सारणा सा प्रकीर्त्तिता ॥ ७८ ॥

तेलसे भरे हुए यन्त्र (मूषा) में पारा डालकर उसमें पारेका पचन होने और धातुओंका वेध होनेके लिये जो स्वर्ण आदि डाले जाते हैं, उसे सारणा कहते हैं ॥ ७८ ॥

व्यवायि भेषजोपेतो द्रव्ये क्षिप्तो रसः खलु ।
वेध इत्युच्यते तज्ज्ञैः स चानेकविधः स्मृतः ॥७९ ॥
लेपः क्षेपश्च कुन्तश्च धूमाख्यः शब्दसंज्ञकः ।
लेपनात्कुरुते लोहं स्वर्णं वा रजतं तथा ॥ ८० ॥
लेपवेधः स विज्ञेयः पुटमत्र च सौकरम् ।
प्रक्षेपणं द्रुते लोहे वेधः स्यात्क्षेपसंज्ञितः ॥ ८१ ॥
संदंशधृतसूतेन द्रुतद्रव्याहतिश्च या ।
सुवर्णत्वादिकरणं कुन्तवेधः स उच्यते ॥ ८२ ॥
वह्नौ धूमायमानेऽन्तः प्रक्षिप्तरसधूमतः ।
स्वर्णाद्यापादनं लोहे धूमवेधः स उच्यते ॥ ८३ ॥

---

[१] लेपनमे बोपपाठः

मुखस्थितरसेनाल्पलोहस्य धमनात्खलु ।
स्वर्णरूप्यत्वजननं शब्दवेधः स कीर्त्तितः ॥ ८४ ॥

व्यवायि (अफीम, भंग आदि) औषधियोंके साथ अथवा योगवाही ओषधियोंके साथ पारेका मिलाकर जो किसी धातुमें डाला जाता है, उसको वेध कहते हैं। वह वेध अनेक प्रकारका होता है, ऐसा रसशास्त्रज्ञोंने कहा है वेधके लेपवेध, क्षेपवेध, कुन्तवेध, धूमवेध और शब्दवेध ये पाँच मुख्य नाम व प्रकार हैं। १ लेपवेध—जब किसी धातुके ऊपर पारेका लेप करके सुवर्ण अथवा रौप्य बनाया जाता है, उसको लेपवेध जानना चाहिये। इस लेपवेधमें वाराहपुट देना चाहिये। २ क्षेपवेध—किसी धातुको गलाकर उसमें (औषधमिश्रित) पारेका डालना क्षेपवेध कहलाता है। ३ कुन्तवेध—संडासीसे पारेके पात्रको पकडकर पारेमें जो गलाई हुई धातु मिलाकर सुवर्ण आदि धातु बनाई जाती हैं, उसको कुन्तवेध कहते हैं। ४ धूमवेध अग्निम पारेको रखनेपर जब उसमें धुआँ निकलने लगे तब भट्टीपर गलाई हुई धातुको उसमें डालकर जो स्वर्णआदि बनाया जाता है, उसको धूमवेध कहते हैं। ५ शब्दवेध—किसी थोडीसी धातुको अग्निपर गलाकर और मुखमें पारा रखकर फूँकनेकी नली अथवा मुँहकी फूँकके द्वारा फूँके; इस प्रकार फूँकनेसे जो स्वर्ण, रौप्य धातु बनाई जाती है, उसको शब्दवेध कहते हैं ॥ ७९–८४ ॥

सिद्धद्रव्यस्य सूतेन कालुष्यादिनिवारणम् ।
प्रकाशनं च वर्णस्य तदुद्घाटनमीरितम् ॥ ८५ ॥

पारेको सिद्ध करके उसके द्वारा सिद्ध पदार्थोंकी मलिनताको दूर कर उनमें जो स्वच्छवर्ण उत्पन्न किया जाता है, उसको उद्घाटन कहते हैं ॥ ८५ ॥

क्षाराम्लैरौषधैः सार्द्धं भाण्डं रुद्ध्वाऽतियत्नतः ।
भूमौ निखन्यते यत्नात्स्वेदनं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ८६ ॥

क्षार, अम्ल तथा अन्यान्य ओषधियोंके साथ पारा और किसी धातुको एक घडेमें भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करके भूमिमें गाडदेवे; इस क्रियाको भी स्वेदन कहते हैं ॥ ८६ ॥

रसस्यौषधयुक्तस्य भाण्डरुद्धस्य यत्नतः ।
मन्दाग्नियुतचुल्ल्यन्तः क्षेपः संन्यास उच्यते ॥ ८७ ॥

पारेको ओषधियोंके कल्कमें मिलाकर गोलासा बनाकरके एक मटकेमें रक्खे, फिर कपरौटी करके उसको मन्द मन्द अग्निसे युक्त चूल्हेपर चढावे । इसको संन्यास कहते हैं ॥ ८७ ॥

द्वावेतौ स्वेदसंन्यासौ रसराजस्य निश्चितम् ।
गुणप्रभावजनकौ शीघ्रव्याप्तिकरौ तथा ॥ ८८ ॥

स्वेदन और संन्यास ये दोनों संस्कार पारेके गुण और प्रभावको बढानेवाले हैं और उसके शरीरमें शीघ्र व्याप्ति करनेवाली हैं ॥ ८८ ॥

रसनिगममहाब्धेः सोमदेवः समन्तात्
स्फुटतरपरिभाषानामरत्नानि हत्वा ।
व्यरचयदतियत्नात्तैरिमां कण्ठमालां
कलयति भिषगग्र्यो मण्डनार्थं सभायाम् ॥ ८९ ॥

सोमदेव नामक रसशास्त्रज्ञने, रसशास्त्ररूप समुद्रमेंसे बडे यत्नके साथ अत्यन्त स्पष्ट परिभाषाके नामरूप रत्नोंको निकालकर उनकी यह कण्ठमाला (कण्ठमें धारण करने योग्य–कण्ठभूषण) तैयार की है । इस मालाको सभाके बीचमें

अलंकृत होने (अर्थात् सिद्धांतोंका मण्डन करने) के लिये श्रेष्ठ वैद्य धारण करते हैं ॥ ८९ ॥

भवेत्पठितवारोऽयमध्यायो रसवादिनाम् ।
रसकर्माणि कुर्वाणो न स मुह्यति कुत्रचित् ॥९० ॥

रसशास्त्रके विद्वानोंका कहा हुआ यह अध्याय जिस वैद्यको पढते २ कण्ठस्थ हो जाता है, वह वैद्य रसक्रियाओंको करता हुआ किसी प्रयोगमें भी मोहित नहीं होता; अर्थात् भूल नहीं कर सकता ॥ ९० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य विरचिते रसरत्नसमु-
च्चयेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

यन्त्र ।

अथ यन्त्राणि वक्ष्यन्ते रसतन्त्राण्यशेषतः ।
समालोच्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतम् ॥ १ ॥
स्वेदादिकर्म निर्मातुं वार्तिकेन्द्रैः प्रयत्नतः ।
यंत्र्यते पारदो यस्मात्तस्माद्यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

श्रीसोमदेवने सम्पूर्ण रस शास्त्रोंको अवलोकन करके जो यन्त्र बनानेकी विधि कही है, वे यन्त्र यहां संक्षेपसे कहे जाते हैं । स्वेदन आदि संस्कार करनेके लिये बडे प्रयत्नसे पारेका जिससे नियन्त्रण किया जाता है, वार्त्तिककारोंने उसको यन्त्र ऐसा कहा है ॥ १ ॥ २ ॥

१ दोलायन्त्र ।

द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धोदकस्य च ।
मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ३ ॥

तयोस्तु निक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम् ।
बध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥

एक मिट्टीका घडा लेकर उसके मुख (अर्थात् कण्ठ) के दोनों तरफ एक एक छिद्र करलेवे और उनमें लकडीका एक मजबूत डंडा अटका देवे फिर उस डंडेके बीचमें पारेकी पोटलीको बांधकर नीचेको अधर लटका देवे और उस घडेको द्रवद्रव्य (क्षार, अम्ल पदार्थ और कांजी आदि) से आधा भरकर, घडेके मुँहपर ढक्कन ढककर कपरौटी करदेवे । फिर उसके नीचे मन्दमन्द अग्नि जलाकर स्वेद देवे । इस प्रकारके यन्त्रको दोलायन्त्र कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

२ स्वेदनी यन्त्र ।

साम्बुस्थालीमुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निवेशयेत् ।
पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्रमुच्यते ॥ ५ ॥

जलसे (अथवा किसी द्रव पदार्थसे) भरी हुई हांडीके मुखपर वस्त्र बांधकर उसके ऊपर स्वेद्य द्रव्यको रक्खे और उसपर ढक्कन ढककर कपरौटी करदेवे, फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढाकर पकावे । इस प्रकारसे जिसमें स्वेद दिया जाता है उसे स्वेदनी यन्त्र कहते हैं ॥ ५ ॥

३ पातना यन्त्र ।

अष्टाङ्गुलपरीणाहमानाहेन दशाङ्गुलम् ।
चतुरंगुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥ ६ ॥
अधोभाण्डमुखे तस्य भाण्डस्योपरि वर्तिनः ।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णपृष्ठस्यास्ये प्रवेशयेत् ॥ ७ ॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः ।

लिप्त्वा विशोषयेत्सन्धिं जलाधारे जलं क्षिपेत् ।
चुल्ल्यामारोपयेदेतत्पातनायन्त्रमुच्यते ॥ ८ ॥

सोलह अँगुल विस्तृत जिसका पृष्ठभाग हो ऐसा एक मिट्टीका घडा लेकर उसकी तलीमें आठ अँगुल चौडा, दस अंगुल लम्बा और चार अँगुल ऊँचा एक जल भरनेका आधार (पाली या थामला) बनावे । फिर उस घडेके मुँहको उसके नीचे रक्खे हुए एक दूसरे घडेके मुहमें फँसादेवे । फिर उन दोनों घडोंकी सन्धियोंको भैंसके दूधमें घोटे हुए चूना लोहमण्डूर और काँजीके द्वारा लेसकर सुखालेवे और उक्त जलाधारमें जल भरदेवे (सन्धियोंको बन्द करनेसे पहले यदि सिंगरफमेंसे पारा निकालना हो अथवा पारा उडाना हो तो प्रथम उसको औषधियोंके साथ मिलाकर नीचेके घडेकी तलीम लेप करके सुखा लेवे, फिर घडोंके मुँह जोडकर उनकी सन्धियोंको बन्द करे ।) पश्चात् उसको चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवे । इसको पातनायन्त्र कहते हैं । (पालीमे भरा हुआ पानी जब गरम होजाय तब उसको निकालकर उसमें शीतलजल भरता जाय ऐसा करनेसे पारा उडकर ऊपरके घडेकी तलीमें जा लगता है, उसको स्वांगशीतल होनपर खुरचलेना चाहिये) ॥६-८॥

४ अधःपातन यन्त्र ।

अथोर्ध्वभाजने लिप्तस्थापितस्य जले सुधीः ।
दीप्तैर्वनोपलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

इस यन्त्रके लिये वैद्य मिट्टीके २ घडे लेकर उनके मुखको इस प्रकार जोडे । पहले एक घडेके भीतर पारेको औषधियोंके रसमें घोटकर लेप करदेवे और दूसरा घडा आधा पानीसे भरदेवे, फिर पारदके लेपवाले घडके मुँहको नीचे रक्खे हुए जलवाले घडेके मुँहमें फँसादेवे और उनकी सन्धि-

यांको बन्द करके सुखालेवे । इसके पश्चात् ऊपरके घडेकी तलीसे पूर्वोक्त यन्त्रके समान पाली बनाकर उसमें आरने उपलोंकी अग्नि जलाकर यत्नपूर्वक पारेका अधःपातन करे ॥ (इस प्रकार करनेसे पारा पानीवाले नीचेके घडेमें गिरपडता है) इसको अधःपातन यन्त्र कहते हैं ॥ ९ ॥

९ कच्छप यन्त्र ।

जलपूर्णपात्रगर्भे दत्त्वा घटखर्परं सुविस्तीर्णम् ।
तदुपरि बिडमध्यगतःस्थाप्यःसूतःकृतः कोष्ठ्याम् ॥१०॥
लघुलोहकटोरिकया कृतपन्सृतसन्धिलेपयाऽऽच्छाद्य ।
पूर्वोक्तघटखर्परमध्येऽङ्गारैः खदिरकालभवैः ॥ ११ ॥
स्वेदनतो मर्दनतः कच्छपयन्त्रास्थितो रसो जरति ।
अग्निबलेनैव ततो गर्भे द्रवन्ति सर्वसत्त्वानि ॥१२ ॥

एक बहुत बडा बर्त्तन (टब या नाद) लेकर उसमें जल भर देवे । उसके बीचमें खूब विस्तृत एक मिट्टीका खीपरा या कूँडा रखकर उसके ऊपर पारेकी मूषा रक्खे । उस मूषाको हलकी लोहेकी कटोरीसे ढककर छः बार कपरौटी करे और सुखावे । फिर पूर्वोक्त खीपरे (या कूँडे)में मूषाके चारों तरफ खैरके और बेरीके कोयलोंको रखकर अग्नि देवे इस प्रकार स्वेदन और मर्दन करनेसे कच्छप यन्त्रमें रक्खा हुआ पारा जीर्ण हो जाता है । इस जारण संस्कारके करनेसे पारेमें एक प्रकारका अग्निबल आजाता है । अत एव जारित पारेके गर्भ (बीच)में डालते ही सब प्रकारके सत्त्व इस अग्निबलके द्वारा पिघल जाते हैं । (इसको कच्छपयन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र पारेके जारण करने और सत्त्वोंका द्रावण करनेके लिये उपयोगी होता है) ॥ १०–१२ ॥

६ दीपिकायन्त्र ।

कच्छपयन्त्रान्तर्गतमृण्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः ।
यस्मिन्निपतति सूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायन्त्रम् ॥ १३ ॥

कच्छपयन्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार पानीसे भरे हुए पात्रमें मिट्टीका एक खीपरा या घडा रक्खे । उस घडेमें बारीक छिद्र करदेवे और मूषामें पारा भरकर उसमें रखदेवे । फिर कपरौटी करके और खीपरेमें कोयले भरकर अग्नि देवे । इस प्रकार अग्निकी उष्णतासे मूषामेंसे उडा हुआ पारा खीपरेके छिद्रों द्वारा निकलकर पानीमें गिरपडता है । इसको दीपिकायन्त्र कहते हैं । (इसमें सब क्रियायें कच्छपयन्त्रके समान होती हैं, केवल इतना अन्तर होता है कि इसमें खीपरेमें छिद्र होते हैं । यह एक अधःपातन करनेका भी यन्त्र है) ॥ १३ ॥

७ डेकीयन्त्र ।

भाण्डकण्ठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिक्षिपेत् ।
कांस्यपात्रद्वयं कृत्वा सम्पुटं जलगर्भितम् ॥ १४ ॥
नलिकास्यं तत्र योज्यं दृढं तच्चापि कारयेत् ।
युक्तद्रव्यैर्विनिक्षिप्तः पूर्वं तत्र घटे रसः ॥ १५ ॥
अग्निना तापितो नालात्तोयं तस्मिन् पतत्यधः ।
यावदुष्णं भवेत्सर्वं भाजनं तावदेव हि ।
जायते रससन्धानं डेकीयन्त्रमितीरितम् ॥ १६ ॥

एक बडासा घडा लेकर उसके गलेके नीचे एक छेद करे, उसमें एक बाँसकी लम्बी नली लगादेवे । फिर दो काँसेके कटोरे लेकर उनका सम्पुट बनावे और सम्पुटके ऊपरवाले कटोरेमें एक छिद्र करदेवे; उस छिद्रमें घडेके गलेमें लगी हुई

नलीके दूसरे मुँहका लगा देवे । फिर उसपर कपरौटी करके उस सम्पुटको पानीसे भरे हुए एक बडे पात्रमें रखदेवे । इसके पश्चात् क्षार अम्ल आदि उपयुक्त द्रव्योंके साथ पारेको खरल करके उक्त घडेके भीतर लेपकर सुखा लेवे और उसके ऊपर ढक्कन ढककर घडेको चूल्हेपर रखकर धीरे धीरे अग्नि जलावे । इस प्रकारसे अग्निके द्वारा तपा हुआ पारा नलीमें होकर जलमें डूबे हुए सम्पुटमें गिरता है । जब सारा घडा खूब अच्छे प्रकारसे तपजाय तब समस्त पारा उड गया समझना चाहिये इसको डेकीयन्त्र कहते हैं ॥ १४-१६ ॥

८ जारणायन्त्र ।

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः ।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम् ॥ १७ ॥
मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत् ॥ १८ ॥
तोयं स्यात्सूतकस्याध ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ।
रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालितम् ॥ १९ ॥
दापयेत्प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगन्धकौ ।
स्थालिकायां पिधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु॥२०
सन्धिं विलोपयेद्यत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि ।
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा ॥२१॥
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ।
एवं तु त्रिदिनं कुर्यात्ततो यन्त्रं विमोचयेत् ॥ २२ ॥
तप्तोदके तप्तचुल्ह्यां न कुर्याच्छीतलां क्रियाम् ।
न तत्र क्षीयते सूतो न गच्छति च कुत्रचित् ॥२३॥
अनेन च क्रमेणैव कुर्याद्गन्धकजारणम् ॥ २४ ॥

१२ अंगुल परिणाम लम्बी चौडी लोहेकी दो मूषा बनाकर दोनोंको एकत्र जोडदेवे। उनमेंसे एक मूपाकी तलीमें बारीक २ छिद्र करदेवे । मूषाका आकार इस प्रकार होना चाहिये कि एक मूषाके मुखमें दूसरी छिद्रयुक्त मूपाकी तली अच्छे प्रकारसे आजाय । फिर उस छिद्रवाली मूपामें लहसुनके रसमें घोटी हुई गन्धक भरे और दूसरी मूषामें लहसुनके रसमें घोटा हुआ पारा भरदेवे । पारेकी मूषामें गन्धककी मूषा अडाकर रक्खे । फिर एक मिट्टीकी मजबूत हाँडीमें उस मूषाको कपरौटी करके रखदेवे और उस हाँडीमें इतना पानी भरदेवे जिसमें कि पारेकी मूषा डूब जाय । पश्चात् उस हाँडीके ऊपर दूसरी हाँडी ढककर सन्धियोंको बन्द करके कपरामिट्टी कर देवे । फिर उसको चूल्हे पर चढाकर नीचे आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा पुटदेवे । इसको कपोतपुट कहते हैं । इसी प्रकार हाँडीके बीचमें आरने उपले भरकर अग्निदेवे । उसमें खूब तीव्र अग्नि देनेके लिये यदि उपलोंसे काम न चले तो लकडी जलावे । इस तरह तीन दिनतक बराबर अग्निदेवे । फिर उस यन्त्रको खोललेवे । हाँडीका जल और चूल्हेके गरम रहनेपर उसको शीतल जल डालकर ठंढा नहीं करना चाहिये । ऐसा करनेसे पारा हाँडीमें क्षीण नहीं होता और वह न कहीं उडकर जासकता है। इसी प्रकारसे गन्धकका जारण करना चाहिये।इसको जारणा यन्त्र कहते हैं॥१७–२४॥

९ विद्याधर यन्त्र ।

यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात् ।
चुल्लीं चतुर्मुखीं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत् ॥२५॥
तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम् ।
यन्त्रं विद्याधरं नाम तन्त्रज्ञैः परिकीर्तितम् ॥ २६ ॥

दो हाँडियोंके सम्पुटको विद्याधर यन्त्र समझना चाहिये । चार मुँहवाला चूल्हा बनाकर (उसके चारों तरफ लकडी जलाकर समान अग्नि देवे) उसपर एक हाँडी रखकर उसमें औषधि भरदेवे और उस हाँडीके मुखको दूसरी हाँडीसे ढककर सन्धियोंको बन्द करके कपरौटी करदेवे । फिर अग्नि जलावे । इसको रसशास्त्रवेत्ताओंने विद्याधर नामक यन्त्र कहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥

१० सोमानल यन्त्र ।

ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससंग्रहः ।
सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गन्धकादिकम् ॥ २७ ॥

जिसमें ऊपर अग्नि, नीचे जल और बीचमें पारा भरा हो ऐसे यन्त्रको सोमानल यन्त्र कहते हैं । इसका उपयोग गन्धक आदिका जारण करनेके लिये करना चाहिये । इस यन्त्रके बनानेकी विधि यह है कि एक मटकेमें पानी भरकर उस मटकेम एक अँगुल ऊँची मूषा पारा भरकर रक्खे, फिर उस मटकेके ऊपर जारणा यन्त्रके समान दूसरी मटकी ढककर कपरौटी करके उसके ऊपर आरने उपलोंकी अग्नि जलावे ॥ २७ ॥

११ गर्भयन्त्र ।

गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारकम् ।
चतुरङ्गुलदीर्घांश्च द्व्यङ्गुलोन्मितविस्तराम् ॥२८ ॥
मृण्मयीं सुदृढां मूषां वर्तुलं कारयेन्मुखम् ।
लोहस्य विंशतिभागा भाग एकस्तु गुग्गुलोः ॥२९॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु वारं वारं प्रयत्नतः ।
मूषालेपं दृढं कृत्वा लवणार्द्धमृदम्बुभिः ॥ ३० ॥

कर्षैस्तुषाग्निना भूमौ स्वेदयेन्मृदुमानवित् ।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत् ॥ ३१॥

अब पारा अथवा अन्य रसोपरसकी पिट्टीकी भस्म करनेके लिये उपयोगी गर्भयंत्रको कहते हैं। चार अँगुल लम्बी और दो अँगुल चौडी मिट्टीकी मजबूत मूषा बनवाकर उसका गोल मुख बनवावे। पश्चात् २० भाग लोहका चूर्ण और १ भाग गूगल लेकर दोनोंको एकत्र खरल करके मूषाके भीतर लेप करदेवे। फिर उसमें ओषधियोंके साथ घोटा हुआ पारा भरकर मूषाके मुँहको ढककर बन्द करदेवे। उसके ऊपर नमक और उससे आधी मिट्टी लेकर दोनोंको जलमें पीस कर गाढा २ लेपकर देवे और सुखालेवे। इसके पश्चात् भूमिमें एक गड्ढा खोदकर उसमें मूषाको रखकर आरने छपलोंकी मृदु अग्नि देवे। इस प्रकार एक दिन रात अथवा तीन दिन रात बराबर स्वेद देनेसे पारेकी भस्म हो जाती है ॥ २८-३१ ॥

१२ हंसपाकयन्त्र ।

खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत् ।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३२ ॥
पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणं च बिडं ततः ।
हंसपाकं समाख्यातं यन्त्रं तद्वार्त्तिकोत्तमैः ॥ ३३ ॥

एक बडासा खीपरा लेकर उसमें कण्ठपर्यन्त रेता भरकर उसके ऊपर दूसरा खीपरा ढकदेवे और उसमें जवाखार आदि क्षार, पाँचों नमक, विडनमक और गोमूत्र इनके साथ पारेको अथवा अन्य किसी धातुको मूषामें रखकर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे। उत्तम वार्त्तिककारोंने इसको हंसपाक यन्त्र कहा है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

१३ वालुकायन्त्र ।

सरसां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलघनावृताम् ।
शोषितां काचकलशीं त्रिभागं तु प्रपूरयेत् ॥ ३४ ॥
भाण्डे वितस्तिगम्भीरे वालुकासु प्रतिष्ठिताम् ।
तद्भाण्डं पूरयेत्त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ ३५ ॥
भाण्डवक्त्रं माणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत् ।
चुल्ल्यां तृणस्य चादाहान्माणिकापृष्ठवर्त्तिनः ॥ ३६ ॥
एतद्धि वालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम् ।
पञ्चाढवालुकापूर्णभाण्डे निक्षिप्य यत्नतः ।
पच्यते रसगोलाद्यं वालुकायन्त्रमीरितम् ॥ ३७ ॥

एक काँचकी आतसी शीशी लेकर उसमें ओषधिमिश्रित पारा तीनभाग भरकर उसके मुँहको ढकदेवे और उसपर एक अंगुल मोटी कपरौटी करके सुखालेवे। पश्चात् एक बडी मटकी या नॉदमें तीन हिस्से रेता भरे और १ हिस्सा खाली रक्खे । फिर उस एक बालिश्त गहरे पात्रमें उक्त शीशीको तीन भाग गाड देवे और एक भाग बाहरको निकला रहने देवे । इसके पश्चात् उस मटकीके ऊपर एक दूसरी मटकी या नाद ढककर सन्धियोंको बन्द करके कपरौटी करदेवे। फिर उसको चूल्हे-पर चढाकर मन्द, मध्य और तीक्ष्ण इस क्रमसे अग्नि देवे । जब ऊपरवाले मटकेके ऊपर तिनका रखनेसे वह जल जाय तब अग्नि देना बन्द करदेवे । इसको बालुकायन्त्र कहते हैं । इस यन्त्रमें रेतेकी बजाय यदि नमक भर दिया जाय तो इसीको लवणयन्त्र कहते हैं। पॉच आढक परिमाण रेतेसे भरे हुए पात्रमें रस (पारा या अन्य धातु) के गोलेको शरा-

लसम्पुटमें यत्नपूर्वक रखकर जो पकाया जाता है, उसको भी बालुकायन्त्र कहते हैं ॥ ३४–३७ ॥

१४ लवणयन्त्र ।

एवं लवणनिक्षेपात्प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ।
अन्तःकृतरसालेपताम्रपात्रमुखस्य च ॥ ३८ ॥
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ।
तद्भाण्डं पटुनाऽऽपूर्य क्षारैर्वा पूर्ववत्पचेत् ॥ ३९ ॥
एवं लवणयन्त्रं स्याद्रसकर्माणि शस्यते ॥ ४० ॥

उपर्युक्त बालुकायन्त्रमें बालुकी बजाय नमक भरकर उसमें जो ओषधि रखकर पकाई जाय तो उसे लवणयन्त्र कहते हैं । अथवा ताँबेके पात्रमें ओषधियोंके रसमें घोटे हुए पारेका लेप करके सुखालेवे, फिर उस ताम्रपात्रको मिट्टीके एक बडे पात्रमें औंधा करके रखदेवे और ताम्रपात्रके मुख तथा मिट्टीके पात्रकी तली इन दोनोंकी सन्धियोंको नमक और मिट्टी मिलाकर उससे बन्द करदेवे । फिर उस मिट्टीके पात्रमें ऊपरतक नमक अथवा कोई क्षार पदार्थ भरकर पूर्वोक्त यन्त्रके समान पकावे । यह लवणयन्त्र रसकर्ममें विशेष उपयोगी होता है ॥ ३८–४० ॥

१५ नालिकायन्त्र ।

लोहनालगतं सूतं भाण्डे लवणपूरितम् ।
निरुद्धं विपचेत्प्राग्वन्नालिकायन्त्रमीरितम् ॥ ४१ ॥

लोहेकी १२ अंगुल लम्बी नलीमें ओषधिमिश्रित पारा भर कर उसके मुखको बन्द करके उसपर कपरौटी करदेवे । फिर उस नलीको लवणयंत्रमें रखकर पूर्वोक्तविधिसे पकावे । इसको नालिकायन्त्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

१६ भूधर यन्त्र ।

वालुकागूढसर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसान्विताम् ।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम् ॥ ४२ ॥

ओषधिमिश्रित पारेको मूषामें रखकर कपरौटी करके सुखा लेवे । फिर भूमिमें एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें मूषाको रखदेवे और उसको बिलकुल रेतेसे ढकदेवे । फिर उस गड्ढेके ऊपर आरने उपलोंकी अग्नि जलावे । इसको भूधर यन्त्र कहते हैं ॥ ४२ ॥

१७ पुटयन्त्र ।

शरावसम्पुटान्तस्थं करीषेष्वग्निमानवित् ।
पचेच्चुल्ल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयन्त्रकम् ॥ ४३ ॥

दो सकोरोंके सम्पुटमें ओषधिमिश्रित पारा भरकर कपरमिट्टी करके सुखालेवे । फिर अग्निके प्रमाणको जाननेवाला वैद्य उसको चूल्हेपर रखकर दो प्रहरतक उपलोंकी अग्निमें पकावे । इसको पुटयन्त्र कहते हैं ॥ ४३ ॥

१८ कोष्ठीयन्त्र ।

षोडशांगुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम् ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठीयन्त्रमिति स्मृतम् ॥४४॥

सोलह अँगुल चौडी और हाथभर लम्बी ऐसी समान आकारवाली एक बडीसी मूषा तैयार करे, इसको कोष्ठीयन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र धातुओंका सत्त्व निकालनेके लिये उपयोगी है ॥ ४४ ॥

१९ बलभीयन्त्र ।

यत्र लोहमये पात्रे पार्श्वयोर्वलयद्वयम् ।
तादृक् स्वल्पतरं पात्रं वलयप्रोतकोष्ठकम् ॥ ४५ ॥

पूर्वपात्रोपरि यस्य स्वल्पपात्रे परिक्षिपेत् ।
रसं सम्मूर्च्छितं स्थूलपात्रमापूर्य काञ्जिकैः ॥४६॥
द्वियामं स्वेदयेदेवं रसोत्थापनहेतवे ।
एतत्स्याद्वलभीयन्त्रं रसषाड्गुण्यकारकम् ॥
सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसः स्याद्गुणवत्तरः ॥ ४७ ॥

एक लोहेका गोल टब (या गोलटा) बनवाकर उसके दोनों पार्श्वोंमें दो वलय (कडे) लगवावे और इसी प्रकार उससे छोटा एक और टब बनवाकर उसमेंभी कडे लगवावे। फिर छोटे टबको बडे टबमें रखकर दोनोंके कडोंमें जंजीर डालकर बाँध देवे। पश्चात् उस छोटे लोहपात्रमें मूर्छित पारा भरदे और बडे पात्रमें काँजी भरकर उसपर कपरौटी करदेवे। इस प्रकार तैयार किये हुए इस यन्त्रको चूल्हेपर रखकर दो प्रहरतक अग्नि देवे । यह यन्त्र पारेकी मूर्च्छनाको दूरकर पारेका उत्थापन करनेके लिये उपयोगी है। इसको वलभी-यन्त्र कहते हैं । इस यन्त्रके द्वारा स्वेदन करनेसे पारा ६ गुना अधिक गुणवान् हो जाता है। और साधारण लोहकी अपेक्षा कान्तलोहके पात्रमें स्वेदन करनेसे पारा और भी अधिक गुणवान् हो जाता है ॥ ४५–४७ ॥

२० तिर्यक्पातन यन्त्र ।

क्षिपेद्रसं घटे दीर्घे तन्नधोनालसंयुते ।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु ॥ ४८ ॥
तत्र रुध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरधः ।
अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम् ॥ ४९ ॥
इतरस्मिन्घटे तोयं प्रक्षिपेत्स्वाडु शीतलम् ।
तिर्यक् पातनमेतद्धि वार्तिकैरभिधीयते ॥ ५० ॥

मिट्टीका एक लम्बासा घडा तैयार कराकर उसके पेटमें एक छिद्र करके उसमें धातुकी बनी हुई एक लम्बी और पोली नली आडी करके लगादेवे फिर एक दूसरा मिट्टीकी छोटा घडा लेकर उसके पेटमेंभी छिद्र करके उसमें नलीके दूसरे सिरेको लगा देवे पश्चात् लम्बे घडेमें ओषधियोंके साथ घोटा हुआ पारा भर देवे और छोटे घडेमें स्वादु तथा शीतल जल भरकर दोनों घडोंकी सन्धियोंको और मुखको बन्द करके अच्छे प्रकारसे कपरौटी कर सुखालेवे फिर पारदवाले घडेके नीचे तीव्र अग्नि जलावे इस प्रकारसे उडाया हुआ पारा नलीके द्वारा पानीवाले घडेमें जाकर पडताहै वार्तिककार इसको तिर्यक्‌ पातन यन्त्र कहते हैं ॥ ४८-५० ॥

२१ पालिकायन्त्र ।

चषकं वर्तुलं लौहं विनताग्रोर्ध्वदण्डकम् ।
एतद्धि पालिकायन्त्रं बलिजारणहेतवे ॥ ५१ ॥

लोहेका एक गोल प्याला बनवावे, जिसमें आगेको झुका हुआ और ऊपरको उठा हुआ एक डंडा लगावे । इसको पालिकायन्त्र कहते हैं । यह गन्धकको जारण करनेके लिये उपयोगी होता है ॥ ५१ ॥

२२ घटयन्त्र ।

चतुष्प्रस्थजलाधारश्चतुरङ्गुलिकाननः ।
घटयन्त्रमिदं प्रोक्तं तदाप्यायनकं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

जिसमें चार प्रस्थ पानी आजाय और चार अँगुल लम्बा जिसका मुँह हो ऐसा एक मिट्टीका घडा बनावे । उसको घट यन्त्र अथवा आप्यायनक यन्त्र कहते हैं ॥ ५२ ॥

२३ इष्टिकायन्त्र ।

विधाय वर्तुलं गर्तं मल्लमत्र निधाय च ।

विनिधायेष्टिकां तत्र मध्यगर्तवतीं शुभाम् ॥ ९३ ॥
गर्तस्य परितः कुर्यात्पालिकामङ्गुलोच्छ्रयाम् ।
गर्ते सूतं विनिक्षिप्य गर्तास्ये वसनं क्षिपेत् ॥ ९४ ॥
निक्षिपेद्गन्धकं तत्र मल्लेनास्यं निरुद्धय च ।
मल्लपालिकयोर्मध्ये मृदा सम्यङ् निरुध्य च ॥९५॥
वनोत्पलैः पुटं देयं कपोताख्यं न चाधिकम् ।
इष्टिकायन्त्रमेतत्स्याद्गन्धकं तेन जारयेत् ॥ ९६ ॥

जमीनमें एक गोल गड्ढा खोदकर उसमें लोहेका एक गोल प्याला रक्खे और उस प्यालेके ऊपर बीचमें गड्ढा की हुई प्यालेके बराबरकी एक गोल ईंट ढक देवे। फिर उस ईंटके गड्ढेके चारों तरफ एक २ अँगुल ऊँची पाली बनावे; अर्थात् मेंड बॉध देवे। पश्चात् उस गड्ढेमें पारेको भरकर गड्ढेके मुँह पर कपडा बॉधदे और उसपर गन्धकको रखकर दूसरे लोहेके प्यालेसे गड्ढेका मुँह ढकदेवे । फिर प्याला और पालिके बीचकी सन्धियोंको मिट्टीसे अच्छी तरह बन्द करके उसपर आरनेउपलोंके द्वारा कपोत नामक पुटदेवे। कपोत पुटसे अधिक अग्नि नहीं देनी चाहिये, कारण अधिक अग्निके लगनेसे पारा और गन्धकके उडजानेकी सम्भावना होती है। इसको इष्टिकायन्त्र कहते हैं । इसकेद्वारा गन्धकको जारण करना चाहिये ॥ ९३–९६ ॥

२४ सिंगरफसे पारा निकालनेके लिये विद्याधरयन्त्र ।

स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यङ् निरुध्य च ।
ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वह्निं प्रज्वालयेदधः ९७॥
एतद्विद्याधरं यन्त्रं हिंगुलाकृष्टिहेतवे ॥ ९८ ॥

अम्लपदार्थोंके रसके साथ हिंगुलको घोटकर एक हांडीके भीतर उसका लेप करके सुखा लेवे । फिर उस हांडीके ऊपर दूसरी हांडी तलीकी ओरसे ढककर सन्धियोंको अच्छे प्रकारसे बन्द कर देवे और ऊपरकी हांडीमें जल भर देवे । फिर उसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे। इसको विद्याधर यन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र हिंगुलमेंसे पारा निकालनेके लिये विशेष उपयोगी है ॥ ५७–५८ ॥

२५ डमरुयन्त्र ।

यन्त्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युब्जां दत्त्वा निरुन्धयेत् ।
यन्त्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम् ॥ ५९ ॥

दस अँगुल लम्बी मुँहवाली एक हांडीमें ओषधिमिश्रित पारा रखकर उसके ऊपर नौ अँगुल लम्बी मुँहवाली दूसरी हांडीको उलटा करके ढक देवे । फिर दोनोंकी सन्धियोंको बन्द करके कपरौटी कर सुखा लेवे और चूल्हेपर चढाकर अग्नि जलावे । इसको डमरु यन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र पारेकी भस्म करनेके लिये उपयोगी है ॥ ५९ ॥

२६ नाभियन्त्र ।

मल्लमध्ये चरेद्गर्तं तत्र सूतं सगन्धकम् ।
गर्तस्य परितः कुड्यं प्रकुर्यादङ्गुलोच्छ्रयम् ॥ ६० ॥
ततश्चाच्छादयेत्सम्यग्गोस्तनाकारमूषया ।
सम्यक् तोयमृदा रुध्वा सम्यगत्रोच्यमानया ॥ ६१ ॥
लेहवत्कृतबब्बूलक्काथेन परिमर्दितम् ।
जीर्णकिट्टरजः सूक्ष्मं. गुडचूर्णसमन्वितम् ॥ ६२ ॥
इयं हि जलमृत्प्रोक्ता दुर्भेद्या सलिलैः खलु ।
खटिका पट्टकिट्टैश्च माहिषीदुग्धमर्दितैः ॥ ६३ ॥

वह्निमृत्स्ना भवेद्घोरवह्नितापसहा खलु ।
एतया मृत्स्नया रुद्धो न गन्तुं क्षमते रसः ॥ ६४ ॥
विदग्धवनिताप्रौढप्रेम्णा रुद्धः पुमानिव ।
नन्दी नागार्जुनश्चैव ब्रह्मज्योतिर्मुनीश्वरः ॥ ६५ ॥
वेत्ति श्रीसोमदेवश्च नापरः पृथिवीतले ।
ततो जलं विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेदधः ॥ ६६ ॥
नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना ।
अनेन जीर्यते सूतो निर्धूमः शुद्धगन्धकः ॥ ६७ ॥

कान्तलोहकी अथवा मिट्टीकी थालीके समान चार अंगुल ऊँचे कण्ठवाली प्याली बनाकर उसके बीचमें गड्ढा करे। उस गड्ढेमें पारे और गन्धककी कज्जली भरकर गड्ढेके चारों तरफ एक २ अंगुल ऊँची पाली (मेंड) बनावे। फिर उस पालीमें जो अच्छी तरहसे फँस जावे ऐसी गोके स्तनके समान आकारवाली लंबी और गोलमूषाको उलटा करके ढक देवे और नीचे कही हुई जल मृत्तिकासे उसकी सन्धियोंको अच्छे प्रकारसे बन्द कर देवे। जल मृत्तिका बनानेकी विधिः—पुराने लोहेका मैल अथवा पुरानी ईंटका बारीक चूर्ण (सुर्खी), गुड और चूना इनको समान भाग लेकर लेहीके समान गाढे बबूलके काथमें १२ घंटे तक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे। इसको जलमृत्तिका कहते हैं। यह मृत्तिका सूखजानेपर चिरकालतक जलमें पडे रहनेसे भी नहीं गलती। एवं खडिया मिट्टी, नमक, और लोहेका मैल इन तीनोंको भैंसके दूधके साथ खूब बारीक घोटकर सुखा लेवे। इसको वह्निमृत्स्ना कहते हैं। यह मृत्तिका अत्यन्त तीव्र अग्निके तापको सहन कर सकती है। इन दोनों मिट्टियोंके

द्वारा कपरौटी करके अवरुद्ध किया हुआ पारा रसिक स्त्रीके अगाढ प्रेमसे रुके हुए पुरुषके समान कहीं नहीं जा सकता ॥ इस यन्त्रकी विधिको नन्दी, नागार्जुन, ब्रह्मज्योति, मुनीश्वर और श्रीसोमदेव इन पांच रससिद्धोंके सिवाय पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं जानता । फिर उस प्यालीमें पालीतक पानी भर-कर और उसको चूल्हेपर रखकर नीचे अग्नि जलावे । इसको सर्वशास्त्रज्ञ नन्दी महाराजने नाभियन्त्र कहा है इस यन्त्रके द्वारा पारेका जारण होता है और शुद्धगन्धक निर्धूम हो जाता है ॥ ६०–६७ ॥

२७ ग्रस्तयन्त्र ।

मूषां मूषोदराविष्टामाद्यन्तसमवर्तुलाम् ।
चिपिटां च तले प्रोक्तं ग्रस्तयन्त्रं मनीषिभिः ॥
सूतेन्द्ररन्धनार्थं हि रसविद्भिरुदीरितम् ॥ ६८ ॥

मुखसे लेकर तलीतक एकसमान लम्बी, चौडी, गोल और तलीमें चपटी ऐसी एक मूषा बनावे, उसमें ओषधियोंके साथ घोटा हुआ पारा भरकर उस मूषाके मुँहमें दूसरी मूषाका मुँह फँसाकर ढक देवे और उपर्युक्त वह्निमृत्तिकासे कपरौटी करके मूषाको चूल्हेपर रखकर अग्नि देवे । इसको विद्वान् लोग ग्रस्त-यन्त्र कहते हैं । रसतत्त्वज्ञोंने इस यन्त्रको पारेका पाक कर-नेके लिये कहा है । इस यन्त्रमें पारा अग्निमेंसे उडता नहीं है ॥ ६८ ॥

२८ स्थालीयन्त्र ।

स्थाल्यां ताम्रादि निक्षिप्य मल्लेनास्यं निरुद्ध्य च ।
पच्यते स्थालिकाधस्तात्स्थालीयन्त्रमिदं स्मृतम् ॥ ६९ ॥

एक हांडी (या बटलोई) में ताम्र आदि धातुएँ रखकर उसमें अम्ल पदार्थ भरदेवे । फिर हांडीके ऊपर बारीक छिद्रों

वाली लोहेकी कटोरी ढक कर कपरौटी करके सुखा लेवे फिर उसको चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे अग्नि जलावे । इसको स्थालीयन्त्र कहते हैं ॥ ६९ ॥

२९ धूपयन्त्र ।

विधायाष्टाङ्गुलं पात्रं लौहमष्टाङ्गुलोच्छ्रयम् ।
कण्ठाधो द्व्यङ्गुले देशे जलाधारे हि तत्र च ॥७०॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिक्षिपेत् ।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ ७१ ॥
पत्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ ७२ ॥
मृदा विलिप्य सन्धिश्च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृष्णानि हतान्युक्तविधानतः ॥ ७३ ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवन्ति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥७४॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवङ्गेन धूपयेत् ॥ ७५ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयन्त्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रव्यसाधने ॥ ७६ ॥

आठ अँगुल ऊँचा और आठ अँगुल चौडा लोहेका पात्र बनवावे और उसके कण्ठके नीचे दो अँगुल परिमाण स्थानमें शलाका रखनेके लिये आधार बनावे । फिर उस पात्रमें पतली २ और तिरछी लोहेकी शलाकाओं (सलाइयों) को तिरछा करके रख देवे । उन शलाकाओंके ऊपर बारीक

सोनेके पत्र रक्खे और उन पत्रोंके नीच वक्ष्यमाण विधिसे धुआं देवे । फिर उस पात्रके ऊपर दूसरा पात्र उलटा करके इस प्रकार ढके कि उसका धुआँ बाहर न निकल सके पश्चात् कपरमिट्टीसे सन्धियोंको वन्द करके सुखा लेवे और उसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे इस विधिसे सुवर्णके पत्र काले पड जाते हैं और मृत हो जाते हैं पारा उन पत्रोंको शीघ्र भक्षण कर जात और वह भक्षण किया हुआ सुवर्ण पारेके गर्भमे शीघ्र द्रवीभूत हो जाता है; अर्थात् शीघ्र गर्भ द्रुति हो जाती है । गन्धक, हरताल और मैनसिलकी कज्जलीको अथवा सीसेकी भस्मके द्वारा सुवर्णपत्रोंको धूप देनी चाहिय । प्रथम इन सब चीजोंको एकत्र पीसकर उपर्युक्त लोहपात्रमें डाल देना चाहिये । चाँदीके पत्रोंको धूप देनेके लिये उन पत्रोंको उक्त विधिसे मृतवङ्गके द्वारा धूप देवे इसी प्रकार अन्यान्य उपर्युक्त उपरसोंके द्वारा भी धूप दी जा सकती है । इसको धूपयन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र जारण करनेयोग्य द्रव्योंको सिद्ध करनेके लिये उपयोगी है ॥ ७०-७६ ॥

३० न्दुक यन्त्र ।

स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो बध्वा मुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रपिधाय च ॥ ७७ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकाभिधम् ।
स्वेदनीयन्त्रमित्यन्ये प्राहुरन्ये मनीषिणः ॥ ७८ ॥
यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं क्षिप्त्वा मुखोपरि ।
स्वेद्यद्रव्यं परिक्षिप्य पिधानं प्रपिधाय च ॥ ७९ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकं स्मृतम् ॥ ८० ॥

एक बडी हाँडीमें जल भरकर उसके मुँहको मजबूत कप-डेसे बाँध देवे उस कपडेके ऊपर स्वेद देने योग्य पदार्थोंको रखकर हाँडीके मुखको दूसरे पात्रसे ढककर कपरौटी कर देवे फिर चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे अग्नि जलावे । इस यन्त्रको कन्दुक यन्त्र कहते हैं-और कोई कोई विद्वान् इसको स्वेद-नीयन्त्रभी कहते हैं । अथवा कन्दुक यन्त्रकी दूसरी विधि यह है कि-हाँडीमें जल भरकर उसके मुँहके ऊपर तृण (घास) रखकर उनपर स्वेद्य द्रव्यको रख देवे और ऊपरसे दूसरी हाँडी औंधी करके ढक देवे । फिर उसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे इसको भी कन्दुक यन्त्र कहते हैं॥७७-८०॥

३१ खल्वयन्त्र ।

खल्वयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढा गुरुः ।
षोडशाङ्गुलकोत्सेधा नवाङ्गुलकविस्तरा ॥ ८१ ॥
चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ।
खल्वप्रमाणं तज्ज्ञेयं श्रेष्ठं स्याद्रसकर्मणि ॥ ८२ ॥
खल्वयन्त्रं द्विधा प्रोक्तं रसादिसुखमर्दने ।
निरुद्गारो सुमसृणो कार्यौ पुत्रिकया युतौ ॥ ८३॥

खरल बनानेके लिये नीले अथवा काले रंगका चिकना, मजबूत और भारी (वजनदार) पत्थर लेवे । उसका १६ अं-गुल ऊँचा, नौ अँगुल चौडा और २४ अँगुल लंबा खरल बनावे और १२ अँगुल लम्बी मूसली बनावे। अथवा दस अँगुल ऊंचा और २० अँगुल लम्बा खरल बनावे। पारदादि रसोंके शोधन, मर्दन आदि सँस्कारोंमें इसी प्रमाणके खरल श्रेष्ठ समझे जाते हैं। रसादिकोंको सुखपूर्वक मर्दन करनेके लिये दो प्रकारके खरल यन्त्र कहे हैं । उनमें एक निरुद्गार (जिसमें डाली हुई

औषधि घोटते २ बाहर न निकल सके) और दूसरा अत्यन्त चिकना खरल बनवाना चाहिये । उन दोनोंकी मूसालियें भी इसी प्रकार चिकनी और सुन्दर बनवानी चाहिये ॥८१-८३॥

अर्द्धचन्द्राकार खरल ।

उत्सेधे स दशाङ्गुलः खलु कलातुल्याङ्गुलायामवान्
विस्तारेण दशाङ्गुलो मुनिमितैर्निम्नस्तथैवाङ्गुलैः ।
पल्यां द्व्यङ्गुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्धचन्द्रोपमो
घर्षो द्वादशकाङ्गुलश्च तदयं खल्वो मतः सिद्धये ।८४।
अस्मिन्पञ्चपलः सूतो मर्दनीयो विशुद्धये ।
तत्तदौचित्ययोगेन खल्वेष्वन्येषु योजयेत् ॥ ८५ ॥

१० अँगुल ऊँचा, १६ अँगुल लम्बा, १० अँगुल चौडा और सात अँगुल गहरा, अत्यन्त चिकना और अर्द्धचन्द्रके समान आकारवाला खरल बनावे । उसकी पाली (अर्थात् किनारे) दो २ अँगुल ऊँची और उसका मूसला १२ अँगुल-का होना चाहिये । इसको अर्द्धचन्द्र खल्व कहते हैं । यह खरल पारदादि रसोंकी सिद्धिके लिये अत्यन्त उपयोगी है । इस खरलमें शुद्ध करनेके लिये पाँच पल (२० तोले) पारा डालकर मर्दन करना चाहिये । इसी प्रकारसे पारदके प्रमाणा-नुसार अन्य खरल बनाकर उनमें जितना २ आसके उतना-पारा डालकर मर्दन करना चाहिये ॥ ८४-८५ ॥

वर्तुल खरल ।

द्वादशाङ्गुलविस्तारः खल्वोऽतिमसृणोपलः ।
चतुरङ्गुलनिम्नश्च मध्येऽतिमसृणीकृतः ॥ ८६ ॥

मर्दकश्चिपिटोऽधस्तात्सुग्राह्यश्च शिखोपरि ।
अयं तु वर्तुलः खल्वो मर्दनेऽतिसुखप्रदः ॥ ८७ ॥

१२ अँगुल लम्बा चौडा, चिकने पत्थरका, चार अँगुल गहरा, गोल और बीचमें अत्यन्त चिकना ऐसा जो खरल बनाया जाता है उसको वर्तुल खल्व कहते हैं इस खरलका मूसला नीचेके भागमें चपटा और ऊपरके भागमें उत्तम प्रकारसे पकडने योग्य होना चाहिये यह खरल रसादिकोंके मर्दन करनेमें अत्यन्त उपयोगी होताहै ॥ ८६-८७ ॥

तप्तखल्व ।

लौहो नवाङ्गुलश्चैव निम्नत्वे च षडङ्गुलः ।
मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्वाभिधोऽप्ययम् ॥८८॥

९ अँगुल विस्तृत और ६ अँगुल गहरा ऐसा लोहेका खरल बनावे और उसका मूसला ८ अँगुल लम्बा बनवाना चाहिये इसको तप्तखल्व कहते हैं ॥ ८८ ॥

कृत्वा खल्वाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।
तस्यां निवेश्य तं खल्वं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ८९॥
तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ।
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ॥ ९० ॥
कृतः कान्तायसा सोऽयं भवेत्कोटिगुणो रसः ॥९१॥

जैसा खरलका आकार हो उसीके अनुसार लोहेका अथवा मिट्टीका चूलहा बनाकर उसके ऊपर तप्तखल्वको रक्खे और चूल्हेमें कोयले भरकर पासमें बैठ करके धोंकनीसे अग्निको फूंके फिर उस खरलमें औषधियोंके साथ घोटी हुई पारेकी पिट्ठी डालकर क्षार और अम्लपदार्थोंके साथ खूब अच्छे प्रकारसे घोंटे इस प्रकारसे स्वेदन करनेसे प्रत्येक रसकी पिट्ठी तत्काल

द्रवरूप पतले होकर बहने लगती है। पारेके भिन्न भिन्न संस्कार करनेके लिये भी यह खरल उत्तम होता है। यदि यह तप्तखल्व कान्तलोहका बनाया जाय तो उसमें सिद्ध किया हुआ रस पारदादि करोड गुना अधिक गुणवान् हो जाता है ॥८९-९१॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

मूषा, पुट, औषधिग्रहण आदिकी परिभाषा ।

मूषाशब्दकी निरुक्ति व पर्यायशब्द ।

(१) मूषा ।

मूषा हि क्रौञ्चिका प्रोक्ता कुमुदी करहाटिका ।
पाचनी वह्निमित्रा च रसवादिभिरीर्यते ॥ १ ॥
मुष्णाति दोषान्मूषे या सा मूषेति निगद्यते ।

रसशास्त्रवेत्ताओंने मूषाके क्रौञ्चिका, कुमुदी, करहाटिका, पाचनी और वह्निमित्रा इतने नाम कहे हैं। जो (औषधि, रसादिके) दोषोंको नष्ट करती है उसको मूषा कहते हैं ॥ १॥

मूषाको तैयार करनेके द्रव्य ।

उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च ॥ २ ॥

मिट्टी और लोहा ये दोनों मूषाको तैयार करनेके मुख्य उपादान द्रव्य हैं; अर्थात् इन्हींके द्वारा मूषा बनाई जाती है॥२॥

मूषा मुखविनिष्क्रान्तावरमेकापि काकिनी ।
दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षमपि मानिनाम् ॥ ३ ॥

मूषाके मुखसे निकली एक कौडीभी श्रेष्ठ है परन्तु दुर्जनकी वन्दनासे प्राप्त हुए लक्ष रुपयेपरभी मनस्वी धिक्कारते हैं ॥३॥

मूषापिधानयोर्बन्धे बन्धनं सन्धिलेपनम् ।
अन्ध्रणं रन्ध्रणं चैव संश्लिष्टं सन्धिबन्धनम् ॥ ४ ॥

मूषा और उसके ढक्कनकी सन्धियों (जोडो व छिद्रों) के बन्द करनेको बन्धन, सन्धिलेपन, अन्ध्रण, रन्ध्रण, संश्लिष्ट और सन्धिबन्धन कहते हैं ॥ ४ ॥

मूषा बनानेके लिये कैसी मिट्टी लेनी चाहिये ।

मृत्तिका पाण्डुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।
चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥
तदभावे च वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते ॥५ ॥

मूषा बनानेके लिये मिट्टी कुछ पीली बारीक अथवा रेतीली और लाल, पीले रंगकी हो ऐसी मिट्टी चिरकालतक अग्निके तापको सहन कर सकती है। इस प्रकारकी मिट्टी मूषा बनानेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होती है। यदि इस तरहकी मिट्टी न मिले तो बॅबईकी अथवा कुम्हारके काममें आनेवाली मिट्टी लेवे ॥ ५ ॥

या मृत्तिका दग्धतुषैः शणेन
शिखित्रकैर्वा हयलद्दिना च ।
लोहेन दण्डेन च कुट्टिता सा
साधारणा स्यात्खलु मूषिकार्थे ॥ ६ ॥

तुष (भुस) की राख, सन, कोयले और घोडेकी लीद इन सब चीजोंको समानभाग लेकर मिट्टीमें मिलाकर लोहेके दण्डेसे खूब कूटकर बारीक करलेवे, फिर मूषा बनावे इस प्रकार तैयार की हुई मिट्टी साधारण मूषा बनानेके लिये उपयोगी होती है ॥ ६ ॥

श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्राः शणखर्परौ ।
लोहकिट्टं कृष्णमृत्स्ना संयोज्या मूषिकामृदि॥७॥

सेलखडी, जला हुआ भुस, कोयले, सन, खीपरोंका चूर्ण, घोडेकी लीद, लोहेकी कीट और काली मिट्टी ये पदार्थ मूषा बनानेके लिये मिट्टीके बीचमें मिलाने चाहिये ॥ ७ ॥

१ वज्रमूषा ।

मृदस्त्रिभागाः शणलद्दिभागौ
भागश्च निर्दग्धतुषोपलादेः ।
किट्टार्धभागं परिखण्डच वज्र-
मूषां विदध्यात्खलु सत्त्वपाते ॥ ८ ॥

मिट्टी ३ भाग, सन १ भाग, घोडेकी लीद १ भाग, भुसकी राख १ भाग, सेलखडी १ भाग, और लोहेकी कीट आधा भाग इन सबको एकत्र खूब बारीक कूट पीसकर मूषा तैयार करे । इसको वज्रमूषा कहते हैं । यह मूषा धातु आदिका सत्त्व निकालनेके लिये उपयोगी होती है ॥ ८ ॥

२ योगमूषा ।

दग्धाङ्गारतुषोपेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका ।
तद्वद्विडसमायुक्ता तद्वद्विडविलेपिता ॥ ९ ॥
तया या विहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते ।
अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः ॥ १० ॥

कोयलोंकी और भुसकी राख, काली मिट्टी, बँबईकी मिट्टी और बिड (क्षार, अम्ल, गन्धक, पाँचों नमक आदि पदार्थ) इन सबको एकत्र ओखलीमें बारीक कूटकर मूषा बना लेवे । फिर उसके भीतर और बाहर सब तरफ बिडके चूर्णका लेप कर देवे । इस प्रकारसे जो मूषा बनाई जाती है उसको योगमूषा कहते हैं । इस मूषामें सिद्ध किया हुआ पारा अत्यन्त गुणवान् हो जाता है ॥ ९-१० ॥

३ वज्रद्रावणी मूषा ।

गारभूनागधौताभ्यां शणैर्दग्धतुषैरपि ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ ११ ॥
क्रौञ्चिका यन्त्रमात्रं हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तथा विरचिता मूषा वज्रद्रावणिकेरिता ॥ १२ ॥

तालाब या नदीका चिकना गारा, केंचुओंका सत्त्व, सन, भूसीकी राख इन सबको समानभाग लेवे और सबके बराबर मूषा बनानेकी मिट्टी लेकर सबको एकत्र भैंसके दूधमें घोटकर जिस यंत्रमें वह मूषा रखनी हो उस यंत्रके मापके अनुसार लम्बी मूषा बनावे इस प्रकारसे तैयार की हुई मूषा वज्र (हीरा आदि कठिन पदार्थों) का द्रावण करनेके लिये उपयोगी कही जाती है। इसको प्रायः क्रौञ्चिका भी कहते हैं ॥११।१२॥

४ गारमूषा ।

दुग्धं षड्गुणगाराढ्या किट्टाङ्गारशणान्विता ।
कृष्णमृद्भिः कृता मूषा गारमूषेत्युदाहृता ॥ १३ ॥
यामयुग्मपरिध्मानान्नासौ द्रवति वह्निना ।

लोहेकी कीट १ भाग कोयले १ भाग, सन १ भाग, और गारा ६ भाग लेकर सबको काली मिट्टीमें मिलाकर भैंसके दूधके साथ खूब घोटे फिर उसकी मूषा बनालेवे। इसको गारमूषा कहते हैं। यह मूषा दो प्रहरतक अग्निमें फूँकनेसे भी नहीं पिघलती ॥ १३ ॥

५ वरमूषा ।

वज्राङ्गारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ॥ १४ ॥
गारश्च मृत्तिकातुल्यः सर्वैरेतैर्विनिर्मिता ।
वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा ॥ १५ ॥

थूहरकी लकडीके कोयले, भूसीकी राख ये दोनों समान भाग और इन दोनोंसे चौगुनी काली मिट्टी और मिट्टीके बराबर गारा इन सबको एकत्र मर्दन करके बनाई हुई मूषाको वरमूषा कहते हैं। यह मूषा एक महर तक अग्निको सहन कर सकती है ॥ १४-१५ ॥

६ वर्णमूषा ।

पाषाणरहिता रक्ता रक्तवर्गाम्बुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥ १६ ॥
वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षविधायिनी ।

कंकड, पत्थरसे रहित लालरंगकी मिट्टीको रक्तवर्गकी (कसूमके फूल,कत्था, लाख, मजीठ आदि) औषधियोंके रस अथवा क्वाथमें अच्छे प्रकारसे घोटकर उस मिट्टीकी मूषा बनावे और उसके ऊपर बीरवहूटीके चूर्णका लेप करदेवे। इसको वर्णमूषा कहते हैं । यह मूषा सुवर्णादि धातु, उपधातु, रस, उपरस आदिके वर्णकी वृद्धि करनेके लिये उपयोगी होती है ॥ १६ ॥

७ रौप्यमूषा ।

पाषाणरहिता श्वेता श्वेतवर्गाम्बुसाधिता ॥ १७ ॥
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥
रौप्यमूषेति सा प्रोक्ता श्वेतवर्णाय शस्यते ॥ १८ ॥

कंकड, पत्थरसे रहित ऐसी सफेद मिट्टी लेकर उसको श्वेत वर्ग (तगर, कुडेकी छाल, चमेली, सफेद घुंघुची आदि) की ओषधियोंके क्वाथ या रसमें खूब घोटकर मूषा बनालेवे और उसपर वीरबहूटीके कल्कका लेप करके सुखा लेवे । इसको

रौप्यमूषा कहते हैं । रौप्य आदिके श्वेतवर्णको बढानेके लिये यह मूषा उत्तम कहीजाती है ॥ १७-१८ ॥

८ बिडमूषा ।

तत्तद्देशमृदोद्भूता तत्ताद्बिडविलेपिता ।
देहलोहार्थयोगार्थं बिडमूषेत्युदाहृता ॥ १९ ॥

जिस भूमिमें जिस प्रकारका बिडनमक उत्पन्न होता हो उस भूमिकी मिट्टीके साथ अन्यान्य पदार्थ मिलाकर उसकी मूषा बनावे और उस मूषापर उसी जमीनमें उत्पन्न हुए बिडनमकका लेप कर देवे इसको बिडमूषा कहते हैं। शरीरको लोहके समान दृढ करनेके लिये जो औषध तैयार करनी हो उसका संस्कार करनेके लिये यही मूषा उपयोगी होती है ॥ १९ ॥

९ दूसरी वज्रद्रावणी मूषा ।

गारभूनागधौताभ्यां तुषेणाष्टगुणेन च ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ २० ॥
क्रौञ्चिका यन्त्रमात्रा हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तया विरचिता मूषा लिप्ता मत्कुणशोणितैः ॥२१॥
बालाब्दध्वनिसूक्ष्मैश्च वज्रद्रावणक्रौञ्चिका ।
सहतेऽग्निं चतुर्यामं द्रवणात्पूरिता सती ॥ २२ ॥

गार १ भाग, केंचुओंका सत्त्व १ भाग, भूसीकी राख ८ भाग और सबके बराबर भाग मूषा बनानेकी मिट्टी लेकर सबको एकत्र भैंसके दूधके साथ खूब अच्छे प्रकारसे घोटकर मूषा बना लेवे। यह मूषा जितने बडे यन्त्रमें रखनी हो प्रायः उसीके प्रमाणानुसार बनानी चाहिये। इस प्रकारसे मूषा तैयार

१ तत्तद्बिडसमुद्भूता । २ शाणैर्दग्धतुषैरपि । ३ क्रौञ्चितेत्यपि पाठः ।

करके उसके ऊपर खटमलोंके रुधिरका लेप करके सुखा लेवे फिर सुगन्धवाला, नागरमोथा और आकाशबेल इन तीनोंके क्वाथ को एकत्र मिश्रित करके लेपकर सुखा लेवे । इसको वज्रद्रावण क्रौञ्चिका अर्थात् हीरेको गलानेवाली मूषा कहते हैं । यह मूषा द्रव पदार्थोंसे भरी हुई चार प्रहरतक अग्निको सहन कर सकती है ॥ २०–२२ ॥

१० वृन्ताकमूषा ।

वृन्ताकाकारमूषायां नालं द्वादशकांगुलम् ।
धत्तूरपुष्पवच्चोर्ध्वं सुदृढं श्लिष्टपुष्पवत् ॥ २३ ॥
अष्टांगुलञ्च सच्छिद्रं सा स्याद्वृन्ताकमूषिका ।
अनया खर्परादीनां मृदूनां सत्त्वमाहरेत् ॥ २४ ॥

बगनके आकारके समान लम्बी मूषा तैयार करके उसके पेटमें १२ अंगुल लम्बी एक नली लगावे । वह धतूरेके फूलके समान ऊंची, मजबूत और फूलके ही समान मिली हुई होनी चाहिये । मूषाके चौडे भागकी ओर आठ अँगुल लम्बा, छिद्र बनाना चाहिये । (उस छिद्र द्वारा औषधि भरकर और उसको बन्द करके उक्त नालद्वारा उसको अग्निमें रखकर फूंके) । इसको वृन्ताकमूषा कहते हैं । इस मूषाके द्वारा खपरिया आदि मृदुपदार्थोंका सत्त्व निकालना चाहिये ॥ २३–२४ ॥

११ गोस्तनी मूषा ।

मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्तपिधानका ।
सत्त्वानां द्रावणे शुद्धौ मूषा सा गोस्तनी भवेत् ॥ २५

गौके स्तनके समान आकारवाली ऊँची, पतली और गोल मूषा तैयार कर उसके ऊपर ऐसा ढकन बनाकर ढके जो शिखादार चोटीके समान नीचेसे मोटा और ऊपरसे पतला हो

सत्त्वोंको द्रावण करने और उनकी शुद्धि करनेमें यह मूषा उपयोगी होती है । इसको गोस्तनीमूषा कहते हैं ॥ २५ ॥

१२ मल्लमूषा ।

निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसम्पुटात् ।
पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥

मिट्टीके दो प्याले तैयार करके उनमेंसे एकमें रसादि ओषधि रखकर दूसरा प्याला उसपर ढक देवे, फिर कपरौटी करके चूल्हेपर रखकर पकावे । इसको मल्लमूषा कहते हैं । यह मूषा पर्पटी आदि रसोंको स्वेदन करने (पकाने) के लिये निर्दिष्ट की गई है ॥ २६ ॥

१३ पक्वमूषा ।

कुलालभाण्डरूपा या दृढा च परिपाचिता ।
पक्वमूषेति सा प्रोक्ता पोटल्यादि विपाचने ॥ २७ ॥

कुम्हारके बनाये हुए मटकेके समान मूषा बनाकर उसको अग्नि (कुम्हारके आंवेमें) पका लेवे । इस प्रकार पकाई हुई और मजबूत मूषाको पक्वमूषा कहते हैं । यह मूषा पोटली आदिके रसको पकानेमें उपयुक्त होती है ॥ २७ ॥

१४ गोलमूषा ।

निर्वक्त्रगोलकाकारा पुटनद्रव्यगर्भिणी ।
गोलमूषेति सा प्रोक्ता सत्वरं द्रव्यशोधिनी ॥ २८ ॥

मल्लमूषाके समान दो गोल सकोरे बनाकर, उनमें पुटदेने योग्य ओषधियां भरकर दोनोंको जोड करके सम्पुट बना लेवे । यह सम्पुट बिल्कुल गोल और मुखरहित हो । इसको गोलमूषा कहते हैं । यह मूषा तत्काल द्रव्योंका शोधन करनेवाली है ॥ २८ ॥

१५ महामूषा ।

तले या कूर्पराकारा क्रमादुपरि विस्तृता ।
स्थूलवृन्ताकवत्स्थूला महामूषेत्यसौ स्मृता ।
सा चायोऽभ्रकसत्वादेः पुटाय द्रावणाय च ॥ २९ ॥

जो तलीमें कछुवेके आकारके समान पतली और ऊपरको उत्तरोत्तर क्रमसे विस्तृत; अर्थात् चौडी और बीचमें मोटे बैंगनके समान स्थूल ऐसी मूषा बनावे उसको महामूषा कहते हैं। यह मूषा लोह अभ्रक आदि धातुओंके सत्त्वको द्रावण करने और पुट देनेके लिये प्रयोग की जाती है ॥ २९ ॥

१६ मंडूक मूषा ।

मण्डूकाकारमूषा या निम्नतायामविस्तरा
षडंगुलप्रमाणेन मूषा मण्डूकसंज्ञिका ।
भूमौ निखन्य तां मूषां दद्यात्पुटमथोपरि ॥ ३० ॥

मेंडकके आकारके समान नीचेको लम्बी, चौडी, खोखली और ६ अंगुल परिमाण जो मूषा बनाई जाती है उसको मण्डूक मूषा कहते हैं। उस मूषाको जमीन खोदकर उसमें गाड देवे, फिर उसके ऊपर अग्नि जलावे ॥ ३० ॥

१७ मुसलाख्या मूषा ।

मूषा या चिपिटा मूले वर्तुलाष्टांगुलोच्छ्रया ।
मूषा सा मुसलाख्या स्याच्चक्रबद्धरसे हिता ॥ ३१ ॥

आठ अँगुल ऊँची, गोल और तलीमें चपटी ऐसी मूषा बनावे, उसको मुसलाख्य मूषा कहते हैं। यह मूषा पारेको चक्रके समान बाँधनेका संस्कार करनेके लिये उपयोगी होती है। इस प्रकार १७ प्रकारकी मूषा कही गई हैं ॥ ३१ ॥

मूषा-आप्यायन ।

द्रवे द्रवीभावमुखे मूषाया ध्मानयोगतः ।
क्षणमुद्धरणं यत्तन्मूषाप्यायनमुच्यते ॥ ३२ ॥

किसी धातुको मूषामें भरकर द्रावण करनेके लिये अग्निपर रक्खे, जब वह धातु फूंकते २ पिघलकर रसके समान पतली होजाय तब उसको उसी समय अग्निपरसे उतार लेवे । इस क्रियाको विद्वान् लोग मूषाप्यायन कहते हैं ॥ ३२ ॥

कोष्ठी ।

सत्त्वानां पातनार्थाय पतितानां विशुद्धये ।
कोष्ठिका विविधाकारास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३३ ॥

धातुओंके सत्त्वको निकालनेके लिये और निकाले हुए सत्त्वोंको शुद्ध करनेके लिये विविध प्रकारकी कोष्ठियाँ (कोठियाँ) प्रयोग की जाती हैं । उनके आकार और लक्षण नीचे कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

१ अंगारकोष्ठी ।

राजहस्तसमुत्सेधा तदर्धायामविस्तरा ।
चतुरस्रा च कुड्येन वेष्टिता मृण्मयेन च ॥ ३४ ॥
एकभित्तौ चरेद्द्वारं वितस्त्या भोगसंयुतम् ।
द्वारं सार्धवितस्त्या च सम्मितं सुदृढं शुभम् ॥ ३५ ॥
देहल्यधो विधातव्यं धमनाय यथोचितम् ।
प्रादेशप्रमिता भित्तिरुत्तरद्वास्य चोर्ध्वतः ॥ ३६ ॥
द्वारं चोपरि कर्त्तव्यं प्रादेशप्रमितं खलु ।
ततश्चोष्टिकया रुद्ध्वा द्वारसन्धिं विलिप्य च ॥ ३७ ॥

शिखित्रैस्तां समापूर्य्य धमेद्भस्त्राद्वयेन च ।
शिखित्रां धमनद्रव्यमूर्ध्वद्वारेण निक्षिपेत् ॥ ३८ ॥
सत्त्वपातनगोलांश्च पञ्च पञ्च पुनः पुनः ।
भवेदंगारकोष्ठीयं खराणां सत्त्वपातिनी ॥ ३९ ॥

(सत्त्वपातन अथवा लोह आदि किसी धातुको शुद्ध करने व गलानेके लिये उसको मूषामें भरकर वह मूषा जिस भट्टीमें या कोठीमें रखकर तपाई जाती है उसको कोष्ठी कहते हैं । मूषाको रखकर और कोयले भरकर धौंकनीसे फूंके । स्वर्ण, रौप्य, खपरिया आदिको तैयार करनेसे पहले भट्टीकी कल्पना करलेवे ।) एक हाथ ऊँची और आधा हाथ लम्बी, चौडी तथा चौकोर ऐसी कोठी तैयार करे । उसके चारों तरफ मिट्टीकी दीवारें बनावे । उनमेंसे एक दीवारमें एक बालिश्त अथवा डेढ बालिश्त ऊँचाई छोडकर एक मजबूत और सुन्दर दर्वाजा बनावे । इसको अँगारकोष्ठी कहते हैं । उस कोठीकी देहलीके नीचे फूंकनेके लिये यथोपयुक्त द्वार बनावे । फिर उसी कोठीके उत्तरकी ओरकी १ बालिश्त ऊँची दीवारके ऊपर एक बालिश्त ऊँचा दर्वाजा बनावे । उस दर्वाजेको ईंट लगाकर और सन्धियोंको मिट्टीसे लेहसकर बन्द करदेवे । इसके पश्चात् कोयलोंसे उस कोठीको भरकर दो धौंकनियोंसे फूंके । जब कोयले अथवा सत्त्वपातन योग्य पदार्थको डालना हो तो ऊपरके द्वारसे डाले । जिसका सत्त्वपातन करना हो उसके पाँच २ गोले बारम्बार डाले । यह अँगारकोष्ठी कठिन पदार्थोंके सत्त्वको निकालनेके लिये उपयोगी होती है ॥३४-३९॥

२ पातालकोष्ठी ।

दृढभूमौ चरेद्गर्त्तं वितस्त्या सम्मितं शुभम् ॥
वर्तुलं चाथ तन्मध्ये गर्तमन्यं प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

चतुरंगुलविस्तारनिम्नत्वेन समन्वितम् ।
गर्ताद्धरणिपर्यन्तं तिर्यङ्नालसमन्वितम् ॥ ४१ ॥
किञ्चित्समुन्नतं बाह्ये गर्ताभिमुखनिम्नगम् ।
मृच्चक्रीं पञ्चरन्ध्राढ्यां गर्भगर्तोदरे क्षिपेत् ॥ ४२ ॥
आपूर्य कोकिलैः कोष्ठीं धमेदेकभस्त्रया ।
पातालकोष्ठिका ह्येषा मृदूनां सत्त्वपातिनी ॥ ४३ ॥
ध्मानसाध्यपदार्थानां नन्दिना परिकीर्त्तिता ॥४४॥

पक्की भूमिमें एक बालिश्त परिमाण लम्बा चौडा और गोल गड्ढा बनावे। उसके बीचमें चार अँगुल चौडा, उतनाही गहरा और गोल ऐसा एक छोटासा गड्ढा और बनावे। उस गड्ढेमें सत्त्व निकालनेवाले अथवा पकानेवाले पदार्थोंको भर-कर उस गड्ढेके ऊपर पाँच छिद्रोंवाली मिट्टीकी चक्री (चकई) बनाकर ढक देवे। उसमें, गड्ढेसे लेकर जमीनतक एक तिरछी नाल लगावे, वह बाहरकी तरफको कुछ ऊँची और गड्ढेके सामनेको झुकी हुई हो। फिर उस कोठीमें कोयले भरकर एक धौंकनीसे फूंके। इसको पातालकोष्ठिका कहते हैं। यह कोठी मृदु और साध्य पदार्थोंके सत्त्वपातन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है, ऐसा नन्दीनामवाले सिद्धने कहा है ॥ ४१-४४ ॥

२ गारकोष्ठी ।

द्वादशांगुलनिम्ना या प्रादेशप्रमिता तथा ।
चतुरंगुलतश्चोर्ध्वं वलयेन समन्विता ॥ ४५ ॥
भूरिच्छिद्रवतीं कोष्ठीं वलयोपरि निक्षिपेत् ।
शिखित्रांस्तत्र निक्षिप्य धमेद्वंकनालतः ॥ ४६ ॥

गारकोष्ठीयमाख्याता मृष्टलोहविनाशिनी ।
मूषामृद्भिर्विधातव्यमरत्निप्रमितं दृढम् ॥ ४७ ॥
अधोमुखं च तद्वक्त्रे नालं पञ्चांगुलं खलु ।
बंकनालमिति प्रोक्तं दृढध्मानाय कीर्तितम् ॥ ४८ ॥

१२ अँगुल गहरी और प्रादेशपरिमाण (११ अँगुल) लम्बी लोटेके समान आकारवाली एक कोष्ठी बनावे । उसका कण्ठ चार अँगुल ऊँचा बनावे और उसमें एक कडा लगावे । उस कडेके ऊपर बहुतसे छिद्रोंवाली (चलनीके समान) एक थाली ढकदेवे । फिर उस कोठीमें कोयले डालकर बंकनालसे फूँके । इसको गारकोष्ठी कहते हैं । यह कोठी धातुओंके मैलको अलग करनेवाली और सत्त्वको निकालनेवाली है । मूषा बनानेकी मिट्टीकी एक हाथ लम्बी फूँकनेकी मजबूत नली बनावे । उसके भट्टीकी तरफको झुके हुए मुखमें पांच अँगुल लम्बी नीचेको झुकी हुई एक नाल और लगावे । इसे बंकनाल कहते हैं । कठिन पदार्थोंको फूँकनेके लिये इसका उपयोग करना कहा गया है ॥ ४५-४८ ॥

४ मूषाकोष्ठी ।

कोष्ठी सिद्धरसादीनां विधानाय विधीयते ।
द्वादशांगुलकोत्सेधा सा बुध्ने चतुरंगुला ॥
तिर्यक्प्रधमना स्याच्च मृदुद्रव्यविशोधनी ॥ ४९ ॥

सिद्ध रसोंका विधान करनेके लिये १२ अँगुल ऊँचा और चार अँगुल विस्तृत ऐसी कोठी बनावे । उसको तिरछा रखकर फूँके । इसको मूषा कोष्ठी कहते हैं । यह कोठी मृदु पदार्थोंका शोधन करनेके लिये उपयोगी है ॥ ४९ ॥

पुट ।

रसादिद्रव्यपाकानां प्रमाणज्ञापनं पुटम् ॥

रस, उपरस, धातु, उपधातु आदिके पाकके प्रमाणको अच्छे प्रकारसे जानना पुट कहा जाता है ॥

पुटकी आवश्यकता ।

नेष्टो न्यूनाधिकः पाकः सुपाकं हितमौषधम् ॥५०॥

औषधिका परिपाक न कम हो और न अधिक हो । यथोचित प्रमाणके अनुसार उत्तम प्रकारसे पकाई हुई औषध ही हितकारी होती है ॥ ५० ॥

पुटसे होनेवाले लाभ ।

लोहादेरपुनर्भावो गुणाधिक्यं ततोऽग्रता ।
अनप्सु मज्जनं रेखापूर्णत्वं पुटतो भवेत् ॥ ५१ ॥

पुट देनेसे लोह आदि धातुओंकी भस्में निरुत्थ हो जाती हैं, उनमे गुण और योग्यता अधिक बढ जाती है, वे पानीमें तैरने लगती हैं और अँगुलियोंकी रेखाओंमे भरने योग्य बारीक हो जाती हैं ॥ ५१ ॥

पुटाद् ग्राव्णो लघुत्वं च शीघ्रव्याप्तिश्च दीपनम् ।
जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिको गुणः ॥ ५२ ॥
यथाश्मनि विशेद्वह्निर्बहिस्थपुटयोगतः ।
चूर्णत्वाद्धि गुणावाप्तिस्तथा लोहेषु निश्चितम् ॥५३

पुट देनेसे पत्थर जैसे गुरु पदार्थोंमें हलकापन आ जाता है, वे शरीरमे शीघ्र व्याप्त हो जाते हैं और उनमे अग्निको दीपन करनेका गुण आ जाता है । पुट दी हुई धातुओंमें जारण किये हुए पारदसे भी अधिक गुण होता है । जिस प्रकार बाह्य पुट देनेसे पत्थरमें अग्नि प्रविष्ट हो जाता है, उसी

प्रकार उसका बारीक चूर्ण होनेसे उसमें गुण बढ जाते हैं । इसी प्रकार लोहादि धातुओंमें पुटका उपयोग होता है ॥ ५२-५३ ॥

१ महापुट ।

निम्ने विस्तरतः कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके ॥ ५४ ॥
वनोत्पलसहस्रेण पूरिते पुटनौषधम् ।
क्रौंच्यां रुद्धं प्रयत्नेन पिष्टिकोपरि निक्षिपेत् ॥ ५५ ॥
वनोत्पलसहस्रार्धं क्रौंचिकोपरि विन्यसेत् ।
वह्निं प्रज्वालयेत्तत्र महापुटमिदं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

दो हाथ परिमाण गहरा और इतनाही लम्बा चौडा एक चौकोर गड्ढा खोदकर उसमें एक हजार आरने उपले भरदेवे । फिर पुट देने योग्य धातुको मूषामें भरकर उसपर कपरौटी करके सुखालेवे और उस मूषाको उपलोंके बीचमें रखदेवे । पश्चात् उस मूषाके ऊपर पांचसौ आरने उपले और रखकर गड्ढा भर देवे, फिर उसमें अग्नि जलावे । इसको महापुट कहते हैं ॥ ५४-५६ ॥

२ गजपुट ।

राजहस्तप्रमाणेन चतुरस्रं च निम्नकम् ।
पूर्णं चोपलसाठीभिः कण्ठावध्यथ विन्यसेत् ॥ ५७ ॥
विन्यसेत्कुमुदीं तत्र पुटनद्रव्यपूरिताम् ।
पूर्वांच्छगणतोर्धानि गिरिण्डानि विनिक्षिपेत् ॥ ५८ ॥
एतद्गजपुटं प्रोक्तं महागुणविधायकम् ॥ ५९ ॥

एक हाथ परिमाण लम्बा चौडा और इतनाही गहरा एक चौकोर गड्ढा खोदे । उसको कण्ठपर्यन्त आरने उपलोंसे भर-

कर उनके बीचमें पुट देनेवाली धातुको मूषामें बन्द करके रखदेवे । फिर पहले जितने उपले रक्खे हों उनसे आधे उपले मूषाके ऊपर रखकर अग्नि लगा देवे । इसको गजपुट कहते हैं । गजपुटके देनेसे औषधि अत्यन्त गुणवान् हो जाती है ॥ ५७-५९ ॥

३ वाराह पुट ।

इत्थं चारत्निके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते ॥ ६० ॥

इसी प्रकार एक बालिश्त परिमाण विस्तृत और गहरा गड्ढा खोदकर उसको आरने उपलोंसे भरदेवे और उनके बीचमें औषधिकी मूषाको रखकर उसके ऊपर आधे उपले और रखकर अग्नि जलावे । इसको वाराह पुट कहते हैं ॥ ६० ॥

४ कुक्कुट पुट ।

पुटं भूमितले यत्तद्वितस्तिद्वितयोच्छ्रयम् ।
तावच्च तलविस्तीर्णं तत्स्यात्कुक्कुटकं पुटम् ॥ ६१ ॥

दो बालिश्त ऊँचा और उतनाही गहरा व विस्तृत भूमिमें एक गड्ढा खोदकर उसमें उपर्युक्त विधिसे उपले भरकर और मूषा रखकर अग्नि जलावे । इसको कुक्कुट पुट कहते हैं ॥ ६१ ॥

५ कपोत पुट ।

यत्पुटं दीयते भूमावष्टसंख्यैर्वनोत्पलैः ।
बद्ध्वा सूतकभस्मार्थं कपोतपुटमुच्यते ॥ ६२ ॥

भूमिमें १ छोटासा गड्ढा खोदकर उसमें आठ आरने उपलोंकी जो अग्नि दी जाती है, उसको कपोतपुट कहते हैं । इसमें मुख्यतः औषधियोंके साथ पारेको खरल करके गोलासा बनाकर उसको ताम्र सम्पुटमें बन्दकरके रक्खे । इससे पारेकी भस्म हो जाती है ॥ ६२ ॥

६ गोवर पुट ।

गोष्ठान्तर्गोक्षुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ।
गोवरं तत्समादिष्टं वरिष्ठं रससाधने ॥ ६३ ॥
गोवरैर्वा तुषैर्वापि पुटं यत्र प्रदीयते ।
तद्गोवरपुटं प्रोक्तं सिद्धये रसभस्मनः ॥ ६४ ॥

गोष्ठ (गौओंके रहनेके स्थान) में गौओंके खुरोंसे खुंदे हुए सूखे हुए और चूर्ण किये हुए गोमयको गोवर कहते हैं। वह पारदके सिद्ध करनेमें अत्यन्त उपयोगी होता है। भूमिमें एक हाथ लम्बा चौडा और गहरा गड्ढा खोदकर उसमें गोवर अथवा धानोंकी भूसी भर देवे और बीचमें ओषधिसे भरी हुई मूषा रखकर उसके ऊपर भी गोवर वा तुष रखकर पुट देवे। इसको गोवर पुट कहते हैं। यह पुट पारेकी भस्म करनेके लिये विशेष उपयोगी है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

७ भाण्डपुट ।

स्थूलभाण्डे तुषापूर्णे मध्ये मूषासमन्विते ।
वह्निना विहिते पाके तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ ६५ ॥

एक बहुत बडे मटकेमें तुष (धानोंकी भूसी) को खूब दबादबाकर आधे मटके तक भर देवे, फिर उसमें ओषधिकी मूषा रखकर उसके ऊपर इतना तुष रक्खे जिससे मटकेका मुख भर जाय। फिर कपरौटी करके उसको चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवे। इसको भाण्डपुट कहते हैं ॥ ६५ ॥

८ बालुकापुट ।

अधस्तादुपरिष्टाच्च क्रौंचिकाच्छाद्यते खलु ।
बालुकाभिः प्रतप्ताभिर्यत्र तद्वालुकापुटम् ॥ ६६ ॥

एक बडासा मटका लेकर उसको आधा बालु (रेत) से भरे और उसमें ओषधिसे युक्त मूषाको रख देवे। फिर मटकेके मुँह तक और बालु भरकर मूषाको ढक देवे और कपरौटी करके सुखा लेवे । पश्चात् मटकेको चूल्हेपर रखकर नीचे अग्नि जलावे । इसको बालुकापुट कहते हैं ॥ ६६ ॥

९ भूधरपुट ।

वह्निमित्रां क्षितौ सम्यङ् निखन्याद्व्यंगुलादधः ।
उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद्भूधराह्वयम् ॥ ६७ ॥

जमीनमें दो अँगुल गहरा एक गड्ढा खोदे, उसमें ओषधिसे भरी हुई और मजबूत कपरौटी की हुई मूषा रख कर उसपर ओषधिके प्रमाणके अनुसार आरने उपले रखकर अग्नि जलावे । इसको भूधरपुट कहते हैं॥ ६७ ॥

१० लावकपुट ।

ऊर्ध्वं षोडशिकामात्रैस्तुषैर्वा गोवरैः पुटम् ।
यत्र तल्लावकाख्यं स्यात्सुमृदुद्रव्यसाधने ॥ ६८ ॥
अनुक्तपुटमाने तु साध्यद्रव्यबलाबलात् ।
पुटं विज्ञाय दातव्यमूहापोहविचक्षणैः ॥ ६९ ॥

जिसमें चौरस भूमिके ऊपर षोडशिकामात्र (४ तोलसे ५ तोले) धानोंकी भूसी अथवा गोवरके बीचमे पुट देने योग्य वस्तुकी मूषाको रखकर अग्नि दी जाती है उसको लावकपुट कहते हैं। यह पुट मृदु पदार्थोंकी सिद्धिके लिये उपयोगी है। जहाँ पुटका प्रमाण और नाम न कहा हो वहाँ विचारशील विद्वान् वैद्योंको साध्य द्रव्यके बलाबलका विचार करके मृदु अथवा कठिन पुट देना चाहिये ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

ओषधि ग्रहणकरनेकी परिभाषा ।

पिष्टकं छगणं छाणमुत्पलं चोपलं तथा ।
गिरिण्डोपलसाठी च वराटी छगणाभिधाः ॥ ७० ॥

पिष्टक, छगण, छाण, उत्पल, उपल, गिरिण्ड, उपलसाठी और वराटी ये सूखे उपलोंके नाम हैं ॥ ७० ॥

अष्टधातु ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु सीसकमायसम् ।
षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ ॥ ७१ ॥

सुवर्ण, राप्य (चाँदी), ताँबा, राँग, सीसा और लोहा ये ६ अकृत्रिम धातुएं हैं और काँसा, पीतल ये दो कृत्रिम धातुएं हैं ॥ ७१ ॥

षट्लवण ।

लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं बिडम् ।
सौवर्चलं रोमकञ्च चूलिकालवणं तथा ॥ ७२ ॥

समुद्रनमक, सेंधा नमक, विरियासंचरनमक, कालानमक, साँभर नमक और खारी । ये ६ लवण कहे जाते हैं ॥ ७२ ॥

क्षारत्रय ॥

क्षारत्रयं समाख्यातं यवसर्जिकटंकणम् ॥ ७३ ॥

जवाखार, सज्जी और सुहागा ये तीन क्षार (खार) कहलाते हैं ॥ ७३ ॥

क्षारपञ्चक ।

पलाशमुष्ककक्षारौ यवक्षारः सुवर्चिका ।
तिलनालोद्भवः क्षारः संयुक्तं क्षारपञ्चकम् ॥ ७४ ॥

ढाकका खार, मोखेका खार, जवाखार, सज्जी और तिलों

की नाल (लकडियों) म से निकाला हुआ खार इन पाँचोंको क्षार पंचक कहते हैं ॥ ७४ ॥

मधुरत्रय ।

घृतं गुडो माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ॥ ७५ ॥

घी गुड और मधु (शहद) इन तीनोंको मधुरत्रय जानना ॥ ७५ ॥

तैलवर्ग ।

कंगुणी तुंबिनी घोषा करीरः श्रीफलोद्भवम् ।
कटुवार्ताकसिद्धार्थसोमराजीविभीतजम् ॥ ७६ ॥
अतसीजं महाकाली निम्बजं तिलजं तथा ।
अपामार्गादेवदाली दन्ती तुम्बुरुविग्रहात् ॥ ७७ ॥
अंकोलोन्मत्तभल्लातपलाशेभ्यस्तथैव च ।
एतेभ्यस्तैलमादाय रसकर्मणि योजयेत् ॥ ७८ ॥

मालकाँगनी, कडवी तोरई, चिकनी तोरई, करीर; बाँसके अंकुर, बेलके अंकुर, कडवे बैंगन, सरसों, बापची, बहेडे अलसी, बकायन, नीम, तिल, चिराचिटा, देवदाली (बन्दाल), दन्ती, धनियाँ, अंकोल, धतूरा, भिलावे और ढाक इन प्रत्येकके तेलको लेकर रसकर्म (पारदके सिद्ध करने,) में प्रयोग करना, चाहिये ॥ ७६-७८ ॥

वसावर्ग ।

जम्बूकमण्डूकवसा वसा कच्छपसम्भवा ।
कर्कोटी शिशुमारी च गोसूकरनरोद्भवा ॥
अजोष्ट्रखरमेषाणां महिषस्य वसा तथा ॥ ७९ ॥

गीदड, मेंडक, कछुआ, केंकडा, गोह, बैल, सूअर, मनुष्य, बकरा, ऊँट, गदहा, मेंढा और भैंसा इनकी वसा (चर्बी) रसकर्ममें उपयोगी होती है ॥ ७९ ॥

मूत्रवर्ग ।

मूत्राणि हस्तिकरभमहिषीखरवाजिनाम् ।
गोऽजावीनां स्त्रियः पुंसां पुष्पं बीजं तु योजयेत् ॥ ८० ॥

हाथी, ऊँट, भैंस, गदहा, घोडा, गाय बकरी और भेंड इन पशुओंके मूत्र रसादिकी सिद्धि करनेमें व्यवहार करने चाहिये मनुष्यका मूत्र भी कहीं कहीं प्रयोग किया जाता है । जहाँ रज वीर्यका उल्लेख हो वहाँ स्त्रीका रज और पुरुषका वीर्य लेना चाहिये ॥ ८० ॥

माहिष पञ्चक ।

महिषाम्बु दधि क्षीरं साभिघारं शकृद्रसः ।
तत्पञ्चमाहिषं ज्ञेयं तद्वच्छागलपञ्चकम् ॥ ८१ ॥

भैंसका मूत्र, दही, दूध, घी और गोबरका रस इनको माहिष पञ्चक कहते हैं । इसी प्रकार बकरीकी पाँचों चीजोंको छगल पञ्चक अथवा अजापञ्चक और गायके उक्त पाँचों पदार्थोंको पञ्चगव्य कहते हैं ॥ ८१ ॥

अम्लवर्ग ।

अम्लवेतसजम्बीरनिम्बुकं बीजपूरकम् ।
चाङ्गेरी चणकाम्लं च अम्लिकं कोलदाडिमम् ॥
अम्बष्ठा तिन्तिडीकश्च नारङ्गं रसपत्रिका ॥ ८२ ॥
करवन्दं तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥
चणकाम्लश्च सर्वेषामेक एव प्रशस्यते ॥ ८३ ॥

अम्लवेतसमेकं वा सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।
रसादीनां विशुद्ध्यर्थं द्रावणे जारणे हितम् ॥ ८४ ॥

अम्लबेंत, जम्बीरी नीबू, बिजौरा नीबू, नोनियाका शाक, चनेके शाकका खार, इमली, बेर, दाडिमी, अम्बाडा अथवा मोइया, तिन्तिडीक, नारङ्गी, खट्टा पालक और करौंदा इन सबको तथा अन्यान्य। अम्लपदार्थोंको अम्लवर्ग कहते हैं। समस्त अम्लपदार्थोंकी अपेक्षा केवल चनेके शाकका खार ही प्रयोग किया जा सकता है।अथवा सम्पूर्ण आम्लपदार्थोंमें अम्लबेंत अत्युत्तम आम्लपदार्थ माना जाता है। यही एक रसादिकोंके शोधन, द्रावण और जारण करनेमें उपयोगी पदार्थ है॥ ८२ ॥ ८४ ॥

अम्ल पञ्चक ।

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुल्लिकाचुक्रिकारसम् ।
पञ्चाम्लकं समुद्दिष्टं तच्चोक्तं चाम्लपञ्चकम् ॥ ८५ ॥

बेर, दाडिमी, विषांविल, चुल्लिका और चूकेके शाकका रस इन पॉचोको पञ्चाम्ल अथवा अम्लपंचक कहते हैं॥ ८५ ॥

पञ्चमृत्तिका ।

इष्टिका गैरिका लोणं भस्म वल्मीकमृत्तिका ।
रसप्रयोगकुशलैः कीर्त्तिताः पंचमृत्तिकाः ॥ ८६ ॥

ईंट, गेरू, नोनिया, भस्म (राख) और बॅबईकी मिट्टी इन पॉचोंको रसशास्त्रज्ञोंने पञ्चमृत्तिका कहा है ॥ ८६ ॥

विषवर्ग ।

शृङ्गीकं कालकूटं च वत्सनाभं सक्तुत्रिमम् ।
पीतं च विषवर्गोऽयं स वरः परिकीर्त्तितः ॥ ८७ ॥

रसकर्मणि शस्तोऽयं तद्बन्धनविधावपि ।
अयुक्त्या सेवितश्चायं मारयत्येव निश्चितम् ॥ ८८ ॥

सिंगिया विष, कालकूट विष, मीठा तेलिया बनावटी विष और पीला विष इनके समुदायको विषवर्ग कहते हैं । रसकर्ममें और पारेके बन्धन कर्ममें इसका प्रयोग करना उत्तम कहा गया है । यदि युक्ति और प्रमाणके विना इसको सेवन किया जाय तो यह निस्सन्देह मनुष्यको मार देता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

उपविषवर्ग ।

लाङ्गली विषमुष्टिश्च करवीरो जया तथा ।
नीलकः कनकोऽर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मकः ॥ ८९ ॥

कलिहारी, कुचला, कनेर, भाँग, नीलक (कचनोन) धतूरा और आक इनको उपविषवर्ग कहते हैं ॥ ८९ ॥

दुग्धवर्ग ।

हस्त्यश्वी वनिता धेनुर्गर्दभी छागिकाविका ।
उष्ट्रिकोदुम्बराश्वत्थभानुन्यग्रोधतिल्वकम् ॥ ९० ॥
दुग्धिका स्नुग्गणं चैतत्तथैवोत्तमकर्णिका ।
एषां दुग्धैर्विनिर्दिष्टो दुग्धवर्गो रसादिषु ॥ ९१ ॥

हथिनी, घोडी, स्त्री, गाय, गदही, बकरी, भेंड और ऊँटनी इन जंगम जीवोंको तथा स्थावरोंमें गूलर, पीपल, आक, बड, लोध, दुद्धी, सेहुंड और थूहर इस वृक्षोंके दूधोंको दुग्धवर्ग कहते हैं । यह रसकी सिद्धिमें विशेष उपयोगी होता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

विड्वर्ग ।

पारावतस्य चाषस्य कपोतस्य कलापिनः ।
गृध्रस्य कुक्कुटस्यापि विनिर्दिष्टो हि विड्गणः ॥ ९२ ॥
शोधनं सर्वलोहानां पुटनाल्लेपनात्खलु ।

पायरा, नीलकण्ठ, कबूतर, मोर, गिद्ध और मुर्गा इनकी विष्ठाको विड्वर्ग कहते हैं । इसमेंसे किसी एकको अथवा समस्त विड्वर्गको काँजीके साथ पीसकर लेप करके पुट देनेसे समस्त धातुओंका शोधन होता है ॥ ९२ ॥

रक्तवर्ग ।

कुसुम्भं खदिरो लाक्षा मंजिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ ९३ ॥
अक्षी च बन्धुजीवश्च तथा कर्पूरगन्धिनी ।
माक्षिकं चेति विज्ञेयो रक्तवर्गोऽतिरंजनः ॥ ९४ ॥

कसूमके फूल, खैर (कत्था), लाख, मजीठ, लालचन्दन, सहिंजना, गुलदुपहारिया, कपूरकचरी और मधु इन सबको रक्तवर्ग कहते हैं । यह धातुओंको रंगनेवाला है ॥ ९३-९४ ॥

पीतवर्ग ।

किंशुकः कर्णिकारश्च हरिद्राद्वितयं तथा ।
पीतवर्गोऽयमादिष्टो रसराजस्य कर्मणि ॥ ९५ ॥

ढाकके फूल, गेंदेके फूल, हल्दी और दारुहल्दी इन चारोंको पीतवर्ग कहते हैं । यहभी पारदकी सिद्धिमें उपयोगी होता है ॥ ९५ ॥

श्वेतवर्ग ।

तगरः कुटजः कुन्दो गुञ्जा जीवन्तिका तथा ।
सिताम्भोरुहकन्दश्च श्वेतवर्ग उदाहृतः ॥ ९६ ॥

तगर, कुडेकी छाल, कुन्दके फूल, श्वेत चोंटली, जीवन्ती, श्वेत कमल और कमलकन्द इन सबको श्वेत वर्ग कहते हैं॥९६॥

कृष्णवर्ग ।

कदली कारवेल्ली च त्रिफला नीलिका नलः ।
पंकः कासीसबालाम्रं कृष्णवर्ग उदाहृतः ॥ ९७ ॥

केला, करेला, त्रिफला, नीलका वृक्ष, नरसल, कींचड, कसीस और कच्चा आम इन ओषधियोंको कृष्णवर्ग कहते हैं ॥ ९७ ॥

रक्तवर्गादिवर्गैश्च द्रव्यं यज्जारणात्मकम् ।
भावनीयं प्रयत्नेन तादृग्रागाप्तये खलु ॥ ९८ ॥

जारण की हुई अथवा पुट दी हुई जिस किसी रसादि धातुको जैसा रंगना हो तो उसी प्रकारका रंग आनेके लिये उपर्युक्त रक्तादि वर्गोंमेंसे किसी वर्गकी ओषधियोंके क्वाथमें अथवा रसमें उस धातुको यत्नपूर्वक वारम्बार भावना देवे । फिर उसको जारण करने अथवा पुट देनेसे धातुका वैसा ही वर्ण हो जाता है ॥ ९८ ॥

शोधनीय गण ।

काचटंकणशिप्राभिः शोधनीयो गणो मतः ।
सत्त्वानां बद्धसूतस्य लोहानां मलनाशनः ॥
कापालिकगणध्वंसी रसवादिभिरुच्यते ॥ ९९ ॥

काँच, सुहागा और मोतीकी सीप इनको शोधनीय गण कहते हैं । यह सत्त्वोंमें, बद्ध पारेमें और धातुओंमें रहनेवाले मलको नष्ट करता है और धातु आदि पदार्थोंमें रहनेवाले कंकड, पत्थर, मिट्टी आदि कुष्ठरोगोत्पादक मैलको भी यह शोधनीयगण दूर करता है ऐसा रसशास्त्रज्ञ कहते हैं ॥ ९९ ॥

मृदुकरवर्ग ।

महिषीमेढ्राण्डगर्भः कालिंगो धवबीजयुक् ।
शशास्थीनि च वर्गोऽयं लोहकाठिन्यनाशनः १०० ॥

भैंसका गर्भ, भैंसके अण्डकोष, मेढाका गर्भ, मेढेके अण्ड-कोष, तरबूज, धौंके बीज और खरगोशकी अस्थि इन सबको

मृदुकरवर्ग कहते हैं । यह वर्ग धातुओंकी कठिनताको दूर कर उनको नरम करदेता है ॥ १०० ॥

द्रावणवर्ग ।

गुडगुग्गुलुगुञ्जाज्यसारघैष्टंकणान्वितैः ।
दुर्द्रावाखिललोहादेर्द्रावणाय गणो मतः ॥ १०१ ॥

गुड, गूगल, घुंघुची, घी, शहद और सुहागा इन सब पदार्थोंको द्रावणगण कहते हैं । यह अत्यन्त कठिन धातुओंको पिघलाकर रसके समान पतला कर देता है, इस लिये द्रुतिकर्ममें यह गण विशेष उपयोगी होता है ॥ १०१ ॥

क्षाराः सर्वे मलं हन्युरम्लं शोधनजारणम् ।
मान्द्यं विषाणि निघ्नन्ति स्नैग्ध्यं स्नेहाः प्रकुर्वते १०२॥

क्षार पदार्थोंके साथ धातुओंको मिलाकर फूंकनेसे उनका मैल दूर हो जाता है, अम्ल पदार्थोंके द्वारा धातुओंका शोधन और जारण होता है । विषाक्त औषधियोंके साथ मिलाकर पुट देनेसे धातुओंकी मन्दता नष्ट होती है और घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थोंके सहयोगसे धातुओंकी रूक्षता दूर होकर उनमें कोमलता और स्निग्धता आ जाती है ॥ १०२ ॥

परिमाण ।

षट्त्रुट्यश्चैकलिक्षा स्यात्षड्लिक्षा यूकमुच्यते ।
षड्यूकास्तु रजःसंज्ञं निबोध त्वं च सुव्रते ॥
षड्रजः सर्षपः स स्यात्सिद्धार्थः स च कीर्त्तितः १०३॥
षट्सिद्धार्थैन देवेशि यवस्त्वेकः प्रकीर्त्तितः ।
षड्यवैरेकगुञ्जा स्यात्त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ॥१०४॥

पड्भिरेव तु गुञ्जाभिर्माष एकः प्रकीर्तितः ।
मांषाः षोडश तोलः स्याच्चतुस्तोलैः पलं भवेत् १०५

(सूर्यकी किरणोंमें उडते हुए जो रजकण दिखाई देते हैं, उस एक कणके छठे हिस्सेको अणु कहते हैं, उन ६ अणुओंकी एक त्रुटि होती है) । ६ त्रुटिकी बराबर एक लीख होती है । ६ लीखकी एक जूॅ और ६ जुओंका एक रजका कण होता है । छे रजकी एक सरसों होती है उसीको सिद्धार्थ कहते हैं । छे सरसोंका एक जौ होता है, ६ जौकी एक घुघुंची होती है । ३ घुंघुचीका एक वल्ल और ६ घुंघुचीका एक माशा होता है । १६ माशेका एक तोला और चार तोलेका एक पल होता है ॥ १०३--१०५ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चयेभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

रसके शोधन, मारण आदि १८ संस्कारोंका वर्णन ।

प्रथम मान परिभाषा ।

त्रुटिः स्यादणुभिः षड्भिस्तैर्लिक्षा षड्भिरीरिता ।
ताभिः षड्भिर्भवेद्यूकः षड्यूकास्तद्रजः स्मृतम् ॥ १ ॥
षड्रजः सर्षपः प्रोक्तस्तैः षड्भिर्यव ईरितः ।
एका गुञ्जा यवैः षड्भिर्निष्पावस्तु द्विगुञ्जकः ॥ २ ॥
स्याद्गुञ्जात्रितयं वल्लो द्वौ वल्लौ माष उच्यते ।
द्वौ माषौ धरणं ते द्वे शाणनिष्ककलाः स्मृताः ॥ ३ ॥
निष्कद्वयन्तु वटकः स च कोल इतीरितः ।

स्यात्कोलद्वितयं तोलः कर्षो निष्कचतुष्टयम् ॥४॥
उदुम्बरं पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः ।
अक्षं बिडालपदकं शुक्तिः पाणितलद्वयम् ॥ ५ ॥
शुक्तिद्वयं पलं केचिदन्ये शुक्तित्रयं विदुः ।
तदेव कथितं मुष्टिः प्रकुञ्चो बिल्वमित्यपि ॥ ६ ॥

६ अणुओंकी १ त्रुटि होती है, ६ त्रुटियोंकी १ लीख, ६ लीखोंकी एक जूं, ६ जुँओंका रज (१ कण), ६ रज-कणोंकी एक सरसों और ६ सरसोंकी बराबर (वजनमें) एक जौ होता है। ६ जौंकी एक घुंघुची, २ घुंघुचीकी एक मटर २ चोंटलीका एक वल्ल और दो वल्लका एक माशा होता है। दो माशेका एक धरण और दो धरणका एक निष्क होता है। निष्कको शाण और कला भी कहते हैं। दो निष्कका एक वटक होता है। उसीको कोल कहते हैं। दो कोलका एक तोला होता है । तोलेको ही कर्ष, निष्कचतुष्टय, उदुम्बर, पाणितल, सुवर्ण, कवलग्रह, अक्ष और विडालपदक कहते हैं। दो तोलेकी एक शुक्ति होती है और दो शुक्तिका एक पल होता है। कोई २ विद्वान् तीन शुक्तिका पल मानते हैं। पलको ही मुष्टि, प्रकुञ्च और बिल्वभी कहते हैं ॥ १–६ ॥

पलद्वयं तु प्रसृतं तद्द्वयं कुडवोऽञ्जलिः ।
कुडवौ मानिका तौ स्यात्प्रस्थो द्वे मानिके स्मृतः ७
प्रस्थद्वयं शुभं तौ द्वौ पात्रकद्वयमाढकम् ।
तैश्चतुर्भिर्घटोन्मानलवणार्मणकुम्भकाः ॥ ८ ॥
द्रोणस्य शब्दाः पर्यायाः पलानां शतकं तुला ।
चत्वारिंशत्पलशतं तुला भारः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

रसार्णवादिशास्त्राणि निरीक्ष्य कथितं मया ।
रसोपयोगि यत्किञ्चिद्दिङ्मात्रं तत्प्रदर्शितम् ॥ १० ॥

दो पलका एक प्रसृत और दो प्रसृतका एक कुडव होता है । कुडवको ही अञ्जलि कहते हैं । दो कुडवकी एक मानिका दो मानिकाका एक प्रस्थ, दो प्रस्थका एक शुभ, दो शुभका एक पात्रक, दो पात्रकका एक आढक और चार आढकका एक द्रोण होता है। घट, उन्मान, नल्वण अर्मण और कुम्भक ये सब द्रोणके पर्यायवाची शब्द हैं । सौ १०० पलकी एक तुला होती है और एक सौ चालीस १४० पल तुलाका एक भार होता है । मैंने रसार्णव आदि रसशास्त्रोंको निरीक्षण करके जो कुछ तोलकी परिभाषा कही है वह केवल दिग्दर्शन मात्र है, किन्तु रसों (पारद आदि) के संस्कार करनेमें विशेष उपयोगी है ॥ ७-१० ॥

पारके अष्टादश संस्कार ।

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनं च
उत्थापनं पतनरोधनियामनानि ।
सन्दीपनं गगनभक्षणमानमत्र
संचारणा तदनु गर्भगता द्रुतिश्च ॥ ११ ॥
बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्याद्
ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ।
संक्रामणं वेधविधिः शरीरे
योगस्तथाष्टादशधात्र कर्म ॥ १२ ॥

१ स्वेदन, २ मर्दन, ३ मूर्च्छन, ४ उत्थापन, ५ पातन, ६ रोधन, ७ नियामन, ८ सन्दीपन, ९ गगनभक्षण (अभ्रजारण) का प्रमाण, १० चारण, ११ गर्भद्रुति, १२ बाह्यद्रुति,

१३ पारदजारण, १४ ग्रास, १५ सारण, १६ संक्रामण, १७ वेध और १८ शरीरयोग, इस प्रकार पारेके अष्टादश १८ संस्कार कहे गये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

पारेके दोष ।

संयोज्यो मर्मणि च्छिन्ने न च क्षाराग्निदग्धयोः ।
शुद्धः स मृद्वाग्निसहो मूर्च्छितो व्याधिनाशनः ॥ १३ ॥
निष्कम्पवेगस्तीव्राग्नावायुरारोग्यदो मृतः ।
विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः ॥ १४ ॥
रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ॥ १५ ॥

किसी मर्मस्थानके कट जानेसे, अथवा क्षार (तेजाब आदि) या अग्निसे जल जानेसे घाव हो जानेपर पारेका सेवन नहीं कराना चाहिये शुद्ध किया हुआ पारा मृदु अग्निको सहन करता है, मूर्च्छित पारा सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है और तीव्र अग्निमें भस्म किया हुआ पारा निष्कम्प हो जाता है, अर्थात् वह अग्निमें रखनेसे उडता नहीं है । ऐसे पारेको सेवन करनेसे आयु और आरोग्यताकी वृद्धि होती है । विष, अग्नि और मैल ये तीनों दोष पारेमें स्वाभाविक रूपसे रहते हैं । पारेको शोधन आदि संस्कार किये विना सेवन करनेसे इन तीनों दोषोंके द्वारा क्रमसे मरण, सन्ताप और मूर्च्छा होती है ॥ १३–१५ ॥

यौगिकौ नागवंगौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठदौ ।
औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकंचुकाः ॥ १६ ॥
भूमिजा गिरिजा वार्जा द्वे च द्वे नागवंगजे ।
दृश्यन्ते हि रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ॥ १७ ॥

भूमिजाः कुर्वते कुष्ठं गिरिजा जाड्यमेव च ।
वारिजा वातसंघात दोषाढ्यं नागवंगयोः ॥ १८ ॥

पारेमें नाग (सीसा) और बंगको व्यापारी लोग मिला देते हैं, इस लिये नाग और बंग ये दोनों पारेके संयोगिक दोष कहे जाते हैं । इन दोषोंसे युक्त पारदको सेवन करनेसे शरीरमें जडता, आध्मान (अफरा) और कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। इसके सिवा पारेमें सात कंचुकी (दोषोंके सात परत) दोष रहते हैं। रसशास्त्रज्ञ विद्वानोंके मतसे पारेमें मुख्यरूपसे दो दोष, पृथ्वीके, दो दोष पर्वतके, दो दोष जलके, दो दोष सीसेके और दो दोष बंगके इस प्रकार ये दश दोष रहते हैं । पारेके भूमिजनित दो दोष कुष्ठरोगको उत्पन्न करते हैं । पर्वतके दोनों दोष जडताको, जलके दोनों दोष वात-व्याधिको और नाग तथा बंगके भिन्नभिन्न दोष नानाप्रकारके रोगसमूहको उत्पन्न करते हैं ॥ १६-१८ ॥

पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंचुकाः॥ १९॥
तस्मात्सूतविधानार्थं सहायैर्निपुणैर्युतः ।
सर्वोपस्करमादाय रसकर्म समारभेत् ॥ २० ॥
द्वे सहस्रे पलानां तु सहस्रं शतमेव वा ।
अष्टाविंशत्पलान्येव दश पञ्चैकमेव वा ॥ २१ ॥
पलार्धेनैव कर्त्तव्यः संस्कारः सूतकस्य च ।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत् ॥ २२ ॥

पर्पटी, पाटिनी, भेदी, द्रावी, मलकरी, अन्धकारी और ध्वांक्षी ये पारेमें सात कंचुक (परत) होते हैं। अतएव पारेको

सर्वदोषरहित सिद्ध करनेके लिये मनुष्य, रसकर्ममें चतुर सहायकोंके साथ पहले रससाधनके उपकरणोंको सञ्चित करके फिर रसकर्म (पारेकी सिद्धि) करना प्रारम्भ करे । अधिकसे अधिक दो हजार पल, अथवा एक हजार पल, सौ पल, २८ पल, १० पल ५ पल, और कमसे कम १ पल अथवा आध पल, (२ तोले) पारेका संस्कार करना चाहिये शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें पारेका शोधन करना प्रारम्भ करे ॥ १९-२२ ॥

१ स्वेदन संस्कार ।

त्र्यूषणं लवणासूर्यौ चित्रकार्द्रकमूलकम् ।
क्षिप्त्वा सूतो मुहुः स्वेद्यः काञ्जिकेन दिनत्रयम् ॥ २३

सोंठ, मिरच, पीपल, नमक, राई, चीता, अदरख, और मूली इन सबको समान भाग मिश्रित पारेसे आधा भाग लेवे । पारेको इन औषधियोंके साथ खूब घोटकर गोला बना लेवे और उस गोलेको एक सफेद कपडेकी पोटलीमें बाँधकर काँजीसे आधे भरे हुए दोलायन्त्रमें अधर लटका देवे । इस प्रकार तीन दिनतक स्वेदनसे पारेका सब मैल दूर हो जाता है ॥ २३ ॥

२ मर्दन संस्कार ।

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधि गुडान्वितम् ।
लवणासुरिसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥ २४ ॥
षोडशांशं प्रतिद्रव्यं सूतमानाद्विनियोजयेत् ।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ २५ ॥
जीर्णाभ्रकं तथा बीजं जीर्णसूतं तथैव च ।
नैर्मल्यार्थं हि सूतस्य खल्वे धृत्वा विमर्दयेत् ॥ २६ ॥

गृह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः ।
मर्दनाख्यं हि तत्कर्म सूतस्य गुणकृद्भवेत् ॥ २७ ॥

घरका धुआँसा, ईंटका चूरा, दही, गुड, सैंधानमक और राई प्रत्येक औषधिको पारेसे सोलहवाँ भाग लेकर सबके साथ पारेको मिलाकर तीन दिनतक खरल करे फिर पारेको निर्मल करनेके लिये उसमें सोलहवाँ भाग अभ्रक, सोलहवाँ भाग सुवर्ण और चाँदी और सोलहवाँ भाग जीर्ण पारद मिलाकर सबको खरलमें डालकरके एक दिनतक मर्दन करे। प्रत्येक ग्रासके अन्तमें मर्दन करनेसे पारा निर्मल हो जाताहै और उत्तम वर्णको धारण करताहै। यह मर्दन संस्कार पारेको विशेष गुणवान् बनादेता है ॥ २४–२७ ॥

३ मूर्च्छन संस्कार ।

गृहकन्या मलं हन्यात् त्रिफला वह्निनाशिनी ।
चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः ॥ २८ ॥
मिश्रितं सूतकं द्रव्यैः सप्तवाराणि मूर्च्छयेत् ।
इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायते ॥ २९ ॥

घीग्वारके द्वारा पारेका मैल दूर होताहै। त्रिफलेसे पारेकी अग्नि नष्ट होती है और चीतेकी जड पारेके विषको नाश करती है, इसलिये इन औषधियोंके क्वाथ अथवा रसके साथ विधिपूर्वक मिलाकर सातबार मूर्च्छित करे। इस प्रकार मूर्च्छित करनेसे पारा उपर्युक्त सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त होजाता है॥२८॥२९॥

४ उत्थापनसंस्कार ।

अस्माद्विरेकात्संशुद्धो रसः पात्यस्ततः परम् ।
उद्धृतः काञ्जिकक्वाथात्पूतिदोषनिवृत्तये ॥ ३० ॥

मूर्च्छित हुआ पारा जब कल्कके समान होजाय तब उसको एक हाँडीकी तलीमें लेपकर डमरुयंत्रके द्वारा ऊपरको उडावे फिर कांजीमें धोकर निकाल लेवे । इस संस्कारके करनेसे पारेमेंसे पूतिदोष (त्वचामें कुष्ठरोगको उत्पन्न करना) नष्ट होजाता है ॥ ३० ॥

५ पातन संस्कार ।

ऊर्ध्वपातन ।

ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने ।
बंगनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ॥ ३१ ॥
शुल्बेन पातयेत्पिष्टीं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः ॥

पारेसे चौथाई भाग ताँबेका चूर्ण लेकर दोनोंको नींबूके रसमें घोटकर लुगदी बनालेवे उसको डमरुयन्त्रके नीचेके हिस्सेमें लेपकर और ऊपरके हिस्सेमें पानी भरकर १२ घंटे तक मध्यम अग्नि देवे । इस प्रकार पातन करनेसे पारा बंग और नाग इन दोनों दोषोंसे मुक्त होकर शुद्ध होजाता है फिर डमरु यन्त्रके ऊर्ध्वभागमें लगे हुए पारेको छुटाकर पूर्वोक्त विधिसे तांबेके साथ नीबूके रसमें घोटकर पिष्टी बनालेवे और उक्तयन्त्रमें लेपकर तीन बार ऊर्ध्व पातन करे और सात बार अधःपातन करे ॥ ३१ ॥

अधःपातन ।

त्रिफला शिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ॥ ३२ ॥
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेच्चोर्ध्वभाजने ॥
ततो दीप्तैरधः पातमुत्पलैस्तत्र कारयेत् ॥ ३३ ॥

त्रिफला, सैंजना, चीता, नमक और राई इन सब औषधियोंको पारेसे सोलहवाँ भाग लेकर इनमें पारेको मिलाकर

कांजीके साथ इस प्रकार घोटे कि पारा घोटते २ बिलकुल दिखाई न दे। फिर उस पिष्टीका विद्याधरयन्त्र, अधःपातन यन्त्र अथवा सोमानल यन्त्रके ऊर्ध्वभागमें लेप करे और नीचेके भागमें पानी भरदेवे। पश्चात् उस यन्त्रके ऊपर आरने उपलोंकी अग्नि जलावे। अथवा अधःपातन यन्त्रमें पारेका लेपकर यन्त्रको पृथ्वीमें गड्ढा खोदकर गाडदेवे और उस यन्त्रके ऊपर आरने उपलोंकी अग्नि जलावे। इस प्रकार करनेसेभी पारा उडकर नीचे जलके पात्रमें गिरपडता है। फिर स्वांगशीतल होनेपर पारेको निकालकर उपर्युक्त विधिसे औषधियोंके साथ कांजीमें घोटकर अधःपातन करे। इस तरह सात बार करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हरिद्राकोलशम्याककुमारीत्रिफलाग्निभिः।
तण्डुलीयकवर्षाभूहिंगुसैन्धवमाक्षिकैः ॥ ३४ ॥
पिष्टं रसं सलवणैः सर्पाक्ष्यादिभिरेव वा।
पातयेदथवा देवि व्रणघ्नीयक्षलोचनैः ॥ ३५ ॥
इत्थं ह्यधोर्ध्वपातेन पातितोऽसौ यदा भवेत्।
तदा रसायने योग्यो भवेद्द्रव्याविशेषतः ॥ ३६ ॥

हल्दी, अंकोल, अमलतास, घीगवार, त्रिफला, चीता, चौलाई, पुनर्नवा, हींग, सैंधानमक और शहद इन सबको पारेसे १६ वां भाग लेकर इनके साथ पारेकी नष्ट पिष्टी बनाकर उपर्युक्तविधिसे सात बार अधःपातन करे। अथवा सैंधानमक आदि पांचों नमक, सरफोका आदि औषधियोंके साथ घोटकर पारेका सात बार अधःपातन करे। अथवा व्रणघ्नी (लघुकारली) और यक्षलोचन (*) इन औषधियोंके साथ पारेको घोटकर पूर्वोक्त विधिसे सात बार अधःपातन करे। इस प्रकार ऊर्ध्वपातन और अधःपातन संस्कारोंके द्वारा उडाया हुआ

पारा रसायनमें प्रयोग करने योग्य होता है । विशेष २ अनुपानोंके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ३४–३६ ॥

तिर्यक् पातन ।

अथवा दीपकयन्त्रे निपातितः सर्वदोषनिर्मुक्तः ।
तिर्यक्पातनविधिना निपातितः सूतराजश्च ॥३७॥
श्लक्ष्णीकृतमभ्रदलं रसेन्द्रयुक्तं तथारनालेन ।
खल्वे दत्त्वा मृदितं यावत्तन्नष्टपिष्टतामेति ॥ ३८ ॥
कुर्यात्तिर्यक्पातनपातितसूतं क्रमेण दृढवह्निम् ॥
संस्वेद्यः पात्योऽसौ न पतति यावद्दृढश्चाग्नौ॥३९॥
तदासौ शुद्ध्यते सूतः कर्मकारी भवेद्ध्रुवम् ।
मर्दनैर्मूर्च्छनैः पातैर्मन्दः शान्तो भवेद्रसः ॥ ४० ॥

इसके पश्चात् दीपक यन्त्रमें तिर्यक्पातन विधिके द्वारा उडानेसे पारा सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त होजाता है पारेसे चौथाई भाग अभ्रकका बारीक चूर्ण लेकर उसमें पारा मिलाकर दोनोंको खरलमें डालकर कॉजीके साथ तबतक घोटे जबतक कि पारा घुटते २ बिलकुल अदृश्य न होजाय । फिर पूर्वोक्त तिर्यक्पातन यन्त्रके द्वारा पारेको उडाकर क्रमसे मन्द, मध्य और तीव्र अग्निदेवे । फिर एकबार दोलायन्त्रमें रखकर स्वेददेवे और फिर तिर्यक्पातन करे । इस प्रकार करनेसे पारेमें अग्निको सहन करनेकी शक्ति आती है और पारा शुद्ध होजाता है । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा रसायनकर्ममें व्यवहार करने योग्य होता है मर्दन और मूर्च्छन करनेसे मन्द हुआ पारा तीनों प्रकारके पातनसंस्कार करनेसे शान्त होजाता है ॥ ३७–४० ॥

६ निरोध संस्कार।

सृष्टयम्बुजैर्निरोधेन ततो मुखकरो रसः।
स्वेदनादिवशात्सूतो वीर्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

सृष्टयम्बुज (स्त्रीरज या मूत्र, अथवा गोमूत्र) से पारेका रोधन संस्कार करे तो पारदके मुख होता है स्वेदनादिसे पारद उत्तम वीर्यको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

७ नियामन संस्कार।

नियम्योऽसौ ततः सम्यक् चपलत्वनिवृत्तये।
कर्कोटी फणिनेत्राभ्यां वृश्चिकाम्बुजमार्कवैः ॥
समं कृत्वारनालेन स्वेदयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४२ ॥
मरिचैर्भूखगयुतैर्लवणासुरिशिग्रुटंकणापतः।
काञ्जिकयुक्तैस्त्रिदिनं ग्रासार्थी जायते स्वेदात् ॥ ४३ ॥

रोधन संस्कारके पश्चात् पारेका चपलत्वदोष दूर करनेके लिये नियामन संस्कार करे। बाँझककोडा, नागफन, बिछुआघास, कमल और भाँगरा इन सब औषधियोंको पारेके बराबर लेकर कल्क करलेवे। उस कल्कमें पारेको रखकर गोलासा बनाकर काँजीसे भरेहुए पात्रमें अधर लटकाकरके तीन दिनतक स्वेददेवे। इसके पश्चात् काली मिरच, कैंचुए, नमक, राई सैंजनेकी मूली और सुहागा इन सबका कल्क बनाकर काँजीमें मिलाकर एक मटकेमें आधा भरदेवे और उपर्युक्त बाँझककोडा आदि पाँचों औषधियोंके कल्कमें पारा रखकर गोला बनाकरके मटकेमें अधर लटकादेवे और तीन दिनतक स्वेददेवे। इस संस्कारके करनेसे पारा बुभुक्षित होजाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

८ दीपन संस्कार ।

त्रिक्षारसिन्धुखगभूशिखिशिग्रुराजी-
तीक्ष्णाम्लवेतसमुखैर्लवणोषणाम्लैः ।
नेपालताम्रदलशोषितमारनाले
साम्लासवाम्लपुटितं रसदीपनं तत् ॥ ४४ ॥

जवाखार, सज्जी, सुहागा, सैंधानमक, कैंचुए, चीता, सैंजना, राई, वच, अम्लवेत, नमक, काली मिरच इन सब ओषधियोंको पारेके बराबर लेकर सबको पारेके साथ नीबूके रसमें और कॉजीमें क्रमसे घोटे । फिर नैपाली ताँबेके पत्रोंपर उस कल्कका लेपकर सुखालेवे और कपडेमें बॉधकर जम्बीरासव अथवा कॉजीसे आधे भरेहुए मटकेमें अधर लटका करके तीन दिन तक स्वेद देवे। इस प्रकारसे पारेका दीपन संस्कार होता है ॥ ४४ ॥

स्वेदयेदासवाम्लेन वीर्यतेजःप्रवृद्धये ।
यथोपयोगः स्वेद्यः स्यान्मूलिकानां रसेषु च ॥४५॥

पारेके वीर्य्य और तेजकी वृद्धि होनेके लिये पारेको खट्टे आसवमें स्वेदन करे । अथवा जहॉ जैसा योग हो तदनुसार पारेको निम्नलिखित मूली आदि ओषधियोंके रसमें स्वेद देवे ॥ ४५ ॥

सर्पाक्षी क्षीरिणी वन्ध्या मत्स्याक्षी शंखपुष्पिका ।
काकजंघा शिखिशिखा ब्रह्मदण्डचा खुकर्णिका ४६॥
वर्षाभूः कंबुकी दूर्वा शैर्यकोत्पलशाम्बिकाः ।
शतावरी वज्रलता वज्रकन्दाग्निकर्णिकाः ॥ ४७ ॥
श्वेतार्कशिग्रुधत्तूरभृगदूर्वारसाङ्कुशाः ।

रम्भा रक्तालु निर्गुण्डी लज्जालुः सुरदालिका ॥४८॥
मण्डूकपर्णी पाताली चित्रकं ग्रीष्मसुन्दरा ।
काकमाची महाराष्ट्री हरिद्रा तिलपर्णिका ॥ ४९ ॥
जाती जयन्ती श्रीदेवी भूकदम्बः कुसुम्भकः ।
कोशातकी नीरकणा लांगली कटुतुम्बिका ॥५०॥
चक्रमर्दोऽमृताकन्दः सूर्य्यावर्तेषुपुंखिका ।
वाराही हस्तिशुण्डी च प्रायेण रसमूलिकाः ॥ ५१॥
रसस्य भावने स्वेदे मूषालेपे च पूजिताः ।
इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने ॥ ५२ ॥
कार्यास्ते प्रथमं शषा नोक्ता द्रव्योपयोगिनः ॥५३॥

सरहटी, दुद्धी, बॉझककोडा, मछेछी घास, शंखपुष्पी, मसी, काकजंघा, मोरशिखा, ब्रह्मदण्डी, मूषाकानी, पुनर्नवा, अंधाहुली, श्वेत दूब, हरी कुशा, कमल, मुद्गपर्णी, शतावर, हडसंहारीलता, कडवा जिमीकन्द, अग्निकर्णी, सफेदआक, सैंजना, धतूरा, कालीदूब, रसाङ्कुश (टंकण), केला, रतालु, सिंहालु, लज्जावन्ती, देवदालीलता, मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पातलगरुडी, चीता, गूमा, मकोय, जलपीपल, हल्दी, लालचन्दन, चमेली, अरणी, शिवलिङ्गी, भुंई कदम्ब, कसूम कडवी तोरई, कालाजीरा, कलिहारी, कडवीतोंबी, चकवड, गिलोय, हुलहुल, सरफोका, वाराहीकन्द, हाथीशुण्डा और रसौत ये सब ओषधियाँ पारेको भावना देनेमें, स्वेदन करनेमें और मूषाके ऊपर लेप करनेमें एवं पारदके अन्यान्य संस्कारोंके करनेमें भी विशेष उपयोगिनी होती हैं। पारेके ये आठ संस्कार हुए। औषधिकर्म और रसायनकर्ममें उक्त प्रकारसे आठों संस्कार किया

हुआ पारा लेना चाहिये । शेष दश संस्कारोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ पारा औषधोपयोगमें नहीं लिया जाता, इस लिये वे संस्कार यहाँ नहीं कहे गये हैं । वशीकरण, मोहन, स्तंम्भन आदि प्रयोगोंमें और सुवर्ण, रौप्य आदिके बनानेमें अठारह संस्कारवाला पारा लिया जाताहै ॥ ४६-५३ ॥

रसबन्धन ।

पञ्चविंशतिसंख्याकान्रसबन्धान्प्रचक्ष्महे ।
येन येन हि चाञ्चल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥ ५४ ॥
रसराजस्य संप्रोक्तो बन्धनार्थो हि वार्तिकैः ।
हठारोटौ तथा भासः क्रियाहीनश्च पिष्टिका ॥५५॥
क्षारः खोटश्च पोटश्च कल्कबन्धश्च कज्जलिः ।
सजीवश्चैव निर्जीवो निर्बीजश्च सबीजकः ॥ ५६ ॥
शृंखलाद्रुतिबन्धौ च बालकश्च कुमारकः ।
तरुणश्च तथा वृद्धो मूर्त्तिबन्धस्तथापरः ॥ ५७ ॥
जलबन्धोऽग्निबन्धश्च सुसंस्कृतकृताभिधः ।
महाबन्धाभिधश्चेति पञ्चविंशतिरीरिताः ॥ ५८ ॥
केचिद्वदन्ति षड्विंशो जलूकाबन्धसंज्ञकः ।
स तावन्नेष्यते देहे स्त्रीणां द्रावेऽतिशस्यते ॥ ५९ ॥

अब पारेको बाँधनेकी २५ प्रकारकी विधियोंको कहते हैं । जिन क्रियाओंके करनेसे पारेकी चञ्चलता और दुर्ग्राह्यता नष्ट हो जाती है, उसको वार्त्तिककारोंने रसबन्ध कहा है । १ हठ, २ आरोट, ३ आभास, ४ क्रियाहीन, ५ पिष्टिका, ६क्षार, ७ खोट ८ पोट, ९ कल्कबन्ध, १० कज्जलि,११सजीव, १२ निर्जीव, १३ निर्बीज, १४ सबीज, १५ शृंखला बन्ध,

१६ द्रुतिबन्ध, १७ बालक, १८ कुमार, १९ तरुण, २० वृद्ध, २१ मूर्त्तिबन्ध, २२ जलबन्ध, २३ अग्निबन्ध, २४ सुसंस्कृतबन्ध और २५ महाबन्ध इस प्रकार पारेके २५ बन्धन कहे गये हैं। परन्तु कोई कोई विद्वान् जलूकाबन्ध नामक क्रियासहित २६ प्रकारके रसबन्ध मानते हैं । किन्तु जलूकाबन्ध क्रियाका शरीरमें उपयोग नहीं होता, यह केवल स्त्रियोंके द्रावण करनेमें उपयोगी होती है ॥ ५४-५९ ॥

हठो रसः स विज्ञेयः सम्यक् शुद्धिविवर्जितः ।
स सेवितो नृणां कुर्यान्मृत्युं वा व्याधिमुद्धतम् ॥ ६० ॥

जिस पारेकी उत्तम प्रकारसे शुद्धि नहीं होती, उसको हठ रस कहते हैं। उस पारेको सेवन करनेसे मनुष्योंकी या तो मृत्यु होजाती है अथवा भयङ्कर व्याधि उत्पन्न होजाती है ॥ ६० ॥

सुशोधितो रसः सम्यगारोट इति कथ्यते ।
स क्षेत्रीकरणे श्रेष्ठः शनैर्व्याधिविनाशनः ॥ ६१ ॥

उत्तम प्रकारसे शुद्ध किये हुए पारेको आरोट कहते हैं । उस पारेको सेवन करनेसे स्त्रियोंका गर्भाशय शुद्ध होकर उसमें गर्भधारण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। और धीरे धीरे रोगोंका नाश होता है ॥ ६१ ॥

पुटितो यो रसो याति योगं मुक्त्वा स्वभावताम् ।
भावितो धातुमूलाद्यैराभासो गुणवैकृते ॥ ६२ ॥

जो पारा पुट देनेसे दूसरे संयोगी पदार्थोंको छोडकर अपने प्रकृत स्वरूपको प्राप्त होजाताहै, उस समय जो धातुओंकी अथवा वनस्पतियोंके रसकी भावना दीजाती हैं तब उसको आभास कहते हैं। वह पारा भिन्नभिन्न औषधियोंके संयोगसे विशेष गुणकारी होजाताहै ॥ ६२ ॥

असंशोधितलोहाद्यैः साधितो यो रसोत्तमः ।
क्रियाहीनः स विज्ञेयो विक्रियां यात्यपथ्यतः ॥६३॥

विना शुद्ध किये हुए लोहआदि धातुओंसे जो पारा सिद्ध कियाजाता है उसको क्रियाहीन कहते हैं । उस पारेको सेवन करनेपर पथ्य पदार्थोंका सेवन न करनेसे विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥ ६३ ॥

तीव्रातपे गाढतरावमर्दात्पिष्टी भवेत्सा नवनीतरूपा ।
[१]स रसः पिष्टिकाबन्धो दीपनः पाचनस्तराम् ॥६४॥

शुद्ध पारेको खरलमें डालकर तीक्ष्णधूपमें रखकरके खूब अच्छी तरह घोटनेसे उसकी नैनीघीकी समान चिकनी पिठी होजाती है तब उसको पिष्टिकाबन्ध कहते हैं। वह पारा अत्यन्त अग्निदीपक और पाचक होताहै ॥ ६४ ॥

शंखशुक्तिवराटाद्यैर्योऽसौ संशोधितो रसः ।
क्षारबन्धः परं दीप्तिपुष्टिकृच्छूलनाशनः ॥ ६५ ॥

शंख, मोतीकी सीप, कौडी आदिके द्वारा जो पारा शुद्ध किया जाता है उसको क्षारबन्ध कहते हैं । वह पारा अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला शरीरको पुष्ट करनेवाला और शूल रोगनाशक होता है ॥ ६५ ॥

बन्धो यः खोटतां याति ध्मातो ध्मातः क्षयं व्रजेत् ॥
खोटबन्धः स विज्ञेयः शीघ्रं सर्वगदापहः ॥ ६६ ॥

जो पारा बन्धनेसे (पारेको बांधनेकी औषधियोंके संयोगसे) गोलासा बनजाय और बारम्बार फूँकनेसे क्षीण होता

---

१ ख्यातः स सूतः किल पिष्टिबद्धः संदीपनः पाचनकृद्विशेषात् । इतिपाठः समीचीनः ।

जाय उसको खोटबन्ध कहते हैं । उस पारेको सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ६६ ॥

द्रुतकज्जलिका मोचापत्रके चिपिटीकृता ।
स पोटः पर्पटी सैव बालाद्यखिलरोगनुत् ॥ ६७ ॥

लोहेकी कढाईमें घी चुपडकर उसमें पारे और गन्धककी कज्जलीको डालकर पिघलावे । जब वह पिघलकर रसके समान पतली होजाय तब गायके गोबरके ऊपर केलेका पत्ता रखकर उसपर कज्जली ढाल देवे । फिर उसके ऊपर दूसरा केलेका पत्ता और पत्तेके ऊपर गोबर रखकर दबादेवे, तब वह चपटी होकर जमजाती है । उसको पोटबन्ध या पर्पटीबन्ध रस कहते हैं । वह पर्पटी सेवन करनेसे बालक, युवा और वृद्ध मनुष्योंके सब रोगोंको नष्ट करती है ॥ ६७ ॥

स्वेदाद्यैः साधितः सूतः पंकत्वं समुपागतः ।
कल्कबद्धः स विज्ञेयो योगोक्तफलदायकः ॥ ६८ ॥

स्वेदन, मर्दन आदि संस्कारोंके करनेसे जो पारा कीचडके समान गाढा होजाता है उसको कल्कबद्ध कहते हैं । वह भिन्न-भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेपर योगोंमें कहे हुए यथार्थ फलको प्रदान करता है ॥ ६८ ॥

कज्जलीरसगन्धोत्था सुश्लक्ष्णा कज्जलोपमा ।
तत्तद्योगेन संयुक्ता कज्जलीबन्ध उच्यते ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर खूब बारीक खरल करे । जब उनकी घुटते २ कज्जलके समान काली पिट्ठी होजाती है तब उसको कज्जलीबन्ध कहते हैं । कज्जलीको उचित अनुपानोंके साथ समस्त रोगोंमें व्यवहार करना चाहिये ॥ ६९ ॥

भस्मीकृतो गच्छति वह्नियोगाद्
रसः सजीवः स खलु प्रदिष्टः ।
संसेवितोऽसौ न करोति भस्म
कार्यं जवाद्रोगविनाशनंच ॥ ७० ॥

पारेकी भस्म करनेके बाद भी जो पारा अग्निके संयोगसे उडजाता है उसको सजीव कहते हैं । वह पारा सेवन करनेपर भस्मके समान गुण नहीं करता और न शीघ्र रोगोंको ही दूर करता है ॥ ७० ॥

जीर्णाभ्रको वा परिजीर्णगन्धो
भस्मीकृतश्चाखिललोहमौलिः ।
निर्जीवनामा हि स भस्मसूतो
निःशेषरोगान्विनिहन्ति सद्यः ॥ ७१ ॥

अभ्रकके द्वारा अथवा गन्धकके द्वारा जारण करके भस्म किया हुआ पारा सम्पूर्ण धातुओंसे उत्तम गुण करता है । इसको निर्जीव वन्ध कहते हैं । निर्जीव पारेकी भस्म सब प्रकारके रोगोंको तत्काल नष्ट करती है ॥ ७१ ॥

रसस्तु पादांशसुवर्णजीर्णः
पिष्टीकृतो गन्धकयोगतश्च ।
तुल्यांशगन्धैः पुटितः क्रमेण
निर्बीजनामा सकलामयघ्नः ॥ ७२ ॥

चौथाई भाग सुवर्णक साथ जारण किये हुए पारेको गन्धकके साथ खरल करे । फिर मिलाकर बराबर भाग गंधक मिलाकर पुट देवे। इस प्रकार गन्धकके द्वारा तीन पुट देनेसे निर्बीजवन्ध नामक पारा सिद्ध होता है। निर्बीज पारा समस्त रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ७२ ॥

पिष्टीकृतैरभ्रकसत्त्वहेम-
तारार्ककान्तैः परिजारितो यः ।
हृतस्ततः षड्गुणगन्धकेन
स बीजबद्धो विपुलप्रभावः ॥ ७३ ॥

अभ्रकका सत्त्व, सुवर्णभस्म, रूपेकी भस्म, तांबेकी भस्म और कान्तलोहकी भस्म इन सबको पारेके बराबर लेकर एकत्र खरल करके पारेका जारण करे । फिर छै गुनी गन्धकके साथ मिलाकर पारेकी भस्म करे वह पारा अत्यन्त प्रभावशाली होताहै, उसको बीजबद्ध कहते हैं ॥ ७३ ॥

वज्रादिनिहतः सूतो हतः सूत समोऽपरः ।
शृंखलाबद्धसूतस्तु देहलोहविधायकः ॥
चित्रप्रभावां वेगेन व्याप्तिं जानाति शंकरः ॥ ७४ ॥

हीरा आदि रत्नोंके द्वारा भस्म किया हुआ पारा और धातु या वनस्पतियोंके साथ भस्म किया हुआ पारा, दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । इसको शृंखलाबद्ध पारा कहते हैं । इस पारेको सेवन करनेसे शरीर लोहेके समान दृढ होजाता है । इसकी वेगके साथ शरीरमें फैलनेवाली आश्चर्यजनक शक्तिको केवल शंकर भगवान् जानते हैं ॥७४॥

युक्तोऽपि बाह्यद्रुतिभिश्च सूतो
बद्धंगतो वा भसितस्वरूपः ।
स राजिकापादमितो निहन्ति
दुस्साध्यरोगान्द्रुतिबद्धनामा ॥ ७५ ॥

पूर्वोक्त विधिके अनुसार पारेकी बाह्यद्रुति करके फिर किसी ओषधिके सहयोगसे पारेको आबद्ध करे अथवा पारेकी

भस्म करे । इस प्रकारके पारेको द्रुतिबन्ध कहते हैं । द्रुतिबद्ध पारा, चौथाई राईके बराबर प्रतिदिन सेवन करनेसे कृच्छ्र-साध्य रोगोंकोभी नष्ट करदेता है ॥ ७५ ॥

समाभ्रजीर्णः शिवजस्तु बालः
संसेवितो योगयुतो जवेन ।
रसायनो भाविगदापहश्च
सोपद्रवारिष्टगदान्निहन्ति ॥ ७६ ॥

पारेको समानभाग अभ्रककी भस्मके साथ जारण करे । इस क्रियाको बालबद्ध कहते हैं । बालबद्ध पारा विविध अनु-पानोंके साथ सेवन करनेसे रसायनके समान उत्तम गुण करता है । एवं सम्पूर्ण उपद्रव और अरिष्टकारक लक्षणोंसे युक्त व्याधियोंको तथा भविष्यमें होनेवाले रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ७६ ॥

हरोद्भवो यो द्विगुणाभ्रजीर्णः
स स्यात्कुमारो मिततन्दुलोऽसौ ।
त्रिःसप्तरात्रैः खलु पापयोग-
संघातघाती च रसायनं च ॥ ७७ ॥

पारेको दुगुनी अभ्रक भस्मके साथ जारण करे । इस प्रकार जारण किये हुए रसको कुमारबद्ध कहते हैं । इस पारेको नित्य एक एक चावल परिमाण २१ दिनतक सेवन करनेसे पापकर्मजन्य श्वेतकुष्ठादि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं । और स्वस्थ मनुष्यको इसके सेवनसे रसायनके समान गुण प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥

चतुर्गुणव्योमकृताशनोऽसौ
रसायनाढ्यस्तरुणाभिधानः

स सप्तरात्रात्सकलामयघ्नो
रसायनो वीर्यबलप्रदाता ॥ ७८ ॥

चौगुनी अभ्रककी भस्मके साथ जारण किये हुए पारेको तरुणबन्ध कहते हैं । वह समस्त रसायनोंमें उत्तम होताहै । उसको सात दिनतक सेवन करनेसे सब रोग दूर होजाते हैं । तरुण पारा शरीरमें बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला और उत्तम रसायन है ॥ ७८ ॥

यस्याभ्रकः षड्गुणितो हि जीर्णः
प्राप्ताग्निसख्यः स हि वृद्धनामा ।
देहे च लोहे च नियोजनीयः
शिवादृते कोऽस्य गुणान्प्रवक्ति ॥ ७९ ॥

छै गुने अभ्रकके साथ जारण किया हुआ पारा अग्निमें नहीं उडता और वह अग्निके समान प्रकाशमान होजाता है । उसको वृद्धबन्ध कहते हैं । वृद्धबन्ध पारेको शरीरोपयोगी प्रयोगोंमें और धातुवाद (सोना, चाँदी बनाना) आदि कार्योंमें व्यवहार करना चाहिये । इसके गुणोंको शिवजीके विना और कोई वर्णन नहीं करसकता ॥ ७९ ॥

यो दिव्यमूलिकाभिश्च कृतोऽत्यग्निसहो रसः ।
विनाभ्रजारणात्स स्यान्मूर्त्तिबन्धो महारसः ॥ ८० ॥
अयं हि जार्यमाणस्तु नाग्निना क्षीयते रसः ।
योजितः सर्वयोगेषु निरुपम्यफलप्रदः ॥ ८१ ॥

जो पारा अभ्रकके विना दिव्य वनौषधियोंके द्वारा जारण किया जाता है, वह अत्यन्त तीक्ष्ण अग्निको सहन करनेवाला (अर्थात् अग्निमें न उडनेवाला) होताहै । उसको मूर्त्ति

बन्ध कहते हैं । मूर्त्तिबन्ध पारेको चाहे कितनी वार अग्निमें जारण किया जाय, परन्तु वह रत्तीभरभी क्षीण नहीं होता यह महारस रोगोंके नाश करनेमें आश्चर्यजनक गुण दिखाता है । इसलिये इसको सब प्रकारके योगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

शिलातोयमुखैस्तोयैर्बद्धोऽसौ जलबद्धवत् ।
स जरारोगमृत्युघ्नः कल्पोक्तफलदायकः ॥ ८२ ॥

शिलोदक, विषोदक, अमृतोदक आदि रसोंके द्वारा बद्ध किये हुए पारेको जलबद्ध कहते हैं । जलबद्ध पारा जरा (बुढापा) सकल रोग और मृत्युको दूर करता है तथा रसायनकल्पमें कहे अनुसार फल प्रदान करताहै ॥ ८२ ॥

केवलो योगयुक्तो वा ध्मातः स्याद्गुटिकाकृतिः ।
अक्षीणश्चाग्निबद्धोऽसौ खेचरत्वादिकृत्स हि ॥८३॥

एकमात्र पारेको फूँकनेसे अथवा किसी औषधिके साथ मिलाकर अग्निमें फूँकनेसे जब पारेकी गोलीसी बनजाय और वह उडे नहीं और न क्षीण हो तो उसे अग्निबद्ध रसकहते हैं । उस पारेकी गोलीको मुखमें रखनेसे आकाशमें उडनेकी शक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ८३ ॥

विष्णुक्रान्ताशशिलताकुम्भीकनकमूलकैः ।
विशालानागिनीकन्दव्याघ्रपादीकुरण्टकैः ॥ ८४ ॥
वृश्चिकालीमशुण्डीभ्यां हंसपाद्या सहासुरैः ।
अप्रसूतगवां मूत्रैः पिष्टं वालुकके पचेत् ॥ ८५ ॥
पक्वमेवं मृतैर्लोहैर्मर्दितं विपचेद्रसम् ।
यन्त्रेषु मूर्च्छा सूतानामेष कल्पः सुसंस्कृतः ॥८६॥

विष्णुक्रान्ता (कोयल), सोमलता, जलकुम्भी, धतूरेकी जड, इन्द्रायन, नागदौनका कन्द, बडी कटेरी, पीले फूलका पियावाँसा, बिछुआ घास, हाथीशुण्डा, हंसपदी और राई इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर विना व्याही (अर्थात् गर्भवती) गायके मूत्रमें खरल करके मूषा बनालेवें। उस मूषाके भीतर शुद्ध पारा भरकर सन्धियोंको बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे । फिर उसको वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे। इसके पश्चात् पारेकी बराबर सातों धातुओंकी भस्म मिलाकर और उपर्युक्त औषधियोंके रसमें घोटकर उसको फिर पूर्वोक्त विधिसे वालुकायन्त्रमें पकावे । इस प्रकारसे अन्य यन्त्रोंमेंभी पारेको मूर्च्छित किया जासकता है । इस क्रियाको सुसंस्कृत अथवा सूतमूर्च्छा कहते हैं ॥ ८४-८६ ॥

हेम्ना वा रजतेन वा सहचरो ध्मातो व्रजत्येकता-
मक्षीणो निबिडो गुरुश्च गुटिकाकारश्चदीर्घोज्वलः ।
चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहतो घृष्टो न मुञ्चेन्मलं
निर्गन्धो द्रवति क्षणात्स हि महाबन्धाभिधानो रसः ८७

जो पारा सुवर्णके अथवा चाँदीके साथ मिलाकर फूँकनेसे एक रूप होजाय, और अग्निमें डालनेसे उड नहीं, तथा सूक्ष्म परमाणुओंसेभी बंधनको प्राप्त होजाय, वजनमें भारी हो, गोलीके समान गोल २ होजाय अत्यन्त उज्ज्वलहो, भस्म करनेपर नमकके समान चूरचूर होजाय और जिसको घोटने पर मैल न निकले तथा गन्धरहित हो और अग्निमें तपानेसे तत्काल पिघल जाय उसको महाबन्ध रस कहते हैं ॥ ८७ ॥

जलकाबन्ध (स्त्रीद्रावण) ।

सूते गर्भनियोजितार्धकनके पादांशनागेऽथवा

पञ्चांशुष्टकशाल्मलीकृतमदश्लेष्मातबीजैस्तथा ॥
तद्वत्तोजिनिकोलकाख्यफलजैश्चूर्णं तिलं पत्रकं
तप्ते खल्वतले निधाय मृदिते जाता जलूका वरा ८८।
सैषा स्यात्कपिकच्छुरोमपटले चन्द्रावती तैलके
चन्द्रे टंकणकामपिप्पलिजले स्विन्ना भवेत्तोजिनी ।
तप्ते खल्वतले विमर्द्य विधिवद्यत्नाद्वटी याकृता
सा स्त्रीणां मददर्पनाशनकरी ख्याता जलूका वरा ८९

शुद्ध पारेमें आधाभाग सुवर्ण और चौथाई भाग सीसा मिला-कर गलावे । फिर उसको तप्त खल्वमें डालकर और उसमें सफेद अण्डीके बीज, सेमलके फूल,' अथवा गोंद, लसौडेके बीज, मालकाँगनी, बेरोंकी गुठलीकी गिरी, तिल और तमा-लपत्र इन सब औषधियोंको पारेसे सोलहवाँ भाग डालकर खूब मर्दनकरके उत्तम प्रकारकी जलूका तैयार करे । उक्त-विधिसे तैयार की हुई जलूकामें पारेसे सोलहवाँ भाग कौंछके बीजोंको रुआँ और छिलके सहित डालकर बावचीके तेलमें एक दिनतक खरलकरे । और दूसरे दिन कपूरके जलमें खर-लकरे । फिर गोलासा बनाकर भोजपत्रमें लपेट लेवे । पश्चात् एक हाँडीमें सुहागा और छोटी पीपलका स्वरस वा क्वाथ भर-कर उसमें उक्त गोलेको अधर लटकाकर तीन घंटेतक स्वेद देवे । फिर तप्त खरलमें डालकर मालकांगनीके रससें मर्दन करके वटिका बनालेवे । इस प्रकारसे तैयार की हुई उत्तम जलूका स्त्रियोंके कामदेवके मदको नाश करती है ॥८८॥८९॥

बाल्ये चाष्टांगुला योज्या यौवनेच दशांगुला ।
द्वादशैव प्रगल्भानां जलौका त्रिविधा मता ॥९०॥

बालास्त्रीके आठ अँगुलकी, युवतिस्त्रीके दश अँगुलकी और प्रौढास्त्रीके बारह अँगुल लम्बी जलूका योनिस्थानमें रखे, फिर प्रसंग करे तो स्त्री तत्काल द्रवीभूत होती है। इसतरह तीन प्रकारकी जलूका कही गई है ॥ ९० ॥

धृत्वा सूतमुखे पात्रं मेषीक्षीरं प्रदापयेत् ।
स्थापयेदातपे तीव्रे वासराण्येकविंशतिः ॥ ९१ ॥
द्वितीयात्र मया प्रोक्ता जलौका द्रावणे हिता ।
पुरुषाणां स्थिता मूर्ध्नि द्रावयेद्वनिताकुलम् ॥ ९२॥

सुख किये हुए पारेको एक मिट्टीके पात्रमें रखकर उसमें भेंडका दूध भरकर तीक्ष्ण धूपमें रखदेवे। जब वह सूखजाय तब दुबारा दूध भरदे। इस प्रकार २१ दिन तक प्रतिदिन भेंडके दूधकी भावना देवे। फिर उसका गोलासा बनाकर जलूका बनालेवे। यह जलूका स्त्रियोंके द्रावणकरनेमें बहुत ही उपयोगी है। इसको पुरुष सिरपर रखकर प्रसंगकरे तो सैकडों स्त्रियां द्रवीभूत होजाती हैं। यह दूसरी जलूका है ॥९१॥९२॥

मुनिपत्ररसश्चैव शाल्मलीवृन्तवारि च ।
जातीमूलस्य तोयञ्च शिंशपातोयसंयुतम् ॥ ९३ ॥
श्लेष्मातकफलं चैव त्रिफलाचूर्णमेव च ।
कोकिलाक्षस्य चूर्णं च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ९४ ॥
जलूका जायते दिव्या रामाजनमनोहरा ।
सा योज्या कामकाले तु कामयेत्कामिनी स्वयम् ९५

अगस्तियाके पत्तोंका रस, सेमलकी छालका क्वाथ; चमेलीकी जडका क्वाथ, सीसमकी छालका क्वाथ, लसौडे, त्रिफलेका चूर्ण और तालमखानेका चूर्ण इन प्रत्येकके साथ पारेको

खरलमें डालकर एक एक दिनतक मर्दन करे। फिर उसकी उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार जलूका बनालेवे । यह जलूका अत्युत्तम और स्त्रियोंके मनको प्रसन्न करनेवाली है । इसको प्रसंग करनेसे पहले स्त्रीकी योनिमें रखनेसे स्त्री स्वयं कामुकी होजाती है ॥ ९३-९५ ॥

त्रिफलाभृंगमहौषधमधुसर्पिश्छागदुग्धगोमूत्रे ।
नागं सप्तनिषिक्तं समरसजारितं जलूकास्यात्॥९६॥

त्रिफलेका क्काथ, भाँगरेका स्वरस, सोंठका क्काथ, शहद, घी बकरीका दूध और गोमूत्र इन प्रत्येकमें सीसेका अग्निमें तपा तपाकर एक एक बार बुझावे । फिर उस सीसेको समान भाग पारेमें मिलाकर जारण करे। पश्चात् उसकी उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार जलका बनाकर व्यवहार करनेसे अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥

भानुस्वरादिनसंख्याप्रमाणसूतं गृहीतदीनारम् ।
अंकोलराजवृक्षककन्धारसतश्च शोधनं कुर्यात् ९७॥
शशिलेखावरवर्णी सकोकिलापामार्गकनकानाम् ।
चूर्णैः सहैकविंशतिदिनानि संमर्दयेत्सम्यक् ॥९८॥
निशायाः काञ्जिकं यूषं दत्त्वा योनौ प्रवेशयेत् ।
बालमध्यमवृद्धासु योज्या विज्ञायतत्क्रमात् ॥९९॥
नीरसानामपि नृणां योषा स्यात्संगमोत्सुका १००॥

१९ भाग पारेमें १ भाग सुवर्ण मिलाकर दोनोंको खरलमें डाल अंकोलके बीज, अमलतासका गूदा, और घीग्वार इन प्रत्येकके रस वा क्काथमें एक एक दिनतक खरलकरके शुद्ध करे। पश्चात् बाबची, मालकांगनी, तालमखाना, चिराचिटा

और धतूरा इन सबके समानभाग मिश्रित चूर्णके साथ तथा हल्दीके क्वाथ और काँजीके साथ पारेको २१ दिनतक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे, फिर उपर्युक्त प्रमाण अनुसार जलूका बनाकर सुखालेवे और बाला, युवति, वृद्धा आदि स्त्रियोंकी योनीमें क्रम सार प्रविष्ट करे तौ स्त्रियें नीरस (विषयवासनासे रहित) पुरुषोंके साथभी प्रसंग करनेको उत्सुक होती हैं॥ ९७–१०० ॥

रसभागं चतुष्कं च वंगभागं च पंचमम् ।
सुरसारससंयुक्तं टंकणेन समन्वितम् ॥ १०१ ॥
त्रिदिनं मर्दयित्वा च गोलकं तं रसोद्भवम् ।
लिंगाग्राद्योनिनिक्षिप्तं यावदायुर्वशंकरम् ॥ १०२ ॥

चार भाग पारा, पाँच भाग बंग और पाँच भाग सुहागा तीनोंको तुलसीके रसमें तीन दिनतक घोटकर गोली बनालेवे। उस गोलीका लिंगके अग्रभागमें लेप करके प्रसंग करे तो स्त्री जीवनपर्यन्त वशीभूत होजाती है ॥ १०१–१०२ ॥

कर्पूरसूरणसभृङ्गसमेघनादैः
नागं निषिच्य तु मिथो वलयेद्रसेन ।
लिंगस्थितेन वलयेन नितम्बिनीनां
स्वामी भवत्यनुदिनं स तु जीवहेतुः ॥ १०३ ॥

सीसेको अग्निपर पिघलाकर कपूर, जिमीकन्द, भाँगरा और चौलाई इन प्रत्येकके रसमें एक एक बार बुझावे। फिर सीसेकी बराबर पारा मिलाकर उसका एक कडा बनालेवे। उस कडको लिंगमें धारणकर यदि पुरुष स्त्रीसे प्रसंग करे तो स्त्रियोंको अपना पति हमेशा प्राण समान प्रिय मालूम होता है ॥ १०३ ॥

टंकणपिप्पलिकाभिः सूरणकर्पूरमातुलुंगरसैः ।
कृत्वा स्वलिंगलेपं योनिं विद्रावयेत्स्त्रीणाम् ॥ १०४ ॥

पारेकी भस्मको सुहागा, पीपल, जिमीकन्द, कपूर और बिजौरा नीबू इन सबके रसमें एक एक बार भावना देकर घोटे, जब वह घुटते २ कज्जलके समान होजाय तब अपने लिंगपर लेप करके प्रसंग करे । इससे स्त्रियोंकी योनि द्रवीभूत होजाती है ॥ १०४ ॥

अग्न्यावर्त्तितनागे हरबीजं निक्षिपेत्ततो द्विगुणम् ।
मुनिकनकनागवल्लीरसेन सिंच्याच्च तन्मध्यम् ॥ १०५ ॥
तक्रेण मर्दयित्वा तीक्ष्णेन मदनवलयं कुर्यात् ।
रतिसमये वनितानां रतिगर्वविनाशनं कुरुते ॥ १०६ ॥

सीसेको अग्निपर गलाकर उसमें दुगुना पारा मिलाकर अगस्तिया, धतूरा, और पानोंके रसमें क्रमसे एक एक बार बुझावे । फिर लोहेके खरलमें डालकर तीक्ष्णलोहके मुसलेसे तक्रके साथ अच्छे प्रकारसे घोटकर उसका कडा बनालेवे । उस कडेको प्रसंगके समय लिंगमें पहरकर विषय करे तो स्त्रियोंकी कामेच्छाका मद नष्ट होजाता है ॥ १०५-१०६ ॥

व्याघ्रीबृहतीफलरससूरणकन्दं च चणकपत्राम्लम् ।
कपिकच्छुवज्रवल्लीपिप्पलिकामम्लिकाचूर्णम् ॥ १०७ ॥
अग्न्यावर्तितनागं नववारं मर्दयेदिमैर्द्रव्यैः ।
स्मरवलयं कृत्वैतद्वनितानां द्रावणं कुरुते ॥ १०८ ॥

सीसेको अग्निमें पिघलाकर कटेरीके रसमें बुझावे और उसीके रसमें एक दिन तक घोटे । फिर दूसरे दिन बडी कटेरीके फलोंके रसमें बुझाकर उसी रसमें खरल करे । पश्चात्

जिमीकन्द, चनेके शाकका खार, कौंचके बीज, हडसंहारी-लता, पीपल, इमली और चूना इन औषधियोंके रस अथवा क्वाथमें एक एक बार बुझावे और एक एक बार इन सबके रस वा क्वाथमें खरल करे । इस प्रकार नौ औषधियोंके रसमें नौ बार बुझाकर नौ बार खरल करनेके बाद उस सीसेका कडा बनालेवे । उस कडेको उपस्थेन्द्रियमें पहरकर संगम करनेसे स्त्रियोंके द्रावण होता है ॥ १०७–१०८ ॥

पारेके भस्म करनेकी विधि ।

पलाशबीजकं रक्तजम्बीराम्लेन सूतकम् ।
सजीवं मर्दितं यन्त्रे पाचितं म्रियते ध्रुवम् ॥ १०९ ॥
खरमंजरिबीजान्वितपुष्करबीजैः सुचूर्णितैः कल्कम् ।
कृत्वा सूतं पुटयेद् दृढमूषाया भवद्भस्म ॥ ११० ॥
काकोदुम्बरिकाया दुग्धेन सुभावितो हिंगुः ।
मर्दनपुटनविधानात्सूतं भस्मीकरोत्येव ॥ १११ ॥

सजीव पारा और ढाकके बीज (ढकपन्ना) दोनोंको समान भाग लेकर लाल जम्बीरी नींबू (सन्तरे) के रसमें घोटकर गोलासा बनाकरके सम्पुटमें बन्दकर वालुका यन्त्रमें पकावे तो पारा अवश्य भस्म होजाता है । अथवा सफेद चिरचि-टेके बीज और पोहकर मूलके बीज इन दोनोंके चूर्णको पारेके बराबर लेकर उसमें पारा डालकर कल्क बनावे । फिर उसका गोलासा बनाकर मजबूत मूषाके सम्पुटमें बन्द करके पुटदेवे तो पारेकी भस्म होजाती है । अथवा कठूमरके दूधमें हींगका कल्क बनाकर उसकी दो मूषा बनावे । उन दोनों मूषाओंके सम्पुटमें पारेको बन्दकर उसको मट्टीकी घडियामें रखकरके कपरौटीकर हलकी अग्नि देवे तो पारेकी भस्म होजाती है ॥ १०९–१११ ॥

देवदालीं हरिक्रान्तामारनालेन पेषयेत् ।
तद्द्रवैः सप्तधा सूतं कुर्यान्मर्दितमूर्च्छितम् ॥ ११२ ॥
तत्सूतं खर्परे दद्याद्दत्त्वा दत्त्वा तु तद्रसम् ।
चुल्ल्युपरि पचेच्चाह्नि भस्म स्याल्लवणोपमम् ११३ ॥

देवदाली (बंदाल) और विष्णुक्रान्ता दोनोंको काँजीमें पीसकर स्वरस निकाललेवे, उस स्वरसमें पारेको सातबार मर्दन करके मूर्च्छित करे । पश्चात् उस पारेको मिट्टीके खीपरेमें डालकर चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे अग्नि जलावे और खीपरेमें उपर्युक्त दोनों औषधियोंका थोडा २ स्वरस डालता जाय । इस प्रकार बारह घंटेतक अग्नि देनेसे नमकके समान सफेद रंगकी पारेकी भस्म होती है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

अपामार्गस्य बीजानि तथैरण्डस्य चूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं पारदे देयं मूषायामधरोत्तरम् ॥ ११४ ॥
रुद्ध्वा लघुपुटैः पच्याच्चतुर्भिर्भस्मतां नयेत् ।
कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दे गर्भे नारीपयःप्लुते ॥ ११५ ॥
सप्तधा स्वेदितः सूतो म्रियते गोमयाग्निना ।
अंकोल्लस्य शिफावारिपिष्टं खल्वे विमर्दयेत् ॥ ११६ ॥
सूतं गंधकसंयुक्तं दिनान्ते त निरोधयेत् ।
पुटयेद्भूधरे यन्त्रे रात्र्येकेन मृतो भवेत् ॥ ११७ ॥
वटक्षीरेण सूताभ्रौ मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ।
पाचयेत्तेन काष्ठेन भस्मीभवति तद्रसः ॥ ११८ ॥

चिरचिटेके बीज और अण्डके बीजोंकी मींग दोनोंको सम भाग लेकर चूर्ण करले फिर एक मूषामें नीचे ऊपर वह चूर्ण

बिछाकर बीचमें पारा रखदे और कपरौटी करके लघुपुटमें पकावे । इस प्रकार चार बार पुट देनेसे पारेकी भस्म होजाती है ॥ अथवा कडवी तोंबी लेकर उसके बीचमें टांकी लगाकर एक छिद्र कर लेवे, उसमें पारेको भरकर ऊपरसे इतना थोहरका दूध भरदे जिससे पारा डूबजाय । फिर उस छिद्रको काटेहुये तोंबीके टुकडेसे ढककर कपरौटी करके पांच सात आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार सात बार स्वेद देनेसे पारेकी उत्तम भस्म होती है ॥ या शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समभाग लेकर कज्जली करले, फिर उसको खरलमें डालकर अंकोलकी जडके रस वा क्वाथमें एक दिनतक खरल करे और गोला बनाकर सम्पुटमें बन्द करके कपरौटी कर सुखा लेवे । फिर उसको भूधरयन्त्रमें रखकर १ रातभर पकावे तो पारेकी उत्तम भस्म होती है । अथवा पारा और अभ्रकभस्म दोनोंको समानभाग लेकर बडके दूधके साथ नौ घंटेतक खूब खरल करे फिर उसको मिट्टीके खीपरेमें डालकर और चूल्हेपर चढाकर बडकी लकडियोंके द्वारा पकावे और बडकी लकडीसेही उसे चलाता रहे तो पारा भस्म हो जाता है ॥ ११४-११८ ॥

अथातुरो रसाचार्यं साक्षाद्देवं महेश्वरम् ।
साधितं च रसं शंखदन्तवेण्वादिधारितम् ॥ ११९॥
अर्चयित्वा यथाशक्ति देवगोब्राह्मणानपि ।
पर्णखण्डे धृतं सूतमद्याद्योग्यानुपानतः ॥ १२० ॥

इसके अनन्तर रोगी मनुष्य रसाचार्य साक्षाद्देव महादेवजी और शंख हाथीदांत अथवा बाँस आदिके पात्रोंमें रक्खेहुए सिद्ध रसका यथाविधि पूजन करके देवता, गौ और ब्राह्मणोंका भी यथाशक्ति दान मानादिक द्वारा पूजन सत्कार

करे । फिर पारेकी भस्मको पानमें रखकर अथवा अपने रोग, स्वभाव और बलाबलके अनुसार उचित अनुपानके साथ सेवन करे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

पारदका सेवन करनेपर पथ्य ।

घृतसैन्धवधान्याकजीरकार्द्रकसंस्कृतम् ।
तण्डुलीयकधान्याकपटोलालम्बुषादिकम् ॥ १२१ ॥
गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि ।
हंसोदकं मुद्गरसः पथ्यवर्गः समासतः ॥ १२२ ॥

पारेका सेवन करनेवाले मनुष्यको घी, सैंधानमक, धनियाँ, जीरा, अदरख आदि मसालोंके द्वारा संस्कार किये हुए पदार्थ, चौलाईका शाक, धनियाके शाक, परवल, रामतोरई आदि शाक, गेहूँ, पुराने शालिधानोंके चावल, गायका घी, दूध, दही, हंसोदक (धूप और चांदनीमें रखा हुवा) और मूँगका यूष ये सब पदार्थ सेवन करने चाहिये । यह पथ्यवर्ग यहाँ संक्षेपसे कहागया है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

पारद सेवन करनेपर अपथ्य ।

बृहती बिल्वकूष्माण्डं वेत्राग्रं कारवेल्लकम् ।
माषं मसूरं निष्पावं कुलित्थं सर्षपं तिलम् ॥ १२३ ॥
लंघनोद्वर्तनस्नानताम्रचूडसुरासवान् ।
आनूपमांसं धान्याम्लं भोजनं कदलीदले ॥
कांस्ये च गुरुविष्टम्भि तीक्ष्णोष्णं च भृशं त्यजेत् ॥ १२४ ॥

बडी कटेरी, वेल, पेठा, बेंतके अंकुर, करेला, उडद, मसूर, मटर, कुलथी, सरसों, तिल ये सब पदार्थ, तथा लंघन, उद्वर्त्तन (उबटन) स्नान मुर्गेका मांस, मद्य, आसव, अनूपदेशके

जीवोंका मांस, काँजी केलेके पत्तेमें और कांसीके वर्त्तनमें भोजनकरना, गुरुपाकी (भारी), विष्टम्भकारक, अत्यन्त तीक्ष्ण और अत्यन्त गरम ये समस्त पदार्थ और क्रियायें पारद सेवन करनेवाले मनुष्यको त्याग देनी चाहिये॥१२४॥

कंटारीफलकाञ्जिकञ्च कमठस्तैलं तथा राजिकां
निम्बूकं कतकं कलिंगकफलं कूष्माण्डकं कर्कटी ।
केकी कुक्कुटकारवेल्लकफलं कर्कोटिकायाःफलं
वृन्ताकं च कपित्थकं खलु गणः प्रोक्तःककारादिकः१२५
देवीशास्त्रोदितः सोऽयं ककारादिगणो मतः ।
शास्त्रान्तरविनिर्दिष्टः कथ्यतेऽन्यप्रकारतः ॥१२६॥

कटेरीके फल, कांजी, सालईवृक्षका शाक अथवा कछुएका मांस, तेल, राई, नींबू, निर्मली, तरबूज, पेठा, ककडी, मोर और मूर्गेका मांस, करेला, बाँझककोडा, बैंगन और कैथ इन समस्त पदार्थोंके समूहको ककारादिगण कहते हैं। यह ककारादि गण देवीशास्त्रमें प्रतिपादन कियागया है। अब नीचे अन्यान्य शास्त्रोंमें कहे हुए ककारादि गणका अन्य प्रकारसे वर्णन किया जाता है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

कंगुः कन्दुककोलकुक्कुटकलक्कोडाः कुलत्थास्तथा
कंटारी कटुतैलकृष्णगलकः कूर्मः कलायः कणा ।
कर्कारुंच कटिल्लकं च कतकं कर्कोटकं कर्कटी
काली कांजिकमेष कादिकगणः श्रीकृष्णदेवोदितः१२७
यस्मिन् रसे च कण्ठोक्त्या ककारादिर्निषेधितः ॥
तत्र तत्र निषेद्धव्यं तदौचित्यमतोऽन्यतः ॥ १२८ ॥

कंगनी, कन्दूरी, बेर; मुर्गी, मोर और सुअरका मांस, कुलथी कटेरीके फल, सरसोंका तेल, काली गलक नामक मछली, कछुएका मांस, मटर, पीपल, पेठा, करेला, निर्मलीके फल, बांझककोडा, ककडी, अडहर और कांजी यह ककारादि गण श्रीकृष्णदेव नामक आचार्यने कहा है । जिस रसमें ककारादि गणके पदार्थोंके सेवनका निषेध किया गया हो, उस २ रस पर उपर्युक्त ककारादि गणके पदार्थ सेवन नहीं करने चाहिये और उनके साथ अन्यान्य गुणहीन पदार्थोंको भी त्यागदेना चाहिये ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

पारदजन्य विकारोंको शमन करनेके उपाय ।

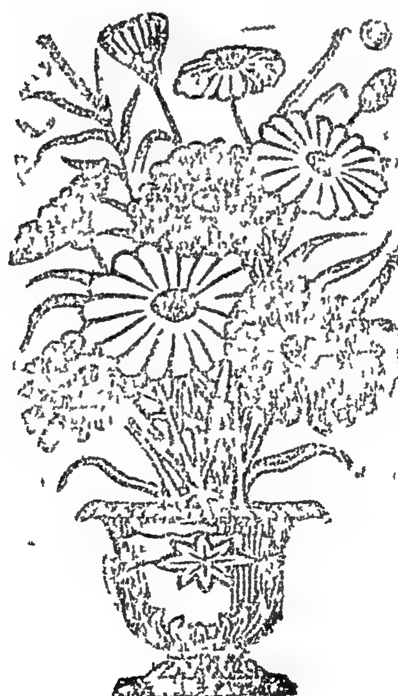
उद्गारे सति दध्यन्नं कृष्णमीनं सजीरकम् ।
अभ्यङ्गमनिलक्षोभे तैलैर्नारायणादिभिः ॥ १२९ ॥
अरतौ शीततोयेन मस्तकोपरि सेचनम् ।
तृष्णायां नारिकेलाम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ॥ १३० ॥
द्राक्षादाडिमखर्जूरकदलीनां फलं भजेत् ।
रसवीर्यविवृद्ध्यर्थं दधिक्षीरेक्षुशर्कराः ॥ १३१ ॥
शीतोपचारमन्यच्च रसत्यागविधौ पुनः ।
भक्षयेद्बृहतीं बिल्वं सक्तुत्साधारणो विधिः ॥१३२॥

पारदभस्म सेवन करनेवाले मनुष्यको यदि उबकाई या डकारें आती हों तो दही भात अथवा जीरेसे बघारी हुई काली मछली भक्षण करनी चाहिये । शरीरमें वातजनित कोई उपद्रव होनेपर नारायण आदि तेलोंकी मालिश करनी चाहिये । अरुचि या किसी प्रकारकी मनमें ग्लानि होनेपर शिरके ऊपर शीतल जलकी धारा छोडनी चाहिये । यदि तृषा और

शोष होगया हो तो नारियलका जल खाँड डालकर पीना चाहिये और मूँगका यूष सेवन करना चाहिये । पारेका सेवन करनेपर दाख, अनार, खजूर, केला, दही, दूध, ईखका रस, खाँड आदि पदार्थोंके सेवन और अन्यान्य शीतोपचार करनेसे पारेके वीर्यकी वृद्धि होती है और रोगीको विशेष लाभ होता है । जब पारेका सेवन त्यागना हो तब एकबार बडी कटेरीके फल और बेल खाना चाहिये । फिर जो जो पदार्थ अपनी प्रकृतिके अनुकूल पडता जाय उसीके अनुसार साधारण रूपसे आहार विहार करे ॥ १२९-१३२ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये वैद्यराज शंकरलाल-जन कृत भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति पूर्वखण्डं समापितम् ।



अथ उत्तरखण्डः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

ज्वरचिकित्सा ।

रोगगणना ।

ज्वरस्य रक्तपित्तस्य कासस्य श्वासहिध्मयोः ।
वैस्वर्यस्य क्षयस्यापि तथारोचप्रसेकयोः ॥ १ ॥
छर्दिंहृद्रोगयोश्चैव तृष्णामद्योद्भवार्शसाम् ।
उदावर्तातिसाराणां ग्रहण्यर्तिप्रवाहिणोः ॥ २ ॥
विषूच्या वह्निमान्द्यस्य मूत्रकृच्छ्राश्मरीरुजाम् ।
मेहस्य सोमरोगस्य पिटिकानां च विद्रधेः ॥ ३ ॥
वृद्धिगुल्मादिरोगाणां शूलानामुदरस्य च ।
पाण्डुशोफविसर्पाणां कुष्ठश्वित्रनभस्वताम् ॥ ४ ॥
वातास्रस्यावृतानां च वन्ध्यानां गर्भिणीरुजाम् ।
सूतिकाबालरोगाणामुन्मादेऽपस्मृतावपि ॥ ५ ॥
नेत्ररोगे कर्णरोगे नासारोगास्यरोगयोः ।
शिरःसंजातरोगेषु व्रणे भङ्गे भगंदरे ॥ ६ ॥
ग्रंथ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे विषेषु च ।
जरायास्त्वनपत्यानां बीजपोषणहेतवे ॥ ७ ॥
परिपाट्याऽनया सर्वं रोगाणां हि चिकित्सनम् ।
रसलोहविषैरत्र योगैर्वक्ष्ये यथागमम् ॥ ८ ॥

ज्वर, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, हिचकी, स्वरभङ्ग, क्षय, अरुचि, प्रसेक (मुँहमें पानीका भरआना), वमन, हृदयरोग, तृषा, मद्यजनित विकार, ववासीर, उदावर्त, अतिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका, विषूचिका, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, सोमरोग, पिटिका, विद्रधि, अण्डवृद्धि, गुल्म, शूल, उदररोग, पाण्डुरोग, शोथ, विसर्प, कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, वातरोग, वातरक्त, वन्ध्यत्व दोष, गर्भिणीके रोग, प्रसूत रोग, बालरोग-उन्माद, अपस्मार, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासिकाके रोग, मुखके रोग, सिरके रोग, व्रणरोग, अस्थिका टूटना, भगन्दर, गलगण्ड, गण्डमाला आदि ग्रन्थिरोग, क्षुद्ररोग, उपदंश आदि-गुह्यरोग, विषविकार, वृद्धावस्थाके रोग और सन्तानका न होना इत्यादि रोगोंके उपचार तथा रसायन बाजीकरण आदि वीर्यकी वृद्धि करनेके उपाय, एवं रस, धातु और विषके प्रयोग शास्त्रोक्त विधिसे क्रमशः आगे कहेजायेंगे ॥ १-८ ॥

ज्वरचिकित्सा ।

वातज्वरके लक्षण ।

रोमाञ्चकंपौ वदने मधुत्व-
मुज्जृंभणं मस्तकतोददाहौ ।
वातज्वरस्योक्तमिदं हि लक्ष्म
भुक्तोत्तरः स्याद्यदि शश्वदेव ॥ ९ ॥

शरीरमें रोमाञ्च और कम्पका होना, मुखमें मधुरता होना, जमुहाइयोंका आना, शिरमें तोडनेकीसी पीडा और दाहका होना और भोजनकरनेके पश्चात् निरन्तर ज्वरका आना ये सब वातज्वरके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

विरेकशोषास्यकटुत्वतीव्र-
तापप्रलापभ्रममूर्छनानि ।

एतानि पित्तज्वरलक्षणानि
वमिः सतृष्णांगविदाहिता च ॥ १० ॥

अतिसार (दस्तों) का होना, गलेमें शोष, मुखमें कडवापन, तीव्रज्वर, प्रलाप (बकवाद), भ्रम, मूर्च्छा, वमन, तृष्णा और अंगोंमें दाह होना ये सब पित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफज्वरके लक्षण ।

कासश्वासौ मुखे जाड्यं माधुर्यं बहुनिद्रता ।
प्रस्वेदः स्वल्पदाहश्च श्लेष्मजज्वरलक्षणम् ॥ ११ ॥

खाँसी, श्वास, मुखमें जडता और मधुरता, अधिक निद्राका आना, पसीनेका अधिक आना और कुछ २ दाहका होना ये कफजन्यज्वरके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

मिश्रितदोषोंके लक्षण ।

मिश्रितं लक्षणं यत्तु द्वयोस्त्रिषु भवेच्च तत् ॥ १२ ॥

जिसमें दो दो दोषोंके लक्षण मिले हुए हों उसको द्विदोषज; यथा वातपित्तज्वर, वातकफज्वर और पित्तकफज्वर जानना एवं जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण परस्पर मिले हुए हों उसको त्रिदोषज अथवा सान्निपातज्वर जानना चाहिये ॥१२॥

त्रैलोक्यसुन्दररस, अथवा पर्पटीरस ।

विमर्दिताभ्यां रसगंधकाभ्यां
नीरेण कुर्यादिह गोलकं तम् ।
भाण्डे नवीने विनिवेश्य पश्चा-
त्तद्गोलकस्योपरि ताम्रपात्रम् ॥ १३ ॥
सार्धं मुहूर्तं विनिरुध्य धीमा-
नुद्दीपयेद्दीप्तकृशानुनाऽस्य ।

अधस्ततः सिद्ध्यति पर्पटीयं
नवज्वरारण्यकृशानुमेघः ॥ १४ ॥
विलिप्य पूर्वं रसनां च तालु-
देशं च सिंधूद्भवजीरकार्द्रैः ।
वल्लोन्मितां चार्द्रकतोयमिश्रा-
मेनां नियोज्य स्थगयेत्पटेन ॥ १५ ॥
घर्मोद्गमो यावदतः परं च
तक्रोदनं पथ्यमिह प्रयोज्यम् ।
कुर्याद्दिनानां त्रितयं यदीत्थं
ज्वरस्य शंकाऽपि तदा भवेत्किम् ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समभाग लेकर कज्ज-ली करलेवे । उस कज्जलीको पानीके साथ घोटकर गोलासा बनाकर मिट्टीकी एक कोरी हॉडीमें रखदेवे और ऊपरसे एक तॉबेका पात्र ढककर सन्धियोंको बन्दकरके कपरौटी करदेवे फिर उसको चूल्हेपर चढाकर तीन घडी तक तीव्र अग्नि देवे । इस प्रकारसे नीचे पर्पटी (पपडी) के समान सिद्ध किये हुए रसको लेकर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखलेवे । यह रस नवीनज्वर रूपी दावाग्निको शमन करनेके लिये मेघकी समान है । प्रथम सैंधानमक जीरा और अदरख ये तीनों चीजें एकत्र पीसकर चटावे, फिर,एक वल्ल (१ रत्ती) परिमाण इस रसको अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करावे और गरम कपडा उढादेवे । जब रोगीको पसीना आकर ज्वर उतर जाय तब उसको मठा मिलाकर भातका पथ्य देवे । इस प्रकार

तीन दिन तक इस रसको सेवन करानेसे ज्वरकी आशंका भी नहीं होसकती ॥ १३-१६ ॥

त्रैलोक्यडम्बररस ।

सूतार्कगन्धचपलाजयपालतिक्ता-
पथ्यात्रिवृच्च विषतिंदुकजान्समांशान् ।
संभाव्य वज्रिपयसा मधुना त्रिवल्ल-
स्त्रैलोक्यडंबररसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ १७ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, चपल धातुकी भस्म, शुद्ध जमालगोटे, कुटकी, हरड, निसोत, और कुचला इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर कपडछान करलेवे । फिर थूहरके दूधमें खरल करके तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसको त्रैलोक्यडम्बर रस कहते हैं । इसकी एक गोली शहदमें मिलाकर देनेसेही नवीनज्वर दूर होजाताहै ॥ १७ ॥

मेघनादरस ।

पादांशकं साररविः समांश-
गंधो विपक्कः स्वकषायपिष्टः ।
रसः क्रमान्माषमितोऽनिलादि-
ज्वरेषु नाम्ना किल मेघनादः ॥ १८ ॥

लोहभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, पारेकीभस्म चौथाई भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर तीनोंको आककी जडके रस वा क्राथमें घोटकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनाले । इस मेघनाद रसकी एक एक गोली वातज्वर आदि नवीन ज्वरोंमें सेवन करनेसे आश्चर्यजनक फल प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥

ज्वरगजहरिरस अथवा ज्वरगजकेसरी ।

दरदजलदयुक्तं शुद्धसूतं च गंधं
प्रहरमथ सुपिष्टं वल्लयुग्मं च दद्यात् ।

ज्वरगजहरिसंज्ञं शृंगवेरोदकेन
प्रथमजनितदाहे क्षीरभक्तेन भोज्यम् ॥ १९ ॥

सिंगरफ, नागरमोथा, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक सबको समान भाग लेकर एक प्रहर (३ घंटे) तक खूब अच्छे प्रकारसे घोटकर सुखालेवे। इसको ज्वरगजहरि अथवा ज्वरगजकेसरी रस कहते हैं। इस रसको २ रत्ती परिमाण लेकर अदरखके रसमें मिलाकर देनेसे नवीन ज्वर दूर होताहै। इसके सेवनसे शरीरमें दाह होनेपर दूध भातका भोजन करावे॥१९॥

दीपिकारस ।

संतप्तसीसभागं च पारदं गंधकं कणाम् ।
समभागं पृथक् तत्र मेलयेच्च यथाविधि ॥ २० ॥
जंबीरस्य रसे सर्वं मर्दयेच्च दिनत्रयम् ।
मेघनादकुमार्योश्च रसे चापि दिनत्रयम् ॥ २१ ॥
दिनद्वयमजामूत्रे गवां मूत्रे दिनत्रयम् ।
भावयेच्च यथायोग्यं तस्मिन्नेतानि दापयेत् ॥ २२ ॥
सैंधवं चित्रकं भागं सौवर्चलवणं तथा ।
तेन संमेलनं कृत्वा भावयेच्च पुनः क्रमात् ॥ २३ ॥
अनेन विधिना सम्यक् सिद्धो भवति तद्रसः ।
शर्कराघृतसंयुक्तं दद्याद्वल्लत्रयं रसम् ॥ २४ ॥
गोधूमश्चौदनं पथ्यं माषसूपं सवास्तुकम् ।
धात्रीफलसमायुक्तं सर्वज्वरविनाशनम् ।
दीपिकारस इत्येष तंत्रज्ञैः परिकीर्तितः ॥ २५ ॥

शुद्ध सीसेकी भस्म, शुद्ध पारा, गन्धक और पीपल चारोंको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले,

फिर सबको एकत्र मिलाकर जम्बीरी नीबूके रसमें तीन दिन-तक खरल करे । फिर चौलाईके रस और घीग्वारके रसमें तीन २ दिनतक, बकरीके मूत्रमें २ दिन और गायके मूत्रमें ३ दिनतक घोटे । इसके पश्चात् उसमें सेंधानमक, चीता और काला नमक प्रत्येकके चूर्णको सीसेकी भस्मके बराबर मिला-कर फिर उपर्युक्त औषधियोंके रस और गोमूत्र आदिमें क्रमसे भावना देवे । इस प्रकारसे यह रस सिद्ध होता है । इसको ३ रत्ती परिमाण लेकर खाँड और घृतमें मिलाकर सेवन करावे । इसपर गेहूँ, भात, उडदकी दाल बथुवेका शाक और आमले आदि पदार्थोंका भोजन करना हितकर है । यह रस सब प्रकारके ज्वरोंका नाश करनेवाला है । तन्त्रशास्त्रके विद्वान् इसको दीपिका रस कहते हैं ॥ २०–२५ ॥

शीतभंजी रस ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं गंधकटंकणम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवल्ल्याद्रवैर्दिनम् ॥ २६ ॥
मर्दयेत्तेनकल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
अंगुलर्धार्धमानेन तं पचेत्सिकताह्वये ॥ २७ ॥
यंत्रे यावत्स्फुटंत्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ २८ ॥
शीतिभंजीरसो नाम चूर्णयेन्मरिचैः समम् ।
माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ २९ ॥
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकाद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ३० ॥

शुद्ध पारा, खर्परिया, हरताल, तूतिया, शुद्ध गन्धक और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर करेलेके रसमें एक दिन-तक घोटे फिर उस कल्कका एक ताँबेके पात्र (कटोरे) के भीतर

आध आध अँगुल परिमाण ऊँचा लेप करके उसके ऊपर ताँबेका दूसरा पात्र ढकदेवे और कपरौटी करके सुखालेवे। पश्चात् उस सम्पुटको बालुका यन्त्रमें रखकर चूल्हेपर चढाकर अग्नि देवे। जब उस यन्त्रकी पीठपर धान रखनेसे फूट निकलें तब उसको पकाहुआ जानकर स्वांग शीतल होनेपर ताम्रपात्रमेंसे औषध निकाल लेवे। फिर उसमें समान भाग मिरचोंका चूर्ण मिलाकर बारीक पीसकर रखलेवे। इसको शीतभंजी रस कहते हैं। यह रस एक २ माता परिमाण पानमें रखकर सेवन करे। इसके सेवनसे एकतरा, दूसरे दिन आनेवाला, तिजारी और चौथिया ये सब प्रकारके तीव्र विषमज्वर तीन दिनमेंही नष्ट होजाते हैं॥ २६-३०॥

दूसरा शीतभंजी रस।

सूततालशिलास्तुल्या मर्दयेन्मर्कटीरसे।
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्य तत्कल्कं कज्जलीकृतम्॥ ३१॥
विपचेद्वालुकायंत्रे यथोक्तविधिना ततः।
दद्यान्मरिचचूर्णेन माषमात्रं भिषग्वरः॥ ३२॥
प्रपिबेदुष्णतोयस्य चुलुकं शीतकज्वरे।
शीतभंजीरसः सोयं शीतज्वरनिवारणः॥ ३३॥

शुद्ध पारा, हरताल और मैनसिल तीनोंको सम भाग लेकर कौंछके बीजोंके रसमें एक दिनतक खरल करे। फिर उस कल्कका उपर्युक्त विधिसे ताँबेके पात्रमें लेपकर बालुकायन्त्रमें रखकरके पूर्वोक्त रीतिसे पकावे। फिर उसमें समान भाग मिरचोंका चूर्ण मिलाकर बारीक पीसकर रखलेवे। वैद्य इस रसको शीतज्वरमें एक २ मासा परिमाण सेवन करावे। इसपर उष्णजलका एक चुल्लू अनुपान करे। यह शीतभंजी नामक रस शीतज्वरको शीघ्र दूर करता है॥ ३१-३३॥

मृतजीवन रस।

कूष्माण्डचूर्णतिलजैः प्रविशुद्धतालं
गाढं विमर्द्य सुपवीसलिलेन तुल्यम्।
सूतेन हिंगुलभुवा सिकताख्ययंत्रे
गोलं विधाय परिवृत्तकपालमध्ये॥ ३४॥
पत्रेण तं दिनपतेश्च पिधाय रुद्ध्वा
संधिं तयोर्गुडसुधाखटिकाशिवाभिः।
वह्नौ पचेन्मृदुनि पात्रशिरःस्थशाली-
वैवर्ण्यमात्रमवधिं प्रविधाय धीमान्॥ ३५॥
वल्लं ततः सुरसमिश्रममुष्य दद्यात्
सर्पिः सिताकणमधूनि पयोऽनुपेयम्।
जेतुं ज्वरान्प्रविषमानिह वांतिशांत्यै
मौलौ सुशीतलजलस्य ददीत धाराम्॥ ३६॥
अथामयांतं रसराजमौलिं
भूषामणिं तं मृतजीवनाख्यम्।
सुधारसेनेव रसेन येन
संजीवनं स्यात्सहसाऽऽतुराणाम्॥ ३७॥

पेठेका चूर्ण और तिलोंके खारमें उत्तम प्रकारसे शुद्ध की हुई हरताल और सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारा दोनोंको समान भाग लेकर करेलेके रसमें खरल करके गोलासा बनाले। उस गोलेको सकोरेमें अथवा हाँडीमें रखकर उसके ऊपर ताँबेका पात्र ढकदेवे और गुड, चूना, खडियामिट्टी तथा हरड इनके कल्कसे उन पात्रोंकी सन्धियोंको बन्द करके सुखालेवे।

फिर उसको वालुकायन्त्रमें रखकर मन्दमन्द अग्निसे पकावे । ताँबेके पात्रके ऊपर शालिधान रखनेसे जब वे फूट निकलें तबतक उसको पकाकर स्वांगशीतल होनेपर औषध निकाल- लेवे और बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखले । इस औष- धको एक २ रत्ती परिमाण तुलसीके पत्तोंके रसमें मिलाकर देवे । इसके ऊपर पीपलका चूर्ण, शहद, घी और मिश्रीमें मिलाकर चाटे तथा दूधका अनुपान करे । यह रस एकतरा, तिजारी, चौथिया आदि विषमज्वर तथा वमनको दूर करने- वाला है । इसके सेवनसे यदि शरीरमें गर्मी मालूम हो तो शिर- पर शीतल जलकी धारा छोडे । यह रस सर्वप्रकारके रोगोंका नाश करनेवाला और सम्पूर्ण रसोंका शिरोभूषण है । वैद्य लोग इसको मृतजीवन कहते हैं । कारण यह अमृतके समान रोगियोंको सहसा जीवन प्रदान करता है ॥ ३४–३७ ॥

शुद्धज्वरांकुश रस अथवा हिंगुलेश्वर ।

रसहिंगुलजेपालैर्वृद्धया दंत्यंबुमार्दितः ।
दिनार्धेन ज्वरं हन्याद्गुंजैकं सितया सह ॥ ३८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, सिंगरफ २ भाग और शुद्ध जमालगोटे ३ भाग इन सबको दन्तीकी जडके काढेमें ६ घंटे तक मर्दन करके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे इस रसकी एक गोली मिश्रीमें मिलाकर देनेसे आधे दिनमें आनेवाला ज्वर शीघ्र दूर होजाता है ॥ ३८ ॥

महाज्वरांकुश रस ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ।
चतुर्भिश्च समं व्योषं चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ३९ ॥
दंतभाण्डेऽथ वा शार्ङ्गे काष्ठे नैव कदाचन ।
वातश्लेष्मज्वरे देयं द्वंद्वजे वा त्रिदोषजे ॥ ४० ॥

रसेन शृंगवेरस्य जंबीरस्याऽथवा पुनः ।
गुंजाद्वयं च जीर्णेऽस्मिन्दधिभक्तं प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥
एकद्वित्रिदिनैर्हन्याज्ज्वरान्दोषक्रमेण तु ।
महाज्वरांकुशो नाम रसोऽयं शंभुनोदितः ॥ ४२ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, धतूरेके बीज ३ तोले और त्रिकुटेका चूर्ण ६ तोले लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले, फिर अन्य औषधियोंको कूट पीसकर कज्जलीमें मिलाकरके खूब बारीक खरल करे । पश्चात् उस चूर्णको हाथीदाँतके अथवा सींगके बने पात्रमें रक्खे । काष्ठके पात्रमें कदापि न रक्खे । वातकफजनितज्वर, द्विदोषज और सन्निपात ज्वरमें अदरखके रस अथवा जम्बीरी नीबूके रसके साथ इस रसको दो २ रत्ती परिमाण सेवन करावे । इसके जीर्ण होजानेपर रोगीको दही भातका भोजन करावे । यह रस दोषोंके क्रमसे अर्थात् एक दोषवाले ज्वरको एक दिनमें, दो दोषवालेको २ दिनमें और ३ दोषवाल ज्वरको ३ दिनमें, इस प्रकार समस्त ज्वरोंको नष्ट करदेता है । इस महाज्वरांकुश नामक रसको श्रीशिवजी महाराजने कहाहै ॥ ३९-४२ ॥

मृत्युञ्जय रस ।

तालं ताम्ररजो रसश्च गगनं गंधश्च जेपालकं
दीनारप्रमितं तदर्धमुदितं टंकं शिलामाक्षिकम् ।
दीनारद्वितयं विषस्य शिखिनः पिष्ट्वा रसैः पाचितो
यश्चिंतामणिवज्ज्वरौघविजयी नाम्ना तु मृत्युंजयः ॥ ४३

हरतालभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म और शुद्ध जमालगोटे ये प्रत्येक एक २ तोला, सुहागा, मैन-

सिल और सोनामाखी ये प्रत्येक छै २ मासे और शुद्ध वत्सनाभ विष २ तोले इन सब औषधियोंको चीतेकी जडके काथमें घोटकर गोला बनालेवे और उसको सम्पुटमें बन्द करके बालुकायन्त्रमें रखकर ३ घंटे तक पकावे । यह रस चिन्तामणिके समान समस्त ज्वरोंको दूर करता है । इसको मृत्युञ्जय रस कहते हैं ॥ ४३ ॥

सर्वज्वरारि अथवा सर्वज्वरान्तक रस ।

तालं ताम्रमयोरजश्च चपला तुत्थाभ्रकं कांतकं
नागं स्याच्च समांशकं सुमृदितं मूलं च पौनर्नवम् ।
भृंगीकासहरीपुनर्नवमहामंदारपत्रोद्भवैः
कल्कं वालुकयंत्रपाचितमिदं सर्वज्वरस्यांतकृत् ॥४४

शुद्ध हरताल, ताम्रभस्म, लोहेकी भस्म, चपल धातु, नीलाथोथा, अभ्रककी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, सीसेकी भस्म और पुनर्नवाकी जडका चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर भाँगरा, कसौंदी, पुनर्नवा और फरहदके पत्ते इन प्रत्येकके रसमें एक २ बार भावना देकर गोला बनालेवे । उसको विधिपूर्वक बालुकायन्त्रमें रखकर ३ घंटेतक पकावे । फिर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखलेवे । यह रस सब प्रकारके ज्वरोंका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥

चन्द्रसूर्य वा चन्द्रसूर्योदय रस ।

तुत्थेन तुल्यः शिवजश्च गंधो
जंबीरनीरेण विमर्दनीयः ।
दिनत्रयं मेलय तन तुल्यं
व्योषं ततः सिद्ध्यति चंद्रसूर्यः ॥ ४५ ॥
वल्लो विजेतुं विषमावलंबी

दलेन देयो भुजगाख्यवल्ल्याः ।
दुग्धं हितं स्यादिह शृंगवेर-
रसेन शैत्येषु निषेवणीयः ॥ ४६ ॥
तक्रं सगर्भाज्वरशूलयोस्तु
द्राक्षांबुना पथ्यमनंतरोक्तम् ।
शोथं वरायाः सलिलेन शूलं
जंबीरनीरेण वराजलेन ॥ ४७ ॥
अपस्मृतावत्र नियोजनीय-
मभ्यंजनं निंबपयोभवाभ्याम् ।
घृतौदनं स्यादिह भोजनाय
जंबीरनीरेण निहंति गुल्मम् ॥ ४८ ॥
हिंग्वाम्लिकानिंबुरसेन देयं
प्लीहोदरे स्यादिह तक्रभक्तः ।
स्तंभार्थमस्मिन्सुसितं पयः स्याद्-
गुडो नियोज्यो वमनप्रशांत्यै ॥ ४९ ॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा ।
विषौषधं न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ॥ ५० ॥

तूतिया, पारा और गन्धक तीनोंको समान भाग लेकर जम्बीरी नीबूके रसमें ३ दिनतक खरल करे । फिर उसमें समान भाग त्रिकुटेका बारीक चूर्ण मिलाकर शीशीमें भरकर रखलेवे । इस प्रकार यह चन्द्रसूर्य वा चन्द्रसूर्योदय रस तैयार होता है । इस रसको एक २ रत्ती परिमाण नागरबेलके पानमें रखकर देनेसे एकतरा, तिजारी आदि सभी प्रकारके विषम

ज्वर दूर हो जाते हैं। इसपर दुग्ध पान करना विशेष उपयोगी है। सब प्रकारके शीतज्वरोंमें अदरखके रसके साथ सेवन करे॥ और भोजनमें तक्र (मट्ठा) पान करे। गर्भिणी स्त्रीके ज्वर और शूल रोगमें दाखके रसके साथ देवे और स्त्रीकी प्रकृतिके अनुकूल पदार्थोंका भोजन करावे। मलावरोधमें त्रिफलेके काढेके साथ, शूलरोगमें जम्बीरीनींबूके रसके साथ देवे और अपस्मार रोगमें त्रिफलेके क्वाथके साथ सेवन करावे तथा नीमके पत्तोंका कल्क और घीमें इस रसको मिलाकर नेत्रोंमें आँजे। इसपर घृत और भातका भोजन करावे। इसको जम्बीरी नीबूके रसमें मिलाकर देनेसे वातगुल्म दूर होताहै। प्लीहा और उदररोगमें इसको हींग, चूक और नीबूके रसमें मिलाकर देवे और छाछ भातका पथ्य देवे। वीर्यस्तम्भनके लिये इसपर मिश्री मिलाकर दुग्धपान करे और वमनको शमन करनेके लिये इस रसको गुडमें मिलाकर सेवन करे। ८० वर्षकी अवस्थावाले वृद्ध और आठ वर्षकी अवस्थावाले बालकको विषाक्त औषध सेवन नहीं करानी चाहिये। कारण उसके देनेसे उनकी विशेष हानि होती है॥ ४९॥ ४६-५०॥

उमाप्रसादन रस।

मेघपारदगंधाश्मविषव्योषपट्टानि च।
जीरकद्वयमेतानि समभागानि कारयेत्॥ ५१॥
सिंदुवाररसेनापि लशुनस्य रसेन च।
अपामार्गरसेनापि सप्तरात्रं विमर्दयेत्॥ ५२॥
तत्पक्वं वालुकायन्त्रे गुंजामात्रं प्रयोजयेत्।
सनागवल्लीमरिचं ततः शीतांबु पाययेत्॥ ५३॥
उमाप्रसादनो नाम रसः शीतज्वरापहः।
चातुर्थिकंत्रिरात्रं वा नाशयेत्किमुताऽपरान्॥५४॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकुटा, पाँचों नमक, सफेद जीरा और काला जीरा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसलेवे । फिर सिम्हालका रस, लहसुनका रस और चिरचिटेका रस इन प्रत्येकमें क्रमसे सात २ दिन तक खरल करके गोला बनाले । उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे । फिर बारीक पीसकर रखलेवे । इस रसको एक रत्ती परिमाण पान और मिरचोंके चूर्णके साथ प्रयोग करे और शीतलजलका अनुपान करावे । यह उमाप्रसादन रस शीत ज्वरको नष्ट करनेवाला है । चौथिया, तिजारी जैसे विषमज्वरोंको भी यह रस शीघ्र नष्ट करदेता है, फिर साधारण ज्वरोंकी तो बातही क्या है ? ॥ ९१-९४ ॥

ज्वरांकुश रस ।

टंकणं रसगंधौ च समभागान्प्रकल्पयेत्
जेपालं द्विगुणं दत्त्वा मर्दयेत्खल्वमध्यतः ॥ ९५ ॥
श्लक्ष्णतां याति तद्यावत्तावत्तन्मर्दयेच्छनैः ।
सैंधवं मरिचं शंखं चिंचाक्षारं समाक्षिकम् ॥ ९६ ॥
तत्तुल्यमेतत्कृत्वाऽथ निंबूतोयेन मर्दयेत् ।
चणप्रमाणवटिका भक्षयेद्दिवसत्रयम् ॥ ९७ ॥
एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।
सर्वज्वरविनाशाय ज्वरांकुश इति स्मृतः ॥ ९८ ॥

सुहागा, पारा और गन्धक ये प्रत्येक एक २ तोला और जमालगोटे २ तोले सबको खरलमें डालकर खूब बारीक पीसे फिर उसमें सेंधानमक, मिरच, शंखकी भस्म, इमलीका खार और सोनामाखीकी भस्म प्रत्येकको एक २ तोला डालकर

नीबूके रसके साथ घोटे और चनेकी बराबर गोलियाँ बना-लेवे । इस रसको तीन दिनतक सेवन करनेसे एकतरा, द्याहिक, तिजारी और चौथिया आदि विषमज्वर दूर होजाते हैं । यह सर्व प्रकारके ज्वरोंको नाश करताहै, इसलिये इसको ज्वरांकुश कहते हैं ॥ ५५-५८ ॥

सर्वांगसुन्दराचिन्तामणिरस ।

अभ्रकं गंधकं सूतं तोलैकैकं पृथक्पृथक् ।
गृहीत्वा विषतोलार्धं तोलार्धं तिन्तिडीफलम् ॥५९॥
एतत्सर्वं समं कृत्वा मर्दयेत्खल्वमध्यतः ।
श्लक्ष्णतां याति तद्यावत्तावत्संमर्दयेच्छनैः ॥ ६० ॥
विस्तारे परिणाहे च गर्तां कृत्वा षडंगुलाम् ।
फणिवल्लीदलान्यंतर्गर्तायां प्रक्षिपेन्नरः ॥ ६१ ॥
पर्णेषु सूतकल्कं तं गर्तायां स्थापयेद्दृढम् ।
कल्कादुपरि तत्पर्णैर्गर्तावक्त्रं प्रपूरयेत् ॥ ६२ ॥
गर्तोपरि पुटं देयं तत आरण्यकोपलैः ।
स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा समाकर्षेत्ततः परम् ॥ ६३ ॥
सूतलिप्तदलैः सार्धं कल्कं खल्वे विमर्दयेत् ।
तोलार्धममृतं क्षिप्त्वा तोलार्धं तिंतिडीफलम् ॥ ६४ ॥
स्थापयेत्खल्वितं कल्कं योजयेद्गुञ्जमात्रया ।
शृंगवेरांभसा युक्तं तीक्ष्णचित्रकसैंधवैः ॥ ६५ ॥
सन्निपाते तथा वाते त्रिदोषे विषमज्वरे ।
अग्निमांद्ये ग्रहिण्यां च तथा देयोऽतिसारिणि ॥ ६६ ॥
भोजनं दधिभक्तं च रसेऽस्मिन्संप्रयोजयेत् ।

व्याघ्र्यादिकं यथा कुर्यादुदकं ढालयेत्ततः ॥ ६७ ॥
एष योगवरः श्रीमान्प्राणिनां प्राणदायकः ।
चिन्तामणिरिति ख्यातो रसः सर्वांगसुंदरः ॥ ६८ ॥

अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक और पारा ये प्रत्येक एक २ तोला, शोधित वत्सनाभ ६ मासे और इमलीके बीजोंकी गिरी ६ मासे इन सबको एकत्र खरलमें डालकर शनैः शनैः मर्दन करे । जब घुटते २ खूब बारीक होजाय तब गोला बनालेवे । फिर चौरसभूमिमें ६ अंगुल लम्बा चौडा एक गड्ढा खोदकर उसमें आधे गढेतक नागरबेलके पानोंको भरदेवे और पानोंके ऊपर उस गोलेको रखकर उसके ऊपर इतने पान रक्खे जिनसे गड्ढा ऊपरतक भरजाय । पश्चात् उस गड्ढेके ऊपर आरने उपले रखकर अग्नि देवे । जब औषधि पककर स्वांगशीतल होजाय तब पानोंसहित उस गोलेको निकालकर खरलमें डालकरके घोटे । फिर उसमें शुद्ध मीठा तेलिया ६ मासे और इमलीके बीजोंकी गिरी ६ मासे डालकर खूब बारीक खरल करके रखलेवे । इसको एक एक रत्तीकी मात्रासे, मिरच, चीता और सैंधानमक इनके समभागचूर्ण और अदरखके रसमें मिलाकर प्रयोग करे । वातज्वर, सान्निपातज्वर, विषमज्वर, अग्निकी मन्दता, संग्रहणी और अतिसार रोगमें यह रस तत्काल गुण करता है । इसपर दहीभातका भोजन करना चाहिये । यदि इस रसके सेवनसे शरीरमें या सिरमें अधिक गरमी मालूम हो तो सिरपर जलकी धारा छोडे या शर्बत पिलावे । इन उपचारोंके करनेसे यह रस मृतप्राय रोगियोंके शरीरमेंभी प्राणोंका संचार करदेताहै । इसको विद्वान्लोग सर्वाङ्ग सुन्दर चिन्तामणि रस कहते हैं ॥ ५९-६८ ॥

लोकनाथगुटिका ।

सूतेंद्रं परिमर्द्य पंचपटुभिः क्षारैस्त्रिभिस्तं ततः
पिण्डे हिंगुमहौषधासुरिमये संस्वेद्य धान्योदके ।
निर्गुंडचंबुहुताशमंथातिलपर्ण्युन्मत्तभृंगार्द्रकं
कामाता गिरिकर्णिकापुवदलापंचांगुलोत्थैर्जलैः ६९
सूतेंद्रेण समैर्विमर्द्य सहजैः पित्तैस्ततो भावये-
द्दंष्ट्रिच्छागलुलायमत्स्यशिखिनां सा सन्निपातापहेत् ।
विख्याता भुवि लोकनाथगुटिका मारिचमात्रा हिता
स्यादस्याः सहितं दधीक्षुशकलं वीर्यं भवेच्छीतलैः७० ॥

शुद्ध पारा, पांचों नमक और जवाखार आदि तीनों खार सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेको हींग, सोंठ और राईके कल्ककी बनाई हुई सूषामें बन्द करके एक कपडेकी पोटलीमें बांधकर काँजीसे भरेहुए दोलायन्त्रमें अधर लटकाकर ६ घंटेतक स्वेदन करे । इसके पश्चात् मूषामेंसे गोलेको निकालकर निर्गुण्डी, सुगन्धवाला, अरणी, लालचन्दन, धतूरा, भांगरा, अदरक, बॉझककोडा, विष्णुक्रान्ता, पाखरके पत्ते और अरण्डके पत्ते इन प्रत्येकके रस वा क्वाथको पारेके बराबर लेकर उसमें क्रम २ से खरल करे, फिर सूकर, बकरा, भैंसा, मछली और मोर इन प्रत्येकके पित्तमें क्रमसे भावना देकर कालीमिरचके बराबर गोलियां बनालेवे । ये गोलियॉ सब प्रकारके सन्निपातज्वरको शीघ्र दूर करती हैं । इसपर दही, ईख (गन्ने) का रस आदि शीतल पदार्थोंके सेवनसे इस रसके वीर्यकी वृद्धि होती है । इस रसको लोकनाथगुटिका कहते हैं ॥ ६९ । ७० ॥

सूचिकाभरण अथवा मृतसंजीवनाख्य रस ।

वज्रवैक्रांतयोर्भस्म प्रत्येकं निष्कसंमितम् ।
शृंगीविषं द्विनिष्कं च त्रिनिष्कं चूलिकापटु ॥७१॥
पंचनिष्कोऽग्निजारश्च सर्वमेकत्र मेलयेत् ।
तावद्भस्म रसं यावन्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ७२ ॥
शार्ङ्गेष्टादिकवर्गस्य क्षारनीरेण भावयेत् ।
त्रयोविंशतिवाराणि विमर्द्य च विशोष्य च ॥ ७३ ॥
ततो विमर्द्य दिवसं क्षिपेद्दंतकरण्डके ।
मृतसंजीवनाख्योऽयं सूचिकाभरणो रसः ॥ ७४ ॥
सन्निपातेन तीव्रेण मुमूर्षोर्भूगतस्य च ।
तालुनि वृश्चयित्वाऽथ रसमेनं विनिक्षिपेत् ॥ ७५ ॥
सूच्यातिसूक्ष्मया तोयभिन्नयाऽतिप्रयत्नतः ।
ततस्तैलेन संलिप्त्वा निर्वाते सन्निवेशयेत् ॥ ७६ ॥
ततोऽर्धप्रहरादूर्ध्वं मुक्तमूत्रपुरीषकम् ।
लब्धसंज्ञं प्रलापाढ्यं दोलयंतं शिरो मुहुः ॥ ७७ ॥
आयुष्मंतं विजानीयादन्यथा चान्यथा खलु ।
ततः शीताम्बुसंपूर्णे कटाहे तं निवेशयेत् ॥ ७८ ॥
तत्र चोत्क्वथितं तोयमपनीयापरं क्षिपेत् ।
याचमानममुं पश्चात्पाययेत्ससितं पयः ॥ ७९ ॥
दधि वा सितयोपेतं नारिकेलजलं तथा ।
रंभाफलानि दद्याच्च म्रियते सोऽन्यथा खलु ॥ ८० ॥
लब्धसंज्ञं प्रभाषंतं याचमानं फलादिकम् ।

तस्मादाकृष्य तैलाक्तं तैलं पिङ्कापनीय च ॥
लेपयेद्गंधकर्पूरैरापादतलमस्तके ॥ ८१ ॥
इत्यादिशिशिरैर्द्रव्यैः सप्तरात्रमुपाचरेत् ॥ ८२ ॥
कर्णाक्षिनासिकावक्त्रे क्षिपेत्पोताश्रयं मुहुः ।
अष्टमेऽहनि संप्राप्ते दर्दुरीमूलजं रसम् ॥
ससितं पाययेद्वेगमवतारयितुं रसम् ॥ ८३ ॥
रसेऽवतारिते पश्चाद्यथेष्टं भोजनं दधि ॥ ८४ ॥
श्वासोच्छ्वासयुतं चान्यैर्मुक्तजीवनलक्षणैः ।
कटाहे जलसंपूर्णे निक्षिपेद्बोधलब्धये ॥ ८५ ॥
लब्धबोधं तमाकृष्य पूर्ववत्समुपाचरेत् ।
जीवित्वा यावदायुष्यं म्रियते तदनंतरम् ॥ ८६ ॥
सन्निपाते महाघोरे मज्जंतं मृत्युसागरे ।
उद्धरेत्तस्य धर्मस्य ब्रह्माप्यंतं न विंदति ॥ ८७ ॥
सन्निपातमहामृत्युभयान्निर्मुक्तमानवः ।
अपि सर्वस्वदानेन प्राणाचार्यं प्रपूजयेत् ॥ ८८ ॥
अन्यथा नरके तावद्यावत्कल्पविकल्पना ।
इत्याज्ञा शांकरी ज्ञेया नंदिना परिकीर्तिता ॥८९॥
प्रकाशा नैव कर्तव्या रसोत्तारणमूलिका ।
शास्त्रं विना प्रयुंजंते मंदा वित्ताभिकांक्षया ।
गुरुप्रसादमासाद्य सन्निपाते प्रयुज्यताम् ॥ ९० ॥

हीरेकी भस्म ४ मासे, वैक्रान्तमणिकी भस्म ४ मासे, सिंगिया विष ८ मासे, नौसादर १२ मासे, अम्बर २० मासे,

और सबके बराबर पारेकी भस्म लेकर इन औषधियोंके खरलमें डालकर ३ दिनतक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे । फिर निम्नलिखित शार्ङ्गेष्टादिवर्गकी औषधियोंके निकाले हुए खारके जलमें २३ बार भावना देकर मर्दन करके सुखालेवे । फिर एक दिनतक खूब बारीक खरल करके हाथीदांतकी बनी हुई शीशीमें भरकर रखदेवे । इसको सूचिकाभरण अथवा मृतसंजीवन रस कहते हैं । जो मनुष्य भयंकर सन्निपातके द्वारा कालका ग्रास हुआ चाहता हो और पृथ्वीपर पडा हो उसके प्रथम शिरके बालोंको उस्तरेसे काटकर तालुमें एक बहुत जरासा छिद्र करे, फिर बहुत बारीक सुईकी नोकको पानीमें डुबोकर उस सुईकी नोकमें जितना लगसके उतना यह रस लेकर तालुके छिद्रमें भरदेवे । यह कार्य बडी साव धानसे करना चाहिये । फिर रोगीके सिरपर और समस्त शरीरमें तेलकी धीरे धीरे मालिश करके उसको ऐसे स्थानमें रक्खे, जहां वायु न लग सकता हो । इसके डेढ घंटेबाद जब रोगी मल मूत्रका त्याग करे, कुछ चेतनता आवे और बार-म्बार सिरको हिलावे तब औषधका प्रभाव और रोगीको मृत्युके हाथसे बचा हुआ समझना चाहिये । इसके विपरीत यदि दो घंटेतक भी ये लक्षण दिखाई न दें तो रोगीको मरा हुआ जानना चाहिये । यदि उपर्युक्त जीवनके लक्षण प्रतीत होंतो रोगीको शीतल जलसे भरेहुए पात्र (टब या नाँद) में बैठाले । जब उसकी गरमीसे वह जल गरम होजाय तब पात्रमेंसे उस जलको निकालकर उसमें और शीतलजल भर देवे । इस प्रकारसे उसको १५--१५ मिनिटतक शीतल-जलमें रखे । इसके पश्चात् जब रोगीको भूख लगे और वह खानेके लिये माँगे तो उसको मिश्री डालकर दूध पिलावे । अथवा दही और मिश्री मिलाकर खिलावे या नारियलका जल पिलावे और केलेकी फली खिलावे । इस प्रकारसे

रोगीको पथ्य न देनेसे उसकी अवश्य मृत्यु हो जाती है। जब रोगी अच्छे प्रकारसे चैतन्य होजाय बोलने लगे और फलादिकी याचना करे तब उसको जलमेंसे बाहर निकालकर उसके तेलसे भीगेहुए शरीरको औषधियोंके चूर्णसे पोंछकर साफ करदेवे, फिर उसके शरीरमें सिरसे लेकर पैरतक चन्दन, कपूर आदिका लेपकरे इस प्रकार सात दिनतक शीतल उपचार करे और सात दिनतक कान, आँख, नाक और मुखमें बारम्बार कपूरको रक्खे। आठवें दिन इस सूचिकाभरण रसका वेग उतारनेके लिये ब्राह्मीके रसको मिश्री मिलाकर पिलावे। जब रसका वेग उतर जाय तब दही, भात आदि यथेच्छ पदार्थोंका आहार करावे। जिस सन्निपात रोगीके श्वासोच्छ्वासके सिवाय जीवनका और कोई लक्षण दिखाई न दे तो उसको चेतनता आनेके लिये जलसे भरे हुए टबमें बैठाले। जब उसमें चेतनता आजाय तब उसको जलमेंसे निकालकर पूर्वोक्त विधिसे उपचार करे। इस प्रकार उपचार करनेसे रोगी उस समय अवश्य जीवित होजाता है, फिर जबतक आयु शेष रहती है तबतक जीवित रहता है। अत्यन्त भयंकर सन्निपात रूपी मृत्युके समुद्रमें डूबते हुए रोगीका जो उद्धार करता है, उसके पुण्य प्रतापका ब्रह्माभी पार नहीं पासकता सन्निपात रूप कालके भयसे निर्मुक्त हुआ मनुष्य, जीवन संचारकरनेवाले प्राणाचार्य (वैद्य) को अपना सर्वस्व अर्पण करके उनका पूजन, सत्कार करे। और जो मनुष्य ऐसा नहीं करता, अर्थात् वैद्यके किये हुए उपकारको भूलकर उसके साथ प्रत्युपकार नहीं करता, वह कल्पकल्पान्त पर्यन्त घोर नरकमें पडकर दुःख भोगता है। ऐसीभी शंकर श्रीभगवान्‌की आज्ञा है। नन्दीनामवाले रसाचार्यने कहाहै कि इस रस विद्याका प्रकाश नहीं करना चाहिये, कारण मन्दबुद्धिवाले मनुष्य धनप्राप्तिकी

इच्छासे शास्त्रज्ञान और गुरुकी कृपाके विनाही इसको प्रयोग करनेलगेंगे । ऐसा करना समुचित नहीं है । इसलिये सद्वैद्यको चाहिये कि पूर्णरूपसे शास्त्रज्ञान और गुरुदेवकी कृपाको प्राप्त कर फिर इस रसको सन्निपात जैसी भयंकर व्याधिमें व्यवहार करे ॥ ७१–९० ॥

शार्ङ्गेष्टा च तथा व्याघ्री करीरस्तिलपर्णिका ।
इंद्रवारुणिका मुस्ता हरिद्राऽङ्कोलमूलिका ॥ ९१ ॥
अपामार्गः कणा स्वर्णः कटुतुंबी च तिंतिडी ।
शार्ङ्गेष्टादिकवर्गोऽयं सन्निपातहरः परः ॥ ९२ ॥

इस रसके सिद्ध करनेमें काम आनेवाले शार्ङ्गेष्टादिवर्गकी ये औषधियाँ हैं:– बडी करंज, कटेरी, कनेरकी जड, लाल-चन्दन, इन्द्रायन, नागरमोथा, हल्दी, अंकोलकी जड, चिर-चिटा, पीपल, धतूरा, कडवी तोंबी और इमलीके बीज इन सब औषधियोंके समूहको शार्ङ्गेष्टादिवर्ग कहते हैं । यह सन्निपात ज्वरको नष्ट करनेके लिये परमोपयोगी है ॥ ९१ । ९२ ॥

सूचीमुखरस ।

सूतं गंधकतालकं मणिशिलां ताप्यं मृतं तुत्थकं
जेपालं विषटंकणं मधुफलं कृत्वा समांशं दृढम् ।
कृत्वा कज्जलिकां विषोल्वणफणेः पित्तैश्च संभावयेत्
क्षिप्त्वा सीसककूपिके रसवरं सूचीमुखं नामतः॥९३॥
ब्रह्मद्वारि विकीर्णलोहितलवे गुंजैकमात्रं ददे-
दत्वा संपुटबद्धतांद्रिकधनुर्वाते सशाखाहिमे ।
कासं श्वासमरोचकं प्रलपनं कंपं च हिक्कातुरं
मूकत्वं बधिरत्वमुन्मदमपस्मारं जयेत्तत्क्षणात् ।९४।

शोधित पारा, गन्धक, हरताल, मैनसिल, सोनामाखीकी भस्म, नीलाथोथा, जमालगोटे, वत्सनाभ विष, सुहागा और महुवे इन सबको समान भाग लेकर खरलमें डालकर खूब बारीक कज्जली करे, फिर अत्यन्त तीक्ष्णविषवाले साँपके पित्तकी एक बार भावना देकर शीशीमें भरकर रखदेवे। जो रोगी घोर सन्निपात, वातविकार तथा धनुर्वात रोगमें अत्यन्त जकड गया हो, अर्थात् हाथ पाँव आदि अङ्गोको भी न हिलाता हो और ठंढा पडगया हो तो उसके तालुके बीचमें जरासा छेद करके रक्तकी बूँद निकलतेही उसमें रत्तीभर यह रस भरदेवे। इस प्रकार यत्नपूर्वक उपचार करनेसे रोगी अवश्य कालके ग्राससे बचजाताहै। यह रस खाँसी, श्वास, अरुचि, प्रलाप, कम्प, हिचकी, मूकता, बधिरता, उन्माद और अपस्मार इन सब रोगोंको तत्काल नष्ट करता है इसको सूचीमुख रस कहते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

सन्निपातगजांकुश रस।

रसगंधकताम्राभ्रं लांगलीवह्निरामठम्।
वंध्यापटोलनिर्गुंडीसुगंधानिंबपल्लवाः ॥ ९५ ॥
पागक्षारत्रयं क्ष्वेडबोलधत्तूरतंदुलैः।
शृंगीमधुकसारं च जंबीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ९६ ॥
कुर्याद्धि निष्कमानेन वटिका सा नियच्छति।
सस्वेददाहाभिन्यासः सन्निपातगजांकुशः ॥ ९७ ॥

पारा, गन्धक, ताँबा, अभ्रकभस्म, कलिहारीकी जड, चीता, हींग, बाँझककोडा, पटोलपात, निर्गुण्डी, सुगन्धबाला, नीमके पत्ते, काली पाढ, जवाखार, सज्जी, सुहागा, शुद्ध मीठा तेलिया, बोल, धतूरेके बीज, चौलाईकी जड, काकडासिंगी और मुलैठीका सत्त इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र

पीस लेवे, फिर जम्बीरीनीबूके रसमें खरल करके तीन २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ यथोचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त पसीना लानेवाले और दाहयुक्त अभिन्यास नामक सन्निपात ज्वरको शीघ्र दूर करता है। इस रसको सन्निपातगजांकुश कहते हैं ॥ ९५–९७ ॥

चातुर्थिकहर रस।

ससारा वैष्णवी सेना अचला कादिकं कणा ।
रागरुद्रोपमोपेता प्रौढा मस्तकशालिनी ॥ ९८ ॥
त्रिभागं तालकं विद्यादेकभागं तु पारदम् ।
तदर्धं गंधकं चैव तदर्धा तु मनःशिला ॥ ९९ ॥
कारवल्लीदलरसैर्मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ।
पाचितो वालुकायंत्रे चातुर्थिकहरो रसः ॥ १०० ॥

हरताल भस्म ३ तोले, पारा १ तोला, गन्धक ६ मासे और मैनसिल ३ मासे इन सबको एकत्र खरल करके करेलेके पत्तोंके रसमें तीन प्रहर (९ घंटे) तक घोटे, फिर गोली बनाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके बालुकायन्त्रमें पकावे। स्वांग शीतल होनेपर रसको निकालकर बारीक पीसकर रखलेवे। यह चातुर्थिकहरनामक रस चौथिया ज्वरको नष्टकरनेके लिये परमोपयोगी है ॥ ९८–१०० ॥

चातुर्थिक गजांकुश रस।

स्याद्रसेन समायुक्तो गंधकः सुमनोहरः ।
हियावलित्रिगुणितो निर्गुंडीरसमर्दितः ॥ १०१ ॥
सप्तवाराणि तद्योज्यमार्द्रकस्वरसेन तु ।
संततादिज्वरं हन्याच्चातुर्थिकगजांकुशः ॥ १०२ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और हरताल ३ तोले सबको एकत्र मर्दन करके निर्गुण्डीके रसकी सात बार भावना देवे । इस रसको एक या दो रत्तीकी मात्रासे अदरखके रसमें मिलाकर देनेसे संतत आदि विषमज्वर तत्काल दूर होता है । यह चातुर्थिक गजांकुश रस चौथिया ज्वरके लियेभी विशेष उपयोगी है ॥ १०१ । १०२ ॥

मृत्युंजय अथवा महारस ।

ताप्यतालकजेपालवत्सनाभमनःशिला ।
ताम्रगंधकसूतं च मुसलीरसमर्दितः ॥ १०३ ॥
मृत्युंजय इति ख्यातः कुक्कुटीपुटपाचितः ॥ १०४ ॥
वल्लद्वयं प्रयुंजीत यथेष्टं दधिभोजनम् ।
नवज्वरं सन्निपातं हन्यादेष महारसः ॥ १०५ ॥

सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध हरताल, जमालगोटे, वत्सनाभ विष, मैनसिल, ताम्रभस्म, गन्धक और पारा सबको समभाग लेकर एकत्र खरल करके मुसलीके रसमें घोटे, फिर गोला बनाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके कुक्कुटपुटमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब गोलेको निकालकर बारीक पीस-कर रखलेवे । इसको मृत्युञ्जय रस कहते हैं । इसको दो २ रत्ती परिमाण सेवन करावे और इसपर दही भातका यथेच्छ भोजन करावे । यह महारस नवीन सन्निपातज्वरको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १०३-१०५ ॥

पञ्चवक्त्र रस ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं मरिचं टंकणं कणाम् ।
मर्दयेद्धूर्त्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥
पंचवक्त्रो रसो नाम द्विगुंजः सन्निपातजित् ॥ १०६ ॥

अर्कमूलकषायं च सत्र्यूषमनुपाययेत् ।
दध्योदनं हितं तत्र जलयोगं च कारयेत् ॥ १०७ ॥

शोधित पारा, मीठा तालिया, गन्धक, काली मिरच, सुहागा और पीपल इन सबको समभाग लेकर धतूरेके पत्तोंके रसमें एक दिनतक खूब अच्छे प्रकारसे खरल करके सुखालेवे। इस रसका दो रत्ती परिमाण सेवन कराकर ऊपरसे आककी जडके क्वाथमें त्रिकुटेका चूर्ण डालकर अनुपान करावे और भूख लगने पर दही भातका भोजन करावे। यदि इसके सेवनसे अत्यन्त गरमी मालम हो तो रोगीके सिरपर शीतल जलकी धारा छोडे। इन क्रियाओंके करनस यह रस सन्निपात ज्वरको तत्काल दूर करता है। इसको पंचवक्त्र रस कहतेहैं॥१०६॥१०७॥

उन्मत्तरस ।

रसगंधकतुल्यांशं धत्तूरफलजद्रवैः ॥ १०८ ॥
मर्दयेद्दिनमेकं तु तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत् ।
उन्मत्ताख्यो रसो नाम्ना नस्ये स्यात्सांनिपातजित् १०९

शुद्ध पारा और गन्धक, दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली बनाले, फिर धतूरेके फलोंके रसमें एक दिनतक घोटकर उसमें समानभाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलालेवे। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। सन्निपात रोगीको इस रसका नास देनेसे शीघ्र आरोग्यलाभ होता है ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

सन्निपाताञ्जन रस ।

निस्त्वङ्नेपालकं बीजं दशनिष्कं प्रचूर्णयेत् ।
मरिचं पिप्पली सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत् ॥ ११०
भाव्यं जंबीरजैर्द्रावैः सप्ताहं तत्प्रयत्नतः ।

सन्निपातं निहंत्याशु अंजनेऽयं शिवः स्मृतः ॥१११॥
मदनफलं बिडलवणं सर्षपाः प्रतिनिष्कमितम् ।
चूर्णयित्वा त्रिफलाक्काथेन सटंकणं पिबेत् ॥ ११२ ॥
कुष्ठे ज्वरे कामलायां कंठरोगे ह्यजीर्णके ।
नस्येऽथ गिरिकर्ण्युत्थं बीजकं शीतवारिणा ॥११३॥

जमालगोटोंके बीजोंकी गिरी १० निष्क परिमाण लेकर बारीक पीसलेवे । उसमें मिरच, पीपल और पारा ये प्रत्येक एक २ निष्क (४ मासे) मिलाकर जम्बीरीनीबूके रसमें सात दिनतक भावना दव । यह रस नेत्रोंमें आंजनेसे सन्निपात ज्वरको शीघ्र नष्ट करताहै । आंजनेके लिये यह रस परमोपयोगी कहाजाताहै । इसको आंजकर पीछेसे रोगीको त्रिफलेके काढेमें मैनफल, विरियासंचर नमक सरसों और सुहागा ये प्रत्येक औषधि एक एक निष्क परिमाण मिलाकर पान करनी चाहिये । कुष्ठ, ज्वर, कामला, कण्ठगतरोग और अजीर्ण रोगमें इन्द्रायनके बीजको शीतलजलके साथ पीसकर उसमें इस रसको मिलाकर नस्य देनेसे विशेष उपकार होता है ॥ ११०-११३ ॥

प्रतापलंकेश्वररस ।

प्रत्येकं रसगंधयोर्द्विपलयोः कृत्वा मषीं शुद्धयो
रस्यां म्लेच्छलुलायलोचनमनोधात्रीप्रकुंचत्रयम् ।
पथ्यायाा बदरत्रिकं त्रिकटु षट्शाणं वचा धर्मिणी
वेल्लांभोधरपत्रकाद्विरदकिंजल्काऽश्वगंधाह्वयम् ११४॥
पिष्ट्वैतत्समधूकसारमखिलं कर्षोन्मितं न्यस्य त-
त्प्रोन्मर्द्यार्धकरंजकामृतयुतं सागास्तिकत्र्यूषणैः ।
भूधात्रीविजयासरित्पतिफलज्वालामुखीमार्कवैः

प्रत्येकं विदधीत निश्चलमतिः सप्त क्रमाद्भावनाः ॥
पित्तैरथो पंच विधाय पञ्चभिः
करंजपत्रामृतधूपनं ततः ।
दत्त्वाऽऽर्द्रकस्य स्वरसेन तंदुला-
कृतिं विदध्याद्गुटिकां भिषग्वरः ॥ ११६ ॥
देयैका सन्निपाते प्रतिहतविषये मोहनेत्रप्रसुप्त्योः
स्याद्गुल्मे साजमोदा पवनविकृतिषु त्र्यूषणेन ग्रहण्याम् ।
दातव्या जीरकेण द्विपतुरगनृणां प्राणसंरक्षणाय
कारुण्यांभोधिरेतद्रसकसमरसं वैद्यनाथोऽभ्यधत्त ११७॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येकको आठ २ तोले लेकर कज्जली करलेवे, फिर उसमें हिंगुल ४ तोले, भैंसिया गूगल ४ तोले, मैनसिल ४ तोले, हरड २ तोले, तीनों प्रकारके बेर २ तोले, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) २ तोले, तथा वच, रेणुका, वायविडंग, नागरमोथा, तेजपात, नागकेशर, असगन्ध और महुवेका सार ये प्रत्येक औषधि एक २ कर्ष (१-१ तोला), करंजकी जड ६ मासे और वत्सनाभ विष ६ मासे इन सबको मिलाकर एक दिनतक खरल करे । फिर अग-स्तिया, त्रिकुटा, सुई आमला, भाँग, समुद्रफल, चीता और भाँगरा इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे सात २ बार भावना देवे । इसके पश्चात् सूअर, बकरा, भैंसा, मछली और मोर इन पाँचों जीवोंके पित्तोंकी क्रमसे ५ बार भावना देकर करंजके पत्ते और वत्सनाभ विषकी धूनी देवे । फिर अदरखके स्वरसमें घोटकर एक २ चावलकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । जब कि सन्निपातज्वरमें रोगीको किसी बातका होश न रहे, आँखें मुंद गई हों और सुषुप्तजैसी अवस्था होगई हो तो उसको इस

रसकी एक गोली अदरखके रसमें मिलाकर देवे । वातगुल्ममें इसको अजमोदके साथ, वातविकारमें त्रिकुटेके चूर्णके साथ और संग्रहणीमें जीरेके साथ देना चाहिये । कृपासिन्धु भगवान् वैद्यनाथ (धन्वन्तारि) ने कहा है कि यह रस हाथी घोडा और मनुष्य सर्वप्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला है इसको प्रतापलंकेश्वर रस कहते हैं ॥ ११४-११७ ॥

प्राणेश्वर रस ।

गंधकाभ्रसमः सूतो वाराहीरसमर्दितः ।
पाचितो वालुकायंत्रे त्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥११८॥
त्रिक्षारं पंचलवणं हिंगुगुग्गुलुदीप्यकैः ।
सजीरकैः सेंद्रयवैः पृथग्रससमैर्युतः ॥ ११९ ॥
माषमात्रोऽनुपानेन द्विपलस्योष्णवारिणः ।
अभिन्यासानलभ्रंशग्रहणीपाण्डुगुल्मिनाम् ॥१२०॥
कुर्यात्प्राणपरित्राणमतः प्राणेश्वरः स्मृतः ।
व्याधिवृद्धौ प्रयोगोऽस्य द्वौ वारौ वैद्यसंमतः ॥१२१

गन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, और पारा २ तोले तीनोंको एकत्र खरल करके बाराहीकन्दके रसमें घोटकर गोला बनाले, उसको शरावसम्पुटमें वन्दकरके वालुकायन्त्रमें रखकर पकावे । फिर उसमें हरड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचों नमक, हींग, गूगल, अजवायन, जीरा और इन्द्रजौ इन सब औषधियोंको दो २ तोले लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादेवे । इस रसको एक २ मासा परिमाण लेकर दो पल गरम जलके साथ सेवन करावे । यह रस अभिन्यास सन्निपात, मन्दाग्नि, संग्रहणी, पाण्डुरोग और वातगुल्म इन सब रोगोंको दूर कर रोगियोंके

प्राणोंकी रक्षा करता है, इसलिये इसको प्राणेश्वर रस कहते हैं। यदि रोगके उपद्रव बढते हों तो इस रसको दिनमें दो बार सेवन करावे। ऐसा वृद्धवैद्योंका मत है ॥ ११८-१२१ ॥

मृतसंजीवन रस ।

रसायोव्योषकंकुष्ठाशिलातालाभ्रहिंगुलान् ।
कुंभ्यग्निभृंगमारीषतंडुलीयकमाक्षिकान् ॥ १२२ ॥
हस्तिशुंडीयुतांस्तुल्यांस्तदर्धांशिवगंधकान् ।
त्र्यहमार्द्रांबुना पिष्ट्वा कूपिस्थं वालुकाऽग्निना॥१२३
जयाजंबीरनिर्गुंडीचांगेरीवारि निक्षिपेत् ।
पक्त्वा चतुर्दशाहानि पिष्ट्वार्द्रार्कं विशोषयेत् १२४॥
मृतसंजीवनाख्योयं रसो वल्लमितोऽशितः ।
द्राग्जयेदौषधं सन्निपातादीन्सकलान्गदान् ॥ १२५॥

पारेकी भस्म, लोहेकी भस्म, त्रिकुटा, मुर्दासंग, मैनसिल, हरताल, अभ्रक, सिंगरफ, जमालगोटे, चीता, भाँगरा, मरसा शाक विशेष, चौलाईकी जड, सोनामाखीकी भस्म और हाथीशुण्डा ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला और इन समस्त औषधियोंसे आधी पारे गन्धककी कज्जली लेवे। सबको एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें तीन दिनतक खरल करके गोलियाँ बनाले, उनको आतसी शीशीमें भरकर बालुकायन्त्रमें पकावे। पकते समय शीशीका मुँह खुला रक्खे। उसमें अरणी, जम्बीरी नीबू, सिह्मालू और नोनियाका शाक इनके रसको एकत्र मिलाकर थोडा २ डालता जाय और मन्द मन्द अग्नि जलाता जाय। इस प्रकारसे चौदह दिनतक इसको बराबर पकावे। फिर औषधिको निकालकर बारीक पीसकर अदरखके रसमें खरलकरके सुखालेवे और

शीशीमें भरकर रखदेवे । इसको मृतसंजीवनरस कहते हैं । इसको उपयुक्त अनुपानके साथ एक एक रत्ती परिमाण सेवन करे । यह सब प्रकारके सन्निपात आदि भयंकर रोगोंको शीघ्र निर्मूल करता है ॥ १२२-१२५ ॥

द्वितीय मृतसंजीवन रस ।

रसभागो भवेदेको गंधको द्विगुणो मतः ।
विषतालककंकुष्ठशिलाहिंगुललोहकम् ॥ १२६ ॥
वह्नित्रिकटुभृंगाह्वहेममाक्षिकमभ्रकम् ।
हस्तिशुंडी विषं कुंभी तंडुलीयकताम्रकौ ॥ १२७॥
एषां प्रत्येकमेकैकं भागमादाय चूर्णयेत् ।
आर्द्रकस्य द्रवेणैव मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ १२८ ॥
जंबीरस्य रसो ग्राह्यः पलत्रयमितः शुभः ।
त्रिफलायाश्च निर्गुंड्याः प्रत्येकं च पलत्रयम्॥ १२९॥
रसस्य पलमात्रं तु चांगेर्याः परिकीर्तितम् ।
काचकुप्यां विनिक्षिप्य यंत्रे पक्त्वा प्रयत्नवान् १३०॥
उद्धृत्यार्द्रकनिर्यासैर्मर्दयित्वा विशोषयेत् ।
मृतसंजीविनो नाम रसोऽयं विदितो भुवि ॥
गुंजाद्वयं ददीतास्य सन्निपातापनुत्तये ॥ १३१ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोले, तथा शुद्ध मीठा तेलिया, हरताल, मुर्दासंग, मैनसिल, शुद्ध सिंगरफ, लोहभस्म, चीता, त्रिकुटा, भाँगरा, सोनामाखी भस्म, अभ्रकभस्म, हाथी-शुण्डा, अतीस, दन्तीकी जड, चौलाई और ताम्रभस्म ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर कपड छान करलेवे । फिर उस चूर्णको अदरखके रसमें ३ दिनतक

खरल करके काँचकी आतसी शीशीमें भरदेवे । शीशीका मुँह खुला रखकर उसको यत्नपूर्वक बालुकायन्त्रमें रखकर पकावे । पकते सयम उस शीशीमें जम्बीरी नीबूका रस ३ पल, त्रिफलेका काढा ३ पल, निर्गुण्डीका रस ३ पल और नोनिया शाकका रस १ पल इनको क्रमसे थोडा २ डालता जाय । जब सब रस सूखजायँ और औषधिभी शुष्क होजाय तब उसको शीशीमेंसे निकालकर बारीक पीस लेवे फिर अदरखके रसमें घोटकर सुखा लेवे । इस रसको दो दो रत्ती परिमाण देनेसे सन्निपात ज्वर शीघ्र दूर होता है। इसको मृतसंजीवन रस कहते हैं ॥ १२६--१३१ ॥

सन्निपातकुठाररस ।

वंगं नागं च सूतं च नैपालं गंधकं तथा ।
शुल्बं विषं समांशेन रसेनार्द्रेण मर्दयेत् ॥ १३२ ॥
पुनर्मर्द्येत निर्गुंड्याश्चांगेर्या रसमर्दितः ।
एकवल्लप्रयोगेण रसोऽयं सन्निपातकृत् ॥ १३३ ॥

बंगभस्म, सीसेकी भस्म, पारा, गन्धक, शुद्ध जमाल गोटे, ताम्रभस्म, और शुद्ध वत्सनाभ विष इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें खरल करे, फिर निर्गुण्डीके और अम्ल० नोनियाके रसमें क्रमसे एक एक बार मर्दन करके एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक गोली देनेसे ही सन्निपातज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

नवज्वरारिरस वा पर्पटिकारस ।

गन्धकं च रसं शुद्धं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ।
एकत्र कज्जलीं कृत्वा ततः कुर्वीत गोलकम् ॥ १३४ ॥
नवभाण्डे विनिक्षिप्य ताम्रपात्रेण गोपयेत् ।

दृढं निरुध्य तत्पात्रमग्नावारोपयेत्ततः ॥ १३५ ॥
व्रीहिस्फुटनमात्रेण स्वांगशीते समुद्धरेत्
नवज्वरे प्रयुंजीत रसं पर्पटिकाह्वयम् ॥ १३६ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव त्रिवल्लं त्रिदिनं भिषक् ।
ज्वरितं छादयेद्गाढं यावत्स्वेदः समुद्भवेत् ॥ १३७ ॥
तक्रभक्तं भवेत्पथ्यं ज्वरमुक्तस्य देहिनः ॥ १३८ ॥
नवज्वरारिरित्येष रसः परमदुर्लभः ।
वातज्वरे विशेषेण रसः साधारणो मतः ॥ १३९ ॥

शोधित पारा और गन्धकको एक एक कर्ष लेकर एकत्र मिलाकर कज्जली करलेवे, फिर गोलासा बनाकर मिट्टीकी एक नई हाँडीमें रखे और उसके ऊपर ताँबेका पात्र ढकदेवे। पश्चात् सन्धियोंको उत्तम प्रकारसे बन्द करके उस पात्रको चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे अग्नि जलावे। जब ताँबेके पात्रके ऊपर शालिधानको रखनेसे वे फूट निकलें तबतक अग्नि जलावे फिर स्वांगशीतल होनेपर रसको निकालकर बारीक पीसलेवे। इसको पर्पटिका रसभी कहते हैं। वैद्य इस रसको नवीन ज्वरमें तीन २ रत्ती परिमाण अदरखके रसके साथ सेवन करावे और रोगीको गरम कपडा उढादेवे। जबतक पसीना न आवे तबतक कपडा उढाये रक्खे। इस प्रकार तीन दिन तक इसको सेवन करानेसे ज्वर दूर होजाता है। जब रोगीका ज्वर दूर होजाय तब उसको छाछ और भातका पथ्य देवे। यह नवज्वरारि रस वातज्वरमें विशेष उपयोगी है और सर्व साधारणके लिये परम दुर्लभ है ॥ १३४–१३९ ॥

जलमंजरी रस ।

टंकणं रसगंधौ च मरिचानि समांशकम् ।

सर्वं जंबीरनीरेण दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ १४० ॥
संशोष्य शर्करायुक्तं मत्स्यपित्तेन भावयेत् ।
भावितं तद्रसं सिद्धमार्द्रकस्वरसैस्त्र्यहम् ॥ १४१ ॥
वल्लं वारत्रयं देयं पानार्थं वारि शीतलम् ।
तक्रभक्तं भवेत्पथ्यं वृंताकफलसंयुतम् ॥
सर्वान्नवज्वरान्हंति रसोऽयं जलमंजरी ॥ १४२ ॥

सुहागा, पारा, गन्धक, और मिरच सबको समान भाग लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें तीन दिन तक खरल करे। फिर सुखाकर उसमें अर्द्धभाग खाँड मिलाकर एकबार मछलीके पित्तमे भावना देवे, फिर अदरखके रसमें तीन दिनतक भावना देवे तो यह रस तयार होता है। इस रसको दिनमें तीन बार एक एक रत्ती परिमाण सेवन करावे और शीतल जलका अनुपान। इस पर बैंगनका शाक और मट्ठे भातका पथ्य देवे। यह रस सब प्रकारके नवीन ज्वरोंको नष्ट करता है। इसको जलमंजरी कहते हैं ॥ १४०–१४२ ॥

कान्तरस ।

कांतस्य कंटवेध्यानां पत्राणां भस्म कारयेत् ।
तत्समश्च रसो गंधष्टंकणो निंबवारिणा ॥ १४३ ॥
ततः संपेष्य तत्कल्कं मर्दयेत्त्रिदिनं पुनः ।
रसतुल्येन मत्स्यस्य पित्तेन परिभावयेत् ॥ १४४ ॥
सिद्धः कांतरसो ह्येष प्रयोज्योऽभिनवज्वरे ।
शृङ्गवेरानुपानेन मात्रया भिषगुत्तमैः ॥ १४५ ॥

कान्तलोहके कंटकवेधी पत्रोंकी भस्म, पारा, गन्धक और सुहागा इन सबको समान भाग लेकर नींबूके रसमें तीन दिन

तक खरल करे। फिर उस कल्कको रसके बराबर मछलीके पित्तमें तीन दिनतक भावना देवे। इस प्रकार यह कान्तरस सिद्ध होताहै। इसको उचित मात्रासे अदरखके रसके साथ नवीन ज्वरमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १४३-१४५ ॥

चन्द्रोदय रस।

रसगंधौ तथा वंगमभ्रकं समभागतः।
मेलयित्वाथ वंगेन समं सूतं विमर्दयेत् ॥ १४६ ॥
तत्रैकीकृत्य गंधाभ्रे पेष्य जंबीरवारिणा।
सामान्यं पुटमादद्यात्सप्तधा साधितं रसम् ॥ १४७॥
कुमार्या चित्रकेणापि भावयित्वाऽथ सप्तधा।
गुडेन जीरकेणापि ज्वरे जीर्णे प्रयोजयेत् ॥ १४८ ॥
कासे श्वासे कुमार्याऽथ त्रिफलाक्काथयोगतः।
उन्मादं च धनुर्वातममृताक्काथसंयुतः।
इत्येवं रोगतापघ्नो रसश्चंद्रोदयाभिधः ॥ १४९ ॥

पारा, गन्धक, वंगभस्म और अभ्रकभस्म इन चारोंको समान भाग लेकर प्रथम वंगके साथ पारेको खरल करे, फिर उसमें गन्धक और अभ्रकको मिलाकर जम्बीरी नीबूके रसमें घोटे। पश्चात् गोला बनाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके सामान्य कुक्कुटपुट देवे। इस प्रकार नीबूके रसमें घोट २ कर सात बार पुटदेवे। फिर घीग्वारके रसमें सातवार भावना देकर और चीतेके रसमें सात भावना देकर क्रमसे सात २ बार पुट देवे। इस तरह सिद्ध किये हुए इस रसको जीर्णज्वरमें गुड और जीरेके साथ प्रयोग करे। खांसीमें घीग्वारके रसके साथ और श्वासरोगमें त्रिफलेके काढेके साथ तथा उन्माद और धनुर्वात रोगमें गिलोयके क्वाथके साथ सेवन करे। इस प्रकार सेवन कर-

नेसे यह चन्द्रोदय नामक रस रोग और उसकी पीडा, सन्ताप आदि सबको शीघ्र दूर करताहै ॥ १४६–१४९ ॥

जीर्णज्वरारि रस–अथवा ज्वरविद्रावणरस ।

नागं वंगं रसं ताम्रं गंधकं टंकणं तथा ।
सूतं विषं च नेपालं हरितालं समं तथा ॥ १५० ॥
वटक्षीरेण संमर्द्य सर्वं कुर्यात्तु गोलकम् ।
तं गोलकं भाण्डमध्ये पाचयेद्दीप्तवह्निना ॥ १५१ ॥
ततः संशीतलं कृत्वा भृंगराजेन मर्दयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ १५२ ॥
चणप्रमाणवटका रसनाऽऽर्द्रस्य दापयेत् ।
गुंजाद्वयप्रयोगेण ज्वरं जीर्णं हरत्यसौ ॥ १५३ ॥

सीसेकी भस्म, बंगभस्म, पारेकी भस्म, ताम्रभस्म, गन्धक, सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध जमालगोटे और हरताल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बडके दूधमें खरल कर गोला बनालेवे । उस गोलेको मिट्टीकी एक नई हाँडीमें लेपकर उसके ऊपर एक सकोरा ढकदे और सन्धिओंको बन्द करके उस हाँडीको चूल्हेपर चढाकर नीचे तीक्ष्ण अग्नि जलावे । इस प्रकार एक प्रहर तक पकावे । फिर स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर भाँगरेके रसमें और अदरखके रसमें क्रमसे वारम्बार मर्दन करे, पश्चात् चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । इस रसको दो २ रत्तीकी मात्रासे अदरखके रसके साथ देनेसे जीर्णज्वर शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ १५०–१५३ ॥

नवज्वरमुरारि रस ।

हरश्च गंधकं चैव कुनटी च समं समम् ।

मर्द्यं कर्कोटिकायाश्च रसेन विनियोजयेत् ॥ १५४॥
नवज्वरमुरारिः स्याद्वल्लं शर्करया सह।
तंडुलीयरसश्चानुपानं शर्करयाऽपि वा ॥ १५५ ॥
गुंजाद्वयप्रमाणेन ज्वरान्हंति नवान्हठात् ॥ १५६ ॥

पारा, गन्धक, मैनसिल तीनोंको समान भाग लेकर बांझ ककोडेके रसमें उत्तम प्रकारसे मर्दन करके सुखालेवे। इसको नवज्वरमुरारिरस कहते हैं। इसको एक २ रत्ती परिमाण खाँडमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे खाँड मिलाकर चौलाईके रसका अनुपान करे। अथवा दो २ रत्तीकी मात्रासे सेवन करे। यह रस नवीन ज्वरोंको नष्ट करनेकी एक आश्चर्य जनक औषध है ॥ १५४–१५६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्य विरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः।

रक्तपित्त रोग।

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णविदाहिरूक्षैः
पित्तं प्रदुष्टमशनैरतिसेवितैस्तैः।
संदुष्य रक्तममुनोभयमार्गवार्ति
निर्यात्यसृक्रुस्थलयकृत्प्लिहतोऽतिमात्रम् ॥ १ ॥

अत्यन्त चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, नमकीन, गरम, दाहकारक और रूक्ष पदार्थोंको अधिकतर खानेसे अथवा इन पदार्थोंका खाद्य पदार्थोंके साथ निरन्तर उपयोग करनेसे पित्त दूषित होजाता है। वह पित्त रक्तको दूषित करदेता है। दूषित हुआ रक्त जब रक्ताशय (फेफडे), तथा यकृत्, प्लीहा, मुख, नाक,

गुदा और लिंगमार्गके द्वारा बाहर निकलता है तब उसको रक्तपित्त रोग कहते हैं ॥ १ ॥

रक्तपित्तांकुश रस ।

पारदं हिंगुलूकं च पूर्वं यंत्रेण मेलयेत् ।
कुक्कुटांडरसं भागं टंकणक्षारमेव च ॥ २ ॥
गंधकस्य तथा भागं घृतेन परिमर्दयेत् ।
सिद्धं रसं समादाय जीरतोयेन दापयेत् ॥ ३ ॥
दिनानि त्रीणि माषं च ग्रहणीरक्तदोषजित् ।
ज्वरदाहविनाशी च रक्तपित्तविनाशनः ॥
रक्तपित्तांकुशो नाम रसोऽयं मृडभाषितः ॥ ४ ॥

पारा १ तोला और हिंगुल १ तोला लेकर दोनोंको खरलमें डालकर खूब घोटे । जब पारा अच्छे प्रकारसे मिलजाय तब उसमें मुर्गीके अण्डेका रस १ तोला, सुहागा १ तोला और गन्धक १ तोला डालकर सबको खूब बारीक खरल करे । फिर घीके साथ मर्दन करके एक २ माशेकी गोलियाँ बनालेवे । इस प्रकार सिद्ध किये हुए इस रसकी एक २ गोली जीरेके क्वाथके साथ सेवन करावे । इसके सेवनसे संग्रहणी और रक्त विकार तीन दिनमें दूर होजाता है, यह रस, ज्वर, दाह और रक्तपित्त रोगको शीघ्र नष्ट करनेवाला है । इस रक्तपित्तांकुश नामक रसको श्रीशंकरभगवान्‌ने कहा है ॥ २–४ ॥

चन्द्रकला रस ।

प्रत्यकं तोलमानेन सूतकं ताम्रभस्मकम् ।
दिनानि त्रीणि गुटिकां कृत्वा चाग्नौ विनिक्षिपेत् ॥ ५

ततः शुष्कं समादाय पुनरेव च मर्दयेत् ।
समस्तैः समगंधैश्च कृत्वा कज्जलिकां च तैः ॥ ६ ॥
मुस्तादाडिमदूर्वाभिः केतकीस्तनवारिभिः ।
सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्यापि वारिणा ॥ ७ ॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च ।
भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ८ ॥
तिक्तं गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमागधीः ।
शृंगाटं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णकम् ॥ ९ ॥
द्राक्षादिककषायेण सप्तधा परिभावयेत् ।
ततः पोताश्रयं क्षिप्त्वा वट्यः कार्याश्चणोपमाः॥ १०
अयं चंद्रकलानामा रसेंद्रः परिकीर्तितः ।
सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ११ ॥
अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाक्षमः ।
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ १२ ॥
कुरुते नाग्निमांद्यं च महातापज्वरं हरेत् ।
श्रमं मूर्छां हरत्याशु स्त्रीणां रक्तमहास्रवम् ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवांतिं विशेषतः ।
मूत्रकृच्छ्राण सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १४ ॥

पारा १ तोला और ताम्रभस्म १ तोला दोनोंको अडूसेके रसमें तीन दिनतक घोटकर गोला बना लेवे । उसको दो तीन उपलोंकी सामान्य अग्निमे पकावे । जब वह अच्छे प्रकारसे शुष्क होजाय तब उसको लेकर बारीक पीसलेवे ।

फिर उसमें समानभाग शुद्धगन्धक मिलाकर कज्जली करलेवे पश्चात् उस कज्जलीको नागरमोथा, दाडिमी, दूब, केवडा, दूध, सहदेई, घीग्वार, पित्तपापडा, आरामशीतला (शाक विशेष) और शतावर इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देवे। फिर चिरायता, गिलोयका सत्त्व, पित्तपापडा, खस, पीपल, सिंघाडे और सारिवा इन औषधिओंको समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके उसको कज्जलीके बराबर लेवे और द्राक्षादिगणकी औषधियोंके क्वाथमें मिलाकर उसमें कज्जलीको सातबार भावना देवे। फिर १ तोला भीमसेनी कपूर मिलाकर उसकी चनेकी बराबर गोलियाँ बना लेवे। इसको चन्द्रकला रस कहते हैं। यह सर्वप्रकारके पित्तजरोग, तथा वातपित्तजन्य रोग, शरीरकी आन्तरिक दाह बाह्यदाह और अत्यन्त भयङ्कर दाहको शमन करनेके लिये परमोपयोगी है। ग्रीष्मऋतु और शरदृऋतुमें यह विशष उपकार करता है। तथा अग्निकी मन्दता, अत्यन्त भयंकर ज्वर, श्रम, मूर्छा, स्त्रियोंका रक्तप्रदर, ऊर्ध्वगत व अधोगत रक्तपित्त, रक्तकी वमन और विशेषकर सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ९–१४ ॥

सामान्य उपचार ।

पटोलमायसं चूर्णं सूतेंद्रं समचारितम् ।
लोहारिवर्गसंघृष्टं रक्तपित्तहरं परम् ॥ १५ ॥

परबल, लोहभस्म और पारेकी भस्म तीनोंको समानभाग लेकर एकत्र लोहारिवर्ग (अमलबेत, जम्बीरीनीबू, बिजौरानीबू, चनेका खार, बेर, अनार, ऑवले, नारंगी, रसौत और करौंदा) की औषधियोंके रसमें घोटलेवे। यह औषध रक्तपित्तको नाश करनेके लिये परमोपयोगी है ॥ १५ ॥

वृषादलानां स्वरसस्य कर्षं
रसेंद्रगुंजामधुशर्करायुतम् ।
लिहन्प्रभाते मनुजो निहन्या-
दुःखाकरं दारुणरक्तपित्तम् ॥ १६ ॥

एक रत्ती पारेकी भस्मको शहद और खांडमें मिलाकर यदि मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे और ऊपरसे एक कर्ष (१ तोला) परिमाण अडूसेका स्वरस पान करे तो अत्यन्त भयंकर और कष्टप्रद रक्तपित्त रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

सपटोलकहिंगूलः सक्षौद्रो रक्तपित्तजित् ।
नवनीतं सिता लाजा द्राक्षया सह भक्षयेत् ॥ १७ ॥
मस्तके च घृतं दद्याद्रक्तपित्तहरं परम् ।
द्राक्षावासायुतं ख्यातं शर्कराप्लावितं पिबेत् ॥ १८ ॥

परवलका चूर्ण और शुद्ध हिंगुल दोनोंको एकत्र शहदमें मिला कर सेवन करनेसे रक्तपित्त दूर होताहै । अथवा मिश्री, खीलें और दाख तीनोंको समान भाग लेकर नैनीघीमें मिलाकर भक्षण करे और सिरपर घीकी मालिश करे तो नाक, मुँह आदि स्थानोंसे निकलनेवाला रक्तपित्त शमन होताहै । दाख और अडूसेके रसमें खाँड मिलाकर पान करनेसे भी रक्तपित्त नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

वासारसं सिताक्षौद्रैर्लाजान्वा शर्करासमान् ।
भक्षयन् रक्तपित्तार्तस्तृष्णादाहज्वरं जयेत् ॥
धात्रीचूर्णं सितायुक्तं भक्षयेद्रक्तपित्तनुत् ॥ १९ ॥

अडूसेके रसमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे अथवा शालिधानोंकी खीलें और खाँड दोनोंको सम भाग लेकर

प्रतिदिन प्रातः सायंकाल सेवन करनेसे रक्तपित्तकी पीडा, तृष्णा, दाह, ज्वर आदि सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं । आमलोंके चूर्णको मिश्री मिलाकर शीतल जलके साथ सेवन करनेसेभी रक्तपित्त दूर होताहै ॥ १९ ॥

कास रोग (खाँसी) ।

दोषाः शोषमनोऽभितापकुपिताः कुर्वंति कासं ततः
पीतं पूतिकफं प्रतीपनयनः पूयोपमं ष्ठीवति ।
शीतोष्णेच्छुरकारणेन बहुभुक्स्निग्धप्रसन्नाननः
पार्श्वार्त्यल्पबलक्षयाकृतिरपि प्रादुर्भवत्यन्यथा २० ॥

शोष, मनमें सन्ताप, अधिक परिश्रम और रूक्ष पदार्थोंका अत्यन्त सेवन इत्यादि अनेक कारणोंसे वातादि दोष कुपित होजाते हैं । इस प्रकार दोषोंके कुपित होनेसे कासरोग (खाँसी) उत्पन्न होताहै । कासरोगीके नेत्र विकृत होजाते हैं, वह पीले रंगका, दुर्गन्धित तथा पीबके समान कफ थूकता है । उसको कभी शीतल और कभी उष्ण पदार्थ खानेकी इच्छा होती है । रोगी कभी २ विना किसी कारणके ही अधिक भोजन करलेताहै । उसके मुखपर स्निग्धता और प्रसन्नता मालूम होती है । पसलियोंमें पीडा होती है और थोडा थोडा बल क्षीण होताहै । इसके अतिरिक्त रोगीकी जैसी प्रकृति होती है, तदनुसार वैसेही लक्षण प्रकट होते हैं ॥ २० ॥

कासनाशन रस ।

सार्कतीक्ष्णाभ्रकोऽगस्त्यकासमर्दवरारसैः ।
मर्दितो वेतसाम्लेन ।पाण्डतः कासनाशनः ॥२१ ॥

ताँबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, अभ्रकभस्म इन तीनोंको समानभाग लेकर अगस्तिया, कसौंदि, चकवड, त्रिफला और

अमलबेंत इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार मर्दन करके दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंके सेवन करनेसे सब प्रकारकी खाँसी दूर होजाती है ॥ २१ ॥

कासहर रस ।

तारे पिष्टशिलां क्षिप्त्वा हरितालाच्चतुर्गुणाम् ।
वासागोक्षुरधाराभ्यां मर्दितः प्रहरद्वयम् ॥ २२ ॥
प्रस्विन्नो वालुकायंत्रे गुंजाद्वितयसंमितः ।
कासं त्रिकटुनिर्गुंडीमूलचूर्णयुतो हरेत् ॥ २३ ॥

रूपेकी भस्म १ तोला, हरताल १ तोला और मैनसिल ४ तोले सबको अडूसा और गोखुरूके रसमें दो प्रहर (३-३ घंटे) तक खरल करे । फिर गोला बनाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके बालुकायन्त्रमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर बारीक पीस लेवे । इस औषधिको दो रत्ती परिमाण लेकर त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) और सिह्मालूकी जडके चूर्णमें मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी अवश्य दूर होती है ॥ २२ ॥ २३ ॥

रत्नकरण्ड रस ।

भूनागाभ्रकयोः सत्त्वं कांतहेमाऽर्करूप्यकम् ।
मुक्ताफलानि रत्नानि तार्प्यं वैक्रांतमेव च ॥ २४ ॥
भस्मीकृतमिदं सर्वं पृथङ् माषमितं मतम् ।
निष्कमात्रमितं शुद्धं राजावर्तरजस्तथा ॥ २५ ॥
एतत्सर्वं समं योज्यं मर्दयित्वाम्लवेतसैः ।
रुद्ध्वा मूषोदरे कोष्ठ्यां धमेदाकाशदर्शनम् ॥ २६ ॥
शतवारं धमेदेवं मर्दयित्वाऽम्लवेतसैः ।
ततः संचूर्णिते चास्मिन्मुक्ताभस्म द्विशाणकम् ॥२७॥

मरिचं पंच शाणेयं क्षिप्त्वा संमर्द्य यत्नतः।
रम्ये करंडके क्षिप्त्वा स्थापयेत्तदनंतरम् ॥ २८ ॥
सोऽयं रत्नकरण्डको रसवरो मध्वाज्यसंक्रामितो
हन्याच्छूलगदं ज्वरं ग्रहणिकां कासं च हिध्मामयम्।
शूलं शोषमहोदरं बहुविधं कुष्ठं स हन्याद्द्रुतान्
बल्यो वृष्यतमःप्रदीपनकरःस्वस्थोचितो वेगवान्२९

कैंचुओंका सत्त्व, अभ्रकका सत्त्व, कान्तलोह भस्म, सुवर्ण भस्म, ताँबेकी भस्म, चाँदीकी भस्म, सच्चे मोती, हीरा, माणिक, प्रवाल, पन्ना, पुखराज, गोमेद मणि, वैदूर्य्य मणि, नीलम, सोनामाखी और वैक्रान्तमणि इन प्रत्येककी भस्म एक २ माशा और शुद्ध राजावर्त्त (रेबटी) की भस्म एक निष्क परिमाण (४ माशे) लेकर सबको एकत्र मिलाकर अमलबेंतके रसमें खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको मूषाके सम्पुटमे बन्द करके मूषाको अंगारकोष्ठीमें रखकर फूँके। जब मूषामेंसे सफेद या आस्मानी रंगकी ज्वाला निकलने लगे तबतक उसको पकावे। फिर स्वांग शीतल होनेपर औषधिको निकालकर अम्लबेंतके रसमें घोटे और फिर इसी प्रकार मूषामें बन्दकरके फूँके। इस प्रकारसे सौ बार अम्लबेंतके रसमें घोटकर सौबार फूँके। फिर खूब बारीक पीसकर उसमें मोतीकी भस्म ८ माशे और मिरचोंका चूर्ण २० माशे परिमाण डालकर खूब अच्छे प्रकारसे खरल करे। इसके पश्चात् उसको एक उत्तम शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको रत्नकरण्ड रस कहते हैं। यह सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम रस है। इसको यथोचितमात्रासे मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर, संग्रहणी, खाँसी, हिचकी, शूलरोग, धातुशोष, भयंकर उदररोग और अनेक प्रकारके कुष्ठरोग शीघ्र नाश होजाते हैं।

यह रस अत्यन्त बलकारक, वीर्यवर्द्धक, जठराग्निको दीपन करनेवाला, स्वस्थमनुष्यके लिये परम उपयोगी और वेगवान् (अर्थात् शरीरमें तत्काल व्याप्त होने वाला) है ॥ २४-२९॥

भूतांकुश रस।

शुद्धसूतस्य भागैकं भागैकं शुद्धगंधकम्।
भागत्रयं मृतं ताम्रं मरिचं पंचभागिकम् ॥ ३० ॥
मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं भवेत्।
भूतांकुशस्य भागैकं सर्वं चाम्लेन मर्दयेत् ॥ ३१ ॥
यामं भूतांकुशो नाम माषैकं वातकासजित्।
अनुपानं लिहेत्क्षौद्रैर्विभीतकफलत्वचः ॥ ३२ ॥
स्वयमग्निरसो वाऽपि भक्ष्योऽनेन द्विशाणकः।
पित्तकासारुचिश्वासं क्षयं पाण्डुं च नाशयेत् ॥३३॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, ताम्रभस्म ३ तोले, मिरच ५ तोले, आभ्रककी भस्म ४ तोले, शुद्ध वत्सनाभ विष १ तोला और शंख भस्म १ तोला इन सबको एकत्र खरल करके अमलबेंतके रसमें १ प्रहरतक घोटे। फिर सुखाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको एक माशे लेकर बहेडेके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा एक माशा यह रस और एक माशा आगे कहा हुआ स्वयमग्निरस दोनोंको शहदमें मिलाकर सेवन करे। इसके सेवनसे वातज और पित्तज खाँसी, अरुचि, श्वास, क्षय और पाण्डु ये सब रोग दूर होते हैं इसको भूतांकुश रस कहते हैं ॥ ३०-३३ ॥

बालबद्धरस।

रसभस्म विषं तुल्यं गंधकं द्विगुणं मतम्।

बोलतालकबाह्लीककर्कोटीमाक्षिकं निशा ॥ ३४ ॥
कंटकारी यवक्षारं लांगलीक्षारसैंधवम् ।
मधूकसारं संचूर्ण्य सप्ताहं चार्द्रकद्रवैः ॥ ३५ ॥
गुटिकां बदराकारां श्लेष्मकासापनुत्तये ।
भक्षयेद्बोलबद्धोयं रसः सश्वासपांडुनुत ॥ ३६ ॥

पारेकी भस्म १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ १ तोला, गन्धक २ तोले, तथा बोल, हरताल, हींग, ककोडा सोनामाखीकी भस्म, हल्दी, कटेरी, जवाखार, कालिहारीकी जड, सज्जी, सैन्धानमक और मुलैठीका सत्त ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको एकत्र बारीक पीसलेवे फिर सात दिन तक अदरखके रसमें घोटकर बेरकी समान गोलियाँ बना लेवे । यह रस कफजनित खाँसीको दूर करनेके लिये परम उपयोगी है । तथा श्वास और पाण्डु रोगको शीघ्र नष्ट करता है । इसको बोलबद्ध रस कहते हैं ॥ ३४-३६ ॥

अग्निरस ।

रसगंधकपिप्पल्यो हरीतक्यक्षवासकम् ।
षडुत्तरगुणं चूर्णं बब्बूलक्वाथभावितम् ॥ ३७ ॥
एकविंशतिवाराणि शोषयित्वा विचूर्णयेत् ।
भक्षयेन्मधुना हंति कासमग्निरसो ह्ययम् ॥ ३८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ५ ताल और अडूसा ६ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके बबूलके क्वाथमें २१ बार भावना देदेकर २१ बार सुखावे । फिर बारीक पीसकर रखलेवे यह अग्निरस शहदमें मिलाकर भक्षण करने ही खाँसीको नष्ट करदेता है ॥३७॥३८॥

स्वयमग्नि रस ।

त्रिकटु त्रिफला चैला जातीफललवंगकम् ।
एतेषां समभागानां समपूर्वरसो भवेत् ॥ ३९ ॥
संचूर्ण्याऽऽलोडयेत्क्षौद्रे भक्ष्यो निष्कद्वयं सदा ।
स्वयमग्निरसो नाम क्षयकासानिकृंतनः ॥ ४० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, इलायची, जायफल और लौंग ये सब औषधियाँ समानभाग और सबके बराबर उपर्युक्त अग्निरस लेवे । सबको एकत्र खरल करके रखलेवे उसमेंसे प्रतिदिन दो २ निष्क परिमाण लेकर शहद्में मिलाकर सेवन करे । यह स्वयमग्निरस नामक रस क्षय और कासरोग (खाँसी) को समूल नष्ट कर देता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

साधारण उपाय ।

भृंगराजस्य पत्राणि मधुना चूर्णितानि हि ।
गोलकं धारयेद्वक्त्रे कासविष्टंभशांतये ॥ ४१ ॥
अर्कैरण्डस्य पत्राणां रसं पीत्वा च कासजित् ।
दंतीमूलस्य धूमं वा निर्गुंड्या वा पिबेज्जयेत् ॥४२॥
इंद्रवारुणिकामूलं भृंगीकृष्णातिलैः सह ।
भक्षयेत्क्षयकासार्तो निष्कमात्रं प्रशांतये ॥ ४३ ॥
इंद्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम् ।
शर्करासहितं खादेदूर्ध्वश्वासप्रशांतये ॥ ४४ ॥

भाँगरेके पत्तोंको बारीक पीसकर शहदमें मिलाकर गोली बना लेवे । उसको मुखमें धारण करनेसे खाँसी और विष्टम्भ रोग दूर होता है । आक और अण्डके पत्तोंके रसको पान

करनेसे भी खाँसी दूर होती है। अथवा दन्तीकी जड या निर्गुण्डीकी जडका धूमपान करे तो खाँसी दूर होजाती है। अथवा इन्द्रायनकी जड, भाँगरा, पीपल और तिल इन सबको समानभाग लेकर बारीक चर्ण करके कपडछान करलेवे। इस चूर्णको चार २ माशे परिमाण सेवन करनेसे क्षयकी खाँसी और उसकी पीडा शान्त होती है। अथवा इन्द्रायनकी जड, देवदारु, और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) इन सब औषधियोंके समानभाग चूर्णको खाँडमें मिलाकर सेवन करनेसे ऊर्ध्वश्वास और कास (खाँसी) दोनों रोग शमन होते हैं ॥ ४१-४४ ॥

श्वासरोग (दमा) ।

श्लेष्मोपरुद्धगमनः पवनोऽतिदुष्टः
संदूषयन्ननु जलान्नवहाश्च नाडीः ।
आमाशयोद्भवमिदं विदधात्युरस्थं
श्वासे च वक्रगमनो हि शरीरभाजाम् ॥ ४५ ॥

कण्ठमें कफके रुकजाने या जमजानेसे वायुका संचार अच्छे प्रकारसे नहीं होसकता, इसलिये वायु दूषित होजाता है। दूषित वायु अन्न और जलको बहानेवाली नाडियोंको दूषित करदेता है और स्वयं वक्रगतिवाला होजाता है। इस प्रकारका मनुष्योंके आमाशयसे उठाहुआ वायु वक्षःस्थलमें आकर श्वासरोग उत्पन्न करदेता है ॥ ४५ ॥

सूर्यावर्त्त रस ।

सूतार्धं गंधकं मर्द्यं यामैकं कन्यकाद्रवैः ।
द्वयोः समं ताम्रभस्म पूर्वकल्केन मेलयेत् ॥ ४६ ॥
दिनैकं हंडिकामध्ये पक्वमादाय चूर्णयेत् ।
सूर्यावर्तरसो ह्येष द्विगुंजः श्वासजिद् भवेत् ॥ ४७ ॥

शुद्ध पारा २ तोले और शुद्ध गन्धक १ तोला, दोनोंको घीग्वारके रसमें एक प्रहर तक खरल करके कल्क बनाले। उसमें तीन तोले ताम्रभस्म मिलाकर गोला बनाकरके शराव-सम्पुटमें बन्द करके एक दिन तक भाण्डयन्त्रमें पकावे । फिर स्वाङ्गशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर बारीक चूर्ण करलेवे । इसको सूर्यावर्त्त रस कहते हैं । यह रस दो रत्ती परिमाण सेवन करनेसेही श्वासरोगको दूर कर देता है ॥ ४६ ॥ ४७॥

श्वासान्तक रस ।

सूतः षोडश तत्समो दिनकरस्तस्यार्धभागो बलिः
सिंधुस्तस्य समः सुसूक्ष्ममृदितः षट्पिप्पलीचूर्णितः।
जंबीरस्वरसेन मर्दितमिदं तप्तं सुपक्कं भवेत्
कासश्वाससगुल्मशूलजठरंपाण्डुं लिहन्नाशयेत्॥४८॥

पारा १६ तोले, ताम्रभस्म १६ तोले, गन्धक ८ तोले, सैंधानमक ८ तोले और पीपल ६ तोले इन सबको एकत्र बारीक पीसकर जम्बीरीनींबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके एक दिन तक भाण्डपुटमें पकावे। फिर बारीक खरलकरके रख लेवे। इस रसको प्रतिदिन प्रातः सायंकाल एक या दो रत्ती परिमाण सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, गुल्मरोग, शूल, उदररोग और पाण्डुरोग समूल नष्ट होजाते हैं ॥ ४८ ॥

श्वासहर वटक ।

साधारणं तु वटकं वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।
पारदं गंधकं चैव पलमेकं पृथक् पृथक् ॥ ४९ ॥
पलत्रयं त्रिकटुकं वंगमेकपलं क्षिपेत् ।

सर्वमेकत्र संयोज्य दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ ५० ॥
गोमूत्रेण तथा त्रीणि दिनानि परिमर्दयेत् ।
अक्षप्रमाणवटकं छायाशुष्कं तु कारयेत् ॥ ५१ ॥
नित्यमेकं तु वटकं दिनानि त्रिंशदेव च ।
श्वासकासज्वरहरमग्निमांद्याऽरुचिप्रणुत् ॥ ५२ ॥

अब स्त्री, बालक, वृद्ध आदि सर्व साधारणकेलिये उपयोगी श्वासनाशक गोलियोंका वर्णन करता हूँ, इसपर यत्नपूर्वक ध्यान देना चाहिये। पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, सोंठ, मिरच, पीपल तीनों एक २ पल और वंगभस्म ४ तोले इन सबको एकत्र ३ दिनतक खरल करे। फिर ३ दिनतक गोमूत्रमें घोटकर एक २ तोलेकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे। उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करे। इस रसको तीस दिन पर्यन्त नियमपूर्वक सेवन करनेसे श्वास, खांसी, ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ४९-५२ ॥

सप्तामृतावटी।

रसभागो भवेदेको गंधको द्विगुणो मतः ।
त्रिभागा पिप्पली ग्राह्या चतुर्भागा हरीतकी ॥५३॥
विभीतः पंचभागस्तु वासा षड्गुणिता भवेत् ।
भाङ्गी सप्तगुणा ग्राह्या सर्वं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ५४॥
बब्बूलक्काथमादाय भावयेदेकविंशतिः ।
विभीतकप्रमाणेन मधुना गुटिकां चरेत् ।
एकैकां भक्षयेत्प्रातर्वटी सप्तामृताऽभिधा ॥
श्वासकासादिकं व्याधिं तत्क्षणान्नाशयेदियम् ॥५५॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, पीपल ३ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ५ तोले, अडूसा ६ तोले और भारंगी सात तोले लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके बबूलके क्वाथमें २१ बार भावना देवे। फिर शहदके साथ मिलाकर एक २ तोलेकी गोलियाँ बना लेवे। इनको सप्तामृतावटी कहते हैं। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक २ गोली भक्षण करे। ये गोलियाँ श्वास, खांसी आदि व्याधियोंको तत्काल नाश करती हैं॥ ५३–५५॥

नीलकण्ठ रस।

सूतं शुल्बं सुलोहं बलिममृतयुतं त्रित्रिकं रेणुकाब्दं गंडीरं केसराग्निं द्विगुणगुडयुतं मर्दयित्वा समस्तम्। कुर्यात्कोलास्थिमात्रान्सुरुचिरवटकान्भक्षयेत्प्राग्दिनादौ पथ्याशीसर्वरोगान्हरति च नितरां नीलकंठाभिधानः ५६।

पारा, तांबेकी भस्म, कान्तलोह भस्म, गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिजातक, रेणुका, नागरमोथा, शुण्ठिया शाक, केसर और चीता सब औषधियोंको एकत्र कूटपीसकर कपडछान करलेवे। उस चूर्णमें दुगुना गुड मिलाकर खरल करे, फिर बेरकी गुठलीके बराबर उत्तम गोलियां बना लेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली भक्षण करे और पथ्यपदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार निरन्तर सेवन करनेसे यह रस श्वास कासादि सर्व प्रकारकी व्याधियोंको अवश्य नष्ट करता है॥ ५६॥

श्वासकासकरिकेसरी रस।

तारताम्ररसपिष्टिका शिला
गंधतालसमभागिकं रसैः।
आटरूषसुरसार्द्रसंभवै–

मर्दय प्रकुरु गोलकं ततः ॥ ५७ ॥
मृत्स्नया च परिवेष्टय गोलकं
यामयुग्ममथ भूधरे पचेत् ।
गंधकेन कुरु तत्समं तत-
श्चाऽऽटरूषकटुकैर्विभावयेत् ॥ ५८ ॥
श्वासकासकरिकेसरीरसो
वल्लमस्य परिसेवयेद्बुधः ॥ ५९ ॥

चांदीकी भस्म, तांबेकी भस्म, पारदपिष्टी, शुद्ध मैनसिल, गन्धक और हरताल इन सबको समानभाग लेकर अडूसा, तुलसी और अदरख प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार खरल करके गोला बना लेवे । उस गोलेको अण्डके पत्तोंमें लपेट कर ऊपरसे कपरौटी करके सुखा लेवे। फिर उसको भूधरयन्त्रमें रखकर ६ घंटेतक पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर चूर्ण करले और समानभाग गन्धक मिलाकर अडूसा तथा त्रिकुटेके रसमें एक एक बार भावना देकर सुखा लेवे । यह रस श्वास कासरूपी गजेन्द्रको दमन करनेके लिये सिंहके समान है, इसलिये इसको श्वासकासकरिकेसरीरस कहते हैं । इसको एकसे तीन रत्तीतक शहदके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ५७-५९ ॥

सूर्यरस ।

रसगंधकताम्राभ्रं कणाशुण्ठ्यूषणं समम् ।
भूतमेकं विषं चैकं सूर्यः कासादिनाशनः ॥ ६० ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, पीपल, सोंठ, मिरच ये सब समानभाग और शुद्ध वत्सनाभ तथा बहेडा एक भाग, सबको बारीक चूर्ण करके एकमएक करलेवे । इसको सूर्यरस

कहते हैं । यह रस खांसी श्वास आदि रोगोंको शमन करनेके लिये विशेष उपयोगी है ॥ ६० ॥

सामान्य उपचार ।

गंधकं मरिचं साज्यं पिबेच्छ्वासकफापहम् ।
शिला हिंगु विडंगं च मरिचं कुष्ठसैंधवम् ॥ ६१ ॥
मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षं श्वासकासकफापहम् ॥ ६२ ॥

शुद्ध गन्धक और मिरचोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और कफके रोग दूर होते हैं । अथवा शुद्ध मैनसिल, हींग, वायविडंग, मिरच, कूठ और सैन्धानमक इन औषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको एक २ तोला परिमाण लेकर घृत और शहदमें मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे श्वास खांसी और कफके विकार नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

हिक्कारोग (हिचकी) ।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः ।
शीतपानाशनस्थानरजोधूमाऽऽतपानिलैः ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघाताऽपतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ ६२ ॥

दाहकारक, गुरुपाकी, विष्टम्भ (अफरा कब्ज) कारक, रूखे और अभिष्यन्द (कफ) कारक पदार्थोंका भोजन करनेसे, तथा शीतल जलपान, शीतल आहार, शीतल स्थानमें निवास, धूली, धूआँ, धूप और तीव्र वायुका सेवन, अधिक व्यायाम (परिश्रम), बोझा उठाना, मार्गमें चलना, मलमूत्रादिके वेगको रोकना, चोट लगना, अतृप्तिकर पदार्थोंका भोजन आदि कारणोंसे मनुष्योंके हिक्का श्वास और कासरोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥

हिक्कानाशन रस ।

रसगंधकधान्याभ्रं तालताप्योपलं क्रमात् ।
भागवृद्धं वचाकुष्ठहरिद्राक्षारचित्रकैः ॥ ६३ ॥
सपाठा लांगली व्योषसैंधवाक्षविषैः समम् ।
भावितं भृंगनीरेण हिक्कावैस्वर्यकासनुत् ॥ ६४ ॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, धान्याभ्रक ३ तोले, हरतोले ४ तोले और सोनामाखीकी भस्म ५ तोले लेकर सबको बारीक खरल करलेवे । फिर समस्त धातुओंके बराबर वच, कूठ, हल्दी, जवाखार, चीता, पाढल, कालिहारीकी जड' त्रिकुटा, सैंधानमक, बहेडा और शुद्ध वत्सनाभ इन सब औषधियोंका समान भाग मिश्रित चूर्ण लेकर सबको एकत्र भांगरेके रसमें भावना देवे । इस रसको उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे हिचकी, स्वरभंग और खांसी ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ । ६४ ॥

ताम्रभस्मका उपयोग ।

पक्वताम्रे रसः पिष्टो बलिना हिध्मिनां हितः ॥ ६५ ॥

ताम्रभस्म, पारा और गन्धक तीनोंको समान भाग लेकर प्रथम ताम्रभस्ममें पारेको मर्दन करे, फिर गन्धकके साथ खरल करे। इस प्रकार सबको उत्तम प्रकारसे घोटकर एकमएक करलेवे । यह औषध हिध्म (हिचकी) रोगियोंके लिये विशेष हितकारी है ॥ ६५ ॥

शिलापूत रस ।

चूर्णं पाठेन्द्रवारुण्योर्भाण्डे दत्त्वाऽथ कूनटीम् ।
तत्पृष्ठे शुद्धसूतं च कुनट्यंशं प्रदापयेत् ॥
सूतार्धं कुनटीचूर्णं तस्यार्धं पूर्वमूलिकाः ॥ ६६ ॥

चूर्णं दत्त्वा पचेच्चुल्ल्यां यामाष्टं मृदुवह्निना ।
शिलापूतो रसो नाम हंति हिक्कां त्रिगुञ्जकः ॥ ६७ ॥

पाढका चूर्ण ४ तोले, इन्द्रायनकी जडका चूर्ण ४ तोले और शुद्ध मैनसिल ४ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करले, फिर उसमें १ तोला शुद्ध पारा मिलाकर पानीके साथ घोटकर गोला बनाले । उसको सुखाकर शरावसंपुटमें बन्द करदे। बन्द करनेसे पहले गोलेके ऊपर शुद्ध मैनासिलका चूर्ण ६ मासे और रास्नाका चूर्ण ३ मासे डालदेवे । फिर कपरौटी करके भाण्डपुटमें रखकर चूल्हेपर चढावे और मन्द मन्द अग्निके द्वारा ८ प्रहर तक पकावे स्वांगशीतल होनेपर बारीक पीसकर रखलेवे इसको शिलापूत रस कहते हैं । यह रस १ रत्ती परिमाण खानेसे ही हिक्का रोगको नष्ट करदेता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

मंथानभैरव रस ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् ।
सैंधवं गंधकं तालं कटुकं चूर्णयेत्समान् ॥ ६८ ॥
देवदालीपुनर्नव्योर्निर्गुंडीमेघनादयोः ।
तिक्तकोषातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ ६९ ॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसमंथानभैरवम् ।
कफरोगप्रशांत्यर्थं निंबक्वाथं पिबेदनु ॥ ७० ॥

पारेकी भस्म, ताम्र भस्म, हींग, पोहकरमूल, सेन्धानमक, गन्धक, हरताल और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करले । फिर बंदाल, पुनर्नवा, सिह्मालू, चौलाईकी जड और कडवी तोरई इन औषधियोंके रसमें क्रमसे एक २ दिन तक खूब अच्छे प्रकारसे घोटे, फिर सुखाकर पीसकर

रखले। उसमेंसे प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे नीमका क्वाथ पिये । यह मन्थानभैरवरस कफके समस्त रोगोंको शमन करनेके लिये उपयोगी है ॥ ६८-७० ॥

श्वासकासघ्नी वटी ।

विश्वादित्रिकनिर्गतद्रवनिशाकीरप्रियोत्थं दलं
नीलग्रीवगलालयं सुरपतेस्तार्तीयनेत्राभिधम् ।
विद्वत्पुञ्जवती कृमिप्रतिभटं निर्गुंडिकावारिणा
तुल्यांशाश्चणकप्रमाणवटिकाः सश्वासकासाघ्निकाः ७१

सोंठ, मिरच, पीपल, सूखी हल्दी, सिरसके पत्ते, वत्सनाभ विष, चीता, ब्राह्मी और वायविडङ्ग सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करले, फिर निर्गुण्डीके रसमें घोटकर चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंके सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, हिचकी आदि रोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ ७१ ॥

सामान्य उपचार ।

क्वाथं रास्नाबृहत्यग्निबलादुग्धैश्च पाययेत् ।
हिक्किनं पाययेद्धूमं पत्रैः शिखिनिशोद्भवैः ॥ ७२ ॥
कर्षैकं गंधकं शुद्धं घृतैश्चोष्णोदकैः पिबेत् ।
कफं हंत्यथ वा क्षौद्रैः पञ्चवक्त्ररसः खलु ॥ ७३ ॥

जिस मनुष्यको हिचकी आती हो, उसको रास्ना, बडी कटेरी, चीता और खिरैंटी इनका क्वाथ दूधमें मिलाकर पिलावे । अथवा चीता और हल्दीके पत्तोंका धूमपान करावे । या एक कर्ष परिमाण शुद्ध गन्धकको घृतमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे गरम जल पिये । अथवा पंचवक्त्ररसको शहदमें

मिलाकर सेवन करे । इनमेंसे किसी एक प्रयोगको सेवन करनेसे कफरोग, हिचकी, श्वास, खाँसी आदि सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

स्वर भंग रोग ।

" अत्युच्चभाषणविषाऽध्ययनाभिघात-
संदूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥"

बहुत जोर २ से बोलना, गाना, विषखाना, उच्चस्वरसे पढना, गलेमें किसी चीजका अटकजाना या चोट लगजाना अथवा प्रकृति विरुद्ध आहार विहारका सेवन आदि अनेक कारणोंसे वात, पित्त आदि तीनों दोष अथवा कोई एक दोष कुपित हो जाताहै । कुपित हुए दोष स्वरको बहानेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर स्वरको नष्ट करदेते हैं, इसलिये स्वर (आवाज) बैठजाताहै; अर्थात् गला पडजाता है या स्वर विकृत होजाता है । इसको स्वर भंग रोग कहते हैं । स्वर भंग ६ प्रकारका होता है ॥

पर्पटीरस ।

रसं द्विगुणगंधेन मर्दयित्वा सभृंगकम् ।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते द्रावितं बदराग्निना ॥ ७४ ॥
ऊर्ध्वाधो गोमयं दत्त्वा कदल्याः कोमले दले ।
स्निग्धया लोहदर्व्या च पर्पटाकारतां नयेत् ॥ ७५ ॥
लोहपात्रे विनिक्षिप्ता लोहपर्पटिका भवेत् ।
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्ता ताम्रपर्पटिका भवेत् ॥ ७६ ॥
विषपादं च युंजीत तत्साध्येष्वामयेषु च ।

सुरसाया जयंत्याश्च कन्यकाऽऽटकरूषयोः ॥ ७७ ॥
त्रिफलाया मुनेर्भाङ्ग्या मुंड्यास्त्रिकटुचित्रयोः ।
भृंगराजस्य वह्नेश्च प्रत्यहं द्रवभावितम् ॥ ७८ ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा भावयेत्पुनः ।
अंगारैः स्वेदयेदीषत्पर्पटीरसमुत्तमम् ॥ ७९ ॥
गुञ्जाष्टकं ददीतास्य तांबूलीपत्रसंयुतम् ।
पिप्पलीदशकैः क्वाथं निर्गुंड्याश्चानुपाययेत् ॥
स्वरभंगे कफे श्वासे प्रयोज्यः सर्वदा रसः ॥ ८० ॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंको भाँगरेके रसमें घोट कर कज्जली करले। फिर लोहेकी कढाईमें घी चुपड कर उसमें कज्जलीको डालकरके वेरोंकी लकडीकी अग्निके द्वारा पिघलावे और लोहेकी करछीमें घी लगाकर उससे चलाताजाय। जब कज्जली रसके समान पतली होजाय तव उसको गायके गोबरके ऊपर केलेका कोमल पत्ता रखकर उसपर करछीसे लौटदे और तत्काल उसपर केलेका दूसरा पत्ता ढककर और पत्तेके ऊपर गोबर रखकर दाव दे जव वह पपडीकी समान जमजाय तव उसको ग्रहण करले। यह पर्पटी जो लोहेकी कढाईमें और लोहेकी करछीके द्वारा बनाई जाती है तो लोहपर्पटी–और जो तॉबेकी कढाईमें तथा तॉवेकी करछीके द्वारा बनाई जाती है तो ताम्रपर्पटी कहलाती है। इसके पश्चात् उस पर्पटीको वारीक पीसकर उसमें चतुर्थांश शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर तुलसी, अरणी, घीग्वार, अडूसा, त्रिफला, अगस्तिया, भारंगी, गोरखमुण्डी, त्रिकुटा, चींता, भॉगरा और भिलावे इन प्रत्यकेके रसमें क्रमसे एक एक दिनतक खरल करे। फिर अदरखके रसमें सात बार भावना देवे। फिर उसको अँगारों पर कुछ एक तापकर सुखालेवे

और शीशीमें भर कर रखदेवे । इस प्रकार सिद्ध किया हुआ पर्पटीरस बहुत उत्तम होताहै । इसको आठ २ रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करावे और ऊपरसे दशपीपलोंका चूर्ण डालकर निर्गुण्डीका क्वाथ पान करावे । यह रस स्वरभंग, कफरोग, श्वास आदि व्याधियोंमें तत्काल गुण दिखलाता है । इसलिये इन रोगोंमें इसको सदैव व्यवहार करना चाहिये ॥ ७४-८० ॥

पथ्यापथ्य ।

त्रिकंटकस्य मूलानि शुंठीं संक्षुद्य निक्षिपेत् ।
अजाक्षीरे सनीरार्धे यावत्क्षीरं विपाचयेत् ॥ ८१ ॥
तत्क्षीरं पाययेद्रात्रौ सकृणं भोजनेऽपि च ॥ ८२ ॥
कूष्माण्डं वर्जयेच्चिंचां वृंताकं कर्कटीमपि ।
आरनालं च तैलं च संसर्गं च विवर्जयेत् ॥
मासत्रयं च सेवेत कासश्वासनिवृत्तये ॥ ८३ ॥
सजीरहिंगुकव्योषैः शमयेद्ग्रहणीं रसः ।
दशमूलाऽम्भसा वातज्वरं त्रिकटुना कफम् ॥ ८४ ॥
ज्वरं मधुकसारेण पंचकोलेन सर्वजम् ।
यक्ष्माणं मधुपिप्पल्या गोमूत्रेण गुदांकुरान् ॥ ८५ ॥
शूलमेरंडतैलेन पाण्डुशोफे सगुग्गुलुः ।
कुष्ठानि भृंगभल्लातबाकुचीपंचनिंबकैः ॥ ८६ ॥
धत्तूरबीजसंयोगान्मेहोन्मादविनाशनः ।
अपस्मारं निहंत्याशु व्योषनिंबुदलैः सह ॥ ८७॥
स्तनंधयशिशूनां तु रसोऽयं नितरां हितः ।
पथ्याक्षचूर्णादिवशाद्व्याधींश्चान्यान्सुदुस्तरान् ८८॥

गोखुरूकी जड और सोंठको एक तोला परिमाण लेकर चूर्ण करके १ पाव बकरीके दूध और आधपाव जलमें मिलाकर पकावे । जब पकते २ पानी सब जल जाय और दूध मात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानले । उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करावे रात्रिमें भोजनके बाद भी उस दूधको पान करना चाहिये । इस पर्पटीरसका सेवन करनेवाले मनुष्यको पेठा, इमली, बैंगन, ककडी, काँजी, तेल आदि पदार्थ और स्त्रीसहवास ये सब त्यागदेने चाहिये । तीन महीनेतक इस रसको नियमानुसार सेवन करनेसे स्वरभंग खाँसी और श्वासरोग समूल नष्ट होजाते हैं । जीरा, हींग और त्रिकुटा इनके समान भाग मिश्रित चूर्णके साथ सेवन करनेसे यह रस संग्रहणीको दूर करता है । दशमूलके काढेके साथ सेवन करनेसे वातज्वर, त्रिकुटे (सोंठ, मिरच, पीपल) के चूर्णके साथ खानेसे कफ विकार, मुलैठीके सत्त वा क्वाथके द्वारा साधारणज्वर और पंचकोलके क्वाथके साथ देनेसे अन्य सब प्रकारके ज्वरोंको शमन करता है । तथा शहद और पीपलके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, गोमूत्रके साथ अर्शरोग, अण्डीके तेलके साथ शूल रोग, गूगलके साथ पाण्डुरोग और सूजनको दूर करता है । एवं भाँगरा, भिलावे, बाबची और नीमका पंचाङ्ग इनके काढेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ, व त्वचाके रोग, धतूरेके बीजोंके साथ देनेसे प्रमेह और उन्मादरोग, तथा त्रिकुटा और नीमके पत्तोंके चूर्णके साथ प्रयोग करनेसे अपस्मार (मृगी) रोगको बहुत शीघ्र नष्ट करता है । दूधपीनेवाले छोटे २ बालकोंके लिये तो यह रस परम उपयोगी है । हरड और बहेडेके चूर्णके साथ सेवन निरन्तर करनेसे यह रस सर्व प्रकारकी दारुण व्याधियोंको नाश कर देता है ॥ ८१-८८ ॥

सजातीफलशीतोदं योजयेत्पर्पटीरसम् ।
पित्ताजीर्णे शिरश्चास्य शीततोयेन सेचयेत् ॥ ८९॥
नस्यं निष्ठीवनं धूमं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।
अन्नं रूक्षाल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम् ॥
चिरकालस्थितं मद्यं योजयेत्कफरोगिणे ॥ ९० ॥

पित्तजन्य अजीर्णरोगमें इस रसको जायफलके चूर्णमें मिलाकर शीतलजलके अनुपानके साथ सेवन करे और सिर॰ पर शीतल जलकी धारा छोडे । कफजनित रोगमें रोगीको यह रस सेवन कराकर नस्य देवे, मुखमेंसे लार निकलवावे, धूम पान करावे, तीक्ष्ण औषधियों द्वारा वमन व विरेचन करावे । और इस पर रूक्ष (रूखे), तीक्ष्ण, गरम, चरपरे, कडवे और कषेले पदार्थ अल्पपरिमाणमें सेवन करावे तथा बहुत पुराने मद्य आसव अरिष्ट आदि पान करावे ॥८९॥९०॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

राजयक्ष्मा (क्षय) रोग ।

अग्निमांद्यं ज्वरः शैत्यं वांतिः शोणितपूयकौः ।
सत्त्वहानिश्च दौर्बल्यं राजरोगस्य लक्षणम् ॥ १ ॥
" वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनंतराः ।
क्षीयंते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥
अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः ।
ज्वरः सर्वांगगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ "

अग्निका मन्द होना, हरसमय ज्वरका रहना, शीतका लगना, रक्त और पीबकी वमन होना, ओज आदिधातुओं तथा बलका क्षय और दुर्बलताका होना, ये सब राजयक्ष्माके लक्षण हैं ॥ १ ॥

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, रस रक्तादि धातुओंका क्षय होना, अत्यन्त साहस करना और विषम पदार्थोंका भोजन करना इन चारों कारणोंसे यक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है । जिसमें वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित होजाते हैं । अत्यन्त विषय करनेवाले मनुष्यका वीर्य्य नाश होजानेपर उसकी रसादि सम्पूर्ण धातुमें क्षय होने लगती हैं, इस लिये मनुष्यका शरीर सूखनेलगता है । क्षयरोगीके कन्धे पार्श्वभाग (पसली), हाथ और पॉवोंमें पीडा तथा जलन होती है और समस्त शरीरमें ज्वर रहता है । ये राजयक्ष्मा (क्षय) रोगके लक्षण हैं ॥

कनकसुन्दररस ।

रसस्य तुल्यभागेन हेमभस्म प्रकल्पयेत् ।
तालकं गंधकं तुत्थं माक्षिकं रसकं शिलाम् ॥ २ ॥
रससाम्येन युंजीत तुत्थं भस्मीकृतं न्यसेत् ॥ ३ ॥
किंचिट्टंकणकं दत्त्वा मार्जारस्य विशा युतम् ।
प्रथमं पुटयेद्दघ्ना द्वितीयं मधुना सह ॥
वह्नौ भस्मीकृतं चेत्थं मयूराख्यतुत्थकम् ॥ ४ ॥
तालकं शोधयेदग्रे कूष्मांडक्षारपाचनात्
तैले पचेत्ततः सम्यक् चूर्णं वा परिशोधयेत् ॥ ५ ॥
गंधकं शोधयेद्दुग्धे रसकं नरवारिणा ।
माक्षिकं सिंधुसंयुक्तं बीजपूररसे पचेत् ॥

जयंतीद्रवसंपिष्टां शिलां सुपाचितां न्यसेत् ॥ ६ ॥
एकीकृत्य ततः सर्वमर्कक्षीरेण मर्दयेत् ।
जयंतीभृंगराजाभ्यां वासापाठाकुशानुभिः ॥ ७ ॥
अगस्तिलांगलीभ्यां च प्रत्येकं दिवसं शनैः ।
ततस्तु गोलकं बद्ध्वा पचेत्पूर्ववदाहृतः ॥ ८ ॥
चूर्णयित्वा ततः सम्यक् भावयेदार्द्रकाम्बुना ॥ ९ ॥
सप्तधा व्योषनिर्यासै रसः कनकसुंदरः ।
गुंजाद्वयं त्रयं वास्य राजयक्ष्मापनुत्तये ॥ १० ॥
मधुना पिप्पलीभिश्च मरिचैर्वा घृतान्वितैः ।
लेहयेद्रोगिणं वैद्यो बलावस्थाविशेषवित् ॥ ११ ॥
जयपालरजोभिर्वा शुंठ्या गव्यघृताक्तया ।
ददीत शूलिने प्राज्ञा गुल्मिने च विशेषतः ॥ १२ ॥
कादिवर्ज्यं चरेत्पथ्यं हृद्य बल्यं च पूर्ववत् ।
सन्निपाते ददीतैनमार्द्रकद्रवसंयुतम् ॥ १३ ॥
गुडूचीत्रिफलाक्वाथैः संस्कृतो गुग्गुलुर्वरः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा, सुवर्ण भस्म, हरताल, गन्धक, तूतिया, सोनामाखी, खपरिया और मैनसिल इन सबको समानभाग लेवे, इनमेंसे तूतियाको नीचे लिखी विधिके अनुसार भस्म करके डाले । तूतियामें चौथाई भाग सुहागा और बिलावकी विष्ठा मिलाकर प्रथम दहीमें घोटकर पुट देवे, फिर शहदमें घोटकर पुट देवे। इस प्रकार दो पुट देनेस तूतियेकी उत्तम भस्म होजाती है । इसके पश्चात् हरतालको पठक क्षारके जलसे भरेहुए दोला यन्त्रमें अधर लटकाकर ३ घंटतक शुद्ध कर । फिर तेलमें

और उसके बाद चूनेके पानीमें तीन २ घंटेतक दोलायन्त्रके द्वारा स्वेदित करे। गन्धकको दूधमें शुद्ध करे। खपरियाको मनुष्यके मूत्रमें २१ दिनतक स्वेद देकर शुद्ध करे। सोना माखीमें समानभाग सैंधानमक मिलाकर बिजौरानीबूके रसमें घोटकर तीनबार वाराह पुट देवे। और मैनसिलको अरणीके रसमें घोटकर कुक्कुट पुट देकर सिद्ध करे। इस प्रकार तैयार की हुई ये सब औषधियों और पारा तथा सुवर्ण भस्म सबको एकत्र मिलाकर आकके दूधमें एक दिन तक मर्दन करे। फिर अरणी, भॉंगरा, अडूसा, पाढ, चीता, अगस्तिया और कलिहारीकी जड इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक २ दिन तक उत्तम प्रकारसे खरल करे। फिर गोला बनाकर सम्पुटमें बन्द करके बाराह पुट देवे। इसके पश्चात् गोलेको निकालकर बारीक पीसकर अदरखके रसमें घोटे, फिर त्रिकुटेके क्वाथमें सात बार भावना देकर बारीक पीसलेवे। इस प्रकार यह कनकसुन्दर रस तैयार होताहै। वैद्य इस रसको दो दो अथवा तीन २ रत्तीकी मात्रासे शहद और पीपलके चूर्णमें मिलाकर अथवा मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर क्षयरोगीको सेवन करावे। इसके सेवन करनेसे राजयक्ष्मारोग नाशको प्राप्त होताहै। इस रसको वैद्य रोगीकी अवस्था और बलाबलका विचार करके न्यूनाधिक परिमाण और अनुपान विशेषके साथभी सेवन करा सकता है। शूलरोगमें इस रसको जमालगोटेके चूर्णमें मिलाकर और गुल्मरोगमें सोंठके चूर्ण तथा घृतमें मिलाकर सेवन करावे। इस रसके सेवन करनेपर पूर्वोक्त ककारादि वर्गको त्यागकर हृदयग्राही बलकारक और हितकारी पदार्थोंका आहार विहार करे। सन्निपातमें इस रसको अदरखके रसमें मिलाकर देवे। गिलोय और त्रिफला इन दोनोंके क्वाथमें शोधी हुई गूगलको

अनुपानके साथ इस रसको प्रत्येक रोगमें सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है ॥ २-१४ ॥

राजमृगांकरस ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ १५ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वाराटान्पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥ १६ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तान्निरोधयेत् ।
शुद्धं गजपुटे पच्याच्चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १७ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुंजः क्षयापहः ।
दशपिप्पलिकाक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥
सघृतैर्दापयेद्वैद्यो रोगराजप्रशांतये ॥ १८ ॥

पारेकी भस्म ३ तोले, सुवर्णभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, मैनसिल २ तोले, गन्धक २ तोले और हरताल २ तोले इन सबको संशोधन करके एकत्र मिलाकर बारीक पीसलेवे। फिर उस चूर्णको कौडियोंमें भरे और सुहागेको बकरीके दूधमें पीसकर उससे कौडियोंका मुख बन्दकरके उनको एक मिट्टीकी हँडीमें रक्खे। उस हाँडीका मुँह बन्दकरके गजपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर कौडियोंको निकालकर बारीक चूर्ण करले। इस प्रकार यह राजमृगाङ्क रस सिद्ध होताहै। इसको चार २ रत्ती परिमाण दस पीपल, २१ काली मिरच, शहद और घीमें मिलाकर सेवन करानेसे राजयक्ष्मा रोग शीघ्र शमन होताहै ॥ १५-१८ ॥

शंखेश्वर रस ।

शंखस्य वलयान्निष्कं चतुर्निष्कं वराटकम् ।

निष्कार्धं नीलतुत्थस्य सर्वतुल्यं तु गंधकम् ॥ १९॥
गंधतुल्यं मृतं नागं नागतुल्यं मृतं रसम् ।
टंकणं रसतुल्यं स्यान्मर्द्यं पाच्यं मृगांकवत् ॥ २०॥
राजयक्ष्महरः सोयं नाम्ना शंखेश्वरो मतः ॥ २१ ॥

शंखनाभिका चूर्ण १ निष्क (४ माशे) कौडियोंका चूर्ण ४ निष्क (१६ माशे) नीलाथोथा आधानिष्क (२ माशे) गन्धक, सीसेकी भस्म, पारेकी भस्म और सुहागा ये प्रत्येक औषधि ५॥-५॥ निष्क (२२ माशे) परिमाण लेवे । सबको एकत्र मर्दन करके कौडियोंमें भरकर राजमृगांक रसके समान पकावे इसको शंखेश्वर रस कहते हैं। यह रस उपर्युक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे क्षयरोगको दूर करताहै ॥ १९-२१ ॥

मृगांकपोटली रस ।

शंखनाभिं गवां क्षीरैः पेषयेन्निष्कषोडश ।
तेन मूषा प्रकर्तव्या तन्मध्ये भस्मसूतकम् ॥ २२ ॥
निष्कार्धं गंधकात्त्रीणि चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
रुद्ध्वा तद्वेष्टयेद्वस्त्रे मृत्तिकां लेपयेद्बहिः ॥ २३ ॥
शोष्यं गजपुटे पच्यान्मूषया सह चूर्णयेत् ।
गुंजामात्रः क्षयं हंति मृगांकपोटलीरसः ॥ २४ ॥

१६ निष्क परिमाण शंखनाभिको लेकर गायके दूधमें पीसकर उसकी १ मूषा बनावे। फिर पारेकी भस्म २ माशे और गन्धक ३ निष्क लेकर दोनोंकी कज्जली करके उस मूषामें भरदे और मूषाका मुँह बन्द करके ऊपरसे कपरौटीकर सुखालेवे, फिर गजपुटमें रखकर पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर मूषासहित बारीक चूर्ण करलेवे। इसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण शहद और पीपलके चूर्णमें

मिलाकर सेवन करे। यह मृगाङ्कपोटली नामक रस एक महीनेमें ही क्षयरोगको नष्ट कर देता है॥ २२-२४॥

हेमगर्भ पोटली रस।

द्विनिष्कं भस्म सूतस्य निष्कैकं स्वर्णभस्मकम्।
शुद्धगंधकनिष्कौ द्वौ चूर्णित्वा चित्रकद्रवैः॥ २५॥
द्वियामांते विशोष्याथ तेन पूर्या वराटिकाः।
वराटान्मृण्मये भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्॥ २६॥
स्वांगशीतं विचूर्ण्याऽथ पोटलीं हेमगर्भिताम्।
मृगांकवच्चतुर्गुंजं भक्षित राजयक्ष्मनुत्॥
स्वयमग्निरसं खादेत्त्रिनिष्कं राजयक्ष्मनुत्॥ २७॥

पारेकी भस्म २ निष्क (८ माशे) सोनेकी भस्म ४ माशे, शुद्ध गन्धक ८ माशे तीनोंको चीतेके रसमे ६ घंटेतक घोटकर सुखा लेवे। फिर उसको कौडियोंमें भरकर दूधमें पीसे हुए सुहागेसे कौडियोंका मुँह बन्द करके उनको मिट्टीकी हाँडीमें रख दे और उसपर मुद्रा करके गजपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर कौडियोंको निकालकर औषधिसहित बारीक पीस लेवे। इस रसको मृगांकके समान चार २ रत्ती परिमाण शहद और पीपलके साथ मिलाकर सेवन करनेसे राजयक्ष्मा रोग दूर होता है। इस रसके साथ तीन २ निष्क परिमाण स्वयमग्निरसको सेवन करनेसे तो क्षयरोग समूल नष्ट होजाता है॥ २५-२७॥

पञ्चामृतरस।

भस्मसूताभ्रलोहानां शिलाजतुविषं समम्।
गुडूचीत्रिफलाक्काथैः शोधितं गुग्गुलुं तथा॥ २८॥

मृतं नेपालताम्रं च सूतस्थाने नियोजयेत् ।
एकीकृत्य द्विगुंजं तद्भक्षयेद्राजयक्ष्मनुत् ॥ २९ ॥
पञ्चामृतरसो नाम ह्यनुपानं च पूर्ववत् ।
हरेत्क्षीरराजगंधाभ्यां जयंती वा क्षयापहा ॥ ३० ॥

पारदभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शिलाजीत, शुद्ध वत्सनाभ, गिलोय और त्रिफलेके क्राथमें शोधी हुई गूगल और नैपाली तांबेकी भस्म सबको समभाग लेकर एकत्र बारीक पीस लेवे । इस रसको नित्य दो २ रत्तीकी मात्रासे भक्षण करे और पूर्ववत् शहद, पीपलका अनुपान करे । यह पञ्चामृतनामक रस दूध और वनतुलसीके रसके साथ अथवा अरणीकी जडके चूर्णके साथ सेवन करनेसे तो क्षयरोगको अवश्य दूर करता है ॥ २८-३० ॥

क्षयशामंकरस ।

तुल्यं पारदगंधकं त्रिकटुकं ताभ्यां रजः कंबुजं
तैस्तुल्यं च भवेत्कपर्दभसितं स्यात्पारदाट्टंकणम् ।
पादांशं सकलैः समानमरिचं लिह्यात्क्रमात्साज्यकं
यावन्निष्कमितं भवेत्प्रतिदिनं मासात्क्षयः शाम्यति ३१

पारे और गन्धककी कज्जली २ तोले, त्रिकुटे (सोंठ, मिरच पीपल) का चूर्ण २ तोले, शंखभस्म ४ तोले, कौडीकीभस्म ८ तोले, सुहागा २ माशे और मिरचोंका चूर्ण १६। तोले लेकर सबको एकत्र करके एक दिनतक बारीक खरल करे । फिर प्रतिदिन क्रमसे एक एक रत्ती मात्रा बढाता हुआ एक निष्क (४ माशे) तक घृतमें मिलाकर सेवन करे इस प्रकार निरन्तर सेवन करनेसे यह रस एक मासमें ही क्षयरोगको शमन कर देता है ॥ ३१ ॥

लोकनाथ रस ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
गंधकं द्विगुणं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकांबुना ॥ ३२ ॥
चराचरास्ये संपूर्य टंकणेन निरुध्य च ।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुंधीत मृत्स्नया॥३३
शोषयित्वा पुटेद्धर्तेऽरत्निमात्रेऽपराह्णके ।
स्वांगशीतलमुद्धृत्य चूर्णयित्वाऽथ विन्यसेत् ॥३४॥
एष लोकेश्वरो नाम पुष्टिवीर्यविवर्धनः ।
गुंजाचतुष्टयं साज्यं मरिचैश्च समन्वितम् ॥
खादेत्परमया भक्त्या लोकेशे सर्वदर्शिनि ॥ ३५ ॥
अंगकार्श्येऽग्निमांद्ये च रसोऽयं कासहिक्कयोः ।
मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् ॥ ३६ ॥
लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं सदधि भोजनम् ॥ ३७ ॥
एकविंशद्दिनं यावन्मारिचं सघृतं पिबेत् ।
पथ्यं मृगांकवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ३८ ॥
वमने संप्रवृत्ते तु गुडूचीद्रवमाहरेत् ।
मधुना पाययेत्सार्धं दग्धवृंताकमाशयेत् ॥ ३९ ॥
स्नानं शीतलतोयेन मूर्ध्नि धारां विनिक्षिपेत् ॥४०॥
जाते श्लेष्मविकारे तु कदलीफलमाहरेत् ।
भृष्ट्वा तन्मरिचैः सार्धं भोजयेच्छ्लेष्मनुत्तये ।
आर्द्रकं मधुमिश्रं वा गुडार्द्रकमथापि वा ॥ ४१ ॥
भृष्ट्वा कुस्तुंबुरूनीषन्निस्तुषांश्चूर्णयेत्ततः ।

शर्कराघृतसंमिश्रान्दद्दीताऽरुचिशांतये ॥ ४२ ॥
भृष्ट्वा कुस्तुंबरीं सम्यग्घृते शर्करया पिबेत् ।
एलां मरिचसंयुक्तां यावद्भ्रांतिः प्रशाम्यति ॥ ४३ ॥
अजमोदां विडंगं च पिष्ट्वा तक्रेण पाययेत् ।
कृमिकोपप्रशांत्यर्थं क्राथं वातघ्नमुस्तयोः ॥ ४४ ॥
संस्कृत्य दुग्धिकां वह्नौ विरेके च प्रयोजयेत् ।
ईषद्भृष्ट्वा जयाचूर्णं मधुना खादयेन्निशि ॥ ४५ ॥
अंगतोदे घृतेनांगं मर्दयित्वोष्णवारिणा ।
स्नापयेद्रोगिणं वैद्यो लोकनाथं रसं स्मरन् ॥ ४६ ॥

पारेकी भस्म १ पल (४ तोले) सुवर्णभस्म १ तोला और गन्धक २ पल लेकर सबको एक दिनतक चीतेके रसमें खरल करके कौडियोंमें भरदे, फिर बकरीके दूधमें घोटेहुए सुहागेसे कौडियोंका मुँह बन्द करदे और एक हॉडीमें चूनेका लेप करके उसमें उन कौडियोंको रखदे। पश्चात् हांडीके मुँहको सकोरेसे ढखकर मिट्टीसे सन्धियोंको बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे। फिर पौन हाथ लम्बे चौडे गढ्ढेमें रखकर अपराह्णकालमें वाराहपुट देवे। जब स्वांगशीतल होजाय तब हाडीमेंसे कौडियोंको निकालकर खूब बारीक खरल करे और शीशीमें भरकर रख देवे। इसको लोकेश्वर रस कहते हैं। यह रस शरीरकी पुष्टि करनेवाला और वीर्यकी वृद्धि करनेवाला है। सर्वदर्शी परमात्मामें परम भक्ति और श्रद्धा रखता हुआ मनुष्य इस रसको प्रतिदिन चार २ रत्ती परिमाण घृत और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करे। शरीरकी कृशता, मन्दाग्नि, खांसी और हिक्का रोगमें भी इस रसको मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करे। इस रसका

सेवन प्रारम्भ करनेपर नमक त्याग देना चाहिये और दहीमें घी डालकर भोजन करना चाहिये। इस प्रकार इस रसको तीन दिनतक सेवन करे। फिर इसपर २१ दिनतक घृतमें मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करे। राजमृगांकके समान पथ्य सेवन करे और ऊपरको पैर करके, अर्थात् सिरके नीचे और पैरोंके नीचे तकिया रखकर शयन करे। इस रसके सेवन करनेसे रोगीको वमन होनेपर गिलोयके स्वरसमें शहद डालकर पान करावे। बैंगनोंका भुर्त्ता खिलावे। शीतल जलसे स्नान करावे और शिरपर शीतल जलकी धारा छोडे कफका उपद्रव उत्पन्न होनेपर केलेकी फलीको घीमें भूनकर उसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर भोजन करावे। इससे कफका विकार दूर होजाता है। अथवा अदरखके रसमें शहद मिलाकर या गुड और अदरखा कल्क मिलाकर सेवन करावे। यदि रोगीको अरुचि हो जाय तो धनियेको भूनकर उसको साफ करके बारीक पीसले, फिर खाँड और घृतमें मिलाकर देवे, इससे अरुचि दूर होजाती है। वमन होती हो तो भी भुनेहुए धनियेको खाँड और घृतमें मिलाकर सेवन करे अथवा इलायची और मिरचोंके चूर्णको खाँड और घृतके साथ सेवन करनेसे वमन शमन होजाती है। यदि कोई कृमिजनित उपद्रव हुआ हो तो उसको शान्त करनेके लिये अजमोद और वायविडंगके चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर पान करावे और अण्डकी जड तथा नागरमोथेका काढा पिलावे। इस रसके सेवनसे रोगीको दस्त होते हों तो दुद्धीके पत्तोंको अग्निपर गरम करके उनका रस निकालकर पिलावे अथवा भाँगके चूर्णको घीमें भूनकर और शहदमें मिलाकर रात्रिके समय खिलावे। यदि रोगीके अंगोंमें तोडने सरीखी पीडा होती हो तो सम्पूर्ण शरीरमें घीकी मालिश कराकर उसको गरम जलसे स्नान करावे। ये सब

क्रियायें वैद्य लोकनाथ रस (अर्थात् रसेश्वर भगवान्) को स्मरण करता हुआ करे ॥ ३२-४६ ॥

वैद्यनाथ रस ।

शंखस्य वलयं निष्कं चतुर्निष्कं वराटिकाः ।
कर्षांशं नीलितुत्थं च तालगंधकटंकणम् ॥ ४७ ॥
तारं नागरसं चार्धनिष्कांशं पूर्ववत्पुटेत् ।
वराटपूर्णं मण्डूरकालिप्तालेपने पचेत् ॥ ४८ ॥
अस्यार्धमाषं मरिचार्धमाषं
तांबूलवल्लीरसमर्दितं च ।
तत्पत्रलिप्तं मधुनाऽवलिह्या-
द्धैयंगवीनेन घृतेन वाऽपि ॥ ४९ ॥
नाडीमार्गं निर्गतं चाल्पमल्पं
पथ्यं भोज्यं लोकनाथोपदिष्टम् ।
यामे याम चैवमामण्डलांतं
सेव्यं सद्यः शोषजिद्वैद्यनाथः ॥ ५० ॥

शंखनाभि ४ माशे, कौडियोंका चूर्ण १६ माशे, नीलाथोथा, शुद्ध हरताल, गन्धक, सुहागा, रौप्यभस्म और सीसेकी भस्म ये प्रत्येक चार २ माशे और पारदभस्म २ माशे लेवे । सबको एकत्र खरल करके कौडियोंमें भरदे और दूधमें मण्डूरको पीसकर उससे कौडियोंका मुँह बन्द करके सुखालेवे । फिर उनको हाँडीमें रखकर पूर्वोक्त विधिसे वाराहपुट देवे । स्वांगशीतल होनेपर कौडियों समेत औषधियोंको बारीक पीसकर रखलेवे । इस रसको इस प्रकार सेवन करना चाहिये । यह रस ४ रत्ती और मिरचोंका चूर्ण ४ रत्ती लेकर दोनोंको

पानके रसमें घोटकर पानके ऊपर लगाकर सेवन करे, ऊपरसे शहद, माखन अथवा घृतका अनुपान करे । इस रसके जीर्ण होजानेपर लोकनाथ रसमें कहे हुए पथ्य पदार्थोंका तीन २ घंटेके बाद थोडा २ भोजन करे । इस प्रकार ४० दिनतक सेवन करनेसे यह रस धातुशोष, क्षय आदि रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ४७-५० ॥

द्वितीय लोकनाथ रस ।

अध्यर्धनिष्कौ रसतुत्थभागौ
पृथक्पृथग्गंधकटंककर्षम् ।
शंखस्य कर्षं मृतताम्रतो द्वौ
वराटिकानां नव संपुटस्थान् ॥ ५१ ॥
पक्त्वा पचेदर्कदलद्रवार्द्रान्
भूयोऽर्धभागेन करीषकाणाम् ।
अस्यार्धपादं मरिचार्धभागं
गंधाश्मनिष्कं च घृतेन लिह्यात् ॥ ५२॥
अश्नीयात्पूर्ववत्पथ्यं वासराण्येकविंशतिः ।
लोकनाथरसो नाम्ना रोगराजनिकृंतनः ॥ ५३ ॥

पारा २ माशे, तूतिया २ माशे, गन्धक, सुहागा और शंख-भस्म ये प्रत्येक एक २ कर्ष, ताम्र भस्म २ तोले और कौडि-योंका चूर्ण ९ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके शरावस-म्पुटमें रखकर वाराह पुट देवे । फिर औषधिको आकके पत्तोंके रसमें घोटकर पूर्व पुटसे आधे उपलोंकी अग्निमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको बारीक पीसकर रखलेवे ।

फिर उसमेंसे यह रस ४ रत्ती, मिरचोंका चूर्ण २ माशे और गन्धक ४ माशे लेकर सबको घीमें मिलाकर चाटे । इस रस-पर पूर्व लोकनाथ रसके समान २१ दिनतक पथ्य पदार्थोंका सेवन करे । यह लोकनाथ नामक रस राजयक्ष्माको समूल नष्ट करदेताहै ॥ ५१--५३ ॥

प्राणनाथ रस ।

अयोरजो विंशतिनिष्कमानं
विभावितं भृंगरसाढकेन ।
धत्तूरभार्ङ्गीत्रिफलारसार्द्रं
तुल्यांशताप्यं विपचेत्पुटेषु ॥ ५४ ॥
सूतस्य निष्कं समभागतुत्थं
गंधोपलौ द्वौ चतुरो वराटान् ।
पक्त्वा पुटाग्नौ समलोहचूर्णान्
पचेत्तथा पूर्वरसैर्विमिश्रान् ॥ ५५ ॥
चूर्णेऽस्मिन्मारिचाः सप्त तुत्थटंकणयोर्दश ।
संसृजेत्तत्पृथङ्निष्कान्प्राणनाथाह्वयोदितः ॥ ५६ ॥
अर्धपादो रसाद् भक्ष्यो केवलाद्राजयक्ष्मिभिः ।
शोषोदराऽर्शोग्रहणीज्वरगुल्माद्युपद्रुतैः ॥ ५७ ॥

लोहभस्मको २० निष्क लेकर एक आढक परिमाण भाँग-रेके रसमें खरल करे । फिर उसमें २० निष्क परिमाण सोना-माखीकी भस्म मिलाकर धतूरेके रसमें घोटकर बाराह पुट देवे । फिर भारंगीके रसमें और उसके बाद त्रिफलेके रसमें घोट कर एक २ बार बाराह पुट देवे । फिर बारीक चूर्ण करके रखलेवे । इसके पश्चात् पारा ४ माशे, तूतिया ४ माशे, गन्धक ८ माशे,

कौडियोंका चूर्ण ४ निष्क और लोहभस्म ३२ माशे लेकर सबको भॉगरा, धतूरा, भारंगी और त्रिफला इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार भावना देकर ४ बार गजपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक पीसलेवे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए इन दोनों रसोंको एकत्र मिलाकर उसमें मिरचोंका चूर्ण ७ निष्क, तूतियाकी भस्म १० निष्क और सुहागा १० निष्क परिमाण मिलाकर एक दिनतक खूब बारीक खरल करे। इस विधिसे तैयार किये हुए रसको प्राणनाथ रस कहते हैं। क्षयके रोगियोंको यह रस प्रतिदिन १ रत्तीसे दो रत्तीतक सेवन करना चाहिये। धातुशोष, उदररोग, अर्श, संग्रहणी, ज्वर, गुल्म आदि रोगग्रस्त मनुष्यों-कोभी यह रस यथोचित अनुपानके साथ भक्षण करना चाहिये। इसके सेवनसे उक्त समस्त रोग नाशको प्राप्त होते हैं। इसपर लोकनाथ रसके समान पथ्य करे॥ ५४-५७॥

वज्ररस।

कर्षं खर्परसत्त्वस्य षण्माषे हेम्नि विद्रुते।
षण्निष्कसूतं गंधाश्मन्यष्टनिष्के प्रवेशितम्॥५८॥
प्रवालमुक्ताफलयोश्चूर्णं हेमसमांशयोः।
क्रमाद्द्वित्रिचतुर्निष्कं मृतायःसीसभास्करम्॥ ५९॥
शार्ङ्गेयम्लेन यामांस्त्रीन्मर्दितं चूर्णितं पृथक्।
द्वौ निष्कौ नीलकटकव्योमायस्कांततालकात्॥६०
अंकोलकंगुणीबीजतुत्थेभ्यश्चतुरः पृथक्।
अष्टौ च टंकणक्षाराद्वराटानां च विंशतेः॥ ६१॥
महाजंबीरनीरस्य प्रस्थद्वंद्वेन पेषयेत्।
एतदिष्टशरावस्थं शुद्धं खार्यास्तुषस्य च॥

करीषभारे च पचेदथ माषद्वयं ततः ॥ ६२ ॥
घृतावद्वंधकाल्पादं मरिचाद्भावितादपि ।
मधुनाऽऽलोडितं लिह्यात्तांबूलीपत्रलेपितम् ॥ ६३ ॥
गतेऽस्य घटिकामात्रे प्रतियामं च पथ्यभुक् ॥ ६४ ॥
नो चेदुद्दीपितो वह्निः क्षणाद्धातून्पचत्यतः ।
दिनमेकं निषेव्यैनं त्याज्यान्यामण्डलं त्यजेत् ॥ ६५ ॥
ततः परं यथेष्टाशी द्वादशाब्दं सुखी भवेत् ।
एकमेकं दिनं भुक्त्वा वर्षे वर्षे महारसम् ॥ ६६ ॥
वर्षादौ च त्यजेत्त्याज्यं द्वादशाब्दाज्जरां जयेत् ।
एष वज्ररसो नाम क्षयपर्वतभेदनः ॥ ६७ ॥

६ माशे सुवर्णको अग्निमें पिघलाकर उसमें १ कर्ष खपरियाका सत्त्व डालकर मिलालेवे, फिर खरल करके बारीक चूर्ण करलेवे । फिर ८ निष्क परिमाण गन्धकमें ६ निष्क पारा मिलाकर कज्जली करे । इसके पश्चात् ऊपरका चूर्ण और कज्जली दोनोंको एकत्र मिलाकर उसमें मूँगा, मोती और सुवर्ण प्रत्येकका चूर्ण छै छै माशे लोहभस्म २ निष्क सीसेकी भस्म ३ निष्क और ताम्रभस्म ४ निष्क डालकर अम्लोनियाके रसमें ९ घंटेतक खरल करके सुखाकर चूर्ण करले । फिर उसमें काला खपरिया, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म और शुद्ध हरताल ये प्रत्येक दो २ निष्क, अंकोलके बीज, मालकांगनीके बीज और तूतिया प्रत्येक चार २ निष्क, सुहागा ८ निष्क और कौडियोंकी भस्म २० निष्क परिमाण मिला कर दो प्रस्थ बिजौरानीबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेको ईंटके शरावसम्पुटमें बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे उसको १ खारी (५१२ सेर) भुसके ढेरमें रख-

कर उसके ऊपर एक भार (८ सेर) आरने उपले ढककर अग्नि लगादेवे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक पीसले और शीशीमें भरकर रखदेवे। इसके पश्चात् २ माशे यह रस, २ माशे शुद्ध गन्धक और २ रत्ती मिरचोंका चूर्ण लेकर तीनोंको एकत्र पीसकर ३ तोले शहदमें मिलाले, फिर उसको एक पानके ऊपर लगाकर भक्षण करे। इस प्रकार औषध सेवन करके घडी भरके बाद भोजन करे। इसपर तीन २ घंटे पीछे स्निग्ध, सात्म्य और लघुपाकी पदार्थोंका आहार करना चाहिये। इस नियमके अनुसार पथ्य सेवन नहीं करनेसे प्रचण्ड हुई जठराग्नि रस, रक्तादि धातुओंको जलाकर सुखादेती है। इस रसको एक दिन सेवन करके ४० तिनतक पथ्य पदार्थोंका सेवन करे और त्याज्य पदार्थोंको त्याग देवे, फिर यथेच्छरूपसे आहार विहार करे तो मनुष्य १२ वर्ष तक आरोग्य रहसकता है। इस रसको प्रत्येक वर्षके पहले दिन सेवन करके ४० दिनतक पथ्य करे॥ इस प्रकारसे १२ वर्षतक इसको खानेसे वृद्धावस्था नहीं आती और न जन्मपर्य्यन्त कोई रोग होता है। यह वज्र रस क्षयरोगरूप पर्वतको भेदन करनेके लिये इन्द्रके वज्रकी समान है। इस रसको क्षयरोगीके बलाबल और अवस्थाके अनुसार उचितमात्रा और उपर्युक्त अनुपानके साथ सेवन करानेसे क्षयरोग अवश्य दूर होता है॥ ८८–९७॥

महावीर रस।

निष्कौ द्वौ तुत्थभागस्य रसादेकं सुसंस्कृतात्।
निष्कं विषस्य द्वौ तीक्ष्णात्कर्षांशं गंधमौक्तिकात् ९८
अग्निपर्णीहरिलताभृंगार्द्रसुरसारसैः।
मर्दितं लांगलीकंदप्रलिप्ते संपुटे पचेत्॥ ९९॥

अर्धपादं च पोटल्याः काकिण्यौ द्वे विषस्य च ॥
लिहेन्मरिचचूर्णं च मधुना पोटलीरसम् ॥ ७० ॥
क्षयग्रहण्यतीसारवह्निदौर्बल्यकासिनाम् ।
पाण्डुगुल्मवतामेष महावीरो हितो रसः ॥ ७१ ॥
अतिस्थूलस्य पूयासृक्कफानुद्वमतः क्षये ।
न योजयेत्क्षीररसान्विरुद्धक्रमतत्त्ववतः ॥ ७२ ॥

तूतिया २ निष्क, शुद्ध पारा १ निष्क, शुद्धवत्सनाभ १ निष्क (४ माशे), लोहभस्म २ निष्क, गन्धक ४ माशे और मोतीकी भस्म ४ माशे लेकर सबको एकत्र पीसकर अरणी, विष्णुक्रान्ता, भाँगरा, अदरख और तुलसी इन प्रत्येकके रसमें क्रमशः एक एक बार खरल करके गोला बनालेवे। फिर शराव सम्पुटके भीतर कलिहारीकी जडके कल्कका लेपकरके उसमें गोलेको रखदे और कपरौटी करके वाराहपुट देवे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इसके पश्चात् उसमें समस्त चूर्णसे चतुर्थांश मृगांक पोटली रस और ४ माशे शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर ६ घंटेतक बारीक खरल करे तो यह महावीर रस सिद्ध होताहै। इस रसको उपयुक्त मात्रासे मिरचोंके चूर्ण और शहदमें मिलाकर अथवा एक रत्ती यह रस और एक रत्ती मृगांकपोटलीरस दोनोंको शहद और मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करे। यह महावीर रस क्षय, ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, खाँसी, पाण्डु और गुल्मरोगियोंके लिये परमोपयोगी है। जो क्षयरोगी अत्यन्त स्थूल हो अथवा जिस क्षयरोगीके रक्त, कफ और पीबकी वमन होती हो तो उसको दूध और मांसरस सेवन नहीं कराना चाहिये। कारण, ये पदार्थ उसकी प्रकृतिके प्रतिकूल पडते हैं॥६८-७२॥

अरुचिरोग ।

'वातादिभिः शोकभयातिलोभ-
क्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगंधैः ।
एतैःसमस्तैश्च अरोचकाः स्युः' (?)
"हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्ता-
तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् ।
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्या-
द्वैगुण्यमोहजडताभिरथाऽपरं च ॥"

बात, पित्त आदि दोषोंके कुपित होनेसे, अथवा अत्यन्त शोक, भय, अतिलोभ और अत्यन्त क्रोध करनेसे अथवा मनको अप्रिय लगनेवाले पदार्थोंको खाने, देखने या सूंघनेसे अरुचि रोग उत्पन्न होताहै । अरुचिमें वातकी अधिकता होनेसे हृदयमें शूल और छातीमें पीडा होती है । पित्तकी अधिकता होनेसे अत्यन्त तृषा, अत्यन्त दाह और चूसने सरीखी पीडा होती है । और कफक अधिक उपद्रव होनेपर मुहसे कफ और लार अधिक निकलती है । दो दोषों अथवा तीनों दोषोंकी प्रबलता होनेपर दो दोषों अथवा तीनों दोषोंके मिश्रित लक्षण प्रकट होते हैं और पीडा अधिक होतीहै । एवं मनमें विकार, मोह और शरीरमें जडता होना आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं ॥

छर्दि (वमन) रोग ।

'अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः ।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ।

बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ।
छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नंगभंजनैः ॥
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्रं प्रधावितः ॥'

अधिक पतले, अत्यन्त चिकने, अप्रिय और अधिक नमकवाले पदार्थोंको खानेसे, तथा असमयमें और अधिक मात्रामें या प्रकृतिविरुद्ध आहार विहार करनेसे एवं अधिक परिश्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमिदोष आदि कारणोंसे तथा गर्भवती स्त्री, जल्दी २ भोजन करना, भयंकर पदार्थोंका देखना आदि अनेक कारणोंसे एकदम उत्क्लेशित (उछलता) हुआ उदरस्थ दोष जब मुँहके द्वारा बाहर निकलता है, और उसके वेगसे शरीरके समस्त अंगोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है तो उसको छर्दि (वमन) रोग कहते हैं ।

साधारण उपाय ।

मातुलुंगस्य मूलानि लाजचूर्णं ससैंधवम् ।
पिप्पलीमधुना युक्तं खादेद्वांतिप्रशांतये ॥ ७३ ॥
रजनीशंखपूगं च निष्कैकं वांतिनाशनम् ।
निष्कार्धं टंकणं वाऽथ काकमाचीद्रवैः पिबेत् ।७४।
सुगंधां वा पिबेत्खादेत्सर्ववांतिप्रशांतये ।
अलक्तकरसं क्षौद्रे रक्तवांतिहरं परम् ॥ ७५ ॥

बिजौरा नींबूकी जड, खीलोंका चूर्ण, सैंधानमक और पीपल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारकी वमन शान्त होजाती है। अथवा हल्दी, शंखभस्म और चिकनी सुपारी प्रत्येकको एक २ निष्क परिमाण लेकर एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ

सेवन करनेसे वमन दूर होती है । या २ माशे सुहागेको मको-यके रसमें मिलाकर पान करे तोभी वमन दूर होजाती है। सौंफके काथको पान करनेसे अथवा सौंफके चूर्णको भक्षण करनेसे सब प्रकारकी वमन शमन होजाती है । लाखके रसको शहदमें मिलाकर पान करना रक्तकी वमनको दूर करनेके लिये परमोपयोगी है ॥ ७३-७५ ॥

हृदयरोग ।

'अत्युष्णगुर्वन्नकषायातिक्त-
श्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः ।
संचिंतनैर्वेगविधारणैश्च
हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः' ॥

अत्यन्त गरम, गुरुपाकी, कडवे, कषैले अन्नादि पदार्थोंके खानेसे, तथा अत्यन्त परिश्रम करना, चोट लगना, भोजन पर भोजन करना, अधिक स्त्रीप्रसंग, अतिचिन्ता और मल-मूत्रादिके वेगोंको धारण करना आदि कारणोंसे हृदयरोग उत्पन्न होताहै । वह वात, पित्त, कफ, सन्निपात, कृमिदोष आदि भेदोंसे पाँच प्रकारका होताहै ॥

तृष्णारोग ।

'भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा
ऊर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च ।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां
तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥
स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु
दोषैश्च तृट् संभवतीह जंतोः'

पित्तको बढानेवाले तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल (खट्टे) आदि-पदार्थोंको अधिक परिमाणमें खानेसे, अधिक क्रोध व उपवास करनेसे पित्ताशयमें कुपित हुआ पित्त अत्यन्त भय और श्रमके करनेसे या बलका ह्रास होनेसे कुपित हुए वायुके साथ मनुष्योंके तालु, क्लोमादि स्थानोंमें प्राप्त होकर पिपासा (प्यास-तृषा) उत्पन्न करदेता है । तथा वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके द्वारा जलवाहिनी नाडियोंके दूषित होनेपर भी मनुष्यके तृषा उत्पन्न होती है । यह तृषारोग वात, पित्तादिदोषोंके भेदसे सात प्रकारका होताहै ॥

तृष्णाहर रस ।

युक्तं गन्धकपिष्ट्याऽयस्तालकं स्वर्णमाक्षिकम् ।
युक्त्या तद्भस्मतां नीतं तृष्णाच्छर्दिनिवारणम् ॥ ७६ ॥

पारे, गन्धककी कज्जलीमें की हुई लोहभस्म, तथा कज्जलीके ही द्वारा की हुई हरताल भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म तीनोंको समभाग लेकर एकत्र मिलालेवे । इस औषधिको उपयुक्त-मात्रासे उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे तृषा और वमन रोग दूर होता है ॥ ७६ ॥

मदात्यय रोग ।

" निर्भुक्तमेकांतत एव मद्यं
निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।
उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारा-
नुत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन
शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।
व्यायामभाराध्वपरिक्षितेन
वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥

अत्यम्लरूक्षावततोदरेण
सार्जीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं
करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥
शरीरदुःखं बलवत्प्रमेहो हृदयव्यथा ।
अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥
शिरः पार्श्वास्थिसंधीनां वेदना विक्षते यथा ।
जायतेऽतिबला जृंभा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥
उरोविबंधः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः ।
शरीरकंपः कर्णाक्षिमुखरोगास्त्रिकग्रहः ॥
छर्दिविड्भेद उत्क्लेदो वातपित्तकफात्मकः ।
भ्रमः प्रलापो रूपाणामसतां चैव दर्शनम् ॥
तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरणम् ।
प्रधर्षणं विहंगैश्च भ्रांतचेताः स मन्यते ॥
व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च ।
मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥"

जो मनुष्य प्रतिदिन विना भोजन किये अधिक मद्य पीता है उसके नानाप्रकारकी भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं, इससे मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु होजाती है । क्रोधकी अवस्था भयभीत होना, शोक और भूँख-प्याससे व्याकुल होना, अधिक परिश्रम करने, बोझके उठाने और मार्गके चलनेसे थक जाना, मल-मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे पीडित होना, अत्यन्त अम्ल (खट्टे) और रूक्ष पदार्थोंको पेट भरकर

खाना, अजीर्ण होनेपर भोजन करना, शरीरका निर्बल होना और गरम पदार्थोंके अधिक खानेसे शरीरका संतप्त होना इन सम्पूर्ण अवस्थाओंमें जो मनुष्य मद्यपान करता है तो वह मद्य उसके विविध प्रकारकी आधि-व्याधियोंको तथा मदात्ययरोगको उत्पन्न करदेता है। मदात्ययरोगीके शरीरमें अत्यन्त पीडा होती है तथा प्रमेह, हृदयमें वेदना, अत्यन्त अरुचि, तृषा, शीत और उष्णप्रधान ज्वर, मस्तक, पार्श्व-भाग (पसली) अस्थि और सन्धियोंमें फोडेके समान पीडा होना अत्यन्त जमुहाइयोंका आना, शरीरका फडकना शिथि-लता होना, थकावट मालूम होना, छातीका जकडना एवं खांसी, श्वास, हिचकी, निद्राका न आना, शरीरका काँपना, तथा कान, आंख मुखके रोगोंका उत्पन्न होना, पीठके बांसमें पीडा होना, वमन, अतिसार, उबकाई, चित्तमें भ्रम, प्रलाप आदि उपद्रवोंका होना, वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके भिन्नभिन्न रूपसे अथवा मिश्रित रूपसे विकार उत्पन्न होना, कुरूप और दुष्ट जीवोंका देखना, अपने शरीरमें घास-फूँस, राख, बेल, पत्ते, धूल आदि लगी हुई मालूम होना, पक्षि-योंके द्वारा घसीटा जाना, अपने आपको भ्रमयुक्त समझना और चित्तको व्याकुल करनेवाले बुरे २ स्वप्नोंका दीखना ये सब मदात्यय (नशे) के रोगके लक्षण हैं ॥

राजावर्त्त रस ।

राजावर्तो रसः शुल्बं माक्षिकं घृतपाचितम् ।
मध्वाज्यशर्करायुक्तं हंति सर्वान्मदात्ययान् ॥७७॥
राजावर्तरसः शुल्बं सूतगर्भं नियोजितम् ।
यष्टीमधुरसैर्घृष्टं घृतमध्ये विपाचितम् ॥ ७८ ॥
मध्वाज्यशर्करायुक्तं हंति सर्वान्मदात्ययान् ॥ ७९॥

राजावर्त्त (रेवटी) की भस्म, पारेकी भस्म, ताम्रभस्म और घीमें कीहुई सोनामाखीकी भस्म; सबको समान भाग लेकर शहद, घी और खांडमें मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके मदात्यय रोग नष्ट होते हैं। अथवा राजावर्त रस और तांबेके द्वारा जारण किया हुआ पारा या पारेके द्वारा की हुई तांबेकी भस्म दोनोंको समान भाग लेकर मुलैठीके रसमें खरल करके सुखा लेवे, फिर घीमें मिलाकर कुक्कुट पुट देवे। स्वांगशीतल होनेपर बारीक चूर्ण कर लेवे। यह रस मधु घृत और खांडके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके मदात्यय रोगोंका नाश कर देता है ॥ ७७-७९ ॥

भैरवनाथी पंचामृतपर्पटी ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं सत्त्वाभ्रं कांतलोहकम् ।
क्रमवृद्धमिदं सर्वं शाणेयौ नागवंगकौ ॥ ८० ॥
द्रावयित्वैकतः सर्वं रेतयित्वा ततश्चरेत् ।
पृथक्पलमितं गंधं शिलालं विनिधाय च ॥ ८१ ॥
सर्वं खल्वे विनिक्षिप्य मर्दयेदम्लवर्गतः ।
ताप्यं नीलांजनं तालं शिलागंधं च चूर्णितम् ।
दत्त्वा दत्त्वा पुटेत्तावद्यावद्विंशतिवारकम् ॥ ८२ ॥
लोहाद्विगुणसूतेन ततो द्विगुणगंधतः ।
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां क्षिप्त्वा तां लोहपात्रके ।८३।
द्रावयेद्बदरांगारैर्मृदुभिश्चाथ निक्षिपेत् ।
हेमादिपंचलोहानां भस्म चाथ विलोडयेत् ॥८४॥
अथ तत्कदलीपत्रे गोमयस्थे विनिक्षिपेत् ।
पत्रेणाऽन्येन संछाद्य कुर्याद्यत्नेन चिप्पिटीम् ॥८५॥

तस्योपरि क्षिपेत्सद्यो गोमयं स्तोकमेव च ।
स्वतः शीतं समाहृत्य पटचूर्णं विधाय च ॥ ८६ ॥
निक्षिपेदूर्ध्वदण्डायां पालिकायां ततः परम् ॥८७॥
पूर्ववद्बदरांगारैर्मृदुभिर्द्रावयेच्छनैः ।
तुल्याऽऽलकशिलागंधं पलार्धं विषभावितम् ॥८८॥
पूर्वपर्पटिकातुल्यं तस्मादल्पं मुहुर्मुहुः ।
जारयेत्पलिकामध्ये यथा दह्येन्न पर्पटी ॥ ८९ ॥
जीर्णे तालादिके चूर्णे पटचूर्णं विधीयताम् ॥ ९० ॥
पूतीकरंजषट्कोलव्याघ्रीसौभांजनाग्निभिः ।
एतैः पंचपलैः क्वाथं षोडशांशावशेषितम् ॥ ९१ ॥
तेन क्वाथेन संस्वेद्य शोषयेत्सप्तधा हि ताम् ।
विषतिंदुफलोद्भूतै रसैर्निर्गुंडिकाभवैः ॥ ९२ ॥
विभाव्य पलिकामध्ये क्षिप्त्वा बदरवह्निना ।
ईषत्प्रस्वेदनं कृत्वा स्थापयेदतियत्नतः ॥ ९३ ॥
उक्ता भैरवनाथेन स्यात्पंचामृतपर्पटी ।
व्योषाज्यसहिता लीढा गुंजाबीजेन संमिता ॥ ९४ ॥
सर्वलक्षणसंपूर्णं विनिहंति क्षयामयम् ।
श्वासं कासं विषूचीं च प्रमेहमुदरामयम् ॥ ९५ ॥
अरोचकं च दुःसाध्यं प्रसेकं च्छर्दिमुद्भवम् ।
सर्वजं गुदरोगं च शूलकुष्ठान्यशेषतः ॥ ९६ ॥
वातज्वरं च विड्बंधं ग्रहणीं कफजान्गदान् ।

---

१ पलिकेति विनिर्दिष्टा स्नेहक्षेपणयंत्रिका ।

एकद्वंद्वत्रिदोषोत्थान्रोगानन्यान्महागदान् ॥ ९७ ॥
अग्निमांद्यं विशेषेण हंतीयं पर्पटी ध्रुवम् ।
एवं समूह्य दातव्या रोगेषु भिषगुत्तमैः ॥ ९८ ॥
तत्तद्रोगहरैर्योगैस्तत्तद्रोगानुपानतः ।
क्षयादिसर्वरोगघ्नी स्यात्पंचामृतपर्पटी ॥ ९९ ॥
तैलसर्षपबिल्वाम्लकारवेल्लकुसुंभकम् ।
त्यजेत्पारावतं मांसं वृन्ताकं कुक्कुटं तथा ॥१००॥

शोधित स्वर्ण १ तोला, चांदी २ तोले, तांबा ३ तोले, अभ्रकका सत्त्व ४ तोले, कान्तलोह ५ तोले, शुद्ध सीसा ४ माशे और बंग ४ माशे लेकर सबको मूषामें भरकर तीव्र अग्निके द्वारा तपाकर गलावे। जब सब धातुयें पिघलकर एकमएक होजायँ तब शीतल करके उनको रेतीसे रेतकर चूर्ण करलेवे। फिर उसमें शुद्ध गन्धक ४ तोले, शुद्ध मैनसिल ४ तोले और शुद्ध हरताल ४ तोले मिलाकर खरलमें डालकर नीबूके रसके साथ एक दिनतक घोटे। फिर उसमें सोनामाखी, काला सुरमा, हरताल, मैनसिल और गन्धकका चूर्ण समान भाग मिश्रित पूर्वोक्त औषधिसे अर्धभाग मिलाकर नीबूके रसमें घोटकर गोला बना लेवे। उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे। इस प्रकार २० बार गजपुट देवे। प्रत्येक पुटमें सुवर्णमाक्षिक आदि औषधियोंका चूर्ण डालकर नीबूके रसमें एक २ दिनतक खरल करे और रात्रिमें पुट देवे। इस प्रकार पुट देनेसे उक्त धातुओंकी उत्तम भस्म हो जाती है। इसके पश्चात् १० तोले पारा और २० तोले गन्धककी कज्जली करके उसको लोहेकी कढाईमें घी चुपडकर डाल देवे और चूल्हेपर चढाकर बेरकी लकडियोंकी मन्द मन्द अग्निके द्वारा तपावे। जब कज्जली पिघलकर रसरूप

होजाय तब उसमें उपर्युक्त सुवर्ण आदि पंच धातुओंकी भस्म डालकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे । फिर गायके गोबरके ऊपर केलेका कोमल पत्ता रखकर उसपर कज्जलीको ढालदेवे और फिर तुरन्त उसपर दूसरा पत्ता ढककर और पत्तेके ऊपर थोडासा गोबर रखकर दाब देवे । स्वांगशीतल होनेपर उसको निकालकर बारीक चूर्ण करके कपडछान कर लेवे । इसके अनन्तर उस पर्पटीको लम्बी और ऊँची डंडीवाली लोहेकी गहरी पलीमें डालकर बेरकी लकाडियोंकी मन्द मन्द अग्निमें पूर्ववत् धीरे धीरे तपावे । पर्पटीके पिघलजानेपर उसमें वत्स-नाभ विषके रसमें भावना दिया हुआ हरताल, मैनसिल और गन्धकका चूर्ण दो दो तोले परिमाण लेकर थोडा थोडा डालता जाय और पलीके रसको चलाता जाय । जब हर-ताल आदिका सब चूर्ण जारण होजाय तब स्वांगशीतल होनेपर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानले । इस पर्पटीको पलीमें डालकर हरताल आदिका चूर्ण जारण करते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि नीचे जलती हुई अग्निकी लपटसे पर्पटी जल न जाय । (जिस यन्त्रमें घी, तेल आदि स्नेह पदार्थ डालकर तपाये जाते हैं, उसको पलिका, पली अथवा करछी कहते हैं ।) फिर दुर्गन्ध करंजकी जड ५ पल, षट्कोल (सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, चव्य और चीता) ५ पल, कटेरी ५ पल और सैंजनेकी जड ५ पल सबको एकत्र कूटकर सोलह गुने पानीमें पकावे । षोडशांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । उस क्काथको दोलाय-न्त्रमें भरकर उसमें उपर्युक्त पर्पटीको कपडेकी पोटलीमें बाँधकरके अधर लटकाकर स्वेद देवे । जब वह अच्छे प्रकारसे स्वेदित होजाय तब निकालकर सुखालेवे । इस प्रकार उसको सात बार स्वेदन करे और सात बार सुखावे । फिर इसी क्रमसे

उसको कुचलेके रस और निर्गुण्डीके रसमें एक एक भावना देकर सुखालेवे। इसके पश्चात् फिर उस पर्पटीको पलीमें डालकर बेरकी लकडियोंकी अग्निके द्वारा कुछ एक तपावे। जब स्वांगशीतल होजाय तब एक दिनतक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस प्रकार यह पंचामृत पर्पटी तैयार होती है। इसको भैरवनाथन वर्णन किया है, इसलिये यह भैरवनाथी पंचामृत पर्पटी कहलाती है। इस रसको एक रत्ती परिमाण लेकर त्रिकुटेके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त क्षयरोग नाशको प्राप्त होता है। यह पर्पटी रस श्वास, खाँसी, बिषूचिका (हैजा), प्रमेह, उदर-रोग, अरुचि, मुँहमेंसे पानीका निकलना, वमन, हृदयरोग, सब प्रकारका अर्शरोग, शूलरोग, सर्वप्रकारके कुष्ठ, वातज्वर, मलविबन्ध, संग्रहणी, कफजन्य रोग, तथा एक दोषज, द्विदो-षज, त्रिदोषज रोग मन्दाग्नि और अन्यान्य अनेक प्रकारके भयंकर रोगोंको अवश्य नष्ट करता है । सद्वैद्योंको यह रस भिन्न भिन्न रोगोंको हरनेवाले प्रयोगोंके साथ अथवा भिन्न भिन्न रोगानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करना। यह पंचामृत पर्पटी रस क्षय आदि सब प्रकारके रोगोंको नाश करनेवाली है। इसका सेवन करनेवाले मनुष्यको सरसोंका तेल, बेल, खट्टे पदार्थ, करला, कसूमके बीज या कत्था, कबूतरका मांस, बैंगन और मुर्गेका मांस ये सब पदार्थ त्याग देने चाहिये ॥ ८०-१०० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अर्शरोग ।

गुदस्य बहिरन्तर्वा जायंते चर्मकीलकाः ।
सर्वरोगकराः पुंसामर्शांसीति हि विश्रुताः ॥ १ ॥
रुधिरस्राविणस्तेषां पित्तजाः परिकीर्तिताः ।
वातजा निःसहोत्थाना उदावर्तं प्रकुर्वते ।
श्वयथुं श्लेष्मजाः कुर्युः सर्वं कुर्युस्त्रिदोषजाः ॥ २ ॥

जिस रोगमें गुदाके बाहर अथवा भीतर कीलके समान नोकीले मांसके अंकुर (मस्से) होजाते हैं और उनके द्वारा मनुष्योंके नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, उसको अर्श (बबासीर) रोग कहते हैं। पित्तजनित अर्शमें उन अंकुरोंमेंसे रक्तस्राव होताहै, इसलिये उसको रक्तार्श कहते हैं। वातजनित अर्शमें असह्य दुःख और वेदना होती है तथा उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। इसको वातार्श कहते हैं। कफजन्य अर्शमें सूजन उत्पन्न होती है और त्रिदोषजानित अर्शमें सब प्रकारके लक्षण प्रगट होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अर्शःकुठार रस ।

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगंधकम् ॥ ३ ॥
मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं तु पलत्रयम् ।
त्र्यूषणं लांगली दंती पीलुकं चित्रकं तथा ॥ ४ ॥
प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टंकणम् ।
उभौ पंचपलौ योज्यौ सैंधवं पलपंचकम् ॥ ५ ॥
द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ।
मृद्वग्निना पचेत्स्थाल्यां सर्वं यावत्सुपिण्डितम् ॥६॥

माषद्वयं सदा खादेद्रसो ह्यर्शःकुठारकः ।
तक्रेण दाडिमांभोभिः पक्ककन्देन वाऽथ तत् ॥७॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले, ताम्रभस्म १२ तोले, लोह भस्म १२ तोले, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) कलिहारीकी जड, दन्ती, पीलु वृक्ष और चीतेकी जड ये प्रत्येक आठ २ तोले, जवाखार १० तोले, सुहागा १० तोले और सैंधा नमक २० तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसलेवे। फिर उस चूर्णको लोहेकी कढाईमें अथवा कलईके बर्त्तनमें डालकर ३२ पल गोमूत्र और ३२ पल थूहरके दूधक साथ मन्द मन्द अग्निसे, पकावे । जब पकते २ सब जल शुष्क होजाय और औषधि गाढी होजाय तब उसको नीचे उतारकर शीतल होनेपर २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसायंकाल एक २ गोली तक्रके साथ अथवा अनारके रस या पके हुए जिमीकन्दके साथ सदैव सेवन करे तो सब प्रकारका अर्शरोग (बबासीर) नष्ट होजाता है। यह रस अर्शको विनाश करनेके लिये कुठार (कुलहाडे) के समान है ॥ ३-७ ॥

पित्तार्शोहर रस ।

मृतसूतार्कहेमाभ्रतीक्ष्णमुण्डं सगंधकम् ।
मंडूरं माक्षिकं तुल्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ ८ ॥
अंधमूषागतं पाच्यं त्रिदिनं तुषवह्निना ।
चूर्णितं सितया माषं खादेत्पित्तार्शसां जयेत् ॥ ९ ॥

पारेकी भस्म, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्ण लोहभस्म, मुण्डलोहभस्म, गन्धक, मण्डूरभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म इन सबको समान भाग लेकर घीग्वारके रसमें एक दिनतक खरल करे। फिर अन्धमूषामें भरकर उसपर कपरौटी करके तीन दिनतक भुसकी अग्निमें पकावे। स्वांगशी-

तल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । उसमेंसे प्रतिदिन एक २ मासा लेकर मिश्रीमें मिलाकर सेवन करे तो पित्तजनित अर्श (खूनी बवासीर) रोग दूर होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वलोकाश्रय रस ।

शुद्धं सूतं पलं गंधं गंधार्धं तालताप्यकम् ॥ १० ॥
अमृतं रसकं चैव तालकार्धविभागिकम् ।
एतेषां कज्जलीं कुर्याद्दृढं संमर्द्य वासरम् ॥ ११ ॥
त्रिदिनं मर्दयेच्चाथ दत्त्वा निंबुजलं खलु ।
वटीकृत्य विशोष्याथ काचकुप्यां निधापयेत् ॥१२॥
निष्कतुल्याऽर्कपत्रेण पिधायास्यं प्रयत्नतः ।
सार्धांगुष्ठमितोत्सेधं मृत्स्नया तां विलिप्य च ॥१३॥
ततो भाण्डतृतीयांशे सिकतापरिपूरिते ॥
निधाय सिकता मूर्ध्नि सिकताभिः प्रपूरयेत् ॥१४॥
रुद्धास्यं तदधो वह्निं ज्वालयेत्सार्धवासरम् ।
स्वांगशीतलितं काचकुप्या आकृष्य तं रसम् ॥१५॥
पटचूर्णं विधायाथ ताम्रमभ्रं पलद्वयम् ।
पलार्धममृतं चैव मरिचं च चतुष्पलम् ॥
एकीकृत्य क्षिपेत्सर्वं नारिकेरकरण्डके ॥ १६ ॥
खाद्यो गुंजाद्विमानो हरति रसवरः सर्वलोकाश्रयोऽयं
वातश्लेष्मोत्थरोगान्गुदजनितगदं शोषपाण्ड्वामयं च ।
वक्ष्माणं वातशूलं ज्वरमपि निखिलं वह्निमांद्यं च गुल्मं
तत्तद्रोगघ्नयोगैः सकलगदचयं दीपनं तत्क्षणेन ॥ १७ ॥

शोधित पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, हरताल २ तोले, सोनामाखीकी भस्म २ तोले, शुद्ध वत्सनाभ १ तोला, और शुद्ध खपरिया १ तोला इन सबको एक दिनतक एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे। फिर उसको तीन दिनतक नीबूके रसमें अच्छे प्रकारसे खरल करके तोला २ भरकी गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। उन गोलियोंको काँचकी आतशी शीशीमें भर-कर उसके मुँहको ४ मासे ताँबेके पत्रोंसे ढककर बन्द कर देवे, फिर उस ऊपर डेढ २ अँगुल ऊँची मिट्टीका लेप करके सुखा-लेवे। इसके पश्चात् एक मटकेमें ३ हिस्से रेता भरकर उसमें शीशीको गाड देवे। फिर उसको गलेपर्यन्त रेतेसे भरकर मटकेके मुँहको बन्द करके मिट्टीसे सन्धियोंको बन्द कर सुखा-लेवे। उस मटकेको चूल्हेपर चढाकर उसके नीचे डेढ दिन (३६ घंटे) तक अग्नि जलावे। जब स्वांगशीतल होजाय तब शीशीमेंसे उस औषधिको निकालकर खूब बारीक पीसकर कपडछान करलेवे। पश्चात् उसमें ताम्रभस्म १ पल, अभ्रक भस्म १ पल, शुद्ध मीठा तेलिया २ तोले, और मिरचोंका चूर्ण ४ पल मिलाकर सबको एक दिनतक खरल करके एक-मएक करलेवे, फिर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रति-दिन दो २ रत्ती परिमाण, घृतमें मिलाकर सेवन करे। यह सर्वलोकाश्रय नामक रसवातज और कफज रोग, सब प्रकारके अर्शरोग, शोष, पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा, वातजशूल, सब प्रकारके ज्वर, मन्दाग्नि, वातगुल्म आदि समस्त रोग-समूहको भिन्नभिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे शीघ्र नष्ट करता है। और तत्काल अग्निको दीपन करताहै ॥ १०-१७ ॥

अर्शोघ्न वटक।

अर्शोघ्नं वटकं वक्ष्ये पुत्रक शृणु भद्रक।
पिप्पली पिप्पलीमूलवनसूरणचित्रकम् ॥ १८ ॥

मरिचं कंटकारी च रक्तपुष्पी समांशकम् ।
पलमेकं पृथक् सर्वं श्लक्ष्णं दृषदि पेषयेत् ॥ १९ ॥
गजाजपशुमूत्रेषु शुभे भाण्डे विनिक्षिपेत् ।
मृद्वग्निना पचेत्सर्वं चूर्णशेषं यथा भवेत् ॥ २० ॥
लोणत्रयं च तत्रैव पलमेकं तु निक्षिपेत्
अक्षप्रमाणवटकान्कुर्यादेवं पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥
त्रिंशद्दिनानि मतिमानर्शोघ्नं दीपनं परम् ।
घृततक्रसमायुक्तं भोजनं संप्रदापयेत् ॥ २२ ॥

हे भद्रक पुत्र, अब मैं अर्शनाशक वटकका वर्णन करताहूँ, उसको सावधान होकर सुन । पीपल, पीपलामूल, कडवा जिमीकन्द, चीता, मिरच, कटेरी और गुडहलके फूल ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर सबको एकत्र बारीक पीस लेवे । फिर उस चूर्णको मिट्टीके बर्त्तनमें भरकर उसमें हाथी, बकरी और गौका मूत्र बत्तीस २ तोले परिमाण डाल-कर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब पकते २ सब मूत्र जल-जाय और चूर्ण मात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर उसमें सैंधानमक, समुद्रनमक और विरिया संचर नमक ये तीनों एक पल परिमाण मिलाकर एक २ कर्षकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे बुद्धिमान् वैद्य आधी गोली प्रातःकाल और आधी गोली सायंकालमें इस प्रकार ३० दिनतक रोगीको सेवन करावे और घृत तथा छाछके साथ भोजन करावे। इससे अर्शरोग नष्ट होताहै और जठराग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ १८-२२ ॥

गुदजहर रस ।

गंधं तारं तथा ताम्रं कृत्वा चैकत्र पिष्टिकाम् ।
तत्समं चाभ्रकं तीक्ष्णं गंधकात्पंचमांशकम् ॥ २३ ॥

विषं च षोडशांशेन द्वा भागौ सूतकस्य च ।
एकीकृत्य प्रयत्नेन जंबीरद्रवमर्दितम् ॥ २४ ॥
भाजने मृण्मये स्थाप्य वराक्काथेन भावयेत् ।
दशमूलशतावर्योः क्काथे पाच्यः क्रमेण हि ॥ २५ ॥
अथोत्तार्य प्रयत्नेन वटिकां कारयेद्बुधः ।
गुंजात्रयप्रमाणेन हंति शूलं गुदांकुरम् ॥ २६ ॥

गन्धक १ तोला, रौप्यभस्म १ तोला ताम्रभस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, लोहभस्म (गन्धकसे पंचमांश अर्थात् २। मासे), वत्सनाभ विष गन्धकसे षोडशांश (अर्थात् ६ रत्ती) और पारा २ तोले लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर उसमें क्रम २ से प्रत्येक औषधिको खरल करके पश्चात् जम्बीरीनीबूके रसमें एक दिनतक घोटे फिर त्रिफलेके क्काथकी एक भावना देकर उसको मिट्टीके पात्रमें भरकर दशमूलके क्काथमें पकावे । जब वह सब क्काथ जलजाय तब शतावरका क्काथ डालकर पकावे । फिर नीचे उतारकर शीतल होनेपर तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करनेसे सब प्रकारका अर्श रोग और शूल रोग नष्ट होता है ॥ २३--२६ ॥

मूलकुठाररसः ।

वरनागं तथा व्योमसत्त्वं शुल्बं च तीक्ष्णकम् ।
सर्वमेकत्र विद्राव्य क्षिप्त्वाऽलं चालपमलपकम् ॥ २७ ॥
चालयेदनिशं यावत्तालकं त्रिगुणं खलु ।
ततस्तेन विमर्द्याथ पिष्टीं कुर्याद्रसेन तु ॥ २८ ॥
ततो भल्लातकीवृक्षमूलांतस्थां खनेच्च ताम् ।
मासादाकृष्य तां पिष्टीं गव्यदुग्धे विनिक्षिपेत् ॥ २९ ॥

ततो भल्लातकीतैलं हृतं पातालयंत्रतः ।
आयसे भाजने स्निग्धे पिष्टिकां तां निवेश्य च ॥ ३० ॥
प्रस्थमात्रं हि तत्तैलं जारयेदतियत्नतः ।
तत्तैलभावितैर्गंधैः पुटित्वा भस्मतां नयेत् ॥ ३१ ॥
ततः कार्तिकमासोत्थकोरंटदलजै रसैः ।
रसं संमर्द्य संमर्द्य घर्मे संस्थाप्य मारयेत् ॥ ३२ ॥
तद्भस्म मेलयेत्पूर्वभस्मना समभागिकम्
वनसूरणनिर्गुंडीमहाराष्ट्रीभकर्णिका ॥ ३३ ॥
वज्रवल्ली शिखी चैषां रसैः पिष्ट्वा विशोषयेत् ।
त्रिवारं मार्कवद्रावैर्भावयित्वा विशोषयेत् ॥ ३४ ॥
चूर्णीकृत्य प्रयत्नेन क्षिपेत्काचकरण्डके ॥ ३५ ॥
सोयं मूलकुठारको रसवरो दीप्याग्निवल्लोत्तमा-
संयुक्तः सघृतश्च वल्लतुलितः संसेवितो नाशयेत् ।
अर्शांस्याननासिकाक्षिगुदजान्यत्युग्रपीडानि च
प्लीहानं ग्रहणीं च गुल्मयकृतो मांद्यं च कुष्ठामयान् ३६

(१) शुद्ध किया हुआ सीसा, अभ्रकका सत्त्व, शोधित ताँबा, और लोहा इन चारोंको एक २ पल परिमाण लेकर मजबूत मूषामें रखकर अग्निपर तपावे । जब सब धातुयें पिघलकर रसरूप होजायँ तब उसमें शुद्ध हरतालका चूर्ण थोडा थोडा डालता जाय और लोहेकी करछीसे चलाता जाय । इस प्रकारसे जब उसमें १२ पल हरताल जारण होजाय तब उसको अग्निसे नीचे उतारलेवे । शीतल होनेपर उसमें समान भाग पारा मिलाकर बारीक पिट्ठी पीसलेवे । पश्चात् सक पिट्ठीका गोलासा बनाकर उसको, भिलावेके पेडकी जड-

म गड्ढा खोद्कर रखदेवे और वृक्षकी छिलीहुई छालसे गड्ढेका मुँह बन्द करदेवे । एक महीनेके बाद उस गोलेको निकालकर गायके दूधमें १ भावना देवे । फिर उसको लोहेकी चिकनी कढाईमें डालकर चूल्हेपर रखकर अग्नि जलावे और पातालयन्त्रके द्वारा खींचे हुए भिलावेका तेल उसमें थोडा २ डालताजाय; (अर्थात् कढाईमें डाला हुआ तेल जैसे २ जलता जाय वैसेही और थोडा २ तेल डालता जाय) इस प्रकारसे जब उसमें एक प्रस्थ (६४ तोले) तेल जारण हो जाय तब स्वांगशीतल होनेपर उसमें भिलावोंके तेलमें भावना दीहुई चतुर्थांश गन्धक मिलाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें फूँकदेवे । स्वांगशीतल होनेपर उसको निकालकर बारीक पीसकर रखदेवे । (२) उपर्युक्त भस्म तैयार करनेके पश्चात् नीचे लिखी विधिसे पारद भस्म तैयार करे । कार्तिकके महीनेमें फूलनेवाले श्वेत पियाबाँसेके पत्तोंके रसमें पारेको बारम्बार मर्दन करके बारम्बार धूपमें सुखावे। इस प्रकारसे पारेकी उत्तम भस्म होजातीहै । यह भस्म और पूर्वोक्त भस्म दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र मिलालेवे । फिर उसको जंगली जिमीकन्द, निर्गुण्डी, जलपीपल या मंठीशाक, हस्तिकन्द (पलासका एक भेद), थूहर और चीता इन औषधियोंके रसमें क्रम २ से घोटकर सुखाता जाय । फिर भाँगरेके रसमें तीनबार भावना देकर सुखालेवे । पश्चात् बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। यह मूलकुठाररस एक २ रत्ती परिमाण लेकर अजमोद, चीता, वायविडंग और चोंटलीकी जड इन सबके समान भाग मिश्रित ३ मासे चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके अर्शरोग, मुख, नाक, नेत्र और गुदागत रोग तथा इनकी अत्यन्त उग्र पीडा, एवं प्लीहा, संग्रहणी, वातगुल्म, यकृत् रोग, मन्दाग्नि और सब प्रकारके कृष्ठरोगोंको तत्काल दूर करताहै॥२७-३६॥

महोदयप्रत्ययसार रस ।

रसग्रस्तसमुद्दीर्णगंधकस्य पलत्रयम् ।
मृतसूताभ्रताम्रायः कर्षं कर्षं पृथक् पृथक् ॥ ३७ ॥
पलं हिंगुलचूर्णस्य माक्षिकस्य पलत्रयम् ।
पलं कांपिल्लकस्यापि विषस्यार्धपलं तथा ॥ ३८ ॥
सप्ताहं मर्दयेत्सर्वं दत्त्वा चूर्णोदकं मुहुः ।
ततस्तद्गोलकं कृत्वा सप्ताहं चातपे क्षिपेत् ॥ ३९ ॥
गुडचूर्णं शिलाचूर्णं लिंपेदंगुलिकाघनम् ।
त्रिपलं गंधकं दत्त्वा क्रौंच्यामथ च गोलकम् ॥ ४० ॥
गोलकस्योपरिष्टाच्च क्षिपेत्तालं पलत्रयम् ।
संरुध्याऽतिप्रयत्नेन दद्याद्गजपुटं खलु ॥ ४१ ॥
स्वांगशीतलमाहृत्य गोलकं लेपनैः सह ।
विचूर्ण्य सप्तवारं हि विषतिंदुफलोद्भवैः ॥ ४२ ॥
द्रवैरथाऽऽतपे शुष्कं क्षिपेद्रम्ये करंडके ।
त्रिंशदंशेन वैक्रांतभस्म तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ ४३ ॥

अयं हि नंदीश्वरसंप्रदिष्टो
रसो विशिष्टः खलु रोगहंता ।
निःशेषरोगेष्वहतप्रभावो
महोदयप्रत्ययसारनामा ॥ ४४ ॥

हन्यात्सर्वगुदामयान्क्षयगदं कुष्ठं च मंदाग्नितां
शूलाध्मानगदं कफं श्वसनतामुन्मादकापस्मृती ।
सर्वां वातरुजो महाज्वरगदान्नानाप्रकारांस्तथा
वातश्लेष्मभवं महामयचयं दुष्टग्रहण्यामयम् ॥ ४५ ॥

पारेमें जारण की हुई गन्धक १२ तोले, पारेकी भस्म १ कर्ष, अभ्रक भस्म १ कर्ष, ताँबेकी भस्म १ कर्ष, लोहभस्म १ कर्ष, सिंगरफ ४ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म १२ तोले, कबीला ४ तोले और वत्सनाभ विष २ तोले लेवे। सबको एकत्र चूर्ण करके चूनेके पानीके साथ सात दिन तक घोटे, फिर उसका गोला बनाकर उसको मिट्टीकी हाँडीमें रखकर सात दिनतक तीक्ष्ण धूपमें सुखावे। पश्चात् गुड और मैनसिलका एकत्र कल्क बनाकर उसका गोलेके ऊपर एक २ अँगुल ऊँचा लेप करके सुखालेवे। फिर एक मूषामें १२ तोले गन्धकका चूर्ण डालकर उसपर गोलेको रखे और गोलेके ऊपर १२ तोले हरतालका चूर्ण डालकर मूषाके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करदेवे। फिर कपरौटी करके गजपुटकी अग्नि देवे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर प्रलिप्त कल्कके सहित उसका बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उस चूर्णको कुचलोंके रसकी सात बार भावना देकर धूपमें सुखालेवे। पश्चात् उसमें ३० वाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म मिलाकर खूब अच्छे प्रकारसे खरल करके उत्तम शीशीमें भरकर रख देवे। यह नन्दीश्वर महाराजका कहा हुआ महोदय प्रत्यय-सार रोगोंमें यह चमत्कृत प्रभाव दिखलाताहै। एवं सब प्रकारके अर्श रोग (बवासीर), क्षय, सम्पूर्ण कुष्ठ, मन्दाग्नि, शूल, आध्मान, कफ, श्वास, उन्माद, सब प्रकारके वातरोग, सबप्रकारके भयंकर ज्वर, तथा वात और कफ इन दो दोषोंसे उत्पन्न हुई संग्रहणी इसी प्रकार अन्यान्य अनेक प्रकारके बडे २ रोगोंके समूहको भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे यह रस शीघ्र नष्ट करदेता है॥ ३७-४८॥

कनकसुन्दर रस ।

स्याद्रसं धौतमाक्षीकं कांताभ्रं नागहाटकम् ।
पृथ्वीभटेन संतुल्यं सर्वतुल्यं च गन्धकम् ॥ ४६ ॥
दत्त्वा विद्याधरे यंत्रे पुटेदारण्यकोत्पलैः ।
स्वांगशीतलमुद्धृत्य त्र्यूषणेन विमिश्रयेत् ॥४७॥
अर्शोव्याधौ कटीशूले चक्षुःशूले च दारुणे ।
सन्निपाते क्षये कासे श्वासे मंदानले ज्वरे ॥ ४८ ॥
कर्णशूले शिरःशूले दंतशूले प्रयोजयेत् ।
पीनसे प्लीह्नि हृच्छूले ग्रंथिवाते च दारुणे ॥ ४९ ॥
एकांगे वा धनुर्वाते कंपवाते च मूर्च्छिते ॥
ज्वरांश्च विषमान्सर्वान्हंति रोगाननेकधा ॥ ५० ॥
सेवितः पथ्ययोगेन रसः कनकसुंदरः ॥
गुंजामात्रं ददीतास्य यथायुक्तानुपानतः ॥ ५१ ॥
घृतेन संयुतो वाते मधुना पैत्तिके ज्वरे ।
पिप्पल्या श्लैष्मिके देयं पित्तोद्भूते च चंदनम् ॥५२॥
तक्रेण श्लेष्मवातोत्थे वातपित्ते घृतान्वितम् ।
श्लेष्मपित्ते चार्द्रकेण निर्गुंडद्या सान्निपातिके ॥५३॥
फलत्रयेण शूलेषु विषमेषु ज्वरेष्वपि ।
आर्द्रकेणाथ वा दद्याद्वह्निमांद्ये विशेषतः ॥ ५४ ॥
अभिष्यंदे शिरःशूले गायत्रीबोलसंयुतम् ।
पक्षिमांससमायुक्तं कफवाते च मूर्च्छिते ॥ ५५ ॥
एकांगे च धनुर्वाते क्षीरयुक्तं च पीनसे ।
पांडुरोगे क्षये कासे मरिचाज्यैश्च कामले ॥ ५६ ॥

अजमोदाविडंगैश्च नाभिशूलेऽग्निमांद्यके ।
रूक्षज्वरेऽरुचौ देयः कदलीफलसंयुतः ॥
बोलेनाऽर्धकटीशूले भाषितं नागबोधिना ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, रूपामाखीकी भस्म, कान्तलोह भस्म, अभ्रक भस्म, सीसेकी भस्म और सुवर्ण भस्म ये सब समान भाग और सबके बराबर शुद्ध गन्धक लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे। फिर पाढके रसमें घोटकर गोला बनालेवे, उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके विद्याधर यन्त्रमें रखकर आरने उपलोंकी अग्नि देवे। स्वांग शीतल होनेपर गोलेको निकाल कर बारीक चूर्ण करलेवे। उसमें त्रिकुटेका चूर्ण समान भाग मिलाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको सब प्रकारके अर्शरोग, कमरका दर्द, दारुणनेत्रशूल, सन्निपात, क्षय, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, ज्वर, कर्णशूल, शिरःशूल, दन्तशूल, पीनस, प्लीहा, हृदयशूल, दारुण ग्रन्थिवात, एकांगवात, धनुर्वात, कम्पवात और मूर्च्छा इन सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। इस रसको भिन्न भिन्न रोगोंमें यथोचित अनुपानके साथ एक २ रत्ती परिमाण सेवन करावे और पथ्य पदार्थोंका आहार करावे तो यह कनकसुन्दर रस सब प्रकारके विषम ज्वर तथा अन्यान्य नानाप्रकारके भयंकर रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेता है। इसको वातज्वरमें घृतके साथ, पित्तज्वरमें मधुके साथ अथवा चन्दनके क्वाथके साथ, कफज्वरमें पीपलके साथ, वातकफजनित ज्वरमें तक्रके साथ, वातपित्तजन्य ज्वरमें घृतके साथ, कफपित्तजन्य ज्वरमें अदरखके रसके साथ, सन्निपात ज्वरमें निर्गुण्डीके रसके साथ, शूलरोग और विषमज्वरमें त्रिफलेके क्वाथके साथ और मन्दाग्निमें विशेष कर अदरखके रसके साथ सेवन करावे। तथा नेत्राभिष्यन्द और शिरःशूल रोगमें खैरसारके स्वरस और हीरा बोलके

साथ, कफवातजन्य व्याधि और मूर्च्छा रोगमें पक्षियोंके मांसके साथ, एकाङ्ग वात (पक्षाघात) धनुर्वात और पीनसरोगमें दूधके साथ, पाण्डुरोग, क्षय, खाँसी, श्वास और कामलारोगमें मिरचोंके चूर्ण और घृतके साथ, नाभिशूल और अग्निमान्द्य रोगमें अजमोद और वायविडंगके चूर्णके साथ रूक्षज्वर और अरुचिमें पके केलेके साथ और कमरके अर्ध-भागमें शूल होता हो तो हीराबोलके साथ उपयुक्त मात्रासे देवे । यह रस तथा अनुपानकी कल्पना नागबोधिनामवाले रस सिद्धाचार्यने वर्णन की है ॥ ४६-५७ ॥

तीक्ष्णमुखरस।

नागं पारदगंधकं त्रिलवणं वार्यर्कजं मेलये-
देकैकं च पलं पलं त्रयमतः पंच क्रमान्मर्दयेत् ।
सर्वं तद्दिवसत्रयं तदनु तद्दत्त्वा पुटं भावनाः
कुर्यात्सत्रिफलाग्निवेतसरसैः पंचाधिका विंशतिः ॥५८॥
पंचैतत् क्रमशस्ततो गुडभवैर्दत्तोऽस्य वल्लो जलै-
र्हन्त्यर्शांस्यखिलानि सूरणघृतैस्तस्यान्नमस्मिन्हितम् ।
अर्कांशः परिवर्ज्यतामिति मुनिः श्रीवासुदेवोऽवदत्
कूष्मांडीफलमाषपायसमतिव्यायाममर्कातपम् ॥५९॥

नागभस्म, पारा, गन्धक ये प्रत्येक चार २ तोले तथा सैंधानमक, समुद्रनमक और बिरियासंचर नमक ये तीनों समान भाग मिश्रित २० तोले लेकर सबको एकत्र पीसलेवे। फिर आकके पत्तोंके रसमें ३ दिनतक खरल करके गोला बना लेवे। उसको सम्पुटमें बन्द करके गजपुटकी अग्नि देवे । पश्चात् हरड, बहेडा, आमला, चीता और अम्लबेंत इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे पाँच २ बार भावना देवे। फिर गुडके शर्बतमें पाँच

भावना देकर एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी एक २ गोली जलके साथ सेवन करनेसे और इसपर जिमीकन्द और घृतके साथ भोजन करनेसे सब प्रकारके अर्शरोग नाशको प्राप्त होजाते हैं। इसपर अर्केश मुनि और श्रीवासुदेव मुनिके मतानुसार पेठा, उडद, खीर ये सब पदार्थ तथा अत्यन्त व्यायाम (परिश्रम) और तीक्ष्ण धूपका सेवन ये सब त्याग देने चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

द्वितीय तीक्ष्णमुखरस ।

रसेंद्रहेमार्कबिडाऽऽलगोल-
सुरायसं लोहमलाभ्रगंधाः ॥
ताप्यं च कन्यारसमर्दितोऽयं
पक्वः पुटे तीक्ष्णमुखोऽर्शसां स्यात् ॥ ६० ॥

शुद्ध पारा, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, विडनमक, हरताल, बोल, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, अभ्रकभस्म, गन्धक और स्वर्णमाक्षिककी भस्म इन सबको समान भाग लेकर घीग्वारके रसमें खरल करके वाराहपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर बारीक चूर्ण करलेवे। यह तीक्ष्णमुखरस सब प्रकारके अर्शरोगको समूल नष्ट करता है ॥ ६० ॥

अर्शःकुठाररस ।

श्रेष्ठा दंत्यग्नियुग्मत्रिकटुकहलिनीपीलुकुंभं विपक्वं
प्रस्थे मूत्रस्य सस्नुकपयसि रसपलं द्वे पले गंधकस्य ।
लोहस्य त्रीणि ताम्रात्कुडवमथ रजः क्षारयोश्चापि पंच
क्षिप्त्वा स्थाल्यां पचेत्तु ज्वलति दहनतश्चूर्णमर्शःकुठारः ।

त्रिफला, दन्तीकी जड, चीता, लाल चीतेकी जड, त्रिकुटा, कलिहारीकी जड, पीलुवृक्षकी जड और गोमूत्रमें शुद्ध किये हुए जमालगोटे सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण

करलेवे । उस चूर्णको एक प्रस्थ गोमूत्र, एक प्रस्थ थूहरका दूध, ४ तोले पारा और ८ तोले गन्धककी बनाई हुई कज्जली, लोहभस्म १२ तोले, ताम्रभस्म १६ तोले, जवाखार और सज्जीखार १०-१० तोले इन सब औषधियोंके साथ अच्छे प्रकारसे मिलाकर लोहेकी कढाईमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पकते २ सब जल शुष्क होजाय और चूर्ण मात्र शेष रहजाय तब उतारकर बारीक खरल करलेवे । यह अर्शः-कुठाररस सब प्रकारके अर्शरोगको सेवन करते ही शीघ्र दूर करता है ॥ ६१ ॥

त्रैलोक्यतिलकरस ।

कृष्णाभ्रकस्य सत्वं च शोधितं काचटंकणम् ।
रेतयित्वा रजः कृत्वा भर्जयित्वा घृतेन तत् ॥६२॥
अष्टांशसस्यकोपेतं पुटेद्वारत्रयं ततः ।
त्रिवारं नृपवर्तेन लुङ्गस्वरसयोगिना ॥ ६३ ॥
चतुर्वारं च वर्षाभूवासामत्स्याक्षिकारसैः ।
गुग्गुलुत्रिफलाक्वाथैस्त्रिंशद्वाराणि यत्नतः ॥ ६४ ॥
तुल्यांशरसगंधोत्थकज्जल्याऽष्टांशभागया ।
पुटेत्पंचाशतं वारान्मर्दयेच्च पुटे पुटे ॥ ६५ ॥
शोधितं रेतितं कांतं तीक्ष्णं च घृतमर्दितम् ।
पुटेदष्टांशदरदैः संयुक्तं लकुचांबुना ॥ ६६ ॥
दशवारं तथा सम्यक् तालं शुद्धं मनोह्वया ।
तथा विंशतिवाराणि बालिन्या मीनदृग्रसैः ।
दशवाराणि ताप्येन कृष्णागोघृतयोगिना ॥ ६७ ॥
उभयं समभागं तत्पुटेन्निर्गुंडिकारसैः ॥ ६८ ॥

रसगंधककज्जल्या दशवारं पुटेत्पुनः ।
तस्मिन्नष्टांशभागेन क्षिपेद्वैक्रांतभस्मकम् ॥ ६९ ॥
राजावर्तं कलांशेन समभागेन पर्पटी ।
तत्सर्वं परिमर्द्याथ भावयित्वाऽऽर्द्रकांबुना ॥ ७० ॥
गुडूच्याः स्वरसेनापि भूकदंबरसेन च ।
भृंगराजरसेनापि चित्रमूलरसेन च ॥ ७१ ॥
व्योषगंजाकिनीकंदैर्भूयोप्यार्द्रद्रवेण च ।
पटचूर्णमतः कृत्वा क्षिपेच्छुद्धकरण्डके ॥ ७२ ॥
त्रैलोक्यतिलकः सोयं ख्यातः सर्वरसोत्तमः ।
सर्वव्याधिहरः श्रीमच्छंभुना परिकीर्तितः ॥ ७३ ॥
उदावर्तं च विड्बंधं व्यथां च जठरोद्भवाम् ।
लोहलं मंदबुद्धित्वं शूलित्वमपि वंध्यताम् ॥ ७४ ॥
सूतिरोगानशेषांश्च शूलं नानाविधं तथा ।
परिणामाख्यशूलं च तथा भिद्यात्समुत्कटम् ॥ ७५ ॥
रक्तगुल्मं च नारीणां रजःशूलं च दुःसहम् ।
अनुपानं च पथ्यं च तत्तद्रोगानुरूपतः ॥ ७६ ॥

(१) काली अभ्रकका सत्व, शोधित स्फटिकमणि और सुहागा तीनोंको समान भाग लेकर प्रथम स्फटिकमणिको रेतीसे रेतकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर सबको घीमें मिलाकर भूने । जब सब घृत जलजाय तब उस चूर्णमें आठवाँ भाग खपरिया मिलाकर गजपुटकी अग्नि देवे । इस प्रकार तीनबार गजपुट देवे और प्रत्येक बारमें अष्टमांश खपरिया मिलाता जाय । फिर उसमें चूर्णसे आठवाँ भाग राजावर्तका चूर्ण मिलाकर बिजौरेनिबूके रसमें खरल करके ३ बार गजपुट देवे । राजा-

वर्तका चूर्णभी पूर्ववत् प्रत्येक बार मिलाताजाय और नींबूके रसमें घोटताजाय । इसके पश्चात् पुनर्नवा, अडूसा और मछैछी-घास इन तीनोंके स्वरस अथवा क्वाथमें घोट घोटकर चार बार गजपुट देवे । फिर गूगल और त्रिफलेके काढेमें प्रत्येक बार घोट घोटकर ३० बार गजपुटमें पकावे । पश्चात् समान भाग मिश्रित पारे और गन्धककी बनाई हुई कज्जली चूर्णसे आठवाँ भाग मिलाकर ५० बार गजपुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें अष्टमांश कज्जली डालकर घोटताजाय । इस प्रकार इस भस्मको तैयार करे । इसके पश्चात्– (२) उत्तम प्रकारसे शुद्ध किया हुआ कान्तलोह और तीक्ष्णलोह दोनोंको समान भाग लेकर रेतीसे रेतकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर घृतमें खरल करके गजपुटकी अग्नि देवे । पश्चात् उसमें आठवाँ भाग सिंगरफ मिलाकर नींबूके रसमें खरल करके गजपुट देवे । फिर शुद्ध हरताल और शुद्ध मैनसिलका चूर्ण समान भाग मिश्रित लोह चूर्णसे अष्टमांश मिलाकर १० बार गजपुट देवे । यह हरताल और मैनसिलका चूर्ण प्रत्येक पुटके अन्तमें मिलाता जाय । फिर शुद्ध गन्धकका अष्टमांश चूर्ण मिला-मिलाकर और मछैछीघासके रसमें घोटघोटकर २० बार गजपुट देवे । फिर आठवाँ भाग स्वर्णमाक्षिकका चूर्ण मिला-मिलाकर और काली गायके घृतके साथ घोट घोटकर १० बार गजपुट देवे । इस प्रकार लोहभस्मको सिद्ध करे । इस विधिसे तैयार की हुई दोनों भस्मोंको समान भाग लेकर निर्गुण्डीके रसमें खरल करके गजपुटमें पकावे । फिर पारे और गन्धककी अष्टमांश कज्जली मिलामिलाकर १० बार गजपुटकी अग्नि देवे । इसके पश्चात् उसमें आठवाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म तथा १६ वाँ भाग राजा (रेवटी) वर्तकी भस्म और समभाग पारे गन्धककी पर्पटी मिलाकर बारीक खरल करे, फिर अदरख,

गिलोय, भुईं कदम्ब, भाँगरा, चीतेकी जड, त्रिकुटा और विजयकन्द इन सम्पूर्ण औषधियोंके स्वरस वा क्काथमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर फिर अदरखके रसमें एक बार भावना देवे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानकर बढिया शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको त्रैलोक्यतिलक रस कहते हैं। यह सब रसोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाला है। इसको श्रीशंकर भगवान्ने वर्णन कियाहै। यह रस उदावर्त, मलविबन्ध, उदरपीडा, जडता, बुद्धिकी मन्दता, प्रसवकी पीडा, बन्ध्यत्वदोष, सब प्रकारके प्रसूतरोग, नानाप्रकारके शूलरोग, उत्कट परिणाम शूल, रक्तगुल्म और स्त्रियोंके रजःस्रावके समय होनेवाला शूल इन सब रोगोंको रोगानुसार अनुपानोंके साथ सेवन करने और पथ्य पदार्थोंका आहार करनेसे शीघ्र दूर करता है ॥ ६२–७६ ॥

सामान्य उपाय।

वचाहिंगुविडंगानि सैंधवं जीरनागरम्।
मरिचं पिप्पली कुष्ठं पथ्या वह्न्यजमोदकम् ॥७७॥
क्रमोत्तरगुणं चूर्णं सर्वेषां द्विगुणं गुडम्।
कर्षं चोष्णजलेनानुपिबेद्वातार्शसां जये ॥ ७८ ॥
मृतं लोहं चेंद्रयवं शुंठीभल्लातचित्रकम्।
बिल्वमज्जाविडंगानि पथ्यां तुल्यं विचूर्णयेत्॥ ७९ ॥
सर्वतुल्यं गुडं योज्यं कर्षं भुक्त्वाऽर्शसां जये।
श्लेष्मार्शसां प्रशांत्यर्थं देयमानंदभैरवम्।
मृतताम्रेण संतुल्यं देयं गुंजात्रयं हि तत् ॥ ८० ॥
कुसुंभमृदुपत्राणि कांजिकेनैव पाचयेत्।
शाकवद्भक्षयेन्नित्यमर्शोरोगप्रशांतये ॥ ८१ ॥

वच, हींग, वायविडंग, सैंधानमक, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, कूठ, हरड, चीता और अजमोद इन सब औषधियोंको उत्तरोत्तर क्रमसे दुगुना लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछन करलेवे। उस समस्त चूर्णको दुगुने गुडमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन आधी गोली प्रातःकाल और आधी गोली सायंकालमें मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे वातजनित अर्श (बादीबबासीर) शीघ्र दूर होता है। लोहभस्म, इन्द्रजौ, सोंठ, भिलावे, चीता, बेलगिरी, वायविडंग और हरड सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे। फिर उसमें समान भाग गुड मिलाकर प्रतिदिन एक २ कर्ष परिमाण सेवन करे। यह औषध वातजअर्शको शीघ्र नष्ट करती है। कफजनित अर्शको शमन करनेके लिये ३ रत्ती आनन्दभैरवरस और ३ रत्ती ताम्रभस्म दोनोंको शहदमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःसायंकाल सेवन करावे। अथवा कसूमके कोमल पत्तोंका काँजीमें शाक बनाकर प्रतिदिन भक्षण करे। ये प्रयोग वात और कफजनित अर्शको नष्ट करनेके लिये परम उपयोगी हैं॥७७-८१॥

सामान्य प्रलेप।

देवदाल्याश्च बीजानि सैंधवेन सुचूर्णयेत्।
आरनालेन लेपोऽयं मूलरोगनिकृंतनः॥ ८२ ॥
कांचनीकुसुमं चूर्णं शंखचूर्णं मनःशिलाम्।
गजपिप्पलिकातोयैर्लेपो ह्यर्शःकुठारकः॥ ८३ ॥
देवदाल्याः कषायेण ह्यर्शोघ्नं शौचमाचरेत्।
गुदनिःसरणं चापि शांतिं नायाति चान्यथा॥८४॥
आरनालेन संपिष्टा सबीजा कटुतुंबिका।

सगुडा हंति लेपेन दुर्नामानि समूलतः ॥ ८५ ॥
पीलुतैलेन संलिप्ता वर्तिका गुदमध्यगा ।
घातयत्यर्शसां शीघ्रं सकलां वेदनां तथा ॥ ८६ ॥
अर्कक्षीरं स्नुहीकांडं कटुकालाबुपत्रकम् ।
करंजं छागमूत्रेण लेपः स्राव्यर्शसां हितः ॥
शिग्रुमूलार्कजैः पत्रैर्लेपनं हितमर्शसाम् ॥ ८७ ॥

देवदालीके बीज और सैंधानमक दोनोंको कॉजीमें पीसकर लेप करनेसे अर्शके अंकुर नष्ट होजाते हैं । अथवा कचनारके फूलोंका चूर्ण, चूना, शंखका चूर्ण और मैनसिल इन सबको समान भाग लेकर, गजपीपलके रसमें खरल करके लेपकरे । यह लेप अर्शको नष्ट करनेके लिये कुठारके समान तीक्ष्ण है । या देवदालीके पंचांगके काढेसे नित्य गुदा प्रक्षालन करनेसे अर्शरोग नष्ट होता है और गुदाका (कॉचका) बाहर निकलनाभी दूर होताहै । अथवा कडवी तोंबीको बीजों सहित कॉजीमें पीसकर उसमें गुड मिलाकर लेप करनेसे अर्शरोग (बबासीर) समूल नष्ट होजाताहै । किम्वा पीलु वृक्षके बीजोंके तेलमें रुईकी बत्तीको भिजोकर गुदामें रखनेसे अर्शरोग और उसकी सम्पूर्ण वेदनायें भी शीघ्र दूर होती हैं । अथवा आकका दूध, थूहरकी जड, कडवी तांबीके पत्ते और करंज सबको समान भाग लेकर बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करे । यह लेप रक्तजानित अर्शके लिये अत्यन्त हितकारी है । एवं सैंजनेकी जड और आकके पत्तोंको पीसकर लेप करना भी अर्श रोगियोंके लिये परमोपयोगी है ॥ ८२-८७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रससत्नसमुच्चये भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

उदावर्त्त रोग ।

रूक्षैः कोद्रवजीर्णमुद्गचणकैः क्रुद्धोऽनिलोऽधो वहन्
रुद्ध्वा वर्त्म मलं विशोष्य कुरुते विण्मूत्रसंगं ततः ।
हृत्पृष्ठोदरबस्तिमस्तकरुजः सश्वासकासज्वरं
गच्छन्नूर्ध्वमसौ हि तूर्णमनिशं कोपादुदावर्त्तयेत् ॥ १ ॥

कोदों, ज्वार, मूँग, चने आदि रूक्ष पदार्थोंको अधिक सेवन करनेसे वायु कुपित होकर आमाशय, पक्वाशय, मलाशय आदि अधोभागोंमें विचरण करता हुआ मल मूत्रको शुष्क करके उक्त आशयोंके मार्गको रोक देता है । इसलिये मल और मूत्रका अवरोध होजाताहै । इस कारण हृदय, पीठ, उदर, बस्ति (पेडू) और मस्तकमें अनेक प्रकारकी पीडा होती है तथा श्वासरोग, खाँसी और ज्वर होताहै । उस समय वायु अत्यन्त कुपित होनेसे बडी शीघ्रतासे ऊपरको गमन करता हुआ बारंबार मलादिको वमन द्वारा बाहर निकालता है । इसको उदावर्त रोग कहते हैं । यह रोग मल, मूत्र, वमन, अपानवायु, क्षुधा, तृषा आदिके वेगोंको रोकनेसे उत्पन्न होताहै । जिस वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ हो उसमें उसी मलके लक्षणोंको जानकर तदनुसार उदावर्त निर्द्धारित करना चाहिये ॥ १ ॥

उदावर्त्तहर घृत ।

कंकुष्ठहिंगुसिंधूत्थत्रिवृद्दंतीवचाऽभया ।
चित्रकस्य तु मूलं च चूर्णीकृत्य पचेद्घृतम् ॥ २ ॥

चतुर्गुणे गवां क्षीरे युक्तं स्नुक्क्षीरमात्रया ।
उदावर्तोदरानाहान्हंति पानेन सर्वदा ॥ ३ ॥

मुर्दासंग, हींग, सैंधानमक, निसोत, दन्ती, वच, हरड, चीतेकी जड और थूहरका दूध सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके कल्क बनालेवे । उस कल्कस चौगुना गायका घी, घीसे चौगुना गायका दूध और चौगुना पानी लेकर सबको एकत्रित करके यथाविधि घृतको सिद्ध करे । जब पकते २ घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलवे । यह घृत नियमानुसार प्रतिदिन सेवन करनेसे उदावर्त, उदररोग और आनाह (अफरा) रोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अतिसार (दस्तोंका होना) रोग ।

अत्यंबुपानतिलपिष्टविरूढरूक्ष-
शुष्कामिषाध्यशनबद्धमलग्रहाद्यैः ।
क्रुद्धोऽनिलोऽतिसरणाय च कल्पतेऽग्निं
हत्वा मलं शिथिलयन्नपि तोयधातून् ॥ ४ ॥

अत्यन्त जलपान करनेसे, तथा तिल वा तिलोंकी पिट्ठीके बने हुए पदार्थ, नवीन और रूक्ष अन्न, शुष्क मांस, भोजनपर भोजन और मलबद्धता करनेवाले गुरुपाकी पदार्थोंको अधिक सेवन करनेसे इनके सिवा अन्य अनेक कारणोंसे वायु कुपित होजाताहै । वह वायु जठराग्निको मन्द करके जलवाहिनी नाडियों और आशयोंको शिथिल करता हुआ मलको भेद-कर बडे वेगसे गुदाके द्वारा बाहर निकालताहै । इसको अति-सार (दस्तोंका होना) रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

दर्दुररस ।

सुश्लक्ष्णतीक्ष्णचूर्णं तु रसेंद्रसमभागिकम् ।

कांचनाररसैर्घृष्टं दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
पुनस्तदेकं दिवसं जंबीरांबुविमार्दितम् ।
पुटपक्वोऽतिसारघ्नः-सूतोऽयं दर्दुराह्वयः ॥ ६ ॥

तीक्ष्ण लोहकी बारीक पिसी हुई भस्म और पारेकी भस्म दोनोंको समान भाग लेकर कचनारके रसमें एक दिनतक घोटे । फिर एक दिनतक जम्बीरीनींबूके रसमें घोटकर गोला बना लेवे । उसको अण्डके पत्तोंमें लपेटकर ऊपरसे कपरौटी करके ८ आरने ऊपलोंकी अग्नि देवे । इसको दर्दुररस कहते हैं । यह अतिसारको शीघ्र दूर करता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

आनन्दभैरवरस ।

हिंगुलं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा ।
मर्दयेत्समभागं च रसो ह्यानंदभैरवः ॥ ७ ॥
गुंजैकां सार्धगुंजां वा बलं ज्ञात्वा प्रदापयेत् ।
मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ८ ॥
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित् ।
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गवाज्यं तक्रमेव वा ॥ ९ ॥
पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि ॥ १० ॥

सिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, मिरच, सुहागा और पीपल इन सबको समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर कपडेमें छानकर रख लेवे, अथवा जलके साथ खरल करके गोलियां बना लेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती अथवा आधी २ रत्ती परिमाण रोगीके बलाबलका विचार करके सेवन करावे और ऊपरसे एक २ तोला कुडेकी छाल और इन्द्रजौके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे यह आनन्दभैरवरस तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए अतिसारको नष्ट करनेवाला है । इसपर दही भात

गायका घी मट्ठा आदिका पथ्य देवे। प्यास लगनपर शीतल जल और रात्रिमें थोडीसी भांग पीसकर सेवन करानी हित-कर है ॥ ७-१० ॥

सुधासार रस।

पृथक्पलिकगंधाश्मसूतसंजातकज्जलीम्।
प्रद्राव्य निक्षिपेद्व्योम पलैकं गतचंद्रिकम् ॥ ११ ॥
काष्ठेनालोड्य तत्सर्वं क्षिपेत्कुटजपत्रके।
पुनः संचूर्ण्य यत्नेन भावयेत्तदनंतरम् ॥ १२ ॥
बालतिंदुफलद्रावैः क्षीरैरौदुंबरैस्तथा।
अरलुत्वग्रसैश्चापि दुग्धिनीस्वरसैस्तथा ॥ १३ ॥
पुटपक्वस्य बालस्य दाडिमस्य रसैः शुभैः।
कृष्णकांबोजिकामूलरसैः कुटजवल्कजैः ॥ १४ ॥
तुल्यांशविश्वगांधारीचूर्णं द्विपलिकं क्षिपेत्।
मुस्तावत्सकदीप्याग्निमोचसारं सजीरकम् ॥ १५ ॥
वत्सनाभं च कर्षांशं प्रत्येकं तत्र निक्षिपेत्।
विचूर्ण्य भावयेद्भूयः शुंठीक्वाथेन सप्तधा ॥ १६ ॥
इत्थं सिद्धो रसः पिष्टः करंडे विनिवेशयेत्।
सुधासार इति ख्यातः सुधारससमो गुणैः ॥ १७ ॥
दीपनः पाचनो ग्राही हृद्यो रुचिकरस्तथा।
दोषत्रयातिसारं च दुर्जयं भेषजांतरैः ॥
आमं चैवामरक्तं च ज्वरातीसारमेव च ॥ १८ ॥
सातिसारां विषूचीं च प्रतिबध्नाति तत्क्षणात्।

मान्यमानव्यातिक्रांतिरिव पुण्यफलोदयम् ॥ १९ ॥
पिष्टविश्वाब्दकल्केन विधाय खलु चक्रिकाम् ।
निक्षिपेत्स्वेदनीयंत्रे पक्त्वार्धघटिकावधि ॥ २० ॥
आकृष्य तज्जलैरेवं संप्रमर्द्याऽऽहरेद्रसम् ॥ २१ ॥
सुधासाररसं तत्र क्षिप्त्वा धान्यकसंमितम् ।
पूर्वोदितेषु रोगेषु प्रददीत भिषग्वरः ॥ २२ ॥
गोतक्रेणाथ दध्ना वा पथ्यं देयं हितं मितम् ।
बालरंभाफलं गुर्वीफलं बिल्वफलं तथा ॥
आम्रपेशी च मधुकं वृंताकं च प्रशस्यते ॥ २३ ॥
सर्वातिसारं ग्रहणीं च हिक्कां मंदाग्निमा-
नाहमरोचकं च । निहंति सद्यो विहिता-
मपाके द्वित्रिप्रयोगेण रसोत्तमोऽयम् ॥ २४ ॥
सांबुस्थालीमुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निधाय च ।
पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयंत्रमुच्यते ॥ २५ ॥

चार तोले गन्धक और चार तोले पारेकी बनाई हुई कज्जलीको लोहेकी कढाईमें डालकर पिघलावे । जब वह पिघलकर खूब पतली होजाय तब उसमें ४ तोले निश्चन्द्र अभ्रककी भस्म डालकर लकडीसे घोटकर सबको कुडेके पत्तोंपर ढाल देवे । स्वांग शीतल होनेपर बारीक चूर्ण करके उसको- तेंदूके कच्चे फलोंका रस, गूलरका दूध, सोनापाठेकी छालका क्वाथ, दुद्धीका स्वरस, पुटपाकके द्वारा पकाये हुए कच्चे अनारका स्वरस, काली घुँघुचीकी जडका रस और कुडेकी छालका क्वाथ इन सबमें क्रमसे एक २ बार भावना देवे । फिर उसमें

सोंठ ४ तोले, जवासा ४ तोले तथा नागरमोथा, कुडेकी छाल, अजमोद, चीता, मोचरस, जीरा और शुद्ध वत्सनाभ विष ये प्रत्येक औषधि एक २ कर्ष परिमाण डालकर बारीक चूर्ण करके सोंठके क्वाथमें फिर सात बार भावना देकर सुखालेवे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए रसको बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रख देवे। इसको सुधासार रस कहते हैं। यह गुणोंमें अमृतके समान हितकारी है एवं जठराग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला, पाचक, ग्राही, हृदयको हितकारी और रुचिकारक है। यह रस विविध प्रकारकी औषधियोंके सेवन करनेसेभी दूर न होनेवाले त्रिदोषजनित अतिसार, आमातिसार, आमरक्त, ज्वरातिसार और अतिसारयुक्त विषूचिकाको इस प्रकार तत्काल नष्ट कर देता है, जैसे सत्कर्मोंके फलका उदय, मान्य पुरुषोंका अपमान करनेसे अस्त हो जाता है। वैद्य इस रसको उपर्युक्त रोगोंमें निम्नलिखित विधिसे सेवन करावे। सोंठ और नागरमोथा दोनोंको समान भाग लेकर कल्क करके टिकियासी बना लेवे उसको स्वेदनीयन्त्रमें रखकर आध घडीतक स्वेदन करे। फिर टिकियाको निकालकर उक्त यन्त्रमेंसे रसको ग्रहण करलेवे। उस २ तोले रसमें सुधासार रसको उपयुक्त मात्रासे मिलाकर पूर्वोक्त रोगोंमें प्रतिदिन प्रातःसायंकाल सेवन करावे। इसपर गायका मट्ठा या दही, पकीहुई केलेकी फली, चिकनी सुपारी, बेल, आमकी गुठली, महुआ और बैंगन इन सब पदार्थोंका परिमित रूपसे पथ्य देना उपयोगी है। सब प्रकारके अतिसार, संग्रहणी, हिचकी, मन्दाग्नि, आनाह, अरुचि आदि सम्पूर्ण रोगोंको यह रस दो तीन बार सेवन करनेसे ही नष्ट कर देता है और आमदोषको पकाताहै। एक हांडीमें पानी भरकर उसके मुखपर कपडा बाँधकर उसके ऊपर स्वेद देने योग्य औषधिको रक्खे, फिर

उसके ऊपर चौरस ढक्कन ढककर उसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे । इसको स्वेदनयन्त्र कहते हैं ॥ ११–२५ ॥

लोकेश्वर रस ।

द्वौ भागौ गंधकस्याष्टौ शंखचूर्णस्य योजयेत् ।
एकमेव रसस्यांशमर्कक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २६ ॥
चित्रकस्य द्रवैरेवं शोषयित्वा पुनः पुनः ।
एकीकृत्य रसेनाथ क्षारं दत्त्वा तदर्धकम् ॥ २७ ॥
अर्कक्षीरेण कुर्वीत गोलकानथ शोषयेत् ।
निरुध्य चूर्णलिप्तेथ भाण्डे दद्यात्पुटं ततः ॥ २८ ॥
लोकेश्वररसो ह्येष संग्रहण्यतिसारनुत् ॥ २९ ॥
गुंजाचतुष्टयं चास्य मरिचाज्यसमन्वितम् ।
ददीत दधिभक्तं च पथ्यं लोकेश्वरे हितम् ॥ ३० ॥

शुद्ध गन्धक २ भाग, शंखचूर्ण ८ भाग और पारा १ भाग लेकर तीनोंको आकके दूधमें घोटकर सुखालेवे फिर चीतेकी जडके क्वाथमें घोट घोटकर सात वार सुखावे पश्चात् समस्त औषधिसे आधा भाग जवाखार मिलाकर आकके दूधमें खरल करके छोटी २ गोलियाँ बनालेवे और सुखालेवे । फिर एक मिट्टीकी हाँडीके भीतर चूनेका लेप करके उसमें गोलियोंको रखकर हांडीका मुँह बन्द करके कपरौटी कर गजपुट देवे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक पीसकरके रखदेवे । यह लोकेश्वर रस सब प्रकारकी संग्रहणी और अतिसारको नष्ट करनेवाला है । इसको चार २ रत्ती परिमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करे । इसपर दही भातका पथ्य देना उपयोगी है ॥ २६–३० ॥

लोकनाथरस ।

मृतपारदभागैकं चत्वारः शुद्धगंधकात् ।
यामैकं मर्दयेत्खल्वे तेन पूर्या वराटिकाः ॥ ३१ ॥
टंकणं तु गवां क्षीरैः पिष्ट्वा तेन मुखं लिपेत् ।
वराटानां प्रयत्नेन रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत् ॥ ३२ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य ततश्चूर्ण्या वराटिकाः ।
लोकनाथरसो नाम्ना क्षौद्रैर्गुंजाचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥
नागरातिविषामुस्तादेवदारुवचान्वितम् ।
कषायमनुपानं स्याद्वातातीसारनाशनः ॥ ३४ ॥

पारेकी भस्म एक भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग दोनोंको एक प्रहरतक खरल करके कौडियोंमें भरदेवे । फिर सुहागेको गायके दूधमें पीसकर उससे कौडियोंका मुँह बन्द करके सुखा लेवे । उन कौडियोंको शरावसम्पुटमें रखकर कपरौटी करके गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर कौडियोंको निकाल-कर बारीक पीसकर रखलेवे । इसमेंसे प्रतिदिन चार २ रत्ती-परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे और सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु और वच इन औषधियोंके क्वाथका अनु-पान करे । यह लोकनाथ नामक रस वातजनित अतिसारको शीघ्र दूर करता है ॥ ३१-३४ ॥

नागसुंदररस ।

नागभस्मरसव्योमगंधैरर्धपलोन्मितः ।
कुर्वीत कज्जलीं श्लक्ष्णां प्रक्षिपेत्तदनंतरम् ॥ ३५ ॥
द्विपलोन्मितरालायां द्रुतायां परिमिश्रिताम् ॥ ३६ ॥
मृष्टैर्यक्षाक्षासिंधूत्थवचाव्योषद्विजीरकैः ।

सपथ्याविजयादीप्यैस्तुल्यांशैरवचूर्णितैः ॥ ३७ ॥
मेलयेत्प्राक्तनं कल्कं भावयेत्तदनंतरम् ।
महानिंबत्वचासारैः कांबोजीमूलजद्रवैः ॥ ३८ ॥
रसैर्नागबलायाश्च गुडूच्याश्च त्रिधा त्रिधा ।
ततश्च गुटिकाः कार्या बदरास्थिप्रमाणतः ॥ ३९ ॥
हन्यादेव हि नागसुंदररसो वल्लोन्मितः सेवितो ।
नानातीसरणामयं गुदपरिभ्रंशं तथा विविशम्॥४० ॥

सीसेकी भस्म, पारा, गन्धक. और अभ्रक ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके खूब बारीक कज्जली करलेवे। फिर ८ तोले रालको अग्निपर अच्छे प्रकारसे तपाकर उसमें उक्त कज्जलीको मिलादेवे और खरलमें डालकर खूब घोटे। पश्चात् बहेडा, सेंधानमक, बच, सोंठ. मिरच, पीपल, जीरा, कालाजीरा, हरड, भाँग और अजवायन इन सबकोसमान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे, उपर्युक्त कज्जलीमें यह चूर्ण समभाग लेकर मिलादेवे और बकायनकी हरी छाल, मापपर्णी, गंगेरन और गिलोय इन प्रत्येक औषधियोंके रसमें क्रमसे तीन २ वार भावना देकर छोटे बेरकी बरावर गोलियाँ बनालेवे। इस रसको प्रतिदिन दो या तीन रत्ती परिमाण सेवन करनेसे अनेक प्रकारके अतिसार और सर्व प्रकारके गुदभ्रंश रोग नष्ट होते हैं॥ ३९-४० ॥

षण्निष्कतैल ।

षण्निष्कं तिलतैलस्य निष्कं जंबीरजं रसम् ।
लवणं पंचगुंजं च अंगुल्या मर्दयेद् दृढम् ॥
आमवातातिसारघ्नं लिहेत्पथ्यं च पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

तिलका तेल ६ निष्क, जम्बीरी नींबूका रस १ निष्क और सैंधा नमक ५ रत्ती लेकर सबको एक काँचके बरतनमें भरकर अँगुलियोंसे खूब अच्छे प्रकारसे घोलकरके सेवन करे। इस प्रकार इस तेलको प्रतिदिन सेवन करने और पूर्ववत् पथ्य करनेसे आमवात और अतिसार रोग नष्ट होताहै ॥ ४१ ॥

संग्रहणी रोग।

मलं संगृह्य संगृह्य कदाचिदतिरेचयेत्।
अरुचिः श्वयथुर्मांद्यं ग्रहणीरोगलक्षणम् ॥ ४२ ॥

कभी मलका रुक रुक करके थोडा २ आना और कभी जुल्लाबके समान अधिक दस्तोंका होना, भोजनमें अरुचि, सूजन और अग्निका मन्द होना; ये संग्रहणी रोगके लक्षण हैं ॥ ४२ ॥

वज्रकपाट रस।

मृतसूताभ्रकं गंधं यवक्षारं सटंकणम्।
वचा जया समं सर्वं जयंती भृंगजद्रवैः ॥ ४३ ॥
सजंबीरैस्त्र्यहं मर्द्यं शोषयेत्तं च गोलकम्।
मंदवह्नौ शनैः स्वेद्यं यामार्धं लौहपात्रके ॥ ४४ ॥
रससाम्ये प्रतिविशा देया मोचरसस्तथा।
भावयेद्विजयाद्रावैः शोष्यं पेष्यं च सप्तधा ॥
रसो वज्रकपाटोऽयं निष्कार्धं मधुना लिहेत् ॥४५॥

पारेकी भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्धगन्धक, जवाखार, सुहागा, वच और अरणी इन सबको समान भाग लेकर अरणी, भाँगरा और नींबूके रसमें क्रमसे तीन दिनतक खरल करके गोला बनाकर सुखालेवे। पश्चात् उस गोलेको लोहेकी कढाईमें डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः आधे प्रहरतक स्वेद देवे।

फिर शीतल होजानेपर उसका चूर्ण करके उसमें समभाग अतीस और मोचरसका चूर्ण मिलाकर भाँगके रसमें भावना देवे और सुखालेवे । इस प्रकार सातवार भावना देकर ७ वार सुखावे तो यह वज्रकपाट रस सिद्ध होताहै । इसको दो २ मासे परिमाण मधुके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीमें विशेष लाभ होताहै ॥ ४३–४५ ॥

अग्निकुमार रस ।

दग्धां कपर्दिकां पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंकणं विषम् ।
गंधकं शुद्धसूतं च तुल्यं जंबीरजैर्द्रवैः ॥ ४६ ॥
मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ।
निहंति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ ४७ ॥

कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, सुहागा, शोधित, वत्सनाभ, पारा और गन्धक सबको समान भाग लेकर नींबूके रसमें खरल करके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इसकी एक २ गोली मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करे और ताक भातका भोजन करे तो संग्रहणी रोग दूर होता है ॥ ४६–४७ ॥

कनकसुन्दर रस ।

हिंगुलं मरिचं गंधं पिप्पली टंकणं विषम् ।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ४८ ॥
मर्दयेद्याममात्रं तु चणमात्रं वटीकृतम् ।
भक्षयेद्ग्रहणीं हंति रसः कनकसुंदरः ॥ ४९ ॥
अग्निमांद्यं ज्वरं तीव्रमतिसारं च नाशयेत् ।
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याजं तक्रमेव च ॥ ५० ॥

सिंगरफ, मिरच, गन्धक, पीपल, सुहागा, शुद्ध वत्सनाभ और धतूरेके बीज इन सबको समान भाग लेकर भाँगके रसमें एक प्रहरतक खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। फिर प्रतिदिन एक २ गोली भक्षण करे। यह रस-संग्रहणी, मन्दाग्नि, ज्वर और प्रबल अतिसार रोगको नाश करताहै। इस पर दही, भात और गायका अथवा बकरीका तक्र पथ्य-रूपसे देवे ॥ ४८-५० ॥

ग्रहणीहर रस ।

रसाभ्रगंधाः क्रमवृद्धभागा जयारसेन
त्रिदिनं विमर्द्याः । गद्याणकार्धं मधुना
समेतं ददीत पथ्यं दधिभक्तकं च ॥ ५१ ॥

पारा १ भाग, अभ्रक २ भाग और गन्धक ३ भाग लेकर तीनोंको भाँगके रसमें तीन दिनतक खरल करे। फिर सुखा-कर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन दो २ मासे शहदमें मिलाकर देवे और दही, भातका पथ्य सेवन करावे तो संग्रहणी रोग दूर होता है ॥ ५१ ॥

चण्डसंग्रहगदैककपाटरस ।

हिंगुलस्थितमहेश्वरबीजं पातयंत्रविधिना
हरणीयम् । गंधटंकणमृताभ्रकतुल्यं
कोकिलाक्षमथ चाऽऽयसखल्वे ॥ ५२ ॥
मर्दनीयमभिधारणयुक्ते धूमहीनदहनो-
परि संस्थे । यावदेष जलशोषणदक्षो
जीरकार्द्रकयुतेन स वल्लः ॥ ५३ ॥
संग्रहज्वरमतिसृतिगुल्मानर्शसां च

विनिहंति समूहम् । वासुदेवकथितो
रसराजश्चंडसंग्रहगदैककपाटः ॥ ५४ ॥

ऊर्ध्वपातन यंत्रकी विधिसे सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारा, गन्धक, सुहागा, अभ्रक और तालमखाना इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर उस औषधिको लोहेके तप्त खल्वमें डालकर और उसको निर्धूम अग्निपर रखकर लोहेकी मुसलीसे जलके साथ मर्दन करे। जब घोटते २ जल बिल्कुल शुष्क होजाय तब अग्निसे नीचे उतारकर स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करलेवे। यह रस एक २ रत्ती परिमाण जीरेके चूर्ण और अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी, ज्वर, अतिसार, गुल्म, अर्श आदि रोगोंके समूहको शीघ्र नष्ट करताहै। इस रसको श्रीवासुदेव आचार्यने वर्णन किया है॥ ५२–५४ ॥

लघुसिद्धाभ्रक रस।

समांशं रसगंधाभ्रदरदं च विशोधितम्।
लोहखल्वे विनिक्षिप्य गव्याज्येन समन्वितम्॥५५॥
द्रोणीचुल्ल्यां न्यसेत्खल्वं सांगारायां प्रयत्नतः।
मर्दकेनापि लौहेन मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥ ५६ ॥
इति सिद्धो रसेंद्रोऽयं लघुसिद्धाभ्रको मतः।
वल्लतुल्यो रसो जीरवारिणा सहितः प्रगे ॥ ५७ ॥
पीतो हरति वेगेन ग्रहणीमतिदुर्धराम्
अतिसारं महाघोरं सातिसारं ज्वरं तथा ॥ ५८ ॥
पाचनो दीपनो हृद्यो गात्रलाघवकारकः।
नागार्जुनेन कथितः सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ५९ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रक, और शुद्ध हिंगुल इन चारोंको समान भाग लेकर गायके घीमें मिलालेवे फिर लोहेके खरलमें डालकर उसको द्रोणीके समान आकारवाले चूल्हेपर रखकर उसके नीचे निर्धूम अंगारोंकी अग्नि जलावे और लोहेकी मुसलीसे औषधिको खूब खरल करे। इस प्रकार दो दिनतक मर्दन करे तो यह लघुसिद्धाभ्रक रस सिद्ध होताहै। इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक २ रत्ती परिमाण लेकर जीरेके क्वाथके साथ सेवन करे। इसके सेवनसे अत्यन्त भयंकर संग्रहणी, अत्यन्त प्रबल अतिसार और ज्वरातिसार ये सब रोग अल्पकालमें ही दूर होजाते हैं। यह रस अत्यन्त पाचक अग्निप्रदीपक हृदयको हितकारी और शरीरमें लघुता करनेवाला है। इस तत्काल फलप्रद रसको श्रीनागार्जुनने कहा है।५५-५९॥

सर्वारोग्य रस, अथवा सर्वारोग्यवटी ।

रसं पलमितं तुल्यं शुद्धनागेन संयुतम् ।
द्रावयित्वाऽयसे पात्रे सतैले निक्षिपेत्क्षितौ ॥ ६० ॥
ततो द्रुते विनिक्षिप्य गंधके तद्विलोड्य च ।
पुनरायसपात्रे तत्क्षिप्त्वा प्रद्राव्य निक्षिपेत् ॥ ६१ ॥
तत्तुल्यं जारयेत्तालं पुनः संचूर्ण्य पूर्ववत् ।
तत्तुल्यां जारयेत्सम्यक्कुनटीं परिशोधिताम् ॥ ६२ ॥
तत्तुल्यं चूर्णितं तस्मिन्क्षिपेन्नागं निरुत्थकम् ।
तावदेव मृतं ताप्यं सर्वमन्यच्च तत्समम् ॥ ६३ ॥
तीक्ष्णायःखर्परं व्योम हिंगुलं च शिलाजतु ।
पृथक्कर्षांशमानेन षट्कोलं कट्फलं मिशी ॥ ६४ ॥
दीप्यकं च चतुर्जातं रेणुकोशीरवेल्लकम् ।
तुंबरुं भार्ङ्गिकां रास्नां कंकोलं चोरपुष्करम् ॥

शिङ्गिणीं चिरतिक्तं च बीजान्युन्मत्तकस्य च ॥ ६५॥
पलद्वयं च लांगल्याः सर्वेषां द्वादशांशकम् ॥ ६६ ॥
वत्सनाभं सितं भूरि विनिक्षिप्य ततः परम् ।
त्रिफलानां दशांघ्रीणां कषायेण ततः परम् ॥ ६७ ॥
जयंत्यार्द्रकवासानां मार्कवस्य रसैस्तथा ।
भावयित्वा च कर्तव्या वटकाश्चणकोपमाः ॥ ६८ ॥
एकैका वटिका सेव्या कुर्यात्तीव्रतरां क्षुधाम् ।
विषूचीमरतिं हिक्कां सेव्यं स्वादु च शीतलम्॥६९॥
सामां च ग्रहणीं सदांगतुदनं शोषोत्कटं पाण्डुता-
मार्तिं वातकफात्रिदोषजनितां शूलं च गुल्मामयम् ।
हिक्काध्मानविषूचिकां च कसनं श्वासार्शसां विद्रधिं
सर्वारोग्यवटीक्षणाद्विजयतेरोगांस्तथान्यानपि ॥७०॥

शुद्ध पारा ४ तोले और शुद्ध सीसा ४ तोले, दोनोंको लोहेकी कढाईमें डालकर तपावे । जब दोनों पिघलकर एकम-एक होजायँ, तब तेलमें डालकर बुझावे। फिर तेलमेंसे निकाल-कर जमीन पर रखे, और शीतल होनेपर उसको खरल कर-लेवे। पश्चात् ८ तोले गन्धकको अग्निपर पिघलाकर उसमें उक्त औषधिको डालकर करछीसे चलाकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे और पूर्ववत् तेलमें डालकर पर्पटी तैयार करलेवे। इसके पश्चात् उसको खरल करके फिर अग्निपर तपावे और उसमें ८ तोले हरताल डालकर जारण करे । फिर चूर्ण करके और अग्निपर तपाकर उसमें ८ तोले शुद्ध मैनसिल जारण करे फिर उसमें पूर्ववत् ८ तोले निरुत्थ सीसेकी भस्म, ८ तोले सुवर्ण माक्षिककी भस्म, ८ तोले लोहभस्म, ८ तोले शुद्ध खप

रिया, ८ तोले अभ्रकभस्म, ८ तोले शिंगरफ, ८ तोले शिलाजीत और षट्कोल (सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, चव्य और चीता), कायफल, सोंफ, अजमोद, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर), रेणुका, खस, वायविडंग, तुम्वरु, भारंगी, रास्ना, कंकोल, भटेउर, पोहकरमूल, कटेरी, चिरायता और धतूरेके बीज ये प्रत्येक ओषधि एक २ तोला कलिहारीकी जड ८ तोले, और सम्पूर्ण औषधियोंका १२ वाँ भाग शोधित श्वेत वत्सनाभ डालकर एक दिन तक खरल करे। फिर त्रिफला, दशमूल, अरणी, अदरख, अडूसा, और भांगरा इन प्रत्येकके रसमें एक एक भावना देकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनावे उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करे। इन गोलियोंके सेवनसे अत्यन्त तीव्र क्षुधा लगतीहै और विषूचिका, अरुचि, हिक्का आदि रोग दूर होते हैं। इन पर मधुर, स्वादिष्ठ और शीतल पदार्थोंका आहार करना चाहिये ये सर्वारोग्य नामक वटी–आमयुक्त संग्रहणी, सम्पूण अंगोंकी पीडा उत्कट धातु-शोष, पाण्डुरोग, वात, पित्त, कफ इन तीनों भिन्न भिन्न दोषोंसे अथवा त्रिदोषसे उत्पन्न हुई पीडा, शूलरोग, वात गुल्म, हिचकी, आध्मान, विषूचिका, खाँसी, श्वास, अर्श, विद्रधि आदि रोगोंको तथा अन्यान्य सम्पूर्ण व्याधियोंको क्षण-भरमें नष्ट करदेती हैं ॥ ६०–७० ॥

ग्रहणीगजकेसरी रस।

रसगंधकयोः कृत्वा कज्जलीं तुल्यभागयोः ।
द्रावयित्वायसे पात्रे रसतुल्यं विनिक्षिपेत् ॥ ७१ ॥
चराचरभवं भस्म तत्र माक्षिकसंभवम् ।
गंधपाषाणसहितं पात्रे लोहमये क्षिपेत् ॥ ७२ ॥
तत्काष्ठेन विलोड्याथ निक्षिपेत्कदलीदले ।

सर्वं समांशिकं कृत्वा रसे चार्धांशिकं क्षिपेत्॥७३॥
चराचरभवं भस्म गंधपाषाणसाधितम् ॥
तत्काष्ठेन विलोड्याथ निक्षिपेत्कदलीदले ॥ ७४ ॥
तत्त आच्छाद्य संचूर्ण्यं विधायाऽऽयसभाजने॥७५॥
अक्षमात्रं क्षिपेद्भस्मे तत्र माक्षिकसंभवम् ।
सम्यङ्निश्चंद्रतां नीतं व्योमभस्म पलोन्मितम्॥७६॥
विषं विषा च गांधारी मोचसारं सजीरकम् ।
सर्वं समांशिकं कृत्वा रसे चार्धांशिकं क्षिपेत्॥७७॥
सर्वमेतन्मर्दयित्वा भावयेदतियत्नतः ।
जयंत्या च महाराष्ट्र्या गुंजाकिन्याऽश्वगंधया ॥७८॥
पंचकोलकषायैश्च कुर्याच्चूर्णं ततः परम् ।
इत्थं सिद्धो रसः सोऽयं ग्रहणीगजकेसरी ॥ ७९ ॥
नामतो नंदिना प्रोक्तः कर्मतश्च सुधासमः ।
वल्लेन प्रमितश्चायं रसः शुंठ्या घृताक्तया ॥ ८० ॥
सेवितो ग्रहणीं हंति सत्संग इव विग्रहम् ।
पथ्यमत्र प्रदातव्यं स्वल्पाज्यं दधितक्रयुक् ॥ ८१ ॥
हितं मितं च विशदं लघु ग्राहि रुचिप्रदम् ।
पाचनो दीपनोऽत्यर्थमामघ्नो रुचिकारकः ॥ ८२ ॥
तत्तदौषधयोगेन सर्वातीसारनाशनः ।
बध्नात्यपि मलं शीघ्रं नाध्मानं कुरुते नृणाम्॥८३॥

पारा और गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर कज्जली कर लेवे। उसको लोहेकी कढाईमें पिघलाकर उसमें कौडीकी भस्म

सुवर्णमाक्षिक भस्म और शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक पारेकी बराबर डालकर लकडीके डंडेसे मिलादेवे। जब सब औषधियाँ मिलकर एकमएक होजायँ तब उसको गोबरके ऊपर रखे हुये केलेके पत्ते पर ढालकर उसके ऊपर दूसरा पत्ता ढकदेवे। जब वह पर्पटीकी समान जमजाय तब उठाकर बारीक चूर्ण कर लेवे। फिर उस चूर्णसे आधा भाग गन्धकके द्वारा सिद्धकी हुई कौडीकी भस्म उसमें मिलाकर फिर लोहेके पात्रमें डालकर तपावे और लकडीके डंडेसे चलाकर पूर्ववत् केलेके पत्ते पर ढालकर पर्पटी करलेवे। पश्चात् खरल करके उस भस्ममें स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, निश्चन्द्र अभ्रककी भस्म ४ तोले, एवं शुद्ध वत्सनाभ विष, अतीस, जवासा, मोचरस और जीरा ये सब समान भाग मिश्रित पूर्वोक्त रससे वजनमें आधाभाग लेकर चूर्ण करके डालदेवे और अच्छे प्रकारसे खरल करे। फिर अरणी, जलपीपल, घुंघुची, असगन्ध, और पंचकोल (सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य, चीता) इन औषधियोंके क्वाथमें क्रमसे एक एक बार भावनां देकर सुखालेवे और बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे इस प्रकार यह ग्रहणीगजकेसरीरस सिद्ध होता है। यह सेवन करने पर अमृतकी समान गुण करता है, ऐसाभी नन्दिमहाराजने कहाहै यह रस एक २ रत्ती परिमाण लेकर सोंठके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे संग्रहणीको इस भाँति शीघ्र नष्ट करता है, जैसे सत्संगातिसे सम्पूर्ण विग्रह तत्काल दूर होजाते हैं, इस रसके सेवन करनेपर थोडा २ घृत, दही, छाछ, हितकारी, परिमित, स्वच्छ, लघुपाकी, ग्राही और रुचिकारक पदार्थोंका आहार करना चाहिये यह रस अत्यन्त पाचक, अग्निको दीपन करनेवाला, आमनाशक और रुचिकारक है, भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ इसको व्योहार करनेसे यह सब प्रकारके अतिसारको दूर

करताहै । यह मलको शीघ्र बांधिदेता है और अफराभी नहीं करता ॥ ७१-८३ ॥

शीघ्रप्रभावरस ।

पारदं गंधकं व्योम तीक्ष्णं तालं मनःशिला ।
सौवीरमंजनं शुद्धं विमलं च समांशकम् ॥ ८४ ॥
एभिः कज्जलिकां कृत्वा स्वल्पतैलेन भर्जयेत् ।
ग्रंथिकं जीरकं चित्रं दीप्यकं मुस्तकं विषम् ॥८५॥
बालाम्रं बालबिल्वं च मोचसारं समांशकम् ।
विचूर्ण्य पूर्ववत्कल्कं तदर्धेन विनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥
पुनर्विमर्दयेद्यत्नादेकरूपं भवेद्यथा ।
भावयेत्सप्तवाराणि पंचकोलकषायतः ॥ ८७ ॥
अरलुत्वग्रसेनापि दशवाराणि भावयेत् ।
प्रोक्तेन क्रमयोगेन रसो निष्पद्यते ह्ययम् ॥ ८८ ॥
जग्धो विश्वघनांबुना स हि रसः शीघ्रप्रभावाभिधो
निष्कार्धप्रमितो महाग्रहणिकारोगेऽतिसारामये ।
आध्माने ग्रहणीभवे रुचिहृते वाते च मंदानले
मुक्ते चापि मले पुनश्चलमलाशंकासु हिक्कासु च ॥८९॥

पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, हरताल, मैनसिल, शुद्ध सुरमा और रूपामाखीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कज्जली करके उसका थोडेसे तेलमें भूनलेवे फिर पीपलामूल, जीरा, चीता, अजवायन, नागरमोथा, शुद्ध वत्सनाभ, कच्चे आमका सूखा चूर्ण और कच्चे बेलका सूखा गूदा, और मोचरस, इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे इस चूर्णको पूर्वोक्त औषधिसे आधा भाग लेकर उसमें

मिलादेवे और इस प्रकार मर्दन करे जिससे सब घुटकर एकरूप होजाय फिर उसको पंचकोलके क्वाथमें सात वार और शोनापाठेकी छालके काढेमें दश वार भावना देकर सुखालेवे इस प्रकार यह शीघ्रप्रभाव नामक रस सिद्ध होताहै इसको दो २ मासे परिमाण लेकर सोंठ और नागरमोथेके क्वाथके साथ सेवन करे यह रस अत्यन्त भयंकर संग्रहणी, अतिसार, अफरा, अरुचि, वातव्याधि, शूल, मन्दाग्नि, विरेचन होनेपर फिर मलस्राव होनेकी आशंका होना और हिचकी आदि रोगोंमें विशेष उपकार करता है ॥ ८४-८९ ॥

पोटलीरस ।

कपर्दतुल्यं रसगंधकल्कं लोहं मृतं टंकणकं च तुल्यम् । जयारसेनैकदिनं विमर्द्य चूर्णेन संपेष्य पुटेत भाण्डे॥ददीत तां पोटलिकां च दोषत्रयप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै ॥ ९० ॥

चार तोले पारा और ४ तोले गन्धककी बनाई हुई कज्जलीमें कौडीकी भस्म लोहभस्म और सुहागा ये प्रत्येक आठ २ तोले डालकर खूब खरल करे फिर भांगके रसमें एक दिनतक घोटकर दूसरे दिन चूनेके पानीमे खरल करके फिर गोलासा बनालेवे और उसको सम्पुटमें बन्द करके भाण्डपुटमें पुट देवे स्वांगशीतल होनेपर बारीक चूर्ण कर लेवे इसको रोगीके बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रा और उचित अनुपानके साथ सेवन करावे यह रस त्रिदोषसे उत्पन्न हुई भयंकर संग्रहणीको शमन करनेके लिये परम उपयोगी है ॥ ९० ॥

वह्निज्वालावटी रस ।

नष्टपिष्टं चतुर्माषमेकैकं रसगंधयोः ।
अभ्रकं माषमानं च मातुलुंगांबुमर्दितम् ॥ ९१ ॥
शोधितं सप्तधा चैव द्विमाषं त्र्यूषणं पृथक् ॥ ९२ ॥

त्रिशूली भृंगशाङ्गेरी सातला तीक्ष्णपर्णिका ।
श्वेताऽपराजिता कन्या मत्स्याक्षी ग्रीष्मसुंदरा ॥ ९३ ॥
कारिणी कर्णमोटी च रुदंती चित्रकाऽऽर्द्रकात् ।
धत्तूरकाकमाचीभ्यां मुसल्याश्च पृथग्रसैः ॥ ९४ ॥
मर्दितं द्विपलैः कुर्याद्वटिका माषसंमिताः ॥
ग्रहण्यां पर्णखण्डेन व्योषयुक्ता निषेविता ॥ ९५ ॥
अरुचिं राजयक्ष्माणं मंदाग्निं सूतिकागदान् ।
शमयेद्वटिका नाम्ना वह्निज्वालेति गीयते ॥ ९६ ॥

पारा और गन्धक दोनोंको चार २ मासे लेकर कज्जली कर लेवे फिर उसमें अभ्रक भस्म १ मासा और सोंठ, मिरच, पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण बिजौरे नींबूके रसमें सात बार भावना देकर शुद्ध कियाहुआ दो २ मासे परिमाण डालकर सबको एकत्र खरल करे फिर उस चूर्णको शिवलिंगी, भाँगरा, बडी करंज, सातला (थूहरका भेद), तुम्बरू वृक्षके पत्ते, श्वेतकोयलकी जड, घीग्वार, मछेछी, घास, गूमा, नखी, कर्णमोटी लताविशेष, रुद्रवन्ती, चीतेकी जड, अदरख, धतूरा, मकोय और मुसली इन औषधियोंके आठ २ तोले रस अथवा क्वाथमें क्रमसे अलग २ भावना देकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे एक २ गोली पानमें रखकर खानेसे संग्रहणीमें शीघ्र लाभ होता है और त्रिकुटेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे ये गोलियाँ अरुचि, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि और प्रसूतसम्बन्धी सम्पूर्ण उपद्रवोंको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करती हैं इनको वह्निज्वालावटी कहते हैं ॥ ९१-९६ ॥

वज्रधर रस ।

रसगंधकताम्राभ्रं क्षारांस्त्रीन्वरुणावृषम् ।

अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम् ॥ ९७ ॥
शार्ङ्गेष्टा हस्तिशुंडयाश्च रसे पिष्टं पचेत्पुटे ।
भक्षयित्वा ततो गुंजां ग्रहण्यां कांजिकं पिबेत् ॥ ९८ ॥
पक्तिशूले च कासे च मंदाग्नावार्द्रकद्रवम् ।
अम्लपित्ते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम् ॥ ९९ ॥

पारा, गन्धक, ताँबा, अभ्रक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, वरना वृक्षकी छाल, अडूसा, चिरचिटेका खार और सैंधानमक ये प्रत्येक औषधी दो २ मासे परिमाण लेकर सबको एकत्र खरल करे फिर बडी करंज और हाथीशुंडाके रसमें क्रमसे एक एक वार मर्दन करके कुक्कुट पुटदेवे इस रसको संग्रहणीमें एक एक रत्तीकी मात्रासे सेवन कराकर कांजीका अनुपान करावे किंतु पक्तिशूल, खांसी और मन्दाग्निमें अदरखके रसके साथ सेवन करावे और अम्लपित्त रोगमें धारोष्ण दूधके साथ सेवन करावे तो शीघ्र लाभ होता है ॥ ९७-९९ ॥

ग्रहणीकपाट रस ।

रसेंद्रगंधाऽतिविषाऽभयाऽभ्रं क्षारद्वयं
मोचरसो वचा च । जया च जंबीररसेन
पिष्टं पिण्डीकृतं स्याद्ग्रहणीकपाटः ॥ १०० ॥
तस्यार्धमाषं मधुना प्रभाते शंबूकभस्मा-
ज्यमधूनि लिह्यात् । सक्षीरिणीजीरक-
माणिमंथतिक्ष्णानि चादौ दधिभोजनं च ॥ १०१ ॥

पारा, गंधक, अतीस, हरड, अभ्रक भस्म, जवाखार, सज्जी, मोचरस, वच और भाँग इन सबको समान भाग लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके चार चार रत्तीकी गोलियाँ नालेवे इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक गोली शहदके

साथ सेवन करे और पीछेसे घोंघेकी भस्मको एक रत्ती परिमाण लेकर घी और शहदमें मिलाकर चाटे इसके सेवन करनेपर भोजन करनेसे पहिले वंशलोचन जीरा सैंधानमक और मिरच इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको खाकर फिर दही भातका भोजन करे यह रस संग्रहणी रोगकी उत्तम औषध है ॥ १०० ॥ १०१ ॥

सौवर्चलादिचूर्ण ।

सौवर्चलं जीरकयुग्मधान्यजयायवानी कणनागरं च । कपित्थसारेण समं प्रगृह्य दद्यीत चूर्णं लिह्यि तीव्रपित्तैः ॥ १०२ ॥
गद्याणमात्रं मधुखण्डयुक्तं तक्रेण युक्तं त्वरुचिप्रशांत्यै । वातप्रधाने च कफप्रधाने रात्रौ कषायं कुटजस्य दद्यात् ॥ १०३ ॥

काला नमक, जीरा, काला जीरा, धनियाँ, भांग, अजवायन, पीपल और सोंठ इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग और समस्तचूर्णकी बराबर कैथके सूखे गूदेका चूर्ण लेकर सबको एकत्र पीसकर कपडछान करलेवे इस चूर्णको प्रतिदिन रात्रिके समय छः२ मासे परिमाण शहद और खाँडमें मिलाकर सेवन करावे तो अत्यन्त तीव्र पित्त शीघ्र शान्त होजाताहै । तक्रके साथ सेवन करानेसे अरुचि दूर होती है । और वातजन्य अथवा कफजनित विकारोंमें इस चूर्णको रात्रिके समय कुडेकी छालके काढेके साथ देवे तो विशेष लाभ होता है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

ग्रहणीहर–मुस्तादिचूर्ण ।

मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रातिविषाविषम् ।
धातकीमोचनिर्यासश्रूताऽस्थिग्रहणीहरम् ॥ १०४ ॥

नागरमोथा, कुडेकी छाल, पाढ, चीता सोंठ, मिरच, पीपल, अतीस, शुद्ध मीठा तेलिया, धायके फूल, मोचरस और आमकी गुठली इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर प्रतिदिन प्रातः सायंकाल दो २ मासे चूर्ण जलके साथ सेवन करे यह चूर्ण संग्रहणीको दूर करनेके लिये विशेष उपयोगी है॥१०४॥

सामान्य उपाय।

वह्निशुंठीबिडं बिल्वं लवणं पेषयेत्समम्।
पिबेदुष्णांभसा चानु वातोत्थां ग्रहणीं जयेत्॥१०५॥
दग्धशंबूकसिंधूत्थं तुल्यं क्षौद्रेण लेहयेत्।
निष्कैकैकं निहंत्याशु ग्रहणीरोगमुत्कटम्॥ १०६॥
कृशान्वजाजीद्वयमाक्षिकेण कटुत्रयेणापि
युतं त्वनुष्णम्। शार्ङ्गेरिकाजीरकयुग्मधान्यं
दुग्धींदुशाकाय ददीत दध्ना॥ १०७॥

चीतेकी जड, सोंठ, खिरियासंचर नमक, वेलका गूदा और सैंधानमक सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपड-छान करलेवे इस चूर्णको प्रतिदिन मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे वातज संग्रहणी दूर होती है घोंघेकी भस्म और सैंधे-नमकका चूर्ण दोनोंको चार २ मासे परिमाण लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे यह प्रयोग अत्यन्त भयंकर संग्रहणीको शीघ्र नष्ट करता है अथवा चीतेकी जड, जीरा, काला जीरा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान-भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके उसको प्रतिदिन प्रातः सायंकाल दो २ मासे परिमाण शीतल जलके साथ सेवन करे या बडी करंज, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ और दुद्धी इनके समभाग चूर्णको शीतल जलके साथ सेवन करे और इन्दुशाक

(तरातेज) के पत्तोंका शाक दही आदिका पथ्य सेवन करे ये प्रयोग संग्रहणी रोगमें बडे ही उपयोगी हैं ॥ १०५-१०७ ॥

अजीर्ण रोग।

विरेको जठरे शूलं वमनं च मुहुर्मुहुः।
हस्तपादादिसंकोचः सर्वाजीर्णस्य लक्षणम् ॥१०८॥

दस्तोंका होना, पेटमें पीडा होना, बारम्बार वमन होना और हाथ पाँव आदि अङ्गोंमें ऐंठन होना ये सब अजीर्ण रोगके लक्षण हैं- अधिक जलपान, अनियमित आहार, विहार, मल-मूत्रादिके वेगोंका अवरोध, दिनमें सोना, रातमें जागना आदि अनेक कारणोंसे अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है ॥ १०८ ॥

अजीर्णकंटकरस।

शुद्धसूतं विषं गंधं समं सर्वं विचूर्णितम्।
मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ॥ १०९ ॥
मर्दयेद् भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम्।
वटीं गुञ्जात्रयीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ ११० ॥
अजीर्णकंटकः सोऽयं रसो हांति विषूचिकाम्।
वारिणा तिलपर्ण्युत्थमूलं पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ १११ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध मीठा तेलिया और शुद्ध गन्धक, तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे। फिर उसमें मिरचोंका चूर्ण समान भाग मिलाकर कटेरीके फलोंके रसमें २१ बार भावना देवे और २१ बार सुखावे। फिर तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनाकर रख लेवे। यह अजीर्ण-कंटकरस सब प्रकारके अजीर्ण और विषूचिका रोगको अत्यन्त शीघ्र नष्ट करताहै। इस रसकी एक २ गोली खाकर ऊपरसे लालचन्दनको पानीमें घिसकर उसका अनुपान करे१०९-१११।

विध्वंसरस ।

विमर्द्य गंधोपलटंकणेन संभाव्य वारानथ सप्तजात्याः । तोयैः फलानामथ सिद्धसूतो विध्वंसनामा शमनो विषूच्याः ॥ ११२ ॥

अमुष्य गुंजा नव दापनीया हंतुं विषूचीं सितया समेताः । तक्रौदनं स्यादिह भोजनाय पथ्यं च शाकं किल वास्तुकस्य ॥ ११३ ॥

शुद्ध गन्धक और सुहागा दोनोंको समभाग लेकर एकत्र खरल करके जायफलके रस और त्रिफलेके काढेमें क्रमसे सात २ बार भावना देकर प्रत्येक बार सुखालेवे । इस प्रकार यह विध्वंसनामकरस सिद्ध होता है । यह विषूचिकाको विध्वंस करनेके लिये परम उपयोगी है । इसको नौ २ रत्ती परिमाण मिश्रीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । और भोजनके लिये छाछ, भात, बथुएका शाक आदि पथ्य देना चाहिये ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

विषूचिकाविजयरस ।

रसगंधटंकभसितं समांशकं परिमर्द्य जातिफलरस-सभावितम् । सितयोपयुज्य नवरक्तिकोन्मितं मथितान्नभुग्विजयते विषूचिकाम् ॥ ११४ ॥

पारा, गन्धक और सुहागेकी खील तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके जायफलके रसमें सात बार भावना देकर ७ बार सुखावे, फिर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रख लेवे । इस चूर्णको नौ २ रत्ती परिमाण मिश्रीमें मिलाकर प्रयोग करे तो छाछके साथ भातका भोजन करे तो विषूचिका रोग (हैजा) अवश्य दूर होताहै ॥ ११४ ॥

अग्निकुमाररस ।

हंसपादीरसैः पिष्टं रसगंधकयोः पलम् ।
कोलं च विषचूर्णस्य वालुकायंत्रपाचितम् ॥ ११५ ॥
शाणं विषस्यार्धपलं मरिचस्य विमिश्रयेत् ।
दीपनोऽग्निकुमारोऽयं ग्रहण्यां च विशेषतः ॥ ११६॥
सवातश्लेष्मजान्रोगान्क्षणादेवापकर्षति ।
सन्निपातज्वरश्वासक्षयकासांश्च नाशयेत् ॥ ११७ ॥

पारा और गन्धक दोनोंको दो २ तोले लेकर कज्जली करलेवे फिर उसको लाल लज्जालु लताके रसमें घोटे । पश्चात् ६ मासे शुद्ध वत्सनाभका चूर्ण मिलाकर उसको शराव-सम्पुटमें बन्द करके २४ घंटेतक वालुकायंत्रमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर उसमें शुद्ध वत्स-नाभ ४ मासे और मिरचोंका चूर्ण २ तोले डालकर एक दिन-तक खरल करे । यह अग्निकुमार रस आग्निको अत्यन्त दीपन करताहै इसलिये संग्रहणीमें विशेष हितकारी है । यह वात और कफके रोगोंको क्षणभरमें दूर करदेताहै तथा सन्निपातज्वर, श्वास, खाँसी और क्षय इन सबको नष्ट करताहै ॥ ११५–११७॥

वडवाग्निरस ।

टंकणं मरिचं तुत्थं पृथक् कर्षत्रयं भवेत् ।
सुंदरं निष्कद्वादशकं त्रिंशन्निष्कमयोमलम् ॥११८॥
चूर्णान्येतानि संयोज्य स्थापयेच्छुद्धभाजने ।
शुद्धदेहो नरस्तस्य पानं यद्भोजनोत्तरम् ॥ ११९ ॥
अद्यात्पथ्यं ततः स्वल्पं ततस्तांबूलभाग्भवेत् ।
उदराग्निर्नरस्यास्य वडवाग्निसमो भवेत् ।

बहुनात्र किमुक्तेन रसायनमयं नृणाम् ॥ १२० ॥
कांतं पद्मरसे घृष्टं पुटपक्वं वरारसे।
मार्कवस्वरसे घृष्टं सप्तकृत्वस्त्वयोमलम् ॥ १२१ ॥

सुहागा, मिरच और तूतिया ये प्रत्येक तीन २ तोले, कान्तलोह भस्म १२ निष्क (४ तोले,) और मंडूर भस्म ३० निष्क (१० तोले) परिमाण लेकर सबको एकत्र खूब बारीक खरल करके उत्तम और स्वच्छ शीशीमें भरकर रख देवे। प्रथम वमन विरेचनादिके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके मनुष्य इस रसको यथोचित मात्रासे भोजनके पश्चात् सेवन करे फिर थोडा और हलका पथ्य पदार्थोंका आहार करे और ताम्बूल भक्षण करे। इस प्रकार इस रसको सेवन करनेवाले मनुष्यकी जठराग्नि बडवानलकी समान अत्यन्त तीव्र होजाती है। अधिक क्या यह रस मनुष्योंके लिये रसायनके समान गुण करता है। इस रसमें कान्तलोह भस्मको डालनेसे प्रथम कमलके रसमें घोट घोटकर १९ बार गजपुट देवे, फिर त्रिफलेके काढेमें १९ बार घोटकर १९ बार गजपुट देवे। एवं मंडूरभस्मको भाँगरेके रसमें ७ बार घोटकर ७ बार गजपुट देवे। इस प्रकार दोनों भस्मोंको सिद्ध करके फिर इस रसमें मिलाना चाहिये ॥ ११८-१२१ ॥

वैश्वानरपोटलीरस।

शुद्धौ सूतबली चराचररजःकर्षांशतः कज्जलीं
कृत्वा गोपयसा विमर्द्य दिवसं रुद्ध्वा च मूषोदरे।
सिद्धं कुंभपुटे स्वतश्च शिशिरः पिष्टः करण्डे स्थितः।
स्याद्वैश्वानरपोटलीति कथितस्तीव्राग्निदीप्तिप्रदः १२२
एकोनविंशतां चूर्णैर्मरिचानां घृतान्वितैः।

देयोयं वल्लमानेन वयोबलमवेक्ष्य च ॥ १२३ ॥
गिलेद्गलविशुद्ध्यर्थं दधिभक्तमनुत्तमम् ।
कवलत्रयमानेन दुर्गंधोद्गारशान्तये ॥ १२४ ॥
मध्यंदिने ततो भोज्यं घृततक्रौदनं सिता ।
रात्रौ च पयसा सार्धं यद्वा रोगानुसारतः ॥ १२५ ॥
विदाहि द्विदलं भूरिलवणं तैलपाचितम् ।
बिल्वं च कारवेल्लं च वृंताकं कांजिकं त्यजेत् ॥ १२६ ॥
इयं हि पोटली प्रोक्ता सिंघणेन महीभृता ।
मंदाग्निप्रभवाशेषरोगसंघातघातिनी ॥ १२७ ॥
सिंघणस्य विनिर्दिष्टा भैरवानंदयोगिना ।
लोकनाथोक्तपोटल्या उपचारा इह स्मृताः ॥ १२८ ॥
पोटल्यो दीपनाः स्निग्धा मंदाग्नौ नितरां हिताः १२९
पीतवर्णा गुरुस्निग्धा पृष्ठतो ग्रंथिलाऽमला ।
चराचरेति सा प्रोक्ता वराटी नंदिना खलु ॥ १३० ॥
सार्धनिष्कमिता श्रेष्ठा मध्यमा निष्कमानिका ।
पादोननिष्कमाना च कनिष्ठात्र वराटिका ॥ १३१ ॥
निष्फलाश्च ततो न्यूनाः पुंवराटाश्च पित्तलाः ।
दत्त्वा दत्त्वा गुणान्भूयो विकारान्कुर्वते हि ते ॥ १३२ ॥

शुद्ध पारा गन्धक और कौडीकी भस्म तीनोंको एक २ कर्ष परिमाण लेकर कज्जली करलेवे। उस कज्जलीको एक दिनतक गायके दूधमें खरल करके गोला बनाकर उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके और सम्पुटको मूषामें रखकर १ दिनतक कुम्भपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको

निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे और शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको वैश्वानर पोटलीरस कहतेहैं। यह अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै। रोगीकी अवस्था और बलाबलका विचार करके इस रसको दो २ रत्ती परिमाण लेकर २१ मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करावे। इस रसको खाकर तुरन्त मुखकी विरसता और दुर्गन्धित डकारोंको दूर करनेके लिये तीन ग्रास दही और भात खाय। इससे गला साफ होजाताहै। फिर मध्याह्नकालमें घृत, मिश्री और तक्र मिलाकर भातका हलका भोजन करे। रात्रिमें दूधके साथ अथवा अपनी प्रकृति और रोगके अनुसार पथ्य पदार्थोंका आहार करे। इस रसका सेवन करनेपर दाहकारक, दो दलवाले (दाल आदि) अन्न, अधिक नमक, क्षार तेलमें पकाये हुये पदार्थ बेल, करेला, बैंगन और काँजी इन सबको त्याग देवे। इस पोटली रसको श्रीसिंघण महाराजने वर्णन किया है और सिंघण महाराजसे श्रीभैरवानन्द योगीने कहा है यह रस मन्दाग्निके द्वारा उत्पन्न हुये सम्पूर्ण रोगोंके समूहको विनाश करनेवाला है इसपर लोकनाथोक्त पोटलीके समान समस्त उपचार करने चाहिये प्रायः सभी प्रकारके पोटली रस विशेषकर अग्निको दीपन करनेवाले, स्निग्ध और मन्दाग्निमें अत्यन्त उपयोगी होते हैं। रसयोग्य कौडी—पीले रंगकी, वजनदार, स्निग्ध, पीठके ऊपर गाँठवाली और स्वच्छ ऐसी कौडीको श्रीनंदी नामवाले आचार्यने चराचर नामसे प्रतिपादन किया है कौडियोंमें ६ मासे भर वजनकी कौडी उत्तम, ४ मासेकी मध्यम और ३ मासेकी कौडी कनिष्ठ होती है, इससे कम वजनवाली कौडियाँ गुणहीन होती हैं और पुरुषजातिके बडे बडे कौडे पित्तकारक होते हैं वे कौडे प्रथम गुण उत्पन्न करके फिर अनेक विकार उत्पन्न करते हैं॥ १२२–१३२॥

वडवामुखी गुटी ।

शुल्बायोघनभस्मवेल्लहलिनीव्योषांवुनिंबुच्छदैः
संयुक्तैश्च हरिद्रया समलवैः सार्धं सशुभ्रामृतैः ।
भृंगांभोविषतिंदुकार्द्रकरसैः संपिष्य गुंजामिता
संशुष्का वडवामुखीति गुटिका नाम्नोदिता तारया १३३
क्षिप्रं क्षुत्परिबोधिनी खलु मता सर्वामयध्वंसिनी
श्लेष्मव्याधिविधूननी कसनहृच्छ्वासापहा शूलनुत् ।
क्षुद्वैषम्यहरा च गुल्मशमनी शूलार्तिमूलंकषा
शोफव्याधिहराऽत्र किं बहुगिरा सर्वामयोत्सादिनी १३४

ताँबा, लोहा, अभ्रक, वायविडङ्ग, कलिहारी, सोंठ, मिरच, पीपल, सुगन्धवाला, नीमके पत्ते, हल्दी और शोधित श्वेत वत्सनाभ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे फिर उसको भाँगरा कुचला और अदरख इन- तीनोंके रसमें क्रमसे एक २ दिन तक भावना देकर एक२ रत्ती- की गोलियाँ बनालेवे और सुखाकर रखलेवे इस वडवामुखी गुटिकाको तारा नामवाली विदुषीने वर्णन किया है इन गोलियोंके सेवन करनेसे तत्काल भूख लगती है और सब प्रकारके रोग नाश होते हैं अधिक कहनेसे क्या ये गोलियाँ कफरोग, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, शूल, क्षुधाकी विषमता, गुल्म, शूलकी पीडा, शोथ आदि सम्पूर्ण व्याधियोंको नष्ट करती हैं और भूखको नियमबद्ध करके भोजनको पचाती हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

क्रव्याद रस ।

द्विपलं गंधकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् ।
पारदं पलमानेन मृतशुल्बायसं पुनः ॥ १३५ ॥

तोलमानेन संक्षिप्य पंचांगुलदले क्षिपेत् ।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्यायसभाजने ॥ १२६ ॥
चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदुवह्निना ।
पात्रमात्रं हि जंबीररसं सम्यग्विजारयेत् ॥ १२७ ॥
संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः ।
भावनाः खलु कर्तव्याः पंचाशत्प्रमितास्ततः ॥१२८
भृष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ।
तदर्धं कृष्णलवणं सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ १२९ ॥
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा ।
ततः संशोष्य संपिष्य कूपिकाजठरे क्षिपेत्॥ १४०॥
अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः ।
भुक्त्वा च कंठपर्यंतं चतुर्वल्लमितं रसम् ॥ १४१ ॥
पट्वम्लतक्रसहितं पिबेत्तदनुपानतः ।
क्षिप्रं तज्जीर्यते भुक्तं जायते दीपनं पुनः ॥ १४२ ॥
रसः क्रव्यादनामायं प्रोक्तो मंथानभैरवैः ।
सिंघणक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च ॥
दिष्टो ग्रामं समासाद्य भैरवानंदयोगिना ॥ १४३ ॥
कुर्याद्दीपनमुद्धतं च पचनं दुष्टामसंशोषणं
तुंदस्थौल्यनिबर्हणं गरहरं मूलार्तिशूलापहम् ।
गुल्मप्लीहविनाशनं ग्रहणिकाविध्वंसनं स्रंसनं
वातग्रंथिमहोदरापहरणं क्रव्यादनामा रसः ॥१४४॥

आठ तोले शुद्ध गन्धकको अग्निपर पिघलाकर उसमें पारा ४ तोले, ताम्र भस्म १ तोला और लोह भस्म १ तोला डालकर सबको करछीसे एकमएक करके अण्डके पत्तेके ऊपर ढालकर पर्पटी बनालेवे फिर शीतल होनेपर उसको पीसकर लोहेकी कढाईमें डालकर चूल्हेपर चढावे और नीचे मन्द मन्द अग्नि जलावे पश्चात् कढाईमें जम्बीरी नींबूका थोडा २ रस डालकर जारण करे इस प्रकार जारण करते २ जब १२८ तोले रस शुष्क होजाय तब उसको उतार कर बारीक पीस लेवे फिर उसको त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता और अम्लवेत इन औषधियोंके क्वाथमें ५० बार भावना देवे और प्रत्येक बार सुखावे इसके पश्चात् उसमें समान भाग भुनाहुआ सुहागा, सुहागेसे आधा काला नमक और सब औषधियोंकी बराबर मिरचोंका चूर्ण मिलाकर चनोंके खारके जलमें ७ बार भावना देवे और सुखाकर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे अत्यन्त गुरुपाकी पदार्थ, मांस अथवा अन्यान्य अनेक प्रकारके गुरुपाकी खाद्य पदार्थोंको कण्ठपर्यन्त खाकर फिर इस रसको चार२ रत्ती परिमाण सेवन करे और ऊपरसे सैंधानमक मिलाकर खट्टे तक्रका अनुपान करे इसका सेवन करतेही खाया हुआ भोजन तत्काल जीर्ण होजाता है और फिर अग्निदीपन होकर तुरन्त भूख लगती है क्रव्यादनामक रसको अत्यन्त मांसप्रिय सिंघणराजसे मन्थानभैरवने और उसके ग्राममें आये हुए भैरवानन्द योगीने कहा था यह रस जठराग्निको अत्यन्त दीपन करताहै, अत्यन्त गुरुपाकी पदार्थोंको पचानेवाला और दुष्ट आमको शोषित करनेवाला है एवं स्थूलता, विषके विकार, मूलरोग, शूलकी पीडा, गुल्म, प्लीहा, संग्रहणी, रक्तस्राव, वातकी ग्रन्थि और भयङ्कर उदररोग इन सब व्याधियोंको समूल नष्ट करताहै ॥ १३९–१४४ ॥

राजशेखरवटी ।

भागो मृतरसस्यैको वत्सनाभांशकद्वयम् ।
रसतुल्यं शिवाचूर्णं गंधकं त्र्यूषणं तथा ॥ १४५ ॥
विचूर्ण्यातिप्रयत्नेन भावयेत्सप्तवासरम् ।
तांबूलीपत्रतोयेन स्वर्णधत्तूरजद्रवैः ॥
पिष्ट्वा चणमिताः कुर्याच्छायाशुष्कास्तु गोलिकाः ॥
उष्णांभोयुतराजशेखरवटी मंदाग्निनिर्णाशिनी
नानाकारमहाज्वरार्तिशमनी शूलांतकृत्पाचिनी
पाण्डुव्याधिमहोदरार्तिशमनी निःशेषशूलापहा ।
शोफघ्नी पवनार्तिनाशनपटुः श्लेष्मामयध्वंसिनी १४७

रससिन्दूर १ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया २ भाग, एवं हरडका चूर्ण गन्धक और त्रिकुटा ये प्रत्येक एक २ भाग लेवे सबको एकत्र चूर्ण करके पानोंके में और धतूरेके रसमें क्रमसे सात २ दिनतक भावना देकर चनेकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे ये गोलियाँ मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे अग्निकी मन्दताको अवश्य नष्ट करती हैं, तथा अनेक प्रकारके भयंकर ज्वरोंकी पीडा, पाण्डुरोग, अत्यन्त प्रबल उदररोगकी पीडा, सब प्रकारके शूल, शोथ, वातकी पीडा और सब प्रकारके कफके रोगोंको शीघ्र दूर करती हैं और अत्यन्त पाचक हैं ॥ १४५–१४७ ॥

अग्निकुमार रस ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं द्विक्षारं पटुपंचकम् ।
दशकं तुल्यतुल्यांशं भर्जिता विजया नवा ॥ १४८॥
दशानां तुल्यभागा सा तस्यार्धं शिग्रुमूलकम् ।

तत्सर्वं विजयाद्रावैः शिग्रुचित्रकभृंगजैः ॥ १४९ ॥
द्रावैर्दिनत्रयं मर्द्यं रुद्धा भांडे पचेल्लघु ।
दीपाग्निना तु यामैकं शुष्कं यावत्समुद्धरेत् ॥ १५० ॥
सप्तधा चार्द्रकद्रावैर्भावयेच्चूर्णयेद्भिषक् ।
दीपकोऽग्निकुमारोयं निष्कैकं मधुना लिहेत् ॥ १५१ ॥
प्रतिकर्षं गुडं शुंठी ह्यनुपानं च दीपनम् ॥ १५२ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाभ, जवाखार, सज्जी, सेंधानमक, काला नमक, समुद्रनमक, विरियासंचर नमक और साँभर नमक इन दसों औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर इस चूर्णकी बराबर घीमें भुनीहुई नई भाँग और भाँगसे आधा भाग सैंजनेकी जडका चूर्ण लेकर सबको एकत्र खरल करके भाँगके रस, सैंजनेकी जडके क्वाथ, चीतेकी जडके क्वाथ और भाँगरेके रसमें क्रमसे तीन २ दिन तक भावना देकर गोला बनालेवे उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके भाण्ड-यन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक दीपककी अग्निके द्वारा लघुपुट देवे जब गोला सूखजाय तब उसको निकालकर चूर्ण करलेवे फिर उसको अदरखके रसमें ७ बार भावना देकर सुखाकर चूर्ण करले इस रसको प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे और एक २ तोला गुड तथा सोंठको मिलाकर अनुपान करे यह रस अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ १४८–१५२ ॥

अमृतवटी ।

कुष्ठगंधविषव्योमत्रिफलापारदैः समैः ।
भृंगांबुमर्दिता मुद्गमानाऽमृतवटी शुभा ॥
अजीर्णश्लेष्मवातघ्नी दीपनी रुचिवर्धिनी ॥ १५३ ॥

कूठ, गन्धक, वत्सनाभ, अभ्रकभस्म, त्रिफला और पारा इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करले फिर उसमें अभ्रक भस्म आदि अन्यान्य औषधियोंको मिलाकर खरल करलेवे पश्चात् भांगरेके रसमें घोटकर मूँगकी बराबर गोलियाँ बनालेवे ये गोलियाँ अजीर्ण कफ और वातजनित रोगोंको शीघ्र नष्ट करती हैं जठराग्निको दीपन करती हैं और रुचिको बढाती हैं ॥ १५३ ॥

राक्षसनामा रस ।

ताम्रं पारदगंधकौ त्रिकटुकं तीक्ष्णं च सौवर्चलं
खल्वे मर्द्य दृढं निधाय सिकताकुंभेऽष्टयामं ततः ।
स्विन्नं तस्य च रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं मेळये-
त्सर्वं भावितमातुलुंगजरसैर्नाम्ना रसो राक्षसः ॥ १५४ ॥
मंदाग्नौ सततं ददीत मुनये प्रातः पुरा शंकरः
सख्येऽस्मै च्यवनाय मंदहुतभुग्वीर्याय नष्टौजसे ।
तेनाऽऽदाय समस्तलोकगुरवे सूर्याय तस्मै नमो
मर्त्यानामपि चास्य दानसमये गुंजाष्टकं वर्धयेत् ॥ १५५ ॥

ताम्रभस्म, पारा, गन्धक, सोंठ, मिरच, पीपल, तीक्ष्ण लोह भस्म और काला नमक सबको समान भाग लेकर बारीक खरल करके एक आबसी शीशीमें भरे उसपर कपरोटी करके शीशीको बालुकायन्त्रमें रखकर आठ प्रहर तक मन्द मन्द अग्नि देवे स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करके उसमें समान भाग लाल शाकिनी (औषधिविशेष) का खार मिलाकर बिजौरे नींबूके रसमें भावना देकर सुखालेवे और सूक्ष्म चूर्ण करके रखलेवे इस प्रकार यह राक्षसनामक रस सिद्ध होताहै । इसको मन्दाग्नि रोगमें प्रतिदिन प्रातःकाल

सेवन कराना चाहिये यह रस पूर्वकालमें शंकरभगवान्‌ने, मन्दाग्निसे नष्ट ओज और नष्ट वीर्यवाले अपने मित्र च्यवन-मुनिको दिया था उन्होंने संसारके हितके लिये इस रसको प्रकाशित किया है । ऐसे जगद्गुरु सूर्यरूप उस शंकरके लिये नमस्कार है । आधुनिक मनुष्योंको यह रस सेवन कराना हो तो प्रथम प्रतिदिन एक रत्तीकी मात्रा बढाकर आठ रत्ती-तक सेवन करावे, फिर क्रम २ से एक २ रत्तीकी मात्रा घटाता चलाजाय ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

जीवननामा रस ।

रसगंधौ सिंधुकणाटंकणमभयाग्निहियावलीकतकफलम् ।
क्रमशोत्तरभागविचूर्णिंतया बृहतीरससंयुतभावनया १५६
आर्द्रकहिंगुपुनर्नवपूतिच्छिन्नरसैः क्रमशो भावनया ।
तत्र कलांशविषं च विमिश्रं तद्रसमाषसमानवटी या १५७
सर्वमजीर्णं कफमारुतपाण्डुशोफहलीमककामलशूलम् ।
नाशयते क्षुदुराग्निकरोऽयं दीपनजीवननामरसेंद्रः १५८॥

पारा १ तोला, गन्धक २ तोले, सैंधानमक ३ तोले, पीपल ४ तोले, सुहागा ५ तोले, हरड ६ तोले, चीतेकी जड ७ तोले, हे-याबेल ८ तोले और निर्मलीके बीज ९ तोले इस क्रमसे इन औषधियोंको बढाकर लेवे फिर सबको एकत्र चूर्ण करके, कपडछान करलेवे उस चूर्णको बडी कटेरी, अदरख, हींग, विष-खपरा, करंज और गिलोय इन औषधियोंके रस अथवा क्वाथमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर उसमें समस्त चूर्णका सोलह-वाँ भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे यह जीवननामक रस सब प्रकारके अजीर्ण कफ और वातजनित रोग, पाण्डुरोग, शोथ, हलीमक, कामला, शूल,

मन्दाग्नि आदि सम्पूर्ण रोगोंको विनाश करताहै और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करताहै ॥ १५६-१५८ ॥

बडवानल रस।

शुल्बं तालकगंधकौ जलनिधेः फेनाग्निगर्भाशयं
कांतायोलवणानि हेमपवयो नीलांजनं तुत्थकम् ।
भागो द्वादशको रसस्य तु दिनं वज्र्यंबुघृष्टं शनैः
सिद्धोऽयं बडवानलो गजपुटे रोगानशेषाञ्जयेत्१५९

ताम्रभस्म, हरताल, गन्धक, समुद्रफेन, चीता, कान्तलोह भस्म, पाँचों नमक, सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध काला सुरमा और तूतिया ये सब औषधियाँ समान भाग और समस्त औषधियोंका १२ वाँ भाग पारा लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे फिर सबको एकत्र खरल करके थूहरके दूधमें एक दिनतक घोटकर गजपुटमें पकावे। इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह बडवानल रस भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंको दूर करताहै ॥ १५९ ॥

अग्निजननीवटी।

कणनागरगंधकपारदकं गरलं मरिचं समभागयुतम् । लकुचस्य रसैश्चणकप्रमितागुटिका जनयत्याचिरादनलम् ॥ १६० ॥

पीपल, सोंठ, गन्धक, पारा, वत्सनाभ और मिरच सबको समान भाग लेकर बडहलके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंके सेवन करनेसे अल्पकालमें ही अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ १६० ॥

सर्वरोगान्तक वटी।

शुद्धसूतं विषं गंधमजमोदं फलत्रयम् ।

सर्जीक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकम् ॥ १६१ ॥
सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ।
विषमुष्टिः सर्वतुल्या जंबीराम्लेन मर्दितम् ॥ १६२ ॥
मरिचाभां वटीं खादेद्वह्निमांद्यप्रशांतये ।
पथ्या शुंठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा ॥
अग्निमांद्ये वटी ख्याता सर्वरोगकुलांतका ॥ १६३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध गन्धक, अजमोद, त्रिफला, सज्जी, जवाखार, चीता, सैंधानमक, जीरा, काला नमक, वाय-विडंग समुद्रनमक और त्रिकुटा ये सब औषधियाँ समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे इसमें समस्त चूर्णकी बराबर कुचलेका चूर्ण मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके मिरचकी बराबर गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करके ऊपरसे हरड सोंठ और गुड इन तीनोंको दो तोले परि-माण सेवन करे । ये गोलियाँ मन्दाग्निको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और सम्पूर्ण रोगोंको समूल नष्ट करती हैं ॥ १६१–१६३ ॥

सामान्य उपाय ।

मृतं ताम्रं कणातुल्यं चूर्णं क्षौद्रविमिश्रितम् ।
निष्कार्धं भक्षयेन्नित्यं नष्टवह्निप्रदीप्तये ॥ १६४ ॥
आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रं पलमात्रं पिबेदनु ।
यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः ॥ १६५ ॥

ताम्रभस्म और छोटी पीपलका चूर्ण दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे उसमेंसे प्रतिदिन दो २ मासे परि-माण लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे अदर-खके दो तोले स्वरसमें दो तोले शहद मिलाकर अनुपान करे

इस पर यथेच्छरूपसे घृत, मांस आदि गुरुपाकी पदार्थोंका आहार करे तो उसको भी पचानेके लिये अग्नि समर्थ होजाती है। यह प्रयोग अग्निकी मन्दताको दूर करके अग्निको दीपन करनेके लिये विशेष उपयोगी है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रससरत्नसमुच्चये भाषा-
टीकायां षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः।

मूत्रकृच्छ्ररोग।

"व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठ-
यानात्। आनूपमांसाध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्र-
कृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥"

अधिक परिश्रम करनेसे अत्यन्त तीक्ष्ण पदार्थों या औषधियोंके सेवन करने, रूक्ष पदार्थोंके अधिक खानेसे, अत्यन्त मद्यपान करनेसे, अतिशय स्त्रीप्रसंग करने, अधिक दौडने और घोडा आदिकी सवारी करनेसे अथवा अनूपदेशके जीवोंका मांसाहार करने, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे और अजीर्ण होनेसे मनुष्योंके मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न होताहै। वह वात पित्तादि दोषभेदसे आठ प्रकारका होता है ॥

लघुलोकेश्वर रस।

मृतसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगंधकात्।
पिष्ट्वा वराटकं तेन रसपादं च टंकणम् ॥ १ ॥
क्षीरैः पिष्ट्वा मुखं रुद्ध्वा वराटांश्चान्ध्रयेत्पुटेत्।
स्वांगशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो रसः ॥ २ ॥
चतुर्गुंजारसश्चायं मारिचैकोनविंशतिः।

जातिमूलपलैकं तु अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥
शर्कराभावितं चानु पीत्वा कृच्छ्रहरं परम् ॥ ३ ॥

रसासिन्दूर १ भाग और शुद्ध गन्धक ४ भाग, दोनोंकी कज्जली करके कौडियोंके भीतर भरलेवे और पारेसे चौथाई भाग सुहागेकी खीलको दूधमें पीसकर उससे कौडियोंका मुँह बन्द करके सुखा लेवे । उन कौडियोंको शरावसम्पुटमें बन्द करके बाराहपुट देवे स्वाँगशीतल होनेपर कौडियोंको निकालकर बारीक चूर्ण करके रखलेवे । इसको लघुलोकेश्वररस कहते हैं । इस रसको चार २ रत्ती परिमाण लेकर २१ मिरचोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करे और पीछेसे चार तोले चमेलीकी जडके चूर्णको बकरीके दूधमें पीसकर उसमें खाँड डालकर पान करे । यह रस मूत्रकृच्छ्ररोगको दूर करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १-३ ॥

सामान्य उपचार ।

गोक्षुरस्य कषायं तु सघृतं पाययेन्निशि ।
पाण्डूरफलमूलं च भूम्यामलकमूलिका ॥
वंशस्य पेटकायांश्च मूलं पिष्ट्वा जलं पिबेत् ॥ ४ ॥
शुक्लपिण्याकपिच्छिल्लीचूर्णमुष्णेन वारिणा ।
पिबन्विमुच्यते रोगान्मूत्रकृच्छ्रात्सुदारुणात् ॥ ५ ॥
शतावरीरसे पिष्ट्वा तुत्थसूतार्कपिष्टिका ।
पाचिता कटुतैलेन मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्यते ॥ ६ ॥
विदारीं गोक्षुरं यष्टीं कसेरुं च समं पचेत् ॥ ७ ॥
तं कषायं पिबेत्क्षौद्रं रसभस्मयुतं तथा ।

मूत्रकृच्छ्रहरं ख्यातं सप्ताहात्पित्तसंभवम् ॥ ८ ॥
तिलापामार्गकदलीपलाशयवकाण्डकान् ।
दग्ध्वा तद्भस्म तोयेन वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ ९ ॥
तं पचेत्तोयशोषांतं ततश्चूर्णं द्विगुंजकम् ।
दापयेदविमूत्रेण शर्कराकृच्छ्रहृद्भवेत् ॥ १० ॥

गोखुरूके काढेको घी मिलाकर रात्रिमें पान करानेसे मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है अथवा धौं वृक्षकी जड, भुईं आमलेकी जड बाँसकी जड और पेटारी वृक्षकी जड इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर पान करे तो मूत्रकृच्छ्र रोगमें विशेषलाभ होता है। अथवा सफेद तिलोंकी खल और ह्लसौडेके पत्तोंका चूर्ण दोनोंको समान भाग लेकर मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे रोगी दारुण मूत्रकृच्छ्ररोगसे मुक्त होजाता है। किम्वा तूतिया, ताम्र भस्म और पारदपिष्टी तीनोंको समभाग लेकर शतावरके रसमें खरल करके सरसोंके तेलमें पकावे। फिर उसको उपयुक्त मात्रासे दूध, शीतल जल अथवा शहदके साथ सेवन करे। यह प्रयोग मूत्रकृच्छ्र रोगमें अत्यन्त उपयोगी है। या विदारीकन्द, गोखुरू, मुलैठी और कसेरू, चारोंको समान भाग लेकर चतुर्भागावशिष्ट क्वाथ बनावे। उस क्वाथमें शहद और आधी रत्ती परिमाण पारेकी भस्म मिलाकर पान करनेसे पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्ररोग एक सप्ताहमें ही नष्ट होजाता है। अथवा तिल, चिरचिटा, केला, ढाक और जौ इन सबकी शाखाओंको जलाकर भस्म कर लेवे। उस भस्मको पानीमें घोलकर और वस्त्रमें छानकर पानीको मन्दमन्द अग्निसे पकावे। जब सब पानी जलजाय और चूर्णमात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर शीशीमें भरकर रखलेवे। इस चूर्णको दो २ रत्ती परिमाण लेकर भेडके

मूत्रके साथ सेवन करावे । यह औषध—शर्करायुक्त मूत्रकृच्छ्र रोगको दूर करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ ४–१० ॥

अश्मरी (पथरी रोग) ।

कट्यौ कुक्षिप्रदेशे च शूलं प्रथमतो भवेत् ।
पश्चाद्रोधो ज्वलन्मूत्रमश्मरीरोगलक्षणम् ॥ ११ ॥

प्रथम कमर और पेडूमें पीडा होना, फिर मूत्रका अवरोध होना, अथवा बहुत जोर लगाने पर थोडा थोडा मूत्रका आना और दाह होना ये सब पथरी रोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ११ ॥

पाषाणभेदी रस ।

रसं द्विगुणगंधेन मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
वसुः पुनर्नवा वासा श्वेता ग्राह्या प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
तद्रवैर्भावयेदेनं प्रत्येकं तु दिनत्रयम् ।
पक्वं मूषागतं शुष्कं स्वेदयेज्जलयंत्रतः ॥ १३ ॥
पाषाणभेदी नामायं नियुंजीतास्य वल्लकः ।
गोपालकर्कटीबीजं भूम्यामलकमूलिका ॥ १४ ॥
कुलत्थक्काथतोयेन पिष्ट्वा तदनुपाययेत् ॥ १५ ॥

पारा १ तोला और गन्धक २ तोले लेकर दोनोंको एकत्र मर्दन करके कज्जली करलेवे । फिर आककी जड, विषखपरा अडूसा और विष्णुक्रान्ता इन औषधियोंके रसमें कज्जलीको क्रमसे तीन २ दिनतक भावना देकर गोला बनालेवे । उसको मूषामें बन्द करके भाण्डपुटके द्वारा अग्नि देवे । जब गोला बिलकुल शुष्क होजाय तब उसको निकालकर स्वेदनीयंत्रमें अधर लटकाकर ३ घंटेतक स्वेद देवे । फिर सुखाकर खरल कर लेवे । इस रसको प्रतिदिन दो २ रत्ती परिमाण सेवन करावे और ऊपरसे खीरा या काकडीके बीजोंके और भुंई आमलेकी

जडके समान भाग चूर्णको कुलथीके क्काथमें पीसकर उसका अनुपान करावे । अथवा कुलथीके काढेमें एक रत्ती पाषाणभेदी रसको घोटकर पान करावे । इस रसको पाषाणभेदी कहते हैं । यह पत्थरको भी भेदन करके वाहर निकाल देता है ॥१२-१५॥

द्वितीय पाषाणभेदी रस ।

रसेन सितवर्षाभ्वा रसं द्विगुणगंधकम् ॥ १६ ॥
घृष्टं पचेच्च मूषायां द्वौ माषौ तस्य भक्षयेत् ।
पातालकर्कटीमूलं कुलत्थोदैः पिबेदनु ॥ १७ ॥
गोकंटकसदाभद्रामूलक्काथं पिबेन्निशि ।
अयं पाषाणभिन्नामा रसः पाषाणभेदकः ॥ १८ ॥
गोक्षुरबीजसमुत्थं चूर्णमविक्षीरसंयुक्तम् ।
रसवरमिश्रं पिबतश्चूर्णीभूत्वाऽश्मरी पतति ॥ १९ ॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग दोनोंकी कज्जली करके उसको श्वेतपुनर्नवाके रसमें घोटकर गोला बनालेवे । उस गोलेको मूषामें बन्द करके भाण्डपुटमें रखकर ३ घंटेतक मन्दमन्द अग्निके द्वारा पकावे । स्वॉग शीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको दो २ मासे परिमाण लेकर पातालगरुडीकी जडके क्काथ और कुलथीके क्काथके साथ सेवन करे और रात्रिमें गोखुरू तथा कुम्भेरकी जडके क्काथके साथ सेवन करे । यह पाषाणभेदी रस पत्थरके समान कठिन पथरीकोभी भेदन करके निकाल देताहै । अथवा इस रसको दो २ मासेकी मात्रासे गोखुरूके बीजोंके चूर्ण और भेडके दूधके साथ सेवन करे तोभी पथरी चूर्ण चूर्ण होकर बाहर निकल जाती है ॥ १६-१९ ॥

त्रिविक्रमरसः ।

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे ।
तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् ॥२०॥
निर्गुंडयुत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमंध्रयेत् ।
यामैकं वालुकायंत्रे पाच्यं योज्यं द्विगुंजकम्॥ २१ ॥
बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् ।
रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत् ॥ २२ ॥

ताम्रभस्म और बकरीके दूधको समान भाग लेकर पकावे । जब दूध सब जलजाय और भस्ममात्र शेष रहजाय तब उसमें शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक ताम्र भस्मके बराबर २ भागमें मिलाकर निर्गुण्डीके रसमें एक दिनतक घोटकर गोला बनालेवे । उस गोलेको घडियामें बन्द करके वालुकायन्त्रमें रखकर एक प्रहरतक पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर उसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको दो २ रत्ती परिमाण सेवन करके ऊपरसे बिजौरे नींबूकी जडको जलमें पीसकर उसके रसका अनुपान करे । यह त्रिविक्रम रस इस प्रकार नित्य सेवन करनेसे एक महीनेमेंही पथरीरोगको नष्ट करदेता है ॥ २०-२२ ॥

आनंदभैरवीवटी ।

तिलापामार्गकाण्डं च कारवेल्ल्या यवस्य च ।
पलाशकाष्ठसंयुक्तं सर्वं तुल्यं दहेत्पुटे ॥ २३ ॥
तन्निष्कैकमजामूत्रैर्वटीं चानंदभैरवीम् ।
पाययेदश्मरीं हंति सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ २४ ॥

तिल, चिराचिटा, करेला और जौ इन चारोंके पञ्चाङ्गको और ढाककी शाखाओंको समान भाग लेकर सुखा लेवे । फिर सबको एक हाँडीमें बन्द करके भस्म करलेवे । उस भस्मको बकरीके मूत्रमें खरल करके तीन २ मासेकी गोलियाँ बना-लेवे । इन गोलियोंको प्रतिदिन बकरीके मूत्रके साथ सेवन करानेसे एक सप्ताहमें पथरीरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

सामान्य उपाय ।

पाण्डूरफलिकामूलं जलेनैवाऽश्मरीहरम् ।
मधुना च यवक्षारं लीढं स्यादश्मरीहरम् ॥ २५ ॥
हरिद्रागुडकर्षैकं चारनालेन वा पिबेत् ।
वंध्याकर्कोटकीकंदं भक्ष्यं क्षौद्रसितायुतम् ॥
अश्मरीं हंति नो चित्रं रहस्यं हि शिवोदितम्॥२६॥

धौं वृक्षकी जडको जलमें पीसकर पान करनेसे पथरीरोग दूर होताहै । जवाखारको शहदमें मिलाकार चाटनेसेभी पथरी दूर होती है । अथवा हल्दी १ तोला और गुड १ तोला लेकर दोनोंको काँजीमें पीसकर पान करे, अथवा बाँझककोडेके कन्दको सुखाकर चूर्ण करके उसको मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करे । इनमेंसे प्रत्येक प्रयोग अश्मरीरोगको नष्ट करनेवाला है, इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है । ये प्रयोग शिवजी महाराजके कहे हुए हैं, इनको सदैव गुप्त रखना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

प्रमेह रोग ।

शोषस्तापोंगकार्श्यं च बहुमूत्रत्वमेव च ।
अस्वास्थ्यं सर्वगात्रेषु तत्प्रमेहस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥

शरीरकी रस, रक्तआदि धातुओंका शुष्क होना, ज्वर अथवा दाह होना, शारीरिक अङ्गोंका प्रतिदिन कृश होना, पेशाबका अधिक आना, और संपूर्ण शरीरमें शिथिलता या पीडाका होना ये सब प्रमेह रोगके लक्षण हैं। "शारीरिक परिश्रम न करना, दिनमें सोना, दही, दूध, ग्राम्यजीवोंका मांस और कफकारक पदार्थोंका अधिक सेवन, अधिक बैठे रहना, भोजनपर भोजन करना, अजीर्ण रहना और अधिक स्त्रीप्रसंग करना इत्यादि अनेक कारणोंसे प्रमेहरोग होता है। और वह वातादि दोष भेदोंसे २० प्रकारका होताहै" ॥२७॥

चन्द्रप्रभावटी ।

बोलं जातिफलं मधूकयुगलं सारं तथा खादिरं
कर्पूरामलकी शठी बहुसुता घोंटाम्लसारास्थिराः ।
कासीसं भवबीजदाडिमसहा सर्वं समं कल्कितं
प्रत्येकं दधिदुग्धलांगलिरसैस्तुंबस्य मुद्गस्य च ॥२८॥
रसेन भावितं तस्य गुटिका संप्रकल्पिता ।
जयेच्चंद्रप्रभा नाम तीव्रान्मेहादिकान्गदान् ॥ २९ ॥

बोल, जायफल, मुलैठी, महुआ, खैरसार, कपूर, आमले, कचूर, शतावर, गोरखमुंडी, अम्लवेत, शालपर्णी, हीराकसीसकी भस्म, शिवलिंगीके बीज, अनार और घीग्वार इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे। फिर दही, दूध, कलिहारीकी जड, तोंबी (लौकी) और मूँग इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर तीन २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ अल्पकालमेंही प्रमेह आदि भयंकर रोगोंको नष्ट करती हैं ॥२८॥२९॥

प्रमेहगजसिंहरस ।

चांडालीराक्षसीपुष्परसमध्वाज्यटंकणम् ।
रसं समांशोपरसं समं हेम्ना विमर्दितम् ॥ ३० ॥
समांशं पूतिलोहं वा मूषायां विपचेत्क्रमात् ।
प्रमेहगजसिंहोयं रसः क्षौद्रैर्द्विमाषकम् ॥ ३१ ॥

पारा, गन्धक, सानक वर्क और वङ्गभस्म चारोंको समान भाग लेकर प्रथम पंचगुरियाके फूलोंके रसमें घोटकर मूषामें बन्द करके कुक्कुटपुट देवे। फिर रतनज्योतके फूलोंके रसमें तथा शहद, घी और सुहागा इन प्रत्येकके साथ क्रमसे एक एक बार घोटकर पृथक् पृथक् कुक्कुट पुट देवे। इस रसको दो २ मासे परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे। यह रस प्रमेहरूप गजको नष्ट करनेके लिये सिंहकी समान है ॥३०॥३१॥

महाविद्यागुटी ।

मर्दितं किंशुकरसैः कांतनागाभ्रपारदम् ।
कषायैः स्विन्नमाकुल्या वालुकायंत्रपाचितम् ॥३२॥
राजावर्तशिलाधातुताप्यमंडूरमाक्षिकैः ।
तुत्थवैक्रांतकासीसैः समैः सर्वैरिमैः समम् ॥ ३३ ॥
आधारी कृष्णमूला तु कपित्थः श्रावणी हिमम्
नारिकेलस्य मूलानां मुस्ताचंदनसारयोः ॥ ३४ ॥
काकजंबूप्रसूनानां रसैः सह विमर्दयेत् ।
गुटिकां भक्षयेत्तस्य माषद्वितयसंमिताम् ॥ ३५ ॥
धात्रीरसं चानुपिबेन्नाकुलीचूर्णमात्रया ।
रात्रौ धात्रीरसं देयं महाविद्याप्रमेहजित् ॥ ३६ ॥

कान्तलोह भस्म, सीसेकी भस्म, अभ्रक भस्म, और पारद भस्म चारोंको समान भाग लेकर ढाकके पत्तोंके रसमें खरल करे । फिर नकुलकन्दके काढेमें एक भावना देकर वालुकायन्त्रमें पकावे । इसके पश्चात् राजावर्त्तकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मण्डूर भस्म, रूपामाखी की भस्म, तूतिया, वैक्रान्तमणिकी भस्म और कसीस इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल कर ले और इस औषधिको उपर्युक्त वालुकायंत्रमें पकाई हुई औषधिके साथ सम परिमाणमें लेकर मिला लेवे । फिर शतावर, सारिवा, कैथ, गोरखमुंडी, पद्माख, नारियलकी जड, नागरमोथा, चन्दन, खैरसार और छोटी जामुनके फूल इन औषधियोंके रसमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर दो दो मासेकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसकी प्रतिदिन एक २ गोली सेवन कर ऊपरसे नकुलकन्दका चूर्ण मिलाकर आमलोंके रसका अनुपान करे । और रात्रिमें केवल आमलोंके रसका अनुपान करे । इस प्रकार इन गोलियोंको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं ॥ ३२-३६ ॥

मेहध्वान्तविवस्वान् रस ।

वीर्यं पुरारेर्बलिमभ्रसंज्ञं जंबीरनीरेण विमर्द्य भस्म । रसार्धभागेन ददीत शुल्बं सर्वं ततो गोपयसा विमर्द्य ॥ ३७ ॥

खर्जूरमत्स्यंडिकहंसपादी द्राक्षेण सत्त्वेन गुडूचिकायाः । मांसीशिवाकर्कटरुच्यदंती बीजैस्तदीयैः सलिलैर्विमर्द्य ॥ ३८ ॥

ततो रसः सिद्ध्यति वल्लमस्य शुक्रप्रमेहे सति शाल्मलीनाम् । मूलांबुना वा

कुसुमांबुना वा दद्यात्पयोभक्तकमत्र योग्यम् ॥३९॥ क्षौद्रेण दुर्नाम्नि तथाऽश्मरीषु गवां पयोभिर्निखिलप्रमेहे ॥ ४० ॥

पारा, गन्धक और अभ्रक तीनोंको समभाग लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करे, फिर उसमें पारेसे आधा भाग ताम्र भस्म मिलाकर गायके दूधके साथ खरल करके सुखा लेवे। इसके पश्चात् खजूर, मिश्री, लाल लज्जालु, दाख, गिलोयका सत्त्व, जटामांसी, हरड, काकडासिंगी, तुलसीके पत्ते और दन्तीक बीज (जमालगोटा) इन समस्त औषधियोंके रस अथवा क्काथमें क्रम क्रमसे एक २ बार मर्दन करके सुखा लेवे। फिर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस प्रकार यह रस सिद्ध होता है। शुक्रगत प्रमेहके होनेपर इस रसको दो २ रत्ती परिमाण लेकर सेमलकी मुसलीके क्काथ अथवा सेमलके फूलोंके रसके साथ व्यवहार करे। इसके सेवन करने पर दूध, भातका पथ्य देवे। अर्शरोगमें इस रसको मधुके साथ तथा पथरीरोग और अन्य सब प्रकारके प्रमेहोंमें गोदुग्धके साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७-४० ॥

उमाशम्भु रस।

रसाभ्रकौ तुत्थसमानभागौ जंबीरनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य। कुर्वीत मूषाकुहरे निवेश्य वह्नौ ततस्तस्य पुटानि सप्त ॥ बीजाह्वमुष्काक्षयुगैश्चतस्रः स्युर्भावना द्वे ककुभात्त्रिवारम् ॥ ४१ ॥ यष्टीसिताकेतकजीररंभा खर्जूरिका जातिदलैः प्रतिस्त्वम्। एवं हि सिद्धस्य रसस्य वल्लो मधुप्रयुक्तः सहसा शिशूनाम् ॥ ४२ ॥

संतापशोषौ बलहीनतां च तृषां च वासासलिलैः प्रमेहान् । निवर्तयेद्रासरसप्तकेन दुग्धौदनं स्यादिह भोजनाय ॥ ४३ ॥

नीरेण बब्बूलनवप्रवालान्निपेव्य तैः शर्करया समन्वितैः । सर्वप्रमेहान्विनिहंति दत्तो दिनत्रयं विंशतिवत्सरस्य ॥ ४४ ॥

अन्नं ससर्पिः प्रमितं प्रयोज्यं दिनानि सप्त त्रिगुणानि चात्र । वरामधुभ्यां सहितस्य यस्य पंचाधिका वत्सरविंशतिः स्यात् ॥ ४५ ॥

हैयंगवीनेन गवां च पथ्यं त्रिसप्तसंख्यानि दिनानि कार्यम् । प्रस्विन्नगोधूमरसेन हंति सत्रिंशदब्दस्य दिनत्रयेण ॥ ४६ ॥

अन्नं ससर्पिः सगुडं हि देयं माध्विक्षुखण्डै-स्त्रिदिनं विधातुम् । अंगानि सम्यग्विनिद्रावसंपगतानि खानि स्फुटनं ददीत ॥ ४७ ॥

चिंचागुडाभ्यां युतमन्नमास्मिन्द्राक्षादिनीरेण विमिश्रितं सत् । दिनत्रयं लंघनजं विशोषं विनाशयेद्गोस्तनिकासिताभ्याम् ॥ ४८ ॥

पथ्यं देयमुमाशंभो वासुदेवेन निर्मिते । पातुं जगंति कृपया मेहध्वांतविवस्वति ॥ ४९ ॥

पारा और अभ्रक ये दोनों समान भाग और दोनोंके बराबर तूतिया लेकर सबको जम्बीरी नींबूके रसमें ३ दिन तक

खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको सुखाकर मूषामें बन्द करके कुक्कुट पुट देवे। इस प्रकार नींबूके रसमें बारबार घोटकर ७ कुक्कुटपुट देवे। पश्चात् उस गोलेको चूर्ण करके बिजौरा नींबू, मोरवा, बहेडा और आमले इन चारों औषधियोंके रसमें क्रमसे एक एक बार भावना देवे। एवं अर्जुनकी छालके काढेमें २ बार और मुलैठी, मिश्री, केवडा, जीरा, केला, खजूर और चमेलीके पत्ते इन सबके रसोंमें क्रम २ से तीन तीन बार भावना देवे। फिर उसको सुखाकर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रख देवे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए इस रसको प्रतिदिन २ या ३ रत्ती परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। यह रस बालकोंके सन्ताप, शोष, दुर्बलता और तृषाको शीघ्र दूर करता है और अडूसेके रसके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रमेहोंको एक सप्ताहमें नष्ट करदेता है। इसपर दूध और भातका भोजन करना चाहिये। २० वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यको बबूलकी कोमल और हरी पत्तियोंके स्वरसमें खाँड डालकर उसके साथ यह रस सेवन करावे। इससे ३ दिनमें सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं। इसके सेवन करने पर २१ दिनतक घृत और मिश्री मिलाकर भातका भोजन करे। २५ वर्षकी अवस्थावाले व्यक्तिको यह रस त्रिफलेके चूर्ण और शहदके साथ सेवन करना और गायके मक्खन तथा मिश्रीके साथ २१ दिन तक पथ्य देना चाहिये। ३० वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यको यह रस उबालेहुए गेहुँओंके रसके साथ ३ दिनतक सेवन करावे और पूर्ववत् पथ्य देवे तो ३ दिनमें ही प्रमेह दूर होजाता है। इस रसको सेवन करते समय घी, गुड, भात, मधु, खाँड या ईखका रस इत्यादि शीतवीर्य और स्निग्ध पदार्थोंका आहार करना चाहिये। अन्यथा इस प्रकार पथ्य न करनेसे सम्पूर्ण अंगोंमें

दाह और पीडा होती है तथा आँख, नाक, कान, मुँह, गुदा, लिंग आदि स्थानोंसे रक्तस्राव होने लगता है। इस रसपर लंघन करनेसे यदि धातुशोष आदि उपद्रव उत्पन्न होजायँ तो इमलीके रसमें गुड डालकर पन्ना बनाकर उसके साथ भातका भोजन करावे और द्राक्षादि गणकी औषधियोंके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करावे। अथवा केवल दाख और मिश्री सेवन करावे इस प्रकार उपचार करनेसे ३ दिनमें शोष-रोग दूर होजाता है। इस उमाशम्भु रसको श्रीवासुदेवाचार्यने जगत्का कल्याण करनेकी इच्छासे निर्माण किया है। यह प्रमेहरूप अन्धकारको विनाश करनेके लिये सूर्यके समान प्रभावशाली है ॥ ४१-४९ ॥

रसेन्द्रनाग रस ।

नागं कपालमध्ये कृत्वा चाग्निं विशोधयेत्क्रमशः ।
च्चिंचाकवचक्षारं स्वल्पं स्वल्पं विकीर्य कुंतेन ॥
पारदभागं सीसं घृष्ट्वा घृष्ट्वा विचूर्णितं सम्यक् ॥५०॥
तिलयुक्स्वादन्मधुना तरवटबीजेन मिश्रितं क्रमशः ।
मेहगणार्तिविशेषं सपीटिकं कुष्ठमानिलं च ॥
हंत्यल्पदिनाभ्यासात्सुपथ्ययोगाद्रसेंद्रनागोऽयम् ५१ ।

सीसेको एक खीपरेमें डालकर और चूल्हेपर चढाकर गलावे, जब वह गलकर रसरूप होजाय तब उसमें थोडा २ इमलीकी छालका खार डालता जाय और करछीसे चलाता जाय इस प्रकार ९ घंटेतक उक्त खारको जारण करे। फिर स्वांगशीतल होनेपर सीसेमें उससे चौथाई भाग शुद्ध पारा मिलाकर उत्तम-प्रकारसे खरल करके खूब बारीक चूर्ण करलेवे इस रसको उप-युक्तमात्रासे तिलोंके और चकवडके बीजोंके चूर्ण तथा शहदमें

१ नागं पादरसाभ्रमित्यपि पाठः ।

मिलाकर सेवन करे। यह रसेन्द्रनाग-रस थोडेदिनों सेवन करने और उत्तम पदार्थोंका पथ्य लेनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह, उनकी भिन्न भिन्न प्रकारकी पीडायें, प्रमेह पिडिका, कुष्ठ और वातजन्य रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मेहशत्रु रस।

कांताभ्रमंडूरहरीतकीनां विचूर्णितानां
क्रमशः शरांशकम्। रसेन भूतांशमयो
दशांशं द्वात्रिंशदघोत्तरमुत्तमायाः ॥ ५२ ॥
श्लक्ष्णं मृदित्वा गुलिकां विधाय तक्रेण
पीतं तलपोटकस्य। बीजं च तेषां द्विगुणं
प्रकल्प्य मेहामयान्हंति स मेहशत्रुः ॥ ५३ ॥

कान्तलोह भस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म, हरडका चूर्ण और पारेकी भस्म ये प्रत्येक उत्तरोत्तर क्रमसे बढाकर लेवे, लोहभस्म १० भाग और दूद्धी घुँघूचीकी जड ४० भाग लेकर सबको एकत्र बारीक खरल करके दो दो मासेकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे प्रति दिन दोनों समय एक गोली चकबडके बीजोंके चूर्ण और तक्रमें मिलाकर सेवन करे। चूर्ण गोलीसे दुगुना लेना चाहिये यह रस सम्पूर्ण प्रमेहोंको निस्सन्देह दूर करताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

कासीसबद्ध रस।

कासीसं कृष्णनागं क्षितिधररुधिरं नीलमभ्रं सुकांतं
हेमांगं भूमिसारं सलिलरिपुदलं मेहतिष्यारिबीजम्।
गोरक्षा चारिमेदः क्षितिरुहसहितं श्वेतगुंजांघ्रिबीजं कपित्थासृग्विमिश्रंक्षीतिफलसहितंरोहिणीचाक्षमिश्रम् ५४

१ समांशामित्यपि पाठः। २ अहीत्यपि पाठः।

सर्वं संपिष्य तोये करिविजयभुवान्मोदकानक्षमात्रान्
कुर्यात्तक्रेण देयं क्षपयति निखिलं मूत्ररोगं त्रिरात्रात् ।
सप्ताहाद्भ्रांतिनाशं[1] तृषमतिबहुलां हंति पक्षाद्विधत्ते मासा·
त्सर्वांगवृद्धिं मुनिभिरभिहितो मेहिनां[2] कासीसबद्धः ॥५५॥

शुद्ध कसीस, नाग भस्म, गेरू, काला अभ्रक, कान्तलोहा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शिलाजीत, समुद्रशोषके पत्ते, करञ्ज बीज, गोखरू, दुर्गन्धखैर, अर्जुन वृक्षकी जड, सफेद चोंटली और चोंटलीकी जड, कैथका गूदा, केशर, हरी मूँग, मँजीठ और बहेडा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे इस चूर्णको कचनारके रसमें घोटकर एक २ तोलेके लड्डू बनालेवे । इन लड्डूओंको तीन दिनतक तक्रके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होते हैं । ७ दिन तक सेवन करनेसे चित्तकी भ्रान्ति और १५ दिन सेवन करनेसे अत्यन्त प्रबल तृषा दूर होती है । एक मास पर्यन्त इस रसको सेवन करनेसे शरीरके सम्पूर्ण अङ्गोंकी वृद्धि और रक्त मांस आदि धातुओंकी पुष्टि होती है । इस कासीसबद्ध रसको मुनियोंने प्रमेहरोगियोंके हितके लिये वर्णन कियाहै ॥५४॥५५॥

भीमपराक्रम रस ।

तुल्याभ्यां रसगंधाभ्यां कृत्वा कज्जलिकां त्र्यहम् ।
द्रावयित्वाऽऽयसे पात्रे मृदुना बदराग्निना ॥ ५६ ॥
निरुत्थमष्टमांशेन सीसभस्म विनिक्षिपेत् ।
संमिश्र्य कदलीपत्रे निक्षिप्य तदनंतरम् ॥ ५७ ॥
आकृष्य परिपिष्ट्वाथ सीसभस्मप्रमाणतः ।
कांताभ्रसत्त्वयोर्भस्म राजावर्तकभस्म च ॥ ५८ ॥

---

१ सप्ताहात्कल्कनाशमित्यपि दृश्यते । २ देहिनां गुल्मरोगेत्यापि पाठः ।

परिशुद्धं च गोमूत्रे शिलाजतु निधाय च ।
खल्वे निक्षिप्य तत्सर्वं यत्नेन परिमर्दयेत् ॥ ५९ ॥
तुल्यमुंजाकुलीबीजचूर्णकल्कोत्थवारिणा ।
कतकांघ्रिकषायेण निंबपत्ररसेन च ॥ ६० ॥
ततः संशोष्य संचूर्ण्य क्षिप्त्वा लोहस्य भाजने ।
त्रिफलानां कषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥ ६१ ॥
आकुलीबीजबर्बूरनिर्यासौ भृष्टचूर्णितौ ।
समौ रससमौ कृत्वा रसेन सह मर्दयेत् ॥ ६२ ॥
इति सिद्धरसः सोऽयं भवेद्भीमपराक्रमः ।
नामतः सर्वमेहघ्नो दृष्टप्रत्ययकारकः ॥ ६३ ॥
वल्लद्वयमितो ग्राह्यो जलैः पर्युषितैः सह ।
पथ्यं मेहोचितं देयं वर्ज्यं सर्वं विवर्जयेत् ॥ ६४ ॥

पारा और गन्धक दोनोंको समान भाग लेकर तीन दिन तक खरल करके कज्जली करलेवे । उसको लोहेकी कढाईमें डालकर बेरकी लकडियोंकी मन्द मन्द अग्निके द्वारा पिघलावे। उसके रसकी समान पतला होजानेपर कज्जलीसे अष्टमांश सीसेकी निरुत्थ भस्म डाले और करछीसे अच्छीतरह मिलाकर उसको पूर्ववत् केलेके पत्तेपर ढालकर पर्पटी तैयार करलेवें । पश्चात् पर्पटीको चूर्ण करके उसमें सीसेकी बराबर २ भाग कान्तलोह भस्म, अभ्रकका सत्त्व राजावर्त्तकी भस्म और गोमूत्रमें शुद्ध कीहुई शिलाजीत डालकर उत्तमप्रकारसे खरल करे। इसके अनन्तर चोंटलीकी जड और नकुलकन्दके बीजोंका चूर्ण दोनोंको समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर कल्क करले। उस कल्कके वस्त्रपूत रसमें तथा निर्मलीकी जडके क्वाथ और नीमके पत्तोंके रसमें उक्त रसको क्रमसे एक २ बार

भावना देकर सुखालेवे फिर चूर्ण करके लोहेके खरलमें डाल-कर त्रिफलेके काढेमें सात बार भावना देवे । इसके पश्चात् नकुलकन्दके बीजोंका चूर्ण और बबूलका गोंद दोनोंको रसके समान भाग लेकर भूनकर चूर्ण करलेवे, उस चूर्णको त्रिफलेके काढेमें ७ बार भावना देकर सुखालेवे और उपयुक्त रसके साथ समभागमें मिलाकर खूब बारीक खरल करे । इस प्रकार यह भीमपराक्रम नामकरस सिद्ध होताहै । यह सर्वप्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करनेवाला और प्रत्यक्ष विश्वासप्रद फलके देनेवाला है । इसको प्रतिदिन दो २ रत्ती परिमाण बासी जलके साथ सेवन करना चाहिये । इसपर प्रमेहरोगमें कहेहुए उपयोगी पदार्थोंका पथ्य देना और समस्त त्याज्य पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये ॥ ५६-६४ ॥

संजीवन रस ।

निक्षिप्य पातनायंत्रे त्रिशद्वाराणि पातयेत् ॥ ६५ ॥
समाहरेद्रसं सम्यक्पातनायंत्रके मृतम् ।
मृते रसे क्षिपेत्तुल्यं भूपालावर्तभस्मकम् ॥ ६६ ॥
निरुत्थं त्रपुभस्मापि निक्षिपेदष्टमांशतः ।
ततो निंबदलद्रावैस्त्रिशद्वारं हि भावयेत् ॥ ६७ ॥
ततः संशोष्य संचूर्ण्य क्षिपेद्दृढकरण्डके ॥ ६८ ॥
संजीवनोयं खलु वल्लमानो निशाकुलीचूर्णयुतः
सतक्रः । निहंति सर्वानपि मेहरोगान्नृणां
नितांतं कुरुते क्षुधां च ॥ ६९ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले और शुद्ध सीसा ४ तोले दोनोको एकत्र खरल करके ऊर्ध्वपातन यन्त्रमें डालकर उडावे । सीसा नीचेकी हाँडीमें पडा रहे और पारा उडकर ऊपरकी हाँडीकी तलीमें

जालगे । इस प्रकार ३० बार पारेको उडावे और प्रत्येक बार चार २ तोले सीसा मिलाता जाय । जब पारेकी उत्तम प्रकारसे भस्म होजाय तब उसको निकालकर उसमें ४ तोले राजावर्त्तकी भस्म और ६ मासे जस्तकी निरुत्थ भस्म मिलाकर नीमके पत्तोंके रसके साथ ३० बार भावना देवे । फिर सुखाकर और पीसकर उत्तम शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको प्रतिदिन दो रत्तीकी मात्रासे हल्दीके चूर्ण, नकुलकन्दके बीजोंके चूर्ण और तक्रके साथ सेवन करना चाहिये । यह रस मनुष्योंके सब प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट करता और क्षुधाको उत्पन्न करताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मेहमर्दन रस ।

शुद्धसीसोद्भवं भस्म निर्व्यूढं व्योम्नि सप्तधा ।
ततो विचूर्ण्य तन्मध्ये कांतभस्म समं क्षिपेत् ॥७०॥
गोमूत्रकाशिलाधातुद्रवेण परिमर्दयेत् ।
शोषयित्वा विचूर्ण्याथ क्षिपेन्नागकरण्डके ॥ ७१ ॥
मेहमर्दननामायं दिष्टो भाल्लुकिना खलु ।
गुंजाद्वयमितो देयो निंबामलकसंयुतः ॥ ७२ ॥
निहन्तिस कलान्मेहान्सर्वोपद्रवसंयुतान् ।
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैः सर्वरोगनिबर्हणः ॥
रोगानुरूपं दातव्यं पथ्यमत्र यथोचितम् ॥ ७३ ॥

शुद्ध सीसेकी निरुत्थ भस्म ४ तोले और अभ्रक भस्म ४ तोले दोनोंको एकत्र पानीके साथ घोटकर गोला बनाले। उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके वाराहपुट देवे। इस प्रकार सातबार वाराह पुट देवे प्रत्येक पुटके अन्तमें चार २ तोले सीसेकी भस्म मिलाकर घोटता जाय। इसके पश्चात् उक्त औषधिको खरल

करके उसमें समान भाग कान्तलोहकी भस्म मिलाकर गोमूत्रमे घोटी हुई शिलाजीतके रसमें एक बार भावना देकर सुखा लेवे । फिर बारीक खरल करके सुन्दर शीशीमें भरकर रखदेवे । इस मेहमुद्गररसको श्रीभालुकी नामक आचार्यने वर्णन किया है । इसका नीमके पत्तों और आमलोंके छः २ मासे चूर्णके साथ सेवन करावे । मात्रा दो २ रत्ती परिमाण । यह रस सम्पूर्ण उपद्रवों सहित सर्वप्रकारके प्रमेहोंको शीघ्र नष्ट करता है । तथा भिन्न भिन्न रोगनाशक अनुपानोंके साथ प्रयोग करनेसे समस्त रोगोंको दूर करता है । इसपर रोगानुसार उपयुक्त पथ्य देनाचाहिये ॥ ७०-७३ ॥

रामवाण रस ।

त्रपुणा निहतं तारं स्वर्णं नागहतं तथा ।
मृतसूतं तयोस्तुल्यं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ७४ ॥
आकुलीमूलजैः क्वाथैः शोषयित्वा मुहुर्मुहुः ।
ताप्यवैक्रांतराड्वर्त्तभस्म सर्वसमं क्षिपेत् ॥ ७५ ॥
विमर्द्य बलिना सर्वं षोढा तुषपुटैः पचेत् ।
आकुलीबीजबबूरक्वथितैर्भावयेत्त्रिधा ॥ ७६ ॥
तं रसं परिचूर्ण्याथ स्थापयेत्कूपिकोदरे ।
गुडूचीसत्त्वसंयुक्तो वल्लमात्रो रसस्त्वयम्॥ ७७ ॥
निहंति सकलं मेहं मोहध्वांतमिवेश्वरः ।
बाणवद्रामचंद्रस्य सज्जनस्येव भाषितम् ॥ ७८ ॥
न याति जातु मोघत्वं रामबाणो रसोत्तमः॥ ७९ ॥

जस्तके द्वारा भस्म की हुई चाँदी, और सीसेके द्वारा भस्म किया हुआ सुवर्ण ये दोनों समान भाग और दोनोंकी बराबर

पारेकी भस्म लेवे, सबको एकत्र मिलाकर नकुलकन्दकी जडके काढेमें तीन दिनतक खरल करे और प्रतिदिन सुखावे। फिर उसमें सोनामाखी, वैक्रान्तमणि और राजावर्त्तकी भस्में समस्त रसकी बराबर भाग मिलाकर खरल करे। इसके पश्चात् उपर्युक्त रसका चौथाई भाग शुद्ध गन्धक डालकर जलके साथ खरल करके गोला बनालेवे। उसको सुखाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके धानोंकी भूसीसे भरी हुई हाँडीमें रखकर पकावे। इस प्रकार १६ पुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें चतुर्थांश गन्धक मिलाता जाय। फिर नकुलकन्दकेबीज और बबूलकी छाल दोनोंका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें उक्त रसको तीन दिनतक भावना देकर सुखालेवे। फिर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन प्रातः सायंकाल एक२रत्ती परिमाण लेकर गिलोयके सत्त्वमें मिलाकर सेवन करे। यह रस सब प्रकारके प्रमेहोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करताहै, जैसे ईश्वरमोहरूप अन्धकारको तत्काल विनाश करदेता है। रामचन्द्रके बाणकी समान और सत्पुरुषोंके वाक्यकी समान यह रामबाण रस कदापि निष्फल नहीं जाता। यह सम्पूर्ण रसोंमें उत्तम रस है ॥ ७४–७९ ॥

राजमृगांक रस।

सुवर्णं रजतं कांतं ताम्रं त्रपु ससीसकम्।
भस्मीकृत्वा च तत्सर्वं क्रमवृद्ध्या कृतांशकम्॥८०॥
व्योमसत्वभवं भस्म सर्वैस्तुल्यं प्रकल्पयेत्।
कज्जलीं सूतराजस्य सर्वैरतैः समांशिकाम् ॥ ८१ ॥
प्रद्राव्य लोहभस्माथ पूर्वभस्म विनिक्षिपेत्।
काष्ठेनालोडच तत्सर्वं सद्रवं हि समाहरेत् ॥ ८२ ॥
ततो विचूर्ण्य तत्सर्वं सप्तवारं विभावयेत्।

आकुलीबीजसंभूतक्राथलेहेन यत्नतः ॥ ८३ ॥
रुद्धं तन्मल्लमूषायां सर्वं संस्वेदयेच्छनैः ।
इति सिद्धो रसेंद्रोयं चूर्णितः पटगालितः ॥ ८४ ॥
कांतपात्रस्थितो रात्रौ जलैस्त्रिफलसंयुतैः ।
वल्लद्वयमितः प्रातर्दातव्यो मेहरोगिणाम् ॥ ८५ ॥
मृगचारिक्षुनीरेण मेहव्यूहविनाशनः ।
निर्दिष्टोयं रसो राजमृगांक इति कीर्तितः ॥ ८६ ॥
दीपनः पाचनो वृष्यो ग्रहणीपाण्डुनाशनः ।
तापघ्नो[२] रुचिकृत्सर्वरोगघ्नो योगसंयुतः ॥ ८७ ॥

स्वर्ण भस्म १ तोला, रौप्य भस्म २ तोले, कान्तलोह भस्म ३ तोले, ताम्र भस्म ४ तोले, जस्तकी भस्म ५ तोले, सीसेकी भस्म ६ तोले, अभ्रकके सत्वकी भस्म सबकी बराबर अर्थात् २१ तोले और समस्त औषधियोंके बराबर २ भाग पारे और गन्धककी कज्जली लेवे। प्रथम कज्जलीको लोहेकी कढाईमें द्रवीभूत करके उसमें लोह भस्म डालकर करछीसे मिला देवे, फिर अन्य समस्त धातुओंको क्रम २ से डालता जाय और लकडीसे चलाता जाय। जब सब भस्में मिलकर एकम एक होजायँ तब शीतल करके बारीक चूर्ण करलेवे। इसके पश्चात् उस चूर्णको नकुलकन्दके बीजोंके अवलेहके समान गाढे काढेमें ७ वार भावना देकर गोला बनालेवे। उस गोलेको सुखाकर मल्लमूषामें बन्द करके वालुकायन्त्रमें रखकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा तीन घंटे तक स्वेद देवे। स्वांगशीतल होनेपर रसको बारीक पीसकर कपडछान करके शीशीमें भरकर रख-देवे। इस प्रकार यह रस सिद्ध होताहै। इस रसको प्रतिदिन

१ निर्दोपोयामित्यपिपाठः २ आमघ्नोपिक्कचित्पुस्तके

रात्रिके समय दो २ रत्ती परिमाण लेकर कान्तलोहके पात्रमें त्रिफलेके काढके साथ खरल करके ढककर रखदेवे । फिर प्रातःकाल प्रमेह रोगियोंको सेवन करावे । इस रसको मृगचारि मुनिने निर्दिष्ट कियाहै । इसको राजमृगांक कहते हैं । यह रस सब प्रमेहोंका नष्ट करनेवाला है, । तथा जठराग्निको दीपन करनेवाला, पाचक, वीर्यवर्द्धक, संग्रहणी, पाण्डुरोग और ज्वरनाशक, रुचिकारक और भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करताहै ॥८०-८७॥

मेहहर रस ।

राजावर्तस्य रत्नस्य भस्म गंधकसाधितम्
हतं च भस्मना तेन घनसत्त्वं च कांतकम् ॥ ८८ ॥
निहतं तेन सूतं च तत्तन्मारणकैः सह ।
सर्वतुल्येन सूतेन तावता गंधकेन च ॥ ८९ ॥
कज्जलया कृतया सार्धं पूर्वभस्मानि योजयेत् ।
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु मूषायां विनिरुध्य च ॥ ९० ॥
पंचाढकमितैः शालितुषैश्च पुटमाचरेत् ।
स्वांगशीतं समाहृत्य भावयेत्तदनंतरम् ॥ ९१ ॥
आकुलीमूलबंबूरबीजगुंजाजटोद्भवैः ।
कषायैरष्टवाराणि पटचूर्णं विधाय च ॥ ९२ ॥
विनिक्षिपेत्करण्डांते यत्नेन स्थापयेत्ततः ।
तत्तन्मेहहरैर्द्रव्यैः संयुक्तो रसराडयम् ॥ ९३ ॥
निहंति सकलान् रोगान्दुरात्मोपकृतीरिव ।
अयं हि सर्वरोगघ्नो भेषजेषु प्रशस्यते ॥ ९४ ॥

धार्मिकेषु च सर्वेषु दयावानिव मानवः ।
रसोऽयं नंदिना दिष्टः प्रकृष्टो मेहहारिषु ॥ ९५ ॥

गन्धकके द्वारा की हुई राजावर्त्तकी भस्म ४ तोले, राजावर्तकी भस्मके द्वारा भस्म किया हुआ अभ्रकका सत्त्व ४ तोले, राजावर्तकी भस्मके द्वाराही भस्म किया हुआ कान्तलोह ४ तोले, और कान्तलोहकी भस्मके द्वारा की हुई पारद भस्म ४ तोले, शुद्ध पारा १६ तोले और शुद्ध गन्धक १६ तोले लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करके उसमें उपर्युक्त समस्त भस्में मिलाकर तीन दिनतक खरल करके गोला बनालेवे । गोलेको मूषामें बन्द करके कपरौटी करके सुखालेवे । उसको ५ आढक परिमाण शालिधानोंकी भूसीसे भरी हुई हाँडीमें रखकर पुट देवे । स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर नकुलकन्दकी,जड, बबूलके बीज और घुंघुचीकी जड इन तीनोंके एकत्र बनाये हुए क्काथमें उक्त चूर्णको आठ वार भावना देकर सुखाले और बारीक पीसकर कपडछान करके शीशीमें भरकर यत्नपूर्वक रखदेवे । इस रसको प्रमेहनाशक भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन कराना चाहिये । यह रस सर्व प्रकारके प्रमेहोंको इस भाँति शीघ्र नष्ट करदेता है जैसे दुरात्माओंके किये हुवे उपकार शीघ्र विनाश होजाते हैं । यह रस सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है । इस लिये यह समस्त औषधियोंमें श्रेष्ठ गिना जाता है, जैसे धार्मिक पुरुषोंमें दयालु मनुष्य उत्तम माना जाता है । इसको श्रीनन्दि नामवाले आचार्य्यने वर्णन किया है । यह रस सम्पूर्ण प्रमेहनाशक औषधियोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट है ॥ ८८-९५ ॥

उदयभास्कररसः ।

पारदं भागमेकं तु गंधकं टंकणं तथा ।
अभ्रकं लोहमेवं तु भागमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९६ ॥
शिलाधातुस्तथा भागमम्लवेतसभागकम् ।
कट्फलं भागमेकं तु वंगेन सह मेलयेत् ॥ ९७ ॥
रसकं पंचमूत्रेण दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ।
सर्वमेकत्र संयोज्य जंबीररससंयुतम् ॥ ९८ ॥
मर्दयेद्दिनचत्वारि खल्वके बुद्धिमान्भिषक् ।
मूषिकालेपनं कुर्यान्मांसीगोक्षुरसंयुतम् ॥ ९९ ॥
मर्दयेच्च यथायोग्यं दिनानामेकविंशतिः ।
पुटमध्ये परिस्थाप्य कुक्कुटीमात्रके दहेत् ॥१०० ॥
शीतलं तं समादाय भावयेच्च यथाक्रमम् ।
कुमारी चित्रकं व्योषं जातीफलहियावली ॥ १०१॥
विषमुष्टिं नखं चाम्लवेतसं परिमर्दयेत् ।
शोषं कृत्वा यथायोग्यं दिनमेकं पृथक्पृथक्॥१०२॥
तं सिद्धं वल्लमात्रं तु दापयेद्बुद्धिमान् भिषक् ।
प्रमेहे मधुना युक्तं प्रयोज्यं भिषजां वरैः ॥ १०३ ॥
शर्करार्द्रकसंयुक्तं रक्तपित्ते प्रयोजयेत् ।
त्रिंशद्दिनानि दातव्यं शूले च त्रिफलाजलैः॥१०४॥
मधुना चातिसारस्य सितया श्वासकासयोः ।

१ तगरामिति पाठोऽप्यत्रपुस्तके २ रसं च इत्यपि पाठोपलभ्यते ।
रसकंपंचभागं च त्र्यहं मूत्रेण मर्दयेदित्यपिपाठः ।

क्षीरेण चाग्निमांद्यस्य तैलकांजिकसंयुतम् ॥
सिद्धनाथेन संप्रोक्तो नाम्ना ह्युदयभास्करः ॥१०५॥

उदयभास्कर रस ।

पारा, गन्धक, सुहागा, अभ्रक, लोहा, शिलाजीत, अम्लबेंत, कायफल और वंग इन सबको एक २ तोला लेवे और पंचसूत्रमें ३ दिनतक घोटकर शुद्ध किया हुआ खपरिया सबके बराबर भाग लेवे। सबको एकत्र मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें ४ दिनतक खरल करे। फिर बालछड और गोखरूके काढेसे २१ दिनतक खरल करके उस कल्कका मूषाके भीतर लेपकर सुखालेवे और कपरौटी करके कुक्कुट पुटमें रखकर अग्निदेवे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर उसको घीग्वार, चीता, त्रिकुटा, जायफल, हड, साँकर, कुचला, नख और अम्लबेंत इन औषधियोंके पृथक् पृथक् रसमें क्रमसे एक २ दिन तक खरल करके सुखालेवे और सूक्ष्म चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस प्रकार यह रस तैयार होता है। वैद्य इस रसको एक २ रत्ती परिमाण सेवन करावे। वैद्योंको यह रस प्रमेहरोगमें मधुके साथ, रक्तपित्तमें खाँड और अदरखके रसके साथ, शूल रोगमें त्रिफलेके काढेके साथ, अतिसारमें मधुके साथ, श्वास और खाँसीमें मिश्रीके, तथा दूधके साथ और मन्दाग्नि रोगमें तैल, काँजी आदि अम्ल पदार्थोंके साथ तीस २ दिनतक व्यवहार कराना चाहिये। इस उदयभास्कर नामक रसको श्रीसिद्धनाथ आचार्य्यने कहा है ॥ ९६–१०५ ॥

हिमांशुरसः ।

रसस्य कर्षमादाय खल्वे निक्षिप्य बुद्धिमान् ।
रक्तागस्त्यप्रसूनस्य स्वरसेन विमर्दयेत् ॥ १०६ ॥

सप्तवारं तथा साधुश्वेतदूर्वारसेन च ।
निष्कद्वयं टंकणं च कर्षं खादीरसारतः ॥ १०७ ॥
कर्पूरं रसतुल्यं च सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
यावच्चिक्कणतां याति शुक्त्या चंदनवारिणा ॥१०८॥
हरेणुमात्रान्वटकाञ्छायायां परिशोषितान् ।
प्रातः सायं च सेवेत मध्याह्ने च विशेषतः ॥१०९॥
निशायां च विशेषेण सेवनीयः प्रयत्नतः ।
एतद्धि मेहनुद्द्रव्यं मुखशोषहरं परम् ॥ ११० ॥
सोमरोगहरं सर्वपिटिकानाशनं मतम् ।
हिमांशुनामतः ख्यातं तृष्णादाहनिवारकम्॥१११॥

शुद्ध पारेको १ कर्ष लेकर खरलमें डालकर लाल अगस्तियाके फूलोंके रसमें ७ बार भावना देवे, फिर सफेद दूबके रसमें सात भावना देवे । इसके पश्चात् उसमें सुहागा ८ मासे, खैरसार १ तोला, और भीमसेनी कपूर १ तोला डालकर सबको उत्तम प्रकारसे मर्दन करे। फिर चन्दनके जलके साथ घोटे । जब वह घुटते २ खूब चिकना होजाय तब मटरकी बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। इन गोलियोंमेंसे प्रतिदिन प्रातः, सायंकाल, मध्याह्नमें और विशेषकर रात्रिमें एक २ गोली सेवन करे ।और प्रमेह नाशक पदार्थोंका अनुपान तथा पथ्य करे । यह रस सब प्रकारके प्रमेह, मुखशोष, सोमरोग सर्वप्रकारकी प्रमेह, पिडिकाओं, और तृष्णा, दाह आदि सम्पूर्ण उपद्रवोंको निवारण करता है । इसको हिमांशुरस कहते हैं॥१०६-१११॥

वसन्तकुसुमाकर रस ।

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम् ।
लोहस्य च त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मनः ॥११२॥
वंगभस्म त्रिभागं स्यात्सर्वमेकत्र कारयेत् ।
प्रवालं मौक्तिकं चैव रससाम्येन योजयेत् ॥ ११३॥
भावना गव्यदुग्धेन इक्षुवासारसेन च ।
हरिद्रावारिजेनापि मोचकंदरसेन च ॥ ११४ ॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च ।
उशीरद्वयनीरेण सप्त सप्त च संख्यया ॥ ११५ ॥
पश्चान्मृगमदा भाव्यं सुसिद्धो रसराड्भवेत् ।
कुसुमाकरविख्यातो वसंतपदपूर्वकः ॥ ११६ ॥
गुंजामात्रं ददीतास्य मधुना सर्वमेहजित् ।
क्षयकासतृषाश्वासरक्तपित्तविषार्तिजित् ॥
सिताचंदनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगनुत् ॥ ११७ ॥

सुवर्णभस्म २ भाग, अभ्रकभस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, पारेकी भस्म ४ भाग, बंगभस्म ३ भाग, प्रवालपिष्टी ४ भाग और मौक्तिक पिष्टी ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरल कर-लेवे। फिर गायका दूध, ईखका रस, अडूसेका रस, हल्दीका क्वाथ, केलेके कन्दका रस, कमलके फूलोंका रस, चमेलीके फू-लोंका रस, खस और सुगन्धवालेका रस इन प्रत्येक रसोंमें क्रमसे सात २ बार भावना देकर सुखालेवे। फिर कस्तूरीके रसमें एक भावना देवे। इस प्रकार यह रस तैयार होताहै। इसको वसन्तकुसुमाकर कहते हैं। इस रसको एक २ रत्तीकी मात्रासे मधुके साथ सेवन करावे। यह रस सब प्रकारके प्रमेह

क्षय, खाँसी, श्वास, तृषा, रक्तपित्त और विषकी पीडा इन सब रोगोंको दूर करताहै। और चन्दनके क्वाथ तथा मिश्रीके अनुपानके साथ देनेसे अम्लपित्तादि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ११२-११७ ॥

सर्वमेहान्तक रस ।

पारदभस्म शिलाजतु कृष्णा लोहमल-
स्त्रिफलाकुलिबीजम् । ताप्यनिशारजतो
पलकांतव्योषरजःखपुरश्च कपित्थान् ॥ ११८ ॥
सर्वमिदं परिचूर्ण्य समांशं भावित-
भृंगरसं दिवसादौ । विंशतिवारमिदं
मधुलेहं विंशतिमेहहरं हरिदृष्टम् ॥ ११९ ॥

पारेकी भस्म, शिलाजीत, पीपल, मंडूरभस्म, त्रिफला, नकुलकन्दके बीज, सोनामाखीकी भस्म, हल्दी, रौप्यभस्म, सूर्यकान्तमणिकी भस्म, त्रिकुटेका चूर्ण, अभ्रकभस्म, शुद्ध गूगल, और कैथ इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करले। फिर भाँगरेके रसमें २० बार भावना देकर सुखालेवे। और खरल करके रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल मधुके साथ २० दिनतक सेवन करनेसे बीसों प्रकारके प्रमेह दूर होते हैं। यह रस श्रीहरि नामक आचार्यका प्रत्यक्ष अनुभव किया हुआ है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

मेहारि रस ।

सूतं बाहुमितं बलीं शशिमितं संमर्द्य तत्कज्जलीं
कृत्वा कृष्णाहिरण्यतोयसहितां संमर्द्य घस्रं पुनः ।
कूप्यामभ्रककालिकां सुपिहितां मृत्स्नांशुकैः सप्तभिः
संवेष्ट्य त्रिदिनं विशोष्य लवणापूर्णे क्षिपेद्भाण्डके १२०

दग्ध्वा यामचतुष्टये च शिशिरां भित्त्वा च तां कूपिकां
तं सूतं द्विलवं लवं च गगनं लोहं लवं मर्दयेत् ।
सिद्धो वल्लमितः सिता च मधुना वत्सादनीसत्त्वतो
नोचेत्क्षौद्रकणायुतश्च तरसा सर्वप्रमेहाञ्जयेत् ॥ १२१ ॥
रोगाधीश्वरपाण्डुकामलहरिद्राभत्वपित्तोद्भवा- ।
न्सर्वांश्च प्रदरामयान्विजयते मेहारिनामा रसः ॥
भक्तं गोपयसायुतं च ससितं मांद्यावरोधेन वा ।
देयं पथ्यमिदं प्रमात्मकजनादन्यच्च वा दीयते ॥ १२२ ॥

पारा २ भाग, और गन्धक १ भाग दोनोंको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । उस कज्जलीको काले धतूरेके रसमें १ दिनतक घोटकर आतसी शीशीमें भरदेवे और शीशीके मुँहको काली अभ्रकके पत्रोंसे बन्द करके उसपर सात बार कपरौटी करै और तीन दिनतक तीक्ष्ण धूपमें सुखावे । फिर नमकसे भरे हुए मटकेमें शीशीको गले पर्य्यन्त गाडकर ४ प्रहर तक अग्नि देवे । स्वाङ्गशीतल होनेपर शीशीको तोडकर रसको निकाल लेवे । इस प्रकार सिद्ध की हुई पारेकी भस्म २ भाग अभ्रकभस्म १ भाग और लोहभस्म १ भाग सबको एकत्र खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको दो २ रत्ती परिमाण लेकर मिश्री मधु और गिलोयके सत्त्वमें मिलाकर अथवा शहद और पीपलके साथ सेवन करे । यह मेहारि रस सर्व प्रकारके प्रमेहरोग, राजयक्ष्मा, पाण्डु, कामला, हलीमक, पित्तजन्य रोग और सम्पूर्ण प्रदर रोग इन सबको बहुत शीघ्र नष्ट करताहै गोदुग्धमें मिसरी डालकर भातके साथ बलानुसार पथ्यदे अथवा सुज्ञ वैद्यके वचनानुसार अन्य उपयुक्त पथ्यका प्रयोग करे ॥ १२०–१२२ ॥

मेहबद्ध रस ।

भस्मसूतं मृतं कांतं मुण्डभस्म शिलाजतु ।
ताप्यं शुद्धं शिलाव्योषं त्रिफलांकोलबीजकम् ॥ १२३
कपित्थरजनीचूर्णं समं संभाव्य भृंगिना ।
त्रिंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धो रसो महान् ॥ १२४॥
महानिंबस्य बीजानि षण्निष्कं पेषितानि च ।
पलतंडुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥
एकीकृत्य पिबेच्चानु हंति मेहं चिरंतनम् ॥ १२५ ॥

पारेकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, मुण्डलोहकी भस्म, शिलाजीत स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध मैनसिल, त्रिकुटा, त्रिफला, अंकोलके बीज, कैथका गूदा और हल्दीका चूर्ण सबको सम भाग लेकर भाँगरेके रसमें ३० भावना देकर सुखालेवे । फिर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इसको प्रतिदिन एक २ निष्क (४ मासे) परिमाण, शहदमें मिलाकर सेवन करे । यह रस समस्त प्रमेहोंको नाश करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है । यदि २ तोले बकायनके बीजोंको ४ तोले चावलोंके पानीमें पीसकर और उसमें ८ मासे घृत डालकर उसके साथ इस रसको पान करे तो यह रस बहुत पुराने प्रमेह कोभी नष्टकरदेता है ॥ १२३–१२५ ॥

हरिशङ्कर रस ।

मृतं सूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिजद्रवैः ॥ १२६ ॥
सप्ताहं भावयेत्खल्वे रसोऽयं हरिशंकरः ।
माषमेकां वटीं खादेन्नीलमेहप्रशांतये ॥ १२७ ॥
पूर्वयोगानुपानं स्यादसाध्यं साधयेत्क्षणात् ॥ १२८॥

पारद भस्म और अभ्रकभस्म दोनोंको समान भाग लेकर आमलोंके स्वरसमें ७ दिनतक भावना देवे । फिर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करे । नीलप्रमेहको शमन करनेके लिये यह रस अत्यन्त उपयोगी है । पूर्वोक्त अनुपानोंमेंसे किसी उचित अनुपानके साथ इन गोलियोंको सेवन करनेसे यह रस असाध्य प्रमेहकोभी शीघ्र आरोग्य करदेता है ॥ १२६-१२८ ॥

सामान्य उपचार ।

रसस्य भस्मना तुल्यं वंगभस्म समाहरेत् ।
मधुना लेहयेत्प्राज्ञो वातमेहप्रशांतये ॥ १२९ ॥
मुद्गामलकयूषेण पथ्यं देयं सतक्रकम् ।
तिलपिण्डीं च तक्रेण पक्त्वा दद्यान्न हिंगुकम् ॥ १३० ॥
घृतं बहु न दद्याच्च तिलतैलेन भोजयेत् ।
मार्कंडीचूर्णमादाय सगुडं खादयेन्निशि ॥ १३१ ॥
ताम्रेण तुर्यभागेन कुर्वीत रसपिष्टिकाम् ।
गोक्षुरस्य द्रवे चैव निक्षिपेत्सतकद्वयम् ॥ १३२ ॥
निंबुमध्ये विनिक्षिप्य स्वेदयेत्कांजिकेऽह्नि ।
निंब्वंतरे विनिक्षिप्य वक्त्रे संधारयेन्निशि ॥ १३३ ॥
रक्तमेहेपि भस्मैव वंगस्य मधुना चरेत् ।
शुक्रमेहप्रशांत्यर्थं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ॥ १३४ ॥

पारेकी भस्म और वंगभस्म दोनोंको समान भाग लेकर शहदके साथ सेवन करानेसे वातजनित प्रमेह दूर होताहै । वैद्य इसपर मूँगका और आमलोंका यूष तक्रके साथ पथ्यरूपसे देवे । प्रमेहमें काले तिलोंकी खलको छाछके साथ पका-

कर सेवन करावे। किन्तु हींग बिलकुल न देवे और घृतभी अधिक सेवन न करावे । केवल तिलके तेलमें खाद्य पदार्थोंको सिद्ध करके भोजन करावे। अथवा भारंगीके चूर्णको गुडमें मिलाकर रात्रिमें भक्षण करावे। पारेकी भस्म ४ भाग और ताम्र भस्म १ भाग दोनोंकी एकत्र बारीक पिठी पीसकर उसको गोखुरूके काढेमें १४ दिनतक भावना देवे-फिर उस पिठीको एक नींबूमें भरकर और काँजीसे भरेहुए दोलायन्त्रमें नींबूको अधर लटकाकर १ दिनतक स्वेद देवे। फिर उसको पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे। जब आवश्यकता हो तब उस औषधिको अल्प परिमाणमें लेकर नींबूमें भरकर रात्रिके समय मुखमें धारण करे। इससे प्रमेहरोग नष्ट होताहै। रक्तजनित प्रमेहमें केवल वंगभस्मकोही मधुके साथ सेवन करनेसे उपकार होताहै शुक्रजन्य प्रमेहको शमन करनेके लिये हल्दीका चूर्ण, वंगभस्म और शहद मिलाकर सेवनकरे ॥ १२९-१३४ ॥

मधुमेहापहृत्त्यथ समालार्जुनचूर्णकम् ।
वंगभस्मसमायुक्तं खादयेच्छर्करायुतम् ॥१३५॥
शाल्मलीद्रुतमादाय पाययेन्मधुना सह ।
बोलबद्धं रसं जग्ध्वा रक्तमेहाद्विमुच्यते ॥१३६॥
बीजकस्य कषायं च पिबेदनु सबोलकम् ।
श्लेष्मातमूलजक्काथं सघृतं निशि पाययेत्॥ १३७ ॥
कूष्माण्डस्य रसं वेल्लखण्डयुक्तं तु पाययेत् ।
स्त्रियं वा रुधिरस्रावामामदुग्धेन पाययेत् ॥ १३८ ॥
तुवरीमूलमुद्घृष्टं सम्यक् शर्करयान्वितम् ।
पिबेत्तंडुलतोयेन रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ १३९ ॥

पिष्ट्वा कार्पासतक्रे रसधरणदृशा तुल्यनागं कपित्था-
न्निर्यासं पंचनिष्कं निहितशतजलारातिबीजं च पश्चात् ।
पिण्डान्कृत्वाथ तेन प्रतिदिनमथ तत्पिण्डमेकं कपित्था-
न्निर्यासं पादनिष्कं मथितमधुयुतं मेहजालं रुणद्धि १४०

मधुमेहरोगको नष्ट करनेके लिये भुई आमला और अर्जु-नकी छालका चूर्ण और वंगभस्म तीनोंको समान भाग लेकर खाँडमें मिलाकर मधुमेहरोगीको सेवन करावे । सेमलके रसको मधुके रसको मधुके साथ पान कराने अथवा बोलबद्ध रसको सेवन करानेसे रोगी रक्तप्रमेहसे शीघ्र मुक्त होजाताहै । इस-पर विजयसारके क्वाथको बोलका चूर्ण डालकर अनुपान करना चाहिये । अथवा बहेडेकी जडके काढेको घृत मिलाकर रात्रिमें पान करावे तो प्रमेह दूर होताहै । पेठेका रस, वायविडंगका चूर्ण और खाँड, तीनोंको एकत्र मिलाकर सेवन करानेसे प्रमेह रोग, और पेठेके रसको कच्चे दूधके साथ पान करानेसे स्त्रियोंका रक्तस्राव रोग नष्ट होताहै । अडहरकी जडको चाव-लोंके धोये हुए पानीमें घिसकर उसमें खाँड डालकर पान-करनेसे रक्तस्राव अथवा रक्तप्रमेह शान्त होताहै । अथवा कपा-सके फूलोंको मट्ठेमें पीसकर कल्क करले उसको १॥ तोला लेकर उसमें सीसेकी भस्म १॥ तोला कैथका रस२०मासे और अगास्तियाके बीजोंका चूर्ण २० मासे परिमाण डालकर सबको खूब अच्छे प्रकारसे खरल करके एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसायंकाल एक २ गोली कैथके काढेके साथ सेवन करे और ऊपरसे मट्ठेमें शहद मिला-कर अनुपान करे इस प्रकार सेवन करनेसे यह औषधि सब प्रकारके प्रमेहोंको बहुतशीघ्र नष्ट करदेती है । सोमरोग, श्वेतप्रदर और प्रमेह पिडिकाओंकी चिकित्साभी प्रमेह रोगके समानही करनी चाहिये ॥ १३९–१४० ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां
सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः ।

विद्रधिरोग ।

अन्नैरध्युषितोष्णशुष्कपरुषैरन्यैरसृग्दूषणै-
र्वक्रैर्वा शयनादिभिस्तनुभृतामंतर्बहिर्वोत्थितः ।
मेदस्त्वंक्पलकंडरास्थिरुधिरं गाढं प्रदूष्यकृतोवृत्तः
स्यादथवाऽऽयतोऽधिकरुजः [१]शोथस्त्वसौविद्रधिः ॥ १ ॥

बासी, अत्यन्त गरम, सूखेहुए कठिन और रुधिरको दूषित करनेवाले अन्नोंको खानेसे अथवा प्रकृति विरुद्ध या देश-काल विरुद्ध आहार विहार करना, दिनमें अधिक शयन करना, आदि अनेक कारणोंसे मनुष्योंके मेद (चर्बी), त्वचा, मांस, कण्डरा, अस्थि और रुधिर अत्यन्त दूषित होजाते हैं, इसलिये शरीरके किसी भागमें भीतर या बाहर गोल अथवा लम्बी आकृतिवाली सूजन होजाती है। उसमें अत्यन्त पीडा होती है, इसको विद्रधिरोग कहते हैं । यह वात, पित्तादि दोषभेदसे अनेक प्रकारका होता है ॥ १ ॥

सर्वेश्वर पर्पटी रस ।

रसोपरसलोहानि कार्षिकाणि पृथक् पृथक् ।
तेषु लोहानि सर्वाणि पाषाणाः कठिनास्तथा ॥ २ ॥
घनसत्त्वं च तत्सर्वं भस्मीकृत्य प्रयोजयेत् ।
रत्नानि वल्लतुल्यानि भस्मीकृत्य च सर्वशः ॥ ३ ॥
एभिश्चतुर्गुणः सूतो गन्धस्तस्माच्चतुर्गुणः ।
कृत्वा कज्जलिकां ताभ्यां क्षिपेल्लोहस्य भाजने ॥ ४ ॥

---

१ असृग्पाठोप्यन्यत्र पुस्तके ।

प्रद्राव्य बदरांगारैर्निक्षिपेत्तदनंतरम् ।
रसोपरसलोहानां रत्नानामपि सर्वशः ॥ ५ ॥
चूर्णं भस्म च निक्षिप्य काष्ठेनाऽऽलोड्य मेलयेत् ।
ततश्च षोडशांशेन मिश्रयित्वाऽरुण विषम् ॥ ६ ॥
गोमयोपरि निक्षिप्ते निक्षिपेत्कदलीदले ।
पत्रेणान्येन रंभायाः समाच्छाद्य प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
कराभ्यां चिपटीकृत्य क्षिपेदुपरि गोमयम् ।
ततः शीतं समाहृत्य चूर्णयित्वा च पर्पटीम् ॥ ८ ॥
विनिक्षिपेत्करण्डान्तः संपूज्य रसभैरवम्[1] ।
सर्वेश्वराभिधानेयं पर्पटी परिकीर्तिता ॥ ९ ॥
सर्वलोकहितार्थाय नंदिनेयं विनिर्मिता ।
रक्तियुक्तसमानेयं मरिचार्द्रसमन्विता ॥ १० ॥
विद्रधौ षट्प्रकारायां देया वर्ष्मसु सप्तसु ।
क्षयरोगेषु सर्वेषु पाण्डुरोगे विशेषतः ॥ ११ ॥
ग्रहणीरोगभेदेषु गुल्मेष्वष्टविधेषु च ।
मूलरोगेष्वशेषेषु प्लीहायां यकृदामये ॥ १२ ॥
प्रमेहे सोमरोगे च प्रदरे जठरार्तिषु ।
विशेषेण च मंदाग्नौ सर्वेष्वावर्तकेषु च ॥ १३ ॥
अनुक्तेष्वपि रोगेषु तत्तदौचित्ययोगतः ।
रसोऽयं खलु दातव्यः शिवतुल्यपराक्रमः ॥ १४ ॥
यद्यद्द्रव्यमसात्म्यं हि जनानामुपजायते ।

---

१ रसभेषजमिति पाठोपि ।

तत्सर्वं सात्म्यमायाति रसस्यास्य निषेवणात्॥ १५॥
दुःसाध्यो विद्रधिर्मासाच्छांतिमायाति निश्चितम् १६

रस (अभ्रक, वैक्रान्तमणि, सोनामाखी, रूपामाखी इनकी भस्में, शुद्ध शिलाजीत, तथा नीलाथोथा, चपल और खपरियाकी भस्म), उपरस (शुद्ध गन्धक, गेरू, कसीस, फटकरी, हरताल, मैनसिल, सुरमा, मुर्दासंग), धातुयें (सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, बंग, काँसा और पातिल इनकी भस्में) और अभ्रकके सत्त्वकी भस्म ये प्रत्येक एक २ तोला परिमाण तथा समस्त रत्न (माणिक, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, वैदूर्य मणि और गोमेदमणि इन सबकी भस्में) एक एक रत्ती परिमाण लेवे। इन सब भस्मोंसे चौगुना शुद्ध पारा और पारेसे चौगुनी शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे। उस कज्जलीको लोहेकी कढाईमें डालकर बेरीके कोयलोंकी अग्निके द्वारा पिघलावे। जब कज्जली पिघलकर रसके समान पतली होजाय तब उसमें उपर्युक्त समस्त भस्में डालकर लकडीके डंडेसे मिलादेवे। फिर उसमें सम्पूर्ण औषधिका सोलहवाँ भाग रक्तवर्णका शुद्ध वत्सनाभ डालकर सबको डंडेसे चलाकर एकमएक करदेवे। पश्चात् गायके गोबरके ऊपर केलेका पत्ता रखकर उसपर कज्जलीको ढालदेवे, और तत्काल उसके ऊपर केलेका दूसरा पत्ता ढककर और उसके ऊपर गोबर रखकर हाथोंसे थपथपा देवे। स्वांगशीतल होनेपर पर्पटीको निकालकर खूब बारीक चूर्ण करलेवे और रस भैरवका पूजन करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको सर्वेश्वर पर्पटी रस कहते हैं। इसको समस्त संसारके हितके लिये श्रीनन्दिनामवाले आचार्यने निर्माण किया है। यह रस

एक २ रत्ती परिमाण लेकर मिरचोंके चूर्ण और अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । इस रसको ६ प्रकारकी विद्रधि, ७ प्रकारका वध्मरोग, सब प्रकारका क्षय, पांडुरोग, विशेष कर संग्रहणी, आठ प्रकारका गुल्मरोग, सब प्रकारका अर्शरोग, प्लीहा, यकृत् विकार, प्रमेह, सोमरोग, प्रदररोग, उदरकी पीडा, अग्निकी मन्दता, सम्पूर्ण आवर्त्तक रोग और अन्यान्य समस्त अनुक्त रोगोंमेंभी तत्तद्रोगानुसार अनुपानके साथ प्रयोग करना चाहिये । यह रस शिवके समान पराक्रमी है । इस रसके सेवन करनेसे मनुष्योंके प्रकृतिविरुद्ध पदार्थभी उनकी प्रकृतिके अनुकूल पडने लगते हैं । एवं अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य विद्रधिरोग इसके सेवनसे एक महीनेमें अवश्य नष्ट होजाता है ॥ २–१६ ॥

शंखपाण्डूर रस ।

हरिद्राकंदमंकोलतण्डुलं गंधकं गुडम् ।
मूलानि च महाभेर्याः पृथगर्धपलान्वितम् ॥ १७ ॥
तुत्थं च पंचपालिकं नारीस्तन्येन पेषितम् ।
लिप्तं नालाग्रमूषासु धमनात्सत्त्वमाहरेत् ॥ १८ ॥
शस्तं क्षाररसेष्वेतत्पोटल्याः पचनादनु ।
घृतेनावर्तिते तस्मिन्निष्कद्वितयसंमिते ॥ १९ ॥
प्रवेशितं निष्करसं महाजंबीरनीरजम् ।
अम्लात्पिष्टं शरावांतर्लिप्तं मृद्वस्त्रमुद्रितम् ॥ २० ॥
अधरोत्तरदत्तानां भ्रष्टानामाढके स्थितम् ।
वालुकानां तथाभूतैः खारीपरिमितैस्तुषैः ॥ २१ ॥
पक्वं शीतीकृतं क्षुण्णमष्टौ निष्कानि खर्परात् ।
चत्वारि सुरभिस्थूलघनवर्तुलनीरुजाम् ॥ २२ ॥

पीताभानां सगर्भत्वाद्वराटानां च षोडश।
अम्लस्य सार्धप्रस्थस्य श्लक्ष्णपिष्टानि पात्रयोः २३॥
जंबीरमूलिकाकल्केनांतार्लिप्तानि लिप्तयोः।
पचेच्छुष्ककरीषाणामर्धभारेण सूतकम् ॥ २४ ॥
कृष्णवर्णोऽनुपक्कोऽसौ सुपकः शंखपांडुरः।
काचशंखमये पात्रे धारणीयः सुरक्षितः ॥ २५ ॥
पटचूर्णवशात्सर्वानामयान्विनियच्छति ॥ २६॥

हल्दी, अंकोलके बीज, गन्धक, गुड और महाभेरी नामक औषधिकी जड ये प्रत्येक दो दो तोले और तूतिया २० तोले लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर स्त्रीके दूधमें खरल करके उस कल्कका लम्बी नालवाली अन्धमूषामें लेपकरदे। फिर उसको सुखाकर कोयलोंकी अग्निमें फूंके। इस प्रकार फूँकनेसे जो सत्त्व निकले उसको ग्रहण करके कपडेकी पोटलीमें बाँधकर क्षार पदार्थ और गोमूत्र आदिसे भरेहुए दोलायन्त्रमें अधर लटकाकर स्वेद देवे। इसके पश्चात् उस सत्त्वको खरल करके सुखालेवे। इस प्रकार तैयार किया हुआ तूतियाका सत्त्व ८ मासे और शुद्ध पारा ४ मासे लेकर दोनोंको घीमें मिलाकर खट्टे नींबूके रसमें एक दिनतक घोटे। फिर उसका शरावसम्पुटके भीतर प्रलेप करे ऊपरसे कपरौटी करके सुखालेवे। पश्चात् तपाकर शीतल किये हुए एक आढक परिमाण वालुसे भरेहुए यन्त्रमें सम्पुटको गाड देवे और उसके नीचे ऊपर एक खारी परिमाण (४०९६ तोले) धानोंकी भूसी रखकर अग्निदेवे। जब औषधि पककर स्वांगशीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। उसमें खपरिया ३२ मासे, राल, कटहल, नागरमोथा, मटर और कूठ इन

प्रत्येकका चूर्ण सोलह २ मासे और वजनदार पीली कौडि- योंका चूर्ण ६४ मासे मिलाकर १॥ प्रस्थ परिमाण नींबूके रसमें खूब बारीक खरल करे। जब सब रस शुष्क होजाय तब उसकी बडी २ गोलियाँ बनालेवे। इसके पश्चात् शराव- सम्पुटमें जम्बीरी नींबूकी जडके कल्कका लेपकर और सुखा- कर उसमें उक्त गोलियोंको रखकर कपरौटी करदेवे। फिर उसको सुनकर अर्धभार परिमाण (४००० तोले) सूखे उपलोंकी अग्निमें रखकर फूँके। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकाल कर बारीक खरल करलेवे। यह रस जब कच्चा रहजाता है तब काले रंगका होता है और उत्तम प्रकारसे परिपक्क हुआ रस शंखके समान श्वेत रंगका होता है। इसको खूब बारीक पीस- कर कपडछान करके कॉचकी शीशी या शंखके पात्रमें रखना चाहिये यह रस सम्पूर्ण रोगोंको विनाश करता है॥७१-२६॥

सामान्य उपाय ।

वरुणावल्कलक्काथैर्हिंगुकासीससैंधवम् ।
शिलाजतुसमायुक्तमसाध्यं विद्रधिं जयेत् ॥ २७ ॥
क्काथं शिग्रुवचाश्वत्थं हिंगुसैंधवचूर्णितैः ।
संयुक्तं पाययेच्छांत्यै विद्रधीरोगपीडितम् ॥ २८ ॥
(पाठामूलस्य कर्षैकं पिबेत्तंडुलवारिणा ।
दुस्साध्यो विद्रधिर्मासात् शान्तिमाप्नोति निश्चितम् ।)

वरनाकी छालका काढा बनाकर उसमें हींग, कसीस और सैंधानमक इन तीनोंका चूर्ण समान भाग और किंचित् शिलाजीत डालकर सेवन करनेसे असाध्य विद्रधि रोगभी शान्त होता है। अथवा सहिंजना, वच और पीपलकी छाल इनके काथको हींग और सैंधे नमकका चूर्ण मिलाकर पान

करावे तो रोगी विद्रधिरोगकी पीडासे शीघ्र मुक्त होजाता है चावलोंके जलके साथ १ तोला पाठकी जड पीनेसे एक मासमें असाध्य विद्रधिरोग निश्चयसे नष्ट हो जाता है२७॥२८॥

वृद्धि अथवा अन्त्रवृद्धि रोग ।

वातारि रस ।

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गंधको मतः ।
त्रिभागा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥ २९ ॥
गुग्गुलुः पंचभागः स्यादेरंडस्नेहमर्दितः ।
क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ ३० ॥
गुटिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ ३१ ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ।
विरेके तेन संजाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ३२ ॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः ।
मासेन सुखयत्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरः ॥ ३३ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला (हरड, बहेडा और आमला ये तीनों समभाग मिले हुवे) ३ भाग, चीता ४ भाग और शुद्ध गूगल ५ भाग लेवे । प्रथम गूगलको अण्डीके तेलमें घोटकर फिर उसमें अन्यान्य औषधियोंका चूर्ण डालकर खरल करे । यदि आवश्यकता जानपडे तो और जरासा तेल डालकर एक २ कर्षकी गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक२ गोली खिलाकर ऊपरसे सोंठ और अण्डकी जड-का क्वाथ पान करावे । इसके पश्चात् पीठके ऊपर अण्डीके तेलकी मालिश करके सुहाता२ सेंक करे। इस प्रकार करनेसे जब रोगीको

विरेचन (दस्त) होजाय और भूखलगे तब उसको स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करावे । इस वातारि रसको वायुरहित स्थानमें सेवन करे । एक मास पर्यंत ब्रह्मचर्य धारण करके इस रसको सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धिवाला रोगी अवश्य आरोग्यलाभ करताहै ॥ २९–३३ ॥

सामान्यउपचार ।

चूर्णं दारुहरिद्रायां गवां मूत्रैस्त्रिनिष्ककम् ।
चिरं चिरोत्थितां हंति अंत्रवृद्धिं न संशयः ॥ ३४ ॥
रसो वातारिनामा यः सोऽत्र देयः पिबेदनु ॥ ३५ ॥
एरण्डतैलकर्षैकं गवां क्षीरं पलद्वयम् ।
अण्डवृद्धिहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः ॥ ३६ ॥
विजयागुटिकां रात्रौ स्वल्पमात्रां च भक्षयेत् ।
कर्षैकं तिलतैलं च पलैकं चार्द्रकद्रवम् ॥
यः पिबेत्प्रातरुत्थाय तस्यांऽत्रवृद्धिहृद्भवेत् ॥ ३७ ॥
गोमूत्रैरण्डतैलं च छागमांसरसं तथा ।
त्रिफलाक्वाथतुल्यांशं तैलशेषं तु पाचयेत् ॥
तत्तैलं तु पिबेत्कर्षमंत्रवृद्धिप्रशांतये ॥ ३८ ॥
दध्यारनालमदिरामातुलुंगरसैः समैः ।
ताम्रचूडरसैस्तुल्यं तैलं वा घृतमेव वा ॥ ३९ ॥
स्नेहशेषं पचेत्सर्वं तत्पिबेदंत्रवृद्धिजित् ॥ ४० ॥
अंत्रवृद्धिहरं पाने मयूरतित्तिराद्रसम् ।
वार्ताकं कुक्कुटं पक्त्वा तद्रसं पानभोजने ॥ ४१ ॥
योजयेदंत्रवृद्ध्यार्तैः शममाप्नोति नान्यथा ॥ ४२ ॥

दारुहल्दीके १ तोला चूर्णको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे चिरकालसे उत्पन्न हुआ अन्त्रवृद्धि। (अण्डकोषोंका फूलना) रोग अवश्य दूर होताहै। अथवा उपर्युक्त वातारि रसको सेवन करके ऊपरसे २ पल गोदुग्धमें १ तोला अण्डीका तेल मिलाकर पान करे। इस प्रकार इस रसको एक महीनेतक सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग निस्सन्देह नष्ट होताहै। अथवा रात्रिमें विजयावटीको अल्पमात्रासे भक्षण करे और प्रातःकालमें एक कर्ष परिमाण तिलके तेलको एक पल अदरखके रसमें मिलाकर पान करे। यह प्रयोगभी अन्त्रवृद्धि रोगको हरनेवाला है। किम्वा गोमूत्र, अण्डीका तेल और बकरेके मांसका रस ये तीनों समानभाग और तीनोंकी बराबर त्रिफलेका क्राथ लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पकते २ तेल मात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानलेवे। इस तेलको प्रतिदिन एक २ कर्ष परिमाण पान करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग शान्त होताहै। या दही, कॉजी, मद्य, विजौरे नींबूका रस और मुर्गेका मांसरस ये सब समान भाग और सबके बराबर तेल अथवा घृत लेवे और सबको एकत्र करके पकावे। जब पककर तेल अथवा घृत मात्रशेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। यह तेल वा घृत प्रतिदिन एक २ तोला सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धिको दूर करताहै। मोर अथवा तीतरका मांसरस पान करना भी अन्त्रवृद्धिमें विशेष उपयोगी है। वैंगन और मुर्गेके मांसको एकत्र पकाकर उसके रसको खान पानमें व्यवहार करनेसे अन्त्रवृद्धि रोगीकी पीडा शीघ्र शमन होती है। इन उपचारोंके न करनेसे इस रोगसे मुक्त होना दुर्लभ है॥३४-४२॥

गुल्मरोग।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्र-

विकूजनानि । आटोपमाध्मानमपक्त्य-
शक्तिरासन्नगुल्मस्य वदंति चिह्नम् ॥ ४३ ॥

गुल्मरोगके उत्पन्न होनेसे पहले निम्नलिखित लक्षण होते हैं, जैसे–अधिक डकारोंका आना, मलबद्धताका होना, भूखका न लगना, अरुचिका होना, असमर्थताका होना, पेटमें आँतोंका कूजना (अर्थात् गुडगुड शब्दका होना), पेटका अफरना या फूलना, अपान वायुका अवरोध होना, मन्दाग्नि, भोजनका न पचना और बलका ह्रास होना इत्यादि ॥ ४३ ॥

गन्धकादिपोटलीरस ।

गंधकं तालकं ताप्यं शिलाह्वं पिप्पलीकृते ।
कषाये भावयेत्तुल्याः क्षीरे मूत्रे च सप्तशः ॥ ४४ ॥
निष्कार्धमस्याःपोटल्याःस्यादर्धसाज्यमाक्षिकम् ।
प्रयोज्यं सयकृत्प्लीह्नि पंचकोलपलाशिना ॥ ४५ ॥
वर्षाभूः कारवी शौंडी सूची चव्यवचाऽसनम् ।
तिलाक्षियुतमाबाणानिशाकर्कंधुसूकरी ॥
रक्ताागस्त्येंदुरेखाब्दनीलज्योतिरयोमृतम् ॥ ४६ ॥
वल्कलं बहुवल्ल्याः कृष्णकांबोजिकाफलम् ।
गवाक्षीरजनीकृष्णा निंबवेल्लकटिल्लकम् ॥ ४७ ॥
मानिकांशं पृथक् क्षुण्णं तुल्यं भूशर्कराघृतम् ।
त्रिफलाबीजतैलेन भावितं कर्षसंमितम् ॥ ४८ ॥
प्राह्णे घृतेन मध्याह्ने गुडेन मधुना निशि ।
पादं पादार्धमात्रं वा पोटल्याश्च रजो भवेत् ॥ ४९ ॥

हैयंगवीनशाल्यन्नकृष्णगोक्षीरवर्तिनः ।
एवं वर्षत्रयं कुर्वन्स्याद्वलीपलितोज्झितः ॥ ५० ॥
प्रत्यहं मंडलं खादेत्पथ्यं त्यक्त्वा ततः परम् ।
इच्छाहारविहारी च सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ ५१ ॥

गन्धक, हरताल, सोनामाखी और मैनसिल इन चारोंको समान भाग लेकर पीपलके क्काथ, थूहरके दूध और गोमूत्रमें क्रमसे सात सात बार भावना देकर सुखालेवे । फिर बारीक चूर्ण करके रखलेवे । इस पोटली रसको दो २ मासे परिमाण प्रतिदिन दो २ मासे घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे पंचकोल तथा ढाककी हरी छालका क्काथ पान करे । यह प्रयोग—यकृत् विकार और प्लीहारोगसे युक्त गुल्म-रोगमें विशेष उपकार करताहै । इसके अतिरिक्त यह रस निम्न लिखित औषधियोंके अनुपानके साथ भी सेवन किया जासकताहै । जैसे पुनर्नवा, काला जीरा, पीपल, दाभकी जड, चव्य, वच, विजयसार, तिलसहित तिलोंकी आक्षि (जिसमें-से तिल निकलते हैं वे छिल्के), सरफोंका, हल्दी, बेर, बाराही कन्द लाल अगस्त, सोमलता, सुगन्धवाला, नीलकान्ति-वाले लोहकी भस्म, शतावरकी छाल, काली चोंटली, इन्द्रा, यनकी जड, हल्दी, पीपल, नीमकी छाल, वायविडङ्ग और करेला ये सब औषधियाँ एक २ सेर परिमाण लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर उस चूर्णको समान भाग मानकन्दके घृतमें मिलाकर त्रिफलेके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलमें भावना देवे । इस प्रकार तैयार की हुई यह औषध एक तोला और गन्धकपोटलीरस २ मासे अथवा ४ मासे दोनोंको प्रतिदिन प्रातःकालमें तो घृतके साथ सवन करे, मध्याह्नकालमें गुडके साथ और रात्रिमें उपर्युक्त मात्रा-

सेही मधुके साथ सेवन करे । इसपर मक्खन शालिधानोंका भात, काली गायका दूध आदि स्निग्ध पदार्थोंका पथ्य सेवन करता हुआ मनुष्य यदि इस औषधको ३ वर्ष तक बराबर भक्षण करे तो बलीपलित आदि रोगोंसे मुक्त होजाताहै । किसीभी रोगको निवारण करनेके लिये यह यह औषध ४० दिनतक बराबर सेवन करे और तभीतक पथ्यभी रक्खे । फिर पथ्यको छोडकर यथेच्छ रूपसे आहार विहार करे । इस रसको निरन्तर सेवन करनेवाला मनुष्य १००० वर्ष तक जीवित रहसकताहै ॥ ४४-५१ ॥

वंगेश्वर रस ।

भस्मसूतं वंगभस्म पलैकैकं प्रकल्पयेत् ।
गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ५२ ॥
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् ।
रुद्ध्वा तद्भूधरे पाच्यं पुटैकेन समुद्धरेत् ॥ ५३ ॥
एष वंगेश्वरो नाम प्लीहगुल्मोदरापहः ॥ ५४ ॥
घृतैर्गुंजाद्वयं लेह्यं निष्कं श्वेतपुनर्नवा ।
गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥ ५५ ॥

पारेकी भस्म, वंगभस्म, गन्धक और ताम्रभस्म ये प्रत्येक औषधि चार ४ तोले परिमाण लेकर सबको आकके दूधमें एक दिनतक खरल करके गोला बनालेवे । उसको शराव-सम्पुटमें बन्द करके कपरौटी कर भूधरयन्त्रमें पकावे । स्वांग-शीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण कर लेवे । इस रसको दो २ रत्ती परिमाण लेकर प्रतिदिन घृतमें मिला-कर सेवन करे और ऊपरसे श्वेतपुनर्नवाकी ४ मासे जडको या हलदीको गोमूत्रमें पीसकर अनुपान करे। इस रसके सेवनसे

प्लीहा, गुल्म और उदरसम्बन्धी समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ५२–५५ ॥

शिखिवाडवरस।

मारितं सूतताम्राभ्रं गंधकं माक्षिकं समम्।
मर्दयित्वार्द्रकद्रावैर्यवक्षारयुतैर्दिनम् ॥ ५६ ॥
त्रिगुंजं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च।
वातगुल्महरः ख्यातो रसोयं शिखिवाडवः ॥ ५७ ॥
विडंगं दाडिमं हिंगुसैंधवैलासुवर्चलम्।
मातुलुंगरसैः पिष्ट्वा कर्षैकं सुरया सह ॥ ५८ ॥
वातगुल्महरं देयमनुपानं सुखावहम् ॥ ५९ ॥

पारदभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक और सोनामाखीकी भस्म, इन सबको समान भाग लेकर अदरखके रसमें जवाखार डाल-कर उसक साथ एक दिनतक खरल करे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। इस रसको प्रतिदिन तीन २ रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करे। यह शिखि-वाडव रस वातगुल्मको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् वायविडङ्ग, दाडिमी, हींग, सैंधानमक, इलायची और कालानमक इन सबको समान भाग लेकर बिजौरे नींबूके रसमें खरल करके उस कल्कको एक २ तोला परिमाण लेकर कुमार्यासवके साथ सेवन करे। वातगुल्मको हरनेके लिये इस अनुपानका देना अत्यन्त हितकर है ॥ ५६–५९ ॥

दीप्तामररस।

शुद्धं सूतं समं गंधं सूतांशं मृतताम्रकम्।
शाकवृक्षोत्थपंचांगद्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ ६० ॥

दिनं सार्पाक्षिजैर्द्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
पंचधा भूधरे चाथ चूर्णं जेपालतुल्यकम् ॥ ६१ ॥
द्विगुंजं भक्षयेच्चाज्यैः पित्तगुल्मप्रशांतये ।
द्राक्षाहरीतकीक्काथमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥
रसो दीप्तामरो नाम पित्तगुल्मं नियच्छति ॥ ६२ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक और ताम्रभस्म तीनोंको समान भाग लेकर सागौन वृक्षके पंचाङ्गके काढेमें ३ दिनतक खरल करे। फिर एक दिन नकुलकन्दके रसमें घोटकर गोला बनालेवे। उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे। इसी प्रकार नकुलकन्दके रसमें घोट घोटकर पाँच बार भूधरपुट देवे। स्वाँगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करले। उससें समान भाग जमालगोटोंका चूर्ण मिलाकर खूब बारीक खरल करलेवे। यह रस पित्तजन्य गुल्मको शमन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसको दो २ रत्तीकी मात्रासे घृतमें मिलाकर भक्षण करे। और दाख तथा हरडके क्काथका अनुपान करे। यह दीप्तामर रस पित्त गुल्मको अवश्य दूर करताहै ॥ ६०-६२ ॥

विद्याधररस ।

गंधकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ।
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ ६३ ॥
पिप्पल्यास्तु कषायेण भावयेत्स्नुग्भवेन च ।
निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मं प्लीहं विनाशयेत् ॥ ६४ ॥
रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ ६५ ॥

गन्धक, हरताल, सोनामाखी, ताम्रभस्म, मैनसिल और

शुद्ध पारा सबको समान भाग लेकर पीपलके काढेमें एक दिन तक मर्दन करे। फिर थूहरके दूधमें एक दिन भावना देवे तो यह विद्याधर रस सिद्ध होताहै। इस रसको प्रतिदिन दो २ मासे परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे गुल्म और प्लीहा रोग दूर होताहै। इसके ऊपर गोमूत्रका अनुपान करना चाहिये॥ ६३-६५॥

रक्तोदरकुठार रस।

पारदं शिखितुत्थं च जैपालं पिप्पली समम्।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीदुग्धेन भावयेत्॥
सूक्ष्ममात्रां वटीं खादेत्स्त्रीणां हन्याज्जलोदरम्॥ ६६॥
चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम्।
रक्तोदरकुठारोपि कठिनं रेचयत्ययम्॥ ६७॥

शोधित पारा, नीला थोथा, जमालगोटा, पीपल और अमलतासकी फलीका गूदा इन सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करके छोटी छोटी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको नियमपूर्वक सेवन करनेसे स्त्रियोंका जलोदर रोग नष्ट होताहै। इसपर इमलीके रसका अनुपान और दही-भातका पथ्य सेवन करना उपयोगी है। जब पेटमें रक्त जमगया हो या रक्तगुल्म हो तो इस रसको उपयुक्त मात्रासे सेवन करावे। यह रस अत्यन्त तीक्ष्ण विरेचनके द्वारा उस रक्तको निकालकर पेटको साफ करदेताहै॥ ६६॥ ६७॥

वैश्वानररस।

विष्णुक्रांता च जैपालं लांगली सुरदालिका।
यवचिंचाम्बुसारेण तासां द्विगुणगंधकम्॥ ६८॥

पक्षं विमर्दितं सूतं स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना ।
गुल्मे गुंजात्रयं चास्य सोष्णाम्बुघृतसैंधवम् ॥ ६९ ॥
वातजे कफजे लिह्यान्मध्वार्द्रकसमन्वितम् ।
ससितामाक्षिकं पैत्ते सोऽयं वैश्वानरो रसः ॥ ७० ॥

विष्णुक्रान्ता, जमालगोटा, कलिहारी और देवदाली लता ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला और सबसे दुगुनी गन्धक और गन्धककी बराबर पारा लेकर प्रथम दोनोंकी कज्जली कर लेवे फिर उस कज्जलीमें अन्यान्य औषधियोंके चूर्णको मिलाकर जौ, पकी हुई इमली और सुगन्धवाला इनके क्काथमें १५ दिनतक खरल करे । इसके पश्चात् उसका गोला बनाकर उसको मन्द मन्द अग्निके द्वारा कुक्कुट पुट देवे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको तीन २ रत्तीकी मात्रासे सेवन करे। वातजनित गुल्ममें यह रस-घृत और सैंधे नमकमें मिलाकर भक्षण करे और ऊपरसे मन्दोष्ण जलका अनुपान करे, कफजन्य गुल्म रोगमें मधु और अदरखके रसके साथ सेवन करे और पित्तजनित गुल्ममें मिश्री और मधुके साथ सेवन करे ॥ ६८-७० ॥

अग्निकुमाररस ।

जैपालगंधाश्मरसत्रयाणां फलत्रयस्यापि कटुत्रयस्य । मूत्रे गवां षोडशभागमाने भागान्नवैकत्र दिनत्रयं च ॥ ७१ ॥
विमर्द्य तेषां बदरप्रमाणा बद्धा वटीरुष्णजलानुपानात् । एकात्र भुक्ता सहसा

निहंति सा रेचयित्वा मलजालमादौ ॥ ७२ ॥
गुल्मं यकृत्पाण्डुविबंधशूलं मांद्यं ज्वरं
चाथ जलोदरं च । अग्नेः कुमारः सहसा
निहन्यादुद्दीपितो दीप इवांधकारम् ॥ ७३ ॥

अग्निकुमार रस ।

जमालगोटे, गन्धक, पारा, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल, प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक २ तोला लेकर सबको एकत्र मिलालेवे, फिर उसको १६ तोले गोमूत्रमें तीन दिन तक खरल करके छोटे बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे प्रतिदिन एक एक गोली मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करे । ये गोलियाँ प्रथम विरेचनके द्वारा संचित मलको एकदम बाहर निकाल फेंकती हैं, फिर शीघ्रही गुल्म, यकृत्, पाण्डुरोग, मलबद्धता, शूल, मन्दाग्नि, ज्वर, और जलोदर इन सब व्याधियोंको नष्ट करदेती हैं । यह रस इन रोगोंका इस प्रकार तत्काल नष्ट करता है,जैसे प्रज्वलित दीपक अन्धकारको सहसा विनाश करदेता है ॥ ७१-७३ ॥

सर्वांगसुंदररस ।

शुद्धमभ्रं रसं गधं मेलयित्वा समांशकम् ।
तालमूलीरसैर्मर्द्य कल्कं संपादयेच्छुभम् ॥ ७४ ॥
तत्कल्कं कूपिकामध्ये कृत्वा वक्रं निरुंधयेत् ।
खटिन्या मुखमाच्छाद्य मृदा खर्परसंज्ञया ॥ ७५ ॥
कूपिकां लेपयेत्सर्वां शोषयेदातपे खरे ।
कूपिकां भूमिगर्तायां कृत्वा तां पुटयेत्ततः ॥ ७६ ॥
कूपिकां मर्दयेत्कृत्स्नां खटिन्या सह संयुताम् ।

त्रिभिः क्षारैस्तु तच्चूर्णं पंचभिर्लवणैस्तथा ॥७७ ॥
त्र्यूषणं त्रिफला हिंगु पुरमिंद्रयवास्तथा ।
गुंजाकिनी तथा चित्रमजमोदा यवानिका ॥ ७८॥
एतानि समभागानि समादाय विचूर्णयेत् ।
योजयेत्सह सूतेन ततः सिद्ध्यति सूतकः ॥ ७९ ॥
सिद्धसूतस्य पर्णेन माषं सर्वरुजापहम् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय रसः सर्वांगसुंदरः ॥ ८० ॥
उष्णोदकानुपानं तु पाययेच्चुलुकद्वयम् ।
भक्षयेदेकवारं तु द्विवारं न कथंचन ॥ ८१ ॥
दिनमध्ये वारमेकं दातव्यो भिषजा रसः ।
शीतोदकं सकृद्देयं तृडभावेप्यहर्निशम् ॥ ८२ ॥
भोजने वर्जयेत्तत्र शाकाम्लं द्विदलं तथा ।
तैलाभ्यंगं ब्रह्मचर्यं वर्जयेच्छयनं दिवा ॥ ८३ ॥
हितं तत्सेवयेत्पथ्यमाहितं च विवर्जयेत् ।
अनेनैव प्रकारेण योजयेत्प्रातिवासरम् ॥ ८४ ॥
यस्त्वचेतनतां याति सन्निपाती कथंचन ।
तस्य नातिप्रयोक्तव्यो रसो यत्नाद्भिषग्वरैः ॥ ८५ ॥
देवाग्निऋषिविप्रांश्च कुमारीयोगिनीगणान् ।
पूजयित्वा यथाशक्त्या सेव्यः प्राणेश्वरो रसः॥८६ ॥
गुल्मं चाष्टविधं वातं शूलं च परिणामजम् ।
सन्निपातज्वरं चैव प्लीहानमपकर्षति ॥ ८७ ॥

कामलां पाण्डुरोगं च मंदाग्निं ग्रहणीं तथा ।
शिववत्सेवितो हंति रसः प्राणेश्वरस्त्वयम् ॥ ८८ ॥

शुद्ध अभ्रक, पारा और गन्धक तीनोंको समान भाग लेकर मुसलीके रसमें खरल करके कल्क करलेवे। उस कल्कको आतशी शीशीमें भरकर खडिया मिट्टीसे शीशीका मुँह बन्द करदेवे और खीपरोंकी मिट्टीके द्वारा कपरौटी करके तीक्ष्ण धूपमें सुखालेवे । फिर जमीनमें एक गढा खोदकर उसमें शीशीको रखकर यथाविधि भूधरपुट देवे । स्वांगशीतल होने पर शीशीको फोडकर उसमेंसे रसको निकाललेवे उस रसमें जवाखार, सज्जी, सुहागा, पाँचों नमक, त्रिकुटा, त्रिफला, हींग, गूगल, इन्द्रजौ, घुंघुची, चीता, अजमोद और अजवायन, इन सब औषधियोंके समान भाग चूर्णको मिलाकर खूब बारीक खरलकरे । इस प्रकार यह सर्वाङ्गसुन्दर रस सिद्ध होताहै। यह सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है । इसको प्रतिदिन प्रातः-काल एक २ मासे परिमाण पानमें रखकर सेवन करे और ऊप-रसे दो चुल्लू उष्ण जलका अनुपान करे । इसको दिनभरमें केवल एक बारही भक्षण करे, दुबारा कदापि सेवन न करे। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् तृषा न लगनेपरभी रोगीको दिन रातमें एकबार शीतल जल अवश्य पान करावे । इसपर भोजनमें शाक, अम्लपदार्थ और दोदलवाले अन्न (दाल) तथा दिनमें शयन करना इस सबको त्याग देना चाहिये । एवं शरीरमें तेलकी मालिश करना, ब्रह्मचर्यको धारण करना, हित-कर पदार्थोंका आहार विहार और अहितकारी पदार्थोंका परि-त्याग करना चाहिये । इसी क्रमसे प्रतिदिन इस रसको और पथ्यापथ्यका व्यवहार करे । जो सन्निपातरोगी कदाचित् बेहोश होजाय तो उसको यह रस अधिक मात्रामें नहीं देना

चाहिये देवता, अग्नि, ऋषि, ब्राह्मण, कन्या, योगिनी और रुद्रगण आदिका यथाशक्ति पूजन करके इस रसको सेवन करे तो प्राणोंकी रक्षा होती है। यह रस यथाविधि सेवन करनेसे आठों प्रकारके गुल्म, वातरोग, शूल,परिणाम शूल, सन्निपात ज्वर, प्लीहा, कामला, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी आदि व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करताहै। जिस प्रकार शंकरभगवान्की सेवा करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण सांसारिक दुःखोंसे मुक्त होजाताहै। उसी प्रकार यह रस प्राणोंकी रक्षा करताहै ॥७४-८८॥

गुल्मनाशन रस।

गंधकं रसतुल्यं च द्विभागः सैंधवस्य च ।
त्रिभागं टंकणं प्रोक्तं चतुर्भागं च तुत्थकम् ॥ ८९ ॥
पंचमं तु वराटं स्यात्षड्भागं शंखमेव च ।
वह्निमूलकषायेण चिरबिल्वरसेन च ॥
आर्द्रकस्य रसेनात्र प्रत्येकं तु पुटत्रयम् ॥ ९० ॥
तत्समं मारिचं चूर्णं शाणार्धं भक्षयेन्नरः ।
पंचगुल्मं क्षयं श्वासं मंदाग्निं चाशु नाशयेत् ॥ ९१ ॥

गन्धक और पारा दोनोंको एक २ भाग लेकर कज्जली करलेवे। फिर सैंधा नमक २ भाग, सुहागा ३ भाग, शुद्ध तूतिया ४ भाग, कौडीकी भस्म ५ भाग और शंखभस्म ६ भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर चीतेकी जडके काढेमें खरल करके तीन बार कुक्कुटपुट देवे। फिर करंजके रसमें प्रत्येक बार घोटकर ३ कुक्कुटपुट देवे। पश्चात् अदरखके रसमें घोटकर ३ बार कुक्कुटपुट देवे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर उसमें समान भाग मिरचोंका चूर्ण डालकर खरल करलेवे। इस रसको प्रतिदिन दो २ मासे परिमाण जलके साथ सेवन करे।

यह पाँच प्रकारके गुल्म, क्षय, श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि आदि रोगोंको शीघ्र दूर करताहै ॥ ८९-९१ ॥

सामान्य उपाय ।

पंचांगदेवदाल्यास्तु चूर्णकर्षं शिवांबुना ।
मासमात्रं पिबेद्यस्तु प्लीहा तस्य करोति किम् ॥९२॥
लवणं रजनी राजी प्रत्येकं पलपंचकम् ।
चूर्णितं निक्षिपेद्भाण्डे शततक्रपलान्विते ॥ ९३ ॥
त्रिदिनं मुद्रितं रक्षेत्पश्चात्पंचपलं सदा ।
पीत्वा विनाशयेत्प्लीहं त्रिसप्ताहान्न संशयः ॥ ९४ ॥
समूलपत्रमेरण्डं रुद्धा भाण्डे पुटे पचेत् ।
तत्कर्षं पलगोमूत्रैः पीतं प्लीहविनाशनम् ॥ ९५ ॥
शरपुंख्यर्कयोर्मूलं चिरं दंतैश्च चर्वितम् ।
गिलितं नाशयेत्प्लीहं यवागूपानमाचरेत् ॥ ९६ ॥
वज्रक्षारं तु कर्षैकं भक्ष्यं प्लीहविनाशनम् ।
कांचनीमूलचूर्णं वा निष्कमात्रं सदा पिबेत् ॥
सुरया कांजिकैर्वाऽथ हंति प्लीहं चिरंतनम् ॥ ९७ ॥
प्लीहानां पृष्ठदेशे तु रक्तस्रावं च कारयेत् ।
अर्कक्षीरं ससिंधूत्थं क्षिपेत्तत्र रुजापहम् ॥ ९८ ॥
तिलक्वाथो गुडं चाज्यं व्योषं भार्ङ्गीरजोन्वितम् ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे तु योषितः ॥ ९९ ॥
देवदारुकणा भार्ङ्गी शुंठी करंजवल्कलम् ॥ १०० ॥
चूर्णं तिलानां क्वाथेन रक्तगुल्महरं भवेत् ॥ १०१ ॥

यदि मनुष्य देवदालीलता (वंदाल) के पञ्चाङ्गके चूर्णको प्रतिदिन एक एक तोला परिमाण लेकर हरडके काढेके साथ एक महीने तक सेवन करे तो प्लीहा उसका कुछभी अनिष्ट नहीं करसकती और शीघ्र शान्त होजाती है अथवा समुद्रनमक, हल्दी और राई प्रत्येकको पाँच २ पल लेकर चूर्ण करके एक घडेमें भरदेवे और उसमें १०० पल तक्र (छाछ) डालदेवे। फिर घडेके मुँहको ढककर और मिट्टीसे ल्हेसकर तीन दिन तक रक्खा रहने देवे । चौथे दिनसे उस तक्रको प्रतिदिन पाँच २ पल परिमाण पान करे तो एक सप्ताहमें प्लीहारोग निस्सन्देह दूर होजाताहै। या अण्डकी जड और पत्तोंको एक हॉडीमें बन्द करके भाण्डपुटकी विधिसे पकाकर भस्म करले। उस भस्मको एक २ तोला परिमाण लेकर एक पल गोमूत्रके साथ पान करनेसे प्लीहा रोग नष्ट होताहै । किम्वा सरफोंका और आककी जडको बहुत देरतक दाँतोंसे चाव चाव कर उनके रसको पान करे या उक्त दोनों जडोंके रसकी यवागू बनाकर सेवन करे तो प्लीहा रोग नाश होताहै । अथवा वज्रक्षारको एक २ तोला प्रतिदिन सेवन करे या कचनारकी जडके चूर्णको चार २ मासे लेकर प्रतिदिन मद्य अथवा काँजीमें मिलाकर सेवनकरे तो बहुतादिनोंका पुराना प्लीहारोगभी नष्ट होजाताहै। प्लीहा (तिल्ली-वाले) रोगियोंकी पीठमें फस्त खुलवाकर रक्त निकलवावे और उस स्थानमें सैंधे नमकको आकके दूधमें पीसकर भरदेवे तो पीडासहित प्लीहारोग दूर होताहै । त्रिकुटा और भारंगीके समान भाग चूर्णको तिलोंके काढेमें अथवा गुड और घृतमें मिलाकर पान करनेसे स्त्रियोंके रक्तगुल्ममें और नष्ट आर्त्तवमें विशेष उपकार होताहै। देवदार, पीपल, भारंगी, सोंठ और करंजकी छाल इन औषधियोंके समान भाग लेकर चूर्ण कर

तिलोंके काढेके साथ पान करनेसे रक्तज गुल्मरोग नष्ट होताहै ॥ ९२-१०१ ॥

शूलरोग ।

अग्निमुख रस ।

मृतसूताभ्रकं ताम्रं गंधकं चाम्लवेतसम् ।
विषं फलत्रयं तुल्यं सर्वं मर्द्यं दिनावधि ॥ १०२ ॥
विषमुष्टिर्जया वासा विजया रक्तशाकिनी ।
बृहती च महाराष्ट्री धत्तूरः पद्मपत्रकः ॥ १०३ ॥
नागवल्ली शमी जंबूभाव्यमेभिर्द्रवैस्त्र्यहम् ।
समांशं पंचलवणं दत्त्वाऽऽर्द्रकरसेन च ॥ १०४ ॥
दिनं पेष्यं ततः कुर्याद्वटिकां चणमात्रकाम् ।
भक्षयेद्वातशूलार्तः सोऽयमग्निमुखो रसः ॥ १०५ ॥
हरितकी प्रतिविषा हिंगु सौवर्चलं वचा ।
कलिंगेंद्रयवास्तुल्यं पाययेदुष्णवारिणा ॥ १०६ ॥
कर्षैकमनुपानं स्याद्वातशूलहरं परम् ।
चिंचाक्षारं जलैः पीतं शूलं शांतिमवाप्नुयात् ॥ १०७ ॥

पारेकी भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, गन्धक, अमलबेत, शुद्ध वत्सनाभ और त्रिफला इन सबको समान भाग लेकर एक दिन तक खरल करे। फिर कुचला, अरणी, अडूसा, भाँग, लाल शाकिनी, बडी कटेरी, जलपीपल, धतूरा, कमलके पत्ते पान, छौंकर वृक्षके पते और जामुनके पत्ते इन प्रत्येकके रसमें उक्त चूर्णको क्रमसे तीन २ दिन तक भावना देवे। फिर समान भाग मिश्रित पांचों नमकोंको अदरखके रसमें डालकर उसके साथ एक दिन खरल करके चनेकी बरा-

वर गोलियां बनालेवे। वातजनित शूल रोगीको इस रसकी एक गोली सेवन कराकर ऊपरसे हरड अतीस, हींग, काला नमक, वच, मीठा इन्द्रजौ और कडवा इन्द्रजौ इन सबके समान भाग चूर्णको १ तोला परिमाण लेकर मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करावे। यह रस वातज शूलको नष्ट करनेके लिये परमोपयोगी है। इसके अतिरिक्त इस रसके ऊपर इमलीके खारको जलके साथ पान करनेसे भी शूलरोग शान्त होताहै ॥ १०२-१०७ ॥

त्रिनेत्ररसः।

खण्डितं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम्।
दिनैकं चार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पचेत्पुटे ॥
त्रिनेत्राख्यो रसः सोयं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् ॥ १०८ ॥
सैंधवं जीरकं हिंगु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु।
पक्तिशूलहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः ॥ १०९ ॥
टंकणं मूर्च्छितं सूतं यवक्षारं समं समम्।
चूर्णितं भक्षयेन्माषं मधुना पक्तिशूलनुत् ॥ ११० ॥
जंबूमांसाज्ययोर्यूषमनुपानं पिबेत्सदा ॥ १११ ॥

हिरनके सींगका चूर्ण, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म और पारद-भस्म चारोंको समान भाग लेकर एक दिन तक अदरखके रसमें खरल करके कुक्कुट पुट देवे। इस प्रकार यह त्रिनेत्ररस सिद्ध होताहै। इसको प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करे। ऊपरसे सैंधानमक, जीरा और हींग इनके समान भाग चूर्णको शहद और घीमें मिला-कर अनुपान करे। इस विधिसे इस रसको एक महीनेतक सेवन करनेसे परिणामशूल अवश्य नष्ट होताहै। अथवा सुहागा,

पारेकी भस्म और जवाखार तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके एक २ मासा परिमाण, शहदमें मिलाकर अनुपान रूपसे सेवन करे । या गीदडके मांसका यूष और घृतका अनुपान करे तो परिणाम शूल शान्त होताहै ॥ १०८-१११ ॥

चिन्तामणि रस ।

सूतेन गंधं द्विगुणं विमर्द्य कोरंट-
निंबूत्थरसैर्दिनं तत् । चिंचोद्भवक्षार-
रसेन चैकं दिनं च गोलं रविसंपुटस्थम् ॥११२॥
लिप्त्वा मृदा शुष्कमतीव कृत्वा सामुद्र-
यंत्रेण पुटं ददीत । उद्धृत्य शीतं रसपाद-
भागं प्रक्षिप्य गंधं विपचेन्मनाक् च ॥ ११३ ॥
विषं च दत्त्वा रसपादभागं लोहस्य
पात्रेऽथ कृशानुतोयैः । रसस्तु चिंता-
मणिरेप उक्तो वातारितैलेन समाक्षिकेण॥ ११४॥
वल्लेन मानं प्रददीत चाम्लं तैलं च
शीतं परिवर्जयेच्च । हंति गुल्मं सहा-
ध्मानं तूनीं प्रतितुनीमपि ॥ ११५ ॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । फिर उसको पीली कटसरैयाका क्वाथ नींबूका रस और इमलीके खारका रस इन प्रत्येकमें क्रमसे एक २ दिन तक खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेको ताँबेके सम्पुटमें बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे । उस सम्पुटको लवणयन्त्रमें रखकर ९ घंटे तक अग्निदेव । स्वांगशीतल होनेपर रसको निकालकर उसमें चौथाई भाग शुद्ध गन्धक

मिलाकर कुछ देर तक पकावे । इसके पश्चात् उस रसको लोहेके खरलमें डालकर उसमें रससे चौथाई भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर चीतेके रसके साथ घोटे और कुछ देर पकाकर बारीक चूर्ण करलेवे । इसको चिन्तामणि रस कहते हैं । इसको एक एक रत्ती परिमाण लेकर अण्डीके तेल और शहदके साथ देना चाहिये । एवं तैल, अम्लपदार्थ और शीतल पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये । यह रस-गुल्म, अफरा, तूनी और प्रतूनी रोगको नष्ट करता है ॥ ११२-११५ ॥

शूलकेसरी रस ।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रसंपुटे तन्निरोधयेत् ॥ ११६ ॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे धारयेद्भिषक् ।
रुद्ध्वा गजपुटे पाच्यं स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ११७ ॥
संपुटं चूर्णयेत्कृत्स्नं पर्णखण्डे द्विगुंजकम् ॥
भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगु शुंठी च जीरकम् ॥ ११८ ॥
वचां मरिचकं चूर्ण्य कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ।
असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं शूलकेसरी ॥ ११९ ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग दोनोंकी कज्जली करके उसको एक प्रहर तक खरल करे । फिर कज्जलीकी बराबर शुद्ध ताम्रका सम्पुट बनवाकर उसमें कज्जलीको भरदेवे और सम्पुटको उत्तम प्रकारसे बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे । फिर उसको एक हाँडीमें रखकर उसके नीचे, ऊपर समुद्र नमक भर देवे और हाँडीका मुँह बन्द करके गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर सम्पुटको निकालकर

उसका खूब बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन दो २ रत्ती परिमाण पानमें रखकर सेवन करे और ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, वच और मिरचोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके उसमेंसे एक २ तोला उष्णजलके साथ सेवन करे तो सब प्रकारका शूलरोग दूर होताहै। यह रस असाध्य शूलकोभी शीघ्र विनाश करदेताहै ॥ ११६–११९ ॥

मृतोत्थापन रस।

अभ्रं ताम्रं तथा लोहं प्रत्येकं मारितं पलम्।
सुसंस्कृतं सर्वमेतद्गृह्णीयात्कुशलो भिषक् ॥ १२० ॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे तत्स्वरसंख्यके।
पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनतंतुना ॥ १२१ ॥
विडंगत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान्यथासंमिश्रतां नयेत् ॥ १२२ ॥
ततः पिष्ट्वा शुभे भांडे स्थापयेत्तद्विचक्षणः।
आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा गुरुं रविम् ॥ १२३ ॥
घृतेन मधुना मद्यैः पाययेन्माषकादिकम्।
अष्टौ माषान्क्रमेणैव वर्धयेत्तत्समाहितः ॥ १२४ ॥
अनुपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा।
जीर्णे शर्करशाल्यन्नमुद्गमांसरसादयः ॥ १२५ ॥
रसपानाऽविरुद्धानि द्रव्याण्यन्यानि योजयेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च आमवातं कटिग्रहम् ॥ १२६ ॥
गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत्प्लीहानमेव च।
अग्निमांद्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन साधयेत् ॥ १२७ ॥

उत्तम प्रकारसे संस्कार करके भस्म कियाहुआ अभ्रक, ताँबा और लोहा प्रत्येकको एक २ पल लेकर १२ पल घृत और १२ पल दूधमें मिलाकर लोहेकी कढाईमें पकावे । पकते २ जब सब दूध जलजाय और घृतमात्र शेष रहजाय तब नीचे उतार कर उसमें वायविडंग, त्रिफला, चीता और त्रिकुटा इन सबको चार २ तोले लेकर कूट पीसकर कपडछान करके डालदेवे, फिर खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । प्रथम शुभ दिनमें अपने गुरु और सूर्यदेवका पूजन करके वैद्य इस रसको पहले दिन एक मासा क्रमसे परिमाण, घृत, मधु अथवा आसवके साथ सेवन करावे । फिर क्रमसे प्रतिदिन एक २ मासेकी मात्रा बढाकर ८ मासेकी मात्रा तक देवे इसके पश्चात् यथेच्छ मात्रासे इस रसको सदैव सेवन करे और दूध अथवा नारियलके जलका अनुपान करे । औषधिके जीर्ण होजाने पर खाँड मिलाकर शालिचावलोंका भात, मूँगका यूष और मांसरस आदिका पथ्य देवे । इसके अतिरिक्त अन्यान्य उपयोगी रस, पान आदि पदार्थोंको प्रयोग करे । इस प्रकार इस रसके सेवन करनेसे हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिपीडा, गुल्म, शूल, शिरका शूल, यकृत् और प्लीहाके विकार, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, श्वास, खाँसी, विचर्चिका, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र ये सब रोग दूर होते हैं ॥ १२०–१२७ ॥

क्षारताम्ररस ।

रसेन ताम्रस्य दलानि लिप्त्वा गंधेन
ताम्राद्द्विगुणेन पश्चात् । वस्त्रेण बद्ध्वाऽथ
समुद्भवेन क्षारत्रयेणापि च वेष्टयित्वा ॥ १२८ ॥
मृदा च संलिप्य पुटं ददीत दलानि

ताम्रस्य विचूर्णयेत । धत्तूरचित्रार्द्रक-
टुत्रयैश्च विमर्दयेत्तत्रिगुणप्रमाणम् ॥ १२९ ॥
कलाप्रमाणेन विषं च दत्त्वा वल्लं
ददीतास्य च वातशूले ॥ १३० ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग और शुद्ध तांबेके कंटकवेधी पत्र ३ भाग लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे । फिर कज्जलीको नींबूके रसमें घोटकर ताँबेके पत्रोंपर उसका लेप करदे और उनको कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे । इसके पश्चात् एक सम्पुटमें समुद्रनमक, जवाखार, सज्जी और सुहागा भरकर बीचमें पोटलीको गाडदेवे । सम्पुटको बन्द करके उसपर कपरौटी कर गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर पत्रोंको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर धतूरा चीता, अदरख और त्रिकुटा इन सबके एकत्र सिद्ध किये हुए क्काथमें उक्त चूर्णको ३ दिन तक खरल करे । चौथे दिन उसमें सोलहवाँ भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर १ दिनतक मर्दन करे । इस रसको वातज शूलमें प्रयोग करना चाहिये मात्रा १ रत्ती अनुपान शहद और पीपल ॥ १२८-१३० ॥

शूलान्तक रस ।

भस्म सूतस्य खस्यापि पलमेकं पृथक् पृथक् ।
ताम्रभस्म पले द्वे तु गंधकस्य पलत्रयम् ॥ १३१ ॥
हरितालस्य कर्षांशं विमलं हेममाक्षिकम् ।
पलार्धं हलिनीकंदं नागवंगौ पलार्धकौ ॥ १३२ ॥
चतुष्पलं तु त्रिवृतमेतत्सर्वं विचूर्णयेत् ।
भूधात्रीस्वरसेनैव भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ १३३ ॥

तथा दंतीद्रवैर्वल्लं दद्यादार्द्रकवारिणा ।
तेन कोष्ठे विशुद्धे तु दधिभक्तं तु भोजयेत् ॥
सर्वाणि शूलानि हरेद्रसः शूलांतको मतः ॥ १३४ ॥

पारेकी भस्म ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, ताम्रभस्म ८ तोले, गन्धक १२ तोले, हरतालभस्म १ तोला, रूपामाखीकी भस्म और सोनामाखीकी भस्म एक २ तोला कलिहारीका कन्द २ तोले, सीसेकी भस्म १ तोला, वंगभस्म १ तोला और निसोथ १६ तोले इन सबको एकत्र चूर्ण करके भुंई आमलेके स्वरसमें ७ दिनतक भावना देवे । फिर दन्तीके क्वाथमें ७ दिनतक भावना देकर सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको एक एक रत्ती परिमाण,अदरखके रसके साथ सेवन करना चाहिये । इस रसके सेवन करनेपर जब रोगीको दस्त होकर कोठा साफ होजाय तब उसको दही भातका आहार करावे । यह रस सब-प्रकारके शूलरोगको विनाश करताहै ॥ १३१-१३४ ॥

अग्निमुखरस ।

पारदं माक्षिकं ताम्रं कृष्णाभ्रं गंधकं त्रयम् ।
माणिमंथं विषं हिंगु त्वग्निशाकंधुकांचनान् ॥ १३५ ॥
रक्तमारीषनिर्गुंडीमहाराष्ट्र्याढरूषकैः ।
जयाजयंतीनिर्यासैस्तथा च विषतिंदुकैः ॥ १३६ ॥
मर्दितं कुक्कुटपुटे पचेदाग्निमुखाह्वयः ।
अष्टगुंजामितः सोयं प्रयोज्यः साज्यनागरः ॥ १३७ ॥
हिंगुसौवर्चलोष्णांबुयुतो वा गुल्मशूलनुत् ॥ १३८ ॥

पारा, सोनामाखीकी भस्म,ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म,गन्धक- सैंधा नमक, काला नमक, विरियासंचरनमक, वतसनाभ, हींग,

चीता, बेर और कचनार इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। फिर लालचौलाई, निर्गुण्डी, जल, पीपल, अडूसा, भाँग, अरणी और कुचला इन प्रत्येक औषधियोंके रस अथवा क्वाथमें क्रमसे एक एक बार भावना देकर गाला बनालेवे, उसको यथाविधि सम्पुटमें बन्द करके कुक्कुटपुट देवे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस रसको आठ २ रत्ती परिमाण लेकर घृत और सोंठके चूर्णके साथ सेवन करे, अथवा हींग और कालानमकके चूर्ण तथा उष्ण जलके अनुपानके साथ प्रयोग करे। यह अग्निमुखरस सेवन करतेही वातगुल्म और शूलरोगको नष्ट करताहै ॥ १३५-१३८ ॥

त्रिनेत्र रस।

रसताम्रगंधकानां त्रिगुणोत्तरवर्धितांशानाम् ।
अम्लेन मर्दितानां पुटपक्वानां निषेवितं भस्म॥१३९
गुंजाप्रमाणमार्द्रकसिंधूत्थचूर्णसंयुक्तम् ।
एरण्डतैलमाक्षिकमथ वा पटुहिंगुजीरकोपेतम् १४०
शमयति शूलमशेषं तत्तद्रसभावितं बहुशः ।
उपचूर्णैरनुपानैस्तैस्तैःसहितं कफानिलार्तिहरम् १४१
एतच्च हरिणशृंगं मृतकांचनटंकणोपेतम् ।
सघृतमधु पक्तिशूलं शमयति शूलं त्रिनेत्ररसः१४२॥

सूत गंध निम्बपालाशतोयैः पिष्ट्वा यामं ताम्रचक्रेण बद्ध्वा। भस्मीभूतं लोहकिट्टं समानं दद्याद्र्धं क्षुद्रशंख च तुल्यम् ॥ भाव्यं सर्वं पूर्ववद्यामयुग्म दद्यात्पुष्ट्यै रोचने दीपने च शूले पाण्डौ अलके रोगराजे कासे श्वासे गुल्ममेहे ज्वरेषु। अर्शोरोगप्रयोज्यः सूतः प्राणरक्षाभिधायी ॥ इत्यन्यत्र पुस्तके।

शुद्ध पारा १ भाग, ताम्रभस्म, २ भाग और शुद्ध गन्धक ९ भाग तीनोंको एकत्र किसी अम्लपदार्थके रसमें घोटकर कुक्कुटपुट देकर भस्म करलेवे । इस भस्मको एक २ रत्तीकी मात्रासे अदरखके और सेंधे नमकके चूर्णके साथ अथवा अण्डीके तेल और मधुमें मिलाकर या सेंधानमक, हींग और जीरा इनके साथ सेवन करे । अथवा उपर्युक्त विधिसे तैयार की हुई भस्मको उक्त औषधियोंके रसमें भावना देकर उन्हीं २ औष-धियोंके चूर्णके साथ सेवन करे तो कफ, वायु तथा कफ और वातजन्य शूल शान्त होताहै । यह त्रिनेत्ररस हिरनके सींगकी भस्म, सुवर्णभस्म, सुहागेकी खील, घृत और मधुके साथ मिला-कर सेवन करनेसे परिणाम शूलको तथा अन्यान्य दोषोंसे उत्पन्न हुए शूलरोगको नष्ट करताहै ॥ १३९–१४२ ॥

उदयभास्कररस ।

तोलतुल्यं रसं शुद्धं गंधकं तच्चतुर्गुणम् ।
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां ततो निंबुकवारिणा ॥१४३
तस्य कल्कं प्रकुर्वीत खल्वे यामचतुष्टयम् ।
द्वितोलमथ ताम्रस्य तनुपत्राणि सर्वशः ॥ १४४ ॥
कल्केन तेन निंबूकरसेनाप्लाव्य खल्वके ।
स्थापयेदातपे तीव्रे पिण्डीकृत्य ततःपरम् ॥१४५॥
मूषामध्ये निरुध्याथ कुक्कुटाख्यैस्त्रिभिः पुटैः ।
पचेच्चुल्ल्यां विनिक्षिप्य चुल्लीपरिमितोपलैः॥ १४६॥
तत आकृष्य संमर्द्य करण्डे तं विनिक्षिपेत् ।
रसोऽयं सर्वरोगघ्नो नृणामुदयभास्करः ॥ १४७ ॥

हंति शूलानि सर्वाणि तमांसीव दिवाकरः ।
पर्णखण्डिकया सार्धं देयश्चेत्यपरे जगुः ॥
पथ्यं रोगोचितं देयं रसस्यानुचितं त्यजेत्॥ १४८ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और गन्धक ४ तोले लेकर दोनोंको खूब बारीक खरल करके कज्जली करलेवे फिर उस कज्जलीको ४ प्रहरतक नींबूके रसमें खरल करके कल्क करलेवे । इसके पश्चात् शुद्ध ताँबेके दो तोले सूक्ष्म पत्रोंके ऊपर उक्त कल्कका लेप करके उन पत्रोंको खरलमें डालकर इतना नींबूका रस भरदेवे, जिससे वे पत्र रसमें डूबजायँ । फिर उनको तीक्ष्णधूपमें रखकर सुखावे । जब सब रसशुष्क होजाय तब पत्रोंको घोट-कर गोला बनालेवे । उसको मूषामें बन्द करके कुक्कुटपुटके द्वारा पकावे । स्वांगशीतल होनेपर पत्रोंको निकालकर खरल करके उनके ऊपर पूर्ववत् कज्जलीके कल्कका लेप कर और नींबूके रसमें डुबोकर तथा सुखाकर फिर उसी प्रकार पुटदेवे । इस प्रकार तीन बार कुक्कुटपुट देवे । फिर रसको निकालकर बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । यह उदयभास्कर रस मनुष्योंके सम्पूर्ण रोगोंको विनाश करनेवाला है । सब प्रकारके शूलरोगको इस प्रकार नष्ट करताहै, जैसे सूर्य अन्ध-कारको । इसको उउयुक्तमात्रासे पानमें रखकर सेवन करावे, ऐसा अनेक रसायनाचार्योंका मत है । तथा रोगके अनुकूल पदार्थोंका पथ्य देवे और प्रतिकूल पदार्थोंको त्याग देवे । इस रसमें—जमीनमें गढा खोदकर कुक्कुटपुट नहीं देवे, प्रत्युत कुक्कुटपुटका यन्त्र जितना बडा हो, उतना ही बडा चूल्हा बना-कर उसमें कुक्कुटपुटका यन्त्र रखकर उसमें औषधि भरकर और उसका मुँह बन्द करके चूल्हेमें ऊपर तक उपले भरकर अग्नि जलावे ॥ १४३–१४८ ॥

शूलगजकेसरी रस ।

पलप्रमाणसूतेन बलिना द्विगुणेन च ।
शुद्धत्रिपलतालेन कृत्वा कज्जलिकां त्र्यहम् ॥ १४९ ॥
पलमानेन कर्तव्यं शुद्धताम्रस्य संपुटम् ।
पिधानपात्रसंन्यस्ततलपात्रास्यवत्खलु ॥ १५० ॥
कज्जलीं संपुटस्यांतर्निदध्यात्तदनंतरम् ।
अधस्तादुपरिष्टाच्च संपुटस्याऽऽक्षिपेत्खलु ॥ १५१ ॥
आकण्ठं पटुचूर्णं तु निधाय च निरुध्य च ।
विशोष्य गजसंज्ञेन पुटेन पुटयेत्ततः ॥ १५२ ॥
पटुचूर्णं विधायाथ सिंधुमध्ये विनिक्षिपेत् ।
पथ्यार्द्रकरसोपेतो वल्लमानेन सेवितः ॥ १५३ ॥
रसो निःशेषशूलघ्नः स्याच्छूलगजकेसरी ॥ १५४ ॥

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले और शुद्ध हरताल १२ तोले लेकर तीनोंको ३ दिन तक एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । फिर चार तोले शुद्ध ताँबेका सम्पुट बनवाकर उसकी तलीमें कज्जली भर देवे और उसके ऊपर ऐसा ताँबेका ढक्कन ढके जो सम्पुटकी तलीमें जालगे । फिर सन्धियोंको बन्द करके उसको एक हाँडीमें रखकर सम्पुटके नीचे ऊपर सैंधेनमकका इतना चूर्ण रक्खे जो हाँडीके कण्ठ तक आजाय फिर हाँडीका मुँह बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे और गजपुटके द्वारा अग्नि देवे। स्वाँगशीतल होनेपर सम्पुटको निकालकर खूब बारीक खरल करके और कपडेमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे । यह शूलगजकेसरी रस १-१ रत्ती परिमाण, हरड और अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूलको विनाश करताहै ॥ १४९-१५४ ॥

क्षारताम्र ।

पलमितमृतशुल्बं तन्मितं गंधचूर्णं
वसुमितपलमानं तिन्तिणीक्षारचूर्णम् ।
त्रयमिदमभिदिष्टं क्षारताम्राख्यमेत-
द्धरति सकलशूलं पीतमुष्णोदकेन ॥ १५५ ॥

ताम्रभस्म ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले, और इमलीका खार ३२ तोले इन तीनोंको एकत्र मिलाकर एक दिनतक खरल करे । इसको क्षारताम्र रस कहते हैं । यह रस मन्दोष्ण जलके साथ पान करनेसे समस्त शूलोंको दूर करताहै ॥ १५५

ताम्राष्टक ।

हिंगु व्योषं मधुकरुचकं तिंतिणीक्षारताम्रं
सर्वं चैतन्मसृणमृदितं पीतमुष्णोदकेन ।
क्षिप्रं शूलं क्षपयति नृणां तीव्रपीडासमेतं
ध्वांतं भानोरिव समुदयः साधु ताम्राष्टकं हि ॥ १५६ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, महुआ, लवण, इमलीका खार और ताम्रभस्म इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एक दिनतक खूब बारीक खरल करके कपडछान करलेवे । फिर इसको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे गरम जलके साथ सेवन करे । शूलरोगियोंके अत्यन्त तीव्र वेदना युक्त शूलको यह रस इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेताहै जैसे सूर्यका प्रकाश अन्धकारको । यह ताम्राष्टक रस शूलरोगियोंके लिये बहुत अच्छा है ॥ १५६ ॥

बडवानलगुटिका ।

तालं ताप्यं कनककुनटीकांतगंधार्कसूतै-
स्तुल्यांशैस्तैररुणमधुरं दीप्यकं सर्वतुल्यम् ।

एतैः सर्वैस्त्रिकटु च समं कज्जलीकृत्य सर्वं
हिंग्वंभोभिर्मुनिमितदिनैर्भावयेत्सप्तकृत्वः ॥ १५७ ॥
जयंत्याःकाकमाच्याश्च निर्गुंड्याश्चार्द्रकस्य च ।
स्वरसैर्भावयेत्पिष्ट्वा सकृदेव दिनेदिने ॥
कर्त्तव्या मरिचैस्तुल्या छायाशुष्कास्तु गोलिका। १५८
हंत्येषा वडवानलाख्यगुटिका संसेवितोष्णांबुना
सर्वं शूलगदं कृमिं च सकलं वैषम्यवृत्तिं क्षुधः ।
मंदाग्निं ग्रहणीगदं श्वयथुरुक्पाण्डुं च गुल्मार्शसी
वातश्लेष्मगदं तथोदररुजं श्वासं च कासं ज्वरम् १५९

शुद्ध हरताल, सोनामाखीकी भस्म, धतूरेके बीज, शुद्ध मैनसिल, कान्तलोहभस्म, गन्धक, ताम्रभस्म, पारा और लाल वत्सनाभ ये सब समान भाग, अजमोद सबकी बराबर और इन समस्त औषधियोंके बराबर त्रिकुटा लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे । फिर सबको एकत्र खरल करके हींगके रसमें ७ दिनतक ७ बार भावना देवे । इसके पश्चात् अरणी, मकोय, निर्गुण्डी और अदरख इन प्रत्येकके स्वरसमें एक २ दिनतक भावना देकर खूब बारीक खरल करके काली मिरचके बराबर छोटी २ गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । ये गोलियाँ मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके शूल, कृमिरोग, क्षुधाकी विषमता, मन्दाग्नि, संग्रहणी, सूजन, पाण्डुरोग, गुल्म, अर्श, वातकफजन्य रोग, उदरसम्बन्धी रोग, श्वास खासी, और ज्वर इन सब व्याधियोंको शीघ्र नष्ट करती हैं ॥ १५७–१५९ ॥

अग्निकुमाररस ।

रसगंधकयोः कृत्वा कज्जलीं तुल्यभागयोः ।
पादांशममृतं दत्त्वा शुक्तिभस्म कलांशकम् ॥१६०॥
हंसपादीरसैः सम्यङ् मर्दयित्वा दिनत्रयम् ।
स्थूलगोलं ततः कृत्वा परिशोष्य खरातपे॥ १६१ ॥
निरुध्य वालुकायंत्रे क्रमपुष्टेन वह्निना ।
पचेदेकमहोरात्रं स्वतःशीतं विचूर्ण्य च ॥ १६२ ॥
तुल्यांशममृतं दत्त्वा मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ।
विलिप्यस्थालिकामध्येततोन्यस्थालिकोदरे ॥ १६३ ॥
पलार्धममृतं क्षिप्त्वा रसस्थालीं च तन्मुखे ।
न्युब्जां दत्त्वा दृढं रुद्ध्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः१६४॥
यामं प्रज्वालयेदग्निं विचूर्ण्य तदनंतरम् ।
करण्डके विनिक्षिप्य स्थापयेदातियत्नतः ॥ १६५ ॥
रसो ह्यग्निकुमाराख्यो दिष्टो मंथानभैरवैः ॥ १६६॥
हन्यादत्यग्निमांद्यं ज्वररुजमखिलं वातजातं क्षयार्तिं
शोफाढ्यंपाण्डुरोगंकफजनितगदान्प्लीहगुल्मंगुदार्तिम् ।
सर्वांगीणं च शूलं जठरभवरुजं खंजतां पंगुलत्वं
सर्वांश्चासाध्यरोगान्हरिरिव दुरितं रक्तगुल्मं वधूनाम्१६७

पारे और गन्धकको चार २ तोले लेकर दोनोंको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । उसमें शुद्ध मीठा तेलिया २ तोले और सीपकी भस्म ६ मासे डालकर लाल लज्जालुके रसके साथ ३ दिन तक खरल करके गोला बनालेवे । उसको

---

१ शुल्वभस्मेत्यन्यपुस्तकस्थः पाठोपि साधुः ।

तेज धूपमें सुखाकर सम्पुटमें बन्द करके वालुकायन्त्रमें क्रमसे मन्द, मध्य और तीक्ष्ण अग्नि देते हुए २४ घंटे तक पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करके उसमें समान भाग शुद्ध मीठा तेलिया डालकर अदरखके रसके साथ खरल करके कल्क करलेवे। फिर ताँबेके एक कटोरेमें उस कल्कका लेप करके सुखालेवे और ताँबेके दूसरे कटोरेमें २ तोले शुद्ध मीठा तेलिया रखकर उसके ऊपर रसके कल्कका कटोरा उलटा करके ढकदेवे और उस सम्पुटकी सन्धियोंको बन्द करके चूल्हेपर चढाकर १ प्रहर तक अग्नि जलावे। स्वांगशील होनेपर सम्पुटमेंसे रसको निकालकर खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको अग्निकुमार रस कहते हैं। श्रीमन्थानभैरव नामक योगीने इसको वर्णन किया है। इस रसके सेवन करनेसे अत्यन्त मन्दाग्नि, सब प्रकारके ज्वर, वातव्याधि, क्षयरोग, सूजन, पाण्डुरोग, कफजन्यरोग, प्लीहा, गुल्म, अर्श, सर्वशरीरगत शूल, उदरसम्बधी रोग, खंजता और पंगुता ये सब रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह रस सर्व प्रकारके असाध्य रोगों और स्त्रियोंके रक्तगुल्मको इस प्रकार विनाश करदेता है, विष्णुभगवान्की सेवा करनेसे सम्पूर्ण पाप तत्काल नष्ट होजाते हैं॥ १६०–१६७ ॥

शूलहरक्षार।

वंध्या लांगलिकामूलं शंखं तु द्विगुणं तयोः ।
त्रयाणां भावयेच्चूर्णं त्र्यहं जंबीरजद्रवैः ॥ १६८ ॥
रुंध्याद् गजपुटे पच्यात्तत्क्षारं मारिचैर्घृतैः ।
कर्षमात्रं पिबेच्छूली तत्क्षणात्सुखमाप्नुयात् ॥ १६९ ॥

बाँझककोडेका कन्द ४ तोले, कालिहारीका कन्द ४ तोले और शंखका चूर्ण ८ तोले लेकर तीनोंको एकत्र पीस-

कर जम्बीरी नींबूके रसमें ३ दिन तक भावना देवे। फिर उसको गोला बनाकर सम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करके रखलेवे। इस क्षारको एक २ कर्ष परिमाण, मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे शूलरोगी तत्काल शूलकी पीडासे मुक्त होकर आरोग्य लाभ करताहै ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

क्षारवटी।

अमृतं मेघभस्माथ शंखं चिंचासुभास्करम्।
क्रमाद्द्विगुणितं कृत्वा तत्तुल्यं च कटुत्रयम् ॥ १७० ॥
तुलसीभृंगराजोत्थमातुलुंगार्द्रकद्रवैः।
भावितं बहुशश्चूर्णं रजो वा गुटिकापि वा ॥ १७१ ॥
गुंजामात्रं तु सेवेत गुल्मशूलान्विनाशयेत्।
मंदाग्निं ग्रहणीमर्शों रक्तगुल्ममरोचकम् ॥
एषा क्षारवटी नाम्ना कृशदेहेषु युज्यते ॥ १७२ ॥

शुद्ध वत्सनाभ १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोले, शंखभस्म ४ तोले, इमलीका खार ८ तोले, ताम्रभस्म १६ तोले और त्रिकुटेका चूर्ण ३१ तोले लेवे। सबको एकत्र खरल करके तुलसी, भाँगरा, बिजौरानींबू और अदरख इन औषधियोंके रसमें क्रमसें एक २ दिन तक भावना देकर गोलियाँ बनालेवे अथवा सुखाकर चूर्ण करलेवे। इस वटी या क्षारको एक २ रत्ती परिमाण प्रतिदिन सेवन करनेसे गुल्म, शूल, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अर्श, रक्तगुल्म, अरुचि आदि समस्त रोग नाश होते हैं। यह क्षारवटी दुर्बल मनुष्योंको सेवन करानेसे उनका विशेष उपकार करती है ॥ १७०–१७२ ॥

सामान्य उपाय ।

शंबूकं त्र्यूषणं पंच लवणानि मृतायसम् ।
समांशं पेषयेन्मूत्रैः कृष्णाजस्य दिनावधि ॥
भक्षयेत्कर्षमात्रं तु परिणामाख्यशूलनुत् ॥ १७३ ॥
इंद्रवारुणिकामूलं कटुत्रयसमान्वितम् ।
पिबेदुष्णांबुना हंति शूलमत्यंतदुःसहम् ॥ १७४ ॥
भूदारुवटमूलं च शूलजित्कोष्णवारिणा ॥ १७५ ॥
सद्योभवं हरेच्छूलं लवणं वारनालकैः ।
घृतेन सैंधवं वाऽथ उष्णतोयैः सुवर्चलम् ॥ १७६ ॥

शंखभस्म, त्रिकुटा, पाँचोंनमक, लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर काले बकरेके मूत्रमें एक दिनतक खरल करके सुखालेवे । इस औषधको प्रतिदिन एक २ कर्ष परिमाण सेवन करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है । अथवा इन्द्रायनकी जड और त्रिकुटेके चूर्णको समान भाग लेकर उष्ण जलके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त दारुण शूल शमन होताहै । या कालीजीरी, देवदारु और बडकी जड इन तीनोंके समान भाग चूर्णको गरम जलके साथ व्यवहार करे तो शूलरोग दूर होताहै । अथवा काँजीके साथ समुद्रनमकको या घीके साथ सैंधे नमकको किम्वा उष्ण जलके साथ काले नमकके चूर्णको सेवन करनेसे शूलरोग तत्काल नष्ट होताहै ॥ १७३–१७६ ॥

काश्यरोग (दुर्बलता) ।

अमृतार्णव रस ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
सर्वांशममृतासत्त्वं सितामध्वाज्यमिश्रितम् ॥१७७॥

दिनैकं मर्दयेत्खल्वे माषैकं भक्षयेत्सदा ।
कृशानां कुरुते पुष्टिं रसोयममृतार्णवः ॥ १७८ ॥
अश्वगंधापलार्धं च गवां क्षीरैः पिबेदनु ॥ १७९ ॥

पारेकी भस्म ३ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग और गिलोयका सत्त्व सबकी बराबर भाग लेकर सबको एकत्र एक दिनतक खरल करे । फिर उसको प्रतिदिन एक २ मासे परिमाण लेकर मिश्री, घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे । यह अमृतार्णवरस कृश मनुष्योंके शरीरको अत्यन्त पुष्ट करताहै । इस रसको सेवन करनेके पश्चात् दो तोले असगन्धके चूर्णका गोदुग्धके साथ अनुपान करे ॥ १७७-१७९ ॥

पूर्णचन्द्र रस ।

मृतसूताभ्रलोहं च शिलाजतु विडंगकम् ।
ताप्यं क्षौद्रं घृतं तुल्यमेकीकृत्य विमर्दयेत् ॥१८०॥
पूर्णचंद्ररसो नाम्ना माषैकं भक्षयेत्सदा ।
शाल्मलीपुष्पचूर्णं च क्षौद्रैः कर्षं पिबेदनु ॥ १८१ ॥
दुर्बलो बलमाप्नोति मासेकेन यथा शशी ।
कृशानां बृंहणं देयं सर्वं पानान्नभेषजम् ॥
निद्रा चैव दिवारात्रौ छागमांसाशनं तथा ॥ १८२ ॥

रससिन्दूर, अभ्रक, लोहभस्म, शिलाजीत, वायविडंग और सोनामाखीकी भस्म सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । इसको पूर्णचन्द्ररस कहते हैं । इस रसको प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण मधु और घृतके साथ भक्षण करे और ऊपरसे

---

१ मूलके अनुसार तुल्यभाग घृत और मधु मिला मर्दन करना ऐसा अर्थ होताहै ।

निर्दिष्टोऽग्निकुमारको रसवरो देव्या तथा नंदिना
सेव्यो वैद्ययशःप्रभूतफलदश्चानाहविध्वंसनः ।
सद्यः पाचनदीपनो रुचिकरः शीघ्रं तथाष्ठीलिकां
सामां च ग्रहणीं हरेत्कफरुजः कंठामयध्वंसनः॥१९६॥
बल्यो भोजनतोयभक्ष्यसुखदः श्रेष्ठो रसानां प्रभु-
र्मन्दाग्निं कफवातजं क्षयगदं निःशेषशूलामयान् ।
श्वासं कासगदं तथा कफरुजं स्थौल्यं च पाण्डुं तथा
शोफं वातगदं तथा खलु रतीतुल्योऽर्धपर्णान्वितः१९७
कणया सितयाज्येन दातव्योऽसौ महारसः ।
प्रत्यष्ठीलादिरोगेषु जलकूर्मगदेषु च ॥
नंदिना तु पुनः प्रोक्तस्तत्तद्रोगहरौषधैः ।
निहंति सकलान्रोगान्दुष्पत्नीव मनोरथान् ॥१९८॥
रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मंदवातः ।
तरुणदधिसिताक्तं नारिकेलीफलांभो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ १९९ ॥
सौभाग्यं मेघनादांघ्रिसितामधुकचंदनम् ।
तुषोदकेन दातव्यं सर्वस्मिन् रसवैकृते ॥ २०० ॥
छर्द्यां तृष्णासु दातव्यं कापित्थं वा सितान्वितम् ।
कुमारीगिरिलेपश्च सर्वांगीणः प्रशस्यते ॥ २०१ ॥
क्षीरं मधुसितोपेतं क्वाथो वाऽमृतबंधुकः ।
उपचारा अमी सर्वे प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥२०२॥

रसस्याग्निकुमारस्य प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः ।
गिरिजा नंदिकेशो वा यद्वा नारायणः स्वयम् ॥ २०३ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको दो २ कर्ष दो २ तोले लेकर एक दिनतक एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । उसमें एक कर्ष शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर लज्जालुका ८ तोले परिमाण बारम्बार थोडा २ रस डालकर खूब बारीक खरल करे । फिर गोला बनाकर सुखालेवे । इसके पश्चात् देवीशास्त्रोक्त विधिके अनुसार काँचकी आतशी । शीशीमें प्रथम १ कर्ष शुद्ध वत्सनाभके चूर्णमेंसे आधा चूर्ण डालकर उसके ऊपर उक्त गोलेको रक्खे और वत्सनाभका शेष आधा चूर्ण गोलेके ऊपर रखकर शीशीके मुँहको शुद्ध ताँबेके पत्रोंकी डाट बन्द करलेवे । फिर शीशीके ऊपर दो दो अँगुल ऊँची कपरौटी करके धूपमेंसुखाकर उसको बालुयंत्रमें रक्खे । उस यंत्रमें इतना रेता भरे कि शीशीका गला रेतेसे बाहर निकला रहे । फिर उक्त यन्त्रका मुँह बन्द करके उसको चूल्हेपर चढाकर डेढ दिन (३६ घंटे) तक क्रम २ से अग्निकी वृद्धि करता हुआ पकावे । स्वांगशीतल होनेपर शीशीमेंसे गोलेको निकालकर ताम्रपत्रोंसहित खरल करलेवे । इसके पश्चात् उसमें मिरचोंका चूर्ण २ तोले और वत्सनाभका चूर्ण ६ मासे डालकर एक दिनतक खूब बारीक खरल करके सुंदर शीशीमें भरकर रखदेवे । किन्तु इस विषयमें नन्दिनामक आचार्यका मत है कि ताम्रपत्रों सहित समस्त रसकी बराबर मिरचोंका चूर्ण और वत्सनाभविष एक कर्ष परिमाण चूर्ण करके मिलाना चाहिये । इस अग्निकुमार नामक उत्तम रसको श्रीपार्वती देवीक निर्दिष्ट करनेके पश्चात् श्रीनन्दि नामक आचार्यने वर्णन किया है । यह रस सभी मनुष्योंके

---

१ हसराज ।

सेवन करने योग्य है। वैद्योंके लिये अतुल यश और प्रभूत फलके देनेवाला है । यह रस अफारेको नष्ट करनेवाला, तत्काल पाचक. अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, तथा अष्ठीलिका, आमयुक्त संग्रहणी, कफजनित व्याधि और कण्ठगत समस्त रोगोंको विनाश करनेवाला है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त बलकारक, तथा खान पान भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंमें रुचि उत्पन्न कर सुखप्रदान करनेवाला है । यह श्रेष्ठ रस सम्पूर्ण रसोंका राजा है। अतएव मन्दाग्नि, कफ और वातजन्य रोग, क्षयरोग, सब प्रकारके शूलरोग, खाँसी, श्वास, कफके रोग, स्थूलता, पाण्डुरोग, सूजन, वातव्याधि आदि सम्पूर्ण रोगोंको समूल नष्ट करता है । आधे पानमें रखकर खानेसे यह अत्यन्त कामोद्दीपन करता है। प्रत्यष्ठीलादि वातरोगोंमें और देशदेशान्तरोंके जलदोषसे उत्पन्न हुए रोगोंमें इस रसको पीपलका चूर्ण, मिश्री और घृतमें मिलाकर देना चाहिये श्रीनन्दि आचार्यका मत है कि इस रसको भिन्न भिन्न रोगोंमें तत्तद्रोगनाशक औषधियोंके अनुपानोंके साथ सेवन करानेसे यह रस सब प्रकारकी व्याधियोंको इस प्रकार शीघ्र ध्वंस करदेताहै, जैसे दुराचारिणी स्त्री मनोरथोंको निष्फल करदेती है । इस रसके सेवन करनेसे शरीरमें दाह होनेपर शीतल जलसे स्नान करना, चन्दन और कपूरका लेप करना; शीतल, मन्द, सुगन्ध वायुका सेवन करना, ताजे दहीमें मिश्री मिलाकर खाना, नारियलका जल पीना, मधुर और शीतल पदार्थोंका पान करना, इत्यादि सब प्रकारके शीतल उपचार करने चाहिये रसजनित सम्पूर्ण विकारोंमें सुहागा, चौलाईकी जड, मिश्री, मुलैठी और चन्दन इन सबको समान भाग लेकर काँजीमें पीसकर सेवन करे । यदि इस रसके सेवनसे वमन होती हो

अथवा अत्यंत तृषा लगती हो तो कैथके रसको मिश्री मिलाकर पान करावे और रोगीके समस्त शरीरमें घीग्वारके गूदेका लेप करे। एवं मधु और मिश्री मिलाकर दुग्ध पान करावे अथवा गिलोय और दुपहरियाके पञ्चाङ्गका काढा पिलावे। इस रसके सेवन करनेसे सन्तप्त हुए मनुष्योंके लिये ये सभी उपचार उपयोगी हैं। इस अग्निकुमार रसके प्रभावको यथार्थ रूपसे शिव और पार्वती अथवा विष्णु भगवान् जानते हैं ॥ १८९–२०३॥

अम्लपित्त रोग।

अम्लोद्गारवमी हस्तपादहृत्कुक्षिदाहता।
अम्लपित्ते मुखं तिक्तं भवेच्छूलमरोचकम् ॥ २०४ ॥

अम्लपित्त रोगमें–खट्टी डकारोंका आना वमन होना, हाथ, पाँव, हृदय और कुक्षि (कोख) स्थानमें जलन होना, मुँहमें कड़ुवापन, शूल और अरुचि इत्यादि लक्षण होते हैं ॥ २०४ ॥

लीलाविलास रस।

शुद्धसूतं शुद्धगंधं मृतं ताम्राभ्रशौल्बकम्।
तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ २०५ ॥
अक्षधात्रीहरीतक्या क्रमवृद्ध्या विपाचयेत्।
जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥ २०६ ॥
अनेन भावयेत्सर्वं पूर्वसूतं पुनःपुनः।
पंचविंशतिवारं च तावता भृंगजैर्द्रवैः ॥ २०७ ॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पंचगुंजं मधुप्लुतम्।
रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति ॥२०८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म अभ्रक भस्म, और चॉदीकी भस्म सबको समान भाग लेकर ३ घंटे तक एकत्र खरल करके सम्पुटमें बन्द करके कुक्कुट पुटके द्वारा लघुपुट देवे। फिर बहेडा १ भाग, आमले २ भाग और हरड ३ भाग लेकर तीनों को अठगुने जलमें पकाकर अष्टमांशावशिष्ट क्काथ बनावे। इस क्काथके साथ उपर्युक्त रसको क्रमसे २५ बार भावना देवे। फिर इसी प्रकार भॉगरेके रसमें २५ बार भावना देकर सुखा लेवे। और बारीक चूर्ण करके रखलेवे। इस रसको प्रतिदिन पॉच २ रत्ती परिमाण, शहदमें मिलाकर सेवन करे। इसके सेवनसे अम्लपित्तरोग शीघ्र दूर होताहै ॥ २०५-२०८ ॥

ताम्रद्रुति रस ।

पलं नैपालशुल्बस्य पत्राणि सुतनूनि च ।
कृत्वा कंटकवेध्यानि कारयेत्तदनंतरम् ॥ २०९ ॥
कर्षैकं द्विगुणं ग्राह्यं क्रमात्सूतकगंधयोः ।
मर्दितव्यं शिलाखल्वे रसैर्दंतशठस्य वै ॥ २१० ॥
तत्कल्कं पंकवत्कृत्वा तेन पर्णानि सर्वशः ।
लेपयित्वा शिलाखल्वे स्थापयेदातपे खरे ॥ २११ ॥
यामैकेन समुद्धृत्य द्रवीभवति नान्यथा ।
वांतिं विरेचनं कृत्वा शुद्धकायो यथाविधि ॥ २१२ ॥
पूजयित्वा सुरान्वैद्यान्विप्रान्हेमांबरादिभिः ।
तां द्रुतिं मधुसर्पिभ्यां रक्तिकामाषकादिभिः ॥ २१३ ॥
लीढ्वा तत्र पिबेत्तक्रं धान्याम्लकमथापि वा ।
जीर्णे सायं समश्नीयाच्छाल्यन्नं तु पुरातनम् ॥ २१४ ॥

सेव्यमानं निहंत्येतदम्लपित्तं सुदारुणम् ।
कासं क्षयं तथा शोषमर्शांसि ग्रहणीं तथा ॥२१५॥
कामलां पाण्डुरोगं च कुष्ठान्येकादशैव च ।
रक्तपित्तं सखालित्यं शूलं चैवोदराणि च ॥ २१६ ॥
वातरोगं प्रतिश्यायं विद्रधिं विषमज्वरम् ।
संतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनम् ॥ २१७ ॥
ताम्रवत्कुरुते देहं सर्वव्याधिविवर्जितम् ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं द्वितीय इव भास्करः ॥ २१८ ॥

४ चार तोले नैपाली ताँबेके सूक्ष्म और कंटकवेधी पत्र करले, फिर पारा १ तोला और गन्धक २ तोले लेकर दोनोंको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे । उस कज्जलीको पत्थरके खरलमें डालकर जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर कीचडकी समान कल्क करलेवे । उस कल्कका उक्त ताम्रपत्रोंके ऊपर लेप करके उनको पत्थरके खरलमें रखकर तीक्ष्णधूपमें तपावे। इसप्रकार एक प्रहरतक तपानेसे ताँबेकी द्रुति होजाती है । किन्तु इससे अल्पसमयमें द्रुति होना असम्भव है । फिर उसको खरलमेंसे निकालकर शीशीमें भरकर रखदेवे । रोगी प्रथम वमन, विरेचनादिके द्वारा यथाविधि शरीरकी शुद्धि करके फिर देव, ब्राह्मण और वैद्योंको वस्त्राभरणादिसे पूजकर इस द्रुतिको सेवन करे । इसको प्रतिदिन एक रत्तीसे लेकर ८ रत्तीतक अपने बलाबलके अनुसार उपयुक्त मात्रासे शहद और घृतमें मिलाकर सेवनकरे और ऊपरसे छाछ अथवा काँजीका अनुपान करे । इस औषधिके जीर्ण होजानेपर सायं-कालमें रोगीको पुराने शालिचावलोंके भातकाभोजन करना चाहिये । इस प्रकार निरन्तर सेवन करनेसे यह द्रुति दारुण

अम्लपित्त रोग, खाँसी, क्षय, शोष, अर्श, संग्रहणी, कामला, पाण्डुरोग, ११ प्रकारके कुष्ठ, रक्तपित्त, खालित्य, शूल, उदररोग, वातरोग, प्रतिश्याय, विद्रधि, विषमज्वर आदि समस्त व्याधियोंको नष्ट करती है । एवं वली और पलितरोग दूर होताहै । यह द्रुति रोगीको सम्पूर्ण आधिव्याधियोंसे मुक्त करके उसके शरीरको ताम्रके समान दृढ और कान्तिमान् करदेती है इस औषधका सदैव अभ्यास करनेसे मनुष्य १०० वर्ष पर्यन्त जीता है और दूसरे सूर्यके समान तेजवान होता है ॥ २०९–२१८ ॥

कूष्माण्ड खण्डलेह ।

कूष्माण्डोत्थरसस्य सत्पलशतं तुल्यं गवां क्षीरकं-धात्रीचूर्णपलाष्टकं लघु पचेद्यावद्रवेत्पिण्डितम् । धात्री-तुल्यसितं पलार्धममृतं तल्लेपकं लेहयेत् ख्यातं कूष्मा-ण्डखण्डं क्षपयातिनितरामम्लपित्तं समग्रम्॥ २१९ ॥

पेठेका स्वरस १०० पल और गायका दूध १०० पल लेकर दोनोंको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । पकाते-समय उसमें ८ पल आमलोंका चूर्ण डालदेवे । जब वह पककर मावा (खोवाके) समान गाढा होजाय तब ८ पल मिश्रीकी चासनी बनाकर उसमें वह मावा और दो तोले शुद्ध वत्सनाभ डालकर अवलेह बनालेवे । इसको कूष्माण्डखण्डलेह कहते हैं । इस अवलेहको नित्य नियमपूर्वक सेवन करनेसे सब प्रकारका अम्लपित्तरोग शीघ्र नष्ट होताहै ॥ २१९ ॥

सामान्य उपाय ।

अम्लपित्ते तु वमनं तदंते मृदु रेचनम् ।
ऊर्ध्वगं वमनैर्हन्यादधोगं रेचनैर्जयेत् ॥ २२० ॥

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि प्रकल्पयेत् ।
अम्लपित्ते च वमनं पटोलारिष्टवारिभिः ॥
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलैर्भवेत् ॥ २२१ ॥

अम्लपित्त रोगमें प्रथम वमन करावे, फिर हलकासा जुल्लाब देवे। ऊर्ध्वगत अम्लपित्त हो तो उसको वमनके द्वारा और अधोगत अम्लपित्त हो तो विरेचनके द्वारा दूर करनेका उपाय करे। इसके अतिरिक्त तिक्त (कडवे) रसवाले पदार्थोंका आहार विहार करे तथा स्वरस, क्राथ आदिभी तिक्त रसवाली औषधियोंके ही सेवन करे । अम्लपित्तमें पटोलपात और नीमके पत्तोंके रससे वमन करावे और निसोथके चूर्ण अथवा मुलैठी और आमलोंके चूर्ण द्वारा विरेचन करावे॥२२०॥२२१॥

पित्तरोग ।

पित्तान्तक रस ।

मृतसूताभ्रमुण्डार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।
गंधकं च भवेत्तुल्यं यष्टीद्राक्षाऽमृताद्रवैः ॥ २२२ ॥
जलमण्डपिकावासाद्रवैः क्षीरविदारिजैः ।
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे सिताक्षौद्रयुता वटी ॥ २२३ ॥
निष्कमात्रं निहंत्याशु पित्तं पित्तज्वरं क्षयम् ।
दाहं तृष्णां भ्रमं शोषं वेगात्पित्तांतको रसः ॥२२४॥
सिता क्षीरं पिबेच्चानु यष्टीं सितान्वितां जलैः ।
पिबेद्वा पित्तशांत्यर्थं शीततोयेन चंदनम् ॥ २२५ ॥

पारद भस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म सोनामाखीकी भस्म, हरतालभस्म और शुद्ध गन्धक इन

सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करले। फिर मुलेठी, दाख, गिलोय, जलकुम्भी, अडूसा और क्षीरविदारीकन्द इन औषधियोंके रसमें उस चूर्णको क्रमसे एक २ दिन तक घोट-कर चार २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करे यह रस पित्त, पित्तजन्य ज्वर, क्षय, दाह, तृषा, भ्रम, शोष, आदि सम्पूर्ण विकारोंको शीघ्र नष्ट करता है। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् दूधमें मिश्री डालकर पान करे, अथवा मुलेठीका जलके द्वारा कल्क बनाकर वस्त्रमें उसका रस निचोडकर उस रसको मिश्री डालकर पान करे। अथवा पित्तको शान्त करनेके लिये चन्द-नको शीतल जलमें घिसकर पान करे ॥ २२२–२२५ ॥

दशसारचूर्ण।

यष्टी द्राक्षा फलं धात्र्या एला चंदनवालकम्।
मधूकपुष्पं खर्जूरं दाडिमं पेषयेत्समम् ॥ २२६ ॥
सर्वतुल्या सिता योज्या पलार्धं भक्षयेत्सदा।
दशसारमिदं ख्यातं सर्वपित्तविकारजित् ॥ २२७ ॥
मेहतृष्णाऽरतीश्चैव दाहं मूर्च्छां ज्वरं जयेत् ॥ २२८ ॥

मुलैठी, दाख, आमले, इलायची, चन्दन, सुगन्धवाला, महुवेके फूल, खजूर और दाडिमी सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवे। इसको दशसार चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण प्रतिदिन दो २ तोले परिमाण सेवन करनेसे सब प्रकारके पित्तके विकारोंको दूर करता है, तथा प्रमेह, तृषा, अरुचि, दाह, मूर्च्छा, ज्वर आदि अनेक रोगोंको शमन करता है ॥ २२६–२२८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

उदररोग ।

उदरं सजलं यस्य सदोषं वलिवर्जितम् ।
श्वयथुः पादयोः शोफः स्याज्जलोदरलक्षणम् ॥ १ ॥
उदरं वातसंपूर्णं सव्यथं च कृशांगता ।
मुहुर्मुहुः श्वसित्येव तद्वातोदरलक्षणम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यका पेट पानीसे भरा हुआ और वातादि दोषोंसे युक्त दिखाई दे तथा जिसके उदरमें बली न पडती हों और समस्त शरीरमें विशेषकर पैरों पर सूजन हो तो जलोदरके लक्षण जानने चाहिये । यदि रोगीका पेट वायुसे फूला हुआ हो, उदरमें पीडा होती हो, सम्पूर्ण अंग दुर्बल होते चले जातेहों और रोगी बारम्बार अधिक श्वास लेता हो तो वातोदरके लक्षण जानने चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

उदरघ्न रस ।

जीमूतलोहरसगंधशिलालताभ्रव्योषाग्निकुष्ठ मुशली-विषदीप्यचूर्णम् । निंबूकनीरलुलितं गुटिकीकृतं तद्भुक्तं निशासु मधुना सकलोदरघ्नम् ॥ ३ ॥

अभ्रक भस्म, लोह भस्म, पारा, गन्धक, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल, ताम्र भस्म, त्रिकुटा, चीता, कूठ, मुसली, शुद्ध वत्सनाभ और अजमोद इन औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । फिर नींबूके रसमें घोटकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको प्रतिदिन रात्रिमें मधुके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारका उदर-रोग नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

विनोदविद्याधर रस ।

रसेंद्रबलिटंकणैः सजयपालबीजैः समैः ।
रसः सुमृदितो भवेत्खलु विनोदविद्याधरः ॥ ४ ॥
पयोगुडयुतो हरेत्सकलरेचनीयामया ।
ज्ज्वरं च जठरामयान्गुदगदं सशूलं नृणाम् ॥ ५ ॥
सम्यग्विरेचनाभावे मुद्गक्काथं पिबेदनु ।
भेदाधिक्ये पिबेत्तक्रं बब्बूराणां त्वचो रसम् ॥ ६ ॥

पारा, गन्धक, सुहागा और जमालगोटेके बीज इन सबको समान भाग लेकर एक दिनतक खरल करके खूब बारीक चूर्ण करलेवे। जो रोग केवल जुलाब लेनेसे ही शान्त होजाते हैं, उन रोगोंमें इस विनोदविद्याधर रसका प्रयोग करना अत्यन्त उपयोगी है। इस रसको उपयुक्त मात्रासे सेवन कर ऊपरसे गुड मिलाकर दुग्धपान करे। इसके सेवनसे जुलाब होकर सब विकार दूर होजाते हैं। यह रस मनुष्योंके ज्वर, उदररोग, अर्श और शूलकी पीडा इन सब रोगोंको नष्ट करता है। इस रसके सेवन करनेपर यदि अच्छे प्रकारसे दस्त न हों तो मूँगकी दालका यूष पान करे। और विरेचनके अधिक होनेपर तक्र अथवा बबूलकी छालका क्वाथ पान करे ॥ ४-६ ॥

सुरेचनक रस।

अष्टौ निस्तुषदंतिबीजमपि चेच्छुंठ्यास्त्रयो गंधका-
द्द्वौ च द्वौ मरिचस्य टंकणरसं चैकैकभागं पृथक् ।
गुंजामात्रमिदं सुरेचनकरं देयं च शीतांबुना
शोफं गुल्मजलोदरं प्रशमयेत्प्लीहामयघ्नं परम् ॥ ७ ॥

छिल्के रहित । और शोधित जमालगोटे ८ तोले, सोंठ ३ तोले, शुद्ध गन्धक २ तोले, मिरच २ तोले; सुहागा १ तोला और शुद्ध पारा १ तोला लेकर सब औषधियोंको एकत्र चूर्ण करके खूब बारीक खरल करलेवे । इस रसको आवश्यकता पडनेपर शीतल जलके साथ एक २ रत्ती परिमाण देवे । इसके सेवनसे अच्छे प्रकार जुलाब होकर शोथ, गुल्म, जलोदर, प्लीहा आदि व्याधियाँ शमन होजाती हैं ॥ ७ ॥

मृत्युञ्जय रस ।

द्विक्षारं त्र्यूषणं पंचलवणं शतपुष्पिकाम् ।
समभागमिदं सर्वं पटचूर्णं समाचरेत् ॥ ८ ॥
तत्समौ रसगंधौ च कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ।
सर्वमेकत्र संमेल्य मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ९ ॥
अयं मृत्युंजयो नाम्ना रसः शीघ्रफलप्रदः ।
कथितो मलयार्येण संनिपातहरः परः ॥ १० ॥
सन्निपाते प्रयोक्तव्यो रक्तिकापंचमात्रकः ।
चित्रकार्द्रकसिंधूत्थकटुभिर्वा समन्वितः ॥ ११ ॥
पीततोयं त्रिदोषार्तं निर्वाते वासयेत्ततः ।
पथ्यं दध्योदनं देयं याचमानाय नान्यथा ॥
गुणो न जायते यस्य तस्य देयो रसः पुनः ॥ १२ ॥
हन्याद्वातगदं तथा कफगदं मन्दानलत्वं ज्वरं
शूलं सर्वमहामयाञ्जठरजां पीडां यकृत्पाण्डुताम् ।
शोफं गुल्मरुजं तथा ग्रहणिकां प्लीहामयं विड्ग्रहं
वांतिं गुल्मकृतां सकासमभितः श्वासं च हिक्कामपि १३

१ रसगन्धाभ्यामिति पाठः ।

आदौ सर्वोदराणां च देयमुक्तं विरेचनम् ।
गोमूत्रैर्वाऽथ गोक्षीरैर्योज्यमेरण्डतैलकम् ॥ १४ ॥
कर्षमात्रं प्रयत्नेन शुद्धे देयो रसः पुनः ॥ १५ ॥

दोनों खार (जवाखार, सज्जी) त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल), पांचों नमक और सोंफ ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेकर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे। फिर समस्त चूर्णके बराबर समान भाग पारा और गन्धक लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे। उस कज्जलीमें उक्त चूर्णको मिलाकर तीन दिन तक अच्छे प्रकारसे। खरल करे मृत्युञ्जय नामक रसको श्रीमलयार्य नामक विद्वान्ने वर्णन किया है। यह रस-शीघ्र शुभफल प्रदान करनेवाला और सन्निपातको हरनेवाला है। इसको सान्निपातमें पांच २ रत्ती परिमाण लेकर चीता, अदरख, सैंधानमक और मिरच इन चारोंके समान भाग चूर्ण अथवा क्काथके साथ प्रयोग करे। सान्निपात रोगीको यह रस सेवन कराकर ऊपरसे थोडासा शीतल जल पिलादेवे और वातरहित स्थानमें रक्खे। इस रसके सेवन करनेपर जब रोगी भोजन मांगे तब उसको दही, भातका पथ्य देवे। यदि उपयुक्त मात्रामें इस रसके देनेसे रोगीको कोई असर न हो तो उसको उतनेही परिमाणमें यह रस फिर देवे। यह रस-वातसम्बन्धी और कफ-सम्बन्धी सम्पूर्ण रोग, मन्दाग्नि, ज्वर, शूल, बडी २ दारुण व्याधियां उदरसम्बन्धी सब रोग और पीडा, यकृत् विकार, पाण्डुरोग, शोथ, गुल्मरोग, खाँसी, श्वास, हिचकी, संग्रहणी, प्लीहा, मलबद्धता, और गुल्मके, द्वारा उत्पन्न हुई वमन इत्यादि सम्पूर्ण रोगोंको समूल नाश करता है। सर्व प्रकारके उदर रोगोंमें प्रथम रोगीको गोमूत्रके साथ अथवा गोदुग्धके साथ एक तोला अण्डीका तेल पान कराकर हलका जुलाब देना

चाहिये कोठेके शुद्ध होजानेपर फिर इस रसको सेवन करावे ॥ ८-१५ ॥

त्रैलोक्यसुन्दर रस ।

शुद्धं सूतं तथा गंधं मृताभ्रं सैंधवं विषम् ।
कृष्णजीरं विडंगं च गुडूचीसत्त्वचित्रकम् ॥ १६ ॥
एला चैव यवक्षारं प्रत्येकं स्याद्रसार्धकम् ।
दिनं निर्गुंडिकाद्रावैर्बीजपूररसैर्दिनम् ॥ १७ ॥
मर्दयेच्छोषयेत्सम्यक् रसस्त्रैलोक्यसुंदरः ।
गुंजाद्वयं घृतैर्लेह्यो वातोदरकुलांतकः ॥ १८ ॥
पलमेकं चित्रमूलं द्विगोमूत्रैश्चतुर्जलैः ।
पाच्यं यावद्भवेत्कल्कं घृतं कल्कं च योजयेत् ॥ १९ ॥
पलैकं च यवक्षारं क्षिप्त्वा पक्त्वाऽवतारयेत् ।
तत्कर्षैकं पिबेच्चानु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ २० ॥

शुद्ध पारा १ तोला तथा शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सैंधानमक, शुद्ध वत्सनाभ, काला जीरा, वायविडंग, गिलोयका सत्त्व, चीता, इलायची, और जवाखार यह प्रत्येक औषधि छः२ मासे लेवे । सबको एकत्र पीसकर सिह्मालूके रसमें और बिजौरे नींबूके रसमें क्रमसे एक २ दिन तक खरल करके सुखालेवे । यह त्रैलोक्यसुन्दर रस वातजनित उदररोगको समूल नष्ट करनेवालाहै । इसको प्रतिदिन दो २ रत्ती परिमाण घृतमें मिलाकर सेवन करे । फिर चीतेकी जडका चूर्ण ४ तोले, गोमूत्र ८ तोले और पानी १६ तोले लेकर तीनों एकत्र करके पकावे जब जल सब जलजाय और कल्क मात्र शेष रहजाय तब उसमें समान भाग घृत और ४ तोल जवाखार डालकर उत्तम

प्रकारसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतको एक २ तोला परिमाण लेकर अनुपान रूपसे सेवन करे और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंका आहार करे ॥ १६–२० ॥

महावह्निरस ।

चतुःसूतस्य गंधोऽष्टौ रजनी त्रिफला शिवा ।
प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्त्र्यूषजीरकदंतिकाः ॥ २१ ॥
प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
जयंतीस्नुक्पयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २२ ॥
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक् ।
महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २३ ॥
विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैंधवम् ।
दिनांते भोजयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ॥ २४ ॥
नाभ्युत्तरे जलस्रावं कुर्याद्धंति जलोदरम् ।
सर्वोदरहरं योज्यं गुडनागरयोः पलम् ॥ २५ ॥

पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले, हल्दी २ तोले, त्रिफला २ तोले, हरड २ तोले, त्रिकुटा ८ तोले, जीरा ८ तोले, और दन्तीकी जड ८ तोले लेकर सबको एकत्र करके बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको अरणीका रस, थूहरका दूध, भाँगरेका रस, चीतेकी जडका क्वाथ और अण्डीका तेल इन प्रत्येकके साथ उत्तरोत्तर क्रमसे सात २ बार भावना देवे । इस रसको नित्य चार २ मासे परिमाण सेवन कर उष्ण जलका अनुपान करे । इसके सेवनसे जब दस्त होजायँ तब रोगीको सायंकालमें तक्रमें सैंधानमक मिलाकर उसके साथ भातका भोजन करावे । इसपर शीतल जलका उपयोग नहीं करना चाहिये । एवं

१ शिला पाठोप्यन्यत्र पुस्तके ।

नाभीके नीचेके भागमें आपरेशन करवाकर जल निकलवावे। इस प्रकार उपचार करनेसे अल्पकालमें ही जलोदर रोग दूर होजाता है। इस रसको सेवन करनेके पश्चात् १ तोला सोंठके चूर्णको तीन तोले गुडमें मिलाकर अथवा समान भाग सोंठ और गुडको खानेसे सब प्रकारके उदररोग नष्ट होते हैं॥ २१-२५॥

वैश्वानररस।

रसगंधकताम्राणि शिलाजित्कांतलोहकम्॥ २६॥
त्रिकटुश्चित्रकं कुष्ठं निर्गुंडी मुसली विषम्।
अजमोदा च सर्वेषां द्वौ द्वौ भागौ प्रकल्पयेत्॥२७॥
चूर्णीकृत्य ततः सर्वं निंबक्काथेन भावयेत्।
एकविंशत्प्रकारेण भृंगराजेन सप्तधा॥ २८॥
मधुना गुटिकां शुष्कां रजन्यां तु प्रदापयेत्।
वैश्वानराभिधो योगो जलोदरविशोषणः॥ २९॥

शुद्ध पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, शिलाजीत, कान्तलोहभस्म, त्रिकुटा, चीता, कूठ, निर्गुण्डी, मुसली, शुद्ध वत्सनाभ, और अजमोद इन सब औषधियोंको दो दो तोले लेकर एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको नीमके काढेमें २१ बार भावना देवे। फिर भाँगरेके रसमें ७ बार भावना देकर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। इन गोलियोंको उपयुक्त मात्रासे मधुमें मिलाकर रात्रिमें सेवन करावे। यह वैश्वानर रस जलोदरको शुष्क करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है॥ २६-२९॥

उदयमार्त्तण्ड रस।

पलोन्मितस्य शुल्बस्य सूक्ष्मपत्राणि कारयेत्।
तत्समं गंधकं दत्त्वा खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत्॥३०॥

जंबीररससंयुक्तं दिनं घर्मे निधापयेत् ।
ततः शुल्बे द्रवीभूते रसकर्षं नियोजयेत् ॥ ३१ ॥
तत्सिद्धमुदरे योज्यं शोफे चैव भगंदरे ।
नाम्ना तूदरमातंडरस एष प्रकीर्तितः ॥ ३२ ॥

प्रथम ४ तोले शुद्ध तांबेके बारीक कंटकवेधी पत्र बनवावे फिर ४ तोले गन्धकको नींबूके रसमें घोटकर उसमें ताम्र-पत्रोंको डालकर और नींबूका रस भरकर तीक्ष्ण धूपमें रख-देवे । इस प्रकार एक दिन तक धूपमें रखनेसे ताम्रकी द्रुति होजाती है । उसमें १ तोला पारा मिलाकर रखलेवे । इसको उदयमार्त्तण्ड रस कहते हैं । इस रसको समस्त उदररोग, सूजन और भगन्दर रोगमें प्रयोग करनेसे शीघ्र लाभ होता है ॥ ३०–३२ ॥

सूर्यप्रभागुटिका ।

भार्ङ्गीवह्निजयायुगाभ्रकदलीपाठावचारोचना-
श्चव्यं पत्रकचित्रकं त्रिकटुकं क्षारद्वयं गंधकम् ।
त्रायंतीहरबीजकेसरिविषद्वंद्वं लवंगं कणा
कुष्ठं शल्यफलं फलत्रययुतं फेनः समुद्रादपि ॥ ३३ ॥
ब्रह्मबीजं लताबीजं बालबिल्वं विरूढकम् ।
लवणानि तथा पंच जात्यादिकुसुमाष्टकम् ॥ ३४ ॥
वातारितैलेनैतेषां कालपत्ता भिषजां वरैः ।
एषा सूर्यप्रभा नाम गुटिकाऽग्निप्रदीपनी ॥ ३५ ॥

भारंगी, भिलावे, भाँग, अरणी, अभ्रक भस्म, केलेका कन्द, पाढ, वच, गोरोचन, चव्य, तेजपात, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जी, गन्धक, त्रायमाणा, पारा, केसर,

शुद्ध वत्सनाभ, सर्पविष, लौंग, पीपल, कूठ, ताडके फल, त्रिफला, समुद्रफेन, ढकपन्ना, लताकस्तूरी, कच्चाबेल, गिलोय, पाँचों नमक, जुही, चमेली, मोगरा, मौलसिरी, गुलाब, कनेर, महुवा और वरुण वृक्ष इन सबके फूल ये सब औषधियाँ समान भाग लेवे । प्रथम पारा और गन्धककी कज्जली करले, फिर अन्यसब औषधियोंका एकत्र बारीक चूर्ण करके कज्जलीमें मिलालेवे और सबको अण्डीके तेलमें खरल करके छोटी २ गोलियाँ बनालेवे । यह सूर्यप्रभा गोलियां उपयुक्त मात्रासे सेवन करनेसे जठराग्निको अत्यन्त दीपन करती हैं और उदरसम्बन्धी समस्त रोगोंको नष्ट करती हैं ॥ ३३-३५ ॥

वज्रक्षार ।

सामुद्रं लवणं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् ।
टंकणं स्वर्जिकाक्षारस्तुल्यं चूर्णं विभावयेत् ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत्र्यहम् ॥ ३६ ॥
अर्कपत्रं लिपेत्तेन रुद्ध्वा चांतःपुटे पचेत् ।
तत्क्षारं चूर्णयित्वाऽथ त्र्यूषणं त्रिफलारजः ॥ ३७ ॥
जीरकं रजनीं वह्निं चैव्यकं स्यात्समं समम् ।
क्षारार्धमेतदर्धं च एकीकृत्य प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
अग्निमांद्येष्वजीर्णेषु भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ।
वाताधिके जलैः कोष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितम् ३९ ॥
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालैस्त्रिदोषजे ।
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ४० ॥
सर्वोदरेषु गुल्मेषु शोफशूलेषु योजयेत् ॥ ४१ ॥

---

१ नवकमिति पाठोपि ।

समुद्रनमक, सैंधानमक, कचियानमक, जवाखार, काला-नमक, सुहागा और सज्जी इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको आकके दूधमें और थूहरके दूधमें तीन दिनतक धूपमें रखकर भावना देवे । इसके पश्चात् उसका गोलासा बनाकर उसको आकके पत्तोंसे लपेटकर कुक्कुट पुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर उस क्षारको पीसकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, जीरा, हल्दी, चीता और चव्य इन सब औषधियोंके समान भाग चूर्णको कपडछान करके क्षारसे आधाभाग या चौथाई भाग परिमाण मिलाकर खूब बारीक खरल करे । इस प्रकार यह वज्रक्षार सिद्ध होता है । यह सिद्ध रस है, इसलिये इसको स्वयं शङ्कर भगवान्ने वर्णन किया है । इसको प्रतिदिन मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगमें आठ २ मासे परिमाण जलके साथ सेवन करे वाताधिक्य रोगमें उष्णजलके साथ, पित्तप्रधान रोगमें घृतके साथ, कफजन्य व्याधिमें गोमूत्रके साथ और सन्निपातमें काँजीके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार करता है । इसके अतिरिक्त सब प्रकारके उदररोग, गुल्म, शोथ और शूलरोग-मेंभी इसको प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६–४१ ॥

सामान्य उपाय ।

खादिरं देवदारुं च कर्षं गोमूत्रतः पिबेत् ।
उदरं पांडुरोगं च हंति शूलं च प्लीहकम् ॥ ४२ ॥
दिनैकं पिप्पलीचूर्णं स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
निष्कं जलोदरं हंति महिषीमूत्रतः पिबेत् ॥ ४३ ॥

खैरसार (कत्था) और देवदारु दोनोंको एक तोला लेकर एकत्र पीसकर गोमूत्रके साथ पान करे । इससे उदर रोग, पाण्डुरोग, शूल और प्लीहारोग नष्ट होता है । एवं पीपलके

चूर्णको थूहरके दूधमें एक दिनतक खरल करके चार २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको भैंसके दूधके साथ सेवन करनेसे जलोदररोग अवश्य दूर होता ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पाण्डुरोग ।

विवर्णता शरीरे स्याच्छ्वयथुः कार्श्यमेव च ।
सत्त्वहानिरथाऽऽलस्यं पाण्डुरोगस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥

शरीरमें विवर्णताका होना; अर्थात् वर्णका पीला पडते जाना, सूजनका होना, दुर्बलताका बढना, बलका ह्रास होना और आलस्यका रहना ये सब, पाण्डुरोगके लक्षण हैं ॥ ४४ ॥

हंसमण्डूर ।

मण्डूरं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडंगं चव्यचित्रकौ ॥ ४५ ॥
दार्वी ग्रंथी देवदारु तुल्यं तुल्यं विचूर्णयेत् ।
घृतं मण्डूरतुल्यं च पाकांते मिश्रयेत्ततः ॥ ४६ ॥
भक्षयेत्कर्षमात्रं च जीर्णांते तक्रभोजनम् ।
पाण्डुरोगं ह्लीमं च ऊरुस्तंभं च कामलाम् ॥
अर्शांसि हंति नो चित्रं हंसमंडूरकाह्वयम् ॥ ४७ ॥

मण्डूरको खूब बारीक पीसकर आठगुने गोमूत्रमें पकावे जब पककरगो मूत्र सब जलजाय और मण्डूर गाढा होजाय तब उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चीता, दारुहल्दी, पीपलामूल और देवदारु सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके मण्डूरके बराबर भाग डालदेवे । और घृतभी मण्डूरके बराबर डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । उत्तम प्रकारसे परिपाक होजानेपर उसकी एक २ तोलेकी

गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको प्रतिदिन नियमित रूपसे भक्षण करे और औषधिके जीर्ण होजानेपर तक्रके साथ भातका भोजन करे । यह हंसमण्डूर अल्पकालमेंही पाण्डुरोग, हलीमक, ऊरुस्तम्भ, कामला और अर्श इन सब रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ४५–४७ ॥

कालविध्वंसरस ।

शुद्धसूतं हेमतारं ताम्रं तुल्यं च मर्दयेत् ।
जंबीरनीरसंयुक्तमातपे मर्दयेद्दिनम् ॥ ४८ ॥
सर्वतुल्यं पुनः सूतं क्षिप्त्वा पिष्टं प्रकल्पयेत् ।
धत्तूरफलमध्ये तु दोलायंत्रे त्र्यहं पचेत् ॥ ४९ ॥
धत्तूरोत्थद्रवैरेव यंत्रं पूर्यं पुनः पुनः ।
आदाय बंधयेद्वस्त्रे इष्टिकायंत्रगं पचेत् ॥ ५० ॥
जंबीरैर्गंधकं पिष्ट्वा अधश्चोर्ध्वं च दापयेत् ।
तुल्यं पुनः पुनर्देयं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ ५१ ॥
षड्गुणे गंधके जीर्णे तत्तुल्यं मृतलोहकम् ।
दत्त्वा मर्द्यं दिनैकं च कंटकार्या द्रवैर्दृढम् ॥ ५२ ॥
रुद्ध्वाथ करिषाग्निस्थकपोताख्यपुटे पचेत् ।
पुनर्मर्द्यं पुनर्भाव्यं त्रिवारं पूर्वजैर्द्रवैः ॥ ५३ ॥
बृहत्युत्थद्रवैस्तद्वत्त्रिधामर्द्यं पुटेत्त्रिधा ।
वह्न्यर्कनक्तमालानां पृथग्द्रावैर्द्विधा द्विधा ॥ ५४ ॥
मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेत्तद्वद्दशांशं वत्सनाभकम् ।
दत्त्वा तस्मिन्विचूर्ण्याथ गुंजामात्रं प्रयोजयेत् ॥ ५५ ॥

कालविध्वंसनो नाम रसः पाण्ड्वामयापहः ।
अभयाऽथ गवां मूत्रैः पिष्ट्वा चानुप्रदापयेत् ॥ ५६ ॥

शुद्ध पारा, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म और ताम्रभस्म इन चारोंको समान भाग लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें धूपमें रखकर एक दिनतक खरल करे । फिर उसमें समस्त औषधिके बराबर पारा मिलाकर खूब बारीक खरल करे । उस कज्जलीको धतूरेके फलोंके भीतर भरकर उनको दोलायन्त्रमें अधर लटकाकर और उस यन्त्रमें धतूरेका रस भरकर तीन दिनतक पकावे । जब रस सूखजाय तब उसमें वारंवार और रस डालता जाय । फिर चौथे दिन उन फलोंको निकालकर वस्त्रमें बाँधकर इष्टिकायन्त्रमें रखकर पकावे । स्वांगशीतल होनेपर उन फलोंको लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर गोला बनालेवे । इसके पश्चात् उस रसके समान भाग, गन्धकको नींबूके रसमें घोटकर सम्पुटमें नीचे ऊपर उक्त गन्धकका लेप करके बीचमे गोला रखदेवे और सम्पुटको बन्द कर ऊपरसे कपरौटी करक लघु कपोतपुट देवे । इस प्रकार बारम्बार समान भाग गन्धक डालकर ६ बार कपोतपुट देवे गन्धकमें जारण करनेके पश्चात् उक्त रसमें समान भाग लोहभस्म मिलाकर कटेरीके रसमें एक दिनतक खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके आरने उपलोंकी अग्निक द्वारा कपोतपुटमें पकावे । इस प्रकार कटेरीके रसमें ३ बार मर्दन करके तीन बार पुट देवे । पश्चात् बडी कटेरीके रसमें ३ बार मर्दन करके ३ बार कपोत पुट देवे । फिर चीता, आक और अमलतास इन औषधियोंके रसमें क्रम २ से दो दो बार खरल करके दो दो बार पुट देवे । (इन औषधियोंमेंसे पहले जिसका पुट देनाहो उसके

रसमें दो बार दिनमें घोटकर रात्रिमें दो बार पुट देवे इसी प्रकार अन्यऔषधियोंमें पुटदेवे । इसके अनन्तर उस रसमें १० दश-भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर एक दिन तक खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे ।) इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण प्रयोग करे और इसपर हरडको गोमूत्रमें पीस-कर अनुपान रूपसे देवे । यह कालविध्वंसन रस पाण्डुरोगको समूल नष्ट करनेवाला है ॥ ४८–५६ ॥

पञ्चानन रस ।

मृतं कांतं सुवर्णं च शुल्बताराभ्रभस्मकम् ।
पृथगक्षमितं सर्वं पटचूर्णकृतं मुहुः ॥ ५७ ॥
रसगंधककज्जलया तुल्यया सह मर्दितम् ।
सार्धद्विपलमानेन ताप्यचूर्णेन मर्दितम् ॥ ५८ ॥
द्विपलं मूषिकामध्ये विनिक्षिप्यालचूर्णकम् ।
ततस्तु कज्जलीं क्षिप्त्वा मनोह्वां तावतीं क्षिपेत् ॥५९॥
ततो निरुध्य यत्नेन परिशोष्य पुटेन्निशि ।
पुटेन गजसंज्ञेन स्वतःशीतं विचूर्णयेत् ॥ ६० ॥
चतुर्गुणेन गंधेन निर्मितां रसकज्जलीम् ।
क्षिप्त्वा पूर्वरसे लुंगवारिणा परिमर्दयेत् ॥ ६१ ॥
पचेत्क्रोडपुटेनैव दशवारमतःपरम्
एवं तालककज्जल्या दशवारं पुटेत्ततः ॥ ६२ ॥
ततश्च मृतवैक्रांतभस्मना च कलांशतः ।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन करंडांतर्विनिक्षिपेत् ॥ ६३ ॥

अयं पंचाननो नाम देवराजेन कीर्तितः ।
श्रेष्ठः सर्वरसेंद्रेषु महारससमो गुणैः ॥ ६४ ॥
पथ्यासूरणशुंठीभिः सघृताभिर्निषेवितः ।
सर्वान्पाण्डुगदान्हंति कृतघ्न इव सत्कृतिम् ॥ ६५ ॥
यक्ष्माणं जठरं हलीमकरुजं वातार्तिविड्बंधनं
कुष्ठं च ग्रहणीं ज्वरातिसरणं श्वासं च कासारुची ।
श्लेष्मव्याधिमशेषतो गलगदान्दुर्नाममंदाग्नितां
मेहं गुल्मरुजं चकिंबहुगिरा हन्यात्सतांस्तान्गदान् ६६
सेव्यमाने रसे चास्मिन्बिल्वमेकं च वर्जयेत् ।
स्वस्थः सर्वं समश्नीयाद्दद्री पथ्यं गदापहम् ॥ ६७ ॥

कान्तलोहभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म, चाँदीकी भस्म, और अभ्रकभस्म इन सब भस्मोंको पृथक् पृथक् एक २ तोला लेकर खूब बारीक खरल करके वस्त्रमें छानलेवे । फिर ढाई २ तोले पारे और गन्धककी कज्जली करके उसमें उपर्युक्त भस्मों-को मिलाकर मर्दन करे । फिर १० तोले स्वर्णमाक्षिकभस्म डालकर खूब बारीक खरल करे । इसके पश्चात् एक मूषामें ८ तोल शुद्ध हरतालका चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर उक्त कज्ज-लीको रक्खे और उसके ऊपर ८ तोले शुद्ध मैनासिलका चूर्ण रखकर मूषाको बन्द करके कपरौटी कर सुखालेवे । उस सम्पु-टको रात्रिके समय वातरहित स्थानमें रखकर गजपुटके द्वारा पुट देवे । स्वाङ्गशीतल होनेपर रसको निकालकर खरल कर-लेवे । इसके उपरान्त एक भाग पारा और ४ भाग गन्धककी कज्जली करके उसको पूर्वोक्त रसमें समान भाग मिलाकर बिजौरा नींबूके रसमें १ दिन तक घोटकर वाराहपुट देवे ।

इस प्रकार बारंबार कज्जली मिलाकर और नींबूके रसमें घोट-कर १० बार वाराहपुट देवे । फिर १ भाग पारद और ४ भाग हरतालकी कज्जली करके उसको उपर्युक्त रसके बराबर भागमें मिलाकर और नींबूके रसमें घोटकर उक्तविधिसे वाराहपुट देवे। इस प्रकार प्रत्येकवार हरतालकी कज्जली मिला मिलाकर और नींबूके रसमें घोट घोटकर १० बार वाराहपुटदेवे । इन पुटोंको देनेके अनन्तर उक्त रसको १ दिनतक खरलकरके उसमें १६ वॉ भाग वैक्रान्त मणिकी भस्म डालकर मैदाके समान खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस पंचानन रसको श्रीदेवराज आचार्यने वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण रसोमें श्रेष्ठ और महारस (१८ संस्कार किये हुए पारद) के समान गुणकारी है । इस रसको हरड जिमीकन्द और सोंठके चूर्ण तथा घृतके साथ एक या दो रत्ती परिमाण सेवन करे । यह सर्व प्रकारके पाण्डुरोगोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेताहै, जैसे कृतघ्न मनुष्य दूसरेके उपकारोंका एकदम भूल जाताहै । एवं यक्ष्मा रोग, उदररोग, हलीमक, वातरोग,मलवद्धता, कुष्ठ-रोग, संग्रहणी, ज्वरातिसार, श्वास, खॉसी, अरुचि,कफके रोग, गलगण्ड, कण्ठमाला, अर्श, मन्दाग्नि, प्रमेह और गुल्मरोग अधिक क्या इनके अतिरिक्त अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंको वि-नाश करनेके लिये यह रस अत्यन्त शक्तिशाली है। इस रसके सेवन करनेपर केवल बेलको त्यागदेना चाहिये । और स्वस्थ होनेपर सब प्रकारके आहार विहार करे। परन्तु जबतक शरीर पूर्णरूपसे स्वस्थ न हो और यह रस सेवन किया जाताहो तब तक रोगनाशक पथ्य पदार्थोंका उपयोग करे ॥ ८७–६७ ॥

आरोग्यसागर रस ।

एकैकपलगंधाश्मरससंभवकज्जलीम् ।
तस्या मध्ये द्विपलिकं ताप्यं तालं पलोन्मितम् ॥ ६८

पलमात्रां मनोह्वां च पलमभ्रकभस्मकम् ॥
सुखस्पर्शस्य कर्षं च निक्षिप्य परिमर्द्य च ॥ ६९ ॥
मूषामध्ये विनिक्षिप्य पिनद्धांतमुखीं ततः ।
पत्रेण शुद्धताम्रस्य निर्मलेन त्रिकर्षिणा ॥ ७० ॥
मूषां मृद्भिः सवस्त्राभिः परिरुध्य यथा दृढम् ।
परिशोष्य गिरिंडैश्च पुटेद्गजपुटेन हि ॥ ७१ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य खोटीभूतं विचूर्णयेत् ।
गंधतालशिलाचूर्णैः सहितं खल्वचूर्णकम् ॥ ७२ ॥
पुटेत्क्रोडपुटे चैव दशवारं ततः परम् ।
क्षिपेद्विंशतिभागेन वक्रांतं भस्मतां गतम् ॥ ७३ ॥
विमर्द्य गालितं कृत्वा क्षिपेद्रौप्यकरंडके ।
आरोग्यसागरो नाम रसोऽतिगुणवत्तरः ॥ ७४ ॥
हन्यात्पाण्डुमरोचकं गुदगदं वातं च पित्तं कफं
गुल्माध्मानकशोफरोगमथ च श्वासं शिरोर्तिं वमिम् ।
अत्यर्थानलमंदतां गुरुमुदावर्तं विचित्रज्वरान्
रोगानप्यपरान्रतिद्वयमितः सूतो मरीचाज्यवान् ७५

चार तोले पारद और ४ तोले गन्धककी कज्जली करके उसमें स्वर्णमाक्षिक भस्म ८ तोले, हरताल ४ तोले, मैनासिल ४ तोले, अभ्रकभस्म ४ तोले, और स्फटिकमणिकी भस्म १ तोला डालकर अच्छे प्रकारसे खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको मूषामें रखकर उसके मुँहको शुद्ध ताँबेके ३ तोले पत्रोंके द्वारा बन्द करके ऊपरसे कपरौटी करके सुखालेवे। उस मूषाको गजपुटमें रखकर उपलोंकी अग्निके

द्वारा पकावे स्वांगशीतल होनेपर मूषामेंसे रसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर इस रसमें गन्धक, हरताल और मैनसिलका चार २ तोले चूर्ण मिलाकर खरल करके वाराहपुट देवे। इस प्रकार १० बार वाराहपुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें गन्धक, हरताल और मैनसिलका चूर्ण डालकर खरल करता जाय। इसके पश्चात् उसमें बीसवाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म मिलाकर खूब बारीक खरल करके वस्त्रमें छानलेवे और चाँदीकी शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको आरोग्यसागर रस कहते हैं। यह अन्य रसोंकी अपेक्षा अधिक गुणवान् है। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती परिमाण मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करे। यह रस पाण्डुरोग, अरुचि, अर्श आदि गुदाके रोग, वात, पित्त और कफके भिन्न भिन्न रोग, गुल्म, आध्मान, शोथ, श्वास, शिरकी पीडा, वमन, अत्यन्त अग्निकी मन्दता, भयंकर उदावर्त्त और विविध प्रकारके ज्वर इन सब रोगोंको तथा अन्यान्य रोगोंकोभी शीघ्र नाश करता है॥ ६८–७५॥

पाण्डुपङ्कशोषण रस।

ताम्रभस्म रसभस्म गंधकं वत्सनाभमथ तुल्यभागतः। वह्नितोयपरिमर्दितं पचे द्यामपादमथ मंदवह्निना॥ ७६॥
रक्तिकायुगलमानतो भवेच्छोफपाण्डुघनपंकशोषणः॥ ७७॥

ताँबेकी भस्म, पारेकी भस्म, गन्धक और शुद्ध मीठा तेलिया सबको समान भाग लेकर चीतेकी जडके काढेमें

खरल करके चूल्हेपर चढाकर पौन घंटे तक मन्द मन्द अग्निके द्वारा पकावे । जब रस बिल्कुल शुष्क होजाय तब नीचे उतारकर बारीक खरल करलेवे इस रसको नित्य दो दो रत्ती परिमाण सेवन करे । इसके सेवनसे सूजन, पाण्डु आदि रोग इस प्रकार शीघ्र नष्ट होजाते हैं जैसे वर्षाऋतुकी कींचड सूर्यकी किरणोंके द्वारा तत्काल शुष्क होजाती है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

पित्तपाण्ड्वारि रस ।

रसस्य भागाश्चत्वारो लोहस्याष्ट प्रकीर्तिताः ।
वह्निमुस्ताविडंगानां त्रिकुटत्रिफलस्य च ॥ ७८ ॥
भागास्त्वनेकशो ग्राह्याः कुटजस्य तथाऽपरः ।
चूर्णयित्वा ततः सर्वं मधुना गुटिकाः किरेत् ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातः पित्तपांड्वपनुत्तये ॥ ७९ ॥

पारद भस्म ४ तोले, लोहभस्म ८ तोले तथा चीता, नागरमोथा, वायविडङ्ग, त्रिफला और कुडेकी छाल ये प्रत्येक औषधि तीन २ तोले लेवे । प्रथम पारेकी भस्म और लोह भस्मको एकत्र खरल करे, फिर अन्यान्य औषधियोंको एकत्र कूट पीसकर और भस्ममें मिलाकर शहदके साथ खरल करके दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातः सायंकाल एक २ गोली भक्षण करे । यह गोलियाँ पैत्तिक पाण्डुरोगको शमन करनेके लिये अधिक उपयोगी हैं॥७८॥७९॥

त्रैलोक्यसुन्दर रस ।

रसगंधकलोहाभ्रगुडूचीसत्त्वसूकरः ।
त्रिफलाशिग्रुमूलानि भृंगसारेण भावयेत् ॥ ८० ॥
त्रैलोक्यसुंदरः सोऽयं सघृतक्षौद्रशर्करः ।
मृगांकवत्पथ्यभुजः पांडुशोषं नियच्छति ॥ ८१ ॥

युतः किंचिद्घृतक्षौद्रगुडतित्तिरिगुग्गुलैः ।
त्रिनेत्राख्यो रसो योज्यः शोषे तोयानुपानतः ॥८२॥

पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, गिलोयका सत्त्व, वाराहीकन्द, त्रिफला और सैंजनेकी जड इन सबको सम भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर भाँगरेके रसमें भावना देवे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करके रखलेवे। इस रसको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे घृत, मधु और खाँडमें मिलाकर सेवन करे और मृगाङ्करसके समान पथ्य करे तो पाण्डुरोग और शोष (क्षय) रोग दूर होता है। यदि पाण्डु शोषरोगमें इस रसको सेवन कराकर ऊपरसे त्रिनेत्ररसको किंचित् घृत, मधु, गुड, तीतरका मांस और गूगलके साथ अनुपान रूपसे सेवन करावे और थोडासा शीतल जल पिलादेवे तोभी शीघ्र लाभ होता है ॥ ८०-८२ ॥

जयपाल रस ।

रसं गंधं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलम् ॥
समांशमाज्यसंयुक्तां गुटिकां कारयेन्मिताम् ॥ ८३॥
एकैकां खादयेद्वैद्यः शोफपाण्डुप्रशुत्तये ।
देवदाल्यास्तु पंचांगचूर्णं क्षीरैश्च वा जलैः ॥ ८४ ॥
निष्कमात्रं पिबेन्नित्यं मासात्पाण्डुगदापहम् ॥ ८५॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटे और शुद्ध गूगल सबको समान भाग लेकर घृतके साथ खरल करके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । वैद्य इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करावे। ये गोलियाँ शोथ और पाण्डुरोगको नष्ट करनेके लिये विशेष उपयोगी हैं। अथवा यह गोली सेवन करके ऊपरसे देवदाली (बंदाल) के पंचांगका चूर्ण

चार मासे परिमाण दूधके साथ या पानीके साथ नित्य सेवन करे तो एक महीनेमें पाण्डुरोग दूर होजाता है॥८३-८५॥

पाण्डुहारी हरीतकी ।

कोरंटो भृंगराजश्च शतावरीपुनर्नवे ।
एते सप्तपला ग्राह्याः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णिताः ॥ ८६ ॥
एतत्क्वाथे पचेत्सम्यग्घरीतक्याः शतत्रयम् ।
षष्ट्यधिकं ततः शुष्कं गव्यदुग्धेन पाचयेत् ॥ ८७ ॥
शोषयित्वा शनैर्हत्वा वटिकाभिः प्रपूरयेत् ।
रसस्य त्रिपलं दत्त्वा गंधके त्रिपलात्मके ॥ ८८ ॥
पक्त्वाथ पातयेत्पत्रे चूर्णयित्वा ततः पुनः ।
गुडूचीसत्वमादाय शुष्कं सप्तपलात्मकम् ॥ ८९ ॥
चूर्णयित्वा ततः सर्वं मधुना गुटिकाः किरेत् ।
तास्तु सूत्रे समाबध्वा मधुभांडे विनिक्षिपेत् ॥
एकैकां भक्षयेन्नित्यं शुष्कपांडुविनाशिनीम् ॥ ९० ॥

पीली कटसरैया, भाँगरा, शतावर और विषखपरा यह प्रत्येक औषधि सात २ पल लेकर एकत्र चूर्ण करके अठगुने जलमें पकावे । चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छान-लेवे । उस क्वाथमें ३६० बडी बडी हरडोंको डालकर उत्तम प्रकारसे पकावे । फिर उनको सुखाकर गोदुग्धमें पकावे । (दूध इतना डाले, जिसमें सब हरडें डूबजायँ और चतुर्थांश दूध शेष रहनेतक पकावे ।) इसके पश्चात् हरडोंको सुखाकर और उनकी गुठलियाँ निकालकर उनके भीतर निम्नलिखित गोलियाँ भरदेवे । बारह २ तोले पारे और गन्धककी कज्जली करके उसको लोहेकी कढाईमें पकाकर

केलेके पत्तेके ऊपर पर्पटी ढालकर पीसलेवे । उसमें ७ पल गिलोयका शुष्क सत्त्व डालकर मधुके साथ खरल करके ३६० गोलियाँ बनालेवे । उनमेंसे एक २ गोली एक २ हरडके भीतर रखकर सब हरडोंको अलग २ डोरेसे बाँधदेवे । फिर उनको मधुसे भरेहुए एक पात्रमें डालदेवे । उसमें इतना शहद हो जिसमें कि सब हरडें डूब जायँ । पश्चात् उस पात्रका अच्छे प्रकारसे मुँह बन्द करके रखदेवे । एक महीनेके बाद उनमेंसे प्रतिदिन एक २ हरड भक्षण करे । यह हरितकी शोष (क्षय) और पांडुरोगको विनाश करनेवाली है ॥ ८९-९० ॥

विजयावटिका ।

पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम् ।
एलात्वक्पत्रमुस्तानां भागोऽर्धपलिको मतः ॥ ९१ ॥
रेणुकार्धपलं प्रोक्तं तदर्धं नागकेसरम् ।
व्योषं च पिप्पलीमूलं विषं च पलमात्रकम् ॥ ९२ ॥
रसः पलो पलो गंधः सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
पुरातने गुडे पक्व तुलार्धे तद्विनिक्षिपेत् ॥ ९३ ॥
हिमस्पर्शे तु मृद्नीयाद्घृतेनाऽऽक्त्वा करं बुधः ।
बदरास्थिप्रमाणेन विजयागुटिका मता ॥ ९४ ॥
निशायां खादयेदेनां शोफपाण्डुविनाशिनीम् ॥
टंकणं मेघनादं च भक्षयेद्वेगशांतये ॥ ९५ ॥

हरडकी बकली ३ पल, चीतेकी जड ३ पल, एवं इलायची, दारचीनी, तेजपात और नागरमोथा ये प्रत्येक दो दो तोले

रेणुका २ तोले, नागकेसर १ तोला,तथा त्रिकुटा, पीपलामूल, शुद्ध वत्सनाभ, पारा और गन्धक ये प्रत्येक चार २ तोले लेकर प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करलेवे, फिर अन्य सब औषधियोंको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । और कज्जली आदि सबको एकत्र मिश्रित करके ५० पल पुराने गुडमें मिलाकर पकावे । जब गुड पककर गाढा होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर हाथोंमें घी चुपडकर उसको अच्छे प्रकारसे मसले और छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बनालेवे वैद्य इनमेंसे प्रतिदिन रात्रिके समय एक २ गोली पानीके साथ सेवन करावे । ये गोलियाँ शोथ और पाण्डुरोगको विनाश करती हैं । इन गोलियोंके सेवन करनेसे यदि किसी समय शरीरमें गरमी मालूम होतो उसके वेगको शमन करनेके लिये चौलाईके रसमें सुहागेको पीसकर भक्षण करे ॥९१–९५॥

कामलारोग ।

दग्धमांसरुधिरास्रपित्ततः कामला भ्रम-
तृषाविदाहिनी । पीतनेत्रमलवत्युपेक्षया
शोफयुग्भवति कुंभकामला ॥ ९६ ॥

जब रक्त और पित्तके अधिक प्रकुपित होनेसे शरीरके किसी अङ्गसे अत्यन्त रक्तस्राव होता है तब रोगीके मांस और रुधिर जलने (अर्थात् सूखने) लगते हैं । उस समय रोगीको चक्कर आते हैं, तृषा लगती है और शरीरमें अत्यन्त दाह होती है । यह कामला रोगके लक्षण हैं । कामला रोग पाण्डुरोगका एक भेद है । इस रोगकी तुरन्त उपयुक्त चिकित्सा न करनेसे रोगीके नेत्र और मल पीले पडजाते हैं । और सूजन उत्पन्न होजाती है तब इसको कुम्भकामला कहते हैं ॥ ९६ ॥ (काललोह शाकलेन वाथवा तन्मलेन सह

तिन्तणीदलम् । साधिताम्बुसकलं विनाशयेत् स्थौल्यपांडुगद-शोफकापहम् ॥ इत्यधिकपाठोऽन्यत्र पुस्तके ॥)

कामलाप्रणुद्रस ।

तीक्ष्णमाक्षिककांताभ्रशुल्बसूतकतालकम् ।
देवदालीरसे पिष्टं वालुकायंत्रमूर्च्छितम् ॥ ९७ ॥
अमृतोत्पलकह्लारकंदद्राक्षासमन्वितम् ।
पिष्टं यष्ट्यम्भसा क्षौद्रसिताभ्यां कामलाप्रणुत् ।९८॥

तीक्ष्णलोहकी भस्म, सोनामाखीकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, पारदभस्म और शुद्ध हरताल इन सबको समान भाग लेकर देवदालीके रसमें खरल करके गोला बनालेवे । उसकी शरावसम्पुटमें बन्द करके वालुकाय-न्त्रमें रखकर एक प्रहर तक पकावे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब उस गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसको गिलोय, भंबूले, लाल कमलका कन्द, दाख और मुलैठी इन औषधियोंके रस अथवा क्काथमें क्रमसे एक एक बार खरल करके सुखालेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण शहद और मिश्रीम मिलाकर सेवन करनेसे कामला-रोग नष्ट होता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

त्रियोनि रस ।

ताम्रस्य तुर्यभागेन रसेनोत्प्लुत्य लेपयेत् ।
निम्बुद्रावेण संयोज्य सूर्यतापे विनिक्षिपेत् ॥ ९९ ॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पाचयेदतियत्नतः ।
मत्स्याक्षीमभितो दत्त्वा मृत्स्नया संनिरुध्य च ॥
यामद्वयं सुपक्वं च स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ १०० ॥

गुंजामात्रं ददीतास्य साभयं गुडसंयुतम् ।
त्रियोन्याख्यो रसो ह्येष शोफपाण्डुप्रनोदनः ॥ १०१ ॥

ताँबेके कंटकवेधी पत्र ४ तोले और पारा १ तोला दोनोंको खरलमें डालकर अच्छे प्रकारसे घोटे । जब समस्त ताम्रपत्र पारदसे लिप्त होजायँ तब उस खरलमें नींबूका इतना रस भरकर जिसमें कि वे पत्र अच्छे प्रकारसे डूबजायँ तीक्ष्ण धूपमें रखदेवे । जब वह सब रस सूखजाय तब एक सम्पुटमें नीचे, ऊपर गन्धकका चूर्ण और उसके बीचमें उक्त ताम्रपत्र रखकर गजपुटके द्वारा पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर उन पत्रोंको निकालकर बारीक पीसलेवे । फिर उस चूर्णको मछेछी घासके रसमें खरल करके गोला बनाकर सुखाले, फिर उसके ऊपर मछेछीके कल्कका दो २ अँगुल ऊँचा लेप करके और सुखाकर उसको सम्पुटमें रक्खे और कपरौटीके द्वारा अच्छे प्रकारसे बन्द करके दो प्रहरतक बालुकायंत्रमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब गोलेको निकालकर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको नित्यप्रति एक २ रत्ती परिमाण लेकर हरडोंके चूर्ण और गुडके साथ सेवन करावे । यह त्रियोनि -नामक रस शोथ, पाण्डुरोग और कामलारोगको समूल नष्ट करनेवाला है ॥ ९९-१०१ ॥

कामेश्वर रस ।

पलं सूतं पलं गंधं वज्री पथ्या त्रयं त्रयम् ।
मुस्तैलापत्रकानां च प्रातिसार्यं पलं क्षिपेत् ॥ १०२ ॥
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं विषं चैव पलं पलम् ।
नागकेसरकर्षैकं रेणुकार्धपलं तथा ॥ १०३ ॥

पुरातनगुडेनैव तुलार्धेन विपाचयेत् ।
मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामैकांतं घृतेन च ॥ १०४ ॥
गुटिकां बदराभां तु कारयेद्भक्षयेन्निशि ।
शोफपांडुहरः सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम् ॥१०५॥

पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, थूहरका चूर्ण १२ तोले, हरडका चूर्ण १२ तोले, नागरमोथा, इलायची, तेजपात, त्रिकुटा, पीपलामूल और शुद्ध वत्सनाभ इन प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले, नागकेसर १ तोला और रेणुका २ तोले' इन सब औषधियोंको एकत्र कूटपीसकर कपडछान करलेवे। फिर ५० पल पुराने गुडमें मिलाकर पकावे। जब पककर वह अवलेहके समान होजाय तब शीतल करके उसको एक पहर तक घीग्वारके रसमें घोटे। अन्तमें हाथोंमें घी चुपडकर और उसको खूब मसलकर छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन रात्रिमें एक २ गोली भक्षण करे। यह रस सूजन और पाण्डुरोगको हरनेवाला है॥ १०२-१०५ ॥

सिन्दूर भूषणरस ।

शुद्धसूतं च सिंदूरं पलैकैकं विमर्दयेत् ।
वासारसेन यामैकं तेन कुर्याच्च चक्रिकाम् ॥ १०६॥
सुपक्वां कारयेन्मूषामुत्तानां द्वादशांगुलाम् ।
तन्मध्ये गंधकं शुद्धं क्षिपेत्पलचतुष्टयम् ॥ १०७ ॥
पूर्वोक्तां चक्रिकां तत्र क्षिप्त्वाऽथ प्रपुटेल्लघु ।
जीर्णे गंधे समुद्धृत्य चक्रिकां तां विचूर्णयेत् ॥१०८॥
चूर्णाद्दशगुणं योज्यं मृतं लोहं च मर्दयेत् ।
लशुनेन दशांशेन चणमात्रा वटीः किरेत ॥

वातपाण्डुहरः सिद्धो रसः सिंदूरभूषणः ॥ १०९ ॥
पिबेच्चानु ह्यपामार्गस्यैरंडस्य च मूलिकाम्।
तक्रैः पिष्ट्वाऽथ कर्षैकं हंति पाण्डुं सकामलम्॥११०

शुद्ध पारा ४ तोले और रससिन्दूर ४ तोले दोनोंको अडू-सेके रसमें एक प्रहर तक खरल करके टिकिया बनालेवे। फिर उत्तम प्रकारसे पकाई हुई १२ अंगुल ऊंची मूषाके भीतर ४ पल शुद्ध गन्धकको बिछाकर उसके ऊपर उक्त टिकियाको रखकर मूषाका मुँह बन्द करके लघु कुक्कुटपुट देवे। गन्धकके उत्तम प्रकारसे जीर्ण होजानेपर उस टिकि-याको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे। इसके पश्चात् उसमें समस्त चूर्णसे दशगुनी लोहभस्म मिलाकर खरल करे। फिर समस्त औषधिका दशांश लहसुन मिलाकर जलके साथ खूब बारीक खरल करके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस प्रकार यह सिन्दूरभूषण रस तैयार होता है। यह वातजपाण्डु-रोगको दूर करनेके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस रसको प्रतिदिन एक गोली खाकर ऊपरसे चिरचिटेकी और अण्डकी जडको एक कर्ष परिमाण तक्रमें पीसकर अनुपानरूपसे सेवन करे तो कामलायुक्त पाण्डुरोग नष्ट होता है॥ १०९-११०

सुधापंचकरस।

कंसेन पिष्टः शिलया सहितः पाचितो रसः।
हताभ्यां तीक्ष्णताम्राभ्यां युतो हंति हलीमकम्॥१११

काँसेकी भस्म, मैनसिल भस्म, पारेकी भस्म, तीक्ष्णलोह भस्म और ताम्रभस्म इन पाँचों भस्मोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके उपयुक्त मात्रासे उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे हलीमक पाण्डुरोग नष्ट होता है॥ १११॥

मुस्तादि चूर्ण ।

मुस्ताऽमृताचित्रकयष्टिपिप्पलीविडंग शुंठीत्रिफलैर्यथोत्तरम् । चूर्णं सहायोरजसा च संयुतं समाक्षिकं पाण्डुगदापहं परम् ॥ ११२ ॥

नागरमोथा, गिलोय, चीता, मुलैठी, पीपल, वायविडङ्ग, सोंठ, त्रिफला, लोहभस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समभाग लेकर एकत्र चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण उपयुक्त मांत्रामें सेवन करनेसे पाण्डुरोगको नष्ट करनेके लिये परम उपयोगी है ॥ ११२ ॥

सामान्य उपाय ।

अपामार्गं शमीमूलं पिष्ट्वा तक्रेण पाययेत् ।
कामलां श्वयथुं पाण्डुं कर्षमात्रं नियच्छति ॥ ११३॥

चिरचिटेकी जड और छोकरवृक्षकी जड दोनोंको एक तोला परिमाण लेकर मट्ठेमें पीसकर पान करावे। यह प्रयोग कामला, पाण्डुरोग और सूजनको निवारण करता है ॥ ११३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकाया-मेकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

विसर्परोग ।

विसर्पजिद्रस ।

कांतगंधकतीक्ष्णाभ्रविषताप्यसमन्वितः ।
वंध्याकर्कोटकीकंदे पक्वः सूतो विसर्पजित् ॥ १ ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, तीक्ष्णलोहकी भस्म अभ्रक भस्म, वत्सनाभ और स्वर्णमाक्षिक भस्म इन सब औषधियोंको

समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । फिर उस कज्जलीको बाँझककोडेके कन्दमें छिद्र करके भरदेवे और उसको बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर कुक्कुटपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर उसको खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । यह रस विसर्प रोगको नष्ट करनेवाला है । इसको योग्य मात्रासे उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करे ॥ १ ॥

विसर्पनाशनतैल ।

एरण्डतुंबिनीनिंबबाकुचीचक्रमर्दकम् ।
तिक्तकोशातकीबीजमंकोल्लश्चंचुबीजकम् ॥ २ ॥
गोमूत्रदधिदुग्धैस्तु भावयेत्तिलजेन च ।
मूत्रेणाजाप्रसूतेन तैलं पातालयंत्रजम् ॥
विसर्पं नाशयत्याशु श्वेतकुष्ठं च तत्क्षणात् ॥ ३ ॥

अण्डीके बीज, कडवी तोम्बीके बीज, नीमकी निबौली, बापची, चकवडके बीज, कडवी तोरईके बीज, अंकोलके बीज और (छोटी एरण्ड) के बीज इन औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको गोमूत्र गायके दही दूध और बकरीके मूत्रमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर सुखा लेवे । फिर उसको तिलके तेलमें मिलाकर पातालयन्त्रके द्वारा तेलको सिद्ध करे । यह तैल सदैव मालिश करनेसे विसर्प और श्वेतकुष्ठ रोगको अल्पकालमें ही विनाश करदेता है ॥ २ ॥ ३ ॥

विसर्पहरतैल ।

एरण्डतुंबीकटुनिंबचक्रमर्दोत्थबीजानि च सोमराजी ।
अंकोल्लबीजानि समानि कृत्वा पातालयंत्रेण सुतैलमेषाम् ।
प्रगृह्य तेनाऽथ विमर्दयीत विसर्पकादीनि मृतिं प्रयांति ४ ।

अण्डीके बीज, कडवी तोंबीके बीज, कुटकी, वायविडङ्ग, नीमकी निबौली, चकवडके बीज, बावची और अंकोलके बीज सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे उस चूर्णको तिलके तेलमें मिलाकर पातालयन्त्रके द्वारा तेलको खींचलेवे। इस तेलकी मालिश करनेसे विसर्प आदि रोग शमन होते हैं ॥ ४ ॥

कुष्ठरोग (कोढ)।

पादयोः श्वयथुस्तोदो गलंत्यंगुलयो यदि ।
नासिकास्वरयोर्भंगो गलत्कुष्ठस्य लक्षणम् ॥ ५ ॥

श्वित्रं तु कृष्णमरुणं मरुदस्रगामि
पित्तेन रोमशतनं च विदाहितां च ।
मांसाश्रितं बहुसितं कफतः सकण्डू
मेदोगतं बलवदेव यथोत्तरं स्यात् ॥ ६ ॥

पैरोंमें सूजन होना, सुई चुभोने सरीखी पीडा होना, हाथ-पॉवकी अँगुलियोंका गलना नासिका और स्वरका भङ्ग होना यह गलित कुष्ठके लक्षण हैं । वातज श्वेतकुष्ठ काला होता है। रक्तजनित अथवा रक्तगत कुष्ठ लाल होता है। पित्त-जनित श्वेतकुष्ठमें बाल गिरने लगते हैं, और शरीरका रंग पीला पडजाता है ।, मांसगत कुष्ठमें अत्यंत दाह होती है। कफसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ अत्यन्त श्वेत होता है और मेद (चर्बी) में स्थित श्वेतकुष्ठमें खुजली बहुत होती है। उपर्युक्त श्वेतकुष्ठ उत्तरोत्तर क्रमसे अधिक बलवान् (अर्थात् चिकित्सा द्वारा असाध्य होते हैं ॥ ५–६ ॥

वातकुष्ठहर रस।

विपचेद्गंधकमध्ये घनपिष्टीं शुल्बपिष्टीं वा।
संकोच्य गोलकोऽयं शमयति वातोत्थकुष्ठानि ॥७॥

पारा १ तोला और अभ्रकभस्म १ तोला दोनोंको एकत्र खूब अच्छे प्रकारसे घोटकर पिट्ठीसी बनालेवे। फिर ४ तोले गन्धकको अग्निपर पिघलाकर उसमें उक्त पिट्ठीको डालकर करछीसे चलावे और मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब सब रस पिघलकर एकमएक हो जायँ तब पूर्वोक्त विधिके अनुसार ढालकर पर्पटी तैयार करलेवे। इसके पश्चात् उसका बारीक चूर्ण करके और जलके साथ खरल कर एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। अथवा इस रसमें अभ्रक भस्मके अतिरिक्त ताम्र भस्म डालकर पर्पटी बनालेवे। ये गोलियाँ नियमानुसार सेवन करनेसे वातज कुष्ठको शमन करती हैं ॥ ७ ॥

पित्तकुष्ठहर रस।

कालाभ्रकस्य संकोचो घृतगंधकपाचितः ॥ ८ ॥
व्योषाग्निवेल्लत्वङ्मुस्ताव्याधिघातविषैः समः।
त्रिगुणः प्राणदो रेणुः पंचाशन्मृतकांचनम् ॥ ९ ॥
बदरास्थिमितो मूत्रेणाजेन गुटिकीकृतः।
नाशनः पित्तकुष्ठानामेकविंशतिवासरात् ॥ १० ॥

काले अभ्रककी भस्म १ तोला और पारा १ तोला दोनों-की एकत्र पिट्ठी पीसकर और चार तोले गन्धकमें पिघलाकर पर्पटी ढाललेवे। पर्पटी बनाते समय और गन्धक पिघलाते समय कढाईमें थोडा २ घी चुपड देवे। फिर पर्पटीको पीसकर उसमें त्रिकुटा, चीता, वायविडङ्ग, दारचीनी, नागरमोथा, अमलतास और शुद्ध वत्सनाभ इन सब औषधियोंका समान-

भाग मिश्रित चूर्ण पर्पटीके बराबर भाग पारद भस्म पर्पटीसे तिगुना भाग और सुवर्ण भस्म ५० रेणु लेकर मिलादेवे और बकरीके मूत्रमें खरल करके बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे। येह गोलियाँ प्रतिदिन प्रातःसायंकाल २१ दिन तक सेवन करनेसेही पित्तजनित कुष्ठको नष्ट करदेती है ॥ ८-१० ॥

कफकुष्ठहर रस ।

कनकाभ्रकसंकोचस्तैलगंधकपाचितः ।
विषव्योषाब्दवेल्लत्वक्तुल्यास्त्रिगुणचित्रकः ॥
गुंजामाजोजमूत्रेण पिण्डितः श्लेष्मकुष्ठनुत् ॥ ११ ॥

सुवर्णभस्म १ तोला अभ्रक भस्म १ तोला, पारा १ तोला तीनोंको एकत्र खरल करके पिट्ठी बनालेवे। फिर कढाईमें तेल चुपडकर उसमें ६ तोले गन्धकको पिघलावे। जब वह अच्छे प्रकारसे पिघलजाय तब उसमें उक्त पिट्ठी और थोडासा तेल डालकर कुछेक पका करके पर्पटी तैयार करलेवे । फिर चूर्ण करके उसमें वत्सनाभ, त्रिकुटा, नागरमोथा, वायविडङ्ग और दारचीनी, इन सबका सम भाग मिश्रित चूर्ण पर्पटीके बराबर भाग और चीतेकी जडका चूर्ण पर्पटीसे तिगुना भाग मिलाकर बकरीके मूत्रमें घोटकर एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल एक २ गोली सेवन करनेसे कफजन्य कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

सन्निपातकुष्ठहर रस ।

तीक्ष्णाभ्रहेमसंकोचस्तैलगंधकपाचितः ॥ १२ ॥
तालताप्यविशालाग्निबोलपाठाजटाविषैः ।
शृंगीटंकणयष्ट्याह्वसिंदुवारैः समन्वितः ॥ १३ ॥

रसेन शृंगवेरस्य बद्धो बदरसंनिभः ।
छायाविशोषितः कुष्ठं निहन्यात्सान्निपातजम् ॥ १४॥

लोहभस्म, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म और पारा चारोंको एक २ तोला लेकर एकत्र बारीक खरल करलेवे । पश्चात् कढाईमें तेल चुपड कर उसमें ८ तोले गन्धकको पिघलावे फिर उसमें उक्त भस्में तथा थोडासा तेल डालकर मन्द मन्द अग्निसे कुछ देर पका करके पर्पटी ढालदेवे । तदनन्तर पर्पटीको बारीक पीसकर उसमें शुद्ध हरताल, सोनामाखीकी भस्म, इन्द्रायनकी जड, चीता, बीजबोल, पाढ, बालछड, वत्सनाभ, काकडासिंगी, सुहागा, मुलैठी और सिह्लालु इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करले । यह चूर्ण पर्पटीके बराबर भाग लेकर मिलावे और अदरखके रसमें घोटकर बेरके बराबर गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे । इस रसके सेवनसे सन्निपातजनितकुष्ठ नाश होता है ॥ १२-१४ ॥

विजयरस (गुटिका) ।

रसभस्म च गंधाश्म विशाला कुष्ठकं विषम् ।
रेणुका पिप्पलीमूलं बाकुची विषतिंदुकम् ॥ १५ ॥
अश्वगंधा पलाशास्थि व्योषादिनवकं वचा ।
गुडेन गुटिकां कुर्यात्समेन मधुमिश्रिताम् ॥ १६ ॥
तां भक्षयेत्सितासर्पिः क्षीरशाल्यन्नभाग्भवेत् ।
यवौदनं वा भुंजानो ब्रह्मचर्यपरायणः ॥ १७ ॥
खादेत्तापे सिताधान्यसर्पिर्नागबलारजः ।
वटिका विजयाख्येयं सप्त कुष्ठान्नियच्छति ॥ १८ ॥

पारेकी भस्म, गन्धक, इन्द्रायनकी जड, कूठ, वत्सनाभ, रेणुका, पीपलामूल, बावची, कुचला, असगन्ध, ढकपन्ना, सोंठ, मिरच, पीपल, गजपीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, अजमोद, जीरा और वच इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको समान भाग गुडमें मिलाकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। उनमेंसे एक २ गोली प्रतिदिन शहदमें मिलाकर सेवन करे। इस पर मिश्री, घी, दूध, शालिचावलोंका भात, अथवा जौका दलिया आदि पदार्थोंका आहार करे १।और ब्रह्मचर्यका पालन करे । यदि इस रसके सेवनसे गरमी अधिक मालूम हो तो खाँडका शर्बत बनाकर उसमें शालिधानोंकी खीलें, घी और गंगेरनका चूर्ण डालकर, पान करे । इस रसको विजया वटी कहते हैं। यह वटी सात प्रकारके कुष्ठको निवारण करती है ॥ १५–१८ ॥

सर्वेश्वररस ।

पालिकं ताम्रगंधाभ्रं कर्षांशं लोहपारदम् ।
स्नुह्यर्कक्षीरवातारिजंबीरोशीरवारिभिः ॥ १९ ॥
मर्दितं वालुकायंत्रे स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ।
कर्षं कणाया निष्कं च विषस्यास्मिन्विनिक्षिपेत् ॥
एष सर्वेश्वरः सद्यो गुंजामात्रः प्रसुप्तिजित् ॥ २० ॥

ताम्रभस्म, गन्धक, अभ्रक भस्म प्रत्येक चार २ तोले, लोहभस्म और शुद्ध पारा एक २ तोला, सबको एकत्र खरल करके थूहरके दूध, आकके दूध, अण्डकी जडके क्वाथ, जम्बीरी नींबूके रस और खसके काढेमें क्रमसे एक २ बार खरल करके गोला बनालेवे । उसको सम्पुटमें बन्द करके वालुका-

यन्त्रमें रखकर ३ दिन तक पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णमें पीपल १ तोला और वत्सनाभ ४ मासे परिमाण डालकर एक दिन तक खरल करे । इस प्रकार यह सर्वेश्वर रस सिद्ध होता है । यह रस एक २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे सुप्त कुष्ठको, शीघ्र दूर करता है ॥ १९ ॥ २० ॥

सुप्तकुष्ठारि रस ।

गंधो रसश्च कटुतैलशृतो मृतोऽर्को
व्योषाग्निवेल्लविषभेद्यभयावचाभिः ।
ज्वालामुखीरसविमर्दितमाक्षिकाढ्यः
पिण्डीकृतः शमयति स्थिरसुप्तकुष्ठम् ॥ २१ ॥

सरसोंके तेलमें शुद्ध किया हुआ गन्धक, पारदभस्म, ताम्रभस्म, त्रिकुटा, चीता, वायविडंग, वत्सनाभ, गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ जमालगोटा, हरड, वच और कलिहारीके रसमें घोटकर शुद्ध की हुई सोनामाखीकी भस्म इन सम्पूर्ण औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर और कलिहारीके रसमें खरल करके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको सेवन करनेसे दीर्घ कालसे उत्पन्न हुआ सुप्तकुष्ठ शीघ्र शमन होता है ॥ २१ ॥

प्रतापलंकेश्वर ।

विपादिकाभ्रं रसगंधटंकणं सताम्रकुष्ठायसपिप्पलीरजः ।
विमर्दितं कांचनपत्रवारिणा प्रतापलंकेश्वरसंज्ञितो रसः २२

पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्रभस्म, कूठ, लोहभस्म और पीपलका चूर्ण इन औषधियोंको समभाग लेकर कचनारके पत्तोंके रसमें खरल करके सुखालेवे । फिर बारीक चूर्ण करके

कपडछान करलेवे । इसको प्रतापलंकेश्वर रस कहते हैं । इस रसकी एक २ गोली मधुमें मिलाकर सेवन करनेसे विपादिका नामक कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २२ ॥

कुष्ठनाशन रस ।

रसगंधकताप्यार्कशिलाजत्वम्लवेतसम् ।
अष्टमांशगुडं साज्यमाक्षिवं स्याच्छतारुषि॥ २३ ॥

पारा, गन्धक, सोनामाखीकी भस्म, ताम्रभस्म, शिलाजीत, और अम्लवेंत सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसमें आठवाँ भाग गुड मिलाकर एक२ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक.२ गोली घी और मधुमें मिलाकर प्रतिदिन खानेसे शतारुपि नामक कुष्ठमें शीघ्र लाभ होता है ॥ २३ ॥

कुष्ठजित् अथवा कृष्णमाणिक्य रस ।

हेममाक्षिकगंधाश्मतीक्ष्णकांताभ्रकं समम् ।
द्विगुणं हरवीर्यं च दशमांशं च सक्तुकम् ॥ २४ ॥
मंजिष्ठादिकषायेण वालुकायंत्रपाचितम् ।
कृष्णमाणिक्यसंकाशमिदं भस्मैव कुष्ठजित् ॥२५॥

शुद्ध सोनामाखी, गन्धक, तीक्ष्णलोह, कान्तलोह और अभ्रककी भस्म ये प्रत्येक समभाग अर्थात् एक २ तोला, पारा १० तोले और सक्तुक विष समस्त औषधियोंका दशवाँ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके मंजिष्ठादि गणकी औषधियोंके क्वाथमें २४ घंटेतक घोटकर सुखालेवे । फिर उसको शीशीमें भरकर ऊपरसे कपरौटी करके ३६ घंटेतक वालुकायन्त्रमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर शीशीको फोड-कर रस निकाल लेवे और खरल करके रखदेवे । यह रस

कृष्णमाणिक्य रसके समान गुणकारी है, इसलिये, इसको कृष्णमाणिक्य कहते हैं। इस प्रकार तैयार की हुई यह एक प्रकारकी पारद भस्म है। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ नष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

तालेश्वर रस ।

हरितालपले द्वे द्वे द्वंक्षणे रसगंधयोः ।
कुकुंटीपत्रक्षारेण पिष्टं ताम्रमयोरजः ॥ २६ ॥
पंचशो मर्दितं धात्रीकुकुंटीरसमाक्षिकैः ।
वर्षाभूचित्रपत्राढ्यं मूषागर्भे निवेशितम् ॥ २७ ॥
पाचितं भूधरे संस्थं पर्णखण्डेन भक्षयेत् ।
हिंगुजंबीरवातारितैलैः पवनपीडितैः ॥ २८ ॥
माधूकसारसिंधूत्थवचाव्योषैर्हतौजसि ।
शोफे भक्तांबुना कुष्ठे घृतेन पयसाऽथ वा ॥ २९ ॥
धारोष्णेनार्द्रकस्यापि कामलायां रसेन च ।
रसस्तालेश्वराख्योयं सर्वकुष्ठहरः परः ॥ ३० ॥

शुद्ध हरताल ८ तोले, पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, वंदालके पत्तोंके रसमें घोटकर की हुई ताम्रभस्म ४ तोले और लोहभस्म ४ तोले इन सब औषधियोंको एकत्र खरल करके आमलोंके रस, वंदालके रस और मधुमें क्रमसे पाँच २ बार भावना देकर गोला बनालेवे। उस गोलेके ऊपर पुनर्नवा और चीतेके पत्तोंका दो २ अँगुल ऊँचा कल्क लपेटकर मूषामें रक्खे, और कपरौटी करके भूधरयन्त्रमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक पीसलेवे। इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती पानमें रखकर सेवन करे। किन्तु वात-

व्याधिवाले रोगीको यह रस हींगके चूर्ण, नींबूके रस और अण्डीके तेलमें मिलाकर सेवन करना चाहिये और रोगीकी ओजधातुका ह्रास होगया हो तो मुलैठीका सत्त, सैंधानमक, वच और सोंठ, मिरच, पीपल इन सबके समान भाग मिश्रित चूर्णके साथ यह रस प्रयोग करना चाहिये । सूजनमें चावलोंके पानीके साथ, कुष्ठमें घृत अथवा धारोष्ण दूधके साथ, और कामला रोगमें अदरखके रसके साथ, इस रसको व्यवहार करना चाहिये यह तालेश्वर रस सब प्रकारके कुष्ठोंको हरने-वाला है ॥ २९-३० ॥

महातालेश्वर रस

तालताप्यशिलाटंकरसेंद्रलवणं समम् ।
तालकाद्द्विगुणं ताम्रं मृतं तद्वच्च गंधकम् ॥
अम्लेन पंचशः पिष्टं जंबीरस्य पुटे पचेत् ॥ ३१ ॥
लोहचूर्णस्य चत्वारो भागाः सिद्धरसस्य षट् ।
अष्टौ[1] नेपालताम्रस्य गंधकेन हतस्य च ॥ ३२ ॥
जंबीराम्लेन तत्सर्वं मर्दितं पुटपाचितम् ।
एकत्रिंशांशगरलं माषद्वितयसंमितम् ॥३३॥
मदनेन वामिं कुर्याद्विरेकं पथ्ययाऽपि च ।
शुद्धः संशोधनं कुर्वन्मध्ये मध्ये च भक्षयेत् ॥ ३४ ॥
सन्निपाते मधूकेन व्योषेण पवने हितः ॥ ३५ ॥
ग्रहणीकामलापाण्डुगुल्मार्शांसि हलीमकम् ।
क्षयं च शमयत्येष महातालेश्वरो रसः ॥ ३६ ॥

---

१ उभौ इति पाठोऽपि ।

शुद्ध हरताल, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, सुहागा, पारा और समुद्रनमक ये प्रत्येक एक २ भाग, ताम्रभस्म २ भाग और गन्धक २ भाग, सबको एकत्र मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें पाँच बार भावना देकर भूधरपुटमें पकावे। स्वाँगशीतल होनेपर रसको निकालकर खरल करलेवे। इसके पश्चात् उपर्युक्त विधिसे तैयार किया हुआ यह रस ६ भाग, लोह भस्म ४ भाग और गन्धकके द्वारा मारे हुए ताँबेकी भस्म ८ भाग इन तीनोंको नींबूके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखालेवे और उसको भूधरपुटमें पकावे। फिर खरल करके उसमें ३१ वाँ भाग शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर बारीक पीस लेवे। इस रसको प्रतिदिन क्रमसे एक २ रत्तीकी मात्रा बढाता हुआ दो मासे पर्यन्त सेवन करे। इसके सेवन करनेपर बीचमें कभी कभी इस रसको बन्द करके वमन और विरेचनके द्वारा मैनफलके द्वारा वमन कराकर और हरडके द्वारा जुल्लाब देकर कोठेको शुद्ध करलेना चाहिये। इस शुद्धिके पश्चात् फिर इस रसको सेवन करे। इस प्रकारसे जबतक पूर्ण आरोग्य लाभ न हो तबतक बराबर सेवन करे। इसको सन्निपातज कुष्ठमें महुवेके काढेके साथ और वातजकुष्ठमें त्रिकुटेके चूर्णके साथ देनेसे विशेष उपकार होता है। यह महातालेश्वर रस भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन किया जानेसे संग्रहणी, कामला, पाण्डुरोग, गुल्म, अर्श, हलीमक और क्षय इन सब रोगोंको नष्ट करता है॥ ३१-३६॥

कनकसुन्दर रस।

समतुलकनकोत्थव्योमसत्त्वोत्थपिष्टीं
द्विगुणबलिसमेतां गोलमध्ये विपाच्य।
त्रिकटुदहनवेल्लैर्वत्सनाभार्धभागै रस-

समनवशृंगीदारुयुक्तैः समस्तैः ॥ ३७ ॥
अजसलिलविदिष्टैर्गुंजया तुल्यगोलः
कुपितकफसमुत्थं हंति कुष्ठं गरिष्ठम् ।
तदपरमथ वातश्लेष्मजत्वग्विकारं
गुदगदमपि सर्वं वह्निमांद्यं सुनिंद्यम् ॥ ३८ ॥
तुष्टेन शंभुनादिष्टः सोऽयं कनकसुंदरः ।
त्वग्विकारविनाशाय कुबेराय महात्मने ॥ ३९ ॥

सुवर्णकी पिष्टी, और अभ्रकसत्त्वकी पिठी दोनों समान भाग और इन दोनोंकी बराबर गन्धक, सबको एकत्र मिलाकर खूब बारीक खरल करे । फिर शरावसम्पुटमें बन्द करके भूधर-पुटमें पकावे । इसके पश्चात् उसमें–त्रिकुटा, चीता, वायवि-डंग, और वत्सनाभ इन चारोंको समान भाग मिश्रित चूर्ण उक्त रससे आधा भाग और नवीन काकडासिंगी तथा देव-दारुका चूर्ण रसके बराबर भाग लेकर मिलावे, और बकरेके मूत्रमें खरल करके एक २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । यह रस निरन्तर सेवन करनेसे कफके प्रकोपसे उत्पन्न हुए दारुण कुष्ठको शीघ्र नष्ट करता है । इसके अतिरिक्त वातकफजन्य त्वचाके विकार, सब प्रकारके अर्श और अत्यन्त मन्द जठ-राग्नि आदि व्याधियोंको शमन करताहै । इस कनकसुन्दर रसको एक बार प्रसन्न हुए महादेवजीने, त्वचाके विकारोंको शमन करनेके लिये कुबेरसे कहाथा ॥ ३७–३९ ॥

हरिबोलांकुश रस ।

घनभवमृतसत्त्वं कांतलोहार्कभस्म
त्रिगुणरससमेतं तुल्यगंधेन युक्तम् ।

समतुलकृतमेभिष्टंकणं ताप्यचूर्णं
हरिदलमथ बोलं खण्डसंज्ञं मनोज्ञम् ॥ ४० ॥

अभ्रककी भस्मका सत्त्व, कान्तलोहभस्म और ताम्रभस्म तीनोंको समान भाग लेवे और तीनों भस्मोंके बराबर पारा और पारेकी बराबर गन्धक लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करके उसमें उक्त तीनों भस्मोंको मिलाकर खरल करे । फिर सुहागा, सुवर्णमाक्षिकभस्म, नीलेथोथेकी भस्म, बोल और शुद्ध खाँड इन पाँचोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण उपर्युक्त रसके बराबर भाग लेकर उसमें मिलाकरके १ दिनतक खरल करे । इस रसको उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठोंमें लाभ होताहै ॥ ४० ॥

त्रिपुरान्तक रस ।

रससममृतशृंगं शृंगवेरं विडंगं
मधुरदहनपाठासिंदुवारं च वंध्या ।
त्रिफलकनकबीजं ऋद्धिवृद्धी निशे द्वे
छगलसलिलपिष्टं सर्वमेतेन जाता ॥ ४१ ॥
लघुबदरजबीजस्थूलगोली नराणां
हरति पवनपित्तश्लेष्मसंजातकुष्ठम् ॥ ४२ ॥
उक्तास्त्रिपुरया पूर्वं रसोऽयं त्रिपुरांतकः ।
सर्वदोषोत्थकुष्ठघ्नः कृपानिघ्नमनस्कया ॥ ४३ ॥

पारेकी भस्म, सींगकी भस्म, अदरख, वायविडंग, मुलैठी, चीता, पाढ, सिह्वालू, बाँझककोडा, त्रिफला, धतूरेके बीज, ऋद्धि, वृद्धि, हल्दी और दारुहल्दी इन सब औषधियोंको समान

भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर बकरीके मूत्रमें खरल करके छोटे बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको नित्य सेवन करनेसे मनुष्योंके वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ दूर होताहै। पूर्वकालमें दयालु प्रकृतिवाली श्रीत्रिपुरादेवीने इस त्रिपुरान्तक रसको वर्णन कियाहै। यह रस सब प्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुए कुष्ठरोगको विनाश करनेवाला है ॥ ४१–४३ ॥

विश्वहितरस।

रसेंद्रलिप्तताम्रस्य पत्रं गंधकमारितम् ।
तत्ताम्रं पलमात्रं हि पलमात्रं तु यावकम्[1] ॥ ४४ ॥
पलं चूर्णितशुद्धालं मर्दयेत्तु दिनत्रयम् ॥
इति सिद्धो रसः प्रोक्तो नाम्ना विश्वहिता मतः ।
वल्लाभ्यां तुलितः सेव्यो मरीचघृतसंयुतः ॥ ४५ ॥

शुद्ध ताँबेके चार तोले कंटकवेधी पत्रोंको और दो तोले पारेको एकत्र खरल करे। जब समस्त पारा पत्रोंमें अच्छे प्रकारसे लिप्त होजायँ तब उनको सम्पुटके भीतर २ तोले गन्धकके बीचमें रखकर गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर पत्रोंको निकालकर,बारिक पीसलेवे । फिर उस भस्मसे आधा भाग गन्धक मिलाकर नींबूके रसमें खरल करके गजपुट देवे। इस तरह २० बार पुट देकर सिद्ध की हुई ताम्रभस्म ४ तोले, जवाखार ४ तोले और शुद्ध हरताल ४ तोले तीनोंको एकत्र मिलाकर ३ दिन तक खरल करे। इस प्रकार यह रस तैयार होताहै। यह सम्पूर्ण विश्वका हित करनेवाला कहा जाता

१ चाभ्रकमित्यपि पाठः

है । इसको प्रतिदिन दो २ रत्तीकी मात्रासे मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करना चाहिये इससे सब कुष्ठ दूर होते हैं ॥ ४४,॥ ४५ ॥

दशसारसूत रस ।

पालिकं व्योषसूताग्निगंधकं सफलत्रयम् ।
काकोदुंबरिकाक्षीरैर्मर्दितं गुटिकीकृतम् ॥ ४६ ॥
माषप्रमाणं सक्षौद्रं कुष्ठार्शःश्वासकासजित् ॥ ४७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पारा, चीता, गन्धक, हरड, बहेडा, और आमला इन औषधियोंको समभाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली करे, फिर अन्य औषधियोंको एकत्र चूर्ण कर उसमें कज्जलीको डाल करके कठूमरके दूधमें खरल करे और एक २ मासेकी गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली शहदमें मिलाकर खानेसे कुष्ठ, अर्श, श्वास और खाँसी ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कुष्ठकुठार रस ।

रसस्य कर्षं कर्षौ द्वौ गंधकात्कज्जलं तयोः ।
तिलपर्ण्यलिमुण्डीनां स्वरसैः कृतभावनम् ॥ ४८ ॥
कर्षकर्षंवचाधात्रीकणातीक्ष्णकृमिच्छिदान् ।
शाणं विषस्य कर्षार्धं जीरकस्य सितस्य च॥ ४९ ॥
पलार्धं मृतताम्रस्य तथा शुंठ्याश्च मर्दितम् ।
भृंगांभसि घटे स्निग्धे पचेच्चणकसंमिताः ॥ ५० ॥
वटिकाः कुष्ठविश्वाग्नित्रिफलासैंधवान्विताः ।
कुर्यात्कुष्ठकुठाराख्यो रसोऽयं सर्वकुष्ठजित् ॥ ५१ ॥

पारा १ तोला और गन्धक २ तोले दोनोंकी कज्जली

करके उसको लाल चन्दन, अरणी और गोरखमुण्डी इन प्रत्ये-कके स्वरसमें क्रमसे एक २ बार भावना देवे। फिर वच, आमले, पीपल, तीक्ष्णलोहभस्म और वायविडङ्ग ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला, शुद्ध वत्सनाभ ४ मासे, सफेद जीरा ६ मासे, ताम्रभस्म २ तोले और सोंठ २ तोले इन सब औषधि-योंको एकत्र कूटपीसकर कज्जलीमें मिलाकर खरल करे। इसके पश्चात् एक चिकने घडेमें भाँगरेका रस भरकर उसमें उक्त कज्जलीको डालकर पकावे। जब समस्त रस जलजाय तब नीचे उतारकर उसकी चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे। इस रसकी प्रतिदिन एकसे लेकर चार गोलीतक कूठ, सोंठ, चीता और त्रिफला इन औषधियोंके समान भाग मिश्रित चूर्णके साथ सेवन करे। यह कुष्ठकुठाररस सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ ४८-५१ ॥

वज्रशेखर रस ।

विष्णुक्रांता घनरसः सर्पाक्षी शंखपुष्पिका ।
गोजिह्वा क्षीरिणी नीली ब्रह्मवृक्षो रुदंतिका ॥ ५२ ॥
निचुलः काकमाची च रसैरेषां विमर्दितम् ।
पक्वं तुषकरीषाग्नौ रसद्विगुणगंधकम् ॥ ५३ ॥
पर्पटीरसवत्पक्वं खसत्वेनारुणेन च ।
पृथग्गंधकतुल्येन ताप्येन च रसांघ्रिणा ॥ ५४ ॥
कृतावापं वशिमुंडीहस्तिकर्ण्यमृतालिकाः ।
मूर्वाविदार्योश्च रसैर्मर्दितं घृतमिश्रितम् ॥ ५५ ॥
कषाये दशमूलस्य विपक्वं लेहतां गतम् ।
रसतुल्यत्रिजाताग्निव्योषयष्ट्याह्वसंयुतम् ५६ ॥

स्निग्धभांडगतं कुष्ठी क्षयी च कृतशोधनः ।
मंजिष्ठादिकषायस्य कृत्वा मासं निषेवणम् ॥
माषप्रमाणं सेवेत रसोऽयं वज्रशेखरः ॥ ५७ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोले लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । फिर उसको विष्णुक्रान्ता (कोइल), चुरनहार, नाकुलीकन्द, शंखपुष्पी, गोजिया, दुद्धी, नीलवृक्ष, ढकपन्ना, रुद्रवन्ती, बेंत और मकोय इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक २ बार खरल करके गोला बनालेवे । उसको सम्पुटमें बन्द करके गढेमें भूसीकी राशिमें रखकर उपलोंकी अग्निमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णमें दो तोले गन्धक डालकर खरल करले और कढाईमें घी चुपडकर उसमें उक्त रसको डालकर पिघलावे । जब वह अच्छे प्रकारसे पिघलजाय तब उसमें अभ्रक भस्म २ तोले, लाल वत्सनाभ २ तोले और स्वर्णमाक्षिक भस्म ३ मासे डालकर करछीसे सबको एकमएक करके पर्पटी तैयार करलेवे । शीतल होनेपर उसको खरल करके शतावर, गोरखमुंडी, हस्तिकन्द, गिलोय, अरणी, मूर्वा और विदारीकन्द इन औषधियोंके रसमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर सुखालेवे । फिर उस रसको घृतमें मिलाकर दशमूलके काढेके साथ पकावे । जब वह पककर अवलेहके समान गाढा होजाय तब उसमें इलायची, दालचीनी, तेजपात, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल और मुलैठी इन औषधियोंका एक २ तोला चूर्ण डालकर सबको घोटकर एकमएक करलेवे और शीतल होनेपर एक २ मासेकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा-

---

१ चन्द्रशेखरेति पाठोपि ।

लेवे । फिर उनको घीके चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे । प्रथम वमन, विरेचनादिके द्वारा शारीरिक शुद्धि करके फिर कुष्ठ-रोगी अथवा क्षयरोगी मंजिष्ठादि काथके साथ इस रसकी एक २ गोली सेवन करे । इस प्रकार निरन्तर एक महीनेतक इस रसको सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ और क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ५२-५७ ॥

दद्रुकुष्ठविद्रावण रस ।

अथवा पंचाङ्गकृतावटी या नागार्जुनवटी ।
रसगंधकताप्यालकांतकृष्णाभ्रभस्मकम् ।
हिंगुलं मधुकं कुष्ठं सर्वं समविभागिकम् ॥ ५८ ॥
अम्लवेतसतोयेन त्रिदिनं परिमर्दयेत् ।
विशोष्याज्यमधुभ्यां च मृदित्वा त्रिदिनं पुनः ॥५९॥
दत्त्वा जीर्णं गुडं तुल्यं कोलास्थिप्रमितावटीः ।
छायाशुष्काः प्रकुर्वीत शंभुमग्रे च पूजयेत् ॥ ६० ॥
इयं हि पंचांगकृताभिधाना नागार्जुनोक्ता
गुटिका च नूनम् । सर्वाणि कुष्ठानि विच-
र्चिकां च दद्रूणि विद्रावयाति क्षणेन ॥ ६१ ॥

पारा, गन्धक, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध हरताल, कान्त-लोहभस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध सिंगरफ, मुलैठी और कूठ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर अमलबेंतके रसमें ३ दिनतक खरल करके सुखालेवे । फिर घृत और शहदके साथ ३ दिन-तक खरल करके उसमें औषधिके समान भाग पुराना गुड मिलाकर झडबेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे और छायामें सुखाकर रखलेवे । इन गोलियोंको प्रथम श्रीशंकर-

भगवान्का पूजन करके सेवन करे । इस दद्रुकुष्ठविद्रावण रसको अथवा पंचांगकृत नामक वटीको श्रीनागार्जुनाचार्यने वर्णन कियाहै । ये गोलियाँ सब प्रकारके कुष्ठ, विचार्चिका और दाद इन सब रोगोंको क्षणभरमें निस्सन्दे दूर करदेती हैं ॥ ५८-६१ ॥

माणिक्यतिलक रस ।

रसगंधकताप्यालकांततीक्ष्णाभ्रभस्मकम् ।
हिंगुलं मधुकं कुष्ठं सर्वं समविभागिकम् ॥ ६२ ॥
शतमूलीनिजद्रावैर्मंजिष्ठादिकषायतः ।
त्रिदिनं त्रिदिनं सम्यक् परिमर्द्य विशोष्य च ॥ ६३॥
ततस्तु पक्कमूषायां सन्निरुद्ध्यातियत्नतः ।
प्रक्षिप्य वालुकायंत्रे प्रपुटेद्दिवसद्वयम् ॥ ६४ ॥
माणिक्यतिलको नाम रसो नासत्यकीर्तितः ।
एष कुष्ठं हरत्याशु सन्मित्रमिव हृद्व्यथाम् ॥ ६५ ॥

पारा, गन्धक, सोनामाखी, हरताल, कान्तलोह, तीक्ष्ण लोह और अभ्रक इनकी भस्म, सिंगरफ, मुलैठी और कूठ इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके शतावरके रसमें और मंजिष्ठादि क्वाथमें तीन २ दिनतक घोटकर सुखालेवे । फिर उसको एक मजबूत शीशीमें भरकर ऊपरसे कपरौटी करके दो दिन तक बालुकायन्त्रमें पकावे स्वांगशीतल होनेपर रसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस माणिक्य तिलक रसको अश्विनीकुमारजीने कहा है । यह रस सेवन करतेही सम्पूर्ण कुष्ठोंको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करता है, जैसे सच्चामित्र मित्रकी मानसिक वेदनाको तत्काल शमन करदेता है ॥ ६२-६५ ॥

परहितरस ।

श्वेतपाठा जटा श्वेता श्वेता चैव पुनर्नवा ।
पिष्ट्वा जलेन तत्कल्कैः प्रकुर्यान्नालमूषिकाम् ॥ ६६ ॥
स्थालीमध्ये च तां क्षिप्त्वा क्षिपेत्संशोधितं रसम् ।
क्षिपेदुपरि संपेष्य द्व्यञ्जलिप्रमितं पटु ॥ ६७ ॥
पिधानं तन्मुखे दत्त्वा सन्निरुध्याऽतियत्नतः ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं पिधान्यामंबु निक्षिपेत् ॥ ६८ ॥
यामत्रितयपर्यंतं जातेऽथ शिशिरे ततः ।
क्रोडकेशैः समाकृष्य मृतं पारदमाहरेत् ॥ ६९ ॥
न चेदेतावता भस्म पुनरेव पुटेद्रसम् ॥ ७० ॥
तद्भस्मातिविषं विषं कृमिहरं व्योषोत्तमा गंधजं
चूर्णं द्वादशहाटकं खलु गुडो द्वात्रिंशदंशोन्मितः ।
तत्सर्वं परिचूर्णितं प्रतिदिनं वल्लैश्चतुर्भिर्मितं
चेत्थं हंति समस्तरोगनिवहं नागं गरुत्मानिव ॥ ७१ ॥
विशेषात्सर्वकुष्ठघ्नो रसोऽयं परिकीर्तितः ।
ख्यातः परहितो नाम्ना भानुना भूरिभानुना ॥ ७२ ॥

सफेद फूलकी पाढ, सफेद चोंटली और सफेद पुनर्नवा तीनों औषधियोंको जलके साथ पीसकर कल्क करलेवे । उसकी नालवाली लम्बी मूषा बनाकर सुखालेवे । फिर उसको एक लम्बे कलशेमें रखकर मूषाके भीतर शोधित पारा भरदेवे और मूषाके ऊपर ३२ तोले सैंधानमक पीसकर डालदेवे । वह मूषा कलशके भीतर नमकमें ४ अंगुल परिमाण दबी रहे, इस प्रकार रक्खे । फिर कलशके मुँहपर पीतलका सीधा कटोरा ढककर सन्धियोंको बन्द करदे और कलशपर कपरौटी करके

सुखालेवे । पश्चात् उसको चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलावे और उस ढके हुए कटोरेमें जल भरदेवे । इस प्रकार तीन प्रहर तक पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब कटोरेकी तलीमें जमी हुई पारेकी भस्मको सूअरके बालोंसे अथवा पतले तारसे छुटालेवे । यदि समस्त पारदभस्म न हुआ हो अथवा पारा कुछ कच्चा रहगया हो तो फिर इसी प्रकार दुवारा पुटदेवे । इस प्रकार तैयार की हुई पारेकी भस्म, अतीस, वत्सनाभ, वाय-विडंग, त्रिकुटा, चोंटलीकी जड और गन्धक ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला, सुवर्ण भस्म १२ तोले और गुड ३२ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । इस रसको प्रतिदिन चार रत्ती परिमाण सेवन करे । यह रस समस्त रोगसमूहको इस प्रकार शीघ्र नष्ट करदेता है, जैसे गरुड सर्पको तत्काल भक्षण कर लेता है । विशेषकर यह रस सम्पूर्ण कुष्ठोंको नाश करनेके लिये कहा गया है । इस रसको परहित कहते हैं । इसको सूर्यके समान अत्यन्त प्रतापशाली श्रीभानु आचार्यने वर्णन कियाहै ॥ ६६-७२ ॥

तालकेश्वर रस ।

वीर्यं पुरारेरिह नागतुल्यं भागद्वयं
चाप्यथ तालकस्य । शुद्धेन नागेन
रसो विशुद्धो विमर्दनीयो हरितालकं च ॥ ७३ ॥
मूत्रं गवां षोडशभागमानं निधाय
भाण्डेऽथ पिधाय तस्मिन् । दीपा-
ग्निना तत्परिशोष्य सर्वं मूत्रं ततस्ता-
लकशुद्धता स्यात् । ततस्तु जंबीर
रसेन सर्वं विमर्दनीयं त्रिदिनं त्रिवारम् ॥ ७४ ॥

भाव्यं कुमार्याः सलिलेन भृंगवज्राह्वकं-
देन च वारयुग्मम् । कुष्ठे ददीतास्य
रसस्य वल्लत्रयं रसैरार्द्रकजैर्विजेतुम् ॥ ७५ ॥
शाखासु पक्वत्वमथो सुषुप्तिं स्तंभं च
मन्यास्वथ मण्डलानि । गवां पयः
शर्करया समेतं स्तंभातिरेके सति संनियोज्यम् ७६
औदुंबरं हंति सितामधुभ्यां कृष्णं च
कुष्ठं त्रिफलारसेन । गुडार्द्रकाभ्यां गज-
चर्मसिध्मविचर्चिकास्फोटविसर्पदद्रून् ॥ ७७ ॥
निहंति पाण्डुं विविधां विपादीं सरक्त-
पित्तं कटुकीसिताभ्याम् । रोगेषु सर्वे-
ष्वपि वासराणि त्रिसप्तसंख्यानि रसः प्रदेयः ७८ ॥
रसप्रयोगावसितौ सुषुप्त्यां क्वाथं पिबे-
च्छिन्नरुहासनोत्थम् । मासद्वयं मुद्गघृ-
तान्वितान्नं पथ्यं ततोदुंबरभेषजान्ते ॥ ७९ ॥
अंगानि पंचानि पलोन्मितानि दद्या-
दरिष्टस्य तथाऽऽढकीनाम् । क्वाथेन
युक्तं सघृतौदनं च पथ्याय कृष्णेप्यथ कृष्णवर्णे ८०
रसावसाने सितया समेतां पादोन्मिता-
मामलकीं प्रदद्यात् । अन्नं समुद्गं सघृतं
नियोज्यं मासद्वयं स्यादथ वा विचिह्नम् ॥ ८१ ॥

रसप्रयोगावसितौ प्रयुंज्यादंगानि पंच स्रवानिःसृतानि। पादोन्मितानीह च मासयुग्मं पथ्याय दुग्धौदनमाददीत ॥ ८२ ॥ स्यात्तालकेशाख्यरसप्रयोगे हि मांसं च विवर्जनीयम् ॥ ८३ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, मारण किया हुआ सीसा १ भाग और शुद्ध हरताल २ तोले लेवे। प्रथम सीसेके साथ पारेको मिलाकर २४ घंटे तक घोटे। जब समस्त पारा सीसेमें अच्छे प्रकारसे मिलजाय तब सीसेको शुद्ध हुआ जाने। फिर हरतालको एक कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे और उसको दोलायन्त्रमें अधर लटकाकर उसमें हरतालसे १६ गुना गोमूत्र भरदेवे फिर उस यन्त्रके मुँहको ढककर उसके नीचे दीपककी लोयके समान मन्द मन्द अग्निजलावे। जब सब गोमूत्र जलजाय तब हरतालको शुद्ध हुआ जानकर उसमेंसे निकाललेवे। इसके पश्चात् उपर्युक्त रस और हरतालको एकत्र खरल करके जम्बीरी नींबूके रसमें तीन दिनतक घोटे। फिर घीग्वारके रसकी ३, भाँगरेके रसकी २ दो और शकरकन्दीके रसकी २ दो भावना देकर सुखालेवे और बारीक चूर्ण करके रखलेवे। कुष्ठरोगमें इस रसको तीन २ रत्ती परिमाण अदरखके रसके साथ देनेसे कुष्ठरोग नष्ट होताहै शरीरके हाथ, पाँव आदि शाखा प्रशाखाओं, (अँगुलियाँ आदि) के पकजानेपर उनमेंसे पानी झडताहो, सुन्नी होगई हो, मन्या नाडी जकड गई हो, मण्डल कुष्ठ (शरीरमें लाल २ चकत्ते पडगये) हो और शरीरकी सन्धियें जकड गई हों तो इस रसको गायके दूधमें खांड मिलाकर उसके साथ देवे। यह रस मिश्री और मधुके साथ सेवन करनेसे औदुम्बर कुष्ठको, त्रिफलेके रसके साथ देनेसे

काले कुष्ठको और गुड तथा अदरखके साथ प्रयोग करनेसे गजचर्म, श्वेतकुष्ठ, विचर्चिका, विस्फोटक, विसर्प और दद्रु इन सब प्रकारके कुष्ठ रोगोंको नष्ट करताहै । एवं कुटकीके चूर्ण और मिश्रीके साथ इस रसको सेवन करनेसे पाण्डुरोग, अनेक प्रकारकी विपादिका और रक्तपित्त रोग दूर होताहै । सब प्रकारके रोगोमें इस रसको २१-२१ दिनतक सेवन कराना चाहिये सुप्तिरोग (शरीरके किसी भागका सुन्न पडजाना) में इस रसको सेवन करनेके बाद गिलोय और विजयसारके क्वाथका अनुपान करे । इस प्रकार इस रसको सेवन करते हुए दो महीने तक मूँगके यूपमें घृत डालकर उसके साथ भातका भोजन करे । औदुम्बर कुष्ठमें यह रस सेवन करनेके पश्चात् नीमके पंचांगका ४ तोले क्वाथ पान करे और अडहरकी दाल, घृत तथा भातका पथ्य सेवन करे । कृष्णवर्णके कुष्ठमें इस रसपर एक तोला परिमाण मिश्री और आमलोंके चूर्णका अनुपान करे और मूँगके मूष तथा घृतसहित भातका आहारकरे । इस प्रकार २ महीने तक पथ्य रखता हुआ मनुष्य इस रसको सेवन करे । अथवा जबतक रोगीके शरीरका वर्ण उज्ज्वल न होजाय तबतक बराबर इस रसको पथ्यसहित सेवन करे । किसी प्रकारके भी कुष्ठमें इस रसको प्रयोग करनेके पश्चात् दो महीनेतक प्रतिदिन एक २ तोला नीमके पंचांगका चूर्ण सेवन करे और दोही महीनेतक दूध भातका पथ्य रक्खे। इस तालकेश्वर रसका प्रयोग समाप्त करनेपर एक महीनेतक तक्र (मट्ठा) का परित्याग करदेना चाहिये ॥ ७३-८३ ॥

खगेश्वररस ।

पलेन[1] प्रमितः सूतः पलेन प्रमिता वसा ।
खगः पलै[2]मितः सर्वं मर्दयेदर्जुनद्रवैः ॥ ८४ ॥

---

१ पलद्वयमितेति पाठोऽपि । २ पंचपलेति पाठोपि ।

गोलीकृत्य विशोष्याथ गोलं कूप्यां निरुध्य च ॥ ८५ ॥
ततस्तां सुदृढे भाण्डे मूषां क्षिप्त्वा निरुध्य च ।
पचेत्सार्धदिनं पश्चात्स्वांगशीतं विचूर्णयेत् ॥
खगेश्वरो रसो वल्लप्रमितः कुटजान्वितः[1] ॥ ८६ ॥
श्वेतकुष्ठं निहंत्याशु श्वासकासगदानपि ।
सघृतः पित्तजं कुष्ठं मधुना मेहमेव च ॥
पथ्यं दोषानुरूपेण बुद्धेन[2] मुनिनोदितम् ॥ ८७ ॥

पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले और शुद्ध नीलाथोथा ४ तोले सबको अर्जुनकी छालके काढेमें खरल करके गोला बनाकर सुखालेवे । उस गोलेको आतशी शीशीमें रखकर ऊपरसे कपरौटी करके सुखाले और वालुकायन्त्रमें रखकर १॥ दिन, अर्थात् ३६ घंटे तक पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । यह रस प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण लेकर कूडेकी छालके चूर्ण या क्काथके साथ सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ, खाँसी, श्वास आदि रोगोंको शीघ्र नाश करता है । घृतके साथ सेवन करनेसे पित्तजकुष्ठको और मधुके साथ देनेसे प्रमेह रोगको दूर करता है । इसके सेवन करनेपर दोषानुसार पथ्य करे । इस रसको श्रीबुद्धमुनिने कहा है ॥ ८४-८७ ॥

कुष्ठनाशन रस ।

सूतभस्म द्विनिष्कं स्याद्गंधकं च चतुष्पलम् ।
सार्धं चतुष्पलं चित्रं चतुर्विंशत्पलं भवेत् ॥ ८८ ॥
बाकुचीबीजचूर्णस्य द्वादशैव मरीचकम् ।

---

१ कटुकान्वितः । २ दुग्धेन ।

सर्वमेकत्र संयोज्य निष्कद्वितयसंमितम् ॥ ८९ ॥
मधुना लेहयेत्प्रातः सर्वकुष्ठविनाशनः ॥ ९० ॥

पारेकी भस्म ८ मासे, गन्धक १६ तोले, चीतेकी जड १८ तोले, बावचीका चूर्ण २४ पल और मिरचोंका चूर्ण १२ पल लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । फिर इस रसको प्रतिदिन प्रातःकाल दो २ निष्क परिमाण लेकर शहदके साथ सेवन करे । यह रस समस्त कुष्ठोंको विनाश करनेवाला है॥८८-९०॥

आरोग्यवर्द्धिनी गुटिका ।

रसगंधकलोहाभ्रशुल्बभस्म समांशकम् ।
त्रिफला द्विगुणा योज्या त्रिगुणं तु शिलाजतु ॥ ९१ ॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥ ९२ ॥
निंबवृक्षदलांभोभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि ।
ततश्च वटिकाः कार्या राजकोलफलोपमाः ॥ ९३ ॥
मंडलं सेविता सैषा हंति कुष्ठान्यशेषतः ।
वातपित्तकफोद्भूताञ्ज्वरान्नानाप्रकारजान् ॥ ९४ ॥
देया पंचदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा ।
पाचनी दीपनी पथ्या हृद्या मेदोविनाशिनी ॥ ९५ ॥
मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्षं क्षुत्प्रवर्तिनी ।
बहुनात्र किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते ॥ ९६ ॥
आरोग्यवर्धनी नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्तिता ।
सर्वरोगप्रशमनी श्रीनागार्जुनयोगिना ॥ ९७ ॥

एक २ तोला पारा और गन्धककी कज्जली, लोहा, अभ्रक और ताँबेकी भस्म ये प्रत्येक एक २ तोला, त्रिफला सबसे दुगुना, शिलाजीत तिगुना, शुद्धगूगल चौगुना और चीतेकी जडभी चौगुनी लेवे । एवं कुटकी सम्पूर्ण औषधियोंके बराबर भाग लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको नीमके पत्तोंके काढेमें दो दिनतक खरल करके छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ निरन्तर ४० दिन तक सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करती हैं । एवं वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंसे तथा अन्यान्यकारणोंसे उत्पन्न हुए विविध प्रकारके ज्वरोंको निर्मूल करती हैं । ज्वरमें पाँच २ दिनके बाद इस रसकी एक गोली देवे । ये गोलियाँ अत्यन्त पाचक, अग्निको दीपन करनेवाली, सब प्रकारके रोगोंमें और हृदयके लिये हितकारी, मेदवृद्धिको विनाश करनेवाली, मलको शुद्ध करनेवाली और अत्यन्त भूखको लगानेवाली हैं । अधिक कहनेसे क्या ये गोलियाँ समस्तरोगोंमें श्रेष्ठ कही जाती हैं । इस आरोग्यवर्द्धिनी गुटिकाको श्रीनागार्जुन योगीने वर्णन किया है । यह वटी सम्पूर्ण रोगोंको शमन करनेवाली हैं ॥ ९१-९७ ॥

नारायणरस ।

रसभस्मसमानेन गंधकेन समन्वितम् ।
तुल्यभागपुरोपेतं तुल्यत्रिफलयाऽन्वितम् ॥ ९८ ॥
वातारितैलसंयुक्तं सेव्यं कर्षार्धसंमितम् ।
मासेन नाशयेत्कुष्ठं दुःसाध्यमपि देहिनाम् ॥ ९९ ॥
क्षयं भगंदरं शूलं मूलं गुल्मं च पाण्डुताम् ।

---

१ चपलोन्मितामिति पाठोपि ।

ग्रहणीं च महाघोरां मंदाग्निमपि दुस्तरम् ॥ १०० ॥
एवंविधान्महारोगान्विनिहंति न संशयः ।
श्लेष्मरोगान्हरेत्सर्वान् रसोनारायणाभिधः[2] ॥ १०१ ॥

पारद १ तोला और गन्धक १ तोला दोनोंकी कज्जली करके उसके साथ शुद्ध गूगल २ तोले और त्रिफलेका चूर्ण ४ तोले मिलाकर खरल करले । इस रसको प्रतिदिन छः २ मासे परिमाण अण्डीके तेलके साथ सेवन करे । इसको एक महीने तक निरन्तर सेवन करनेसे मनुष्योंके अत्यन्त कष्टसाध्य कुष्ठभी नाश होजाते हैं । यह नारायण रस–क्षय, भगन्दर, शूल, अर्श, गुल्म, पाण्डु, घोर ग्रहणी और दुस्तर मन्दाग्नि, इसी प्रकारके अन्यान्य भयंकर रोगों और सर्वप्रकारके कफके रोगोंको दूर करता है ॥ ९८–१०१ ॥

मेदिनीसार रस ।

पलत्रयं मृतं लोहं मृतं शुल्बं पलत्रयम् ।
भृंगराजांबुगोमूत्रैस्त्रिफलाक्वथितैः पृथक् ॥ १०२ ॥
पुटेत्त्रिवारं यत्नेन ततस्तस्मिन्विनिक्षिपेत् ।
अत्यम्लकांजिके पश्चात्पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १०३ ॥
ततश्च तुल्यगंधेन पुटानां विंशतिं ददेत् ।
पलमात्रं मृतं सूतं रुद्रांशममृतं तथा ॥ १०४ ॥
कटुत्रयं समं सर्वैः पिष्ट्वा सम्यग्विधारयेत् ।
रसोयं मेदिनीसारो नंदिना परिकीर्तितः ॥ १०५ ॥

---

१ विकृत च व्रण चापि ज्वरानपि विशेषतः । षण्मासेन जरामृत्युवलितंपलित हरेत् । इत्यधिकपाठः । २ नरनारायणाभिधः ।

सेवितो वल्लमानेन घृतत्रिकटुकान्वितः ।
हंति कुष्ठानि सर्वाणि श्वित्राणि विविधानि च १०६॥
गुल्म प्लीहामयं हिक्कां शूलं कुक्ष्यामयं तथा ।
उदावर्तं महावातं कफं मंदानलं तथा ॥ १०७ ॥
सर्पादिकं विषं घोरं व्रणं लूतां भगंदरम् ।
विद्रधिं चांत्रवृद्धिं च शिरस्तोदं च नाशयेत् ॥ १०८ ॥

लोहभस्म १२ तोले, ताम्रभस्म १२ तोले, दोनोंको एकत्र पीसकर भाँगरेके रसमें खरल करके गजपुट देवे । फिर गोमूत्रमें और उसके पश्चात् त्रिफलेके काढेमें खरल करके एक २ बार गजपुटमें पकावे । फिर उसको लोहेकी कढाईमें डालकर उसके नीचे मन्द मन्द अग्नि जलावे और थोडी २ बहुत खट्टी काँजी डालकर घोटे । इस प्रकार चार प्रहर तक पकावे । इसके पश्चात् उस रसमें समान भाग गन्धक मिलाकर २० बार बाराहपुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें पहले पुटके समान गन्धक मिलाता जाय । तदनन्तर उसमें पारेकी भस्म ४ तोले, शुद्ध मीठा तेलियाँ ११ वाँ भाग और समस्त औषधियोंके बराबर त्रिकुटेका चूर्ण डालकर खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रख देवे । इस मेदिनीसार रसको श्रीनन्दि आचार्यने निर्दिष्ट किया है इसको सदैव एक २ रत्तीकी मात्रासे त्रिकुटक चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह रस सब प्रकारके कुष्ठ, विविध प्रकारके श्वेतकुष्ठ, गुल्म, प्लीहा, हिचकी, शूल, कुक्षिगत शूल, उदावर्त्त, वातव्याधि, कफरोग, मन्दाग्नि, सर्पादि जीवोंके भयङ्कर विष, व्रण, मक-

---

१ विकलं ग्रह मदोन्मादं कर्णदतव्यथां तथा इति पाठोऽधिकः ।

डीका विष, भगन्दर विद्रधि, अन्त्रवृद्धि और शिरकी पीडा इन सब व्याधियोंको नाश करताहै ॥ १०२–१०८ ॥

जन्तुघ्नीगुटिका रस ।

सूतगंधौ समौ ताभ्यां मंडूरं सप्तमांशतः ।
विधाय कज्जलीमाखुकर्ण्या संमर्दयेद्व्यहम् ॥ १०९ ॥
ततो मण्डूरमानेन क्षुद्रदीप्यं विनिक्षिपेत् ।
आरुष्करकषायेण दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ११० ॥
ब्रह्मबीजं समुद्रस्य फलं जातीफलं तथा ।
विषतिंदुकबीजं च ताप्यं सर्वं समांशकम् ॥ १११ ॥
विडंगं सममेतैश्च सूक्ष्मचूर्णं प्रकल्पयेत् ।
रसतुल्यं हि तच्चूर्णं रसेन सह मेलयेत् ॥ ११२ ॥
वासा च निंबत्वग्वंशो वेल्लव्योषांबुदं तथा ।
एषां क्काथेन सप्ताहं त्र्यहं मूर्वाटके रसे ॥ ११३ ॥
भावयित्वा चणप्रायाः कर्तव्या वटिकाः शुभाः ।
अश्वनिंबादिजक्काथे प्रदत्तैका वटी शुभा ॥ ११४ ॥
पातयेज्जठराज्जंतून्सर्वदेहगदान्हरेत् ।
कुष्ठजंतून्निहंत्याशु द्वित्रिवारप्रयोगतः ॥ ११५ ॥

पारा और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे उसमें सातवाँ भाग मण्डूर भस्मको खरल करके मूसाकानीके रसमें दो दिनतक घोटे । फिर मण्डूरके बराबर उसमें अजवायन डालकर भिलावोंके काढेमें एक दिनतक खरल करे ।

१ पाषाण इति पाठोऽपि । २ दूर्वालकद्रवैरिति पाठोऽपि । ३ दुष्ट ।

पश्चात् ढाकके बीज, समुद्रफल, जायफल, कुचला, स्वर्णमाक्षिक भस्म और वायविडङ्ग इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे यह चूर्ण उक्त रसके साथ बराबर भाग मिलाकर अडूसा, नीमकी छाल, बाँसके अंकुर, वायविडंग, त्रिकुटा और नागरमोथा इन औषधियोंके एकत्र बनाये क्वाथमें ७ दिनतक भावना देवे और ३ दिनतक मूर्वाके रसमें भावना देवे। फिर चनेके बराबर गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली बकायन, नीम आदि कडवी औषधियोंके काढेके साथ देवे। ये गोलियाँ उदरस्थ जन्तुओंको निकालकर शीघ्र बाहर फेंकदेती हैं। कुष्ठके जीवाणुओंको दो तीन बार प्रयोग करनेपर ही नष्ट करदेती हैं और समस्त देहगत रोगोंको शीघ्र विनाश करती हैं ॥ १०९-११५ ॥

धन्वन्तरि रस।

सूतगंधार्कसौभाग्यकंकुष्ठं रक्तचन्दनम्।
कणा चैतानि तुल्यानि मर्दयेल्लुंगवारिणा ॥ ११६ ॥
एकाहमथ संशोष्य स्थापयेद्यतियत्नतः।
रसो निःशेषकुष्ठघ्नो धन्वंतरिरिति स्मृतः ॥ ११७ ॥
निर्दिष्टः शंभुना सर्वरोगभीतिविनाशनः।
पथ्याघृतयुतो वायुं सिंधुविश्वान्वितोऽपि वा ॥ ११८ ॥

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, सुहागा, कंकुष्ठ, लालचन्दन और पीपल इन सबको समान भाग लेकर बिजौरे नींबूके रसमें एक दिनतक खरल करके सुखालेवे। फिर पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे। यह धन्वन्तरिजीका कहा हुआ रस सम्पूर्ण कुष्ठोंको विनाश करनेवाला है। सम्पूर्ण व्याधियोंके भयको

दूर करनेवाले इस रसको श्रीशंकर भगवान्ने निर्दिष्ट किया है। इसको वायुके विकारमें अथवा वातज कुष्ठमें हरड और घृतके साथ अथवा सैंधानमक और सोंठके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ११६–११८ ॥

वज्रधार रस ।

वज्रासूताभ्रहेम्नां च भस्म योज्यं समं समम् ।
सर्वांशं तालकं तुल्यं शिग्रुधत्तूरजद्रवैः ॥ ११९ ॥
मर्द्यः स्नुह्यर्कजैः क्षीरैर्दिनैकं चाथ भावयेत् ।
सप्ताहं बाकुचीतैलैस्तन्माषैकं तु भक्षयेत् ॥ १२० ॥
वज्रधारो रसः ख्यातः सर्वकुष्ठनिकृंतनः ॥ १२१ ॥

हीरेके भस्म, पारदभस्म, अभ्रकभस्म और सुवर्णभस्म चारोंको समान भाग लेकर और चारों भस्मोंके बराबर हरताल लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । फिर सैंजनेके रस, धत्तूरेके पत्तोंके रस, थूहरके दूध और आकके दूधमें क्रमसे एक एक दिनतक भावना देवे । फिर सुखाकर बावचीके तेलमें ७ दिनतक खरल करे । इसको प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ निर्मूल होते हैं । इसको वज्रधार रस कहते हैं ॥ ११९–१२१ ॥

महातालेश्वर रस ।

तालं ताप्यं शिला सूतं शुद्धं सैंधवटंकणम् ।
समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगंधकम् ॥ १२२ ॥
गंधतुल्यं मृतं ताम्रं जंबीरैर्दिनपंचकम् ।
मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे ॥ १२३ ॥

पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतत्तु षट्पलम् ।
द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुष्पलम् ॥ १२४ ॥
जंबीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु ।
त्रिंशदंशं पुरं चास्मिन्क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ॥ १२५ ॥
माहिष्याज्येन संमिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत्सदा ।
मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु ॥ १२६ ॥
सर्वकुष्ठं निहंत्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ १२७ ॥

शुद्ध हरताल, सोनामाखीकी भस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध पारा, सैंधानमक और सुहागा ये प्रत्येक औषधि एक २ भाग, गन्धक २ भाग और ताम्रभस्म २ भाग लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । फिर जम्वीरी नींबूके रसमें पाँच दिनतक मर्दन करके गोला बनाकर सुखालेवे । उसको शरावसंपुटमें बन्द करके भूधरपुटमें पकावे । इस प्रकार ६ बार भूधरपुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें नींबूके रसमें घोटताजाय । इस विधिसे तैयार किया हुआ यह रस २४ तोले, ताम्र भस्म ८ तोले और लोहभस्म १६ तोले सबको एक दिनतक जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर लघुपुट देवे । फिर उससें ३० वाँ भाग शुद्ध गूगल डालकर एक दिनतक खरल करके शीशीमें भर-कर रखदेवे । इस रसको सदैव दो २ मासे परिमाण, भैंसके घीमें मिलाकर सेवनकरे और पीछेसे बावचीके एक तोले चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर अनुपानरूपसे चाटे । यह महातालेश्वर रस सब प्रकारके कुष्ठोंको बहुत शीघ्र नष्ट करता है ॥ १२२-१२७ ॥

कुष्ठकुठार रस ।

सूतभस्मसमं गंधं मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः ।
त्रिफला विषमुष्टी च चित्रकश्च शिलाजतु ॥ १२८ ॥

इत्येवं चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं निष्कषोडश ।
चतुःषष्टिकरंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १२९ ॥
चतुःषष्टिं मृतं ताम्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् ।
स्निग्धभाण्डगतं खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठजित् ॥ १३० ॥
रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिकृंतनः ।
पथ्यं त्रिमधुरं देयं तदभावे गुडौदनम् ॥ १३१ ॥
पातालगरुडीमूलं मधुपुष्पी च धान्यकम् ।
सितया भक्षयेत्कर्षमातितापप्रशुत्तये ॥
लिङ्गानागबलामूलं मध्वाज्यैर्वातितापनुत् ॥ १३२ ॥

पारेकी भस्म, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, गूगल, त्रिफला, कुचला, चीता और शिलाजीत ये प्रत्येक सोलह २ निष्क (एक निष्क चार मासेका होताहै), करंजके बीजोंका चूर्ण ६४ निष्क, और ताम्रभस्म ६४ निष्क लेकर सबको एक दिनतक एकत्र खरल करके चिकने वर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस रसको दो २ निष्क परिमाण, मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करे । यह कुष्ठकुठार रस सब प्रकारके कुष्ठोंको विशेषकर गलत्कुष्ठोंको निवारण करता है । इसके ऊपर दूध, मिश्री और मधु इनतीनोंके साथ हितकर पदार्थोंका पथ्य देवे और इनके अभावमें गुड, भातका पथ्य देवे । यदि इस रसके सेवनसे शरीरमें अधिक दाह हो तो उसको शमन करनेके लिये पातालगरुडीकी जड, मुलैठी और धानियाँ इन सबके एक तोला चूर्णको मिश्रीमें मिलाकर भक्षण करे । और गंगेरनकी जडके चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे तो वमन, अत्यन्त ताप, दाह आदि उपद्रव दूर होजाते हैं ॥१२८–१३२॥

---

१ जलौदनम् ।

स्वर्णक्षीररस ।

हेमाह्वां पंचपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघंटे पचेत् ।
तक्रे जीर्णे समुद्धृत्य पुनः क्षीरघंटे[2] पचेत् ॥ १३३ ॥
क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य जलैः प्रक्षाल्य शोषयेत् ।
तच्चूर्णितं पंचपलं मरिचानां पलद्वयम् ॥ १३४ ॥
पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत् ।
निष्कैकं सुप्तकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीररसो ह्ययम् ॥ १३५ ॥

स्वर्णजीवन्तीकी जडको २० तोले लेकर मोटा २ कूटकरके १६ गुने तक्र (मठा या छाछ) में मिलाकर एक घडेमें भर-कर पकावे जब समस्त तक्र जलजाय तब उस औषधिको १६ गुने दूधमें दूसरे घडेमें भरकर पकावे । दूधके जलजाने पर उसको जलसे धोकर सुखालेवे । फिर उसका बारीक चूर्ण करके वह चूर्ण ५ पल लेवे, मिरचोंका चूर्ण २ पल और मूर्च्छित पारा १ पल लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । यदि सुप्तकुष्ठ (शरीरके किसी अङ्गमें सुन्नी होना) वाला रोगी इस रसको प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करे तो सुप्तकुष्ठ शीघ्र नष्ट होताहै ॥ १३३-१३५ ॥

त्रैलोक्यविजय रस ।

सूतभस्मसमं गन्धं मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः ।
त्रिफला विषमुष्टीश्च चित्रकश्च शिलाजतु ॥ १३६ ॥
वरुणाम्लेन संचूर्ण्य प्रतिनिष्कद्वयं द्वयम्[1] ।
क्षिपेत्तस्मिन्विशोष्याथ क्रमान्निष्कं सदा लिहेत् ॥
त्रैलोक्यविजयश्चासौ सर्वकुष्ठहरो रस ॥ १३७ ॥

---

१ पुटे । २ पुटे ।

पारेकी भस्म, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, गूगल, त्रिफला, कुचला, चीता और शिलाजीत प्रत्येक औषधिको आठ २ मासे परिमाण लेकर वरुण नामक कॉजीके साथ खरल करके सुखा लेवे। फिर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको प्रतिदिन चार २ मासे सेवन करे। यह त्रैलोक्य विजय रस सम्पूर्ण कुष्ठोंको हरनेवाला है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

द्वितीय त्रैलोक्यविजय रस।

रसं गन्धं विषं तालं स्वर्णक्षीरी रुदंतिका ।
वरुणाम्लेन संचूर्ण्य प्रतिनिष्कद्वयं द्वयम् ॥
त्रैलोक्यविजयः सर्वकुष्ठघ्नो निष्कमात्रया ॥ १३८ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाभ, हरताल, स्वर्णक्षीरी और रुदन्ती ये प्रत्येक औषधि आठ २ मासे लेकर वरुण-कॉजीमें सबको खरल करके सुखालेवे। यह रसभी प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण सेवन करनेसे समस्त कुष्ठोंको नाश करताहै ॥ १३८ ॥

कुष्ठान्तपर्पटी रस ।

पलकं शुद्धसूतस्य कर्षैकं शुद्धगंधकम् ।
गंधतुल्यं मृतं ताम्रं सूतांशं मर्दयेद्विषम् ॥ १३९ ॥
सर्वतुल्यं पुनर्गंधं दत्त्वा किंचिद्विघट्टयेत् ।
घृताभ्यक्ते लोहपात्रे पच्याद्यावद्द्रवीभवेत् ॥ १४० ॥
रंभापत्रे पटे वाथ पातयेत्पर्पटीं तदा ।
माषैकं चूर्णितं खादेद्गजचर्म नियच्छति ॥
निष्कैकं बाकुचीचूर्णं लेहयेदनुपानकम् ॥ १४१ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गन्धक १ तोला, ताम्रभस्म १

तोला, और शुद्ध वत्सनाभ ४ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करलेवे । फिर समस्त रसके बराबर गन्धक मिलाकर खरल करे । इसके पश्चात् लोहेकी कढाईमें घृत चुपडकर उसमें इस रसको डालकर मन्द मन्द अग्नि द्वारा पिघलावे। जब रस पिघलकर पतला होजाय तब उसको केलेके पत्तेपर अथवा कपडेके ऊपर ढालकर पर्पटी तैयार करलेवे । शीतल होनेपर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ माना परिमाण सेवन करे और ऊपरसे चार मासे बावचीके चूर्णको शहदमें मिलाकर अनुपान करे तो गजचर्म कुष्ठ दूर होताहै ॥ १३९–१४१ ॥

कासीसबद्ध रस ।

पलं रसं हि कासीसैर्युतं पंचगुणैः सह ।
मर्दयेद्यामपर्यंतमर्जुनस्य त्वचो रसैः ॥ १४२ ॥
शरावसंपुटे रुद्धा पुटेत्क्रोडपुटेन हि ।
रसः कासीसबद्धोऽयं मधुना वल्लतुल्यकः ॥ १४३ ॥
शाणबाकुचिकायुक्तः सेवितो हंति निश्चितम् ।
त्रिभिर्मासैः किलासं हि दद्रूण्यपि विशेषतः॥ १४४॥

पारेकी भस्म ४ तोले और शुद्ध हीराकसीस २० तोले दोनोंको एकत्र पीसकर अर्जुनकी छालके काढेमें एक प्रहरतक खरल करे । फिर गोला बनाकर उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके बाराहपुटके द्वारा पुटपाक करे । यह कासीसबद्ध रस कहलाताहै । इसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण लेकर चार मासे बावचीके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करे । इस प्रकार तीन महीनेतक इस रसके सेवन करनेसे किलास कुष्ठ और विशेषकर दद्रुकुष्ठ अवश्य नष्ट होताहै ॥१४२–१४४॥

सर्वेश्वर रस ।

शुद्धसूतं चतुर्गंधं खल्वे यामं विमर्दयेत् ।
मृतताम्राभ्रलोहानि हिंगुलं च पलं पलम् ॥ १४५ ॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।
माषैकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥ १४६ ॥
जंबीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥ १४७ ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुनाऽग्निना॥ १४८ ॥
आदाय चूर्णयेत्सूक्ष्मं पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ १४९ ॥
द्विगुंजं भक्षयेत्क्षौद्रैः सुप्तमंडलकुष्ठजित् ।
बाकुचीं देवदारुं च कर्षमात्रं सुचूर्णितम् ॥ १५० ॥
लिहेदेरंडतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम् ।
गुग्गुलुं योगराजं वा योज्यं मंडलशांतये ॥ १५१ ॥

शुद्ध पारा १ तोला और शुद्ध गन्धक ४ तोले दोनोंको एक प्रहर तक खरल करके कज्जली करलेवे। फिर उसमें ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म और शुद्ध सिंगरफ ये प्रत्येक चार २ तोले, सुवर्णभस्म १० निष्क (१ तोला ४ मासे,) चाँदीकी भस्म १० निष्क, हीरेकी भस्म १ मासा, और हरतालभस्म ८ तोले इन सबको मिलाकर जम्बीरी नींबू, धतूरा, अडूसा, थूहर, आक, कुचला और कनेर इन औषधियोंके स्वरस अथवा काथमें क्रमसे एक एक दिन तक खरल करे। इस प्रकार ७ दिन तक सातों औषधियोंके रसमें घोटकर गोला बनाकर सुखालेवे।

उस गोलेको वस्त्रमें लपेटकर सम्पुटमें बन्द करे कपरौटी करे और बालुकायन्त्रमें रखकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा ३ दिन तक पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण कर लवे। उस चूर्णमें शुद्ध वत्सनाभ ४ तोले और पीपलका चूर्ण ८ तोले मिलाकर खरल करलेवे। इस प्रकार यह सर्वेश्वर रस सिद्ध होता। इस रसको प्रति दिन दो २ रत्ती परिमाण शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे बावची और देवदारुके एक तोला चूर्णको अण्डीके तेलमें मिलाकर अनुपान करे तो सुप्तकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ दूर होता है। मण्डल कुष्ठको शान्त करनेके लिये इसपर योगराज गूगलका अनुपान करना बहुत ही उपयोगी है॥ १४५–१५१॥

श्वित्रारि रस।

कासीसरसगंधानि मर्दयेत्सुरसारसैः।
संपुटे पुटयेद्दत्त्वा शार्ङ्गेरीमधरोत्तराम्॥ १५२॥
सर्वमेतच्च संचूर्ण्य तण्डुलान्दश सप्त वा।
आरभ्य वर्धयेद्यावत्पंचषाष्टिक्रमेण हि॥ १५३॥
अनुपानाय मध्वाज्यं दध्याज्यं नवनीतकम्।
धात्र्यार्द्रकरसैश्चैव तिंदुकं कदलीफलम्॥ १५४॥
श्वित्रारिसंज्ञितो ह्येष श्वित्रकुष्ठनिषूदनः॥ १५५॥

शुद्ध हीराकसीस पारा और गन्धक इन तीनोंको समान भाग लेकर तुलसीके पत्तोंके रसमें घोटकर गोला बनालेवे। फिर एक सम्पुटमें नोनिया घासको पीसकर ऊपर नीचे उसकी लुगदी रक्खे और उसके बीचमें उक्त गोलेको रखकर कपरौटी करके भूधर पुटमें पकावे। स्वांगशीतल होजाने पर

उस गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको प्रथम दिन ७ चावलकी मात्रासे सेवन करना शुरू करे फिर प्रति दिन क्रमसे एक दो चावलकी मात्रा बढाता हुआ ६५ चावल तक मात्रा बढावै । फिर हमेशा इतनीही मात्रासे सेवन करे इस पर शहद घृत दही घृत या मक्खन अथवा आमले और अदरखके रसका अनुपान करे और सुपक्व तेंदूके फल व केलेकी फलीका पथ्य सेवन करे । इस प्रकार सेवन करने पर यह श्वित्रारि रस श्वेतकुष्ठको शीघ्र नष्ट करता है । जब सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाय और रसका सेवन बन्द करना हो तो प्रतिदिन एक २ चावल भर मात्रा घटाता जाय, जब ७ चावल तक आजाय तब छोडदेवे ॥ १५२–१५५ ॥

चन्द्रप्रभावटिका रस ।

पिष्टो निंबुकगोमयूरसलिलैः सार्धो रसो गंधका-
न्मूषायां घननादपिण्डसहितं पक्वं करीषे तिलान् ।
बाकुच्याश्च फलानि गोजलकृता चंद्रप्रभेति श्रुता
श्वित्रं तक्रभुजो निहंति वटिकाः क्षाराम्लतैलं त्यजेत् १५६

गन्धक ४ तोले और पारा ६ तोले दोनोंकी कज्जली करके उसको नींबूके रस गोमूत्र और चिरचिटेके रसमें क्रमसे एक २ बार खरल करके गोला बनालेवे । फिर चौलाईकी जडके कल्क का उस गोलेके ऊपरदो २ अँगुल ऊँचा लेपकरके सुखालेवे और उसको मूषामें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा भूधरपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करलेवे । फिर उसमें तिल और बावचीका चूर्ण रसके बराबर भाग मिलाकर गोमू-

१ सालिलेनार्धो ।

थके साथ खरल करके चनेके समान गोलियाँ बनालेवे । इस रसको चन्द्रप्रभा वटिका कहते हैं । ये गोलियाँ सेवन करते समय छाछ और भातका भोजन करे और क्षारवाले तथा अम्ल पदार्थ और तैल आदिका परित्याग करदेवे तो श्वेतकुष्ठ दूर होता है ॥ १९६ ॥

किलासनाशन रस ।

रसाद्द्विगुणगंधकं त्रिगुणताम्रलिप्तं पचेद्-
गृहीतमनुकज्जलीं खदिरबाकुचीनिंबजैः ।
रसैः पुटविपाचितं समलयाकषायं पिबे-
त्किलासमरुणं सितं जयति शुद्धतक्राशिनः ॥ १९७ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग और ताँबेके कंटकवेधी पत्र ३ भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली करलेवे उसको नींबूके रसमें घोटकर पत्रोंके ऊपर लेप करदेवे । उन पत्रोंको शरावसम्पुटमें बन्द करके गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर पत्रोंको निकालकर खैरके रसमें घोटकर गजपुट देवे फिर एक गजपुट बावचीके रसमें घोटकर और एक पुट नीमकी छालके रसमें घोटकर देवे । फिर बारीक खरल करलेवे । इस रसको उपयुक्त मात्रासे सेवन कर ऊपरसे बावचीका क्वाथ पान करे और छाछ भात आदिका पथ्य करे तो लाल तथा श्वेत कुष्ठ दूर होता है ॥ १९७ ॥

उदयादित्य रस ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ।
तद्गोलं हंडिकामध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत् ॥ १९८ ॥

---

१ भृङ्गजैः । २ कठममरसलयु मलयापदेनापि त्रिवृताग्रहणमेव ।

सूतकात्त्रिगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन वै ।
पार्श्वे भस्म निधायाऽथ पात्रेऽर्धे गोमयं जलम् ।१५९।
किंचित्किंचित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत् ।
चंडाग्निनोद्धृत्य ततः स्वांगशीतं विचूर्णयेत्॥ १६०॥
काकोदुंबरिकावह्नित्रिफलाराजवृक्षकम् ।
विडंगं बाकुचीबीजं क्वाथयेत्तेन भावयेत् ॥ १६१ ॥
दिनैकमुदयादित्यो रसो भक्ष्यो द्विगुंजकः ।
खदिरस्य कषायेण बाकुचीबीजचूर्णकम् ॥ १६२ ॥
तुल्यं मृद्वग्निना पिण्डं जातं यावत्पचेल्लघु ।
त्रिनिष्कं तद्र्विक्षीरैः[1] क्वाथैर्वा त्रैफलैस्तु ॥ १६३ ॥
त्रिदिनांते भवेत्स्फोटः सप्ताहे वा न संशयः ।
नीलीं गुंजां च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकाम्॥ १६४॥
सूर्यावर्तं चाम्लपर्णीं तुल्यं पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ।
स्फोटस्थाने प्रशांत्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥
श्वेतकुष्ठं निहंत्याशु साध्यासाध्यं न संशयः॥ १६५॥

शुद्ध पारा ४ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके एक दिन तक घीग्वारके रसमें खरल करे। फिर उसका गोला बनाकर सुखालेवे और उस गोलेको एक हाँडीमें रखकर हाँडीके मुँहपर १२ तोले शुद्ध ताम्रपत्रोंकी एक कटोरी बनवाकर औंधी करके ढकदेवे। फिर उसकी सन्धियोंको चिकनी मिट्टीसे लहेसकर कटोरीको चारों तरफ राखसे दाबदेवे। इससे पहले उस हाँडीके आधे हिस्सेमें

[1] तद्रवांक्षीरैः ।

गोबरका रस भरदेवे। फिर हाँडीके ऊपर ढक्कन ढककर उसमें एक छेद करदेवे और उसको चूल्हेपर, चढाकर दो प्रहरतक तीक्ष्णअग्निके द्वारा पकावे। और हाँडीपर ढकेहुए पात्रमें थोडा थोडा जल डालता जाय। स्वाङ्गशीतल होनेपर ताँबेकी कटोरी सहित गोलेको निकालकर बारीक पीसलेवे इसके पश्चात् उसको कठूमरकी जड, चीतेकी जड, त्रिफला, अमलतास, वायविडंग और बावची इन प्रत्येकके क्वाथमें एक २ दिनतक भावना देकर सुखालेवे और सूक्ष्म चूर्ण करके रखलेवे। इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती परिमाण सेवन करे और इसके ऊपर निम्नलिखित औषधका अनुपान करे। खैरके काढेमें समान भाग बावचीके चूर्णको पीसकर गोला बनालेवे उसको सम्पुटमें बन्द करके मन्द २ अग्निके द्वारा लघुपुटमें पकावे। फिर चूर्ण करके उसको एक तोला लेकर आकके दूध अथवा त्रिफलेके काढेमें मिलाकर सेवन करे। इस रसके सेवन करनेसे तीसरे दिन अथवा सात दिनके बाद् श्वेतकुष्ठके स्थानमें फोडा उत्पन्न होताहै, उसके ऊपर नील, चोंटली, कसीस, धतूरा, लाल लज्जालु, हुलहुल और अम्लनोनिया इन सबको समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर लेप करे। इस प्रकार सात दिन तक बारम्बार लेप करनेसे वह फोडा शान्त होजाता है और साध्य अथवा असाध्य सब प्रकारका श्वेतकुष्ठ निस्संदेह शीघ्र दूर होताहै॥१९८-१९९॥

श्वित्रान्तक रस।

सूते पले भूधरयंत्रमध्ये संजारये-
द्वंधपलं तवश्च। सूतेन गंधस्य
पलत्रयं च दत्त्वाथ निंबुत्थरसौर्विमर्द्य ॥ १९९ ॥

स्वर्णाह्विकाबाकुचिकाग्निभृंगकोरंटनीरैः
परिमर्दयेत । दिनैकमेकं कटुतुंबि-
नीजलैर्मर्द्यं ततः काचजकूपिकांतः ॥ १६७ ॥
निक्षिप्य भाण्डे सिकतोदरांतर्यामद्वयं
स्वेदयतं ततश्च । ददीत वल्लद्वयमस्य
कृष्णपर्णेन सार्धं त्वथ वा तदर्धम् ॥ १६८ ॥
पलाशमूलं त्वनुपाययीत तक्रेण सार्धं च
ददीत पथ्यम् । उष्णं क्षिपेत्तैलविमर्दितं च
स्फोटा यदि स्युः सहसा च गात्रे ॥ १६९ ॥
पलत्रयं गंधकभृंगकृष्णतिलोत्थतैलं
कटुतुंबिनी च । भल्लाततैलं कटु
निंबबीजं सर्वं समानं परिभावयेत ॥ १७० ॥
त्रिः सप्तकं भृंगरसैः कृतोयं श्वेतारियोगः
समुपैति सिद्धिम् । पलार्धमानेन ददीत
चामुं सिताघृताक्तं दिनजन्मकाले ॥ १७१ ॥
विवर्जयेत्सूरणमाषमांसवृंताकुकद्धानि
कषायकादि । कुमागर्जं तीक्ष्णरकस
सागरैर्वलाष्टिका भास्करलोकभाषया ॥
कल्कीकृतं यन्मधुना च संयुतं
करोति तारं भ्रमरप्रभं च तत् ॥ १७२ ॥

---

१ उमागर्जतीक्ष्णकृत्यसागरैर्वसुदिशेति पाठो अन्यत्र पुस्तके ।

एक मूषामें चार तोले पारा भरकर उसके ऊपर एक दूसरी मूषा ऐसी रक्खे जो पहली मूषाके भीतर घुसजाय और ऊपर-वाली मूषाकी तलीमें छिद्र करके उसमें चार ४ तोले गन्धक भरकर उसका मुँह बन्द करदेवे फिर कपरौटी करके उसको भूधरयन्त्रमें रखकर आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा गन्धक जारण करे। स्वांगशीतल होनेपर नीचेकी मूषामेंसे रसको निकालकर उसमें १२ तोले गन्धक मिलाकर नींबूके रसके साथ एक दिन तक खरल करके सुखालेवे । फिर मालकांगनी, बावची, चीता, भाँगरा, पीली कटसरैया और कडवी तोंबी इन औषधियोंके रसमें क्रमसे पृथक् पृथक् एक २ दिनतक खरल करे। फिर सुखाकर उसको काँचकी शीशीमें भरकर और शीशीका मुँह बन्द करके उसपर कपरौटी करके सुखालेवे। फिर उस शीशीको बालुकायन्त्रमें रख उसके गले पर्यन्त रेता भरकर ६ घंटे तक तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे। स्वाङ्ग-शीतल होनेपर शीशीको फोडकर उसमेंसे रसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस रसको प्रतिदिन दो दो रत्ती अथवा एक २ रत्ती परिमाण नागरबेलके पानके साथ देवे, ऊपरसे ढाककी जडके काढेका अनुपान करावे और ताजे मट्ठेके साथ भातका पथ्य देवे। यदि इस रसके सेवनसे कुष्ठस्थानमें गरमी और दाह मालूम हो तो तेलकी तिलके मालिश करे। यदि शरीरमें एकदम फोडे निकल आवें या छाले पडजायँ तब गन्धक, काला भाँगरा, काले तिलोंका तेल, कडवी तोंबी, भिलावोंका तेल और नींबकी निंबौली इन सब औषधियोंको १२ तोले लेकर प्रथम एकत्र खरल करलेवे,फिर २१ दिन तक भाँगरेके रसमें घोटकर सुखालेवे। इस प्रकार तैयार की हुई इस औषधको श्वेतारियोग कहते हैं। इस औषधको प्रातिदिन प्रातः-काल दो २ तोले परिमाण लेकर मिश्री और घृतमें मिलाकर

सेवन करावे । इससे उक्त फोडे या छाले अल्पकालमें ही नष्ट होकर श्वेतकुष्ठ दूर होताहै । यदि श्वित्रान्तक रसका सेवन न होसके तो केवल इस श्वेतारियोगका सेवन करनेसेभी श्वेतकुष्ठ दूर होजाताहै । इस रस अथवा चूर्णके सेवन करनेपर जिमींकन्द, उडद, मांस, बैंगन, मूँग, कषैले पदार्थ और अन्यान्य हानिकर पदार्थोंका सर्वथा परित्याग करदेना चाहिये । इस रसके सेवन करते समय कुष्ठके ऊपर निम्नलिखित औषधियोंका प्रलेपभी करते रहना चाहिये । पतंग, शरफोका, समुद्रशोष, बावची, आककी जड और कोइलकी जड इन सबका कल्क करके शहदमें मिलाकर प्रलेप करनेसे चाँदीभी भौंरेके समान काली होजाती है, फिर श्वेतकुष्ठकी तो बात ही क्या है ॥ १६६–१७२ ॥

श्वित्रकुष्ठारि रस ।

रसगंधकतुत्थार्कबाकुचीक्वाथमर्दितम् ।
सेवितं सोमतैलेन श्वित्रकुष्ठं नियच्छति ॥ १७३ ॥

पारा और गन्धककी कज्जली, तूतियाकी भस्म और ताम्रभस्म सबको समान भाग लेकर बावचीके क्राथमें एक दिन तक खरल करके बावचीके तेलके साथ सेवन करे तो श्वेतकुष्ठ दूर होता है ॥ १७३ ॥

स्नुह्यादि तैल ।

स्नुह्याः कुडवं पयसः प्रस्थं दुग्धस्य नारिकेरस्य ।
गंधकविषयोः कर्षं पारदकर्षं च साधु संयोज्यम् ॥ १७४ ॥
खरतरकिरणातापात्पक्वं तैलं विलेपितं प्राज्ञैः ।
कुष्ठकिटिभेऽपहंति प्रबलं च समीरणं हन्यात् ॥ १७५ ॥

एक तोला पारा और १ तोला गन्धक लेकर दोनोंकी

कज्जली करके उसमें १ तोला वत्सनाभ मिलाकर उस कज्जलीको १६ तोले थूहरके दूध और १ प्रस्थ नारियलके जलके साथ पत्थरके खरलमें खूब अच्छे प्रकारसे घोटे । फिर उसमें ३२ तोले तेल डालकर खरलको तीक्ष्ण धूपमें रखदेवे। जब समस्त जल शुष्क होजाय और तेलमात्र शेष रहजाय तब उसको छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस तेलकी मालिश करनेसे किटिभ कुष्ठ आदि सामान्य कुष्ठ और प्रबल वातव्याधि शान्त होती है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

आरग्वधादितैल ।

आरग्वधरसो गुंजाबाकुचीगंधकत्रयैः ।
सरसैःकंगुणीतैलं जयेत्सिध्ममुदुंबरम् ॥ १७६ ॥

अमलतासका रस, घुंघुची, बावची, गन्धक, हरताल, मैनसिल और पारा इन सबको सम भाग लेकर एकत्र खरल करके चौगुने मालकांगनीके तेलमें डालकर तेलको पकावे। यह तेल सिध्मकुष्ठ उदुम्बर कुष्ठको दूर करताहै ॥ १७६ ॥

गन्धपिष्टी तैल।

विपक्का कटुतैलेन पामाहृद्गंधपिष्टिका ॥ १७७ ॥

गन्धकको अमलतासके रसमें घोटकर सरसोंके तेलके साथ मिलाकर तेलको पकावे। इस तेलको मलनेसे खुजली दूर होती है ॥ १७७ ॥

सर्वकुष्ठान्तकृत्तैल ।

कृष्णाभ्रकं बलिवसां नीलज्योतीरसं रसम् ।
कंगुणीनिंबकार्पासतैलं चाऽग्यासि मर्दयेत् ॥ १७८ ॥
तज्जयेत्सर्वकुष्ठानि बहिरंतश्च मर्दितम् ॥ १७९ ॥

काली अभ्रककी भस्म, गन्धक और पारा तीनोंको समान

भाग लेकर प्रथम पारा और गन्धककी कज्जली करले, फिर उसमें अभ्रककी भस्म मिलाकर बावचीके रसमें एक दिनतक खरल करे । इसके पश्चात् उसमें चौगुना बावचीका रस और पारा, गन्धक अभ्रक इन प्रत्येकसे चौगुना मालकाँगनीका तेल, नीमका तेल और बिनौलोंका तेल डालकर लोहेके खरलमें खूब घोटे, फिर चूल्हेपर चढाकर पकावे और तेलमात्र अवशिष्ट रहनेपर उतारलेवे । इस तेलको पान करने और मालिश करनेसे सम्पूर्ण कुष्ठ नाश होते हैं ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

कुष्ठविद्रावण तैल ।

द्वात्रिंशत्पलबाकुचीशृतजलद्रोणांघ्रिशेषे चतु-
र्विंशत्या दनुजस्य कांतरसयोर्निष्कैः पृथक् पंचभिः ।
तांबूलीरसमर्दितैस्तिलभवप्रस्थं शृतं चिक्कणे
पाके सत्यवतार्य कल्कसहितं धान्ये द्विपक्षं क्षिपेत् ८०
तत्क्षीराज्ञाशिना पीतं लिप्तं कुष्ठकुलान्तकम् ।
श्वित्रं दाहजमश्वेतं रूपसूलं च लुंपति ॥ १८१ ॥

बावचीको ३२ पल लेकर एक द्रोण परिमाण जलमें पकावे, चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर गन्धक २४ पल, पारा ५ निष्क और कान्तलोह भस्म ५ निष्क लेकर सबको पानोंके रसमें घोटकर कज्जली करलेवे । इस कज्जलीको और एक प्रस्थ तिलके तेलको उपर्युक्त काढेमें डालकर पकावे । जब पककर तेल मात्र शेष रहजाय तब उसको उतारकर किसी मिट्टीके चिकने बासनमे अथवा शीशीमें भरकर और उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द कर धान्नोंके ढेरमें गाडकर रखदेवे । एक महीनेके बाद उसको निकालकर छानलेवे । इस तेलको पान करने और मर्दन

करनेसे एवं दूध, भातका भोजन करनेसे समस्त कुष्ठ समूल नष्ट होजाते हैं। विशेषकर श्वेतकुष्ठ, दाहजनित मण्डलकुष्ठ, काला कुष्ठ ये सब दूर होजाते हैं॥ १८०॥ १८१॥

वज्रतैल।

वज्रक्षीरं रविक्षीरं धत्तूरं चित्रकद्रवम्।
महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम्॥ १८२॥
पचेत्तैलावशेषं तु तत्तैलं प्रस्थमात्रकम्।
गंधकाग्निशिलातालं विडंगाऽतिविषाविषम्॥ १८३॥
तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचा मांसी कटुत्रयम्।
दारुहरिद्रा यष्ट्याह्वं सर्जीक्षारं च जीरकम्॥ १८४॥
कर्षांशं देवदारुं च चूर्णं तैले विमिश्रयेत्।
वज्रतैलमिदं ख्यातं मर्दनात्सर्वकुष्ठनुत्॥ १८५॥

थूहरका दूध, आकका दूध, धतूरेके पत्तोंका रस, चीतेकी जडका क्वाथ, भैंसके गोबरका रस ये सब समान भाग और सबके बराबर तिलका तेल लेकर सबको एकत्र करके पकावे। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस प्रकार किया हुआ यह तेल एक प्रस्थ, गन्धक, चीता, मैनसिल, हरताल, वायविडंग, अतीस, वत्सनाभ, कडवी तोरई, कूठ, वच, बालछड, त्रिकुटा, दारुहल्दी, मुलैठी, सज्जी, जीरा और देवदारु इन सब औषधियोंका एक २ तोला बारीक चूर्ण लेकर सबको तैलमें अच्छे प्रकारसे मिलादेवे। इसको वज्रतैल कहते हैं। यह नित्य मालिश करनेसे सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है॥ १८२-१८५॥

महाभल्लात तैल।

यत्नाद्विखण्डितं कुर्याद्भल्लातशतपंचकम्।

क्षिप्त्वा पच्याच्छनैर्वह्नौ तैले द्वादशपालिके ॥१८६॥
यावत्तरंति ते पक्त्वा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ।
मधुपाके तु संप्राप्ते ह्यवतार्य तु तत्क्षणात् ॥ १८७॥
सर्वकुष्ठं निहंत्याशु महाभल्लाततैलकम् ॥ १८८ ॥

पॉच सौ भिलावोंके छोटे छोटे टुकडे करके उनको १२ पल तेलमें डालकर मन्द मन्द अग्निके द्वारा शनैः शनैः तेलको पकावे । जब वह भिलावेके टुकडे पककर तेलमें तैरनेलगें तब उसको उतारकर छानलेवे । फिर थोडी देरतक उसको मन्द मन्द अग्निसे पकाकर शीतल होनेपर शीशीमें भरकर रखदेवे । यह महाभल्लाततैल प्रतिदिन मर्दन करनेसे समस्त कुष्ठोंको शीघ्र विनाश करता है ॥ १८६ ॥ १८८ ॥

महामार्त्तण्ड तैल ।

शाकं निंबांकोलवह्निराजवृक्षाक्षस्नुग्भवम् ।
गर्भशुष्कं शुभं खण्डं नारिकेलं प्रियालकम्॥१८९॥
वातारिचक्रमर्दस्य बीजं बाकुचिजं तथा ।
समं पातालयंत्रेण तैलं ग्राह्यं प्रयत्नतः ॥ १९० ॥
प्रस्थौ द्वौ तिलतैलस्य कुष्ठचूर्णं पलद्वयम् ।
स्वर्णक्षीरीपलैकं च क्षिप्त्वा पक्त्वाऽवतारयेत्१९१॥
पूर्वतैले चतुष्प्रस्थे तैलीभूते विनिक्षिपेत् ।
महामार्तण्डतैलं हि लेपात्कुष्ठं नियच्छति ॥
अतिकण्डूं कृमिं पाकं स्फोटकानि च नाशयेत्१९२

(१) सागौन वृक्षके बीज, नीमकी निबौली, अंकोलके बीज, चीता, अमलतास, बहेडा, थूहरका दूध, सूखा हुआ

नारियल, शुद्ध खाँड, चिरौंजी, अण्डोंके बीज, चकबडके बीज और बाबचीके बीज, इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको चौगुने तिलके तेलमें मिलाकर पातालयन्त्रके द्वारा यथाविधि तैल निकालदेवे। (२) फिर २ प्रस्थ तिलका तेल लेकर उसमें कूठका चूर्ण ८ तोले, और स्वर्णक्षीरीका चूर्ण ४ तोले डालकर पकावे। जब पककर तैलमात्र शेष रहजाय तब उसे उतारकर छानलेवे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए इन दोनों तेलोंमेंसे नं० १ का तेल ४ प्रस्थ और दूसरे नं० का तेल २ प्रस्थ एकत्र मिलाकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इसको महामार्त्तण्डतेल कहते हैं। इसका प्रतिदिन लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होताहै। एवं अत्यन्त खुजली, कुष्ठके कृमि, पकाहुआ कुष्ठ और कुष्ठके फोडे ये सब नष्ट होजाते हैं॥ १८९-१९२॥

श्वित्रारि तैल।

अंकोलनिंबनिर्गुंडीपत्रकाष्ठाद्यथोचितम्।
पातालयंत्रविधिना तैलं श्वित्रनिबर्हणम्॥ १९३॥

अंकोलके बीज, नीमके पत्ते और निर्गुण्डीका पञ्चाङ्ग सबको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णसे चौगुना तिलका तेल लेकर सबको एकत्र मिलाकर पातालयन्त्रके द्वारा तेल खींचलेवे। इस तेलके मलनेसे श्वेतकुष्ठ दूर होता है॥ १९३॥

कुष्ठारि तैल।

नारिकेरं हरिद्रे द्वे बाकुची वचया सह।
अक्षभृंगकभल्लातं शाककाष्ठं च कांचनम्॥ १९४॥
एतानि समभागानि तैलं पातालयंत्रतः।
संगृह्य लेपयेत्तेन कुष्ठाष्टादशनाशनम्॥ १९५॥

सूखा नारियल, हल्दी, दारुहल्दी, बावची, वच, बहेडा, भाँगरा, भिलावे, सागौनकी छाल और धतूरेके बीज इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके चौगुने तेलमें मिलाकर पाताल यन्त्रकी विधिसे तेल निकाल लेवे इस तेलका लेप करनेसे अठारहों प्रकारके कुष्ठ नाश होते हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

कुष्ठामयघ्नगण ।

मंजिष्ठाघनदारुकुष्ठखदिरश्रेष्ठावचाबाकुची-
पाठापर्पटराजवृक्षकटुकायष्ट्याह्वमूर्वानिशाः ।
त्रायंतीकिटिमारवेल्लवृषकं निंबामृतावत्सकं
काकोली खदुरालभा च परमः कुष्ठामयघ्नो गणः १९६

मंजीठ, नागरमोथा, देवदारु, कूठ, खैर, मेदा, (या स्थल कमल), वच, बावची, पाढ, पित्तपापडा, अमलतास, कुटकी, मुलैठी, मूर्वा, हल्दी, त्रायमाण, अजवायन, वायविडंग, अडूसा, नीमकी छाल, गिलोय, कुडेकी छाल, काकोली और धमासा इन सब औषधियोंके समूहको कुष्ठामयघ्न गण कहते हैं । इस गणकी समस्त औषधियोंको अथवा किसी औषधिको खानेसे या इनका तेल बनाकर मलनेसे कुष्ठरोग नष्ट होताहै ॥ १९६॥

महानिम्बादि चूर्ण ।

महानिंबस्य सारेण मर्दितां गंधपिष्टकाम् ।
अमृताबाकुचीकांतात्रिफलाचूर्णसंयुताम् ॥ १९७ ॥
भक्षयेदायसे न्यस्तां कुष्ठे पाणितलोन्मिताम् ।
सा कुर्याल्लेपनात्कांतिं षण्मासाद् वृद्धिमायुषः।१९८।

आठ तोले गन्धकको बकायनके गोंदके रसमें घोटकर पिट्ठी सी बनालेवे । उसमें गिलोय, बावची, मंजीठ और त्रिफला

इन चारों औषधियोंके दो २ तोले चूर्णको डालकर खूब बारीक खरल करे। फिर सुखाकर लोहेके बर्त्तनमें भरकर रख देवे। इस चूर्णको प्रतिदिन एक तोला परिमाण लेकर १० तोले पानीमें मिलाकर रात्रिके समय लोहेके पात्रमें करके रखदेवे और प्रातःकालमें उसको सेवन करे और इस चूर्णको पानीमें मिलाकर कुष्ठके ऊपर लेपभी करे। इस प्रकार इस चूर्णको ६ महीने तक सेवन करनेसे कुष्ठरोग दूर होकर शरीर कान्तिवान् होजाता है और आयुकी वृद्धि होती है॥१९७॥१९८॥

सर्वकुष्ठाङ्कुश चूर्ण।

मुशलीबाकुचीबीजं निर्गुडीमूलतुल्यकम्।
मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षमिदं स्यात्सर्वकुष्ठनुत् ॥१९९

मुसली, बावचीके बीज, और निर्गुण्डीकी जड तीनोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके कपडछान करलेवे। इस चूर्णको एक तोला लेकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे। यह चूर्ण सम्पूर्ण कुष्ठोंको नाश करनेवाला है॥ १९९॥

श्वित्रनाशन चूर्ण।

निंबपत्रनिशाकृष्णाबाकुचीबीजकं समम्।
चूर्णयित्वा पिबेदुग्धैः प्रभाते श्वित्रनाशनम् ॥ २००

नीमके पत्ते, हलदी, पीपल, और बावचीके बीज चारोंको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातःकाल दूधके साथ पान करनेसे श्वेत-कुष्ठ दूर होता है॥ २००॥

श्वेतकुष्ठहर चूर्ण।

उदुंबरस्य मूलानि चित्रमूलं च निंबजम्।
अवल्गुजस्य बीजानि चूर्णयित्वा विचक्षणः॥२०१॥

उष्णेन वारिणाऽक्षांशं सेवितं क्षीरभोजिना ।
कृमिजालं श्वेतकुष्ठं सहसा तद्विनिर्हरेत् ॥ २०२ ॥

गूलरकी जड, चीतेकी जड, नीमकी जडकी छाल, और बावचीके बीज इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे इस चूर्णको प्रतिदिन एक २ तोला परिमाण लेकर गरम जलके साथ सेवन करे और दूध-भातका भोजन करे तो कुष्ठके जीवाणु और श्वेतकुष्ठ सहसा नष्ट होता है ॥ २०१-२०२॥

कुष्ठमें सामान्य उपाय ।

सर्वेषां कुष्ठिनामादौ पंचकर्माणि कारयेत् ।
पक्षे पक्षे च वमनं मासि मासि विरेचनम् ॥ २०३ ॥
षण्मासे च शिरामोक्षो नस्यं सप्तदिनांतरे ।
इदं चिरस्थिते कार्यं कुष्ठे स्वल्पेऽल्पशः क्रियाः२०४

कुष्ठ रोगियोंको सबसे पहले वमन, विरेचन, नस्य आदि पञ्चकर्मोंके द्वारा शुद्ध करना चाहिये उनको पन्द्रह २ दिनमें वमन करावे, एक २ महीनेमें जुलाब देवे, छः २ महीनेके बाद फस्त खुलवाकर रक्तस्राव करावे और सात २ दिनके बाद नस्य देना चाहिये। किन्तु ये सब क्रियायें चिरकालके पुराने कुष्ठमें करनी चाहिये और अलपकालके सामान्य कुष्ठमें तो सामान्य उपचार करने चाहिय ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

प्रलेपादि ।

मर्दितो मूलकक्षारस्यार्द्रकस्य च वारिणा ।
शमयेद्गंधपाषाणः पिष्टः सिध्मं विलेपनात् ॥ २०५॥
वराटपिष्टी जंबीरनीरार्द्रा वाऽतपे धृता ।
मयूरमोक्षकक्षारं मेषशृंगीरसो रसः ॥
त्रिक्षारद्विनिशाव्योषशुल्बं लेपन दद्रुजित् ॥ २०६॥

चतुर्थांशेन ताम्रस्य भस्मना सक्तुकेन च ।
कृतावापो हरेत्कुष्ठं चर्माख्यं पर्पटीरसः ॥ २०७ ॥
मेघनादामृतानीलीगदाः कृष्णातिला मधु ।
अश्वगंधाऽमृतं चैतैर्युक्ता गंधककज्जली ॥ २०८ ॥
उद्वर्तनेन षण्मासाद्गजचर्मविनाशिनी ॥ २०९ ॥
निर्गुंडीतैलमध्वाज्यकुमारीशाल्मलीरसः ।
यवा गंधकपिष्टश्च लेपः कुष्ठक्षयापहः ॥ २१० ॥

१–गन्धकको मूलीके खारमें और अदरखके रसमें क्रमसे एक एक बार खरल करके कुष्ठपर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ शमन होताहै । २–जम्बीरी नींबूके रसमें कौडियोंकी पिट्ठीसी पीसकर धूपमें रखदेवे और उसमें चिरचिटा और मोखा वृक्षका खार, मेढासिंगीका रस, पारा, जवाखार, सज्जी, सुहागा, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिकुटा और ताम्रभस्म ये प्रत्येक कौडीकी पिट्ठीके बराबर डालकर एक दिनतक धूपमें रखा रहने देवे फिर नींबूके रसमें घोटकर कुष्ठ पर लेप करे । इससे दद्रु कुष्ठ दूर होताहै । ३–पूर्वोक्त पर्पटी रस ४ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और लाल वत्सनाभ १ भाग लेकर सबको जलके साथ खरल करके प्रलेप करनेसे चर्मकुष्ठ शान्त होताहै । ४–चौलाईकी जड गिलोय, नील, कूठ, काले तिल, मुलैठी असगन्ध, मीठा तेलिया और पारे गन्धककी कज्जली सबको एकत्र खरल करके रखलेवे, इस चूर्णको प्रतिदिन शरीरपर मर्दन करनेसे ६ महीनेमें गजचर्म कुष्ठ नाश होता है। ५–निर्गुण्डीकी जड, तल, शहद, घृत, घीगवारका रस, सेमलका रस, जौ और गन्धक सबको समान भाग लेकर बारीक खरल करलेवे । यह प्रयोग नित्य मर्दन करनेसे कुष्ठ और क्षयको दूर करताहै॥२०५–२१०

गुंजाचित्रकशंखचूर्णरजनीभल्लातकं लांगली-
स्नुक्क्षीरोत्तमकन्यकाघनरवाधूमोद्गमः सूतकः ।
गोमूत्रैडगजं विडंगमरिचं सक्षौद्रखारीजलं
पामादद्रुविचर्चिकाकिटिभजित्कण्डूघ्नमुद्वर्तनात्॥२११॥
कुष्ठं च कांचनीतैलैर्मर्द्याल्लेप्यं सुघर्षितम् ।
कुमारीसैंधवं लेप्यं शुष्ककंडूहरं परम् ॥ २१२ ॥
सैंधवेन महामुण्डीलेपो हंति विपादिकाम् ॥ २१३॥
शिलाशंभुबीजं वरं कुष्ठगंधं मरीचं तथा
जीरकं देवधूपम् । निशा सर्पिषा मर्दितं
सदवारे हरेत्कायकण्डूव्रणस्फोटगंडान् ॥ २१४ ॥

६–चौंटली, चीता, शंख, चूना, हल्दी, भिलावे, कलिहारी, थूहरका दूध, सफेद चोंटलीकी जड, घीग्वारका गूदा, चौलाईकी जड, घरका धुआँ, पारा, गोमूत्र, चकवडके बीज, वायविडङ्ग, मिरच और शहद इन सब औषधियोंको समान भाग खारी पानीमें पीसकर सुखालेवे। इस चूर्णको शरीरपर मर्दन करनेसे अथवा पानीमें घोटकर उवटन करने या लेप करनेसे खुजली, दाद, विचर्चिका, श्वेतकुष्ठ, कण्डू आदि समस्त त्वचाके विकार नष्ट होते हैं। ७–कूठको कचनारके तेलमें घोटकर लेप करने या घर्षण करनेसे अथवा घीग्वारके रसमें सैंधानमक मिलाकर लेप करनेसे सूखी खुजली दूर होती है। ८–गोरखमुण्डी और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर लेप करनेसे विपादिका रोग (पैरोंकी बिबाइयोंका फटना) शान्त होता है। ९–मैनसिल, पारा वतसनाभ, कूठ, गन्धक, मिरच, जीरा, देवदारु और हल्दी सबको एकत्र चूर्ण करके कपडछान कर

लेवे फिर घृतमें मिलाकर शनैश्चरके दिन शरीरपर मर्दन करे। यह प्रयोग सूखी खुजली, व्रण, फोडे, गूमडे आदि सम्पूर्ण विकारोंको दूर करता है ॥ २११-२१४ ॥

अल्पं श्वेतं निघृष्याद‍ौ रक्तमण्डलपल्लवैः।
शिलापामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत् २१५
लेपो वाऽवाल्गतैलेन कांचन्या कांजिकेन वा।
गुंजाफलाग्निमूलं च लेपितं श्वेतकुष्ठजित् ॥ २१६॥
गंधकाश्वत्थरुचकश्वेतसूरणटंकणाः।
तिलपुष्पं च तत्क्षारः सप्तधा गोजलाप्लुतः ॥ १७॥
तत्कर्षं मधुना श्वित्री तैलाद्यामं खरातपे।
विकृते पतिता ह्येवं स्फोटाः स्युस्तान्वरोदकैः २१८॥
सिंचेत्तुर्यदिनाल्लिप्ते निशातंदुलतालकैः।
गोतक्रे कोद्रवान्नाशी सप्ताहाच्छित्रजित्खलु ॥२१९॥
रसटंकणगंधार्कपिप्पलीकुष्ठचंदनम् ॥
कुष्ठाविध्वंसनो लेपो मातुलुंगांबुमर्दितः ॥ २२० ॥

१०-श्वेत कुष्ठको प्रथम लाल पुनर्नवेके पत्तोंसे कुछ देर रगडकर उसके ऊपर मैनासिल और चिरचिटेकी भस्मको पानीमें मिलाकर लेप करनेसे श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है। ११-अंकोलके तेलकी मालिश करनेसे अथवा कचनारकी छालको काँजीमें पीसकर लगानेसे अथवा चोंटली और चीतेकी जडको पानीमें पीसकर प्रलेप करनेसे श्वेतकुष्ठ दूर होता है। १२-गंधक पीपलकी छाल, सफेद चोंटली, जिमींकन्द सुहागा, तिलोंके फूल, और तिलोंका खार इन सबको चूर्ण करके गोमूत्रमें सात बार भावना देकर सुखालेवे। कुष्ठ रोगी इस चूर्णको प्रति-

दिन एक एक तोला परिमाण लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे और शरीरपर तेलकी मालिश करके एक प्रहरतक तीक्ष्ण धूपमें वैठा रहे । इस प्रकार इस औषधको ३-४ दिन तक सेवन करनेसे कुष्ठके स्थानमें छाले पड जाते हैं, उनको त्रिफलेके पानीसे धोवे और उनके फूटजानेपर हल्दी और हरतालको चावलोंके जलसें पीसकर लेप करे एवं कोदोंके भातका गायके मठेकें साथ आहार करे। इस प्रकार ७ दिन इस प्रयोगको व्यवहार करनेसे एक सप्ताहमें श्वेतकुष्ठ नाश होजाता है ॥ १३-पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्र भस्म, पीपल, कूठ और चन्दन इन औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके विजौरे नींबूके रसमें खरल करलेवे । यह मरहम प्रतिदिन प्रलेप करनेसे सब प्रकारके कुष्ठोंको शीघ्र नष्टकरदेता है ॥ २१९-२२० ॥

कृमिरोग ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः श्वसनं भ्रमः ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातक्रिमिलक्षणम् ॥ २२१ ॥

पेटमें कृमियों (कीडों) के उत्पन्न होजाने और उनका उपद्रव होनेपर ज्वरका आना शरीरका वर्ण विकृत होना, शूल, हृदयरोग, श्वास, चक्कर आना, भोजनमें अरुचि और दस्तोंका होना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं । ये कृमिरोगके लक्षण हैं ॥ २२१ ॥

अग्नितुण्ड रस ।

उदराध्माननुत्त्यर्थं रसो ह्येष निगद्यते ॥ २२२ ॥
अग्नितुण्डेति विख्यातः सर्वोदरगदापहः ।
रस गंधाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः । ॥ २२३ ॥
एकाद्वित्रिचतुष्पंचभागान्सविषातिंदुकान् ।

संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिनाशिनीम् ॥ २२४ ॥
खादयित्वानुतोयं च मुस्तानां कृमिशांतये ॥
आखुपर्णीकषायं च शर्करां पिब सर्वथा ।
कृमिज्वरोपशांत्यर्थं खण्डामलकमत्ति वा ॥ २२६ ॥
स जग्ध्वैवं पर्पटीं च स्नुहीरसं पिबेदनु ।
स्नुहीरसं विना कश्चिच्छेत्तुं जंतून्न शक्नुयात् ॥ २२७ ॥

उदररोग, अफरा और कृमिरोग आदि उदरसम्बन्धी व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये नीचे अग्नितुण्ड रस कहा जाता है। यह रस सम्पूर्ण उदररोगोंको नाश करनेके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडङ्ग ४ भाग, ढाकके बीज ५ भाग और कुचला १५ भाग सबको एकत्र चूर्ण करके शहदके साथ घोटकर दो २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। कृमिरोगको शमन करनेके लिये इस रसकी प्रतिदिन एक २ गोली खा कर ऊपरसे नागरमोथेका क्वाथ पान करे, अथवा मूषाकानीके क्वाथको खाँड डालकर पान करे। यदि कृमिरोग और ज्वर दोनों उपद्रव एक साथ हों तो उसको दूर करनेके लिये इस रसकी गोली खाकर ऊपरसे खण्डामलक अवलेह सेवन करे अथवा प्रथम पर्पटी रसको खाकर पीछेसे थूहरके रसका अनुपान करे। थूहरके रसको पान किये विना कोईभी औषध जन्तुओंको नष्ट नहीं करसकती। इसलिये कोईभी कृमिनाशक औषध सेवन करने पर थूहरके रसका अनुपान अवश्य करना चाहिये। यह रस कीडोंको नष्ट करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ २२२-२२७ ॥

१ हादि ज्वालोपशान्त्यर्थमिति पाठोपि ।

कीटमर्द रस ।

शुद्धसूतं शुद्धगंधमजमोदा विडंगकम् ।
विषमुष्टी ब्रह्मबीजं क्रमादुत्तरगुणं भवेत् ॥ २२८ ॥
चूर्णयेन्मधुना लेह्यं निष्कैकं कृमिजिद्भवेत् ।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्तातोयं पिबेदनु ॥ २२९ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, अजमोद ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, कुचला ५ भाग और ढकपन्ना ६ भाग लेकर सवको एकत्र चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे नागरमोथेके क्वाथका अनुपान करे । यह कीटमर्द रस सब प्रकारके कृमियोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २२८–२२९ ॥

कृमिघ्न रस ।

रसस्य निष्कमादाय गंधकं तत्समं कुरु ।
ताम्रं देहि तदर्धं च पंचांगं शाकवारिणा ॥ २३० ॥
मर्द्यादेकदिनं रात्रौ क्षिपेत्तत्रैव यत्नतः ।
क्षीरिणीक्वाथमादाय तथा कुरु दिनांतरे ॥ २३१ ॥
दत्त्वा लघुपुटं पंच जयपालान्विमर्दयेत् ।
देहि गुंजाद्वयं चास्य साज्यं शूलच्छिदे तथा ॥ २३२ ॥

पारा ४ मासे, गन्धक ४ मासे और ताम्रभस्म २ मासे तीनोंको एकत्र मिलाकर सागौनके पंचांगके काढेमें एक दिन तक खरल करे, फिर रात्रिके समय उसमें थूहरका थोडासा क्वाथ डालकर रखदे और दूसरे दिन अच्छे प्रकारसे घोटकर गोला बनालेवे । उसको लघुपुटके द्वारा पकाकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसमें ५ जमालगोटे डालकर । खूब बारीक खरल करलेवे । इस रसको दो दो रत्तीकी मात्रासे घृतमें मिला

कर देना चाहिये। यह रस कृमियोंको नष्ट करने और उनके निकलते समय होनेवाले शूलको शमन करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है ॥ २३०-२३२ ॥

कृमिहर रस।

शुद्धसूतं चेंद्रयवमजमोदा मनःशिला।
पलाशबीजं तुल्यांशं देवदाल्या द्रवैर्दिनम् ॥ २३३ ॥
मर्दयेद्भक्षयेन्नित्यमाखुकर्णीकषायकम्।
सितायुक्तं पिबेच्चानु क्रिमिपातो भवत्यलम् ॥२३४॥

शुद्ध पारा, इन्द्रजौ, अजमोद, मैनसिल और ढाकके बीज इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके देवदालीके रसमें एक दिनतक खरल करे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करके रखलेवे। इस रसको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे सेवन कर ऊपरसे मूषाकानीके क्वाथको मिश्री मिलाकर पान करे। इस रसके सेवनसे निस्सन्देह समस्त कृमि मरकर शरीरसे बाहर निकल पडते हैं ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

सामान्य उपचार।

अजमोदाफलास्थीनि क्षीरिणीरसगंधकम्।
आखुपर्णीरसं खादेत्सताम्रं कृमिशूलनुत् ॥ २३५ ॥
मधुमिश्रनिंबपल्लवसत्त्वयुतो यदा सूतः।
कृमिसंघातान्नाशयति त्रिभिरहोभिरसौ ॥ २३६ ॥

अजमोद, त्रिफलेकी मींगी, थूहरका रस, पारा और गन्धक सबको समभाग लेकर बारीक पीसकर कपडछान करलेवे। इस रसको और ताम्र भस्मको उपयुक्त परिमाणमें लेकर मूसाकानीके रसके साथ सेवन करे। इससे कृमिजनित उपद्रव और शूल नष्ट होता है। अथवा पारेकी भस्म दो रत्ती और नीमकी कोमल कोंपलका रस दोनोंको शहदमें मिलाकर सेवन करे।

यह प्रयोग तीन दिनमेंही सम्पूर्ण कृमिसमूहको नाशकर देता है ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां विंशोऽध्यायःसमाप्तः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

आठ महारोग ।

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगंदराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

वातरोग, पथरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और संग्रहणी ये आठों महारोग कहलाते हैं ॥ १ ॥

शीतवात ।

तत्रानेकेऽनिलगदाः शीतवातादयः स्मृताः ।
हिमवंति हि गात्राणि रोमाञ्च ज्वरितानि च ॥
शिरोक्षिवेदनाऽऽलस्यं शीतवातस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

इनमें वायुके अनेक रोग शीतवात आदि कहे जाते हैं शरीरके अवयवोंका शीतल होना, रोमाञ्च और ज्वरका होना, सिर और नेत्रोंमें पीडाका होना आलस्यका रहना आदि शीतवात रोगके लक्षण हैं ॥ २ ॥

वातारि रस ।

रसभागो भवेदेको गंधको द्विगुणो मतः ।
त्रिभागा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥ ३ ॥
गुग्गुलुः पंचभागः स्यादेरण्डस्नेहमर्दितः ।
क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ ४ ॥
गुटिका कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ।

नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनुपाययेत् ॥ ५ ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ।
विरेके तेन संजाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ६ ॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः ।
मासेन सुखयत्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरम् ॥ ७ ॥
विजयागुटिकां रात्रौ स्वल्पमात्रां तु भक्षयेत् ॥ ८ ॥

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग, और शुद्ध गूगल ५ भाग लेवे । पहले गूगलको अण्डीके तेलमें खरल करे, फिर उसमेंसे अन्यान्य औषधियोंका चूर्ण डालकर खरल करे । और एक २ तोलेकी गोलियाँ बनाकर सुखा लेवे । इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक २ गोली सेवन करके सोंठ और अण्डकी जडका क्वाथ पान करे । पीठके ऊपर अण्डीके तेलकी मालिश करके सुहाता २ सेंके । इस उपचारके करनेसे जब रोगीको दस्त होजाय तब उसको स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंका भोजन करावे । इस रसको सेवन करते समय वातरहित स्थानमें रहे और ब्रह्मचर्यका पालन करे तो एक महीनेमेंही रोगी शीतवातादि रोगसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होताहै । इसपर रात्रिमें पूर्वोक्त विजयावटीको अल्प मात्रामें सेवन करे ॥ ३-८ ॥

शीतारि रस ।

रसेन गंधं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवावह्नि-
रसैर्विमर्द्य । पक्वार्कपत्रोत्थरसेन
पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ ९ ॥
रसार्धभागेन विषं च दत्त्वा विपाचये-

द्रार्द्रजलैः क्षणं तत् । शीतारिसंज्ञो हि रसोऽ-
यमस्य वल्लं तदर्धं यदि वाऽऽर्द्रकेण ॥ १० ॥
मरीचचूर्णेन घृतप्लुतेन सेवेत मासं सघृतं च पथ्यम् ११

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करके उसको पुनर्नवा और चीतेके रसमें अलग २ खरल करके सुखालेवे । फिर उस कज्जलीको पकेहुए आकके पत्तोंके अठगुने रसमें यत्नपूर्वक पकावे । जब सब रस शुष्क होजाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें पारेसे आधा भाग वत्सनाभ डालकर और चीतेके रसमें भावना देकर फिर कुछ देरतक पकावे । और शीतल होजाने पर बारीक चूर्ण करके रखदेवे । इसको प्रतिदिन एक २ अथवा आधी २ रत्ती परिमाण अदरखके रस, मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर सेवन करे । इस प्रकार एक महीने तक इस रसको सेवन करने और घृतसहित पथ्य पदार्थोंका आहार करनेसे शीतवातादि रोग दूर होते हैं ॥ ९-११ ॥

स्पर्शवात ।

अंगेषु तोदनं प्रायो दाहं स्पर्शं न विंदति ।
मंडलानि च दृश्यंते स्पर्शवातस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

समस्त शरीरमें सुई चुभोने कीसी पीडा और दाहका होना, स्पर्शका ज्ञान न होना, और शरीरपर लाल लाल चकत्तोंका पडना ये सब स्पर्शवातके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

सर्वेश्वर रस ।

कर्षमात्रं रसस्य स्याल्लोहहिंगुलयोरपि ।
भास्वद्गगनयोश्चापि गंधकस्य पलं मतम् ॥ १३ ॥

व्योषगंधकतारााणां प्रत्येकं तु पलं पलम् ।
निंबुद्रावेण संमर्द्य भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥ १४ ॥
हेमार्कस्नुक्पयोवासाह्वयारिविषमुष्टिभिः ।
पिण्डितं वालुकायंत्रे स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ॥ १५ ॥
कर्षमात्रं तु पिप्पल्या निष्कमात्रं विषस्य च ।
संचूर्ण्य दापयेदत्र रसे सर्वेश्वराभिधे ॥ १६ ॥
गुंजामात्रं ददातास्य स्पर्शवातापनुत्तये ॥ १७ ॥

पारा, लोहा, सिंगरफ, ताँबा और अभ्रकभस्म ये प्रत्येक एक २ तोला, गन्धक ८ तोले, त्रिकुटा ४ तोल और चाँदीकी भस्म ४ तोले सबको एकत्र मिलाकर नींबूके रसमें ७ बार भावना देवे। फिर धतूरेका रस, आकका दूध, थूहरका दूध अडूसेका रस, कनेरका रस और कुचलेका रस इन प्रत्येक, रसोंमें क्रमसे पृथक् पृथक् सात २ बार भावना देकर गोला-बनालेवे। उसको सम्पुटमें बंद करके ३ दिनतक बालुकायं-त्रमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको चूर्ण करके उसमें पीपलका चूर्ण १ तोला और शुद्ध वत्सनाभ ४ मासे डालकर खूब बारीक खरल करे और शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण सेवन कराना चाहिये। यह रस स्पर्शवातको शान्त करनेके लिये बडा उपयोगी है ॥ १३–१७ ॥

अर्केश्वर रस

रसेन गंधं द्विगुणं प्रमर्द्य ताम्रस्य चक्रेण[2] सुतापितेन। आच्छाद्य भूत्या तु ततः प्रयत्नाच्चक्रीं विलग्नं च रसं प्रगृह्य ॥ १८ ॥

---

१ इदं श्लोकार्धंक करालिखितपुस्तके नास्ति। २ पत्रेण।

विचूर्ण्य तद्द्वादशधाऽर्कदुग्धैः पुटेत्त वह्नि
त्रिफलाजलैश्च । संभावितोऽर्केश्वर एष
सूतो गुंजाद्वयं चास्य फलत्रयेण ॥ ददीत
मासत्रितयेन सुप्तवाताद्विमुक्तो हि भवेद्धिताशी १९॥

पारा १ भाग और गन्धक २ भाग लेकर दोनोंकी कज्जली करलेवे। उसको एक हांडीमें रखकर उसके मुँहपर तीन भाग शुद्ध ताँबेकी टिकिया बनाकर ढकदेवे, फिर सन्धियोंको बन्द करके उस हाँडीको उपलोंकी राखमें दाबकर ६ घंटे तक तीक्ष्ण अग्निदेवे। स्वांगशीतल होजानेपर उक्त टिकियाको और उसमें लगेहुए रसको लेकर खूब बारीक खरल करलेवे। फिर उसको आकके दूधमें घोटकर गजपुटमें पकावे। इस प्रकार प्रत्येक बार आकके दूधमें घोट घोटकर बारह बार गजपुट देवे। फिर चीतेके और त्रिफलेके रसमें क्रमसे एक २ बार भावना देकर सुखालेवे। और खरल करके शीशीमें भरकर रख लेवे। यह अर्केश्वर रस कहलाता है। इसको प्रतिदिन दो दो रत्ती परिमाण लेकर त्रिफलेके चूर्णके साथ देवे। इस प्रकार इस रसको तीन महीनेतक सेवन करनेसे और पथ्य पदार्थोंका आहार करनेसे मनुष्य सुप्तवातरोगसे मुक्त होजाताहै ॥१८-१९॥

स्पर्शवातघ्न रस।

तालं रसेनाष्टगुणं जयांशं विमर्दयेत्ताद्गुलि-
कांगुडेन निबद्ध्य तां सेवय मासयुग्मं
दिनोदये स्पर्शविकारशांत्यै ॥ २० ॥

---

१ जपां चेति पाठोऽपि।

पारा १ भाग, हरताल ८ भाग और अरणीकी जड ८ भाग लेकर प्रथम पारे और हरतालकी कज्जली करले, फिर उसमें अरणीकी जडका चूर्ण और समस्त औषधिकी बराबर गुड डालकर बारीक खरल करे और दो २ मासेकी गोलियाँ बना कर रखलेवे। इन गोलियोंको प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे। स्पर्शवात (सुन्नी) को शमन करनेके लिये यह रस विशेष उपयोगी है ॥ २० ॥

गन्धाश्मगर्भ रस।

गन्धं रसेनाष्टगुणं विमर्द्य कृशानुतो
येन विपाचयेत। मृद्वग्निना लोहमये
ऽथ पात्रे विषेण पश्चादथ सिद्धिमेति ॥ २१ ॥
गंधाश्मगर्भो हि रसोऽस्य सर्वस्पर्शप्रणु-
त्यै भज वल्लयुग्मम्। सक्षीरमन्नं सघृतं
च भोज्यं वर्ज्यं च सर्वं परिवर्जनीयम् ॥ २२ ॥

पारा १ भाग और गन्धक ८ भाग दोनोंकी कज्जली करके उसको लोहेकी कढाईमें डालकर चातक काढेके साथ मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब समस्त क्काथ शुष्क होजाय तब कज्जलीको नीचे उतारकर उसमें पारेके बराबर शुद्ध वत्सनाभ मिलाकर खूब खरल करे। इस प्रकार यह गन्धाश्म गर्भ रस सिद्ध होताहै। सब प्रकारके स्पर्शवात रोगोंको शमन करनेके लिये इस रसको सेवन करे। मात्रा–दो दो रत्ती परिमाण। इसपर दूध भात और घृतका सेवन करना चाहिये। और सम्पूर्ण त्याज्य पदार्थोंको त्याग देना चाहिये ॥२१॥ २२ ॥

द्वितीय गन्धाश्मगर्भ रस ।

गंधकं चूर्णितं कृत्वा सूक्ष्मवस्त्रेण बध्य च ।
भाण्डे गोदुग्धकं दत्त्वा प्रावृतं खर्परेण च ॥ २३ ॥
अग्निं प्रज्वालयेदूर्ध्वं पश्चाच्छीतं समुद्धरेत् ।
गंधकाष्टकभागेन रसं दत्त्वाऽथ पाचयेत् ॥ २४ ॥
मृद्वग्निना शीतमुभावुत्तार्योत्तार्य यत्नतः ॥
यावद्गंधकरूपस्य पूर्वस्य ह्यन्यथा भवेत् ॥ २५ ॥
सप्तगुंजं ददीतास्य यावत्स्यादेकविंशतिः ।
प्रत्यहं तु हरीतक्या गुंजा देयैकविंशतिः ॥ २६ ॥
सक्षीरं सघृतं चान्नं भोजयीत सशर्करम् ।
निर्वाते चावतिष्ठेत कम्पस्पर्शापनुत्तये ॥
गंधाश्मगर्भसंज्ञोयं योगिभिः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

एक हांडी या पतीलीमें दूध भरकर उसके मुँहपर एक सफेद पतला कपडा बांध दे और उसके ऊपर ८ तोले गन्धकको चूर्ण करके रखदेवे, फिर उसके ऊपर एक सकोरा उल्टा करके ढक दे और सकोरेके ऊपर अग्नि जलावे । इस प्रकारसे जब समस्त गन्धक पिघलकर दूधमें जा पडे तब शीतल होनेपर उसको दूधमेंसे निकालकर पीसलेवे । उस गन्धकमें १ तोला पारा मिलाकर लोहेकी कढाईमें डाल करके मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब गन्धक पिघलकर पारा और गन्धक दोनों एकम एक होजायँ तब उसको नीचे उतारकर शीतल करलेवे । फिर उसको पिघलाकर ठंडा करे । जबतक गन्धकका पूर्वरूप न बदल जाय तब तक गन्धकको बारम्बार पिघलाकर शीतल

करे। इसके पश्चात् उसको सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस रसको पहले दिन सात रत्ती परिमाण सेवन करे। फिर दूसरे दिन ८ रत्ती, और तीसरे दिन ९ रत्ती, इस क्रमसे प्रतिदिन एक २ रत्ती मात्रा बढाकर सेवन करे। जब २१ रत्ती तक मात्रा होजाय तब प्रतिदिन इक्कीस २ रत्ती परिमाण लेकर २१-२१ हरडोंके चूर्णके साथ रोग आरोग्य होनेतक सेवन करे। और जब इस रसको बन्द करना हो तब प्रतिदिन एक २ रत्ती मात्रा घटाता चलाजाय, जब ७ रत्ती पर आजाय तब छोडदेवे। इसपर घी, दूध और खांडके साथ भातका भोजन करावे। इसको सेवन करते समय वातरहित स्थानमें रहे तो यह रस कम्पवात और स्पर्शवातको नष्ट करताहै। इस रसको योगी पुरुषोंने वर्णन किया है ॥ २३-२७ ॥

स्पर्शवातारि रस।

पलाशबीजोत्थरसेन सूतं गंधेन युक्तं त्रिदिनं विमर्द्य। श्लक्ष्णीकृते तद्विषमुष्टिबीजं संयोजनीयं च कलाप्रमाणम् ॥ २८ ॥ मासत्रयं निष्कमितं प्रयत्ना त्स्पर्शप्रणुत्यै खलु सेवयेत ॥ २९ ॥

पारा और गन्धक दोनोंको एक २ भाग लेकर कज्जली करले, फिर ढाकके बीजोंके रसमें तीन दिन तक खरल करके चौथे दिन उसमें १६ वाँ भाग कुचलोंका चूर्ण मिलाकर खूब बारीक खरल करे। इस रसको प्रतिदिन चार २ मासेकी मात्रासे सेवन करे। तीन महीने तक बराबर इसको सेवन करनेसे स्पर्शवात रोग नाश होजाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

स्पर्शवातान्तकृद्वटी।

अष्टौ भागा रसस्य स्युर्विषतिंदोर्दशैव तु।

गंधकस्य दश द्वौ च कटुत्रिफलयोस्त्रयः ॥
वह्निचित्रकमुस्तानां वचाश्वगंधयोरपि ॥ ३० ॥
रेणुकाविषकुष्ठानां पिप्पलीमूलनागयोः ।
एकैकस्तु भवेद्भाग एकः कल्प्योऽयसस्तथा॥ ३१ ॥
चतुर्विंशद्गुडस्यात्र वटिका चणकाकृतिः ।
क्रमेणैवानुसेवेत स्पर्शवाताऽपनुत्तये ॥ ३२ ॥

पारा ८ भाग, कुचले १० भाग, गन्धक१२ भाग, मिरच ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, एवं अरणी, चीता, नागरमोथा, वच, असगन्ध, रेणुका, वत्सनाम, कूठ पीपलामूल, सोंठ और लोह भस्म यह प्रत्येक औषधि एक २ भाग लेवे और गुड २४ भाग लेवे । प्रथम सब औषधियोंका एकत्र बारीक चूर्ण करके फिर गुडमें मिलाकर चनेके समान गोलियाँ बनालेवे इन गोलियोंको प्रकृतिके अनुकुल न्यूनाधिक मात्रामें सेवन करनेसे स्पर्शवात नष्ट होता है ॥ ३०-३२ ॥

स्पर्शवातारि तैल ।

त्रिगंधकं तुत्थकमश्वगंधाहयारिनागा
श्रुतिवायसीनाम् । मूलानि संचूर्ण्य
सुभाण्डके च तैलं क्षिपेत्तेन चतुर्गुणेन ॥ ३३ ॥
पक्वार्कपत्रोत्थ रसेन पश्चाद्विपाचयेदष्ट-
गुणेन यत्नात् । तत्स्पर्शवाताय भवेद्धि
तैलं विलेपयेत्तेन च तत्प्रदेशम् ॥ ३४ ॥

गन्धक, हरताल, मैनासिल, तूतिया, असगन्ध, कनेर, नागकेसर और कौआ ठोडीकी जड इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कल्क बनालेवे फिर कल्कसे

चौगुना तेल और पके हुए आकके पत्तोंकी रस अठ गुना लेकर सबको एक वर्तनमें भरकर यथाविधि तेलको पकावे । यह तेल स्पर्शवात (सुन्नी) को नष्ट करनेके लिये विशेष उपयोगी है । इसको शरीरमें जहाँ स्पर्शवातकी पीडा हो वहाँ खूब अच्छे प्रकारसे मालिश करे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सामान्य उपाय ।

मूलं पिबेद्राजतरोः शरीरं
मासद्वयं तेन विलेपयेत ॥ ३५ ॥
यद्वा सुचूर्णीकृतचक्रमर्दबीजं सुगोमूत्र परिप्लुतं च । अर्कस्नुहीक्षीरनिशा द्वयेन

---

१ पंचार्कतैलम् । मूलैः सपुष्पैः फलपत्रसाररर्कस्य निष्पीड्य रसाढके तु । भूपीलुका वह्निपुनर्नवानां तुरंगगंधार्तगलस्य मूलं । निर्गुण्डिकायाश्च तथैव शिग्रोर्मूलानि विद्वान्पृथगाददीत । एला लवंगं तगरं च कुष्ठं ससैन्धवं कर्षमितं पृथक्स्यात् । स्नुक्क्षीरपिष्टाजपयोद्विभागं प्रस्थेन तैलस्य पचेद्विपक्कं । पंचार्कतैलं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः श्रोणीगतान् संधिगतान्निहंति । अभ्यंजनैश्च त्रिभिरेवसद्यो वातोत्थरोगांश्चिरजानशीतिः ॥ १ ॥ द्वितीयं पंचार्कतैलम् । अर्कस्य शुष्कपञ्चाङ्गमाढकं विपचेज्जले । चतुर्गुणे वह्निशिग्रुनिर्गुंडचग्निपीलुकं । वर्षाभूवाजिगन्धार्तगलं तेषां पृथक् पृथक् । मूलानि कुडवांशाग्निचतुर्भागावशेषितैः । तैलप्रस्थं कषायेऽस्मिन् द्विप्रस्थं पयसस्तथा । एलात्वक्कुष्ठसिन्धूत्थतगरं कार्षिकं पृथक् । स्नुक्क्षीरकुडवं दत्त्वा शनैर्मंदाग्निना पचेत् तदस्याभ्यंजनेनैव निहन्यादाशुसंधिगान् । सर्वान्वातोत्थरोगांश्च कटिपार्श्वगतांस्तथा । प्रवान्ति तज्ज्ञाः पञ्चार्कतैलं श्रेष्ठं समीरणुत्॥२॥ इदं तैलद्वयं करलिखितपुस्तकेऽधिकम् ॥

युक्तं भजेन्मण्डलमामयार्तम् ॥ ३६ ॥
हियावलीकाथविपाचितं च स्पर्शप्रणाशा-
यदेहिदोत्तमगधम् । हियावलीकंदवि लेपनाच्च
स्पर्शप्रदेशः क्षयमेति यत्नात् ॥ ३७ ॥
यवानिकासिद्धघृतेन वापि स्पर्शप्रणाशा-
यविलेपयेत । अर्कोत्थदुग्धेन विलेप नाच्च
स्फोटीभवेत्तस्य ततः प्रदेशः ॥ ३८ ॥
घृतेन चोक्तेन विलेपनाद्वा स्पर्शो लयं
याति च तत्क्षणेन । यद्वाहिनीसूरणकं
सिताश्च स्पर्शांतकः स्यात्खलु लेपनेन ॥ ३९ ॥
आदौ शिरामोक्षणतो रसेंद्र-
विलेपनं चापि नियोजयंति ॥ ४० ॥

१ अमलतासकी जडका स्वरस अथवा क्वाथ दो महीनेतक पान करे और उसीको शरीरपर मालिश करे तो स्पर्शवात दूर होता है । २ चकवडके बीजोंको गोमूत्रमें पीसकर उसमें आकका दूध, थूहरका दूध, हल्दी और दारुहल्दीका चूर्ण मिलाकर उडदके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको ४० दिनतक सेवन करनेसे स्पर्शवात रोग नष्ट होता है । ३ अथवा हल्दी, तेजपात, दारचीनी और इलायची इनका क्वाथ बनाकर पान करे और हल्दीके कन्दको पानीमें पीसकर शरीरपर मालिश करे । यह प्रयोग स्पर्शवातको नष्ट करनेके लिये बडा उपयोगी है, ४ अजवायनके कल्कके साथ घृतको सिद्ध करके शरीरपर मलनेसे स्पर्शवात रोग शान्त होता है । ५ शरीरपर आकके दूधकी मालिश करनेसे स्पर्शवातके स्थानमें (अर्थात्

जहाँ सुन्नी होती है वहाँ) छाले पडजाते हैं उनपर उक्त अजचायनके घृतका लेप करनेसे छालों सहित स्पर्शवात (सुन्नी) रोग क्षण भरमें नष्ट होजाता है । ६ असगन्ध जिमींकन्द और मिश्री तीनोंको एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे स्पर्शवात शमन होता है । ७ अथवा प्रथम सुन्नीकी जगह फस्त खुलवाकर वहाँका दूषित रक्त निकलवा देवे फिर पारेकी भस्मको घीमें मिलाकर मालिश करे तो स्पर्शवात रोग शीघ्र नाश हो जाता है ॥ ३६–४० ॥

रक्तवात रोग ।

पादयोश्च भवेत्तापः श्वयथुश्च प्रजायते ।
रक्तच्छायशरीरे च रक्तवातस्य लक्षणम् ॥ ४१ ॥

पैरोंमें दाह होना सूजनका होना, और समस्त शरीरमें रक्तका वर्ण काला पडजाना इत्यादि वातरक्तके अनेक लक्षण होते हैं ॥ ४१ ॥

सामान्य उपाय ।

त्रियोनिरसगुंजैकां प्रथमं दापयेद्भिषक् ।
हरितक्यामलक्यौ च गुडुचीं कटुकां तथा ॥
पंचांगानि च निंबस्य चूर्णयित्वा च पाययेत् ॥४२॥
कोकिलाक्षस्य मूलानि गुडुचीं नागरं तथा ।
क्वाथयित्वा रजन्या तु पाययेदतिशीतलम् ॥ ४३ ॥
अग्रे शिरा विमोक्षार्थं यवचिंचाविरेचनम् ।
वांतिमंकोलबीजेन देवदालीजलेन वा ॥ ४४ ॥
सूरणं माषवृंताकं राजिकादि विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

वातरक्त रोगमें वैद्य पहले कहे हुए त्रियोनि रसको एक २

रत्ती परिमाण सेवन कराकर ऊपरसे हरड, आमले, गिलोय, कुटकी और नीमका पंचाङ्ग इन सबका काढा बनाकर पान करावे । अथवा तालमखानेकी जड, गिलोय, सोंठ और हल्दी इनका क्काथ बनाकर खूब शीतल करके पान करावे । इस रोगमें प्रथम अंकोलके बीजोंका चूर्ण अथवा देवदालीका क्काथ पान कराकर वमन करावे और भुईं आमलेका क्काथ पान कराकर विरेचन करावे । इसके पश्चात् फस्त खुलवाकर निकलवावे । वातरक्तके रोगीको जिमीकंद, उडद, बैंगन, राई आदि पदार्थ सर्वथा त्याग देने चाहिये ॥ ४२-४५ ॥

आमवात रोग ।

कट्यां व्यथा भवेन्नित्यं संधिषु श्वयथुर्भवेत् ।
उत्थानेप्यसमर्थत्वमामवातस्य लक्षणम् ॥ ४६ ॥

प्रतिदिन कमरमें पीडा होना, सन्धि स्थानों (जोडों) में सूजन होना और उठने बैठनेमें असमर्थता होना यह सब आम वात रोगके लक्षण हैं ॥ ४६ ॥

सामान्य उपाय ।

एरण्डतैलसंयुक्तं वातारिरसमेव च ।
आमवातप्रशांत्यर्थं दद्यीतोष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥
आमानिलस्यास्य रसोनिलारिश्चैरण्डतैलेन
सकौशिकेन । कटुत्रयेणापि सगंधकेन
वह्नैकमानं परिषेवयेत ॥ ४८ ॥
आमवातगजेंद्रस्य शरीरवनचारिणः ।
एक एवाग्रणीर्हंता एरण्डस्नेहकेसरी ॥ ४९ ॥

आमवात रोगको शान्त करनेके लिये वातारि रसको

अण्डीके तेलमें मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करावे । अथवा आमवातके रोगीको अनिलारि रस, गूगल और अण्डी-के तेलमें मिलाकर अथवा त्रिकुटा और शुद्ध गन्धक एक २ रत्ती परिमाण सेवन करे । शरीर रूपी जंगलमें विचरने वाले, आमवात रूपी गजेन्द्रको नष्ट करनेके लिये केवल अण्डीका तेल रूप सिंहही सर्वश्रेष्ठ है ॥ ४७-४९ ॥

अपस्मार रोग ।

मूंर्च्छा शरीरस्य भवेदकस्माद्गात्रेषु कम्पश्च
मुखे च फेनः । एवं त्वपस्मारगदं विदित्वा
नियोजयेत्पर्पटिकाख्यसूतम् ॥ ५० ॥

मनुष्यको अकस्मात् मूर्च्छा (वेहोशी) आना, सम्पूर्ण शरीरका काँपना, मुखमेंसे झागोंका निकलना और वायुकी अधिक प्रबलताके कारण शरीरका ऐंठना, संज्ञाशून्य होजाना आदि लक्षणोंके द्वारा अपस्मार रोगका निदान करके वैद्य रोगीको उपर्युक्त पर्पटीरस सेवन करावे ॥ ५० ॥

सामान्य उपाय ।

पर्पटीरसगुंजे द्वे ब्राह्मीरससमन्विते ।
खादयेद्रोगिणं वैद्योऽपस्मारानिलशांतये ॥ ५१ ॥
ब्राह्मी शुंठी वचा कुष्ठं नीलोत्पलससैंधवम् ।
पिप्पलीमपि संचूर्ण्य ब्राह्मीद्रावेण भावयेत् ॥ ५२ ॥
सप्तधा नवनीतेन पचोत्क्षिप्त्वा घृतं शुचि ।
वराहकर्णरक्तेन कर्कोटचा नस्यमाचरेत् ॥ ५३ ॥

---

१ अकस्माज्जायते मूर्च्छा विकम्पश्च शरीरके । मुखान्निर्यातिफेनं च वातापस्मारलक्षणम् । २ गुञ्जाष्टाविति पाठोपि ।

शुष्कां गवाक्षीमादाय घृष्टं कांस्यं च कंबलम्[1] ।
गोघृतेना[2]ऽऽयसं पिष्ट्वाऽप्यागते नस्यमाचरेत् ॥५४॥
श्वेतापराजिताबीजं विजयाबीजमेव च ।
नरमूत्रेण संपिष्य नस्यं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ५५ ॥
उन्मत्तकशुनोस्थीनि घृष्ट्वा तेनैव वा कुरु ।
श्वेतापराजितामूलं कर्णे बद्धा सदा बुधः ॥
निर्गुण्डीमूलकं[3] जग्ध्वा ह्यपस्माराद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥

वैद्य, अपस्मार रोगको शमन करनेके लिये रोगीको, दो दो रत्ती परिमाण पर्पटीरस ब्राह्मीके स्वरस अथवा क्वाथमें मिलाकर सेवन करावे । अथवा ब्राह्मी, सोंठ, वच, कूठ, नीलकमल, सैंधा नमक और पीपल इनको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके ब्राह्मीके रसमें ७ वार भावना देवे । फिर उस कल्कको ब्राह्मीके रसमें डालकर उसके साथ नैनी घृतको अथवा शुद्ध घृतको पकावे । अथवा सूअरके कानके रक्तमें अथवा बाँझककोडेके रसमें घृतको मिलाकर पकावे । जब घृत उत्तम प्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उसकी नस्य देवे । अथवा ब्राह्मीके रसमें सिद्ध किये हुए घृतमें सूअरके कानका रक्त अथवा बाँझककोडेका रस डालकर नस्य देवे । अथवा ब्राह्मीके रसमें सिद्ध किये हुए घृतको कुछ गरम करके उसकी २-३ बूँदें नाकमें टपकावे और बाँझककोडेके कन्दको सूअरके कानके रक्तमें भावना देकर सुखालेवे, फिर बारीक पीसकर नस्य देवे तो अपस्मार रोग नष्ट होताहै । अथवा सूखी इन्द्रायनकी जडको काँसीके बर्तनमें घिसकर नस्य देवे । अथवा मुर्देकी सफेद खोपडी छातीआदि अवयवोंपर घिसकर नस्य देवे, इससे

---

१ कांचकम् । २ वाऽिं गोघृतेनाथेतिपाठोपि । ३ वंदकम् ।

अपस्मार रोग नष्ट होता है। अथवा लोहभस्मको गायके घृतमें खरल करके नस्य देवे इससे अपस्मारका दौरा होनेपरभी लाभ होता है। या सफेद अपराजिताके बीजोंको और भाँगके बीजोंको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर वैद्य रोगीको नस्य देवे। अथवा पागल कुत्तेकी हड्डीको पानीमें घिसकर नस्य देवे। किम्वा श्वेत अपराजिताकी जडको सदैव रोगीके कानमें बाँधे और निर्गुण्डीकी जडके चूर्णको सेवन करावे तो रोगी अपस्मार रोगसे मुक्त होजाता है ॥९१–९६ ॥

उन्माद रोग ।

बहुकृत्वः प्रलापैश्च विस्मृतिः कार्यवस्तुषु ।
हंति धावति सर्वत्रोन्मादवातस्य लक्षणम् ॥ ९७ ॥

बहुत बकना, किसी कार्य और किसी वस्तुका स्मरण न रहना, दूसरोंको मारना और जहाँ तहाँ दौडे २ फिरना ये सब उन्मादवात रोग (पागल मनुष्य) के लक्षण हैं ॥ ९७ ॥

माहेश्वर धूप ।

श्रीवेष्टं दारुबाह्लीकं मुस्ता कटुकरोहिणी ।
सर्षपा निंबपत्राणि मदनस्य फलं वचा ॥ ९८ ॥
बृहत्यौ सर्पनिर्मोकः कार्पासास्थि यवास्तुषाः ।
गोशृंगं खररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट् ॥ ९९॥
छागरोमघृतं चेति बस्तमूत्रेण भावयेत् ।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः ॥ ६० ॥

लोबान, देवदारु, हींग, नागरमोथा, कुटकी, सरसों, नीमके पत्ते, मैनफल, वच, कटेरी, बडी कटेरी, साँपकी कैंचुली, बिनो-लोंकी गिरी, जौकी भूसी, गायका सींग, गधेके बाल, मोर-

पंख, बिल्लीकी विष्ठा, बकरीके बाल और बकरीका घी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करके, फिर बकरेके मूत्रमें भावना देवे । यह माहेश्वर धूप सब प्रकारकी ग्रह-बाधाओंको दूर करती है ॥ ५८–६० ॥

सामान्य उपाय ।

पर्पटीरसगुंजाष्टौ धत्तूराद्बीजपंचकम् ।
गोघृतेन च संयोज्य खादेदुन्मादशांतये ॥ ६१ ॥
सघृतं माषमण्डं वा पाययेद् घृतदुग्धकम् ।
निम्बतैलं समुद्धृत्य स्वभ्यज्यापादमस्तकम् ॥ ६२॥
गुर्वन्नं प्रायशो दद्याच्छुष्कमांसं च वर्जयेत् ।
बद्धापि रक्षयेत्तावद्यावच्छांतिं स गच्छति ।
माहेश्वराख्यधूपं च दापयेत्सततं निशि ॥ ६३ ॥

पर्पटीरस ८ रत्ती और धतूरेके बीज ५ दोनोंको एकत्र पीसकर गायके घीमें मिलाकर सेवन करनेसे उन्मादरोग (पागलपन) दूर होता है । अथवा उडदोंके माण्डको या उडदोंकी पिट्टीके रसको घी मिलाकर पान करावे, या घीको दूधमें मिलाकर पान करावे । नीमकी निबौलियोंका तेल निकालकर उसको सिरसे लेकर पैरोंतक शरीर पर मले । और रोगीको प्रायः गुरुपाकी अन्नका भोजन करावे, किन्तु सूखा मांस कदापि न देवे । उन्माद रोगीको तबतक बाँधकर रक्खे, जबतक रोग बिलकुल आराम न होजाय । उसको उपर्युक्त माहेश्वर धूप प्रतिदिन रात्रिमें देनी चाहिये ॥ ६१–६३॥

एकाङ्ग वातरोग ।

एकस्मिन्देहदेशे च तोदः कार्श्यं चलात्मता ।
हिमस्पर्शश्च इत्येतैकांगवातस्य लक्षणम् ॥ ६४ ॥

शरीरके किसी एक भागमें सुई चुभोनेके समान पीडा होना प्रतिदिन शरीरका दुर्बल होना, अंगका फडकना और वह स्थान स्पर्श करनेसे शीतल मालूम होना ये एकांग वातके लक्षण जानने ॥ ६४ ॥

वडवानल रस ।

शुल्बं तालकगंधकौ जलनिधेः फेनाग्निगर्भांशयैः
कांतायोलवणानि हेमवचयोर्नीलांजनं तुत्थकम् ।
भागो द्वादशको रसस्य तदिदं वज्रांबुघृष्टं शनैः
सिद्धोऽयं वडवानलो गजपुटे रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ ६५ ॥
आर्द्रकस्य द्रवैश्चामुं दशवाराणि भावयेत् ।
दिनद्वयं चित्रकस्य द्रावेणैव तु भावयेत् ॥ ६६ ॥
पादांशममृतं दत्त्वा चित्रद्रावैः क्षणं पचेत् ।
मात्रया योजयेच्चानु दशमूलशृतं पयः ॥ ६७ ॥
वातश्लेष्मप्रधाने च दद्यात्त्र्यूषणचित्रकम् ।
स्वेदं च कटुतुंबिन्या प्रयुंजीतातियत्नतः ॥ ६८ ॥
दाहं च जयया कुर्याच्छीतवातं च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥

ताम्रभस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध गन्धक, समुद्रफेन, सूर्यकान्तमणिकी भस्म, लोहभस्म, पाँचों नमक, सुवर्णभस्म, वच, काला सुरमा, तूतिया औरा पारा इन बारहों औषधियोंको समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धककी कज्जली करले, फिर सब औषधियोंको चूर्णकर कज्जलीमें मिलाकरके थूहरके रसकी एक भावना देवे और गजपुटमें रखकर पकावे। स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक पीसलेवे । फिर अद्-

१ जयथोरिति पाठः ।

रखके रसमें १० बार भावना देकर दो दिनतक चीतेके रसमें घोटे । इसके पश्चात् उसमें चौथाई भाग शुद्ध मीठा तेलिया मिलाकर कुछ देर चीतेके क्वाथमें पकावे । इस प्रकार यह वड-वानल रस सिद्ध होता है । यह सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाला है । इसको उपयुक्त मात्रासे दशमूलके काढेमें पकाये हुए दूधके साथ देवे । इससे एकाङ्गवात दूर होताहै । एकांगवातमें वायु और कफकी प्रबलता होनेपर इस रसको त्रिकुटा और चीतेके चूर्णके साथ प्रयोग करे । एकांग वातके रोगीको कडवी तोंबीके चूर्णकी पोटलीसे स्वेद देना चाहिये और भाँगकी पोटलीसे सेंक करना चाहिये रोगीको समस्त शीतल पदार्थ व उपचार और खुली वायुका सेवन त्याग देना चाहिये ॥ ६५–६९ ॥

मार्तण्डेश्वर रस ।

समताप्ययुतं शुल्बं पलविंशतिमानकम् ।
प्रध्मातं हि चतुर्वारं खण्डयित्वा ततश्चरेत् ॥ ७० ॥
तत्तुल्यं माक्षिकोपेतं पुटेद्विंशतिवारकम् ।
गंधकेन पुटेत्तावद्वह्लीयात्तत्पलं ततः ॥ ७१ ॥
क्षिपेत्पलमितं तत्र गंधकेन हतं रसम् ॥ ७२ ॥
शाणमात्रं मृतं वज्रं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
इति सिद्धो रसेंद्रोऽयं मार्तंडेश्वरनामवान् ॥ ७३ ॥
कीर्तितो लोकनाथेन लोकानां हितकाम्यया ।
मरीचघृतसंयुक्तः सेवितो मण्डलार्धतः ॥ ७४ ॥

---

१ यावत्पलमितं भवेत् ।

वाताद्यष्टमहारोगाञ्छ्वासकासयुतं क्षयम् ।
हलीमकं च पांडु च ज्वरानपि सुदुस्तरान् ॥ ७५ ॥
इत्यादिकगदान्सर्वान्विनाशयति निश्चितम् ।
करोति दीपनं तीव्रं दीपानलशतोपमम् ॥ ७६ ॥
संनिपातं जयत्याशु व्योषार्द्रकसमान्वितः ।
सर्वसौख्यकरो नृणां स्त्रीणां बंध्यत्वनाशनः ॥ ७७ ॥

सुवर्णमाक्षिकका चूर्ण २० पल और शुद्ध ताँबेके कंटकवेधी पत्र २० पल (८० तोले) लेवे । एक हाँडीमें ऊपर, नीचे सोनामाखीका चूर्ण और बीचमें ताम्रपत्र रखकर उसपर कपरौटी करके ४ प्रहर तक भट्टीमें पकावे । शीतल होनेपर पत्रोंको निकालकर खरल करे । इस प्रकार सोनामाखीके चूर्णके साथ ताम्रपत्रोंको चार बार फूँके । फिर उस ताम्रभस्मके बराबर सोनामाखीका चूर्ण प्रत्येक बार मिलाकर और प्रत्येक बार काँजीमें पीसकर २० बार गजपुट देवे । इसके पश्चात् ताम्रभस्मका जितना वजन हो उतनेही पल गन्धक उसमें मिलाकर और काँजीमें घोटकर पूर्ववत् २० गजपुट देवे । फिर उसको बारीक पीसकर ४ तोले परिमाण लेकर उसमें गन्धकके द्वारा जारण किया हुआ पारा ४ तोले और हीरेकी भस्म ४ मासे मिलाकर खूब बारीक खरल करे और कपडछान करके शीशीमें भरकर रखदेवे इस प्रकार यह मार्त्तण्डेश्वर रस सिद्ध होताहै । इसको श्रीलोकनाथजीने समस्त लोकोंका कल्याण करनेकी इच्छासे वर्णन किया है । यह रस प्रतिदिन मिरचोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर २० दिनतक सेवन करनेसे वातव्याधि, कुष्ठ प्रमेह आदि आठों महारोग, श्वास, खाँसी, क्षय, हलीमक, पाण्डुरोग और भयं-

कर ज्वर इत्यादि सम्पूर्ण व्याधियोंको अवश्य नाश करता है। जठराग्निको सैकडों दीपकोंके तेजके समान प्रदीप्त करता है। इस रसको त्रिकुटा और अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे सन्निपात शीघ्र दूर होताहै । मनुष्योंको सब प्रकारका शारीरिक सुख प्राप्त होताहै और स्त्रियोंका वन्ध्यत्व दोष नाश होता है ॥ ७०-७७ ॥

चतुःसुधारसः ।

सप्तभागे शुभे हेम्नि निर्व्यूढं ताप्यमुत्तमम् ।
शतधा शतधा रौप्ये शुल्बे च शतवारकम् ॥ ७८॥
इत्थं सिद्धमिदं बीजं पृथगक्षप्रमाणतः ।
समावर्त्य तदेकत्र रसे पञ्चपलात्मके ।
वक्ष्यमाणप्रकारेण जारयेदतियत्नतः ॥ ७९ ॥
तप्ते खल्वे रसं दत्त्वा बीजं निष्कासितं तथा ।
मर्दयेदतियत्नेन अवेद्यावद्दिनत्रयम् ॥ ८० ॥
पूर्वोक्तकच्छपे यंत्रे वक्ष्यमाणबिडान्विते ।
वक्ष्यमाणप्रकारेण बीजमेवमशेषतः ॥ ८१ ॥
बलिकासीसकव्योमकांक्षीसौवर्चलैः समैः ।
चक्रांगीरससंभिन्नैः शतधा बिडमत्र तत् ॥ ८२ ॥
एवं जारितसूतेन पलमात्रेण तावता ।
गंधकेन च कर्तव्या सुस्निग्धा वरकज्जली ॥ ८३ ॥
लोहपात्रे घृतोपेतां द्रावयेत्तां तु कज्जलीम् ॥ ८४ ॥
तुल्यसत्त्वाभ्रभासितं क्षिप्त्वा संमिश्र्य सर्वशः ।
रंभापत्रे विनिक्षिप्य कुर्यात्पर्पटिकां शुभाम् ॥८५ ॥

विचूर्ण्य पर्पटीं सम्यग्वैक्रांतस्त्रिंशदंशतः ।
निक्षिप्य हिंगुतोयेन शतधा परिभावितम् ॥ ८६ ॥
निरुध्य मल्लमूषायां स्वेदयेदातियत्नतः ।
पुनः संचूर्ण्य यत्नेन करण्डे विनिवेशयेत् ॥ ८७ ॥
हन्यात्सर्वमरुद्गदान्क्षयगदं पाण्डुं च नष्टाग्नितां
निर्वीर्यत्वमरोचकं त्वजरणं शूलं च गुल्मादिकम् ।
अष्टा चैव महागदानातितरां व्याधिं संशोधं क्षणा-
द्भुक्तो मुद्गमितश्चतुःसुधरसःस्वस्थोचितो भूभुजाम् ८८
मूलकं वर्जयेदस्मिन् रसे नान्यत्तु किंचन ।
त्रिवारमेकवारेणं[२] बुभुक्षां जनयेद् ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

बढिया सोनेको लेकर उसमें समान भाग सोनामाखीका चूर्ण मिलाकर मूषामें बन्द करके फूके । जब सोनामाखीका समस्त चूर्ण उडजाय और सुवर्णमात्र शेष रहजाय तब मूषाको ठंडा करके फिर उस सुवर्णमें समान भाग सोनामाखीका चूर्ण मिलाकर मूषामें फूँके । इस प्रकार वारम्वार सोनामाखीका चूर्ण मिला २ कर १०० वार सुवर्णको फूँके । फिर उसको सम्हालकर रखदेवे । इसके पश्चात् जितना सोना लियाहो उतनीही चाँदी लेकर उसमें समभाग सोनामाखीका चूर्ण मिला-मिलाकर उसी विधिसे १०० बार चाँदीको फूँके और फिर संभालकर रखदेवे । इसी विधिसे ताँबेमें समान भाग सोनामा-खीका चूर्ण मिला मिलाकर १०० वार फूँके और संभालकर रखदेवे । इस प्रकार तैयार की हुई धातुओंको धातुबीज कहते हैं । जिस धातुको १०० बार फूँककर बीज सिद्ध किया जाता

१ अशेषान् । २ रूपेण ।

है, वह बीज उसी धातुके नामसे पुकारा जाताहै, जैसे सोनेका सुवर्णबीज, चाँदीका रौप्यबीज आदि। उपर्युक्त विधिसे तैयार किया हुआ सुवर्ण बीज १ तोला, रौप्यबीज १ तोला और ताम्रबीज १ तोला लेकर तीनोंको एकत्र करके खूब बारीक खरल करे। फिर एक तप्तखल्वमें २० ताले पारा और ३ मासे यह धातुबीज डालकर ३ दिनतक बडे यत्नके साथ मर्दन करे और खरलके नीचे मन्द मन्द अग्नि जलाता जाय फिर उसम २० तोले निम्नलिखित बिड डालकर तब-तक मर्दन करे जबतक पारा मिलकर एकम एक होजाय। फिर यन्त्राध्यायमें कहे हुए कच्छपयन्त्रमें इस पारेको डाल-कर बीजको जारण करे। फिर पारेमें ३ मासे बीज और २० तोले बिडको ३ दिनतक मर्दन करके कच्छपयन्त्रमें जारण करे। इस प्रकार प्रत्येक बार बीज और बिड डाल २ कर १२ बार जारण करे। फिर गन्धक, कसीस, अभ्रक, फटकरी और विरिया संचरनमक इनको पारेके समान भाग लेकर कुटकीके रसमें खरल करके पारेमें मिलाकर और तीन मासे बिड डाल-कर जारण करताजाय। इस प्रकार सौ बार उक्त औषधि और बिड मिलाकर १०० बार जारण करे। इस विधिसे जब ३ तोले बीजका जारण होजाय तो इसको बीजजारित पारा कहते हैं। इस प्रकार जारण किया हुआ पारा ४ तोले और शुद्ध गन्धक ४ तोले लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करलेवे। फिर लोहेकी कढाईमें घी चुपडकर उसमें कज्जलीको डालकर पिघलावे जब वह अच्छे प्रकारसे पिघलजाय तब उसमें ८ तोले सहस्रपुटित अभ्रक डालकर करछीसे मिलादेवे और केलेके पत्तेपर ढाल-कर पर्पटी तैयार करलेवे। शीतल होजानेपर उसको बारीक पीसकर उसमें ३० वाँ भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म मिलाकर हींगके रसमें सौ बार भावना देवे और मल्लमूषामें बन्द करके

३ घंटेतक मन्द मन्द अग्निसे पकावे । स्वांगशीतल होनेपर इसको बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन एक २ मूँगके बराबर सेवन करे यह रस सब प्रकारके वातरोग, क्षय, पाण्डु, मन्दाग्नि, वीर्यकी हीनता, अरुचि, अजीर्ण, शूल, गुल्म, आठों महारोग और धातुशोष आदि अत्यन्त भयंकर व्याधियोंको तत्काल नष्ट करताहै और राजाओंक स्वास्थ्यको सुरक्षित रखनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह निर्वीर्य मनुष्यको वीर्यवान् बनाताहै । इस रसके सेवन करनेपर केवल मूली नहीं खानी चाहिये और सब चीजें खानी चाहिये । यह रस तीन दिन अथवा १ दिन खानेसे ही अग्निको अत्यन्त दीपन कर खूब भूख लगाता है ॥ ७८-८९ ॥

सर्ववातारि रस ।

गंधकाद्विगुणं तालं तालकाद्विगुणा शिला ।
शिलाया द्विगुणं ताप्यं ताप्याच्च द्विगुणं रसम् ॥ ९० ॥
खल्वयेत्सर्वमेकत्र यावत्स्याद्दिनसप्तकम् ।
सर्वस्याष्टमभागेन दत्त्वा रक्तामृतं शुभम् ॥ ९१ ॥
विषतिंदुकजैर्द्रावैः पिष्ट्वा गोलकमाचरेत् ।
विशोष्य वालुकायंत्रे अंध्रयेद्दिवसद्वयम् ॥ ९२ ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य तुल्यहिंग्वष्टकान्वितम् ।
भावयेद्बीजपूरस्य सप्तवारं रसेन हि ॥ ९३ ॥
सप्तवारं रसैः शुंठ्या चित्रमूलस्य वारिणा ।
इति सिद्धो रसेंद्रोऽयं सर्ववातारिसंज्ञकः ॥ ९४ ॥
घृतेन सहितो लीढो वल्लद्वयमितो नृभिः ।

निहंत्यशीतिवातार्तीर्गुल्मानष्टविधानपि ॥ ९५ ॥
चतुर्विधं च मंदाग्निं शूलानुदरजान् क्रिमीन् ।
आध्मानं च तथा हिक्कां मूढवातं च विड्ग्रहम् ॥ ९६ ॥

गन्धक १ भाग, हरताल २ भाग, मैनसिल ४ भाग, सोनामाखी ८ भाग और पारा १६ भाग लेकर सबको एकत्र करके सात दिन तक खरल करे । फिर सम्पूर्ण रसका आठवाँ भाग लाल वत्सनाभ मिलाकर कुचलेके रसमें खरल करके गोला बनालेवे । उसको सुखाकर मूषामें बन्द करके दो दिनतक बालुकायंत्रमें पकावे । स्वांग शीतल होनेपर गोलेको निकालकर चूर्ण कर लेवे । उसमें हिंग्वष्टक चूर्ण (सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, जीरा काला जीरा, सैंधानमक और हींग इन सबके समान भाग चूर्णको हिंग्वष्टक चूर्ण कहते हैं) को समान भाग मिलाकर बिजौरा नींबूके रसमें सात बार भावना देवे, फिर सात भावना सोंठके रसमें और ७ भावना चीतेके रसमें देकर सुखालेवे । इस प्रकार यह सर्ववातारि रस तैयार होता है । इसको प्रतिदिन दो २ रत्ती परिमाण घृतमें मिलाकर सेवन करना चाहिये यह रस अस्सी प्रकारके वातरोग आठ प्रकारके गुल्मरोग चार प्रकारकी मन्दाग्नि, सब प्रकारके उदरसम्बन्धी शूल, कृमिरोग, अफरा, हिचकी, मूढवात और मलबद्धता इन सब रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ९०-९६ ॥

वातविध्वंसन रस ।

मृतमभ्रकसत्त्वं च कांस्यं शुल्बं हि माक्षिकम् ।
गंधकं तालकं सूतं भागोत्तरविवर्धितम् ॥ ९७ ॥
तत्सर्वं कज्जलीकृत्य वातारिस्नेहसंयुतम् ।
मर्दयेत्सप्तदिवसं गोलीकृत्य तु यत्नतः ॥ ९८ ॥

निंबुद्रावेण संपिष्ट्वातालकल्केन लेपयेत् ।
अर्धांगुलदलं चैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥ ९९ ॥
प्रपचेद्वालुकायंत्रे यामानां द्वादशावधि ।
पटचूर्णं विधायैतद्भावयेत्तदनंतरम् ॥ १०० ॥
पंचकोलकाचित्राग्निवरुणादिकषायतः ।
दशमूलकषायेण शृंगवेररसेन च ॥ १०१ ॥
रक्तामृतं कलांशेन दत्त्वा निक्षिप्य यत्नतः ।
स्थूलकोलास्थितुलितां छायाशुष्कां वटीं किरेत् १०२
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैर्नृणां देया सदा हिता ।
हन्यादशीतिधा भिन्नान्वातजातान्महागदान् १०३॥
गुल्मानष्टविधांश्चापि शूलानष्टविधानपि ।
जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलनिग्रहम् ॥ १०४ ॥
आध्मानकमथानाहं विषूचीं मंदवह्निताम् ।
आमदोषानशेषांश्च गुल्मं छर्दिं च दुर्धराम् ॥ १०५॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च कृमिरोगमशेषतः ।
हन्यात्सर्वांगसदनं मन्यास्तंभं च वाजिनाम् ॥ १०६॥
ज्वरे चैवाऽतिसारे च मूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुरूपेण दापनीयं भिषग्वरैः ॥ १०७ ॥
श्रीमता नंदिना प्रोक्तो वातविध्वंसनोरसः ।
क्षुधार्थिभिः सदा सेव्यः सर्वाहारपरैर्नरैः ॥ १०८ ॥

अभ्रकका सत्त्व १ भाग, कांसेकी भस्म २ भाग, तांबेकी

भस्म ३ भाग, सोनामाखीकी भस्म ४ भाग, गन्धक ५ भाग, हरताल ६ भाग, और पारा ७ भाग, इस क्रमसे प्रत्येक औष-धिको एक २ भाग बढाकर लेवे। सबको एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे फिर उसको अण्डीके तेलमें ७ दिन तक घोट कर गोला बनालेवे। उस गोलेके ऊपर नींबूके रसमें घोटकर कल्क की हुई हरतालका आधा अंगुल ऊँचा लेप करके सुखा-लेवे। फिर गोलेको अण्डके पत्तोंमें लपेटकर शरावसम्पुटमें वन्द करके १२ प्रहर तक वालुकायंत्रमें पकावे। स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करके कपडछान कर-लेवे। फिर उसको पंचकोलका क्वाथ, चीतेकी जडका क्वाथ वरुणादि गणकी औषधियोंका क्वाथ, दशमूलका काढा और अदरखका रस प्रत्येकमें क्रमसे एक २ वार भावना देकर १६ वॉ भाग लाल वत्सनाभ डालकर खूब बारीक खरल करे और दो २ रत्तीकी गोलियॉ बनाकर छायामें सुखालेवे। ये गोलियॉ भिन्न भिन्न रोगनाशक भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ रोगियोंको सेवन करानी चाहिये। अस्सी प्रकारके भिन्न भिन्न वातरोग, आठों महारोग, आठ प्रकारका गुल्म,आठ प्रकारका शूल,सब प्रकारका उदररोग, मलबद्धता, अफरा,आनाह, विषू-चिका, मन्दाग्नि, आमदोष, गुल्म, वमन, दुस्तर संग्रहणी, श्वास, खॉसी, सम्पूर्ण कृमिरोग, सर्वाङ्गगत पीडा, नाडीका जकड जाना और मनुष्योंके अतिरिक्त घोडोंकी नाडीका जकड जाना इन समस्त व्याधियोंको यह रस शीघ्र नष्ट करता है। ज्वर, अतिसार, अर्शरोग और सन्निपातमें इस रसको रोगानुसार अनुपानके साथ देना चाहिये और तदनुसार ही पथ्य दिलवाना चाहिये। इस वातविध्वंसन रसको श्रीनन्दि आचार्यने वर्णन किया है। खूब भूख लगनेकी इच्छावाले और सब प्रकारके भारी व हल्के पदार्थोंका आहार विहार

करनेवाले मनुष्योंको यह रस सदैव सेवन करना चाहिये ॥ ९७-१०८ ॥

वृकोदरी वटी (रस) ।

सूतगंधकतीक्ष्णाभ्रैः सताप्यैः समभागिकैः ।
रसांशमपरं सर्वं षट्कोलं जीरकद्वयम् ॥ १०९ ॥
सौवर्चलं ससिंधूत्थं विडंगं च हरीतकी ।
अम्लवेतसकं सर्वं बीजपूरांबुमर्दितम् ॥
गुटिकास्तेन कल्केन कार्याःकोलास्थिमात्रकाः ११०
योगिन्या बहुघातिनामयुतया त्रैलोक्यविख्यातया
निर्दिष्टा हि वृकोदरीति गुटिका सोष्णांबुना सेविता ।
निःशेषानिलदोषशोषजरुजः श्लेष्मामरोगोद्भवं
मांद्याग्निं ग्रहणीं चतुर्विधमहाजीर्णं च तूर्णं जयेत् १११॥

पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक और सोनामाखी सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । फिर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, जीरा, काला जीरा, काला नमक, सेंधा नमक, वायविडङ्ग, हरड और अम्लवेंत इन प्रत्येकके चूर्णको पारेके बराबर भाग लेकर समान भागसे मिला देवे और बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर छोटे बेरकी गुठलीके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको त्रिलोकीमें प्रसिद्ध बहुघाती नामक योगिनीने निर्दिष्ट कियाहै । यह वृकोदरी वटी प्रतिदिन गरम जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके वातरोग, शोषरोग, कफरोग, आमविकार, मन्दाग्नि, संग्रहणी और चार प्रकारका भयंकर अजीर्ण इन सम्पूर्ण रोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ १०९-१११ ॥

प्रभावती वटी (रस) ।

हेमाभ्रालकतीक्ष्णताप्यकमलाश्चैषां समं सूतकं
सूतं च द्विगुणं विशोधनवधूस्नुग्वह्निसौभांजनात् ॥
पाठासूरणसिंदुवारविजयैरण्डद्रवैर्मर्दितं
तैलं कंगुणिगंधकं कटुभवे कल्के वटीं कल्पयेत् ११२
प्रभावतीति कथिताऽऽर्द्रकद्रावैर्निषेविता ।
ततश्चानुपिबेत्तोयं दशमूलप्रसाधितम् ॥ ११३ ॥
सपिप्पलीकं पिबतो जलं जये-
न्मरुद्विकारानुदराण्यपस्मृतिम् ॥ ११४ ॥

सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, हरतालभस्म, लोहभस्म, सोना-माखीकी भस्म और मण्डूरभस्म ये प्रत्येक एक २ भाग और पारा २ भाग इन सबको एकत्र खरल करके असवरग, थूहर, चीता, सैंजना, पाढ, जिमींकन्द, सिह्मालु, भाँग और अण्डकी जड इन प्रत्येक औषधिके स्वरस या क्राथमें क्रमसे पृथक् पृथक् घोटकर सुखालेवे फिर मालकांगनीके तेल, गन्धकके तेल और सरसोंके तेलमें अलग २ खरल करके दो २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । इस रसको प्रभावती वटी कहते हैं । इस रसकी प्रतिदिन एक २ गोली अदरखके रसके साथ खाकर ऊपरसे दशमूलका काढा पिये अथवा दशमूलके काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करे तो वायुके विकार उदररोग और अपस्मार रोग दूर होते हैं ॥ ११२–११४ ॥

स्वच्छन्दभैरव रस ।

तीक्ष्णाऽयस्कांतगोदंतमाक्षिकैर्मर्दितो रसः ।
समांशगंधकः पक्वो हंडिकायंत्रमध्यगः ॥ ११५ ॥

व्योषाग्निमंथसुरसाकंदशृंग्यभयाविषैः ।
समैः समं त्र्यहं मुंडीनिर्गुंडीरसपिण्डितः ॥ ११६ ॥
सेवितः शमयेद्वातान्नाम्ना स्वच्छंदभैरवः ।
विशेषाद्वातरक्तं च द्विवल्लं चार्द्रकद्देत् ॥ ११७ ॥

तीक्ष्णलोहकी भस्म, कान्तलोहभस्म, गोदन्ती हरताल, सोनामाखीकी भस्म, पारा और गन्धक सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके कज्जली करले उसको शरावसम्पुटमें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर भाण्डपुटमें रखकर तीन घंटेतक पकावे । स्वांगशीतल होनेपर औषधिको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । उसमें त्रिकुटा, अरणीकी जड, तुलसी, सुहागा, काकडासिंगी, हरड और वत्सनाभ इन समस्त औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके रसके बराबर भाग मिलादेवे और गोरखमुंडी तथा निर्गुण्डीके रसमें क्रमसे तीन २ दिन तक भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको प्रतिदिन अदरखके रसके साथ सेवन कराना चाहिये । यह स्वच्छन्द भैरव रस सेवन करतेही वातरोग और विशेषकर वातरक्त रोगको शान्त करता है ॥ ११६–११७ ॥

अन्य स्वच्छन्दभैरव रस ।

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यगंधकतालकम् ।
पथ्याग्निमंथनिर्गुंडीत्र्यूषणं टंकणं विषम् ॥ ११८ ॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ।
मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तं द्विगुंजं वटकीकृतम् ॥ ११९ ॥
भक्षयेत्सर्ववातार्तो नाम्ना स्वच्छंदभैरवम् ॥ १२० ॥

शुद्ध पारा, लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिककी भस्म, गन्धक, हरताल, हरड, अरणी, निर्गुण्डी, त्रिकुटा, सुहागा और वत्स-

नाभ सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके निर्गुण्डीके रसमें एक दिन तक खरल करे। दूसरे दिन गोरखमुंडीके रसमें घोटकर उसकी दो दो रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे । सब प्रकारकी वातव्याधिसे पीडित रोगीको यह स्वच्छन्दभैरव रस सदैव सेवन करना चाहिये ॥ ११८ ॥ १२० ॥

वडवानल रस ।

सूतहाटकवज्रार्ककांतभस्म समाक्षिकम्
तालं नीलांजनं तुत्थमब्धिफेनं समांसिकम् ॥ १२१ ॥
पंचानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत् ।
वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥ १२२ ॥
माषैकं चार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वडवानलम् ।
पिप्पलीमूलजं क्काथं सपिप्पल्यनुपाययेत् ।
धनुर्वातं दण्डवातं शृंखलाकम्पवातनुत् ॥ १२३ ॥

पारा, सुवर्ण भस्म, हीरेकीभस्म, ताम्रभस्म, कान्तलोहभस्म, सोनामाखीकी भस्म, हरताल, काला सुरमा, तूतिया, समुद्रफेन, सैंधानमक, काला नमक, समुद्रनमक, विरियासंचर नमक, और कचियानमक इन सबको एक २ तोला लेकर एकत्र कूटपीसकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको थूहरके दूधमें एक दिन तक मर्दन करके गोला बनाले और उसको सम्पुटमें बन्द करके भूधरयन्त्रमें रखकर पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक पीस लेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण अदरखके साथ सेवन करे और ऊपरसे पीपलका चूर्ण मिलाकर पीपल मूलका क्काथ पान करे । इसके सेवनसे धनुर्वात, दण्डवात, शृंखलावात और कम्पवात नष्ट होता है ॥ १२१–१२३ ॥

त्र्यम्बकेश्वर रस।

सूतकस्य पलं पञ्च पलैकं ताम्रचूर्णकम्।
जंबीराणां द्रवैः पिष्टं सूततुल्यं च गंधकम्॥ १२४॥
नागवल्लीदलैः पिष्टं ताम्रपिष्टं प्रकल्पयेत्।
रुद्ध्वा लघुपुटैः पच्याद्भूधरे यामपञ्चकम्॥ १२५॥
आदाय चूर्णयेत्तुल्यैस्त्र्यूषणैः सममिश्रितैः।
अर्धांगकंपवातार्तो भक्षयेच्च द्विगुंजकम्॥ १२६॥

शुद्ध पारा २० तोले, ताम्रभस्म ४ तोले और शुद्ध गन्धक २० तोले लेकर प्रथम पारे गन्धकी कज्जली करले फिर उसमें ताम्रभस्म डालकर जम्बीरी नींबूके रसमें खूब खरल करे फिर सुखाकर पानोंके रसमें घोटकर गोला बना लेवे। उस गोलेको ताँबेके सम्पुटमें बन्द करके भूधरयंत्रमें रखकर पाँच प्रहरतक लघुपुट देवे। स्वांगशील होनेपर गोलेको लेकर चूर्ण करलें और उसमें समान भाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर बारीक खरल करलेवे। यह रस प्रतिदिन दो दो रत्ती परिमाण सेवन करनेसे अर्धाङ्गवात और कम्पवातकी पीडाको शमन करता है॥ १२४-१२६॥

गगनगर्भावटी (रस)।

सूताभ्रं तीक्ष्णताम्रं च मृतं तालकगंधकम्।
भार्ङ्गी शुंठी वचा धान्यकम्पिल्लं चाभया विषम्१२७
मर्द्यं पर्पटकद्रावैर्निष्कका भक्षयेद्वटीम्।
वातश्लेष्महरा ह्याशु वटी गगनगर्भिता॥ १२८॥

पारा, अभ्रक, लोहा, ताँबा, हरताल, गन्धक, भारंगी, सोंठ, वच, धनियाँ, कबीला, हरड और वत्सनाभ सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके पित्तपापडेके रसमें घोट-

कर चार २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । यह गोलियाँ वात और कफके रोगोंको तत्काल नाश करनेवाली हैं॥१२७॥१२८॥

वातगजांकुश रस ।

मृतं सूतं मृतं लोहं गंधकं तारमाक्षिकम् ।
पथ्याभृंगीविषव्योषमग्निमंथं च टंकणम् ॥
तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुंडीनिर्गुंडिजद्रवैः ॥ १२९ ॥
द्विगुंजां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशांतये ।
साध्याऽसाध्यं निहंत्याशु रसो वातगजांकुशः१३०॥

पारदभस्म, लोहभस्म, गन्धक, रूपामाखीकी भस्म, हरड, भारंगी, वत्सनाभ, त्रिकुटा, अरणी और सुहागा सबको सम भाग लेकर खरल करले,। फिर गोरखमुंडी और निर्गुण्डीके रसमें क्रमसे एक २ दिन तक भावना देकर दो २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे फिर प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करे। सब प्रकारकी वातव्याधिको शान्त करनेके लिये इस रसका उपयोग करना चाहिये यह वातगजांकुश रस साध्य व असाध्य सर्व प्रकारके वातरोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥

शतावरी गुग्गुलु ।

शतावरी गुडूची च सारणी गोक्षुरः कणा ।
शताह्वा दीप्यका रास्ना ह्यश्वगंधा च शंखिका।१३१
कर्चुरो नागरश्चैते चूर्णनीयाः समांशकाः ।
एतैः सर्वैः समो ग्राह्यो गुग्गुलुर्माहिषाख्यकः ॥१३२॥
खंडयित्वा घृतेनाऽऽर्द्रं पूर्वचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
संमर्द्य सर्पिषा गाढं कर्षार्धं गुलिकां किरेत्॥१३३॥

शतावर, गूगल, गन्धप्रसारणी, गोखुरू, पीपल, सोंफ, अजवायन, रास्ना, असगन्ध, शंखपुष्पी, कचूर और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस समस्त चूर्णके बराबर भैंसिया गूगल लेकर प्रथम उसको कूटकर घृतके साथ खरल करे, फिर उसमें उक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर घृतके साथ घोटे। जब वह अच्छे प्रकारसे घुटकर मलाईके समान चिकना होजाय तब छः २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे। यह गोलियाँ एकांग आदि वातव्याधिमें विशेष हितकारी हैं॥ १३१-१३३॥

योगराजगुग्गुलु।

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्याचित्रकनागरैः।
पाठाविडंगेंद्रयवहिंगुभार्गीवचान्वितैः॥ १३४॥
सर्षपाऽतिविषाजाजीरेणुकाकृष्णजीरकैः।
गजकृष्णाजमोदाभ्यां कटुकामूर्वमिश्रितैः॥ १३५॥
समभागान्वितैः सर्वैस्त्रिफला द्विगुणा भवेत्।
त्रिफलासहितैरेतैः समभागस्तु गुग्गुलुः॥ १३६॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं मधुना च परिप्लुतम्।
योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातरुत्थितः॥ १३७॥
अर्शांसि वातगुल्मं च पाण्डुरोगमरोचकम्।
नाभिशूलमुदावर्तं प्रमेहं वातशोणितम्॥ १३८॥
कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम्।
महांतमग्निसादं च श्वासकासभगंदरम्॥ १३९॥
रेतोदोषाश्च ये पुंसां योनिदोषाश्च योषिताम्।

निहन्याद्दाशु तान्सर्वान्दुर्वारान्न च संशयः ॥१४०॥
एष निष्परिहारोऽस्ति पानभोजनमैथुने ।
सततान्भ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ १४१ ॥
क्षीराज्यरससमुक्तानां दोषधातुमलोचितम् ।
बुभुक्षितो मात्रयाऽन्नमद्याद्गुग्गुलुसेवकः ॥
प्रमेहं योगराजोऽयं दृष्टं दृष्ट्या जयेदिति ॥ १४२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, पाढ, वायविडंग, इन्द्रजौ, हींग, भारंगी, वच, सरसों, अतीस, जीरा, रेणुका, काला जीरा, गजपीपल, अजमोद, कुटकी और मूर्वा ये सब औषधियाँ समान भाग और सबसे दुगुना। त्रिफला लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। फिर इस समस्त चूर्णके बराबर शुद्ध भैंसिया गूगल लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके शहदके साथ खूब अच्छे प्रकारसे खरल करे। विद्वान् लोग इस योगको योगराजगूगल कहते हैं। इसको प्रतिदिन प्रातःकाल उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे सम्पूर्ण अर्शरोग, वातजगुल्म, पाण्डुरोग, अरुचि, नाभिशूल उदावर्त, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ठ, क्षय, अपस्मार, हृदयरोग, संग्रहणी, अत्यन्त प्रबल मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी, भगन्दर, पुरुषोंके वीर्यसम्बन्धी सम्पूर्ण दोष और स्त्रियोंके योनिसम्बन्धी समस्त विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह गूगल सब प्रकारके दुस्साध्य रोगोंको निस्संदेह नष्ट करता है। इसपर खान पान, मैथुनादिमें किसी प्रकारकाभी परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस गूलको निरन्तर सेवन करनेसे वली और पलितरोग दूर होता है और मनुष्य सम्पूर्ण व्याधियोंसे मुक्त होकर ३०० तीनसौ वर्षतक जीता है।

योगराज गूगलको सेवन करनेवाला मनुष्य दोष, धातु, मल और प्रकृतिके अनुकूल भूख लगनेपर दूध, घी, मांसरसादि पदार्थ, भात आदिको यथोचित मात्रासे सेवन करे यह योग राज गूगल प्रमेहरोगको अवश्य दूर करताहै। यह प्रत्यक्ष अनुभव है ॥ १३४-१४२ ॥

द्वितीय योगराज गुग्गुलु।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा।
विडंगान्यजमोदाश्च जीरकं सुरदारु च ॥ १४३ ॥
वचैला सैंधवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम्।
त्रिफला मुस्तकव्योषत्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ १४४ ॥
तालीसपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
एतानि समभागानि तावन्मात्रं च गुग्गुलुम् ॥ १४५ ॥
संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भांडे विनिक्षिपेत्।
भक्षयेत्कर्षमात्रं च वातरोगान्विनाशयेत् ॥ १४६ ॥
ततो मात्रां प्रयुंजीत यथेष्टाहारसेवनात्।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १४७ ॥
आमवाताढ्यवातादीन्कृमिदुष्टव्रणानपि।
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ १४८ ॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिबलं तथा ॥ १४९ ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, काला जीरा, वायविडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, वच, इलायची, सैंधानमक, कूठ, रास्ना, गोखुरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, दारचीनी, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपात इन सब औषधियोंको समान भाग और इन सबके बराबर शुद्ध गूगल

लेवे । सबको एकत्र कूटपीसकर घृतके साथ खूब बारीक खरल करे । फिर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । इस गूगलको प्रतिदिन एक २ तोला परिमाण सेवन करे और यथेष्टरूपसे आहार विहार करे । यह योगराज गूगल अमृतके समान हितकारी है । यह आमवात आदि समस्त वातरोग, कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, और बबासीर इन सब रोगोंको विनाश करता है तथा जठराग्निको अत्यन्त दीपन, और तेज व बलकी वृद्धि करता है ॥ १४३–१४९ ॥

षडङ्गगुग्गुलु ।

रास्नामृतादेवदारुशुंठीवातारितुल्यकम् ।
गुग्गुलुं सर्वतुल्यांशं कुट्टयेद् घृतवासितम् ॥
कर्षांशं भक्षयेच्चानु ख्यातः षडंगगुग्गुलुः ॥ १५० ॥

रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ और अण्डकी जड सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । उस समस्त चूर्णके बराबर भाग शुद्ध गूगल लेकर सबको एकत्रित करके घृतके साथ खरल करे । इसको षडङ्ग गुग्गुलु कहते हैं । फिर उसमेसे प्रतिदिन एक २ तोला परिमाण सेवन करे ॥ १५० ॥

विजयभैरव तैल ।

धान्याम्लपिष्टसुराभित्रयसूतलिप्त-
तैलाक्तदीप्तपटवर्तिमुखात्प्रवृत्तम् ।
कम्पोत्तराञ्जयति पानविलेपनाभ्यां
वातामयान्विजयभैरवनामतैलम् ॥ १५१ ॥

गन्धक, हरताल, मैनसिल और पारा चारोंको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर उसको कॉजीमें मैदाके समान बारीक पीसकर एक कपडेके ऊपर फैलाकर बत्ती बनालेवे ।

उस बत्तीको एक दिनतक तीक्ष्ण धूपमें सुखाकर दूसरे दिन सरसोंके तेलमें भिजोकर जलावे और उसके नीचे एक बर्तन रखदेवे । उस बर्त्तनमें जो तेल टपके उसको ग्रहण करलेवे । इसको विजयभैरव तैल कहते हैं । यह तैल पान करने और मर्दन करनेसे कम्प आदि समस्त वातरोगोंको शीघ्र दूर करता है ॥ १५१ ॥

सूत तैल ।

रसतालशिलागंधं सर्वं कुर्यात्समांशकम् ।
चूर्णयित्वा ततः श्लक्ष्णमारनालेन मर्दयेत् ॥ १५२॥
लेपयित्वा तु कल्केन सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम् ।
तैलाक्तां कारयेद्वर्तिमूर्द्धभागे प्रदीपयेत् ॥ १५३ ॥
वर्त्यधःस्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम् ।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षयेदातुरस्तथा ॥ १५४ ॥
नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगाननेकधा ।
बाहुकंपं शिरःकंपं जंघाकंपं ततः परम् ॥ १५५ ॥
एकांगं च तथा वातं हंति रोगाननेकधा ।
रोगशांत्यै सदा देयं[2] सूततैलमिदं[3] शुभम् ॥ १५६ ॥

पारा, हरताल, मैनसिल और गन्धक चारोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर काँजीमें अथवा नींबूके रसमें घोटकर एक मलमलके कपडेके ऊपर लेप करके बत्ती बनालेवे उसको सुखाकर तैलमें भिजोकर एक सिरेसे जलावे और उसके नीचे एक बर्त्तन रखदेवे । उस बर्त्तनमें जो तैल- गिरे उसको लेकर शरीरपर मर्दन करे और भक्षण करे । यह

---

१ ते सर्वे विलयं यांति तत्रलेपाद्ग्रहाशयः। २ पेयं ।३ तैलं विजयभैरवम् ।

सूततैल अनेक प्रकारके वातरोगोंको नष्ट करता है। जैसे बाहुका काँपना, शिरका काँपना, जंघाकम्प, एकांगवात, इसी प्रकारके अन्यान्य वातरोगोंको शान्त करनेके लिये इस तेलको सदैव प्रयोग करना चाहिये ॥ १५२-१५६ ॥

द्वितीय विजयभैरव तैल ।

रसगंधशिलातालं दिनं संचूर्ण्य कांजिकैः ।
लिप्त्वा वस्त्रैः कृतां वर्तिं तैलाक्तां ज्वालयेत्पुनः १५७
तद्भूतं संग्रहेत्तैलमधःपात्रे धृते सति ।
तत्तैललेपितं पत्रं नागवल्ल्याश्च भक्षयेत् ॥ १५८ ॥
बाहुकम्पं शिरःकंपमेकांगं जानुकम्पनम् ।
नाशयेद्भक्षणाल्लेपात्तैलं विजयभैरवम् ॥ १५९ ॥

पारा, गन्धक, मैनासिल और हरताल चारोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके कज्जली करलेवे। फिर उसको एक दिनतक काँजीमें घोटकर कपडेके ऊपर लेप करके सुखालेवे। फिर बत्ती बटकर उसको तिलके तेलमें भिजोकर जलावे। और उसके नीचे एक बर्तन रखकर उसमें टपकते हुए तैलको संग्रह करे। उस तैलको पानके ऊपर लगाकर प्रतिदिन भक्षण करे। इस तैलको नियमानुसार भक्षण करने और मर्दन करनेसे बाहुकम्प, शिरःकम्प, एकाङ्ग वात, जानुकम्प आदि सम्पूर्ण वातरोग नाश होते हैं ॥१५७-१५९॥

आनन्दभैरव घृत ।

एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पक्त्वा सर्वांगं तेन मर्दयेत् ॥ १६० ॥
त्वग्वातघ्नं महाश्रेष्ठं घृतमानंदभैरवम् ।
लशुनं सैंधवं तैलमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ १६१ ॥

अण्डीका तेल, त्रिफला, गोमूत्र, चीता और वत्सनाभ सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर कल्क करलेवे। उस कल्कके बराबर घी और घीसे चौगुना पानी लेकर सबको एकत्रित करके यथाविधि घृतको पकावे। इस घृतको समस्त शरीरपर मर्दन करनेसे त्वचागतवात रोग नष्ट होता है। इस घृतको यदि भक्षण करना हो तो पानमें लगाकर भक्षण करे अथवा शहदमें और अदरखके रसमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे लहसुनको तेलमें भूनकर उसमें सैंधा-नमक मिलाकर अनुपान करे। यह आनन्दभैरव घृत त्वचा-सम्बन्धी वातरोगोंको शमन करनेके लिये परम उपयोगी है॥ १६०-१६१॥

सामान्य उपाय।

पर्पटीरसगुंजाष्टौ पूर्वप्रोक्तं च गुग्गुलुम्।
कर्षार्धं खादयेत्साज्यमेकांगानिलशांतये॥ १६२॥
एरण्डवह्निशुंठीनां गुडूच्याश्च कषायकम्।
अनुपानाय दातव्यं चणकक्वाथमेव वा॥ १६३॥
नलिकायंत्रयोगेन सर्जतैलं समुद्धरेत्।
तदभ्यंगप्रयोगेण वातो दुष्टः प्रशाम्यति॥ १६४॥
अष्टगुंजामितं खादेदेकांगे पर्पटीरसम्।
अर्धकर्षं घृतेनानुयोगराजं च गुग्गुलुम्॥ १६५॥
धूमसारं वरा षष्ठी टंकणं पत्रकं विषम्।
तुल्यं गुंजाद्वयं खादेदामवातप्रशांतये॥ १६६॥
निर्गुंडीमूलचूर्णं तु कर्षं तैलेन लेहयेत्।
संधिवातः कटीवातः कंपवातश्च शाम्यति॥ १६७॥

---

१ शिरोवस्तश्च।

रक्तस्यैरण्डमूलस्य कर्षं घृष्ट्वा जलैः पिबेत् ।
सर्ववातहरं श्रेष्ठं भग्नवाते विशेषतः ॥ १६८ ॥
इंद्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम् ।
भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्संधिवातहरं भवेत् ॥ १६९ ॥
मृतं सूतं मृतं तीक्ष्णं मर्दयेत्कटुकीद्रवैः ।
चणमात्रां वटीं खादेत्सर्वांगैकांगवातनुत् ॥ १७० ॥

एकांग वातको शान्त करनेके लिये प्रतिदिन आठ२ रत्ती परिमाण पर्पटीरस और छः २ मासे पूर्वोक्त शतावर गुग्गुलु घृतमें मिलाकर सेवन करावे । और इसके ऊपर अनुपानके लिये अण्डकी जड, चीता, सोंठ और गिलोयका क्वाथ अथवा चनोंका क्वाथ देवे । अथवा नलीयन्त्रके द्वारा रालका तेल निकालकर उसकी मालिश करनेसे दूषित वात शमन होताहै । एकांगवातकी पीडामें रोगीको आठ २ रत्ती परिमाण पर्पटीरस सेवन कर ऊपरसे छः मासे योगराज गूगल घृतमें मिलाकर खानी चाहिये, घीके दीपककी लोयसे पारी हुई स्याही, त्रिफला, मुलैठी, सुहागा, तेजपात और शुद्ध वत्सनाभ इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । फिर उसमेंसे प्रतिदिन दो दो रत्ती परिमाण सेवन करे तो आमवात रोग शान्त होताहै । एक २ तोला निर्गुण्डीकी जडके चूर्णको तेलमें मिलाकर चाटनेसे सन्धिगत वात, कटिवात और कम्पवात दूर होताहै । लाल अण्डकी जडको एक तोला लेकर पानीमें घिसकर पान करे । यह प्रयोग सम्पूर्ण वातरोगोंको हरनेवाला और भग्नवातमें विशेष उपयोगी है । इन्द्रायनकी जडका चूर्ण ३ मासे, पीपलका चूर्ण ३ मासे और गुड ६ मासे सबको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे सान्धि-

गत वात दूर होताहै । अथवा पारेकी भस्म और तीक्ष्ण लोहकी भस्म दोनोंको समान भाग लेकर कुटकीके रसमें खरल करके चनेके बराबर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको हमेशा सेवन करनेसे सर्वाङ्गगत वात अथवा एकांग स्थित बातकी पीडा नष्ट होजाती है ॥ १६२-१७० ॥

वातरक्त।

संधिष्वनिलरक्ताभ्यां शोफोन्तर्बहिराश्रितः ।
छर्दिज्वराऽरुचिकरो भवेद्वातास्रसंज्ञकः ॥ १७१ ॥

वायु और रक्तके दूषित होनेसे जब सन्धिस्थानोंके, भीतर और बाहर सूजन होजाती है, और वमन, ज्वर, अरुचि आदि उपद्रव होते हैं तब उसको वातरक्त रोग कहते हैं ॥ १७१ ॥

चन्द्रावलेह ।

एलायाश्च तुला ग्राह्या जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागाऽवशिष्टं तु शर्कराधंतुलां क्षिपेत् ॥ १७२ ॥
शतावर्या विदार्याश्च गोक्षीरं चाढकं पृथक् ।
लेहवत्साधिते तस्मिन्द्राक्षामधुकपिप्पलीः ॥ १७३ ॥
त्रिजातकं च खर्जूरं चंदनद्वयसारिवा ।
मुस्तापद्मकह्रीबेरधात्री चोत्पलचोरकम् ॥ १७४ ॥
एतेषां पलमादाय क्षिपेत्क्षीयाश्चतुष्पलम् ।
क्षौद्रप्रस्थेन संयुक्तं लेहयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १७५ ॥
पित्तोन्मादविकारेषु शिरोभ्रमणमूर्छिते ।
हस्तपादांगदाहे च पित्तरक्तोत्तरावृतौ ॥
छर्दिकासक्षये पांडौ चंद्रवच्चंद्रभाषितम् ॥ १७६ ॥

चार सौ ४०० तोले इलायचीको एक द्रोण जलमें डालकर

पकावे । अष्टमांश जल शेष रहनेपर उस क्वाथको उतारकर छान लेवे । फिर उसमें खांड २०० तोले, शतावरका रस १ आढक (२५६ तोले), विदारीकन्दका रस १ आढक और गायका दूध १ आढक डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब समस्त रस पकते २ अवलेहके समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें निम्नलिखित औषधियोंका कपडछान किया हुआ बारीक चूर्ण डालकर मिलादेवे । दाख, मुलैटी, पीपल, त्रिजातक, खजूर, चन्दन, लाल चन्दन, सारिवा, नागर मोथा, पद्माख, सुगन्धवाला, आमले, कमलकन्द और भटेउर इन सब औषधियोंका चूर्ण चार २ तोले, वंशलोचन १६ तोले और शहद एक प्रस्थ डालकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे फिर घीके चिकने बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस अवलेहको प्रतिदिन प्रातःकाल रोगानुसार अनुपानके साथ यथोचित मात्रासे सेवन करे । यह अवलेह–पित्तरोग, उन्माद रोग, सिरकी पीडा, भ्रम, मूर्च्छा हाथ पांव आदि अंगोंकी दाह, पित्त और रक्तके विकारसे उत्पन्न हुए रोग, वमन, खांसी, क्षय और पाण्डु इन सब रोगोंमें शीघ्र उपकार करता है । इसके सेवनसे मनुष्य चन्द्रमाके समान कान्तिवान् होताहै । इस चन्द्रावलेहको चंद्रदेवने वर्णन कियाहै ॥ १७२–१७६ ॥

अमृतप्राश चूर्ण ।

ऐलेयकं समूलं हि मुद्गपर्णी तथैव च ।
शतावरी विदारी च वाराहीकंदमेव च ॥ १७७ ॥
मधुकं च मधूकं च तुगाक्षीरी च गोस्तनी ।
एतानि द्विपलांशानि चूर्णीकृत्य पृथक् पृथक् १७८॥
सरलं चंदनं चोचमुत्पलं कुमुदं जलम् ।

काकोली क्षीरकाकोली द्वे मेदे जीवकर्षभौ ॥ १७९ ॥
एतेषां चार्धपालिकं प्रत्येकं शर्करायुतम् ।
ऐलेयकं विदारी च वाराही मुद्गपर्णिका ॥ १८० ॥
एतेषां स्वरसैः शुद्धैः शतावर्याश्च भावितम् ।
एतत्सर्वं समाहृत्य छायाशुष्कं तु सप्तधा ॥ १८१ ॥
इक्ष्वामलकयोः क्षौद्रैर्भावितं सप्तधा पुनः ।
पयसा तु पिबेत्प्रातर्यथाग्निबलवान्नरः ॥ १८२ ॥
अंगदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
शिरोक्षिकम्पभ्रमणमित्यादिकगदाञ्जयेत् ॥ १८३ ॥

इलायचीका पंचाङ्ग, मुगवन, शतावर, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, मुलैठी, महुआ, वंशलोचन, और दाख ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले, धूपसरल, चन्दन, दारचीनी, कमल, कुमोदिनी, सुगन्धवाला, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक और खाँड ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे । इन सब औषधियोंको एकत्र कूटपीसकर वारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको इलायचीका पञ्चाङ्ग, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, मुगवन और शतावर इन औषधियोंके स्वरसमें क्रमसे सात सात बार भावना देवे और सात २ बार छायामें सुखावे। इसके पश्चात् ईखका रस, आमलोंका रस और शहद तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र मिश्रित करके उसमें सात बार भावना देवे और सातबार छायामें सुखावे । इस चूर्णको मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी जठराग्निके बलाबलके अनुसार दूधके साथ सेवनकरे । यह चूर्ण शरीरकी दाह, सिरकी दाह,

---

१ एलवालुक नामगन्धद्रव्य ।

दारुण रक्तपित्त, सिर और नेत्रोंका कम्प, भ्रम आदि समस्त वातव्याधियोंको दूर करताहै ॥ १७७-१८३॥

ऐलेयकतैलम् ।

ऐलेयकस्य स्वरसमाढकं तु भिषग्वरः ।
कुमार्याः स्वरसं शुद्धं चतुष्प्रस्थं तु कारयेत्॥ १८४॥
आमलक्याः शतावर्या रसं प्रस्थद्वयं पृथक् ।
तैलाढकसमायुक्तं क्षीरद्रोणविमिश्रितम् ॥ १८५ ॥
चोचं मलयजं वारि सरलं कुमुदोत्पलम् ।
द्वे मेदे मधुकं द्राक्षा तुगाक्षीरी मधूलिका ॥१८६ ॥
काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकावुभौ ।
मृगनाभ्यजगंधा च शशांकश्च पृथक् पृथक् ॥१८७॥
एतेषां चार्धपलिकं श्लक्ष्णं चूर्णं विनिक्षिपेत् ।
एतत्सर्वं समालोड्य मंदं मंदाग्निना पचेत् ॥
समुहूर्ते सुनक्षत्रे नववस्त्रेण पीडयेत् ॥ १८८ ॥
शिरोनेत्रविकारेषु नस्यं स्यात्कर्णयोजितम् ।
अभ्यंगोद्वर्तनालेपैः शिरोभ्रमणकम्पनुत् ॥ १८९ ॥
अंगदाहं शिरोदाहं नेत्रदाहं च दारुणम् ।
विसर्पकविकारांश्च मूर्ध्नि जातान्बहून्व्रणान्॥ १९०॥
आस्यशोषं भ्रमं चैव नाशयेन्नात्र संशयः ।
ऐलेयकमिदं तैलं प्रशस्तं पित्तरोगिणाम् ॥ १९१ ॥

इलायचीका स्वरस या काढा १ आढक (२५६ तोले,)

---

१ एलवालुक ।

घीग्वारका स्वरस ४ प्रस्थ, आमलोंका स्वरस २ प्रस्थ, शतावरका रस २ प्रस्थ, तेल १ आढक और दूध १ द्रोण परिमाण लेवे। सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे और उसी समय उसमें दालचीनी, चन्दन, सुगन्धवाला, धूपसरल, कुमोदिनी, कमल, मेदा, महामेदा, मुलैठी, दाख, वंशलोचन, मूर्वा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, कस्तूरी और वनतुलसी, इन औषधियोंके दो २ तोले बारीक चूर्णको डालदेवे। जब पकते २ समस्त रस जलजाय और तेलमात्र शेषरहजाय तब उतारकर नवीन वस्त्रमें छानलेवे और उसमें दो तोले कपूर डालकर शीशियोंमें भरकर रखदेवे । इस तेलको उत्तम मुहूर्त्त और शुभ नक्षत्रमें व्यवहारकरे। शिरके रोग और नेत्रसम्बन्धी रोगोंमें इस तेलकी नस्य देवे अथवा कानमें डाले। इसको मालिश, उबटन, प्रलेप आदि उपचारोंके द्वारा प्रयोग करनेसे सिरमें चक्कर आना, कम्प, शरीरकी दाह, शिरका दाह, दारुण नेत्रोंकी दाह, विसर्परोग, सिरमें होनेवाले अनेक प्रकारके व्रण मुखशोष और भ्रम ये सब रोग निस्सन्देह नाश होते हैं । यह तैल पित्तरोगियोंके लिये अत्यन्त हितकारी है॥ १८४-१९१ ॥

ऐलेयसाप ।

ऐलेयकस्य स्वरसे घृतं क्षीरं समं पचेत् ।
चंदनं मधुकं द्राक्षा मधूकं च तुगा सिता ॥ १९२ ॥
ऐलेयकमिदं सर्पिः सर्वपित्तविकारजित् ।
वातपित्तविकारघ्नं शिरोभ्रमणकंपनुत् ॥ १९३ ॥

चन्दन, मुलैठी, दाख, महुआ वंशलोचन और मिश्री ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर सबको २४ तोले इलायचीके स्वरसमें पीसकर कल्क बनालेवे, उस कल्कको २४ तोले घी

---

२ एलवालुक सुगन्धद्रव्यविशेष।

और २४ तोले दूधमें मिलाकर यथाविधि घृतको सिद्ध करे । इसको ऐलेयक घृत कहते हैं । यह पित्तके समस्त विकारोंको तथा वातपित्तके रोग, शिरोरोग, भ्रम और कम्प इन सब रोगोंको नष्ट करताहै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥

सामान्य उपाय ।

त्रिनेत्राख्यं रसं खादेद्वातशोणितपीडितः ।
वातास्रजिच्छूलगजकेसर्युदयभास्करः ॥ १९४ ॥
पूर्वोक्तपर्पटी योज्या सर्वेष्वावरणेषु च ।
सर्वरोगहिता चैव नाम्ना सर्वेश्वरी शुभा ॥ १९५ ॥
ऐलेयकस्य स्वरसे सक्षीरां शर्करां पिबेत् ।
क्वाथं वा शर्करायुक्तं शिरोभ्रमणकम्पनुत् ॥ १९६ ॥

वातरक्त वाला रोगी त्रिनेत्ररस, शूलगजकेसरी रस अथवा उदयभास्कर रसको सेवन करे तो वातरक्तसे शीघ्र मुक्त होजाताहै । सब प्रकारके वातरक्तरोगमें और एवं पित्तरोग सन्धिगत रोगोंमें पूर्वोक्त सर्वेश्वर पर्पटी रस प्रयोग करना चाहिये । यह पर्पटी समस्त रोगोंमें हितकारी है । इलायचीके स्वरसमें दूध और खाँड मिलाकर पान करे अथवा इलायचीके काढेमें खाँड डालकर पान करे तो शिरका घूमना, कम्प आदि वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १९४–१९६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकाया-
मेकविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

वन्ध्याचिकित्सा ।

भेदा वंध्याऽबलानां हि नवधा परिकीर्तिताः ।
तत्राऽऽदिवंध्या प्रथमा पापकर्मविनिर्मिता ॥ १ ॥

रक्तेन च पृथग्दोषैः समस्तैः पंचधा भवेत् ।
भूतदेवाभिचारैश्च तिस्रो वंध्याः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
पुमानपि भवेद्वंध्यो दोषैरेतैश्च शुक्रतः ।
गर्भस्रावी स्मृता पूर्वं मृतवत्सा द्वितीयका ॥ ३ ॥
तृतीया स्त्रीप्रसूतिः स्यात्काकवंध्या सकृत्प्रसूः॥४॥

वन्ध्या (बाँझ) स्त्रियोंके नौ भेद कहे गये हैं । उनमें पहिली (१) आदिवन्ध्या है, जो पूर्वसंचित पापकर्मोंके कारण होती है । दूसरी (२) रक्तवन्ध्या होती है वह स्त्री रक्तके विकृत होने अथवा ऋतुस्रावके दूषित होनेसे या गर्भाशयमें रक्तके सूखजानेसे वन्ध्या होती है । तीसरी (३) वातवन्ध्या होती है । उसका गर्भाशय वायुके प्रकुपित होनेसे शुष्क रूक्ष और संकुचित हो जाता है । (४) पित्तवन्ध्या होती है । उसके गर्भाशयमें पित्त (गरमी) का विशेष उपद्रव होनेसे रज और वीर्यका सम्मिश्रण नहीं होता । यदि कदाचित् होजाय तो तुरन्त अथवा थोडे दिनोंमें ही उसका स्राव होजाता है । पांचवीं (५) काक वन्ध्या होतीहै जो स्त्रियां किसी प्रकारका भी परिश्रम नहीं करतीं उनके शरीरमें भुक्त पदार्थोंकी चर्बी विशेषरूपसे बनती है, इससे उन स्त्रियोंका शरीर देखनेमें तो पुष्ट मालूम होता है, परन्तु आभ्यन्तर यन्त्र बहुत निर्बल होते हैं । कारण, चर्बीका दबाव पडनेसे रक्तका संचार अच्छे प्रकारसे नहीं होता, अतएव कोई अवयव पुष्ट नहीं होसकता—और प्रतिदिन उदर सम्बन्धी भागों और विशेषकर गर्भाशयके ऊपर चर्बीका बहुत बोझ पडनेसे गर्भको पोषण करनेका प्रत्येक सूक्ष्म मार्ग रुकजाताहै, इस कारण उस स्त्रीके गर्भ नहीं रहता और जो कभी रहजाता है तो शीघ्र गिर जाता है ।

(६) त्रिदोषवन्ध्या होती है । इस स्त्रीके उपर्युक्त वात पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके थोडे २ उपद्रव होते हैं, इसलिये ऐसी स्त्रीके कभी गर्भ ही नहीं रह सकता । यदि कदाचित् ऐसा हो जाय तो गर्भस्त शिशु मरजाता है । (७) भूतवन्ध्या, (८) देववन्ध्या और नवीं (९) अभिचारवन्ध्या कही जाती हैं । ये तीनों प्रकारकी स्त्रियाँ भूतादिका आवेश, देवताका आवेश होने और शत्रु द्वारा किये गये तन्त्र मन्त्रके प्रभावसे वन्ध्यत्वको प्राप्त होती है । ऐसी स्त्रियोंके कदाचित् गर्भस्थिति होजाय तो कन्या उत्पन्न होती है । उपर्युक्त दोषोंसे पुरुषभी नौ ९ प्रकारके वन्ध्यत्वको प्राप्त होता है । कारण वे नौ दोष उसके वीर्यमें समा जाते हैं । उक्त नौ प्रकारकी वन्ध्या स्त्रियोंमेंसे आदिवन्ध्याके गर्भस्राव होजाताहै और दूसरीसे लेकर छठीतक वन्ध्या स्त्रीके बालक जन्मतेही मरजाते हैं । सातवीं, आठवीं और नववीं वन्ध्यास्त्रियोंके कन्यायेंही उत्पन्न होती हैं, इसलिये ये भी वन्ध्या कहलाती हैं। जिस स्त्रीके एकबार सन्तान उत्पन्न होकर फिर गर्भ स्थित नहीं होता, वह काकवन्ध्या कहलाती है ॥ १–४ ॥

जयसुन्दर रस ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं ताप्यसत्त्वं च वैक्रुतम् ।
एकैकं निष्कमानेन संशुद्धं परिमारितम् ॥ ५ ॥
एतच्चतुर्गुणं सूतं सूताद्द्विगुणगंधकम् ।
मर्दयेल्लक्ष्मणातोयैर्बंधुजविरसैरपि ॥ ६ ॥
काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा ताम्रपात्रं मुखे न्यसेत् ।
विलिंपेदभितः कूपीमंगुलोत्सेधया मृदा ॥ ७ ॥
विशोष्य च पुटं दद्याद्भूमौ निक्षिप्य कूपिकाम् ।

गजाख्यपुटपर्याप्तिः शाणकर्षमितोत्पलैः ।
स्वांगशीतं विचूर्ण्याथ भावयेल्लक्ष्मणाद्रवैः ॥ ८ ॥
सप्तवारं विशोष्याऽथ करण्डांतर्विनिक्षिपेत् ।
अश्वगंधारजोयुक्तस्ताम्रगोक्षीरसंयुतः ॥ ९ ॥
सेवितो गुंजया तुल्यः सितया च रसोत्तमः ।
मासत्रयप्रयोगेण वंध्या भवति पुत्रिणी ॥ १० ॥
पुत्रिण्यै स्नानशुद्धायै जरत्कौशिकचक्षुषी ।
गव्याज्येनच संसाध्य तत्तदानीं हि भोजयेत् ॥ ११ ॥
ऋतावृताविदं देयं यावन्मासत्रयं भवेत् ।
रसेंद्रः कथितः सोऽयं चंपकारण्यवासिभिः ॥ १२ ॥
पूर्णामृताख्ययोगींद्रैर्नामतो जयसुंदरः ।
सेवितेऽस्मिन् रसे स्त्रीणां न भवेत्सूतिकागदः ॥ १३ ॥
भवेत्पुत्रश्च दीर्घायुः पंडितो भाग्यमण्डितः ॥ १४ ॥

सुवर्णभस्म, चाँदीकी भस्म, ताम्रभस्म, सोनामाखीकी भस्म, और वैक्रान्तमणिकी भस्म ये प्रत्येक चार २ मासे, शुद्ध पारा १६ मासे और शुद्ध गन्धक ३२ मासे लेवे । प्रथम पारे, गन्धककी कज्जली करके उसमें समस्त भस्मोंको मिला-लेवे । फिर लक्ष्मणा (सफेद कटेरी) के और दुपहारिया वृक्षके पत्तोंके रसमें क्रमसे एक २ बार खरल करके सुखा-लेवे । इसके पश्चात् उसका गोला बनाकर काँचकी आतशी शीशीमें रक्खे और उसके मुँहपर ताँबेका पतला पत्र ढकदेवे और शीशीके चारों तरफ एक २ अँगुल ऊँची कपरौटी करके सुखालेवे । फिर उस शीशीको गजपुटमें रखकर और उसको सवा सवा तोलेके उपलोंसे ढककर अग्निदेवे । स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर

लक्ष्मणाके रसमें सात बार भावना देवे और सातवार सुखावे। फिर बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण लेकर असगन्धके चूर्ण, लाल गायके दूध और मिश्रीके साथ सेवन करे। इस प्रकार इस उत्तम रसको तीन महीनेतक निरन्तर सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है। पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे जो स्त्री इस रसको सेवन करती हो तो जब जब वह ऋतुमती हो तभी तभी स्नानशुद्धिके पश्चात् उसको वृद्ध उल्लूके दोनों नेत्र गायके घीमें अच्छे प्रकारसे तलकर भोजन करावे। और भूख लगनेपर एकबार सादा और हल्का आहार करे। इस प्रकार पथ्यसहित इस रसको तीन महीने तक सेवन करे। इस रसके सेवन करनेपर स्त्रियोंके कभी प्रसूतरोग नहीं होता और दीर्घायुषी, विद्वान् तथा भाग्यवान् पुत्र उत्पन्न होता है। इस जयसुन्दर रसको चम्पकारण्य निवासी श्रीपूर्णामृत योगीने वर्णन किया है ॥ ५–१४ ॥

रत्नभागोत्तर रस।

वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
वैडूर्यं चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा ॥ १५ ॥
पंचगुंजामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
तत्तंत्रोक्तविधानेन भस्मीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १६ ॥
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रांतसंभवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्विमलभस्म च ॥ १७ ॥
सर्वतास्त्रिगुणां तुल्यां रसगंधककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र संमर्द्य छागीदुग्धेन तद्दयहम् ॥ १८ ॥
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।

वंध्याककोंटकीचूर्णक्राथेन परिमर्दयेत् ॥ १९ ॥
काननोत्पलविंशत्या पुटेत्षोडशवारकम् ।
एवं रसो विनिष्पन्नो रत्नभागोत्तराभिधः ॥ २० ॥
महावंध्यादिवंध्यानां सर्वासां संततिप्रदः ।
देवीशास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वंध्यत्वरोगनुत् ॥ २१ ॥
सोऽयं पाचनदीपनो रुचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी-
सर्वव्याधिविनाशनो रतिकरः पाण्डुप्रचंडार्तिनुत् ।
धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद्योषितां
निर्दोषः स्मरमंदिरामयहरो योगादशेषार्तिनुत् ॥ २२ ॥

हीरा ५ रत्ती, पन्ना ६ रत्ती माणिक ७ रत्ती, पुखराज ८ रत्ती, नीलम, ९ रत्ती वैदूर्यमणि १० रत्ती, गोमेदमणि ११ रत्ती, मोती १२ रत्ती और मूँगा १३ रत्ती इस प्रकार इन सब रत्नोंको क्रमसे उत्तरोत्तर भाग बढाकर लेवे और शास्त्रोक्त विधिसे सबकी भस्म करलेवे । इन समस्त रत्नोंकी भस्मसे अठगुनी वैक्रान्तमणिकी भस्म, अठगुनीही सोनामाखीकी भस्म और उसीकी बराबर रूपामाखीकी भस्म तथा सम्पूर्ण भस्मोंसे तिगुनी पारे और गन्धककी कज्जली लेवे । सबको एकत्र मिलाकर दो दिनतक बकरीके दूधमें खरल करे । फिर उसको कढ़ाईमें पिघलाकर पूर्वोक्त विधिसे पर्पटी तैयार कर-लेवे । जब वह शीतल होकर सूखजाय तब बारीक चूर्ण कर-लेवे । पश्चात् उस चूर्णको बाँझककोडेके काढेमें घोटकर गोला बनाकर सुखालेवे । उस गोलेको शरावसम्पुटमें बन्द करके२० उपलोंकी अग्निमें पुटपाक करे । फिर बाँझककोडेके क्राथमें घोटकर पुट देवे । इस प्रकार १६ बार पुट देवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें बाँझककोडेके रसमें घोटे । इन समस्त पुटको

पश्चात् उस रसको बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रख-देवे। इस प्रकार यह रत्नभागोत्तर रस सिद्ध होताहै। इस रसके सेवनसे महावन्ध्या, आदिवन्ध्या आदि सभी प्रकारकी वन्ध्याओंका वन्ध्यत्व दूर होकर उनके सन्तान उत्पन्न होती है। और पुरुषोंके वीर्य विकारके कारण उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व दोषभी नष्ट होजाताहै, ऐसा देवीशास्त्रमें कहाहै। यह रस अत्यन्त पाचक, अग्निदीपक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, गर्भिणी स्त्रियोंकी सम्पूर्ण व्याधियोंको नाश करनेवाला, रतिश-क्तिको बढानेवाला, और भयंकर पाण्डुरोगको नष्ट करने-वाला है। बुद्धिको बढानेवाला, पुत्रको उत्पन्न करनेवाला और स्त्रियोंके सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला यह रस धन्य है। भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे यह सम्पूर्ण रोगोंको तथा कामवासनाके विकारोंको दूर करता है। यह रस निर्दोष है, इस लिये इनके सेवनसे कोई हानि नहीं होती, लाभही होता है ॥ १९–२२ ॥

चक्रिकाबन्ध रस ।

गंधकः पलमात्रश्च पृथगक्षौ शिलालकौ ।
त्रिदिनं मर्दयित्वाऽथ विदध्यात्कज्जलीं शुभाम् ॥ २३ ॥
विषाणाकारमूषायां कज्जलीं निक्षिपेत्ततः ।
द्विपलस्य च ताम्रस्य तन्मुखे चक्रिकां न्यसेत् ॥ २४ ॥
सन्निरुध्यातियत्नेन संधिबंधे विशोषिते ।
ततः करिपुटार्धेन पाकं सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥
स्वतःशीतं समुद्धृत्य चक्रिकां परिचूर्णयेत् ।
स्थापयेत्कूपिकामध्ये वस्त्रेण परिगालिताम् ॥ २६ ॥

रसोऽयं चक्रिकाबंधस्तत्तद्रोगहरौषधैः ।
दातव्यः शूलरोगेषु मूले गुल्मे भगंदरे ॥ २७ ॥
ग्रहण्यामग्निमांद्ये च विद्रधौ जठरामये ।
नागोदरे तथैवोपविष्टके जलकूर्मके ॥ २८ ॥
स्कंदेनामंदकृपया त्रैलोक्यत्राणहेतवे ।
चक्रिकाबंधनामायं प्रसूत स्त्रीगदापहः ॥ २९ ॥

शुद्ध गन्धक ४ तोले, मैनसिल १ तोला और हरताल १ तोला तीनोंको एकत्र मिलाकर तीन दिन तक खरल करके कज्जली करलेवे। उस कज्जलीको सींगके समान आकारवाली लम्बी मूषामें भरकर उसके मुँहपर ८ तोले शुद्ध ताँबेकी टिकिया बनाकर ढकदेवे और सन्धिबन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर सुखालेवे। फिर उसको अर्द्ध गजपुटमें रखकर उत्तम प्रकारसे पुटपाक करे। स्वांगशीतल होनेपर तांबेकी टिकियाको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे और वस्त्रमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे। यह चक्रिकाबन्ध रस भिन्न भिन्न रोगनाशक अनुपानोंके साथ निम्नलिखित रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये शूलरोग, अर्श, गुल्म, भगन्दर, संग्रहणी, मंदाग्नि विद्राधि, उदररोग, गर्भपात, मूढगर्भ, जलोदर आदि रोगोंमें इस रसके सेवनसे विशेष उपकार होताहै। त्रिलोकीकी रक्षाके निमित्त श्रीस्वामीकार्त्तिकेयने बडी कृपा करके यह रस वर्णन किया है। यह प्रसूता स्त्रियोंके समस्त रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ २३–२९ ॥

वर्द्धमानरस ।

पलार्धप्रमिते स्वर्णे ताम्रं दत्त्वाऽक्षमात्रकम् ।
निर्वापयेच्छतं वारं निक्षिप्य शुकपिच्छकम् ॥ ३० ॥

ततश्च जारणायंत्रे सूत्रस्थानसमीरिते ।
जारणातैलसंयुक्तं जीर्णषड्गुणसंयुतम् ॥ ३१ ॥
रसं हि द्विपलं दत्त्वा जारणाविधियोगतः ।
जारयित्वा ततः पश्चात्पिष्टं सूतं प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥
सूत्रप्रोक्तोष्टिकायंत्रे स्वेद्यावेष्ट्य च वाससा ।
मातुलुंगरसैः पिष्टं चतुर्निष्कमितं दहुम् ॥ ३३ ॥
ऊर्ध्वं च विनिधायाऽथ जारयित्वा चतुर्गुणम् ।
तमादाय रसं सम्यग्विचूर्ण्य परिगाल्य च ॥ ३४ ॥
षष्ठांशेन मृतं वज्रं समं वैक्रांतकं स्मृतम् ।
निक्षिप्य लिंगिकापत्ररसैरापूर्य वासरम् ॥ ३५ ॥
पुटेद् द्वादशवाराणि मध्वा द्वादशकोपलैः ।
बंधुजीवरसेनाऽथ लक्ष्मणास्वरसेन च ॥ ३६ ॥
पुनः संचूर्ण्य संपूज्य योगिनीपितृदेवताः ।
पुत्रिण्याः पूर्णिमायाश्च पूजितायाः विधानतः ॥ ३७ ॥
इति कृत्वाऽऽभुयाद्गर्भं षण्मासाऽभ्यंतरे खलु ।
आदिवंध्यादिका वंध्या याश्चान्या दुष्टयोनयः ॥ ३८ ॥
प्राप्नुयुर्जीवपुत्रं हि भाग्यसौभाग्यसंयुतम् ।
पुंसामपि च वंध्यत्वमल्परेतस्त्वमेव च ॥ ३९ ॥
बीजदोषा विचित्राश्च विनश्यंति न संशयः ॥ ४० ॥
ब्रह्मज्योतिर्मुनिवरमतो वर्धमानो रसोऽयं
वंध्यारोगं हरति सकलं योनिदोषानशेषान् ।

---

१ गधकम् ।

सूतीरोगानपि बहुविधान्दुःखसाध्यान्समस्ता-
न्रोगानन्यानपि रसवरो योगयुक्तो निहन्यात् ॥ ४१ ॥

२ दो तोले सुवर्णमें १ तोला शुद्ध तांबा डालकर गलावे । फिर उसमें ३ तोले शुद्ध नीलाथोथा डालकर चलावे । जब तीनों रस पिघलकर एक रूप होजायँ तब नीचे उतारकर शीतल करलेवे । इस प्रकार तीनों रसोंको १०० बार पिघलाकर १०० बार शीतल करे । फिर बारीक चूर्ण करके लहसुनके रसमें घोटकर गोला बनालेवे । पश्चात् १२ अंगुल ऊँची और इतनीही लम्बी, चौडी लोहेकी दो मूषा तैयार करावे । उनमेंसे एककी तलीमें १ छेद करदेवे और दूसरी विना छेदकी रक्खे । फिर सूत्रस्थानमें कहे हुए जारणायन्त्रमें छः गुने गंधकके साथ जारण किये हुए ८ तोले पारेकी क्षार तैल (पाताल यन्त्रके द्वारा खींचा हुआ) और लहसुनके रसमें घोटकर विना छेद्वाली मूषामें भरदेवे और दूसरी छेद्वाली मूषामें उपर्युक्त स्वर्ण आदिका गोला रक्खे । पारेकी मूषाके ऊपर सुवर्णके गोलेवाली मूषाको अच्छीतरह जमाकर रक्खे । फिर एक चौडे मुँहवाली हांडीमें उस मूषाके सम्पुटको रखदेवे और उसमें इतना पानीभर देवे । जिसमें पारेकी मूषा डूबी रहे, फिर उस हांडीके ऊपर दूसरी हांडी औंधा मुँह करके इस प्रकार ढके कि उसका मुँह नीचेकी हांडीके मुँहमें धसजाय । फिर दोनों हांडियोंके मुँहपर कपरौटी करके सुखालेवे और ऊपरकी हांडीकी तलीके ऊपर भैंसके दूधमें चूना और मण्डूर मिलाकर उसकी पाली बनालेवे । फिर उस यन्त्रको चूल्हेपर चढाकर नीचे लकडियोंकी अग्नि जलावे और उसके ऊपर आरने उपलोंकी और अग्निकी क्रमसे वृद्धि करता चलाजाय । इसप्रकार १९ घंटे तक अग्निदेवे । स्वांगशीतल होनेपर यन्त्रको

खोलकर मूषामेंसे रसको निकाललेवे । इस प्रकार जारण करनेसे पारा, सुवर्ण और ताम्रको ग्रस जाता है । यह सुवर्ण ताम्रजारित पारद तैयार हुआ । इस विधिसे जारण किये हुए पारेको बारीक पीसकर पूर्व नवें अध्यायमें कहे हुए इष्टिकायन्त्रमें चार बार गन्धकके साथ जारण करे अर्थात् जमीनमें एक छोटासा गड्ढा खोदकर उसमें ८ अँगुल लम्बी चौडी एक ईंट रक्खे और उस ईंटमें १ चौकोर गड्ढा करदेवे । फिर भैंसके दूधमें चूना और मण्डूर मिलाकर उसकी गड्ढेके चारों ओर एक २ अंगुल ऊँची पाली बनादेवे और उसके ऊपर १ तोला पूर्वोक्त स्वर्णताम्र जारित पारा रखकर ईंटकी-पालीके ऊपर सफेद कपडा बांधदेवे । उसके ऊपर बिजौरे नींबूके रसमें घोटी हुई १६ मासे गन्धक रक्खे और ऊपरसे एक सकोरा ऐसा ढके जो ईंटके ऊपर अच्छीतरहसे जमजावे, फिर मिट्टीसे सन्धिलेप करके उसके ऊपर उपलोंकी मन्द २ अग्निदेवे । इस प्रकार बारंबार पारेसे चौगुनी गन्धकको जारण करके उस रसको लेकर बारीक चूर्ण करलेवे और वस्त्रमें छान लेवे । इसके पश्चात् पारेका जितना वजन हो उसका छठा भाग हीरेकी भस्म और उतनीही वैक्रान्तमणिकी भस्म पारेमें मिलाकर शिवलिंगीके रसमें १ दिन तक घोटकर गोला बनालेवे । उसको सुखाकर शरावसम्पुटमें बन्द करके १२ उपलोंकी अग्निमें पकावे । इसी प्रकार शिवलिंगीके रसमें १२ बार घोटकर १२ बार पुटदेवे । फिर शहदमें घोट २ कर १२ बार पुट देवे । १२ बार दुपहरियाके पत्तोंके रसमें घोटकर और १२ बार सफेद कटेरीके रसमें घोटकर पुटदेवे । इस प्रकार कुल ४८ पुट देनेके पश्चात् रसको खूब बारीक पीसकर कपडछान करके शीशीमें भरकर रखदेवे । प्रथम योगिनी, पितृगण, देवता, पुत्रवती और पतिव्रता स्त्रियोंका यथाविधि पूजन करके फिर

इस रसको सेवन करना प्रारम्भ करे। नियमानुसार इस रसको ६ महीने पर्यन्त सेवन करनेसे आदिवन्ध्या आदि सभी प्रकारकी वन्ध्या स्त्रियाँ और सभी प्रकारकी दूषित योनिवाली स्त्रियाँ गर्भवती होजाती हैं और वे दीर्घजीवी, भाग्यवान् और प्रतापी पुत्रको उत्पन्न करती हैं। इस रसके सेवनसे पुरुषोंके वीर्यविकारके कारण उत्पन्न हुआ वन्ध्यत्व दोष, और अल्पवीर्यत्व दोषभी दूर होजाता है। इसके अतिरिक्त इस रसके द्वारा विविध प्रकारके वीर्य विकार निस्सन्देह नाश होजाते हैं। यह वर्धमान रसब्रह्म ज्योति नामक मुनीश्वरका अनुभव किया हुआ है। यह रस सब प्रकारके वन्ध्यत्व रोग सम्पूर्ण योनिरोग, अनेक प्रकारके प्रसूतरोग और स्त्री पुरुषोंके अन्यसभी कष्टसाध्य रोगोंको भिन्नभिन्न अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे शीघ्र नष्ट करता है॥ ३०-४१॥

द्रुतिसार रस।

युक्तं हि व्योमजद्रुत्यां तुल्यांशं स्वर्णयुग्मसम्।
पिष्टीकृतं चिरं पिष्ट्वा मल्लसंपुटके क्षिपेत्॥ ४२॥
निष्कमात्रं बलिं दत्त्वा शतवारं पुटेत्ततः।
सम्यङ् निष्पिष्य संगाल्य करण्डांतर्विनिक्षिपेत्४३॥
इत्युक्तो द्रुतिसारनामकरसो वंध्यामयध्वंसनः
पुत्रीयः खलु सूतिकामयहरो वृष्याश्चिरायुःकरः।
सम्यक्सिद्धबलिद्रुतिप्रकलितो गुंजामितः सेवितः
कुर्यात्तीव्रतरां क्षुधं त्वथ महारोगादिरोगाञ्जयेत्४४॥
मतः सर्वामयध्वंसी रसोयं हरिसूचितः।
जीवत्पुत्रप्रदः स्त्रीणां यौवनस्थैर्यदायकः॥ ४५॥

भूतप्रेतपिशाचानां भयेभ्योऽभयदायकः ।
जडानां दोहदार्तानां मंदबुद्धिमतामपि ॥ ४६ ॥
मंडूकीरससंयुक्तो दातव्यो वचया सह ।
जन्मवंध्याः काकवंध्या मृतवत्साश्च याः स्त्रियः ।
तासां पुत्रोदयार्थाय शंभुना सूचितः पुरा ॥ ४७ ॥

प्रथम ४ तोले सुवर्ण और ४ तोले पारेको एकत्र एकदिन तक खरल करे, फिर उसको ४ तोले अभ्रककी द्रुतिमें मिलाकर दूसरे दिन खूब बारीक पीसकर पिंठीसी बनालेवे । उस पिंठीको लोहेके सम्पुटमें भरकर उसके ऊपर ४ मासे गन्धक रक्खे और सम्पुटके ऊपर कपरौटी करके १२ उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार बारम्बार चार २ मासे गन्धक डालकर १०० बार पुटदेवे । फिर बारीक पीसकर और वस्त्रमें छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे । इसको द्रुतिसार रस कहते हैं । यह वन्ध्या स्त्रियोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला, पुत्र उत्पन्न करनेवाला और सूतिकारोगको हरनेवालाहै । एवं वीर्यवर्द्धक और आयुकी वृद्धि करनेवाला है । विधिपूर्वक सिद्धकी हुई गन्धककी द्रुतिके साथ इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे खूब भूख लगती है और महारोग आदि बडे बडे भयंकर रोगभी शीघ्र दूर होजाते हैं । यह श्रीहरि नामक आचार्यका कहा हुआ रस सम्पूर्ण रोगोंको विनाश करनेवाला है । स्त्रियोंको जीवित पुत्र प्रदान करनेवाला, यौवनको स्थिर करनेवाला; तथा भूत, प्रेत, पिशाचादिके भयोंको दूरकर अभयप्रदान करनेवाला है । गर्भकी पीडासे पीडित स्त्रियोंको और मन्दबुद्धिवाले जड मनुष्योंको यह रस ब्राह्मीके स्वरस और वचके चूर्णके साथ सेवन करावे। जो स्त्रियाँ जन्मसे

बाँझ हों अथवा जिनके एकबार सन्तान होकर फिर गर्भ न रहताहो या जिन स्त्रियोंके मरीहुई सन्तान होती हो अथवा उत्पन्न होते ही मरजाती हो उन स्त्रियोंके पुत्रोत्पत्तिके लिये श्रीशङ्कर भगवानने पूर्वकालमें इस रसको निर्दिष्ट किया है ॥ ४२-४७ ॥

सामान्य उपाय।

समूलपत्रां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत्।
एकवर्णगवां क्षीरैः कन्याहस्तेन पेषयेत् ॥ ४८ ॥
ऋतुकाले पिबेद्वन्ध्या पलार्धं तद्दिने दिने।
क्षीरशाल्यन्नमुद्गं च ह्यल्पाहारं प्रकल्पयेत् ॥ ४९ ॥
उद्वेगं त्वथ शोकं च दिवानिद्रां च वर्जयेत्।
न कर्म कारयेत्किंचिद्वर्जयेच्छीतमातपम् ॥ ५० ॥
एवं सप्तदिनं कुर्याद्वन्ध्या भवति गर्भिणी।
देवदालीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ॥ ५१ ॥
निष्कत्रयं गवां क्षीरैः पूर्ववत्क्रमयोगतः।
वंध्या प्रलभते गर्भं दिनं पथ्यं यथा पुरा ॥ ५२ ॥
शीततोयेन संपिष्टं शरपुंखीयमूलकम्।
कर्षं पीत्वा लभेद्गर्भं पूर्ववत्क्रमयोगतः ॥ ५३ ॥
नोचेदपरमासे तु कारयेत्पूर्ववत्फलम्।
पतिसंगे लभेद्गर्भं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥
एवमेव तु रुद्राक्षं सर्पाक्षी कर्षमात्रकम्।
पूर्ववच्च गवां क्षीरैर्ऋतुकाले प्रदापयेत् ॥ ५५ ॥

महागणेशमंत्रेण रक्षां तस्यास्तु कारयेत् ।
एवं दिनत्रयं कृत्वा वंध्या भवति पुत्रिणी ॥ ५६ ॥
सुश्वेतकंटकार्याश्च मूलं तद्वच्च गर्भकृत् ।
पूर्वपुत्रवती तासां कर्म तद्वच्च कारयेत् ॥ ५७ ॥
पेषयेन्महिषीक्षीरैर्विष्णुक्रांतां समूलकाम् ।
महिषीनवनीतेन ऋतुकाले तु भक्षयेत् ॥ ५८ ॥
एवं दिनत्रयं कुर्यात्पथ्यं युक्त्या च पूर्ववत् ।
गर्भं प्रलभते नारी काकवंध्या सुशोभनम् ॥ ५९ ॥
अश्वगंधीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ।
पेषयेन्महिषीक्षीरैः पलार्धं पाययेत्सदा ।
सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवंध्या चिरायुषम् ॥ ६० ॥

रविवारके दिन जड और पत्ते आदि पंचांग सहित सरहटी लताको उखाडकर लावे और उसको एक रंगकी गायके दूधके साथ कन्याके हाथसे पिसवावे । फिर वन्ध्यास्त्री ऋतुस्नानके पश्चात् उस औषधको प्रतिदिन दो २ तोले परिमाण सेवन करे । इसके ऊपर दूध शालिचावलोंका भात, मूँगका यूष आदि लघुपाकी पदार्थोंका अल्प आहार करे । एवं उद्वेग, शोक, दिनमें सोना आदिको त्यागदेना चाहिये । ऐसी स्त्रीसे कोईभी मेहनतका काम नहीं कराना चाहिये । और अधिक शीत तथा अधिक गरमीसे बचाये रखना चाहिये । इस प्रकार सात दिन-तक उपचार करनेसे वन्ध्या स्त्री गर्भवती होती है । अथवा रविवारके दिन जब पुष्य नक्षत्र हो तब देवदाली (बंदाल) लताकी जडको लाकर पूर्वोक्त विधिसे अर्थात् एक रंगी गायके

---

१ सप्तादिन ।

दूधमें कन्याके हाथसे पिसवाकर ऋतुमती स्त्रीको स्नानके पश्चात् सातदिन तक एक २ तोला परिमाण सेवन करावे। और पूर्ववत् पथ्य देवे तो वन्ध्या स्त्री गर्भको धारण करती है। या सरफोकेकी जडको प्रतिदिन एक २ तोला लेकर शीतल जलके साथ पीसकर सात दिन तक पान करे और उपर्युक्त पदार्थोंका पथ्य सेवन करे तो वन्ध्या स्त्री गर्भवती होती है। यदि कदाचित् पहले महीनेमें गर्भ न रहे तो दूसरे महीनेमें ऋतु स्नानके बाद फिर उक्तविधिसे इस औषधको ७ दिन तक सेवन करे, पथ्य रक्खे और पतिके साथ सहवास करे तो अवश्य गर्भ उत्पन्न होता है। इसी प्रकार छः मासे रुद्राक्ष और सर ६ मासे सरहटीके पंचांगको लेकर दोनोंको एक वर्ण-वाली गायके दूधमें कन्याके हाथसे पीसवाकर ऋतु-स्नानके समय वन्ध्या स्त्रीको सेवन करावे और महा-गणेश मन्त्रसे उसकी रक्षा करे। इस प्रकार ३ दिन तक इस औषधको व्यवहार करनेसे वन्ध्यास्त्री पुत्रवती होती है। अथवा सफेद कटेरीकी १ तोला जडको इकरंगी गायके दूधमें कन्याके हाथसे पिसवाकर ऋतुस्नानके बाद ३ दिन तक पान कराने और पूर्वोक्त पदार्थोंका पथ्य देनेसे वन्ध्यास्त्री पुत्रवती होती है। विष्णुक्रान्ता (सफेद कोयल) के १ तोला पंचा-गको भैंसके दूधमें पीसकर और भैंसके नोनी घीमें मिलाकर ऋतुमती स्त्रीको स्नानके पश्चात् सेवन करावे और युक्तिपूर्वक पूर्वोक्त पदार्थोंका पथ्य देवे। इस प्रकार तीन दिन तक इस औषधका प्रयोग करनेसे काकवन्ध्या स्त्री गर्भवती होकर उत्तम सन्तानको प्राप्त करती है। अथवा रविवारके दिन पुष्य नक्ष-त्रमें असगन्धकी जडको लावे और भैंसके दूधमें पीसकर प्रति दिन दो २ तोले परिमाण ऋतुमती स्त्रीको पान करावे। सात

दिन तक इसको सेवन करनेसे काकवन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करके दीर्घायु पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ४८-६० ॥'

शिवोक्त तान्त्रिक प्रयोग ।

गर्भः संजातमात्रस्तु पक्षान्मासाच्च वत्सरात् ।
म्रियते द्वित्रिवर्षैर्वा यस्याः सा मृतवत्सका ॥ ६१ ॥
तत्र योगं प्रकुर्वीत यथा शंकरभाषितम् ॥ ६२ ॥
मार्गशीर्षेऽथ वा ज्येष्ठे पूर्णायां लेपिते गृहे ।
नूतनं कलशं पूर्णं गंधतोयेन कारयेत् ॥ ६३ ॥
शाखाफलसमायुक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ।
सुवर्णमुद्रिकायुक्त षट्कोणे मण्डले स्थितम् ॥ ६४ ॥
तन्मध्ये पूजयेद्देवीमेकांतानामविश्रुताम् ।
गंधपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैर्नैवद्यसंयुतैः ॥
अर्चयेद् भक्तिभावेन मद्यैर्मांसैः समत्स्यकैः ॥ ६५ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही च तथा चैंद्री षट्पत्रेषु च मातृकाः ॥
पूजयेन्मंत्रलिंगे ह्रींमोंकारैर्नामसंयुतैः ॥ ६६ ॥
दधिभक्तेन पिण्डानि सप्तसंख्यानि कारयेत् ।
षट्संख्या षट्सु पत्रेषु आहृत्य कल्पयेत्पृथक् ॥ ६७॥
उल्लेख्य सप्तकं पिण्डं शुचिस्थाने बहिः क्षिपेत् ।
तैर्मुक्तैर्गृहमागच्छेच्चक्राग्रे योगमाचरेत् ॥ ६८ ॥
कन्यका योगिनी रामा भोजयेत्सकुटुंबकम् ।
दक्षिणां दापयेत्ताभ्यां देवताग्रे निवेद्य च ॥ ६९ ॥

विसर्ज्य देवतां चाऽथ नद्यां तत्कलशोदकम् ।
शकुनं वीक्षयेद्धीमाञ्शुभेन शुभमादिशेत् ॥ ७० ॥
विपरीते पुनः कुर्याद्योगं तद्वत्सुसिद्धिदम् ।
शतवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीवी सुतो भवेत् ॥ ७१ ॥
"ॐ ह्रां ह्रीं एकांतदेवतायै नमः"
अनेन मंत्रेण पूजा जपश्च कार्यः ।
प्राङ्मुखः कृत्तिकाऋक्षे वंध्याकर्कोटकीं हरेत् ।
तत्कंदं पेषयेत्तोये कर्षमात्रं पिबेत्सदा ॥ ७२ ॥
ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवी सुतो भवेत् ॥ ७३ ॥

जिस स्त्रीके बालक जन्मतेही मरजाते हों अथवा १९ दिनमें महीनेमें, वर्षमें, दो वर्षमें या तीन वर्षमें मरजाते हों उसको मृतवत्सा कहते हैं। ऐसी स्त्री पर श्रीशंकर भगवान्का कहा हुआ निम्नलिखित तान्त्रिक प्रयोग करना चाहिये। अगहनके या जेठके महीनेमें पूर्णिमाके दिन घरको लीप पोतकर शुद्ध करे। फिर उसमें ताँबा, सोना या चाँदीके नवीन कलशमें सुगन्धियुक्त जल भरकर रक्खे और कलशमें नवरत्न तथा सुवर्णकी मुद्रिका डालकर उसके ऊपर एक नारियल रक्खे और चारों तरफ बन्दरबाल बाँधकर उस कलशको उत्तर दिशामें ६ कोनेवाले मण्डल (चौक) के बीचमें स्थापन करे। फिर उस मण्डलके बीचमें एकान्ता नामवाली देवीका स्थापन कर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, मद्य, मांस, मत्स्य आदि पदार्थोंके द्वारा भक्ति भावना सहित "ॐ ह्रों ह्रीं एकान्तदेव्यै नमः" इस नाममन्त्रसे षोडशोपचार पूजन करे। इसके पश्चात् षट्कोण मण्डलके प्रत्येक कोणमें

क्रमसे ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, और इन्द्राणी इन ६ मातृकाओंका उपवाहन करके प्रत्येक देवीके नाममन्त्रके पहले ॐ ह्रीं इस मंत्रको जोडकर पूर्वोक्त पदार्थोंसे षोडशोपचार पूजन करे। फिर दही और भात मिलाकर ७ पिण्ड बनावे। उनमेंसे ६ पिण्ड छहों मातृकाओंके आगे एक एक करके रख देवे और सातवें पिण्डके ऊपर कुशासे या चाँदीकी सलाईसे ५ या ७ लकीरें खींचकर उसको घरके बाहर चौराहेके पवित्र स्थानमें रखदेवे। जब कौवे, कुत्ते आदि उस बलिदानके पिण्डको खाजायें तब घरको। आकर उक्त षट्कोण मण्डलके आगे आसन बिछाकर बैठजावे और "ॐ ह्रॉं ह्रीं एकान्तदेव्यै नमः" इस मन्त्रका १००८ बार अथवा १०००८ बार जप करे। इसके पश्चात् कन्या, योगिनी और सौभाग्यवती स्त्रियोंको कुटुम्ब सहित भोजन करावे और उनको जो दक्षिणा देवे, उसको पहले देवताके आगे चढाकर देवे। फिर देवी देवताओंका विसर्जन करके उस सब सामग्रीको और कलशके जलको नदीमें डाल देवे। उस समय बुद्धिमान् मनुष्य जलकी तरंगोंको देखकर शकुन विचारे। यदि नदीमें भँवर पडता हो और उसकी लहरें अपनी तरफ आती हुई मालूम हों तो शुभ शकुन जानना चाहिये और जो इसके विपरीत लक्षणहों तो अपशकुन समझना चाहिये। अपशकुन होनेपर फिर इसी प्रकार इस प्रयोगको करे। यह प्रयोग वन्ध्या स्त्रियोंको निस्सन्देह पुत्ररूप सिद्धिप्रदान करता है। इस प्रयोगको प्रतिवर्ष करनेसे दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न होता है। "ॐ ह्रॉं ह्रीं एकान्तदेवतायै नमः" इस मंत्रसे पूजा और जप करना चाहिये। इस प्रयोगके पश्चात् कृत्तिका नक्षत्रमें पूर्वकी ओर मुँह करके बाँझककोडेके कन्दको उखाडकर लावे। उस कन्दको ऋतुस्नानके पश्चात् प्रतिदिन १ तोला

परिमाण लेकर जलमें पीसकर पान करे। इस औषधको एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करनेसे और उपर्युक्त पदार्थोंका पथ्य करनेसे वन्ध्या स्त्रीके दीर्घायुषी पुत्र उत्पन्न होता है॥ ६१-७३

गर्भिणीके रोग।

गर्भिणीके रोग दूर करने और गर्भको पोषण करनेके सामान्य उपाय।

अकस्मात्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना।
गोक्षीरैः पेषयेत्तुल्यं पद्मकोशीरचंदनम्॥
पलमात्रं पिबेन्नारी त्र्यहाद्गर्भः स्थिरो भवेत्॥७४॥
नीलोत्पलं मृणालं च खण्डं कर्कटशृंगिकाम्।
गोक्षीरैर्द्वितये मासि पीत्वा शाम्यति वेदना॥ ७५॥
श्रीखण्डं तगरं कुष्ठं मृणालं पद्मकेसरम्।
पिबेच्छीतोदकैः पिष्टं तृतीये वेदना न हि॥ ७६॥
नीलोत्पलमृणालानि गोक्षीरैश्च कसेरुकम्॥ ७७॥
पाठामुस्तावयस्थाम्बुसारिवापद्मकैः शृतम्।
शीतं तोयं निहंत्याशु गर्भिणीज्वरवेदनाम्॥ ७८॥
छिन्नाश्रीपर्णिकाक्वाथः सिताक्षौद्रयुतो हरेत्।
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं लंकेशमिव राघवः॥ ७९॥
पयस्यासारिवायष्टीबलालोध्रमधूद्भवः।
दुग्धेन मिश्रितः क्वाथो हरेद्गर्भवतीज्वरम्॥ ८०॥
दुर्जयः सर्वरोगेषु गर्भिणीनां ज्वरः खलु।
तापो जूर्तिषु सर्वत्र विक्रियां कुरुतेतराम्॥ ८१॥

वृक्षकत्वग्घनो देवदारु दारुविभावरी ।
गर्भिण्या अतिसारघ्नः क्वाथ एषां भवेद् ध्रुवम् ॥ ८२ ॥
श्रीपर्णीयष्टिगोप्यब्ददार्वीक्वाथोऽतिसारनुत् ।
बला१दुरालभापाठाशुंठीमुस्ताकषायवत् ॥ ८३ ॥
जातः पुनर्नवार्द्राभ्यां क्वाथः क्षीरयुतो निशि ।
पीतो हरेदुदावर्तं गुल्मार्शःशोफवेदनाम् ॥ ८४ ॥
घृतक्षीरगुडान्वाऽऽर्द्रक्वाथसिद्धेन चूर्णिताम् ।
कणां संयोज्य सेवेत शोफपित्तापनुत्तये ॥ ८५ ॥
पुनर्नवावचाकल्कधान्यैर्लेपोऽतिशोफनुत् ।
गुडाज्यसहितं क्वाथं वर्षाभूमूलसाधितम् ॥ ८६ ॥
उदावर्ते च शोफे च गर्भिणीं पाययेद्भिषक् ।
पित्तार्तिं हंति यष्टीका द्राक्षामलकसाधिता ॥ ८७ ॥
पीता दुग्धयवागूश्च गर्भिणीनामसंशयम् ।
तिक्ताहरीतकीभार्ङ्गीवचाशुंठीकषायकम् ॥ ८८ ॥
सगुडं पाययेद्वैद्यः श्वासकासापनुत्तये ।
मरीचचूर्णं सक्षौद्रसिताज्यं कासनाशनम् ॥ ८९ ॥
लाजैलाकोलमज्जांबु निपीतं वांतिनाशनम् ।
बालबिल्वोद्भवः क्वाथो हिक्कां हंति समाक्षिकः ॥ ९० ॥
अजमोदाश्वगन्धा च द्वे कणे जीरकं तथा ।
लीढा मधुगुडोपेता निहन्युर्मंदवह्निताम् ॥ ९१ ॥

---

१ बला ।

बालबिल्वाविदारीभिः पृश्निपर्ण्या च साधितम् ।
क्षीरं क्षीरयवाग्वापि पिबेद्वातकृतामये ॥ ९२ ॥
श्वदंष्ट्राबलयोः क्वाथो मूत्ररोगो प्रशस्यते ॥ ९३ ॥
सुरदारु वयस्था च शाकबीजं च यष्टिका ।
बला कृष्णातिलास्ताम्रवल्ली चाश्मंतकस्तथा ॥
नलिोत्पलं वयस्था च गुडूची सारिवा तथा ॥ ९४ ॥
मधुयष्टी च पद्मं च रास्ना सारिवया सह ।
काश्मर्यो बृहती क्षीरी शृंगवल्लीत्वचो घृतम् ॥९५ ॥
मधुपर्णीबलाशिग्रुश्वदंष्ट्रापृश्निपर्णिकाः ।
सितामधुकशृंगाटद्राक्षाबिसकसेरुकाः ॥ ९६ ॥
सप्तश्लोकार्धनिर्दिष्टान्योगान्सप्त पयोऽन्वितान् ।
पिबेत्क्रमेण मासेषु गर्भस्रावादिवारणान् ॥ ९७ ॥
उशीरयष्टीसंसिद्धं गर्भिणवातहृत्पयः ।
द्राक्षायष्टिकासिद्धा च यवागूश्च तथाफला ॥ ९८ ॥
बला वासा पृथक्पर्णी निर्यूहश्चापि पित्तनुत् ।
सपुनश्छिन्नया युक्तो गर्भिणीकामलापहः ॥ ९९ ॥
कासं श्वासं तथा रक्तपित्तं चाशु विनाशयेत् ।
अघृतः सघृतो वापि सदुग्धो वाप्यदुग्धवान् ॥ १०० ॥
एक एव बलाक्वाथो गर्भिणीसर्वरोगनुत् ॥ १०१ ॥

गर्भ धारण होनेपर पहले महीनेमें गर्भमें अकस्मात् पीडा होती है, इससे गर्भस्राव होनेकी सम्भावना होती है। उस समय

---

१ बला इति पाठोपि हस्तलिखितपुस्तके उपलभ्यते। २ पयस्या।

गर्भवती स्त्री पद्माख, खस और चन्दन इन तीनोंको समान भाग लेकर गायके दूधमें पीसकर प्रतिदिन चार २ तोले परिमाण सेवन करे । इस औषधको तीन दिन तक सेवन करनेसे गर्भ स्थिर होजाता है । दूसरे महीनेमें गर्भमें वेदना हो तो नीलकमल, कमलतन्तु, चन्दन और काकडासिंगी इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको गायके दूधके साथ पान करनेसे उक्त वेदना शान्त होती है । तीसरे महीनेमें चन्दन, तगर, कूठ, भसींडा और कमलकेसर इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उसमेंसे प्रतिदिन चार २ तोले चूर्णको शीतल जलके साथ पीसकर पान करे । इस चूर्णको तीन दिनतक पान करनेसे गर्भकी पीडा शान्त होती है । नीलकमल, भसींडा और कसेरू इन तीनोंको गायके दूधमें पीसकर पान करे, अथवा पाढ, नागरमोथा, हरड, सुगन्धवाला, सारिवा और पद्माख इनका काढा बनाकर शीतल करके पान करे। यह प्रयोग गर्भिणी स्त्रीके ज्वर और वेदनाको शीघ्र दूर करताहै गिलोय और कुम्भेरकी जडके काढेको मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो गर्भिणी स्त्रियोंका घोर ज्वर इस प्रकार शीघ्र नष्ट होजाता है जैसे रामने रावणको तत्काल विनाश करदियाथा । क्षीरकाकोली, सारिवा, मुलैठी, खिरैंटी, लोध और महुआ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनालेवे । उस क्वाथको दूधके साथ मिलाकर पान करनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर दूर होता है । गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर सम्पूर्ण रोगोंमें कष्टसाध्य रोग है । गर्भिणी स्त्रीकी सन्धियोंमें ज्वर रहनेसे गर्भमें अनेक विकार उत्पन्न होजाते हैं, इसलिये उसको दूर करनेका सदैव उपाय करना चाहिये । कुडेकी छालका काढा बनाकर उसको वस्त्रमें छानकर फिर पकावे । जब वह पकते २

गाढा होजाय तब उसको देवदारु और दारुहल्दीके काढेमें मिलाकर पान करे । यह क्वाथ गर्भिणी स्त्रीके अतिसार (दस्तों) को अवश्य नष्ट करता है। कायफल, मुलैठी, गोर-खमुण्डी, नागरमोथा और दारुहलदीका क्वाथ पान करनेसे अतिसाररोग नष्ट होता है । अथवा खिरैंटी, धमासा, पाढ, सोंठ और नागरमोथा इनका क्वाथ पान करनेसे अतिसार रोग दूर होता है । पुनर्नवा और अदरखके काढेको दूधमें मिलाकर रात्रिमें पान करनेसे गर्भवती स्त्रियोंके उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, शोथ और गर्भकी पीडा ये सब रोग दूर होते हैं । अदरखके क्वाथमें पीपलको पीसकर पान करने और ऊपरसे घी दूध और गुड तीनोंको मिलाकर सेवन करनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके उत्पन्न हुआ शोथ और पित्तके विकार शान्त होते हैं। पुनर्नवा और वच दोनोंको कांजीमें पीसकर कल्क बनाकर लेप करनेसे गर्भिणी स्त्रीके अत्यन्त बढा हुआ शोथ दूर होता है। पुनर्नवेकी जडका क्वाथ बनाकर उसको गुड और घृतके साथ मिलाकर गर्भिणी स्त्रीको पान करानेसे उदा-वर्त और शोथरोगमें शीघ्र लाभ होता है। मुलैठी, दाख और आमले इनके द्वारा दूधमें सिद्ध की हुई यवागूको अथवा इन औषधियोंके क्वाथको दूधमें मिलाकर पान करनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके पित्तजन्यरोग नष्ट होते हैं। कुटकी, हरड, भारंगी, वच और सोंठ इन सबके क्वाथको गुड मिलाकर पान करा-नेसे गर्भिणीका श्वास और कास रोग दूर होताहै। तथा मिर-चोंके चूर्णको शहद, मिश्री और घृतमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी नष्ट होजाती है। खीलें, इलायची और अंकोलकी गिरी तीनोंको जलमें पीसकर पान करनेसे गर्भिणीकी वमन (कै) शान्त होती है। कच्चे बेलके काढेको शहद मिलाकर पीनेसे हिचकी आना बन्द होता है। अजमोद, असगन्ध, पीपल,

गजपीपल और जीरा इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको एक २ तोला परिमाण लेकर शहद और गुडके साथ सेवन करनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका मन्दाग्नि रोग दूर होकर अग्नि दीपन होती है । कच्चा बेल, विदारीकन्द और पृश्निपर्णी इन तीनोंके कल्कके साथ दूधको पकावे । जब दूधका जलीय अंश जलकर वह अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसको वस्त्रमें छानकर पान करना अथवा उक्त औषधियोंके क्वाथमें दूधकी खीर बनाकर खाना वातरोगकी शान्तिके लिये उपयोगी है । गोखुरू और खिरैंटीका क्वाथ गर्भिणीके मूत्ररोगमें अत्यन्त श्रेष्ठ है । (१) देवदारु, हरड, सागौनके बीज और मुलैठी । (२) खिरैंटी, काले तिल, मजीठ और पाषाणभेद । (३) नीलकमल, हरड, गिलोय, और सारिवा । (४) मुलैठी, कमल, रास्ना और सारिवा । (५) कुम्भेर, बडी कटेरी, विदारीकन्द, काकडासिंगीकी छाल और घृत । (६) कुम्भेर, खिरैंटी, सैंजना, गोखुरू और पृश्निपर्णी । (७) मिश्री, मुलैठी, सिंघाडे, दाख, भसीडा और कसेरू । इन सातों प्रयोगोंको, गर्भस्राव आदि उपद्रवोंके निवारण करनेके लिये क्रम २ से पहले महीनेसे लेकर सातवें महीनेतक दूधके साथ सेवन करे । अर्थात् प्रत्येक प्रयोगकी औषधियोंका क्वाथ बनाकर दूधमें मिलाकर एक २ महीने तक सेवन करनेसे गर्भस्राव आदि किसी उपद्रवके होनेका भय नहीं रहता । खस और मुलैठीके कल्क और क्वाथके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध गर्भिणीके वातरोगको दूर करता है । दाख और मुलैठीके क्वाथकी यवागू बनाकर सेवन करनेसे भी वातकी पीडा शान्त होती है । खिरैंटी, अडूसा और पृश्निपर्णी इन औषधियोंका क्वाथ गर्भिणीके पित्तरोगको नष्ट करता है । और खिरैंटी, अडूसा, पृश्निपर्णी तथा गिलोयका

क्वाथ गर्भिणीके कामला रोग, श्वास, खाँसी और रक्तपित्तको शीघ्र विनाश करता है । केवल एक खिरैंटीका क्वाथही घी और दूधके साथ अथवा विना घी, दूधके मिलायेही सेवन करनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है ॥ ७४-१०१ ॥

मूढगर्भरोग ।

विलोमवायुना गर्भो जीवन्यदि न निःसरेत् ।
स गर्भसंग इत्युक्तो मूढगर्भो मृते शिशौ ॥ १०२ ॥
स्तब्धाध्मानं शिशिरजठरं सास्यशोषं समूर्छं
गर्भास्पंदः श्वसनकमहापूतिगंधो भ्रमार्तिः ।
कृच्छ्रोच्छ्वासोऽसितरुचिरवपुः स्तब्धनेत्रे व्यथोग्रा
विण्मूत्रार्तिर्भवति हि मृताऽपत्यगर्भांगनायाः ॥ १०३
अकालश्वाससंयुक्ता बद्धभ्रष्टभगान्विता ।
शीतांगी पूतिकोद्गारा मूढगर्भा न जीवति ॥ १०४॥

वायुकी विषम गतिके कारण यदि गर्भ जीवित रहे और बाहर न निकल सके तो उसको गर्भसंग कहते हैं और बालककी पेटमें मृत्यु होजानेपर उसको मूढगर्भ कहते हैं । गर्भिणी स्त्रीके गर्भमें बालकके मरजाने पर निम्नलिखित लक्षण होते हैं । पेटमें जडता (कठिनता), अफरा, शीतलता, मुंखका सूखना, मूर्च्छा आना, गर्भका न फडकना, श्वासका चढजाना, श्वासमें दुर्गन्ध आना, चक्कर आना, श्वासोच्छ्वासकी गतिका कठिनतासे होना शरीरका वर्ण नीला पडजाना, नेत्रोंमें जडता होना, उग्र पीडाका होना, मल मूत्रका अवरोध और पीडा होना इत्यादि मृत सन्तानवाली गर्भिणीके लक्षण हैं ।

अकस्मात् श्वासोच्छ्वासकी गतिमें बाधा उपस्थित होना, योनिका एकदम संकुचित व भ्रष्ट होना, शरीरका शीतल होना, और डकारमें दुर्गन्ध आना इन लक्षणोंके होनेपर मूढगर्भा स्त्री जीवित नहीं रहती ॥ १०२-१०४ ॥

गर्भको प्रसव करानेके सामान्य उपाय ।

बीजं करञ्जसंजातं कपित्थतुलसीजटाः ॥
दुग्धे पिष्ट्वा विलिप्याऽथ नाभिपत्करलेपतः ॥ १०५ ॥
सुरया वाऽहिनिर्मोकैः सम्यग्योनिप्रधूपनात् ।
सुखं सूते वधूर्मूर्ध्नि स्नुकपयःक्षेपणादपि ॥ १०६ ॥
हलिनीमूलिकानाभिगुह्यबस्तिप्रलेपिता ।
विशल्यां कुरुते नारीं श्वेतपुष्पा च सा क्षणात् १०७।
यष्टी लुंगजटा पिष्टा पीता सूतिकरी ध्रुवम् ।
लांगलीमधुसिंधूत्थयोनिलेपात्स्रवेद्वधूः ॥ १०८ ॥
मातुलुंग्याश्च मूलं हि रंभाया वा कटिस्थितम् ।
सिद्धार्थमागधीकुष्ठगोलोमीमिशिकल्कितः ॥
निरूहः स्नेहपट्वुग्रजरायुं पातयेत्तराम् ॥ १०९ ॥
सिद्धं सिद्धार्थकं तैलं पायौ वा स्मरमंदिरे ।
अनुवासनतः शीघ्रमपरां पातयेत्तराम् ॥ ११० ॥

करंजके बीज, कैथका गूदा और तुलसीकी जड तीनोंको दूधमें पीसकर नाभिपर और हाथों पैरोंमें लेप करनेसे तुरन्त प्रसव होताहै । साँपकी कैचलीको मद्य (आसव) में पीसकर उसकी योनिमें धूनी देनेसे, अथवा थूहरके दूधका मस्तक पर लेप करनेसे स्त्रीके सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न होती है । कलि-

हारीकी जडको पानीमें खूब बारीक पीसकर नाभि, योनि और पेडूमें लेप करनेसे शीघ्र प्रसव होताहै । अथवा श्वेत-पुष्पकी कलिहारीकी जडको पानीमें पीसकर गर्भिणी स्त्रीके उक्त स्थानोंमें प्रलेप करनेसे उसके तत्क्षण इस प्रकार प्रसव होजाता है, जैसे काँटेसे काँटा शीघ्र निकलजाता है । एवं मुलैठी और बिजौरा नींबूकी जडको पानीमें पीसकर पिला-नेसे अवश्य प्रसव होताहै । कलिहारीकी जड, शहद और सैंधा नमक तीनोंको जलमें पीसकर योनिपर लेप करनेसे स्त्रीके सहजमें प्रसव होताहै । बिजौरा नींबूकी जड अथवा केलेकी जडको कमरमें बाधनेसे अथवा सरसों,पीपल, कूठ,वाराहीकन्द और अजमोद सबको पानीमें पीसकर कल्क करलेवे और उसको पानीमें घोलकर वस्त्रमें छानलेवे । उस जलमें गरम घी और सैंधानमक मिलाकर उसकी योनिमें पिचकारी लगानेसे बहुत शीघ्र प्रसव होताहै । और तुरन्त खरियारी निकलजाती है । अथवा सरसों, पीपल, कूठ, वाराहीकन्द और अजमोद इन औषधियोंके कल्कके साथ सरसोंके तेलको पकाकर वस्त्रमें छानलेवे । इस तेलकी योनिमें और गुदामें पिचकारी लगानेसे एवं पान करनेसे स्त्रीके प्रसव होकर तत्काल खरियारी निकल जाती है ॥ १०९–११० ॥

सूतिकारोगनाशक पर्पटीरस ।

मंजारीमितवज्रहेमरजतैर्व्योमार्ककान्तैर्मृतै-
र्भागैरुत्तरवर्धितैः समरसैर्गंधैर्द्विभागोन्मितैः ।
जातः पर्पटिकारसो घृतकणायुक्तो हरेत्सर्वशः
सूतीनां हि महागदान्गदचयं नानानुपानान्वितः १११

हीरेकी भस्म १० मासे, सुवर्ण भस्म २० मासे, चांदीकी भस्म ३० मासे, अभ्रक भस्म ४० मासे, ताम्रभस्म ५० मासे,

कान्तलोहभस्म ६० मासे, पारा १७ तोले ६ मासे और गन्धक पारेसे दुगुनी लेवे । प्रथम पारे और गन्धककी कज्जली करके उसमें सम्पूर्ण भस्मोंको मिलाकर एक दिनतक खरल करे, फिर उस कज्जलीको लोहेकी कढाईमें पिघलाकर पूर्वोक्त विधिके अनुसार ढालकर पर्पटी तैयार करलेवे । शीतल होनेपर उसको बारीक पीसकर रखलेवे । इस पर्पटी रसको प्रति दिन उपयुक्त मात्रासे घी और पीपलके चूर्णमें मिलाकर सेवन करनेसे प्रसूतास्त्रियोंके सब प्रकारके भयंकर रोग दूर होते हैं । यह रस भिन्न भिन्न प्रकारके अनुपानोंके साथ प्रयोग करनेसे महारोग आदि समस्त रोगसमूहोंको नाश करता है ॥ १११ ॥

सूतिकारोगनाशन रस ।

स्वर्णतारघनभानुतीक्ष्णकं तेषु चैकम-
तिमात्रमारितम् । सूतिकासकलरोग-
नाशनं रोगहारि विहितानुपानतः ॥ ११२ ॥

स्वर्ण भस्म, चाँदीकी भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म और तीक्ष्ण लोहकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके एक दिन तक खरल करे । ये भस्में उत्तम प्रकारसे पुट देकर तैयार की हुई होनी चाहिये । इस रसको प्रतिदिन योग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रियोंके समस्त रोग नाश होते हैं । विशेष अनुपानके साथ सेवन करनेसे अन्यान्य रोगभी दूर होते हैं ॥ ११२ ॥

सौभाग्यशुण्ठी (सूतिकामृत) ।

अञ्जलिद्वितये तोये कंसमात्रपयोन्विते ।
तुलार्धशर्करां दत्त्वा गुडपाके कृते क्षिपेत् ॥ ११३ ॥
एलात्रिकणिकावेल्लव्योषजीरकदीप्यकान् ।

भृंगं लवंगं बोलं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ११४ ॥
मिशिः पंचपला धान्यं पलत्रयमितं तथा ।
शुण्ठीमष्टपलां सम्यग्विचूर्ण्य परिमिश्रयेत् ॥ ११५॥
एषा सौभाग्यशुंठीति शंभुदेवेन कीर्तिता ।
सेविता हंति सूताया ज्वरं रोगमनेकधा ॥ ११६ ॥
प्लीहानं मलबंधं च पाण्डुगुल्मारुचीस्तथा ।
कासश्वासकृमीनाग्निमांद्यादिकगदांस्तथा ॥
कायाग्निजननं ह्येतत्सूतिकामृतमुच्यते ॥ ११७ ॥

जल ३२ तोले, दूध १ आढक (२५६ तोले) और खांड ५० पल लेकर सबको एकत्र करके मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब उसकी उत्तम प्रकारसे चासनी तैयार होजाय तब उसमें छोटी इलायची, मुद्गपर्णी, वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, अजवायन, भँगरा, लौंग, और बोल ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले, सोंफ ५ पल, धनियां ३ पल और सोंठ ८ पल लेकर सबको बारीक चूर्ण करके कपडेमें छानकर डालदेवे और करछीसे घोटकर सबको एकमएक करलेवे। इस सौभाग्य-शुंठी पाकको श्रीशम्भुदेवने वर्णन कियाहै। इस पाकको नियमपूर्वक सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रीका ज्वर शीघ्र दूर होजाताहै। इसके अतिरिक्त यह औषध प्रसूता स्त्रियोंके प्लीहा,मलबद्धता, पाण्डु, गुल्म, अरुचि, श्वास, खाँसी, कृमिरोग, मन्दाग्नि आदि अनेक रोगोंको नष्ट करती है और शरीरमें तेज उत्पन्न करती है। यह सौभाग्यशुंठी प्रसूता स्त्रियोंके लिये अमृतके समान हितकारी कही जाती है ॥ ११३-११७ ॥

योनिसंकोचन और स्तनदृढीकरणके । सामान्य उपाय ।

कोरण्टकं कुलत्थं च सौवीरमिः शृतं जलम् ॥

युक्तं शर्करया पीतं सूतीशूलज्वरापहम् ॥ ११८ ॥
लोहखण्डयुतं पञ्चमूलिकासाधितं जलम् ।
नाशयेत्सूतिकारोगान्सवातान्विविधान्खलु ॥ ११९॥
भूनिंबनिंबभद्राश्वगंधसप्तच्छदत्वचा ।
तैलं पचेत्तदभ्यंगात्सूतिकासर्वरोगनुत् ॥ १२० ॥
निर्गुंडीपत्रनिर्यासो गुडो जीर्णः सुरान्वितः ।
सेवितस्तक्रभक्ताभ्यां योनिशूलविनाशनः ॥ १२१॥
निर्गताऽपि विशेद्योनिः कारलीकंदलेपिता ।
इंद्रगोपाज्यलेपेन श्लथयोनिर्दृढा भवेत् ॥ १२२ ॥
माकंदमूलकर्पूरमधुभिश्च जरत्स्त्रियः ।
कुरुते संवृतां योनिं कन्यकाया इव ध्रुवम् ॥ १२३॥
श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलं तुलिकेनैव स्तनयोः परिदापयेत् ॥ १२४ ॥
पतितावुच्छ्रितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ ।
गजकुंभसमाकारावुन्नतौ परिमण्डलौ ॥ १२५ ॥

पीली कटसरैया और कुलथी इन दोनोंका काढा बनाकर शीतल करके उसको खाँड मिलाकर पान करे तो प्रसूता स्त्रीका शूलयुक्त ज्वर दूर होता है । एवं लघु। पंचमूलके द्वारा सिद्ध किये हुए क्वाथको लोहखण्ड नामक रसायनके साथ प्रतिदिन सेवन करे । यह क्वाथ प्रसूतास्त्रियोंके विविध प्रकारके वातसम्बन्धी विकार और प्रसूतरोगोंको अवश्य नाश करता है। अथवा चीरायता, नीमकी हरी छाल, नागरमोथा, असगन्ध और सतौनेकी छाल इन औषधियोंके क्वाथ और कल्क-

के साथ तेलको पकाकर उसकी मालिश करे। इस तेलसे प्रसूत-सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं। निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वरस और पुराना गुड दोनोंको कुमार्यासव अथवा द्राक्षासवके साथ सेवन करनेसे और छाछ भातका आहार करनेसे प्रसूता स्त्रीका योनिशूलरोग नष्ट होता है। करेलेको पानीमें पीसकर योनि-पर लेप करनेसे योनिकन्द रोग दूर होताहै और बाहरको निःसृत योनि पुनः भीतरको प्रविष्ट होजाती है। एवं बीरबहूटीको घृतमें पीसकर लेप करनेसे शिथिल हुई योनि फिर दृढ होजाती है। मार्कन्दकी[1] जड और कपूरको शहदमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे वृद्धा स्त्रीकी योनिभी संकुचित होकर कन्याके योनिके समान होजाती है। श्रीपर्णी (कायफल) के क्वाथ और कल्कके साथ तिलके तेलको पकाकर वह तेल रुईकी फुरैरीसे स्तनोंके ऊपर लगावे। इस तेलसे स्त्रियोंके अत्यन्त शिथिल स्तनभी उत्पन्न होकर हाथीके गण्डस्थलके समान सुन्दर, ऊंचे, कठिन और गोलाकार होजाते हैं ॥११८-१२५॥

बालरोग।

माहेश्वर धूप।

श्रीवेष्टदारुबाह्लीकमुस्ताकटुकरोहिणी।
सर्षपा निंबपत्राणि मदनस्य फलं वचा ॥ १२६ ॥
बृहत्यौ सर्पनिर्मोककार्पासास्थियवास्तुषाः।
गोशृंगं खररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट् ॥ १२७॥
छागरोमघृतं चोति बस्तमूत्रेण भावितम्।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः ॥ १२८ ॥

लोबान, देवदारु, हींग, नागरमोथा, कुटकी, सरसों, नीमके पत्ते, मैनफल, वच, कटेरी, बडी कटेरी, सॉपकी कैंचली, बिनौले,

---

1 आम्रवृक्ष।

जौकी भूसी, गायका सींग, गधेके बाल, मोरपंख, बिलावकी विष्ठा, बकरीका रुआ और बकरीका घृत इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें भावना देकर धूप तैयार करलेवे । यह माहेश्वर धूप कहलाती है । इसकी धूनी देनेसे बालकोंकी सम्पूर्ण ग्रहबाधा दूर होती है ॥ १२६–१२८ ॥

विजय धूप ।

शैलेयगुग्गुलुरसैः सपुरप्रचण्डद्रं०पापद्दत्तसरल-
कुंदुरुभिः सकुष्ठैः । सध्यामकैः सुरभिगंधरसैश्च
धूपः सौभाग्यबुद्धिजयकृद्विजयो विवादे ॥ १२९ ॥
देवासुरोरगपिशाचपितृग्रहेषु गंधर्वयक्षपिशिता-
शिषु च ग्रहेषु । जीर्णज्वरेषु विहितश्च विषातु-
रेषु धूपोऽयमाजिविजयादिषु पार्थिवानाम् ॥ १३० ॥

भूरिछरीला, शुद्ध गूगल, शिलारस, नागरमोथा कस्तूरी, तज, असवर्ग, राल, कुन्दरु, कूठ, रोहिष तृण, कपूरकचरी, अगर और बोल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूटपीस-कर धूप तैयार करलेवे । इस धूपकी धूनी देनेसे बालकोंके सौभाग्य और सद्बुद्धिकी वृद्धि होती है । संग्राममें जय और और वाद विवादमे विजय प्राप्त होती है । एवं देव, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि समस्त ग्रहबा-धाओंके होनेपर तथा जीर्णज्वर और विषजनित व्यथाके होनेपर इस धूपको देनेसे सम्पूर्ण उपद्रव शान्त होजाते हैं । संग्राममें जाते समय विजय आदिकी प्राप्तिके लिये राजाओं-को यह धूप देनी चाहिये ॥ १२९ ॥ १३० ॥

ग्रहनाशिनी गुटिका ।

राजीकरंजपुन्नाटशिरीषार्कनिशाद्वयम् ।

प्रियंगुत्रिफलादारुहिंगुव्योषकुचंदनम् ॥ १३१ ॥
मंजिष्ठोग्राजमूत्रं च गुटिका ग्रहनाशिनी।
पाननस्याञ्जनालेपस्नानोद्वर्तनधूपनात् ॥ १३२ ॥

राई, करंजके बीज, पमारके बीज, सिरसके बीज, आककी जड, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, हींग, त्रिकुटा, लाल चन्दन, मँजीठ और वच इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। फिर उस चूर्णको बकरेके मूत्रमें खरल करके गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको पानीमें घिसकर अथवा पीसकर पान, नस्य, अँजन, प्रलेप, पानीमें घोलकर स्नान करना, अथवा गोलीका चूर्ण करके शरीरपर उबटन करना और उसकी धूनी देना इत्यादि उपायों द्वारा प्रयोग करनेसे ये गोलियाँ बालकोंकी सम्पूर्ण ग्रहबाधाओंको नष्ट करती हैं ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

सामान्य उपाय।

गर्भनिर्गतबालस्य कणास्वर्णं प्रदापयेत्।
पाषाणद्वितयं युंज्यात्कांस्यभाजनमुच्चकैः ॥ १३३ ॥
तेन त्रस्तः ससंज्ञः स्याद्योनिनिर्गमपीडितः।
सुखोष्णैः कांजिकैर्बालं संप्रोक्ष्य द्वित्रिवारतः १३४॥
देयः शिरसि बालस्य घृतपिण्डो ज्वरापहः।
शिरोगतविकारघ्नो मुख्यो रक्षाकरस्तथा॥ १३५॥
भक्षणं रोहिणीकल्के सिद्धं पानानुलेपतः।
ज्वरं पित्तोत्तरं हंति मुस्ताक्वाथ इव ध्रुवम् ॥ १३६॥
अश्वत्थपल्लवैश्चांभः क्षीरं पक्वं निषेवितम्।
पित्तजातं ज्वरं तीव्रं बालानां हंति निश्चितम् ।१३७

गंधोत्पलजटा पिष्टा कटुकी नाशयेज्ज्वरम् ।
सहदेवीकणाभृंगक्षौद्रं लीढं हरेच्छिशोः ॥
वमिकासज्वरव्याधीन्क्षौद्रेणातिविषा तथा ॥१२८॥
न्यग्रोधजंब्वाम्रशिरीषकाणां क्वाथो रसो वा
नवपल्लवानाम् । पित्तातिसारज्वरवांतिमूर्छा-
तृष्णानि हन्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ १२९ ॥

तत्कालके जन्मे हुए बालकको पीपलके चूर्ण और सोनेके वर्कको एकत्र पीसकर खिलावे और बालकके ज़न्मते ही कॉसीके बर्त्तन (थाली या घडियाल) को पत्थरोंसे खूब जोर जोरसे बजावे । इस शब्दसे भयभीत होकर योनिसे निक-लनेकी पीडासे पीडित और बेहोश हुआ बालक चैतन्य लाभ करता है और उस पीडाको भूलजाता है । इसके पश्चात् मन्दोष्ण काँजीसे बालकके शरीरको दो तीन वार धोकर पोंछे बालकके सिर पर घृतकी मालिश करनेसे बालकका ज्वर दूर होजाताहै । सिरके समस्त विकार नष्ट होतेहैं और भूत प्रेतादि-की बाधासे बालककी रक्षा होती है। कुटकीके बीजोंका कल्क चटानेसे, अथवा कुटकीका रस पान करनेसे और शरीरपर उसकी मालिश करनेसे अथवा नागरमोथेका क्वाथ पान करा-नेसे बालकोंका पित्तज्वर अवश्य दूर होता है । पीपलके कोमल पत्तोंको अठगुने जलमें डालकर पकावे । एक भाग जल शेष रहनेपर उसको उतारकर छानलेवे । उस जलको पिलानेसे अथवा उस पानीके साथ दूधको पकाकर दूधमात्र शेष रहनेपर शीतल करके पान करानेसे बालकोंका पित्त-ज्वर शान्त होता है । गन्धप्रसारणी कमलकन्द और कुटकी तीनोंको जलमें पीसकर वस्त्रमें उसका रस निचोडलेवे । यह रस

थोडा २ बालकोंको पान करानेसे उनके ज्वरको नाश करता है। सहदेई, पीपल और भाँगरा इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको शहदमें मिलाकर अथवा शहद और अतीसके चूर्णमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी वमन, खाँसी, ज्वर आदि व्याधियाँ दूर होती हैं। शहद, अतीसका चूर्ण और चूनेका पानी मिलाकर देनेसेभी उक्त रोग दूर होते हैं। बड, जामुन आम और सिरस इनके कोमल पत्तोंका स्वरस अथवा क्वाथ लेकर उसको शहदमें मिलाकर थोडा २ पान करानेसे बालकोंका पित्तातिसार, ज्वर, वमन मूर्च्छा, तृषा आदि सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १३३–१३९ ॥

मध्वंबुशृंगीपाठाब्दं रक्तातीसारहच्छिशोः।
क्षीरं सबोलं कठोरःशिरःकफहरं शिशोः ॥ १४० ॥
मधुकं मरिचं पिष्टं गोजलैः परिसेवितम्।
विनाशयति वेगेन बालानां मूत्रविड्ग्रहम् ॥ १४१ ॥
यष्टीलोध्रकणागंधबलाशाल्मलिसारिवाः।
सुगंधा माक्षिकं चेति सिद्धं सर्पिर्निषेवितम् ॥
शुष्यद्गात्रस्य बालस्य बृंहणं बलकारि तत् १४२॥
शंखनाभिकणापथ्यारसांजनविनिर्मिता।
वर्तिर्निहंति मधुना बालनेत्रखिलामयान् ॥ १४३ ॥
क्षीरेऽश्वगंधया तांम्रपात्रे सूतेन साधितम्।
घृतं पुष्टिकरं वर्ण्यं बलकृत्सुखकारि च ॥ १४४ ॥
श्लेष्माहत्तालुमांसस्थः करोति कुपितः शिशोः।
तालुकण्टकमेतेन तालुदेशे च निम्नता ॥ १४५ ॥

१ ताम्रचूडांडैः परिसाधितम्।

तृष्णातालुविपाकश्च स्तन्यद्वेषश्च विड्ग्रहः ।
भ्रमास्यशोषकण्डूर्तिर्ग्रीवामूर्धगता वमिः॥ १४६ ॥
अक्षिरोगादिकं चापि तत्र चोन्नीय तालुकम् ।
प्रतिसार्यं यवक्षारक्षौद्राभ्यामतियत्नतः ॥ १४७ ॥
यद्वा विश्वा कणा सिंधुगोमयोत्थरसैस्तथा ।
पथ्याकुष्ठवचाकल्कं स्तन्येन मधुना युतम् ॥
पीतं निहंति वेगेन बालानां तालुकंटकम्॥ १४८ ॥
प्रस्वेदान्मललेपाद्वा रक्तश्लेष्मभवो गुदे ।
गुदकीटो भवेद्रोगस्तीव्रव्रणसमान्वितः ॥ १४९ ॥
शृतशीतांबुशैलेयलूकच्चूर्णं मधूत्थकम् ।
तेनापानव्रणं सम्यग्लेपयेद्भिषगुत्तमः ॥ १५० ॥

सुगन्धबाला, काकडासिंगी, पाढ और नागरमोथा इन औषधियोंका क्वाथ शहद डालकर पिलानेसे बालकोंके खूनी दस्त बन्द होते हैं। बोलके एक रत्ती चूर्णको दूधमें मिलाकर पिलानेसे बालकके कण्ठमें, छातीमें और शिरमें संचित हुआ कफ शीघ्र दूर होता है। महुआ और काली मिरचोंको गोमूत्रमें पीसकर सेवन करानेसे बालकोंके मल मूत्रका अवरोध होना शीघ्र नष्ट होताहै। मुलैठी, लोध, पीपल, गन्धप्रसारणी, खिरैंटी, सेमलकी छाल, सारिवा, रायसन और शहद इन सबको समान भाग लेकर कल्क करलेवे, इस कल्कके साथ यथाविधि घृतको पकाकर बालकको सेवन करावे। यह घृत शुष्क और दुर्बल शरीरवाले बालकके लिये अत्यन्त पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है। शंखकी नाभि, पीपल, हरड

१ तुगाचूर्णमिति पाठोपि।

और रसौत सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके पानीमें पीसकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको शहदमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे बालकोंके सब नेत्ररोग नष्ट होते हैं । असगन्ध और मूर्छित पारेको दूधमें पीसकर उसके साथ घृतको मिलाकर ताँबेके पात्रमें घृतको पकाकर सिद्ध करे । यह घृत बालकोंको पुष्ट करनेवाला, बल, वर्णको बढानेवाला और सुख प्रदान करनेवाला है । बालकके हृदय और तालुके मांसमें स्थित कफके प्रकुपित होनेसे तालुमें गढा पडजाता है, अर्थात् तालु बैठजाता है इसको तालुकण्टक रोग कहते हैं । स्त्रियाँ इसको गला पडगया ऐसा कहती हैं । इस रोगमें तृषा, तालुका पकना, दूधका न पीना, दस्तका न होना, भ्रम, मुखशोष, खुजली गर्दन और सिरमें पीडा, वमन, नेत्ररोग आदि अनेक उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं । ऐसी अवस्थामें तालुको उठाकर (अर्थात् बालककी गर्दनको दोनों हाथोंसे सहजमें पकडकर धीरे धीरे उसको ऊपरको उठावे) जवाखारको शहदमें मिलाकर बहुत धीरे धीरे तालुपर घिसे । अथवा सोंठ, पीपल, सैंधानमक, गोबरका रस, हरड, कूठ और वच इन सबको बारीक चूर्ण करके पानीमें पीसकर कल्क बनालेवे, फिर वस्त्रमें छानकर रस निचोड लेवे । उस रसको स्त्रीके दूधमें और शहदमें मिलाकर पिलानेसे बालकोंका तालुकण्टक रोग शीघ्र दूर होताहै । गुदामें अधिक पसीना भरनेसे अथवा मलके लगे रहनेसे रक्त और कफके कुपित होनेके कारण गुदकीट (गुदामें कीडोंका होना) अर्थात् पछैरु रोग होजाता है उसमें कीडोंके काटनेसे बालकोंकी गुदामें पीडा, खुजली और तीव्र व्रण होजाते हैं । इस रोगमें भूरिछरीला और एलुआ दोनोंको एकत्र चूर्ण कर क्वाथ बनाने और शीतल करके उससे गुदाको बारंबार धोवे और मोमको गरम करके गुदाके व्रणोंपर लगावे ॥ १४०–१५० ॥

त्रिफलाबदरीपत्रक्काथेन परिषेचयेत् ।
रागकण्डूमतो रक्तं जलौकाभिः समन्वितम्॥१५१॥
पित्तव्रणचिकित्सा च सकलात्र प्रशस्यते ।
गुदपाके तु कर्तव्या पित्तव्रणहरा क्रिया ॥ १५२ ॥
पानप्रलेपयोः शस्तं विशेषेण रसांजनम् ।
अजादुग्धेन संमिश्र्य जीरकांजनचूर्णकैः ॥ १५३ ॥
जातीपत्ररसोपेतैः पूर्वप्रोक्तरसैरपि ।
मुखपाके मुखं लिंपेद्बोधित्वग्घृतसारघैः ॥ १५४ ॥
जातीपत्राऽभयायष्टीमधुदार्व्या च लेपयेत् ।
नाभिपाके प्रलेतव्यं सिक्तं तैलेन भूरिशः ॥ १५५ ॥
रजनीयष्टिकालोध्रप्रियंगूणां च कल्कतः ।
चूर्णैरेषां सतैलेन नाभिपाकं शमं नयेत् ॥ १५६ ॥
अपुष्पाश्वत्थपंचांगक्काथेनापि च कल्कतः ।
सिद्धतैलप्रलेपेन कुंडलव्याधिनाशनम् ॥ १५७ ॥
हिंगुशुंठीकणापथ्यामिशीपंचामृतं मतम् ॥ १५८ ॥
सर्वबालामयान्हंति पाचनं दीपनं परम् ॥ १५९ ॥
तिक्ताग्निव्योषमालूरपथ्यारुचकहिंगुकम् ।
तुल्यदुग्धं घृतं पक्कं गुल्मानाहविलंबिकाः ॥ १६० ॥
कासं श्वासं गुदभ्रंशं विनिहंति न संशयः ॥ १६१ ॥
राजीकुष्ठनिशागेहधूमवत्सकतक्रतः ।
लेपो विचर्चिकां सिध्मं हंति पामां च वेगतः ॥ १६२

---

१ निशा ।

छिन्नाफणिज्झहंसांघ्रिभानुपत्ररसैः सह ।
सस्तन्यं साधितं तैलं क्षिप्तं सर्वग्रहार्तिजित् ॥१६३॥
स्फूर्जकं हपुषापुष्पं हंसपादी कुरंटकम् ।
करंजार्कदलस्फूर्जश्वेतपुष्पं च कल्कितम् ॥
तेन संसाधितं तैलं तेनाऽभ्यंगं चरेच्छिशोः ॥१६४॥
निंबाश्वत्थपलाशानां बिल्वकिंशुकयोर्दलैः ।
सिद्धं सर्पिस्तथा तैलं पानाद्बालग्रहाञ्जयेत् ॥१६५॥

त्रिफला और बेरीके पत्तोंका काढा बनाकर उसके गुदाको बारम्बार धोवे । यदि वह स्थान लाली, सूजन और खुजली युक्त हो तो वहाँपर जोंक लगवाकर थोडा रक्त निकलवादे । इस रोगमें विशेषकर पित्तव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये और गुदाके पकजानेपर भी पित्तव्रणनाशक उपचार करने चाहिये । इसमें विशेषरूपसे रसौतको पीसकरके पान और प्रलेप द्वारा प्रयोग करना बडाही उपयोगी है । जीरा और रसौतके चूर्णको चमेलीके पत्तोंके रसमें घोटकर और बकरीके दूधमें मिलाकर कपडेमें छानकरके रस निचोडलेवे । इस रसको पिलानेसे बालकका गुदापाक और गुदकीट रोग दूर होता है । बालकोंके मुँहमें छाले पडजानेपर पीपलकी अन्तर्छालके चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर मुँहके भीतर लेप करे । अथवा चमेलीके पत्ते, हरड, मुलैठी और दारुहल्दीके समान भाग चूर्णको शहदमें मिलाकर लगानेसे भी मुखपाक रोग दूर होता है । बालककी नाभिके पकजाने पर मोमको तेलमें पकाकर बारंबार लेप करे । हल्दी, मुलैठी, लोध और फूलप्रियंगू इन औषधियोंके कल्कके साथ तेलको पकाकर अथवा इनके चूर्णको तेलमें मिलाकर उस तेलको नाभिपर लगा-

नेसे नाभिपाक रोग दूर होताहै । फूलोंके विना पीपलके पचांगके १० तोले काढेके साथ पीपलके १० तोले बीजोंको पीसकर कल्क करलेवे । इस कल्कके साथ१० तोले तेलको पकाकर प्रलेप करनेसे बालककी त्वचामें लाल २ चकत्तोंका पडना (पित्ती उछालना) फुन्सियोंका निकलना, खुजली होना आदि सब रोग शान्त होते हैं । हींग, सोंठ, पीपल, हरड और सोंफ इन पाँचोंको पंचामृत कहते हैं । इस पंचामृतके समान भाग चूर्णको पञ्चामृत (दूध, दही, घी, शहद और खॉड) के साथ मिलाकर बालकोंको थोडा २ चटावे । यह पंचामृत बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै, अग्निको अत्यन्त दीपन करताहै और अत्यन्त पाचक है । कुटकी, चीता, त्रिकुटा और कैथकी छाल, हरड, सैंधानमक और हींग सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णके बराबर दूध और उतनाही घी लेकर सबको एकत्र करके घृतको सिद्ध करे । यह घृत पान और प्रलेप द्वारा प्रयोग करनेसे बालकोंके गुल्म, आनाह, विलम्बिका, खाँसी, श्वास और गुदभ्रंश इन सब व्याधियोंको निश्चय दूर करताहै । राई, कूठ, हल्दी, घरका धुआँ और कुडेकी छाल इन सबको मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे विचर्चिका, श्वेतकुष्ठ और खुजली तत्काल दूर होती है । गिलोय, छोटे पत्तोंकी तुलसी, और लाल रंगकी लज्जालु इनको समान भाग लेकर आकके पत्तोंके रसमें खरल करके कल्क बनालेवे । इस कल्कके और दूधके साथ तेलको पकाकर मालिश करनेसे बालकोंकी सम्पूर्ण ग्रहबाधायें शान्त होती हैं । तेंदू वृक्षकी जड, हाऊबेरके फूल, लाल रंगकी लज्जालु, पीली कटसरैया, करंजकी जड, आकके पत्ते और सफेद आकके फूल इन औषधियोंके कल्कके साथ तेलको सिद्ध करके बालकके शरीर पर मालिश करे तोभी उक्त पीडायें नष्ट होती

हैं। नीमके पीपलके और ढाकके कोमल पत्तोंको लेकर अथवा बेल और ढाकके पत्तोंको लेकर पानीमें पीसकर कल्क कर लेवे और वस्त्रमें बाँधकर रस निचोड लेवे । उस रसके साथ घृत अथवा तेलको पकाकर पिलानेसे बालकोंकी समस्त ग्रह-बाधायें दूर होती हैं ॥ १५१–१६९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

उन्मादरोगः ।

आधिव्याधिकृशस्य दुर्बलतनोराहारतो वा भया-
त्पूज्यातिक्रमणाद्विषादुपविषाद्दैवादसामर्थ्यतः ।
वैषम्यादपि कर्मणां हृदि मलाद्बुद्धेर्विधेयाल्वणं
कालुष्यं हतसौख्यदुःखमथनादुन्मादमातन्वते ॥ १ ॥
संजल्पको धावति हंति चैतदुन्मा-
द्वातस्य च लक्ष्म बोध्यम् ॥ २ ॥

किसी प्रकारके मानसिक अथवा शारीरिक रोग होनेसे शरीरके अत्यन्त कृश और दुर्बल होजानेसे,भोजनके न मिलनेसे, अकस्मात् भयभीत होनेसे, इष्ट देवकी पूजामें व्यतिक्रम होनेसे अथवा किसी पूज्य व्यक्तिका तिरस्कार करनेसे, विष या उपविषके खानेसे, प्रारब्धजनित कर्मोंसे, सांसारिक कार्योंके करनेमें असमर्थ होनेके कारण प्रत्येक कार्यमें विषमता होनेसे और हृदयमें किसी प्रकारका मैल अथवा दोषके संचित होनेसे अथवा एकदम किसी भारी हानिके होनेसे या स्त्री पुत्र आदि प्रियजनोंकी अधिक मृत्यु होनेके कारण दुःखके होनेसे जिस मनुष्यकी बुद्धि एकदम नाश होजाती है, वह

मनुष्य पागल होजाताहै । इसको उन्माद रोग कहते हैं।उन्माद रोगी बहुत बकताहै चारों ओरको दोडताहै,मनुष्योंको मारता है, इत्यादि उन्माद वातके अनेक लक्षण होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

ग्रहघ्नधूप ।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतक-
त्वङ्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचकैः ।
नागेंद्रद्विजशृंगहिंगुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कंदोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नः परम् ॥ ३॥

कपासके विनौले, मोरपंख, बडी कटेरी, शिवनिर्माल्य, तगर, तज, बालछड, अडुसेकी जड, डाँसोंकी विष्ठा, धानोंकी भूसी, बच, बाल, साँपकी कैंचली, हाथीदांत, सींग, हींग और मिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर धूप तैयार करलेवे । इस धूपकी धूनी देनेसे स्कंद ग्रह, उन्माद रोग, पिशाच, राक्षस, असुर और देवताओंका आवेश तथा समस्त ग्रहोंकी बाधा शीघ्र नष्ट होती है । यह धूप ग्रहबाधाको दूर करनेके लिये परमोपयोगी है ॥ ३ ॥

सामान्य उपाय ।

अत्रार्कमूर्त्याख्यरसस्य वल्लं धत्तूरबीजेन
समं प्रदद्यात् । मरीचचूर्णेन घृतेन
वापि पथ्यं च गुर्वन्नमिह प्रशस्तम् ॥ ४ ॥
शुष्कं च शाकं परिवर्जयीत रूक्षं कषायं
बहुशीतलं च । निंबस्य तैलेन विमर्दयेत
कलेवरं क्षाम्यति तेन रोगः ॥ ५ ॥

निर्गुंडिकोन्मत्तकतुंबिनीनां रसैस्तु तैलं परिपाचयीत ॥ कलेवरं तेन विलेपयेत मासार्धतः शांतिमुपैति रोगः ॥ ६ ॥

इस रोगमें अर्कमूर्च्छा रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती लेकर धतूरेके बीजोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करावे । अथवा मिर्चोंके चूर्ण और घृतमें मिलाकर देवे । इसपर गुरुपाकी और पौष्टिक पदार्थोंका पथ्य देना चाहिये और रूखे, पदार्थ, शाक, कषैले और बहुत शीतल पदार्थ त्याग देने चाहिये । रोगीके शरीरपर नीमके तेलकी मालिश करे । इससे उन्माद रोग बहुत शीघ्र शान्त होताहै । अथवा निर्गुण्डी, धत्तूरा और कडवी तोंबीके रसमें तेलको पकाकर उसकी शरीर पर मालिश करे तो यह रोग १५ दिनमें शान्त होजाता है ॥ ४-६ ॥

अपस्मार (मृगी)।

क्रुद्धैर्धातुभिराहते च मनसि प्राणी तमः संविशन्दन्तान्खादति फेनमुद्गिरति दोःपादौ क्षिपन्मूढधीः । पश्यन् रूपमसत्क्षितौ निपतति प्रायः करोति क्रिया बीभत्साः स्वयमेव शाम्यति गते वेगे त्वपस्माररुक् ७

मनुष्यकी रस, रक्त, मांसादि धातुओंके विकृत होनेसे अथवा स्त्री, पुत्र, धन आदि सुखोंका नाश होनेके कारण अत्यन्त दुःख और चिन्ता होनेसे अथवा कोई शारीरिक या मानसिक रोग होनेसे या दिल पर किसी प्रकारका आघात होनेसे वायुका वेग बढजाता है, उस समय उस मनुष्यकी आँखोंमें अन्धेरा छाजाता है, और वह संज्ञाशून्य होजाता है, दाँतोंको कटकटाताहै, मुँहसे झागोंको गेरता है, हाथ पैरोंको पटकता है और बुद्धिशक्ति नष्ट होजाती है । रोगी भयंकर रूपको देखता हुआ

जमीन पर लकडीके समान गिर पडताहै और प्रायः भयोत्पादक चेष्टायें करताहै । फिर कुछ देरमें वायुका वेग कम होजानेपर रोग अपने आप शान्त होजाताहै ॥ ७ ॥

अपस्मारनाशन रस ।

रसगंधशिलातुत्थकांतहेमाब्धिफेनकम् ।
रजनी तेजनीबीजं कर्षमात्रं पृथग्युतम् ॥ ८ ॥
निंबुद्रवांतौ तेनांतर्लिप्तां ताम्रपलोन्मिताम् ।
पात्रीं न्युब्जां सुभाण्डांतां रुद्ध्वा खर्परिकां धृताम् ॥९
भस्मनाऽऽपूर्य भाण्डांतर्धृत्वाऽधो द्विनिशं पचेत् ।
स्वांगशीतं विचूर्ण्याथ रसोऽपस्मारनाशनः ॥१० ॥
वल्लमस्योदये दद्याद्व्योषविडंगयुक् ।
अनुदेयमजामूत्रं ततोऽर्धप्रहरे गते ॥ ११ ॥
सार्षपे षोडशपले तैले तत्कल्कितं पचेत् ।
नस्यं तैलेन तेनास्य दद्यात्सव्योषकेण तु ॥ १२ ॥

पारा, गन्धक, शुद्ध मैनसिल, तूतिया, कान्तलोहभस्म, सुवर्णभस्म, समुद्रफेन, हल्दी और मालकाँगनीके बीज ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर नींबूके रसमें घोटकर गोला बनालेवे । पश्चात् चार तोले शुद्ध ताँबेकी मूषा बनाकर उसके भीतर इस गोलेका लेप करके सुखालेवे । उस मूषाको एक हाँडीके भीतर औंधा मुँह करके रखदेवे और उस हाँडीमें कण्ठपर्यन्त अरने उपलोंकी राख खूब दाब दाबकर भरदेवे, फिर ढक्कने ढककर संधिस्थानोंको बन्द करके कपरौटीकर सुखावे और चूल्हे पर चढाकर दो दिन और दो रात तक बराबर पकावे । स्वाङ्गशीतल होनेपर ताँबेकी मूषाको निकालकर रससहित बारीक खरल करलेवे । इस रस-

को प्रतिदिन प्रातःकालमें एक २ रत्ती परिमाण लेकर वच, त्रिकुटा और वायविडंगके चूर्णके साथ प्रयोग करे और आधे पहर (१॥ घंटेके बाद) बकरीके मूत्रका अनुपान करावे। अथवा वच, त्रिकुटा और वायविडंग इनके कल्कको चौगुने पानीमें घोलकर उसमें १६ गुने सरसोंके तेलको डालकर यथाविधि तेलको पकावे। उस तेलमें त्रिकुटेका बारीक चूर्ण मिलाकर उसको रोगीको नस्य देवे और दो चार बूंद तेल रोगीकी नाकमें टपका देवे। इस प्रकार इस रसको व्यवहार करनेसे अपस्मार रोग नाश होताहै ॥ ८-१२ ॥

प्रत्ययसूत रस।

त्रिलोहपिष्टस्रोतोजसृष्टित्रययुतं रसम् ।
गंधतैले सुसिद्धं तदपस्मारहरं परम् ॥
सूतकः प्रत्ययाख्योऽसौ उन्मादापस्मृती हरेत् १३॥

सुवर्णभस्म, चाँदीकी भस्म, ताँबेकी भस्म, सफेद सुरमा, पारा, गन्धक और अभ्रक इनको समानभाग लेकर प्रथम पारदादि तीनों चीजोंकी कज्जली करलेवे। फिर उसमें उपर्युक्त भस्मोंको और सबकी बराबर पारेकी भस्मको मिलाकर खरल करलेवे। इसके पश्चात् उक्त रसको गन्धकके तेलमें पकाकर उपर्युक्त मात्राकी गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको प्रतिदिन योग्य अनुपानके साथ सेवन करावे। यह प्रत्ययसूत रस उन्माद और अपस्मार इन दोनों रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है॥ १३ ॥

सर्वेश्वर रस।

रसं नारंगमूलं च दंती पाठा पृथक् पृथक् ।
पलमेकं फेनफलमर्कमूलं तथैव च ॥ १४ ॥

---

१ स्रोतोजशब्देन कृष्णाञ्जनग्रहणमेव।

पलं मृगविषाणं च त्रिफला च पलत्रयम् ।
एतेषां क्वाथसंयुक्तं दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ १५ ॥
अम्लवेतसरसंयुक्तमर्कक्षीरसमान्वितम् ।
पंचपंचादिने तद्वदमरीरससंयुतम् ॥ १६ ॥
त्रिसप्तदिवसं तद्वन्मर्दयेत्सिद्धमौषधम् ।
पिष्टं चित्रकनिष्क्वाथे वल्लत्रयनिषेवितम् ॥
उन्मादापस्मृती हन्यादेष सर्वेश्वरो रसः ॥ १७ ॥

पारेकी भस्म, नारंगकी जड, दन्तीकी जड, पाढ, पोस्तके डोडे, आककीजड, और काले हिरनके सींगकी भस्म ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले और त्रिफला १२ तोले लेवे। इन सबको कूटपीसकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे। फिर भस्मोंको छोडकर अन्य औषधियोंका एकत्र क्वाथ करके उसमें उक्त चूर्णको डालकर तीन दिन तक खरल करे। फिर अम्लवेतके रस और आकके दूधमें पाँच पाँच दिन तक भावना देकर २१ दिन तक तुलसीके रसमें मर्दन करे फिर चीतेके काढेमें एक बार भावना देकर सुखालेवे। इस प्रकार यह सर्वेश्वर रस सिद्ध होताहै इस रसको नित्य तीन २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे उन्माद और अपस्मार रोग दूर होते हैं ॥ १४-१७ ॥

सामान्य उपाय ।

कृष्णधत्तूरपंचांगं कृष्णगोनवनीतकम् ।
षड्गुणं नवनीतात्तु माषक्वाथश्चतुर्गुणम् ॥ १८ ॥
क्षिप्त्वा पचेद्घृतं तत्तु पथ्यं शाकोदनादिषु ।
शाकेषु काकमाची स्याद् भोजने कृष्णगोपयः ॥ १९ ॥
शतधा मरिचं चूर्णं कूष्माण्डीपुष्पभावितम् ।

कुर्यात्तेनैव चूर्णेन रात्रावञ्जनमाचरेत् ॥ २० ॥
एवं नित्यं कृते याति तृतीयादिवसे ध्रुवम् ।
अपस्मारस्तथा मासं सेव्यमेतन्महौषधम् ॥ २१ ॥
उद्बद्धमानवगलव्यातिषक्तमग्नौ रज्जुं विदह्य निपुणेन
कृता मषी या । सा शीतलेन सलिलेन समं
निपीता पुंसामपस्मृतिविनाशकरी प्रसिद्धा ॥ २२ ॥
कृष्णं श्वानं स्थितमनशनं स्थापयित्वा विरेकं
पश्चाद्दध्ना सिततिलयुतं भोजनं भोजयित्वा ।
तद्वीवोत्था सिततिलजदीपाञ्जनं लोचनस्थं
चापस्मारं हरति विधृतं नैंबसारे शरावे ॥ २३ ॥
हेम्ना शुद्धेन संपिष्टं दशमांशरसं विषम् ।
स्रोताजं मर्दितं तोयैः शूलिनीदेवदालिजैः ॥ २४ ॥
गंधकस्य पचेत्तैले वटिकोन्मादनाशिनी ॥ २५ ॥
तथैव पर्पटीसूतं ब्राह्मीरसविमर्दितम् ।
पर्पटीरसगुंजाष्टौ नाकुलीबीजपंचकम् ॥ २६ ॥
गोघृतेन तु संयोज्य खादेदुन्मादशांतये ।
सघृतं माषमण्डं च पाययेद्दुग्धसंयुतम् ॥ २७ ॥
पर्पटीरसगुंजाष्टौ ब्राह्मीरससमन्वितम् ।
खादयेद्रोगिणं वैद्यो ह्यपस्मारप्रणुत्तये ॥ २८ ॥

काली गायका नैनी घी १ भाग, काले धतूरेका पंचाग ६ भाग और उडदोंका काढा ४ भाग लेकर प्रथम उक्त पंचांगका कल्क बनाकर उसको और नैनीघीको उडदोंके काढेमें डालकर

यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह घृत रोगीको शाक, भात आदि पथ्य पदार्थोंके साथ सेवन करावे। अपस्मार रोगीके लिये शाकोंमें मकोयका शाक और भोजनमें काली गायका दूध देना सर्वोत्तम है। मिरचोंके चूर्णको पेठेके फूलोंके रसमें १०० बार भावना देकर अंजन तैयार करे। इस अंजनको प्रतिदिन रात्रिके समय नेत्रोंमें लगानेसे तीन दिनमें ही अपस्मारके दौरे पडने कम होजाते हैं। और एक महीने तक इस औषधको खाने तथा नेत्रोंमें लगानेसे अपस्माररोग अवश्य नष्ट होजाता है। छोटे २ बालकोंके गलेमें जो सूतका काला डोरा बँधा रहता है, वह जब खूब मैला होगया हो तब उसको लेकर अग्निमें जलालेवे। उसकी राखको शीतल जलमें घोलकर पान करनेसे मनुष्योंका अपस्मार रोग नाश होताहै काले कुत्तेको एक दिन तक भूखा रखकर दूसरे दिन उसे जुल्लाब देवे। अच्छे प्रकारसे दस्त होजानेपर उसको दहीमें सफेद तिल मिलाकर खिलावे। उस समय कुत्तेके गलेमेंसे निकली हुई लारको लेकर काले तिलोंके तेलमें मिलाकर दीपकमें जलावे और नीमके सकोरेमें उसकी स्याही पारे। उस स्याहीको नेत्रोंमें आँजनेसे अपस्मार रोग दूर होता है। सोनेके वर्क १० भाग, शुद्ध पारा १ भाग, वत्सनाभ १ भाग और सफेद सुरमा १ भाग सबको एकत्र मिलाकर चीतेके और बंदालके रसमें एक २ बार भावना देकर सुखालेवे। फिर गन्धकके तेलमें पकाकर गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ उन्माद रोगको विनाश करनेवाली हैं। पूर्वोक्त पर्पटी रसको ब्राह्मीके रसमें घोटकर सेवन करनेसे सब प्रकारका अपस्मार नाश होता है। पर्पटी रस ८ रत्ती और नकुलकन्दके बीज ९ रत्ती दोनोंको एकत्र पीसकर गोघृतमें मिलाकर सेवन करनेसे उन्माद रोग शान्त होता है एवं अपस्मार रोगको नष्ट करनेके

लिये भी वैद्य रोगीको आठ २ रत्ती पर्पटी रस ब्राह्मीके स्वर-समे घोटकर सेवन करावे और ऊपरसे उडदोंके मांडमें घी और दूध मिलाकर पान करावे। इस उपचारके करनेसे अपस्मा-रमें शीघ्र लाभ होता है ॥ १८–२८ ॥

नेत्रामय ।

कृष्णे पंच नवैव संधिषु दश त्रीण्येव शुक्लेऽखिले
जाताः षोडश वर्त्मजाः खलु चतुर्विंशो दृशोर्विंशतिः ।
सप्तातंकयुता चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोरशेषामया-
न्योवेत्ति व्यपहर्तुमेष विदुषामग्रे समर्थो भवेत् ॥२९॥

आँखोंकी काली पुतलीमें १४, सन्धियोंमें १३, सफेद पुत-लीमें १६, पलकोंमें २४, दृष्टिमें २० और आँखोंके गोलेमें ७ इस प्रकार सब मिलाकर नेत्रोंके ९४ रोग होते हैं। इन सम्पूर्ण रोगोंको जो अच्छे प्रकारसे जानता है और विविध उपायोंके द्वारा उनका प्रतिकार कर सकता है वह वैद्य विद्वानोंमें अग्र-गण्य समझा जाता है ॥ २९ ॥

ताम्रद्रुति ।

आर्द्रालकुचभृंगाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।
गंधकेन समांशेन प्राग्वत्ताम्रं च मारितम् ॥ ३० ॥
ताम्राभ्रकं च तुत्थं च दशनिष्कं पृथक् पृथक् ।
कंदुकस्थमिदं त्रिंशत्कर्षचूर्णितगंधकम् ॥ ३१ ॥
दत्त्वाल्पशोऽग्निनाल्पेन रुद्ध्वा धूमं विसर्जयेत् ।
प्रस्थांबुमर्दितस्यास्य प्रासादं निःसृतं युतम् ॥३२॥
तुत्थनीरशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत् ।
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिकात् ॥ ३३ ॥

काचार्मपिल्लाभिष्यंदव्रणशुक्रप्रणाशिनी ।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभं लेपात्पामादिकं जयेत् ॥ ३४ ॥

अदरख, बडहल और भाँगरा इनमेंसे किसी एक औषधिके रसमें गन्धकको खूब बारीक खरल करले । फिर गन्धकके बराबर ताँबेके सूक्ष्म पत्र लेकर उनके ऊपर गन्धकके कल्कका लेप करके पूर्ववत् गजपुटमें पकावे । इस प्रकार गन्धकके सात पुट देनेसे ताम्रभस्म तैयार होजाती है । इस प्रकार तैयार की हुई ताम्रभस्म १० निष्क (४० मासे), अभ्रकभस्म १० निष्क, और तूतिया १० निष्क लेकर तीनोंको एकत्र खरल करलेवे । फिर कढाईमें डालकर पिघलावे और ऊपरसे १ तोला गन्धक डालकर उसको किसी बर्त्तनसे ढँक देवे और उसके नीचे मन्द मन्द अग्नि जलावे । जब कढाईमें धुआँ भरजाय तब बर्त्तनको उघाडकर धुआँ निकाल देवे और एक २ तोला गन्धक डालकर फिर ढकदेवे । इस प्रकार तबतक बारम्बार करे जबतक उसमें ३० तोले गन्धक जारण न होजाय । फिर कढाईको नीचे उतारकर शीतल होनेपर उस रसको ताँबेके बर्त्तनमें भरदे और एक प्रस्थ (६४ तोले) जल डालकर खूब अच्छे प्रकारसे मसलकर कुछ देर बाद उस जलको नितारलेवे । फिर उस बर्त्तनके नीचे जो औषध जमगईहो उसको लेकर सुखालेवे । इसके पश्चात् उसमें तूतियेका पानी १ तोला और शिलाजीत १ तोला डालकर खूब अच्छे प्रकारसे खरल करके घूपमें रखदेवे । जब वह पिघलकर रसके समान पतली होजाय तब उस द्रुतिको शीशीमें भरकर रखदेवे । इस ताम्रद्रुतिको घी, स्त्रीके दूध अथवा शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मोतियाविन्द, अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द, व्रण, और नेत्रगत शुक्ररोग आदि नेत्रोंकी व्याधियाँ नष्ट होती हैं । इस द्रुतिको बनाते समय उसमेंसे जो मैल निकले उसको

शरीरपर लगानेसे दाद, श्वेतकुष्ठ, खुजली आदि रोग दूर होते हैं ॥ ३०-३४ ॥

पुनः ताम्रद्रुति (अंजन) ।

शुल्बं गंधकमभ्रकं च रसकं दिक्संख्यनिष्कं पृथक्
सर्वं रुद्रजटारसेन बहुशो भृंगस्य सारेण वा ।
प्रायः श्लक्ष्णतरं सुमर्दितमिदं सम्यक् पुटं कारये-
त्स्थाल्यां तत्पुनरेव शीतलमिदं विन्यस्य तस्यांतरे ३५
निष्कं निष्कमनंतरं परिपचेज्जीर्णे यथा गंधकं
स्यादेवं शतनिष्कमात्रमसकृत्तद्भस्म शीतं ततः ।
प्रस्थेनोन्मितवारिणा विलुलितं कल्कं विना गालितं
संगृह्यांबु तदंतरे शिखिनिभं तुत्थं सुचूर्णीकृतम् ॥ ३६ ॥
कर्षांशांशितमंजनं विनिहितं कांस्ये परं शोषये-
त्तां ताम्रद्रुतिमामनंति निखिलान्नेत्रामयान्नाशयेत् ३७

ताम्रभस्म, गन्धक, अभ्रकभस्म और खपरियाकी भस्म प्रत्येकको दश २ निष्क लेकर एकत्र खरल करले फिर रुद्रजटाके रसमें अथवा भाँगरेके रसमें ३० भावना देकर मैदाके समान बारीक खरल करके गोला बनालेवे और उसको सुखाकर गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करके ताँबेकी कढाईमें डालकर चूल्हेपर चढावे और उसक नीचे मन्द मन्द अग्नि जलावे । फिर कढाईमें चार मासे गन्धक डालकर लोहेकी करछीसे चलावे। जब कढाईमेंसे गन्धकका धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब उसमें ४ मासे गन्धक और डालकर करछीसे चलादेवे । इस प्रकार बारंबार चार २ मासे गन्धक डालकर चलाते हुए उसमें १०१

निष्क परिमाण गन्धकको जारण करे । फिर कढाईको नीचे उतारकर शीतल होजानेपर उस भस्मको १ प्रस्थ पानी डालकर घोललेवे । जब पानी ठहरजाय तब उसको धीरे २ नितार लेवे । इसके बाद उस पात्रमें पानीके नीचे जो औषधि जम गईहो उसको लेकर सुखालेवे। फिर उसमें नीलाथोथा १ तोला और काला सुरमा १ तोला डालकर खूब बारीक खरल करके काँसेके वर्तनमें भरकर धूपमें रखदेवे । इस प्रकार करनेसे जब ताँबेकी द्रुति होजाय तब उसको शीशीमें भरकर रख देवे । यह ताम्रद्रुति नेत्रोंमें आँजनेसे सम्पूर्ण नेत्ररोगोंको नष्ट करती है ॥ ३५–३७ ॥

गन्धकद्रुति ।

आर्द्रकस्य रसे पिष्टं गंधकेन विमिश्रितम् ।
तुत्थं तु निष्कदशकं तन्मानं चाभ्रकं भिषक् ॥ ३८॥
दशनिष्केन तन्मानं ताम्रं च शकलीकृतम् ।
भर्जयेत्खर्परे क्षिप्त्वा दहेत्तदनु चूर्णयेत् ॥ ३९ ॥
तन्मिश्रं कंदुकस्थेन चूर्णमेतेन भर्जयेत् ।
गंधकं चूर्णितं कृत्वा कर्षं तु विधिना शनैः ॥ ४० ॥
मर्दितं तज्जलप्रस्थे नीलं चापि शिलाजतु ।
कर्षप्रमाणं निक्षिप्य मर्दयेद्द्रावयेत्पुनः ॥ ४१ ॥
प्रसादं स्रावयेत्पश्चादातपे परिशोषयेत् ।
गंधकद्रुतिरित्येषा सर्वनेत्रामयापहा ॥ ४२ ॥
विशेषाद्व्रणकुष्टं च पिल्लं काचं कुकूणकम् ॥
जयेत्स्तन्यघृतक्षौद्रैः सर्वं तत्परिकल्पयेत् ॥ ४३ ॥

व्रणान्कृच्छ्रान्सुसूक्ष्माग्रानपि शीघ्रं निवर्तयेत् ।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभपामादींल्लेपनाज्जयेत् ॥ ४४ ॥

गन्धक १० निष्क और नीलाथोथा १० निष्क लेकर दोनोंको अदरखके रसमें खरल करले, फिर उसमें अभ्रकभस्म १० निष्क और ताँबेका चूर्ण १० निष्क परिमाण डालकर अदरखके रसमें एक दिनतक घोटकर उसको मिट्टीके खीपरेमें डालकरके भूने । जब समस्त जल शुष्क होजाय तब फिर उसको अदरखके रसमें खरल करके गोला बनाकर गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर गोलेको बारीक चूर्ण करके कढाईमें डालकर चूल्हेपर चढावे और नीचे मन्द मन्द अग्नि जलावे । उसमें एक २ तोला गन्धक डालता हुआ पूर्ववत् धुआँ निकालकर उसका जारण करे । जब उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार गन्धकका जारण होजाय तब कढाईको नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें ६४ तोले पानी डालकर खूब मर्दन करे । फिर नीलाथोथा १ तोला और शिलाजीत १ तोला डालकर मर्दन करे और जब पानी ठहरजाय तब उसको धीरे धीरे नितारलेवे । इसके पश्चात् उसको तीक्ष्ण धूपमें रखदेवे । जब गन्धक पिघलकर रसके समान पतली होजाय तब उस द्रुतिको शीशीमें भरकर रखदेवे । यह गन्धकद्रुति समस्त नेत्ररोगोंको दूर करती है । इस द्रुतिको शहद, घी अथवा दूधमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे विशेष कर नेत्रोंके व्रण कुष्ठविकार, पिल्ल, मोतियाबिन्द, कुकूणक आदि नेत्ररोग नष्ट होते हैं । यह द्रुति कठिन और सूक्ष्म अग्रभागवाले नेत्रव्रणोंकोभी शीघ्र निवारण करती है । इस द्रुतिको बनाते समय उसमें जो मैल निकलताहै उसको लेकर प्रलेप करनेसे दाद, श्वेतकुष्ठ, खुजली आदि त्वचाके विकार शान्त होते हैं ॥ ३८–४४ ॥

गरुडाञ्जन ।

कतकसैंधवतुत्थरसांजनं त्रिकटुकस्फटि-
काब्दवराटकम् । त्रिपटुताम्रमयोहिम-
रोहिणी जलधिफेनवचानृकरोटिका ॥ ४५ ॥
उरगपारदटंकणमञ्जनं त्रिफलया मधुकेन
च संयुतम् । करजवल्करसेन सुपेषितं
गरुडदृष्टिसमां कुरुते दृशम् ॥ ४६ ॥

निर्मली, सैंधानमक, तूतिया, रसौत, त्रिकुटा, फटकरी, नागरमोथा, कौडी, समुद्रनमक, काचियानमक, विरियासंचर नमक, ताँबेकी भस्म, लोहभस्म, कपूर, मांसरोहिणीके बीज, समुद्रफेन, वच, मनुष्यकी खोपडीकी हड्डी, सीसेकी भस्म, पारा, सुहागा, सुरमा, त्रिफला और मुलैठी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । फिर इस चूर्णको करंजकी छालके काढेमें खरल करके सुखालेवे, फिर बारीक पीसकर रखदेवे । इसको गरुडाञ्जन कहते हैं । यह अञ्जन प्रतिदिन नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रके सब रोगोंको दूर कर दृष्टिशक्तिको गरुडकी दृष्टिके समान तीव्र कर- देता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तिमिरहराञ्जन ।

रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं तिमिरापहम् ॥ ४७ ॥

पारा १ भाग, सीसा १ भाग और सुरमा २ भाग लेवे । प्रथम सीसेको और पारेको एकत्र खरल करे, फिर उसमें सुरमा डालकर तीन दिन तक खूब घोटे । चौथे दिन उसमें थोडा- सा कपूर मिलाकर शीशीमें भरकरके रखदेवे । यह अंजन

नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंके तिमिर रोग (अंधेरे) को दूर करता है ॥ ४७ ॥

पटलहराञ्जन ।

कारवेल्लद्रवैः सार्धं सम्यग्भर्ज्या कपर्दिका ।
सूतकं टंकणं लाक्षा तुल्यं जंबीरजद्रवैः ॥ ४८ ॥
मर्दयेत्ताम्रपात्रे तु तस्मिन् रुद्ध्वा विनिक्षिपेत ।
धान्यराशौ स्थितं मासमंजनं पटलं हरेत् ॥ ४९ ॥

कौडियोंके बारीक चूर्णको तांबेकी कढाईमें डालकर करेलेके पंचांगके रसके साथ उत्तम प्रकारसे भूने । फिर उसमें पारा, सुहागा और लाख ये प्रत्येक चीज कौडियोंके चूर्णके बराबर २ भाग मिलाकर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके गोला बनालेवे । उसको तांबेके सम्पुटमें बन्द करके धानोंके ढेरमें गाडकर एक महीनेतक रक्खे इसके पश्चात् उस गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करके नेत्रोंमें आंजे । यह अंजन पटलगत (पलकोंके) रोगोंको दूर करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

रक्ताञ्जन ।

भृंगराजरसैर्घृष्टं पलैकं रक्तचंदनम् ।
ताम्रपात्रे स्थितं भाव्यं तद्रसेन पुनः पुनः ॥ ५० ॥
शतधा भावयेद्यत्नात्पेष्य पेष्य पुनः पुनः ।
मधुनाप्यंजनं हंति षड्विधं तिमिरामयम् ॥ ५१ ॥

लाल चन्दनके कपडछान किये हुए ४ तोले चूर्णको तांबेके बर्तनमें भांगरेक रसके साथ खरल करे और सुखालेवे । इसप्रकार भांगरेके रसमे १०० बार भावना देकर १०० वार सुखावे फिर पीसकर शीशीमें भरकर रखलेवे । इस अंजनको शहदमें

मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे छः प्रकारका तिमिररोग नष्ट होता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

शुक्कारिवर्त्ति ।

शंबूकं पारदं नागं कांस्यचूर्णं रसाञ्जनम् ।
समं सर्वमिदं चिंचादलद्रावेण मर्दयेत् ॥ ५२ ॥
ताम्रपात्रगतां वर्तिं छायाशुष्कां तु कारयेत् ।
शुक्कार्म तिमिरं पिल्लं हंति सा मधुनाऽञ्जिता ॥५३॥

शंख, पारा, सीसा, कांसा और रसौत इन सबके चूर्णको समान भाग लेकर इमलीके पत्तोंके रसमें तीन दिन तक खरल करे । फिर छोटी २ वत्तियां बनाकर उनको तांबेके पात्रमें रखकर छायामें सुखावे । इस वत्तीको शहदमें घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे शुक्क, अर्म, तिमिर, पिल्ल आदि नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

नक्तान्ध्यहरी वर्ती ।

ताम्राग्र्यलवणशंखैस्तुल्या मगधोद्भवाऽथ वै धात्री ।
जलपिष्टा गुलिकेयं सायंसमयांध्यमपहरति ॥ ५४ ॥

नैपाली तांबेकी भस्म, समुद्रनमक और शंख ये प्रत्येक एक २ भाग, पीपल ३ भाग और आमले ३ भाग, सबको पानीमें बारीक पीसकर बत्ती बनालेवे और छायामें सुखालेवे । इस बत्तीको पानीमें घिसकर सायंकालके समय नेत्रोंमें आंजे तो रतौंधा दूर होताहै ॥ ५४ ॥

नवनेत्रदात्रीवर्ति ।

द्विरष्टौ ताम्ररजसो मधुकस्य चतुर्दश ।
कुष्ठस्य द्वादशांशाः स्युर्वचायास्तु दशैव हि ॥५५॥

रजतस्य तु चत्वारो द्वौ भागौ कनकस्य च।
सैंधवस्याष्टमो भागः पिप्पल्याश्च षडेव तु ॥ ५६ ॥
अजाक्षीरेण संपेष्य ताम्रपात्रे निधापयेत्।
अभिष्यंदमधीमंथं व्रणशुक्लं कुकूणकम्॥
तिमिरं पटलं काचं कण्डूं हंति विशेषतः ॥ ५७ ॥

ताँबेकी भस्म १६ भाग, मुलैठीका चूर्ण १४ भाग, कूठका चूर्ण १२ भाग, वचका चूर्ण १० भाग, चाँदीकी भस्म ४ भाग, सुवर्ण भस्म २ भाग, सैंधानमक ८ भाग और पीपलका चूर्ण ६ भाग लेवे। सबको एकत्र बारीक पीसकर बकरीके दूधमें खरल करके बत्तियाँ बना लेवे। फिर छायामें सुखाकर और सुरमेके समान बारीक पीसकर ताँबेके पात्रमें भरकर रख देवे। इसको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका दुखना, अधिमन्थ, नेत्रोंके व्रण, फूला, कुकूणक, तिमिर, पटल, मोतियाबिन्द विशेषकर नेत्रोंकी खुजली आदि सब रोग नष्ट होते हैं॥५५-५७॥

नयनरोगहरी वर्ति।

कणलवणवचायुग्यष्टिताम्रैः क्रमेण द्विगुणधरणवृद्धै-श्छागदुग्धेन पिष्टैः। निखिलनयनरोगान् हंति वर्तिर्विशिष्टारज इव निशि सर्पिः क्षौद्रयुक्तं वराया॥५८

छोटी पीपल १ तोला, समुद्रनमक १॥ तोला, वच २ तोले, मुलैठी २॥ तोले और ताम्रभस्म ३ तोले सबको एकत्र पीसकर कपडछान करके बकरीके दूधमें खरल करे। फिर बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे। जैसे त्रिफलेके चूर्णको घी और शहदके साथ रात्रिमें खानेसे सम्पूर्ण रोग नाश होजाते हैं, उसी प्रकार इस बत्तीको घी और शहदमें घिसकर रात्रिमें आँजनेसे नेत्रोंके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ५८ ॥

शिग्रुतैल ।

चिंचादलस्वरसपेषितशिग्रुबीजं कांस्ये निघृष्य
परिशोष्य खरातपेन । तैलं ततः शृतमिदं शशि-
पादयुक्तं युंज्याद्व्रणार्मतिमिरे तिलमात्रमक्ष्णि॥५९॥

सैंजनेके बीजोंके चूर्णको काँसीके वर्त्तनमें, इमलीके पत्तोंके स्वरसके साथ खरल करके तीक्ष्ण धूपमें रख देवे । जब उसमें तल निकलकर बहने लगे तब उसको शीशीमें भरकर रख देवे । इस तेलमें चौथाई भाग कपूरका चूर्ण मिला देवे । इस तेलको तिल मात्र नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंके व्रण, अर्म, तिमिर आदि रोगोंमें शीघ्र लाभ होता है ॥ ५९ ॥

नेत्ररोगके सामान्य उपाय ।

शिलाया निहतं नागं रसराजप्रवेशितम् ।
द्विगुणं तुत्थमीषच्च कर्पूरं द्रोणपुष्पजैः ॥ ६० ॥
रसैर्विमर्दयेद्वर्तिरेषाऽभिष्यंदनाशिनी ।
कार्पासरसपिष्टेन्दुमधुशुल्बरसाञ्जनम् ॥ ६१ ॥
वाताभिष्यंदजे ताम्रं तिलपर्ण्यंबुमर्दितम् ।
शुल्बजीमूतलोहं च सीसं च समभागिकम्॥ ६२ ॥
द्विगुणं चाञ्जनं जातीतिलपर्णीमयूरजैः ।
पिष्टं निर्घृष्टदध्न्यकें श्लेष्माभिस्यंदनाशनम् ॥६३॥
रसेंद्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमञ्जनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तं दशमांशं च सर्जकम् ॥ ६४ ॥
बलानागबलाजाजीरसैस्ताम्रे दिनत्रयम् ।
मर्दितं स्यादभिस्यंदे सन्निपातात्मके हितम् ॥६५॥

चूर्णं तीक्ष्णस्य ताम्रस्य रसेंद्रसमचारितम् ।
रसांजनं च द्विगुणं वर्षाभूरसमर्दितम् ॥ ६६ ॥
शर्करामाक्षिकोपेतं पित्ताभिष्यंदसूदनम् ।
नागपारदधात्रींदुरत्नाकरससैंधवम् ॥ ६७ ॥
रसांजनं कणा क्षौद्रं तांबूलीपत्रवारिणा ॥
ताम्रेण मर्दितं कांस्ये पित्ताभिष्यंदमंथनुत् ॥ ६८ ॥
ताम्राऽहितारसपीतकरोहिणीन्दु-
शौण्डीरसांजननदीजपुराणकांस्यैः ।
वर्तिः कृता सकलसंमितहंसपादी-
मूलैर्निहंति नयनामयजालमाशु ॥ ६९ ॥

मैनासिलके द्वारा भस्म किया हुआ सीसा और शुद्ध पारा ये प्रत्येक एक २ भाग और नीलाथोथा २ भाग लेकर तीनोंको एकत्र खरल करे। फिर उसमें थोडासा कपूर डालकर द्रोणपुष्पीके रसमें घोटे और बत्ती बनाकर छायामें सुखा लेवे। यह बत्ती पानीमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्राभिष्यन्द (आँखोंका दुखना) रोग दूर होता है। बिनौलोंके रसमें कपूरको घोटकर उसमें समान भाग ताँबेकी भस्म, रसौत और शहद मिलाकर सबको ताम्रपात्रमें करके लाल चन्दनके काढेके साथ खरल करलेवे। वातजनित अभिष्यन्द रोगमें इस औषधके लगानेसे विशेष उपकार होता है। ताँबा, अभ्रक, लोहा और सीसा ये सब समान भाग और काला सुरमा सबसे दुगुना लेवे। इन सबको एकत्र खरल करके चमेलीके पत्तोंके रस, तिलोंकी खलके रस और चिरचिटेके रसमें क्रमसे एक २ बार घोटकर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीको

ताँबेके बर्तनमें दहीके पानीके साथ घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे कफजनित नेत्राभिष्यन्दरोग नष्ट होता है । पारा १ भाग, सीसा १ भाग, काला सुरमा २ भाग, जरासा कपूर और सबका दशमांश राल लेकर सबको एकत्र खरल करे । फिर खिरैंटी, गंगेरन और जीरा इन प्रत्येकके रसमें ताँबेके वर्त्तनमें करके एक २ दिन तक घोटे और वत्ती बनाकर छायामें सुखा लेवे । यह बत्ती सन्निपातजन्य नेत्राभिष्यन्दमें लगानेसे शीघ्र लाभ करती है । तीक्ष्णलोह १ भाग, ताँबेकी भस्म १ भाग, पारा २ भाग और रसौत २ भाग सबको एकत्र खरल करके पुनर्नवाके रसमें घोटे, फिर बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे । इस बत्तीको खाँड और शहदके साथ घिसकर नेत्रोंमें ऑजनेसे पित्तज अभिष्यन्दरोग नाश होता है एवं सीसा, पारा, आमले, कपूर, समुद्रफेन, सैंधानमक, रसौत, पीपल और शहद सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर उसको काँसेके वर्त्तनमें पानोंके रसके साथ ताँबेकी मुसलीसे घोटकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको पानीमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे पित्तजनित अभिष्यन्द और पित्तज अधिमन्थरोग नष्ट होता है । ताँबा, सीसा, चाँदी, पारा, पीली कटेरी, कपूर, पीपल, रसौत, समुद्रफल और पुराने काँसेका सूक्ष्म चूर्ण सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके लाल लज्जालुकी जडके रसमें घोटे और बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे । यह बत्ती जलमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको शीघ्र नाश करती है ॥ ६०-६९ ॥

पारदनागरसांजनसमानहद्धशिबिमूलकं सरजम् ।
सप्तदिनं चिंचादलरसपिष्टं ताम्रपात्रपर्युषितम् ॥ ७०
वर्तिरनातपशुष्काऽधिमंथतिमिरार्मपिल्लशुक्रघ्नी॥

पारदनागरसांजनविद्रुमकासीसलोध्रताम्राणि ॥ ७१ ॥
वृत्तात्रिकटुकगैरिकसिंधूद्भवतुत्थफेनवराः।
मौक्तिकगंधिन्याभागैरिकर्णीपुत्रजीवकनकाशिफाः ७२
चिंचापड्विधमौर्वलवणं पिचुमंदपत्ररसैः।
पिष्ट्वा ताम्रे लिप्ता वर्तिः स्यादाधिमंथपिल्लघ्नी ॥ ७३ ॥
कर्पूरांजनसीसपारदकणातीक्ष्णानि पिष्ट्वा सकृ-
न्नंद्यावर्तरसैर्विशोष्य मधुना पिष्ट्वा पुनर्भाजने।
शाङ्गे स्फाटिक एव वा विनिहितः शुक्रार्मकाचापहं
तैमिर्यं च निराकरोति सहसा नेत्रेऽञ्जनं सर्वदा ॥७४॥
नेपालतुत्थटंकणतारवरात्रिकटुफेनजलजं च।
जंबीरनीरपिष्टं काचार्मस्रावातिमिरशुक्रपिल्लघ्नम् ॥७५॥
रुद्धः कपर्दटंकणलाक्षाजंबीरयोर्द्रावैः।
मासं धान्ये क्षिप्तः सूतः पटलादिरोगहरः ॥ ७६ ॥
स्वर्णं वराटिकासूतः सारः पूतिकपत्रजः।
नवनीतेन संयुक्ता वर्तिः पुष्पं चिरंतनम् ॥ ७७ ॥
विषं धात्रीफलरसैर्दिनैकं परिभावितम्।
अंजनं शंखसहितं प्रगाढतिमिरप्रणुत् ॥ ७८ ॥
शंबूकं वा वराटं वा दग्धं सूक्ष्मं विचूर्णयेत्।
अंजनं नवनीतेन हंति पुष्पं चिरंतनम् ॥ ७९ ॥

पारा, सीसा, रसौत, मोथातृणकी मूल और राल सबको समान भाग लेकर इमलीके पत्तोंके रसमें ७ दिन तक खरल करके कल्क करलेवे। इस कल्कको ताँवेके बर्त्तनमें लहसकर

रातभर ओसमें रक्खा रहने देवे । प्रातःकालमें उसकी बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे। इस बत्तीको पानीमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो इससे अधिमन्थ, तिमिर, अर्म, पिल्ल, शुक्र आदि नेत्ररोग नाश होते हैं। अथवा पारा, सीसा, रसौत, मूँगेकी पिष्टी, कसीस, लोध ताम्रभस्म, मांसरोहिणी, त्रिकुटा, गेरू, सैंधानमक, तूतिया, समुद्रफेन, त्रिफला, मोती, कपूरकचरी, बबूरकी छाल, कोयलकी जड, जियापोता, धतूरेकी जड, इमलीके बीजोंकी गिरि, समुद्रनमक, सैंधानमक, काला नमक, बिडनमक, काचियानमक और मेढासिंगी इन औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करलेवे । उस चूर्णको नीमके पत्तोंके रसमें घोटकर ताँबेके बर्तनमें लेप करके रात्रिभर रक्खा रहने देवे। फिर प्रातःकालमें उसकी बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे। यह बत्ती नेत्रोंके अधिमन्थ और पिल्लरोगको विनाश करनेवाली है । कपूर, काला सुरमा, सीसा, पारा, पीपल और तीक्ष्णलोह इन समस्त औषधियोंको नीमके पत्तोंके रसमें घोटकर सुखालेवे । फिर शहदमें घोटकर मैदाके समान बारीक अंजन बनालेवे। इस अंजनको सींगकी अथवा स्फटिकमणिकी बनीहुई डिबियामें भरकर रक्खे। इस अंजनको सदैव नेत्रोंमें आँजनेसे शुक्र, अर्म, काच (मोतियाबिन्द) तिमिर आदिरोग शीघ्र दूर होते हैं। नैपाली ताँबा, तूतिया, सुहागा, रजतभस्म, त्रिफला, त्रिकुटा, समुद्रफेन और नागरमोथा इन सबको जम्बीरी नींबूके रसमें घोटकर बत्ती बनाकर छायामें सुखालेवे। यह बत्ती–पानीमें घिसकर लगानेसे मोतियाबिन्द, अर्म, नेत्रस्राव, तिमिर, फूला, पिल्ल इत्यादि समस्त नेत्रव्याधियोंको नष्ट करती है। कौडियोंमें पारा भरकर उनके मुँहको लाख और जम्बीरी नींबूके रसमें घोटे हुए सुहागेसे बन्द करके सुखालेवे। फिर उनको एक हाँडीमें बन्द करके

धानोंके ढेरमें गाडकर एक महीने तक रक्खा रहने देवे । महीनेभरके बाद कौडियोंको निकालकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । यह अंजन नेत्रोंके पटलादि (पलकोंके) रोगोंके दूर करनेवाला है । सोनेके पत्र, कौडी और पारा तीनोंको समानभाग लेकर दुर्गन्ध करंजके पत्तोंके रसमें खरल करके बातियाँ बनालेवे । इस बत्तीको नैनीघीके साथ घिसकर लगानेसे बहुत पुराना नेत्रोंका पुष्परोग । फूला, नष्ट होताहै । शुद्ध वत्सनाभ विषको आमलोंके रस या काढेमें एक दिनतक भावना देकर उसमें विषके बराबर शंखका चूर्ण डालकर खूब बारीक खरल करके अंजन बनालेवे । यह अंजन नेत्रोंमें लगानेसे प्रबल तिमिररोगको शीघ्र दूर करताहै । शंख अथवा कौडीकी भस्मको बारीक पीसकर कपडछान करके अंजन तैयार करे । यह अंजन नैनीघीमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे चिरकालके पुष्परोग (फूले) को नाश करताहै ॥ ७०-७९ ॥

शिग्रुमूलं वचां क्षौद्रैर्घृष्ट्वा नेत्रं प्रपूरयेत् ।
निष्पिष्याऽऽर्द्रां निशां वाथ सद्यः शूले सुखावहः ॥
श्वेतं पुनर्नवामूलं जलेनाञ्ज्यं च शूलनुत् ॥ ८० ॥
श्वेतं पुनर्नवामूलं घृतघृष्टं समञ्जयेत् ।
जलस्रावं निहंत्याशु तन्मूलं च निशायुतम् ॥ ८१ ॥
अञ्जयेद्वक्ररोमाणि न भवंति कदाचन ॥
निर्घृष्यं नृकपालं च नारीस्तन्येन चांजयेत् ॥ ८२ ॥
शूलं सतिमिरं हंति पुष्पं सर्पाक्षिदुग्धतः ।
बीजपूररसैर्घृष्टं विषतुल्यं शिलायुतम् ॥ ८३ ॥
अंजनं कारयेद्रात्रौ काचमांध्यं च नाशयेत् ।

---

१ सिता ।

कृष्णस्याजस्य मांसांतः पिप्पलीमरिचं क्षिपेत् ॥ ८४ ॥
सीवयित्वा घृतैः पच्याद्धटिकांते समुद्धरेत् ।
मध्वाज्यस्तन्यसंपिष्टं रात्र्यंधस्यांजनं हितम् ॥ ८५ ॥
असकृच्छीततोयेन सिञ्चेन्नेत्राभिष्यंदाजित् ।
अजापित्तगतं व्योषं धूमस्थाने विशोष्य च ॥८६ ॥
चिरबिल्वरसैर्घृष्टं रात्र्यंधस्याञ्जनम् हितम् ।
मरिचं मत्कुणे रक्ते रात्र्यंधहरमञ्जनम् ॥ ८७ ॥
गंधकाद्द्विगुणः सूतः सौवीरं चाष्टमांशतः ।
कपित्थरससंपिष्टमञ्जनं तिमिरप्रणुत् ॥ ८८ ॥

सैंजनेकी जड और वचको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदके साथ खरल करे । इस रगडेको नेत्रोंमें भरनेसे अथवा गीली हल्दीको जलमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंके शूलरोगमें तत्काल आरोग्यलाभ होताहै । अथवा सफेद पुनर्नवा (विषखपरे) की जडको जलमें पीसकर आँजे तो नेत्रशूल दूर होताहै और श्वेत पुनर्नवाकी जडको घीमें घिसकर आँज-नेसे नेत्रोंमेंसे जलका बहना शीघ्र दूर होताहै । एवं श्वेत पुनर्न-वाकी जड और हल्दीको एकत्र जलमें बारीक पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे मुँहके ऊपर बाल (मूँछे, दाढी) कभी नहीं जमते । मनुष्यकी खोपडीकी हड्डीको स्त्रीके दूधमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंकी पीडा और अन्धकारसा छाया रहना शीघ्र दूर होताहै । और नकुलकन्दको दूधमें पीसकर आँजनेसे आँखोंका फूला दूर होताहै । शुद्ध मीठा तेलिया और मैनसिल दोनोंको समान भाग लेकर बिजौरे नींबूके रसमें अंजनके समान खूब बारीक खरल करे । इस अंजनको रात्रिमें नेत्रोंमें आँजनेसे मोतियाबिन्द और रतौंधा दूर होताहै । काले बकरेके

मांस (खाल) के भीतर पीपल और मिरचोंका चूर्ण खूब अच्छी तरह भरकर चारों तरफसे उसे सीं देवे । फिर उस थैलीको खौलतेहुए गरम घीमें डालकर एक घडी तक पकावे । इसके बाद उसको निकालकर शीतल होनेपर खूब बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस अंजनको शहद, घृत और दूधके साथ पीसकर नेत्रोंमें आँजे । यह अंजन रतौंधेको दूर-करनेके लिय विशेष उपयोगी है । बारबार नेत्रोंमें शीतल जलके छींटे मारनेसे दुखती आँखोंमें विशेष लाभ होताहै और फिर कभी आँखें नहीं दुखती । बकरीके पित्तेके साथ त्रिकु-टेको पीसकर गोला बनालेवे और उसको धुयेंमें रखकर सुखावे । खूब सूखजानेपर उसको करंजके पत्तोंके रसमें घोट-कर अंजन तैयार करलेवे । यह अंजन रतौंधेको दूर करनेकी उत्तम औषध है । खटमलके रक्तमें मिरचोंकी भावना देकर नेत्रोंमें आँजनेसेभी रतौंधा दूर होजाता है । शुद्ध गन्धक १ भाग, पारा २ भाग और सफेद सुरमा ८ भाग तीनोंको कैथके रसमें खरल करके प्रतिदिन नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंका तिमिर-(अन्धेरा) आदि सब रोग नाश होते हैं ॥ ८०-८८ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कर्णरोग ।

शूला दोषचयाभिभूतिजनिताः पञ्च प्रतीनाहरुक्
कण्डूविद्रधिपालिशोथपरिपोटोत्पातलेह्यर्बुदाः ।
शोफार्शःकृमिकूचिकर्णकविदोर्युग्मन्थसंतंत्रिका-
नादः पिप्पलिदुःखबृद्धिबधिरास्ते पूतिकर्णेन च ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त और सन्निपात इन दोष भेदोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे कर्णशूल (कानका) रोग पाँच प्रकारका होता है। प्रतीनाह, कर्णकण्डू, कर्णविद्रधि, कर्णपालि, कर्णशोफ, कर्णपोट, कर्णोत्पात, कर्णलेही, कर्णका अर्बुद, कर्णशोथ, कर्णार्श, कर्णकृमि, कूचिकर्णक, दोर्युग्म, कर्णमन्थ, तन्त्रिकानाद, पिप्पलीदुःख, कर्णवृद्धि बधिरता और पूतिकर्ण ये सब कानके मुख्य २ रोगोंके नाम हैं ॥ १ ॥

कर्णरोगहर रस ।

वज्रवैक्रांतविमलतुत्थनागरसान्वितैः ।
तुल्यपारदगंधाश्ममाक्षिकैः कज्जलीकृतः ॥ २ ॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणामरण्या मूलकस्य च ।
पृथग्रसैः कदल्याश्च सप्तधा परिभावयेत् ॥ ३ ॥
एवं सुपिष्टा वल्लेन सेवितः कर्णरोगनुत् ॥ ४ ॥

हीरेकी भस्म, वैक्रान्तमणिका भस्म, रूपामाखीकी भस्म, शुद्ध नीलाथोथा, सीसेकी भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, पारा, गन्धक, और सोनामाखीकी भस्म, इन सब रसोंको समान भाग लेकर यथाविधि मिश्रित करके कज्जली करलेवे । फिर उस कज्जलीको लहसुन, अदरख, सैंजनेकी जड और अरणीकी जड इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार भावना देवे, फिर केलेके रसकी सात बार भावना देकर सुखालेवे और बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखलेवे । इस रसको एक २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे सब प्रकारके कर्णरोग नाश होते हैं ॥ २–४ ॥

कर्णामयघ्न तैल ।

कुष्ठशुण्ठीवचाहिंगुशताह्वाशिग्रुसैंधवैः ।
बस्तमूत्रैः शृतं तैलं सर्वकर्णामयापहम् ॥ ५ ॥

कूठ, सोंठ, वच, हींग, सोया, सैंजनेके बीज, सधानमक, इन सबको समान भाग, सबके बराबर तेल और समस्त औषधियों तथा तेल आदिसे चौगुना बकरेका मूत्र लेवे । प्रथम सम्पूर्ण औषधियोंको मूत्रमें पीसकर कल्क करलेवे, फिर उसको तेलमें मिलाकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे । यह तेलकानमें डालना, मर्दन करना, पान करना आदि उपचारोंके द्वारा प्रयोग करनेसे सब प्रकारके कानके रोगोंको दूर करता है ॥ ५ ॥

क्रमिकर्णारि तैल ।

अब्धिफेनो वचा शुण्ठी सैंधवं च समं समम् ।
समतैलार्द्रकद्रावैः पक्के तस्मिन्पलद्वये ॥ ६ ॥
पूर्वोक्तचूर्णं कर्षांशं क्षिप्त्वोत्तार्य सुशीतलम् ।
तत्तैलं प्रक्षिपेत्कर्णे ध्रुवं गोमाक्षिका व्रजेत् ॥ ७ ॥

समुद्रफेन, वच, सोंठ, सैंधानमक इन चारोंको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको एक तोला लेकर ८ तोले अदरखके रसमें पीसकर ८ तोले तेलमें मिलाकर तेलको उत्तम प्रकारसे पकावे । पककर तेलमात्र शेष रहजानेपर उसको उतारकर शीतल होजानेपर वस्त्रमें छानलेवे । इस तेलकी दो चार बूँदें कानमें डालनेसे कानमें गिरा हुआ मक्खी आदि जन्तु शीघ्र निकल जाता है और कानकी पीडा शान्त होजाती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

सामान्य उपाय ।

कर्णशूलहरः क्षेप्यो लवणार्द्रकयो रसः ।
तिलपर्णीद्रवं तैलं कोष्णं कर्णे प्रपूरयेत् ॥
अर्कपत्रद्रवं तैलं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ॥ ८ ॥

लशुनस्य रसं कोष्णं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ।
मेघनादद्रवैः पूर्णे कर्णे पूयः प्रशाम्यति ॥
मुशलीबाकुचीचूर्णं खादेद्बाधिर्यशांतये ॥ ९ ॥
कतकं शिग्रुलवणमारनालेन पेषयेत् ।
कर्णमूलस्थितं स्फोटं सोष्णलेपाद्विनाशयेत् ॥ १० ॥
पुत्रजीवफलस्यैव मज्जा जलनिपेषिता ।
लेपात्कर्णे गले कक्षे स्फोटं हंत्युरुमूलकम् ॥ ११ ॥
तगरब्रह्मवृक्षस्य दंतैर्मूलानि चर्वयेत् ।
रसेन श्रवणं तस्य पूरयेदातियत्नतः ॥
गोमक्षिका विनिर्याति पूरणस्य विधानतः ॥ १२ ॥
मुशलीकंदचूर्णं हि माहिषीनवनीततः ।
लोलयेद्रोधयेद्भाण्डे धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १३ ॥
सप्ताहादुद्धृतं लेह्यं कर्णपालीं विवर्धयेत् ।
चर्मचेटस्य रक्तेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥
वराहोत्थेन तैलेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥ १४ ॥

(१) समुद्रनमकको अदरखके रसमें पीसकर कुछेक गरम करके सुहाता २ कानमें डालनेसे कानका दर्द दूर होता है। (२) तिलोंकी खलके रसमें तेलको मिलाकर गरम करके सुहाता २ कानमें डाले, अथवा आकके पत्तोंके रसको तेलमें मिलाकर कुछ गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीडा नष्ट होती है। (३) लहसुनके मन्दोष्ण रसको कानमें डालनेसे कानका शूल दूर होता है। (४) चौलाईके रसको कानमें डालनेसे कानमेंसे पीबका निकलना बन्द

होता है । (५) मुसली और बावचीके चूर्णको समान भाग लेकर सेवन करनेसे बहरापन दूर होता है । (६) निर्मलीके बीज, सैंजनेके बीज और समुद्र नमक तीनोंको काँजीमें पीस-कर गरम करके सुहाता २ कनपटीपर लेप करनेसे कनप-टीकी सूजन व फोडा शमन होताहै । (७) जियापोताके फलकी गिरीको पानीमें पीसकर लेप करनेसे कान, गला और कोखमें तथा जंघाओंकी मूलमें उत्पन्न हुआ फोडा नष्ट होता है । (८) तगर और ढाककी शाखाओंको दाँतोंसे चबाचबाकर उनका रस निकाले । उस रसको बडी सावधा-नीसे कानमें डाले इस रसके डालनेसे कानमें गिरी हुई मक्खी आदि शीघ्र निकल जाती है । (९) मुसलीको खूब बारीक पीस-कर कपडछान करके भैंसके नैनी घीमें मिलालेवे । फिर चूनेके सम्पुटमें उक्त घृतका लेप करके उसको धानोंके ढेरमें गाड-देवे, सात दिनके बाद उस सम्पुटको निकालकर उस औष-धको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे सेवन करे तो कानकी पाली बढजाती है । (१०) चिमगादडके रुधिरका लेप करनेसे कानकी वृद्धि होती है । (११) सूकरकी चर्बीका लेप करने-सेभी कानकी वृद्धि होती है ॥ ८–१४ ॥

नासागतरोग ।

षट् पीनसाश्च मलसंचयरक्तदुष्टैः पूयास्रदीप्तपिटिका-र्बुदपूतिनासाः ॥ आस्रावनाहपरिशोषभृशक्षवार्शः-पाकैरपीनसयुतैश्च गदा नासि स्युः ॥ १५ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों भिन्न भिन्न दोषोंसे और त्रिदो-षसे एवं मलके संचित होनेसे और रुधिरके दूषित होनेसे छः प्रकारका पीनस रोग होता है । पीनसरोगमें निम्नलि-खित लक्षण होते हैं । नाकमेंसे पीब अथवा रुधिरका

निकलना, दाह होना नाकमें फुन्सियोंका निकलना, अर्बुदका होना, दुर्गन्ध आना, पानीका झडना, नाकका सूजना, नाकके शोषित होनेसे अत्यन्त सूखजाना, छींकें अधिक आना, नाकमें अर्श होना और पीनसके विनाभी नाकका पकना इत्यादि रोग नासिकामें होते हैं ॥ १५ ॥

मणिपर्पटी रस ।

वज्रं मरकतं पुष्पमिन्द्रनीलं सुचूर्णितम् ।
रसहिंगुलगंधं च कज्जलीं कारयेद्भिषक् ॥
द्रावयेत्तां लोहपात्रे पर्पट्याकारतां नयेत् ॥ १६ ॥
निर्गुंडीतुलसीशिग्रुधत्तूररविवह्निजैः ॥ १७ ॥
रसैर्व्योषवरारंभासुरसैरपि भावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा परिभावयेत् ॥ १८ ॥
एवं सिद्धो रसो नाम्ना विख्याता मणिपर्पटी ।
सेविता गुंजया तुल्या निहन्यान्नासिकागदान् ॥ १९ ॥
पथ्योपचारादिवशात्सर्वव्याधीन्विशेषतः ॥ २० ॥

हीरेका चूर्ण, मरकतमणि (पन्ना,) पुखराज, नीलम इन सबका बारीक चूर्ण, पारा, सिंगरफ, और गन्धक सबको समानभाग लेकर प्रथम पारे, गन्धककी कज्जली करलेवे । फिर लोहेकी कडाइमें घी चुपडकर उसमें कज्जलीको डालकर मन्द मन्द अग्निसे पिघलावे । जब वह खूब पतली होजाय तब उसमें उक्त रत्नोंका चूर्ण मिलाकर उसको पूर्वोक्त विधिके अनुसार केलेके पत्तेपर ढालकर पर्पटी तैयार करलेवे । उस पर्पटीको पीसकर निर्गुण्डी, तुलसी, सैंजनेकी छाल, धतूरा, आक, चीता, त्रिकुटा, त्रिफला और केला इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे

एक २ वार भावना देकर फिर अदरखके रसमें सात बार भावना देवे और सुखाकर वारीक चूर्ण करलेवे । इसप्रकार यह मणि-पर्पटी नामक रस सिद्ध होताहै । इसको प्रतिदिन एक एक रत्ती परिमाण उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करे । यह रस-नासिकाके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै—और पथ्य आदि उपचारोंका विशेषरूपसे पालन करने और भिन्नभिन्न अनुपानोंके द्वारा प्रयोग करनेसे सब प्रकारकी व्याधियोंको दूर करता है ॥ १६–२० ॥

सामान्य उपाय ।

पूयास्रमतिदुर्गंधि नासायामतितापनुत् ।
कृतं नस्येन हन्यात्तच्छ्वेतजीरं सितायुतम् ॥ २१ ॥
घृताक्तं कुंकुमं घृष्टं नस्यं पीनसजिद्भवेत् ।
जलेन पेषयेद्धिंगुह्यञ्जनात्कामलां जयेत् ॥ २२ ॥
तद्वत्तंडुलतोयेन ह्याकुलीमूलमञ्जयेत् ।
कामलां हंति नो चित्रं नासारोगयुतोद्भवाम्॥ २३ ॥

नाकमेंसे पीब अथवा रुधिर निकलता हो, अत्यन्त दुर्गंध आती हो और अत्यन्त दाह होती हो तो सफेद जीरेको पानीमें पीसकर वस्त्रमें छान ले, फिर उस रसमें अथवा जीरेके काढेमें मिश्री मिलाकर उसकी नस्यदेवे । अथवा उस रसकी दो, चार बूंदे नाकमें डाले । अथवा शंख, जीरा और मिश्री इन तीनोंके समान भाग चूर्णको एकत्र मिलाकर उसकी नस्यदेवे । इन प्रयोगोंके करनेसे उपर्युक्त सब विकार नष्ट होते हैं । केसरको घृतमें पीसकर कुछ गरम करके उसकी नस्य देनेसे पीनसरोग दूर होता है । हींगको जलमें बारीक पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे नासारोगके कारण उत्पन्न हुआ कामला रोग नष्ट होता है, इसी प्रकार यदि चावलोंके धोवनके पानीमें नकुलकन्दकी जडको पीसकर आँखोंमें

आँजे तो कामलारोग अवश्य नष्ट होता है और नासिकाकेभी समस्त रोग आरोग्य हो जाते हैं ॥ २१–२२ ॥

मुखरोग ।

एको गण्डभवो गदः षडुदिता जिह्वोद्भवास्तालुजा-
श्चाष्टावष्ट च मस्तजाश्च दशनोद्भूता दशौष्ठोद्भवाः ।
संत्येकादश च त्रयोदश गदा दंतस्य मूलोद्भवाः
कण्ठेऽष्टादश चोदिता वदनजा पंचाधिका सप्ततिः२४

गालोंमें होनेवाला एक १ रोग, जिह्वाके ६ रोग, तालुके ८, मस्तकके ८, दांतोंके १०, ओठोंके ११, दांतोंकी जडों अर्थात् मसूडोंके १३ और कण्ठके १८; इसप्रकार सब मिलाकर ७५ मुख-रोग कहे गए हैं ॥ २४ ॥

मुखरोगारि रस ।

ताप्याभ्रतुत्थकुनटीराजावर्तशिलाजतु ।
गुग्गुलुर्हरवीर्यं च मुखरोगनिबर्हणम् ॥ २५ ॥

सोनामाखीकी भस्म, अभ्रकभस्म, नीलेथोथेकी भस्म, मैन-सिलकी भस्म, राजावर्त्तकी भस्म, शुद्ध शिलाजीत, गूगल और पारा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक खरल करलेवे । यह रस उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे मुखके समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

रसवटी ।

रूप्यादिचूर्णमादाय पिष्टीं साधय यत्नतः ।
निंबुमध्ये विनिक्षिप्य दिनानां पंच धारय ॥ २६ ॥
तालचूर्णं समादाय भानुदुग्धेन भावयेत् ।
तन्मध्ये गुलिकां क्षिप्त्वा पचस्व तिलतैलके ॥ २७ ॥

दोलायंत्रे निबध्यैनां यत्नेन दिवसत्रयम् ।
मलापकर्षणं कृत्वा मधुभाण्डे निधापयेत् ॥
मुखे धारय दंतानां दार्ढ्याय गुटिकामिमाम् ॥२८॥

चांदी आदि किसी धातुका चूर्ण लेकर उसमें समान भाग पारा मिलाकर खूब बारीक पिट्ठी पीसे । फिर उस पिट्ठीको पके हुए नींबूके भीतर भरकर और अच्छे प्रकारसे बन्द करके पांच दिन तक रक्खा रहनेदेवे । छठे दिन नींबूमेंसे पिट्ठीको निकालकर खूब बारीक खरल करके गोलियां बनालेवे । इसके पश्चात् हरतालके चूर्णको आकके दूधमें घोटकर कल्क करे, उसमें उक्त गोलियोंको अच्छे प्रकारसे लपेटकर तिलके तेलमें पकावे । जब गोलियां पकते २ लाल हो जांय तब उनको निकालकर दोलायन्त्रमें यत्नपूर्वक अधर लटकाकर कॉंजी आदि पदार्थोंके द्वारा तीन दिन तक स्वेद देवे । इस प्रकार दोषोंको दूर करके उन गोलियोंको शहदसे भरे हुए बर्त्तनमें डालकर रखदेवे । आवश्यकता होनेपर उसमेंसे एक गोली निकालकर मुँहमें दाढके नीचे दाबकर रक्खे । ये गोलियां दांतोंको दृढ बनानेके लिये परम उपयोगी हैं ॥ २६-२८ ॥

महासरस्वती चूर्ण ।

अश्वगंधाऽजमोदा च वचा कुष्टं कटुत्रयम् ।
शतपुष्पं ब्रह्मबीजं सैंधवं च समं समम् ॥ २९ ॥
एतदर्धं वचार्धं च चूर्णितं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेत्कर्षमात्रं तु जीर्णांते क्षीरभोजनः ॥ ३० ॥
सहस्रग्रंथधारी स्यान्मूको वा वाक्पतिर्भवेत् ।
महासरस्वतीचूर्णं बुद्धिजाड्ये परं हितम् ॥ ३१ ॥

असगन्ध, अजमोद, वच, कूठ, त्रिकूटा, सौंफ, ब्राह्मीके बीज और सैंधानमक इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे फिर प्रतिदिन प्रातःऔर सायंकालमें इस चूर्णको और वचके चूर्णको छः २ मासे लेकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे और औषधिके जीर्ण होजानेपर केवल दुग्धपान करे। इस चूर्णके सेवनसे गूँगा मनुष्यभी हजारों ग्रन्थोंको स्मरण रखने-वाला, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान होजाता है। यह महासरस्वती चूर्ण मन्द बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये अत्यन्त हितकारी है २९-३१

मुखरोग और गण्डमाला आदि गलेके रोगोंके सामान्य उपाय ।

चूर्णं त्वामलकस्यैव गवां क्षीरेण पाययेत् ॥
गलकीलकनुत्यर्थं विपलिंदुं सनागरम् ॥ ३२ ॥
हरीतक्या च संयुक्तं मुखे धारय संततम् ।
बहुशो भानुदुग्धेन सैंधवेन प्रलेपनम् ॥
भल्लातकरसं दत्त्वा चूर्णं चोपरि बंधयेत् ॥ ३३ ॥
यः प्रातरुद्वेजयति द्विजाञ्जयाकाष्ठेन वज्रद्विज
एष जायते। तेनैव तैलोपहितेन मार्जना-
ज्जिह्वा जहात्युद्धतपूतिगंधताम् ॥ ३४ ॥
मुखपाकापनुत्यर्थं मधुना पर्पटीरसम् ।
खादयेत्कृतगण्डूषो वटिकां चानुधारयेत् ॥ ३५ ॥
महाराष्ट्रिकचूर्णं च चतुष्कृत्वो विभावयेत् ।
निंबार्द्रकरसाभ्यां च गुटिका मुखशोषनुत् ॥ ३६ ॥
श्वेतं पुनर्नवामूलं सर्पाक्षीमूलसंयुतम् ।
उद्वर्तनं हरेत्स्त्रीणां मुखच्छायांसुदुःसहाम् ॥ ३७ ॥
महिषीक्षीरसंपिष्टं रजनीरक्तचंदनम् ।

कृतलेपं निहंत्याशु श्यामिकां गंडयोः स्थिताम् ।३८।
मुखच्छायाहरं वंगभस्म स्यान्महिषीजलैः ॥
गोमयस्य रसं सर्पिर्मातुलुंगं मनः शिला ॥ ३९ ॥
मुखवर्णकरं श्रेष्ठं तिलकानां च नाशनम् ॥
उभे हरिद्रे मंजिष्ठा घृतं गौराश्च सर्षपाः ॥ ४० ॥
पेष्या गैरिकसंयुक्ता ह्यजाक्षीरेण पाचिताः ।
एतेनैव भवेद्वक्त्रमुदयादित्यसंनिभम् ॥ ४१ ॥

आमलोंके चूर्णको गायके दूधमें पीसकर सेवन करानेसे गलेमें उत्पन्न हुए मांसके अंकुर (अर्थात् मुँह आने पर उत्पन्न हुए छाले) और गलेका अर्श रोग दूर होता है। एवं कुचला, सोंठ और हरड तीनोंको समभाग लेकर पानीमें पीसकर गोलियाँ बना लेवे। इनमेंसे एक २ गोली हरसमय मुखमें धारण करनेसे गलेके अंकुर नष्ट होते हैं। सैंधे नमकको आकके पत्तोंके रसमें सात ७ बार भावना देवे, फिर आकके दूधमें मिलाकर उसका मुँहके ऊपर लेपकरे तो गलेके अंकुर दूर होते हैं। अथवा भिलावोंके रसका गलेके बाहर लेप करके ऊपरसे चूना बुरक कर पट्टी बाँध देवे । इससे गलेके भीतर और बाहर दोनों प्रकारके मांसांकुरके (छाले) शान्त होजाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल अरणीकी हरी लकडीसे दन्तधावन करता है उसके दाँत वज्रके समान मजबूत होजाते हैं। और अरणीकी लकडीकी दतौन करके उसमेंसे निकले हुए तैलसे जीभको खूब रगडनेसे जीभकी भयंकर दुर्गन्ध दूर होती है। मुँहके पकजाने (अर्थात् मुँहमें छाले पडजाने) पर उसको शान्त करनेके लिये पर्पटी रसको शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा निम्नलिखित औषधियोंके जलके कुल्ले करे या गोली मुखमें धारण करे। जलपीपलके चूर्णको चौगुने नींबूके रसमें और अदर-

रखके रसमें एक २ वार भावना देकर गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको मुँहमें डालकर रस चूसनेसे मुखशोषरोग नष्ट होता है। सफेद पुनर्नवाकी जड और सरहटीकी जडको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उसका उबटन करनेसे स्त्रियोंके मुखकी झाईं (छीप) दूर होती है । हल्दी और लाल चन्दनको भैंसके दूधमें पीसकर लेप करनेसे गालोंकी कालिमा शीघ्र दूर होती है । वंगभस्मको भैंसके मूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे मुँहकी झाईं, छीप आदि दूर होती है । गोबरका रस, घी, विजौरे नींबूका रस और मैनसिलका चूर्ण सबको समभाग लेकर एकत्र मिश्रित करके मालिश करनेसे मुखका वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल होता है और काले २ दाग तिल आदि सब नष्ट होजाते हैं । हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, घृत, सफेद सरसों और गेरू सबको बकरीके दूधमें पीसकर गरम करके मुँहपर मालिश करनेसे मुख सूर्योदयके समान कान्तिमान होता है ॥ ३३-४१ ॥

गोमूत्रैः क्वाथयेत्कुष्ठं बालकं सहरीतकम् ।
पिष्ट्वा सर्वं वटीं कुर्यान्मुखदौर्गंध्यनाशिनीम् ॥ ४२ ॥
गृहधूमारनालेन क्वाथं समधुसैंधवम् ।
गोमयैःक्वाथिता पथ्या मिशी कृष्णा कणान्विता॥४३॥
वदनस्य दुरामोदं निहंति परिशीलिता ।
लाजा जातीफलं पूगं तुल्यं भक्ष्यं पिबेदनु ॥ ४४ ॥
शीततोयं पलार्धं च आस्यवैरस्यशांतये ।
निर्गुंडीमुत्पलं कंदं चर्वयेदुपजिह्वके ॥ ४५ ॥
ताम्रपात्रे क्षणं पाच्यमभयाचूर्णकं मधु ।
करेण गुटिका कार्या दंतधार्या कृमीन् हरेत् ॥४६॥
कासीसं हिंगु सौराष्ट्री देवदारु समं जलैः ।

गुटिकां धारयेद्दंतैः कृमिशूलहरं परम् ॥ ४७ ॥
विशालायाः फलं चूर्ण्यं तप्तलोहोपरि क्षिपेत् ।
तद्धूमाद्धृष्टदंतानां कीटपातो भवत्यलम् ॥ ४८ ॥
जातीकोरण्टपत्रं च चर्वयेत्प्रातरुत्थितः ।
स्थिराः स्युश्चलिता दंतास्तत्काष्ठैर्दंतधावनात् ।४९।
मूलीबीजं मुखे धार्यं दंतदार्ढ्यकरं परम् ।
किंचिल्लवणसंयुक्तमारनालं विपाचयेत् ॥ ५० ॥
तेन गंडूषमात्रेण मुखवैरस्यनाशनम् ।
तांबूलचूर्णदिग्धस्तु गंडूषस्तिलतैलतः ॥ ५१ ॥
कांजिकैर्लवणाक्तैर्वा गण्डूषः सुखदायकः ।
पारदं विमलं ताप्यं त्रिकटुं ताम्रसैंधवम् ॥ ५२ ॥
तुल्यं गवां जलैः पिष्टं सुखोष्णं लेपयेन्मुहुः ।
त्र्यहेण कण्ठशालूकं गलग्रंथिं च नाशयेत् ॥ ५३ ॥

कूठ और सुगन्धवाला दोनोंका गोमूत्रमें काढ़ा बनाकर उसमें हरडोंका चूर्ण डालकर पकावे । जब वह पककर गोली बनने योग्य गाढा होजाय तब नीचे उतारकर एक २ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवे । ये गोलियाँ मुखमें रखनेसे मुखकी दुर्गन्धको दूर करती हैं । घरका धुआँसा और काँजीका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें शहद और सैंधानमक डालकर उसके कुल्ले करनेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है । गायके गोबरके रसमें हरडोंको पकावे, जब वे पक कर खूब सीजजायँ तब नीचे उतार कर उनकी गुठली निकाल डाले । फिर उनमें सोंफ, पीपल और बाबची प्रत्येकका चूर्ण हरडोंके बराबर २ मिलाकर बारीक खरल करके गोलियाँ बनालेवे । ये गोलियाँ मुँहमें रखतेही मुखकी दुर्गन्धको नष्ट करती हैं । खीलें, जायफल

और सुपारी तीनोंको समानभाग लेकर चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन दो दो तोले भक्षण कर ऊपरसे शीतल जलका अनुपान करै । यह चूर्ण मुखकी विरसताको शान्त करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है । निर्गुण्डीकी जड और कमलकन्द दोनोंको खूब चबा चबा कर उनके रसको पीनेसे उपजिह्वा (काग) की पीडा शान्त होती है । हरडके चूर्ण और शहदको तॉबेके वर्त्तनमें थोडी देर तक पकाकर गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियोंको डाढोंके बीचमें दाबकर रखनेसे दॉतोंके कीडे नष्ट होजाते हैं । कसीस, हींगु, फट-करी और देवदारु सबको समानभाग लेकर जलमें पीसकर गोलियाँ बनालेवे । इनमेंसे एक २ गोली दाँतोंके बीचमें धारण करनेसे कृमिजनित शूल शीघ्र दूर होता है । इन्द्रायनके सूखे फलको पीसकर लोहेके खूब तपे हुए तवेके ऊपर डालकर कीडा लगे हुए दॉतों व डाढोंमें—उसके धुएँका स्वेद देवे तो दॉतोंमेंसे कीडा अवश्य निकलपडता है । चमेलीके अथवा पीली कटसरैयाके पत्तोंको प्रति दिन प्रातःकालमें चाबनेसे अथवा इन दोनोंमेंसे किसी एककी लकडीकी दातौन करनेसे हिलते हुए दाँत जमकर मजबूत होजाते हैं । दाँतोंको अत्यन्त दृढ करना हो तो मूलीके बीजोंको मुखमें धारण करना चाहिये । थोडासा समुद्रनमक डालकर काँजीको कुछ देरतक पकावे, फिर वस्त्रमें छानकर उसके कुल्ले करे तो मुखकी विरसता दूर होती है । तिलके तेलमें पानोंका चूर्ण मिलाकर उसके कुल्ले करनेसे, अथवा कॉजीमें सैंधानमक मिलाकर कुल्ले करनेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होकर मुख शुद्ध होजाता है । पारा, रूपामाखी, सोनामाखी, त्रिकुटा, तॉबा और सैंधानमक इन सबको समानभाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर अग्निपर कुछ देर पकाकर मर-हमसा बनालेवे । इसका बारंबार सुहाता २ लेप करनेसे कण्ठ-शालूक रोग और गलेकी ग्रन्थियॉ तीन दिनमें ही शमन होजाती हैं ॥ ४२–५३ ॥

लेपयेद्भानुदुग्धेन सैंधवं गलकीलनुत्।
महिषीमूत्रसंपिष्टं लोहकिट्टं क्षणं पचेत् ॥ ५४ ॥
तेन लेपो निहंत्याशु गलरोगं सुदुःसहम्।
जलेन लेपयेत्तुल्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् ॥ ५५ ॥
सप्ताहं लेपयेत्तेन ह्यपच्यो गंडमालिकाः।
स्फुटंति नात्र संदेहःस्फोटलेपमिमं शृणु ॥ ५६ ॥
निजद्रवेण संपिष्टं मुण्डीमूलं प्रलेपनात् ॥ ५७ ॥
गंडमालाः क्षयं याति तद्द्रवं च पिबेज्जलम्।
ब्रह्मदंडीयमूलं तु पिष्टं तंडुलवारिणा ॥ ५८ ॥
स्फुटितां हंति लेपेन गंडमालां न संशयः।
गंधकं सूतकं तुल्यमर्कक्षीरेण सैंधवम् ॥ ५९ ॥
पिष्ट्वा च कांचनीमूलं लेपोऽयं गंडमालिकाम् ॥
अदृश्यां स्फोटयत्याशु मुण्डीद्रावेण पेषितम् ॥ ६० ॥
तन्मूलं लेपयेत्तत्र त्रिःसप्ताहं प्रशांतये।
पिष्ट्वा जेपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटी ॥
छायाशुष्का प्रलेपेन गंडमालां विनाशयेत् ॥ ६१ ॥
हेमतारयुतं सूतं तालकं क्षीरमर्दितम्।
क्षौद्रे तिलानां तैलेन प्रास्विन्नं दंतदार्ढ्यकृत् ॥
दंतदार्ढ्यप्रसिद्ध्यर्थं गुटिकां देहि सर्वदा ॥
रसस्य धातुबद्धस्य चालनं वर्षणं तथा ॥ ६२ ॥

आकके दूधमें सैंधेनमकको पीसकर लेप करनेसे गलेमें उत्पन्न हुए कीलके समान नोकीले छाले नष्ट होते हैं। लोहेके मैलको

भैंसके मूत्रमें पीसकर कुछेदर अग्निपर गरम करके लेप करनेसे गलेके सम्पूर्ण रोग शीघ्र नाश होते हैं । कचनारकी छाल, चीता और वत्सनाभविष तीनोंको समानभाग लेकर जलमें खरल करके लेप करे । इस औषधिका ७ दिनतक प्रलेप करनेसे अपची और गण्डमाला अवश्य फूटजाती हैं । उनके फूटजानेपर निम्नलिखित औषधियोंका लेपकरे । गोरखमुंडीकी जडको गोरखमुंडीकेही रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा गोरखमुंडीकी जडके क्वाथको पान करनेसे गण्डमाला रोग शीघ्र दूर होता है । ब्रह्मदण्डीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर फूटी हुई गण्डमालाके ऊपर लेप करनेसे निस्सन्देह आरोग्य लाभ होता है । गन्धक, पारा, सैंधानमक और कचनारकी जड सबको समभाग लेकर आकके दूधमें खरल करके लेप करे । यह लेप गलेकेभीतर उत्पन्न हुई अदृश्य गण्डमालाको शीघ्र फोड देताहै । फिर उसको शमन करनेके लिये उसपर गोरख मुंडीकी जडको मूंडीकेही रसमें पीसकर लेप करे । इस प्रकार २१ दिन बराबर प्रलेप करनेसे गण्डमाला आरोग्य होजाती है । अथवा जमालगोटेके पत्तोंको उनकेही स्वरसमें घोटकर गोलियां बनाकर छायामें सुखालेवे । ये गोलियां जलमें घिसकर लेप करनेसे गण्ड-मालाको विनाश करती हैं । सोनेके और चांदीके बर्फ, पारा और हरताल चारोंको दूधमें खरल करके गोलियां बनालेवे । फिर उन गोलियोंको तिलके तेलसे भरे हुए दोलायन्त्रमें अधर लटकाकर स्वेद देवे । फिर शहदमें डालकर रखदेवे । ये गोलियाँ मुखमें रख-नेसे दाँतोंको अत्यन्त मजबूत करदेती हैं । दाँतोंको दृढ करनेके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध उक्त गोलीको अथवा किसी धातुबद्ध पारेकी गोलीको बारंबार मुँहमें इधर उधर चलावे अथवा उस गोलीको दाँतोंसे घिसे तो दाँत खूब मजबूत होजाते हैं ॥ ५४-६२ ॥

मस्तकरोग ।

शिरस्तोदाश्च षट् प्रोक्ता दोषैः सर्वास्रजंतुभिः ।
कम्पश्चार्धावभेदश्च सूर्यावर्तोऽपि शंखकः ॥ ६३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तविकारजन्य और कृमि दोषजन्य इस तरह छःप्रकारकी शिर पीडा होती हैं। इसके अतिरिक्त शिर कम्प अर्धावभेदक, सूर्यावर्त और शंखक ये चार रोग और होते हैं। इस प्रकार सबको मिलाकर मस्तकके मुख्य १० रोग होते हैं ॥ ६३ ॥

शिरोरोगारि रस।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं कांतं ताम्रं मृतं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं पिण्डं तन्माषमात्रकम् ॥
सप्ताहात्सूर्यवर्तादीन् शिरोरोगान्विनाशयेत् ॥ ६४॥

पारेकी भस्म, अभ्रक भस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोहभस्म, और ताम्रभस्म सबको समान भाग लेकर थूहरके दूधमें एक दिनतक खरल करे और एक २ मासेकी गोलियाँ बनाकर छायामें सुखालेवे। फिर उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करे। यह रस १ सप्ताहतक सेवन करनेसे सूर्यवर्त्तादि सम्पूर्ण शिरोरोगोंको नष्ट करता है ॥ ६४ ॥

शिरोरोगके सामान्य उपाय।

गिरिकर्णीफलं मूलं सदलं नस्यमाचरेत्।
मूलं वा बंधयेत्कर्णे निहंत्यर्धाशिरोव्यथाम् ॥ ६५ ॥
गुडं करञ्जबीजं च नस्यमुष्णजलैर्हितम्।
मरिचं भृंगजैर्द्राविर्लेपोऽयं हंति तां रुजम् ॥ ६६ ॥
कुंकुमं मधुयष्टी च सिताघृतगुणोत्तरम्।
सप्ताहेन कृते नस्ये दाहं हंति शिरोरुजम् ॥ ६७ ॥
शिग्रुपत्ररसैर्मर्द्यं मरिचं चार्धशूलनुत्।
कुंकुमं घृतसंयुक्तं नस्याद्धंति शिरोरुजम् ॥ ६८ ॥

पारदं मर्दयेन्निष्कं कृष्णधत्तूरजद्रवैः ॥ ६९ ॥
नागवल्लीदलैर्वाऽथ वस्त्रखण्डं प्रलेपयेत् ।
तद्वस्त्रं मस्तके वेष्ट्यं धार्यं यामत्रयं बुधैः ॥ ७० ॥
यूकाः पतंति निःशेषाः सलिक्षा नात्र संशयः॥७१॥
कण्टकारीफलरसैस्तैलं तुल्यं विपाचयेत् ।
जपापुष्पद्रवैर्वाऽथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ ७२ ॥
द्विनिशा नवनीतेन लेपाद्वा खण्डकेशनुत् ॥ ७३ ॥
जातीपुष्पं दलं मूलं कृष्णगोमूत्रपेशितम् ।
लेपोऽयं सप्तरात्रेण दृढकेशकरः परम् ॥ ७४ ॥
शृंगाटत्रिफलाभृंगीनीलोत्पलमयोरजः ।
सूक्ष्मचूर्णं समं कृत्वा पचेत्तैले चतुर्गुणे ॥
तल्लेपेन दृढाः केशाः कुटिलाः सरला अपि ॥ ७५ ॥
कीटभक्षितकेशांतःस्थानं स्वर्णेन वर्षयेत् ।
यावत्सुतप्ततां याति ततो लेपमिमं कुरु ॥ ७६ ॥
भल्लातकं च बृहती गुंजामूलं फलं तथा ।
मधुना सह लेपेन चाम्परोगचयप्रणुत् ॥ ७७ ॥
गुंजामूलं फलं चूर्णं कण्टकार्या फलद्रवैः ।
तेन लेपेन हंत्याशु चांपरोगं सुदुःसहम् ॥ ७८ ॥
अभ्रजीर्णरसस्तीक्ष्णं स्नुहीक्षीरं सुरायसम् ।
शुल्बं च सूर्यावर्तादीञ्छिरोरोगान्विनाशयेत् ॥
कटुतैलकृतं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ ७९ ॥
स्नुह्यर्कक्षीरभृंगाम्बुगोमूत्रकालिनीविषैः ।

गुंजाविषालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥
खलतिं शमत्यम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ॥ ८० ॥

(१) सफेद कोयल लताके फल, मूल, पत्र आदि पंचांगको पानीमें पीसकर उसका रस निचोड लेवे । उस रसका नस्य देनेसे अथवा कोयलकी जडको कानमें बाँधनेसे आधाशीशीका दर्द और अन्यान्य सिरके दर्द दूर होते हैं (२) गुड और करंजके बीजोंको एकत्र पीसकर सुहाते २ जलमें घोलकर नस्य लेना अथवा मिरचों-के चूर्णको भँगरेके रसमें पीसकर सिरपर लेप करना आधा शीशी-की पीडाको शान्त करनेके लिये उपयोगी है । (३) केसर १ भाग, मुलैठी २ भाग, मिश्री ३ भाग और घी ४ भाग लेकर सब-को कूटपीसकर एकत्र मिश्रित करके कुछेक गरमकर नस्य देवे, इसप्रकार सात दिनतक नस्य देनेसे सिरकी दाह और पीडा शान्त होती है । (४) सैंजनेके पत्तोंके रसमें मिरचोंको पीसकर सुखा-लेवे । उस चूर्णका नस्य देनेसे आधाशीशीका दर्द दूर होता है । एवं केसरको घृतमें पीसकर गरम करके नस्य देनेसेभी आधा शीशीकी पीडा शमन होती है । (५) चार मासे पारेको काले धतूरेके अथवा नागरपानके रसमें खरल करके उसका एक सफेद कपडेपर लेप करके सिरपर बाँधे । इसप्रकार उस वस्त्रको तीन प्रहर तक बाँधे रक्खे । इससे सिरकी समस्त जुयें और लीखें निकल पडती हैं । (६) कटेरीके फलोंके रसको और तिलके तेलको समानभाग लेकर पकावे । उस तेलको सिरपर मलनेसे जुयें और लीखें नष्ट हो जाती हैं । (७) गुडहलके फूलोंके रसकी सिरपर मालिश करनेसे पीडा सहित बालोंका उखडना बन्द होता है ।(८) हल्दी और दारुहल्दीको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके नैनी घीमें मिलाकर लेप करनेसे बालोंका उखड़ना दूर होता है । (९) चमेलीके फूल,पत्ते और जडको काली गायके मूत्रमें पीसकर सात-दिन तक लेप करनेसे बाल अत्यन्त दृढ होजाते हैं । (१०) सिं-

घाडे, त्रिफला, भारंगी, नीलकमल और लोहभस्म इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके उसको चौगुने तेलमें डालकर पकावे । उस तेलकी मालिश करनेसे सिरके बाल अत्यन्त मजबूत, घूँघरवाले, सीधे और सुन्दर होजाते हैं । (११) सिरमें जुओंके अथवा कीडोंके काटनेसे बालोंकी जडोंमें क्षतसे होगये हों और बाल न जमतेहों तो उस स्थानको सुवर्णसे खूब घिसे जब घिसते २ वह जगह खूब गरम होजाय तब नीचे लिखा हुआ यह लेप करे । भिलावे, बडी कटेरीकी जड, चोंटलीकी जड और फल इन सबको एकत्र चूर्ण करके कपडछान करलेवे । उस चूर्णको शहदमें मिलाकर सिर-पर मालिश करनेसे चाम्परोग नष्ट होताहै । (१२) अथवा चोंटली-की जड और चोंटलीके फलोंके चूर्णको कटेरीके फलोंके रसमें पीस-कर सिरपर लेप करे । इससे दुस्साध्य चाम्परोग (जुयें आदि कृमियोंके अत्यन्त काटनेसे या बालोंकी जडें खाजानेसे सिरमें जो जख्मसे हो जाते हैं उसको चाम्परोग कहते हैं ।) भी शीघ्र दूर होजाता है । (१३) अभ्रकके द्वारा जारण किया हुआ पारा, तीक्ष्णलोहकी भस्म और ताम्रभस्म तीनोंको एकत्र मिलाकर खरल करलेवे । फिर यह रस २ रत्ती लेकर १ तोला लोहासव और एक या दो बूँद थूहरके दूधमें मिलाकर सेवन करे । यह औषध–सूर्या-वर्तआदि समस्त सिरके रोगोंका विनाश करती है । (१४)सरसों-के तेलकी नस्य लेनेसे या उसकी दो चार बूँदें नाकमें टपकानेसे पलित (असमय बालोंका पकना) और अरुंषिका (सिरसे गाँठें सी पडजाना) रोग दूर होता है । (१५) थूहरका दूध, आकका दूध, भाँगरेका स्वरस, गोमूत्र, कलिहारीकी जड, मीठा तेलिया, चोंटली, इन्द्रायनकी जड, और मिरच इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको चौगुने सरसोंके तेल और जलमें मिलाकर यथाविधि तेलको पकावे । इस तेलको सिरपर मलनेसे अथवा विषसे अठगुनी काँजी लेकर दोनोंको एकत्र पीसक-

रके मालिशकरनेसे गंज रोग शीघ्र नष्ट होता है । और फिर बडे सुन्दर बाल जमते हैं ॥ ६६-८० ॥

व्रणरोग ।

दोषैर्द्वंद्वैः समस्तैश्च सास्रैस्तैरसृजाऽपि च ।
व्रणभेदा इति प्रोक्ता वैद्यशास्त्रविशारदैः ॥ ८१ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनों पृथक् पृथक् दोषोंसे अथवा वात-पित्त, कफपित्त,कफवात इन मिश्रित दोषोंसे अथवा त्रिदोषसे या वात, पित्तादि दोष सहित रक्तविकारसे अथवा केवल रक्तके विकृत होनेसे व्रण उत्पन्न होते हैं । वैद्यक शास्त्रके विद्वान् वैद्योंने इस प्रकार व्रणोंके भेद कहे हैं ॥ ८१ ॥

जात्यादि घृत ।

जातीपत्रं पटोलं च निंबोशीरकरंजकम् ।
मंजिष्ठा मधुयष्टी च तुत्थपत्रकसारिवाः ॥ ८२ ॥
प्रत्येकं चूर्णयेत्कर्षं पलं द्वादश गोघृतम् ।
घृताच्चतुर्गुणं तोयं पाच्यमाज्यावशेषितम् ॥ ८३ ॥
तेनाभ्यंगो मर्मजातान्व्रणान्नाडीव्रणानपि ।
स्रवंति सूक्ष्मरंध्राणि पूरयेन्नात्र संशयः ॥ ८४ ॥

चमेलीके पत्ते, पटोलपात, नीमके पत्ते, खस, करंजके पत्ते, मंजीठ, मुलैठी, तूतिया, तालीसपत्र और सारिवा ये प्रत्येक औष-धि एक २ तोला लेकर सबको एकत्र चूर्ण करलेवे। उस चूर्णको ४८ तोले गोघृत और घृतसे चौगुने (अर्थात् १९२ तोले) जलमें मिलाकर यथाविधि घृतको पकावे । जब पककर घृतमात्र शेष रह-जाय तब उसको उतारकर छानलेवे । यह घृत—शरीरपर मर्दन कर-नेसे मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए व्रणों, नाडीव्रणों (नासूर), और

स्रवते हुए सूक्ष्म छिद्रवाले व्रणोंको साफ करके अवश्य भर देता है ॥ ८२-८४ ॥

सामान्य उपाय ।

शुल्बचूर्णं रसे जीर्णं मदयंतीपुनर्नवे ।
मेषशृंगीरसश्चैतद्व्रणशोधनरोपणम् ॥ ८५ ॥
पटोलीनिंबपत्रं च मधुयष्टी निशा तिलाः ।
त्रिवृद्दंतीरसैः पिष्ट्वा पूरयेद्व्रणरोपणम् ॥
निंबपत्रं तिलं पिष्ट्वा पूरयेन्मधुसर्पिषा ॥ ८६ ॥
अपामार्गस्य पत्रोत्थरसेनाऽऽपूरयेद्व्रणम् ।
किंवा तद्बीजचूर्णेन व्रणं दुष्टं प्ररोहयेत् ॥ ८७ ॥
पुरातनगुडैस्तुल्यं टंकणं सूक्ष्मचूर्णितम् ।
तद्वर्त्या पूरयेद्गूढं व्रणं शीघ्रतरं महत् ॥ ८८ ॥
पारदस्य त्रयो भागाः कमलस्यैकविंशतिः ।
जंबीराम्लेन तत्पिष्टं माणिमन्थस्य सप्त च ॥ ८९ ॥
नवभिर्गंधकस्यांशैर्भृंगसारेण मर्दयेत् ।
सप्ताहमातपे तीव्रे धारितं शस्त्रवाल्लिखेत् ॥ ९० ॥

पारा, ताँबेका चूरा, मेंदही, पुनर्नवा और मेढासिंगीका रस इन सबको समानभाग लेकर प्रथम पारेके साथ ताँबेके चूर्णको मिला-कर खरल करे, जब दोनों मिलकर एकम एक होजायँ तब उनको उक्त औषधियोंके रसमें घोटकर रखलेवे । इस औषधको पानीमें घोलकर लगानेसे व्रण शुद्ध होकर शीघ्र भरजाता है । अथवा पटो-लपात, नीमके पत्ते, मुलैठी, हल्दी तिल और निसोत इन सबको दन्तीके रसमें पीसकर व्रणपर लगानेसे व्रण शीघ्र भरकर सूख

जाताहै । नीमके पत्ते और तिलोंको एकत्र पीसकर शहदमें और घृतमें मिलाकर लगानेसे व्रणभर जाताहै । एवं चिरचिटेके पत्तोंके रसको व्रणमें भरनेसे या चिरचिटेके बीजोंके चूर्णको व्रण (जख्म) के ऊपर बुरकानेसे दुष्ट व्रण शीघ्र भर जाताहै । अथवा पुराना गुड और सुहागा दोनोंको समानभाग लेकर बारीक खरल करके बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको बहुत पुराने और गहरे व्रणमें भरनेसे व्रण बहुत शीघ्र भरकर सूखजाताहै । अथवा पारा ३ भाग, कमलके पत्ते २१ भाग, सेंधानमक ७ भाग और गन्धक ८ भाग लेकर प्रथम पारेको और कमलपत्रोंको जम्बीरी नींबूके रसमें घोटे, फिर सबको एकत्र मिलाकर भाँगरेके रसमें मर्दन करे और सात दिनतक तीक्ष्ण धूपमें रक्खरहने देवे । जब उसका रस सूखताजाय तब उसमें नींबूका और भाँगरेका थोडा २ रस डालता जाय । इस प्रकार तैयार किया हुआ यह रस व्रणके ऊपर लगानेसे शस्त्रक्रियाके समान व्रणको शुद्ध करके शीघ्र भरदेता है ॥ ८९-९० ॥

भङ्गरोग ।

भंगो द्विधा निजागंतुबाह्याभ्यंतरभेदतः ।
भंगेष्वेरण्डतैलेन प्रयुंज्यात्पर्पटीरसम् ॥ ९१ ॥

भङ्गरोग (हाथ, पाँव आदि अङ्गोंका टूटना) स्वभाविक और आगन्तुक इन भेदोंसे दो प्रकारका होताहै । अर्थात् जन्मसेही जिसका कोई अङ्ग टूटा हुआ हो वह स्वाभाविक और चोट आदिके लगनेसे जिसका कोई बाह्य या आभ्यन्तर अङ्ग टूटगया होतो वह आगन्तुक भङ्गरोग कहलाताहै । भङ्गरोगमें अण्डीके तेलके साथ पर्पटी रसको व्यहार करे ॥ ९१ ॥

सामान्य उपाय ।

वज्रीं पिष्ट्वा बालकेन प्रणुत्यै मेषीदुग्धं कांतपाषाणतुल्यम् । युक्तं लेपादस्थिभंगं निहंति बाह्याभ्यंतः संस्थितं तत्क्षणेन ॥ ९२ ॥

टूटे हुए अङ्गको जोडनेके लिये थूहरके दूधमें सुगन्धवालाको पीसकर लेपकरे, अथवा चुम्बक पत्थरको समानभाग भेडके दूधमें खरल करके लेपकरे । इससे बाहरकी अथवा भीतरकी टूटी हुई हड्डी तत्काल जुडजाती है ॥ ९२ ॥

भगन्दर रोग ।

गुदस्य पार्श्वे पिटिकार्तिकारी शोफादि-
युक्तः स भगंदरः स्यात् ॥ ९३ ॥
वृषणासनयोर्मध्ये प्रदेशो भग उच्यते ।
तमेव दारयत्यस्माद्भगंदर इति स्मृतः ॥ ९४ ॥

गुदाके पार्श्वभाग (समीप) में पहले एक फुन्सी निकलती है । उसमें अत्यन्त पीडा, शोथ आदि अनेक उपद्रव होते है । फिर वह रिसने लगती है (अर्थात् उसमेंसे पानीसा निकलने लगता हे) । उसको भगन्दर रोग कहते हैं । अण्डकोष और आसन इन दोनोंके बीचके स्थानको भग कहते हैं । यह रोग उस स्थानको विदीर्णकरके उत्पन्न होताहै, इसालिये इसको भगन्दर कहाजाता है ॥९३-९४॥

रवितांडव रस ।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं कुमारीरसमर्दितम् ।
त्र्यहांते गोलकं कृत्वा हंडिकांते निरोधयेत् ॥ ९५ ॥
शुद्धेन ताम्रपात्रेण तयोस्तुल्येन यत्नतः ।
तद्भाण्डं भस्मनाऽऽपूर्य चुल्ल्यां तीव्राग्निना पचेत् ९६ ।
द्वियामांते तदुद्धृत्य चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ।
जंबीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटैः पचेत् ॥ ९७ ॥
गुंजैकं मधुराहारं दिवा स्वप्नं च मैथुनम् ।
वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन् रवितांडवे ॥ ९८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर दोनोंको घीग्वारके रसमें ३ दिन तक खरल करके गोला बनालेवे । उस गोलेको सुखाकर समान भाग शुद्ध ताँबेके सम्पुटमें बन्द करके हाँडीके भीतर रक्खे और हांडीको ख़ूब अच्छी तरह राखसे भरकर उसपर ढक्कन ढककर कपरौटी करे । फिर चूल्हे पर चढाकर तीव्र अग्निके द्वारा पकावे । दोप्रहर तक (६ घंटे) पकनेके बाद स्वांग-शीतल होनेपर उसको उतार कर गोलेको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर उसको जम्बीरीनींबूके रसमें घोट २ कर और सम्पुटमें बन्द करके ७ बार गजपुटमें पकावे । पश्चात् उसको बारीक पीसकर रखलेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण करे और इस रविताण्डव रसके सेवन करनेके पश्चात् घृत, दुग्ध, मिश्री, भात आदि मधुर पदार्थोंका आहार करे । इसपर दिनमें सोना मैथुन औरशीतल पदार्थोंका आहार विहार आदि सर्वथा त्याग देना चाहिये । इस प्रकार इस रसको सेवन करनेसे भगन्दर रोग अवश्य नष्ट होता है ॥ ९५-९८ ॥

सामान्य उपाय ।

आदौ सर्वप्रयत्नेन पाकं रक्षेद्भगंदरे ।
स्राव्यं रक्तं व्रणे जाते जलौका वा प्रयोजयेत् ॥
लांगलीकृष्णधत्तूरविषमुष्टीं प्रलेपयेत् ॥ ९९ ॥
रसगंधकसिंधूत्थतुत्थनागाः सजीरकाः ।
तिक्तकोशातकीसारैः पिष्ट्वा घ्नंति भगंदरम् ॥
गुल्मोक्तचक्रिकाबद्धो भगंदरहरः परम् ॥ १०० ॥
ताम्रचूर्णं सप्तभागं भागमेकं तु पारदम् ।
सैंधवं सप्तभागं च गंधकं नवभागिकम् ॥ १०१ ॥
भृंगीद्रावैः सजंबीरैः सप्ताहं घर्ममर्दितम् ।

तेन लिप्तं स्फुटत्याशु यदि पक्वं भगंदरम् ॥ १०२ ॥
न शस्त्रैश्छेदयेत्प्राज्ञः स्फोटयेल्लेपनादिभिः ।
हरिद्रानिंबासिंधूत्थं पिष्ट्वा लिप्त्वा स्फुटत्यलम् ॥
नरास्थितैललेपेन स्फुटितं शुष्यति व्रणम् ॥ १०३॥
ताम्रभस्म दिनं मर्द्यं मर्दयंतीपुनर्नवैः ।
मेषशृंगीद्रवैस्तेन व्रणशोधनरोपणम् ॥ १०४ ॥
त्रिफलाक्काथसंयुक्तमार्जारास्थिप्रलेपनात् ।
क्षालयेत्त्रिफलाक्काथैर्हन्याद्दुष्टभगंदरम् ॥ १०५ ॥
भूतलोत्थं पिबेच्चूर्णं खररक्तेन संयुतम् ।
श्वानास्थिलेपनं कार्यं शीघ्रं हन्याद्भगंदरम् ॥ १०६॥

भगन्दर रोगमें सबसे पहले जैसे हो वैसे इस बातका यत्न करना चाहिये कि भगन्दर पके नहीं । और जो कदाचित् वह पककर रिसने लगे और व्रण होजाय तो शस्त्रक्रिया द्वारा अथवा जोंक लगवाकर वहांका रक्त निकलवा देवे । फिर कलिहारीकी जड, काला धतूरा और कुचला इन तीनोंको एकत्र जलके साथ पीसकर लेप करे । अथवा पारा, गन्धक, सैंधानमक, तूतिया, सीसा और जीरा इन सबको कडवी तोंबीके रसमें खरल करके लेपकरे तो भन्दररोग अवश्य नष्ट होताहै । गुल्मरोगमें कहाहुआ चाक्रिकाबद्ध रसभी भगन्दरको नाश करनेके लिये परम उपयोगी है । तॉबेका बारीक चूरा ७ भाग, पारा १ भाग सैंधानमक ७ भाग, और गन्धक ९ भाग सबको भॉगरेके रसमें और जम्बीरीनींबूके रसमें पृथक् २ खरल करके ७ दिनतक तीक्ष्णधूपमें रक्खे । इस औषधका पकेहुए भगन्दर पर लेपकरनेसे वह तत्काल फूटजाताहै । बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि पके हुये भगन्दरको

शस्त्रसे कदापि छेदन न करे, बल्कि औषधियोंके प्रलेप आदिके द्वारा उसको भेदन करे। हल्दी, नीमके पत्ते और सैंधानमक तीनोंको पानीमें पीसकर लेप करनेसे भगन्दर अवश्य फूट जाताहै। मनुष्यकी हड्डीको तीन दिनतक मेदाके समान खूब बारीक पीसकर तेलमें मिलाकर लगानेसे भगन्दर फूटकर शीघ्र सूखजाता है॥ ताम्रभस्मको मेंहदी, पुनर्नवा और मेढासिंगीके रसमें क्रमसे एक २ दिनतक खरल करके लेपकरे। यह लेप भगन्दरके व्रणको शोधन और रोपण करनेवालाहै। बिलावकी हड्डीको त्रिफलेके काढेके साथ बारीक खरल करके लेप करनेसे और प्रतिदिन त्रिफलेके काढेसे व्रणको धोनेसे दुष्ट भगन्दर शीघ्र नष्ट होताहै। शुद्ध खपरियाको जलमें पीसकर पानकरे और कुत्तेकी हड्डीको गधेके रुधिरमें खरल करके लेपकरे तो भगन्दर रोग शीघ्र नाश होताहै॥ ९९-१०६॥

ग्रन्थिरोग।

मेदोमांसास्रगाः कुर्युर्वृत्तं ग्रंथितमुन्नतम्।
दोषाः शोफादिकं तत्र ग्रंथनाद् ग्रंथिमाहृतम्॥१०७॥

वात, पित्त, कफ इनमेंसे कोईसा दोष अथवा दो दोष या तीनों दोष चर्बी, मांस और रक्तमें मिलकर शरीरके किसी भागमें गोल और ऊँची गाँठ उत्पन्न करदेते हैं। उसमें दोषानुसार शोथ, दाह, पीडा आदि अनेक उपद्रव होते हैं। और दोषोंके गुथे रहनेसे वह बहुत सख्त रहती है। इसको ग्रन्थि (गाँठ) रोग कहते हैं॥ १०७॥

सामान्य उपाय।

आरभेदपलाशानां ग्रंथिभस्म विमर्दयेत्।
भस्मना तेन दत्तः सन्मेदोग्रंथिविनाशनः॥१०८॥
गुडूची सूरणं निष्कत्रयमुष्णांबुमार्दितम्।

मेदोवृद्धिस्रवात्तेन हंति रोगं च पूर्वजम् ॥ १०९ ॥
गंडमालां जयत्याशु गुल्मोक्तोदयभास्करः ॥ ११० ॥
पुत्रजीवस्य मज्जां तु जलैः पिष्ट्वा प्रलेपनात्
कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम् ॥ १११ ॥
ग्रंथ्यादिनिखिलान् रोगान्सर्वरोगाश्रयान्हरेत् ॥ ११२
संधिग्रंथिस्तापयुक्तो यदि स्यात्क्षीरं रात्रौ ।
चोदनं संनिदध्यात् । पादांगुष्ठस्याग्रेदेशेषु
रक्तस्रावं कुर्यात्तेन शीघ्रं सुखी स्यात् ॥ ११३ ॥
कक्षाग्रंथिं गलग्रंथिं कटिग्रंथि च नाशयेत् ।
अन्यं च स्फोटकं तीव्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ ११४
गुंजापत्रं शिलां यष्टीं गवां क्षीरेण पाययेत् ।
तलस्फोटं निहंत्याशु मज्जा वा पुत्रजीवजा ॥ ११५ ॥
विष्णुक्रांता च पटारी कांजिकेन तु पेषिता ।
कालस्फोटं हरेल्लेपाद्दुष्टग्रंथिषु का कथा ॥ ११६ ॥
पुनर्नवाऽर्काभयाशिग्रुमुष्टीकरंजासिंधूत्थमहौषधं
च । गोमूत्रपिष्टं च सुखोष्णलेपाद्ग्रंथ्यर्बुदं हंत्य-
पचीं च सद्यः ॥ ११७ ॥

(१) दुर्गन्धित खैर और ढाकके बीजोंकी या गाँठोंकी भस्म करके उसको पानीमें पीसकर सेवन करनेसे मेद (चर्बी) जन्य ग्रन्थि नष्ट होती है । (२) गिलोयका चूर्ण १ तोला और जिमींकन्दका चूर्ण १ तोला लेकर दोनोंको गरम पानीमें पीसकर लेप करे तो मेदकी वृद्धिके कारण उत्पन्न हुई ग्रन्थि और उससे पूर्व उत्पन्न हुए रोग शीघ्र दूर होते हैं । (३) गुल्मरोगमें कहाहुआ

उदयभास्कर रस सेवन करनेपर गण्डमालाको शीघ्र दूर करता है। (४) जियापोताकी गिरीको जलमें पीसकर लेप करनेसे मृत्युकारक फोडा, विषैला फोडा और अन्यान्य पीडाकारक फोडे तत्काल आराम होजाते हैं। यह प्रलेप ग्रन्थि, अर्बुद आदि सब प्रकारकी ग्रन्थियोंको और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य समस्त रोगोंको नष्ट करता है। (५) यदि रोगीकी बगल, जाँघ आदिके सन्धिस्थानों मर्मस्थानोंमें गाँठ निकल आईहो और दाह होती हो तो रोगीको रात्रिमें दूध भातका भोजन करना चाहिये और पैरके अँगूठेके अग्रभागमें छेद करके रक्त निकाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। (६) केवल जियापोताकी गिरीको पानीमें पीसकर लेप करेतो कोखकी गाँठ, गलेकी गाँठ, कमरकी गाँठ और अन्य अनेक प्रकारके तीव्र फोडे बहुतजल्द आराम होजाते हैं। (७) चोटलीके पत्ते, मैनसिल और मुलैठी तीनोंको गोदुग्धमें पीसकर पिलानेसे, अथवा जियापोताकी गिरीको दूधमें या पानीमें पीसकर पान करानेसे विषैला और मृत्युकारक फोडाभी शीघ्र आराम होता है। (८) विष्णुक्रान्ताकी जड और पेटारी वृक्षकी जडको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे कालरूप फोडाभी शान्त होजाता है, फिर और दुष्ट ग्रन्थियोंकी तो बातही क्या है। (९) पुनर्नवा, आककी जड, खस, सैंजनेकी छाल, कुचला, करंजकी जड, सैंधानमक और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर गोमूत्रमें पीस लेवे, फिर गरम करके सुहाता २ लेप करे तो ग्रन्थि, अर्बुद और अपची ये सब तत्काल नष्ट होती हैं॥ १०८-११७॥

अर्बुद (रसौली) के भेद।

मेदो हि दोषमांसोत्थग्रंथिरूपं ततो महत्।
अर्बुदं दुष्टरुधिरं स्रवेत्तच्छोणितार्बुदम्॥ ११८॥

वात, पित्तादि किसी दोषके अथवा मांसके विकृत होनेसे जब शरीरके किसी भागमें मेद (चर्बी) धातु दूषित होजाती है तब पहले वहां छोटीसी गॉठ निकलती है । वह प्रतिदिन बढते २ कुछ दिनमेंही बहुत लम्बी होजाती है । और बहुत दिनोंमें पककर रिसने लगती है । जब वह बिलकुल साफ होजाती है तब आप शान्त होजाती है । उसको अर्बुद कहते हैं । जो अर्बुद रक्तके दूषित होनेसे उत्पन्न होता है, उसमेंसे बहुत दिन तक रक्त स्रवता रहता है । उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥ ११८ ॥

अर्बुदहर रस ।

तंडुलीयकवर्षाभूनागकन्याबलारसे ।
गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित् ॥ ११९ ॥

पारेकी भस्मको चौलाई, विषखपरा, नागरबेल, घीग्वार और खिरैंटीके रसमें क्रमसे एक २ भावना देकर सुखाले, फिर गोमूत्रमें खरल करके गोला बनाकर उसके ऊपर पानोंको लपेट देवे । फिर उसपर दो दो अँगुल ऊँची कपरौटी करके सुखाले और दो उपलोंकी अग्निमें रखकर पकावे । इस रसके सेवनसे अर्बुद, रसौली आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ ११९ ॥

सामान्य उपाय ।

लिप्तं यवक्षारविडंगबीजं गन्धोपलस्याप्यशनैः कृतैश्च । रक्तेन मिश्रैश्च शिरीषबीजैस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैव ॥ १२० ॥

जवाखार और वायविडङ्गके बीजोंको पानीमें पीसकर अर्बुदके ऊपर लेप करे और शुद्ध गन्धकको उपयुक्त मात्रासे भक्षण करे अथवा सिरसके बीजोंको किसी जंगली जानवरके रक्तमें पीसकर लेप करे तो नव प्रकारका अर्बुद शमन होजाता है ॥ १२० ॥

गण्डमाला और अपची रोग।

मेदोत्था गलकक्षवंक्षणतले मन्यासु वा कुर्वते
वार्ताकीफलकोपमान्सकठिनान्गण्डान्सकंडून्मलाः।
पच्यंतेऽल्परुजः स्रवंति नितरां रुह्यंति नश्यंत्यलं
दूर्वेव क्षयवृद्धिभाञ्जिनि नृणां सा गंडमालापची १२१।

मेदके विकृत होनेसे दूषित हुए दोषोंके कारण गला, बगल वंक्षण (हृदय) के नीचे और मन्यानाडीमें कटेरीके फलके समान कठिन गाँठ उत्पन्न होजाती है। उसमें कभी कभी खुजली होती है और जब दोष परिपक्व होजाते हैं तब वह फूटकर निरन्तर स्रवती है। उसमें थोडी २ पीडा होती है। फिर उसमें मांसके अंकुर उत्पन्न होजाते हैं और वह सूखजाती है फिर हरी होजाती है। जो ग्रन्थि मनुष्यके शरीरमें दूबके समान क्षय और वृद्धिको प्राप्त होती रहती है, उसको गण्डमाला कहते हैं और जो गाँठ शरीरके किसी भागमें उत्पन्न होकर बढती रहती है और पकती नहीं है, उसको अपची कहते हैं ॥ १२१ ॥

गण्डमाला और अपचीके सामान्य उपाय।

सुरवारुण्या मूलं गोमूत्रयुतं महेन्द्रकन्या च।
अपकरोति गण्डमालां पित्तं श्लक्ष्णं च परिघृष्टम् १२२
अर्कक्षीरजपापुष्पतैललाक्षारसैः समैः।
गंडमाला शमं याति प्रलिप्ता सप्तभिर्दिनैः ॥१२३॥
पुष्ये गृहीतं गिरिकर्णिकाया मूलं सिताया
गलके निबद्धम्। गव्येन लीढं यदि वा घृतेन
निहंति घोरामपचीं तदेव ॥ १२४ ॥

छुछुंदरीसाधिततैललिप्तास्त्रिभिर्दिनैर्नश्यति गण्डमाला ॥ १२५ ॥

मूलिका सहदेव्युत्थ्या रवौ ग्राह्याऽथ धारिता ।
गंडमालाहरा कर्णे महादेवेन भाषिता ॥ १२६ ॥

इन्द्रायनकी जड, नागरमोथा और घीग्वार तीनोंको गोमूत्रमें पीसकर पान करनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है । आकका दूध, गुडहलके फूल, तेल और लाखका रस इन सबको एकत्र खरल करके लेप करनेसे सात दिनमें गण्डमाला शान्त होजाती है। पुष्य नक्षत्रमें विष्णुक्रान्ता (सफेद कोयल) की जडको लाकर गलेमें बांधे अथवा उसके चूर्णको गायके घीमें मिलाकर सेवन करे । इससे भयंकर अपची (रसोली) नष्ट होजाती है । छुछुन्दरीके पंचांगके कल्कके साथ तेलको पकाकर उस तेलको लगानेसे तीन दिनमें ही गण्डमाला आराम होजाती है । अथवा रविवारके दिन सहदेईकी जडको उखाड कर लावे और उसको कानमें बांधे तो गण्डमाला दूर होती है, ऐसा श्रीमहादेवजीने कहा है, ॥ १२२–१२६ ॥

श्लीपद रोग (पीलपाया)

सामान्य लेप ।

गुंजाटंकणशिग्रुमूलरजनीशम्याकभल्लातकैः
स्नुह्यर्काग्निकरंजसैंधववचाकुष्ठाऽभयालांगली ।
वर्षाभूशरभूशिरीषलवणव्योषाश्वमारीविषम्
गोमूत्रैःशमयेद्विलिप्तमपचीग्रंथ्यर्बुदश्लीपदम् ॥ १२७॥

चोंटली, सुहागा, सैंजनेकी जड, हल्दी, अमलतास, भिलावे, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, करंजकी जड, सैंधानमक, वच, हरड, कूठ, कलिहारी, बिषखपरा, रामसर, सिरसकी छाल, समुद्र नमक, त्रिकुटा कनेर, और वत्सनाभ विष इन सब औषधियोंको

समान भाग लेकर गोमूत्रमें खरल करके मरहम बनालेवे । इस मर-हमके लगानेसे अपची, ग्रन्थि, अर्बुद और श्लीपद आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १२७ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां
चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः ।

क्षुद्ररोग ।

व्यंगः कच्छपनीलिकाकुनखविद्धोत्कोठकोठालसैः
कक्षारुद्धगुदप्रसुप्तिविवृताविस्फोटवल्मीकरुक् ।
विस्फः स्यात्कदराऽजगल्लिजतुमण्यंधालजीराजिकाः
क्षुद्रा लांछनशर्करेति च यवप्रख्याऽग्निरोहिण्यपि ॥ १ ॥
जालाश्मगर्दभविदारिमसूरिकाभिः सत्पद्मकंटक-
रुजा सहगर्दभी च । स्याच्छर्करार्बुदमषाननदूषि-
कैश्च गंडाह्वया पनसिका त्विरिवेल्लिका च ॥ २ ॥

व्यंग, कच्छप, नीलिका, कुनख, विद्ध, उत्कोठ, कोठ, अलस, कक्षार, रुद्धगुद, प्रसुप्ति, विवृता, विस्फोटक, वल्मीक, विस्फ, कदर अजगल्ली, जतुमणी, अन्धालजी, राजिका, क्षुद्रा, लाञ्छन शर्करा, यवप्रख्या, अग्निरोहिणी, जाल, अश्मगर्दभक, विदारी, मसूरिका, पद्मकंटक, गर्दभी, शर्करार्बुद, मषक, आननदूषिका, गंडाह्वया, पन-सिका और इरिवेल्लिका, ये सब क्षुद्ररोग कहे जाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

क्षुद्ररोगोंके सामान्य उपाय ।

सर्पिषा निंबचूर्णेन प्रयुक्ता पर्पटी हरेत् ।
मसूरिकां क्षुद्ररोगानन्यानपि च दुस्तरान् ॥ ३ ॥

तत्कालशस्त्रप्रहृतः शशो यस्तस्याऽसृजा नश्यति लिप्यमानम् । व्यंगं मुखे जातिफलस्य बाह्यत्वचाऽथवा संततमेव लिप्तम् ॥ ४ ॥

इंगुदीफलसमुद्भवमज्जा पेशिताऽतिशिशिरेण जलेन एकविंशतिदिनप्रविलिप्ता व्यंगमाननभवं परिमार्ष्टि ॥ ५ ॥

उद्धृत्य कुनखं क्षीरं स्नुक्पर्णीटंकणं समम् ।
सम्यङ् निरुद्धदाहं च मूले कृत्वा नखी भवेत् ॥ ६ ॥

व्रणपूतिपूयजुष्टं नखविवरं मंक्षु रोपयत्यभया ।
नानाविधैः किमेतैरास्फोता रविकुण्टकक्षीरैः ॥ ७ ॥

सकुष्ठं जीरकं तोयैः पिष्ट्वा लेपेन नाशयेत् ।
पुत्रजीवस्य वा मज्जां तोयैः पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ ८ ॥

शिग्रुमूलं निशातोयैः कक्षाग्रंथिहरं लिपेत् ।
विषं पुनर्नवामूलं जललेपेन तं जयेत् ॥ ९ ॥

सर्वेषां स्तनरोगाणां रक्तमोक्षः प्रशस्यते ।
पूयपक्वः स्तनो यः स्याल्लेपस्तस्यावपाटने ॥ १० ॥

एकवीरस्य मूलं तु अजामूत्रेण लेपयेत् ।
तत्क्षणात्स्फुटते पक्वं शस्त्रैर्वा स्फोटयेद्भिषक् ॥ ११ ॥

यष्टीनिंबहरिद्राश्च निर्गुंडी धातकी समम् ।
चूर्णं स्तनव्रणे देयं रोपणं कुरुते हितम् ॥ १२ ॥

मध्वाज्यैर्देवदारुं च पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत् ।
पूयपक्वे स्तने क्षिप्त्वा रोपणं कुरुते क्षणात् ॥ १३ ॥

(१) मसूरिकामें पर्पटी रसको घृत और नीमके पत्तोंके चूर्णमें मिलाकर सेवन करनेसे मसूरिका आदि अनेक दारुण क्षुद्ररोग नाश होते हैं। (२) व्यंग रोगमें जो खरगोश शस्त्रसे माराहो उसके तत्कालके निकले हुए रक्तको मुखपर मलनेसे अथवा जायफलके बाहरके छिल्केके चूर्णको मलनेसे व्यंगरोग (मुँहकी झाई) और मुँहके काले दाग दूर होते हैं। (३) हिंगोटके फलोंकी गिरीको अत्यन्त शीतल जलके साथ पीसकर २१ दिनतक मुखपर लेप-करे तो मुँहकी झाई, छीप आदि दूर होकर मुख सुन्दर होजाताहै। (४) कुनखीरोगमें खराब नाखूनको उखाडकर थूहरका दूध, सुहागा और पृश्निपर्णीके पत्ते तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर लुगदी बनालेवे और उसको गरम करके उस नाखूनकी जडमें भरदेवे। इस प्रकार उस लुगदीके द्वारा बारंबार दग्ध कर-नेसे नया नाखून निकल आताहै और कुनखी रोग दूर होजाताहै। (५) नाखूनमें यदि व्रण होगयाहो दुर्गन्धित पीब निकलती हो और छेद होगया हो तो हरडोंको पीसकर लुगदी बनाकर उसपर बाँधे और हरडोंकोही भक्षण करे तो कुनखी रोग आराम होजाता है (६) अथवा सफेद कोयलकी जड, आककी जड और पीली कटसरैया तीनोंको दूधमें पीसकर कल्क करले, उसका रस निचोडकर उस रसको लगानेसे कुनखी रोग दूर होकर नवीन नख निकल आताहै। (७) केवल हरडोंका प्रयोग करनेसेही कुनखी रोग नष्ट होजाता है, फिर अन्यान्य औषधियोंके प्रयोगसे क्या प्रयोजन। (८) कूठ और जीरेको पानीमें पीसकर लेप कर-नेसे कक्षाग्रन्थि (बगलकी गाँठ अर्थात् काकिहारी) नष्ट होती है। (९) अथवा जियापोताकी गिरीको जलमें पीसकर प्रलेपकरे, या सैंजनेकी जडको हल्दीके पानीमें पीसकर लेपकरे, तो कक्षाग्रन्थि-आराम होती है। (१०) मीठा तेलिया और विषखपरेकी जडको पानीमें पीसकर लगानेसे भी कक्षा ग्रन्थि दूर होजाती है। (११)

सब प्रकारके स्तनरोगोंमें। शिरावेधकर रक्त मोक्षण कराना सर्वोत्तम उपाय है । जो स्तन पकगया हो और पीब पडगया हो तो प्रलेप करने योग्य औषधियोंका लेप करके उसको फोडदे और पीब निकालकर साफ करदेवे । (१२) एकवीर वृक्षकी जडको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पका हुआ स्तन तत्काल फूटजाता है । यदि इस प्रकारसे कदाचित् न फूटे तो वैद्यको उसे शस्त्रक्रिया (आपरेशन) द्वारा चीरदेना चाहिये । इसके पश्चात् (१३) मुलैठी, नीमके पत्ते, हल्दी, निर्गुंडी, और धायके फूल इन सबको समान भाग लेकर, एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे, इस चूर्णको जब पकाहुआ स्तन फूट जाय और पीब निकल जाय तब उसके व्रणमें भरकर पट्टी बाँधदेवे । इससे व्रण भरकर शीघ्र आरोग्य लाभ होता है । (१४) देवदारुके चूर्णको शहद और घृतके साथ पीसकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको स्तनके पककर फूट जाने और पीब निकलजाने पर व्रणके भीतर रखनेसे व्रण तत्काल भरकर सूखजाता है ॥ ३–१३ ॥

लिंगव्याधा लोहितं स्रावयित्वा
पश्चाद्बोलं भक्षयेत्तस्य नुत्यै ॥ १४ ॥
उदुंबरवटाश्वत्थसाम्रजंबूत्वचः शृतम् ।
जलैः क्काथं च तेनैव क्षालयेल्लिंगपाकनुत् ॥ १५ ॥
कुमारीरससंपिष्टं जीरकं लेपयेद्भिषक् ।
तेन दाहश्च पाकश्च शममाप्नोति निश्चितम् ॥ १६ ॥
महाशंखं जलैर्घृष्ट्वा तेन लिंगं प्रलेपयेत् ।
घोंटां पूगं च वा तोयैः सारं वा खादिरोद्भवम् ॥
जलैः पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं लिङ्गरोगहरं परम् ॥ १७ ॥
सुगंधकघृतैर्लेपः पक्वलिंगे सुखावहः ।

निंबखादीरमंजिष्ठाचूर्णं चापातनं जयेत् ॥ १८ ॥
यवाचिंचारसैर्घृष्टं सैंधवं रोपयेद्व्रणम् ।
ग्रंथिः कट्यां च जघने शममाप्नोति नान्यथा ॥ १९ ॥
शिग्रमूलं त्वचस्तोयैः पिष्ट्वा लेपेन तं जयेत् ।
कुष्ठजीरकयोर्लेपस्तोयैर्ग्रंथिप्रशांतये ॥ २० ॥
अश्वत्थस्य त्वचो भस्म चूर्णेन सह मिश्रितम् ।
नवनीतं द्वयोस्तुल्यं मर्द्यं तेन विलेपनात् ॥ २१ ॥
आसने गुदपार्श्वे च कट्यां च पिटिकां जयेत् ॥ २२ ॥
गोमूत्रे क्षालयेत्तां च लेपो बाकुचिबीजकैः ।
कृत्वा कंडूं निहंत्याशु चित्रकं वा गवां जलैः ॥
नरमूत्रेण सर्पाक्षीं पिष्ट्वा लेपेन तां जयेत् ॥ २३ ॥
लेपयेत्कांचनीमूलं नरमूत्रेण पेषितम् ।
कंडुपामा शमं याति सर्वांगीणा न संशयः ॥ २४ ॥
शाखोटस्य त्वचस्तोयैः पक्त्वा क्राथं समाहरेत् ।
पिबेद्गोमूत्रसंतुल्यं पामार्त्तः सुखमाप्नुयात् ॥ २५ ॥
पादकंडुहरं कुर्यान्नवनीतेन मृक्षणम् ।
हयारिपत्रधूपेन स्वेदनं तदनंतरम् ॥ २६ ॥
पाददाहहरक्काथे तिलाद्द्विगुणबाकुची ।
चूर्णिता मधुसर्पिर्भ्यां द्विकर्षं तत्प्रशांतये ॥ २७ ॥
पादकंडूविनोदार्थं नवनीतेन मृक्षणम् ।
पथ्याघृतेन संचूर्ण्य मर्दनं करपादयोः ॥ २८ ॥

(१५) लिंग पकागया हो तो प्रथम शस्त्रक्रियाके द्वारा रक्त निकलवाकर पीछे रोगीको बोलका चूर्ण सेवन करावे । इससे लिंग व्याधि नष्ट होजाती है । (१६) गूलर, बड, पीपल, आम और जामुन इनकी छालको समानभाग लेकर चौगुने जलमें डालकर क्वाथ बनालेवे । उस क्वाथसे प्रतिदिन लिंगको धोनेसे लिंगपाक रोग नष्ट होताहै । (१७) जीरेको घीग्वारके रसमें पीसकर लेप करे । इससे लिंगरोगकी दाह और पाक अवश्य नष्ट होताहै । अथवा (१८) बडे शंखको जलमें घिसकर लिंगपर लेप करे या बेर और सुपारीको अथवा खैरसार (कत्थे) को पानीमें पीसकर लेप करे यह लेप लिंगकी व्याधिको नाश करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है(१९) लिंग पकगया हो तो उसपर सुगन्धक नामक घृतका लेप करनेसे शीघ्र लाभ होता है । (२०) नीमके पत्ते, खैरसार और मँजीठ इन तीनों औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको व्रणमें भरनेसे लिंगपाकका व्रण आराम होताहै । सैंधे नमकको खिरनीके रसमें घोटकर लगानेसे लिंगका व्रण भरजाता है । एवं कमर और जांघमें उत्पन्न हुई गांठ शमन होजाती है । (२२) सैंजनेकी जडकी छालको दारचीनीके काढेमें पीसकर लेप करे अथवा कूठ और जीरेको पानीमें पीस कर लेप करे तो गांठ बैठ जाती है । (२३) पीपलकी छालकी भस्मको समान भाग चूनेके साथ मिलाकर दोनोंके बराबर नैनीघीमें खरल करके मलहम बनालेवे । इस मलहमको बार बार लगानेसे आसन, गुदाके समीप और कमरमें निकली हुई ग्रन्थि दूर होती है (२४) उक्त स्थानोंमें निकली हुई गाँठ या फुन्सीको पहले गोमूत्रसे धोवे, फिर उसपर बावचीके बीजोंको पानीमें पीसकर उसकी पुल्टिस बनाकर बांधे, अथवा चीतेकी जड चीतेके पंचांगको गोमूत्रमें पीसकर पुल्टिस बनाकर बाँधे तो खुजली और गांठ आदि शान्त हो जाती है । (२५) सरहटी घासको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे फुन्सी या

गाँठ आराम होती है। (२६) कचनारकी जडको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे समस्त शरीरगत सूखी व तर दोनों प्रकारकी खुजली अवश्य नष्ट होती है। (२७) सहोरावृक्षकी छालको जलमें पकाकर क्वाथ बनालेवे। इस क्वाथको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे पामारोगी आरोग्य लाभ करता है। (२८) पहले पैरोंमें मक्खन मले, फिर कनेरके पत्तोंकी धूप देकर स्वेद देवे और कनेरकेही क्वाथसे पैरोंको धोवे तो पैरोंकी खुजली दूर होती है। (२९) तिल १ भाग और बावचीका चूर्ण २ भाग दोनोंको दो तोले शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे पैरोंकी जलन शान्त होतीहै। (३०) हाथ पैरोंकी दाह और खुजलीको शान्त करनेके लिये केवल हाथों पैरोंमें मक्खनकी मालिश करे अथवा हरडके बारीक चूर्णको घृतमें मिलाकर मालिश करे तो हाथों पैरोंकी दाह और खुजली दूर होती है ॥ १४--२८ ॥

उपदंशनाशक धूप ।

लवंगजानां नवकं कर्पूरं चणसंमितम् ।
दरदं तोलमानं च सर्वं खल्वे विमर्दयेत् ॥ २९ ॥
अम्लवृक्षं कोकिलाक्षैः सर्वं यत्नेन मर्दयेत् ।
यावत्कज्जलसंकाशं श्यामतां च तथैव हि ॥ ३० ॥
चतुर्दशसमा कार्या पुडिका बंधयेद्भिषक् ।
रविवारे समादेया ह्यंगारे छगणोद्भवे ॥ ३१ ॥
तां निक्षिप्याऽथ संगोप्य नासिकां विवृतां नयेत् ।
मुखमाच्छाद्य श्वासेन यातायातेन ग्राहयेत् ॥ ३२॥
वीटिकापूर्णवदनो द्विवारं कारयेत्सदा ।
एवं सप्तदिनं कृत्वा पश्चात्स्नानादिकं चरेत् ॥ ३३ ॥

पथ्यं निर्लवणं देयं जलं शीतं निषेवयेत् ।
अनेन योगराजेन लिंगव्याधिः प्रशाम्यति ॥ ३४ ॥

(३१) लौंगें ९, रसकपूर १ चनेकी बराबर, सिंगरफ १ तोला, ढाकके बीज १ तोला और तालमखाना १ तोला लेकर प्रथम सिंगरफ और रसकपूरको एकत्र खरल करलेवे, फिर अन्यान्य औषधियोंको बारीक पीसकर कपडछान करलेवे।, पश्चात् सबको एकत्र मिलाकर अच्छे प्रकारसे खरल करे। जब औषधि घुटते २ कज्जलके समान काली और खूब बारीक होजाय तब वैद्य उसको समान भाग लेकर १४ पुडियें बनालेवे। फिर रविवारके दिनसे उनका धूम्रपान करना शुरू करे। पहले निर्धूम उपलेकी आगके अँगारे पर एक पुडिया डालकर उसके ऊपर एक छेदवाला ढक्कन ढक देवे और उसमें नली लगाकर मुँहसे धूम्रपान करके नासिकाके द्वारा छोडदेवे। अथवा मुँहके ऊपर कोई कपडा ओढकर उस पुडियाको अग्निपर डालकर श्वास द्वारा उसका धूम्रपान करे और उच्छ्वास द्वारा छोडलेवे। अथवा १४ पुडियोंके बनाय १४ गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःसायंकालमें एक २ गोली चिलममें रखकर हुक्केके द्वारा उसका धूम्रपान करे और नासिका द्वारा निकालदेवे। इनमेंसे किसी विधिसेभी धूम्रपान करनेके पश्चात् कुल्ला करके ताम्बूल भक्षण करे। इस प्रकार सात दिनतक इस औषधिका धूम्रपान करके ८ वें दिन स्नान आदि करे। इसपर विना नमकका पथ्यदेवे और शीतल जलको सेवन करावे। इस प्रयोगके यथाविधि व्यवहार करनेसे लिंगव्याधि (उपदंशरोग) शीघ्र नष्ट होती है ॥ २९--३४ ॥

क्षुद्ररोगोंके सामान्य उपाय।

स्फुटितत्वनिवृत्त्यर्थं यवचिंचाऽर्धपक्वया ।
शिलादिना कृते भेदे षड्गुणं च द्रवं क्षिपेत् ॥३५॥

गुडगुग्गुलुसिंदूरमुशीरं गैरिकं मधु ।
मदनं घृतसंयुक्तं पादस्फोटे प्रलेपयेत् ॥
सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ स्यातां पंकजसन्निभौ ॥३६॥
मदनं सिक्थकं तुल्यं सामुद्रं लवणं तथा ।
माहिषीनवनीतेन सुतप्तं लेपनं भवेत् ॥ ३७ ॥
सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ॥ ३८॥
रसं गंधं समं मर्द्यं द्वाभ्यां तुल्यं च कांचनम् ।
दिनैकं चित्रकद्रावैः पिष्ट्वा लेपं प्रकल्पयेत् ॥ ३९ ॥
कण्डुगंडं खुडं हंति गुल्फयोरन्तरुत्थितम् ।
धात्रीफलरसक्षीरैः पानं स्यात्स्वरभंगनुत् ॥ ४० ॥
देवदारुकणाव्योषशताह्वापत्रकं शिला ।
वचासैंधवशिग्रुत्थमूलं पेष्यं समं समम् ॥ ४१ ॥
कर्षैकं मधुसर्पिर्भ्यां मासमात्रं सदा लिहेत् ।
मासैकं कर्षकर्षं च किन्नरैः सह गायित ॥ ४२ ॥
सैंधवेंद्रयवं रात्रौ मरिचं चोष्णवारिणा ।
पाययेत्कर्षमात्रं तु गलदाहप्रशांतये ॥ ४३ ॥
करञ्जबीजमज्जां तु द्विनिष्कां चोष्णवारिणा ।
गलदाहहरं खादेत्पथ्या वा क्षौद्रसंयुता ॥ ४४ ॥
बलानागबलाकुष्ठत्वचां चूर्णं च लेपयेत् ।
माहिषीनवनीतेन स्यातां पीनौ स्थिरौ स्तनौ ॥४५॥
श्यामानिशाबलाराजीलवणं क्राथयेत्समम् ।
तोयैरष्टगुणैरेव पादशेषं समाहरेत् ॥ ४६ ॥

तिलतैलं क्वाथपादं तैलार्धं माहिषं घृतम् ।
स्नेहशेषं पचेत्तेन नस्येन मासमात्रकात् ॥ ४७ ॥
बालादिवृद्धनारीणां यौवनं कुरुतेऽद्भुतम् ॥ ४८ ॥
कुलवत्वक्कषायेण तत्कल्केन च साधितम् ।
तैलं तु वनितानां च कुचकुंभव्रणापहम् ॥ ४९ ॥
शुल्बचूर्णं रसे जीर्णं अरुंधतीपुनर्नवा ।
मेषशृंगीरसश्चैता व्रणशोषणरोपणम् ॥ ५० ॥
कुंभीपुष्पाणि चादाय गिलयेद्रविवासरे ।
यावत्संख्यानि पुष्पाणि तावद्वर्षाणि स्नायुकम् ॥
न निर्याति न संदेहः सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ५१ ॥

(३२) अधपकी खिरनीकी जडका काढा बनाकर उस छः गुने काथमें मैनासिलादिगणकी औषधियोंका चूर्ण डालकर अच्छे प्रकारसे खरल करके मलहम बनालेवे । पैरोंके फटजानेपर अर्थात् पैरोंमें बिवाई होजानेपर इस मलहमको लगानेसे शीघ्र लाभ होता है । (३३) गुड, गूगल, सिन्दूर, खस, गेरू, मैनफल और शहद इन सबको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर पैरोंके तलुवोंमें लेप करे इससे पैरोंकी बिवाई ७ दिनमें दूर होजाती है और पैर कमलके समान कोमल होजाते हैं । (३४) अथवा मैनफल, मोमं और समुद्रनमक तीनोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करले फिर भैंसके नैनी घीमें मिलाकर और गरम करके लेप करे तो पैरोंकी बिवाई या हाथ पैरोंका फटना एक सप्ताहमें दूर होकर हाथ-पाँव कमलके समान कोमल होजाते हैं । (३५) पारे और गन्धकको समान भाग लेकर एकत्र कज्जली करलेवे । फिर कज्जलीके बराबर कचनारकी छालले कर चूर्ण करके उसको कज्जली सहित एक दिन तक चीतेके काढेमें खरल करले। इस मलहमका लेप करनेसे एँडियोंके

भीतर उठी हुई खुजली; गांठ और खुडरोग नष्ट होताहै । (३५) आमलेंके रसको दूधमें मिलाकर पीनेसे स्वरभङ्ग (गलेका बैठजाना) रोग दूरहोता है । (३६) देवदारु, पीपल, त्रिकुटा, सौंफ तेजपात, शिलाजीत, वच, सैंधानमक और सैंजनेकी जड सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । इस चूर्णको प्रतिदिन प्रातः कालमें एक २ तोला परिमाण लेकर शहद और घृतमें मिलाकर एक महीनेतक सेवन करे । इसके सेवनसे स्वर-भंग रोग दूर होकर मनुष्य किन्नरोंके समान मधुर और उच्चस्वरसे गाने लगता है । (३७) गलेकी दाह (जलन) को शान्त करनेके लिये सैंधा नमक, इन्द्रजौ और मिरचोंके चूर्णको एक २ तोला परिमाण गरम जलके साथ रात्रिमें सेवन करानेसे विशेष उपकार होताहै। (३८) करञ्जके बीजोंकी ८ मासे गिरीको गरम जलके साथ पीस कर पान करनेसे अथवा हरडके चूर्णको शहदमें मिलाकर खानेसेभी गलेकी जलन दूर होजाती है । (३९) खिरैंटी, गंगेरन, कूठ और तज इनके बारीक चूर्णको भैंसके नैनी घीमें मिलाकर लेप करनेसे स्त्रियोंके स्तन मोटे, सख्त और स्थिर होजाते हैं । (४०) सारिवा हल्दी, खिरैंटी, राई और नमक सबको समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकाकर क्वाथ बनावे, चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । उस क्वाथमें चौथाई भाग तिलका तेल और तेलसे आधा भैंसका घी डालकर पकावे । जब पकते २ सब रस जलजाय और स्नेहमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस तेलको एक महीनेतक नस्यद्वारा व्यवहार करनेसे बाला स्त्रियोंको शीघ्र यौवन प्राप्त होता है और वृद्धा स्त्रियोंकी वृद्धता दूर होकर पुनः नव-यौवन प्राप्त होता है । (४१) पीलीकट सरैयाकी छालके क्वाथ और कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करके लगानेसे स्त्रियोंके स्तनोंमें उत्पन्न हुआ कुम्भव्रण दूर होता है ।(४२) पारेमें तांबेके चूर्ण-को जारण करके मेंहदी, विषखपरा और मेंढासिंगीके रसमें क्रमसे

खरल करके मलहम बनालेवे । यह मलहम स्तनोंके व्रणको भरने और सुखानेवाला है । (४३) रविवारके दिन धतूरेके फूलोंको लाकर उनमेंसे जितनी इच्छा हो उतने फूल खावे । उसदिन मनुष्य जितने फूल खावेगा तो उसके उतनेही वर्षतक स्नायुरोग (नहरूआ) उत्पन्न न होगा । यह सिद्ध पुरुषोंका कहा हुआ योग है, इस लिये इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ३९–९१ ॥

श्लीपदहररस ।

ताम्रभस्मसमं सूतं शुद्धं मर्द्यं दिनत्रयम् ।
नागवल्लीमेघनादपाठापौनर्नवद्रवैः ॥ ९२ ॥
गोमूत्रे मर्दयेद्गाढं चक्रयंत्रे दिनं पचेत् ।
मासैकं भक्षयेत्क्षौद्रैः श्लीपदी च पिबेदनु ॥ ९३ ॥
खादिरं शल्लकीकाष्ठं क्षौद्रं चाशनकाष्ठकम् ।
गवां मूत्रैः समं पिष्ट्वा पिबेच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ९४ ॥

(४४) तांबेकी भस्म और शुद्ध पारा दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र मर्दन करके नागर वेलके पान, चौलाई, पाढ और विषखपरा इनके रसमें तीन दिन तक खरल करे । फिर तीन दिन तक गोमूत्रमें उत्तम प्रकारसे मर्दन करके चक्रयन्त्रमें रखकर एक दिन तक पकावे । फिर बारीक पीसकर रखलेवे । यदि श्लीपद (पीलपाया) रोगसे ग्रस्त मनुष्य इस औषधको प्रतिदिन एक २ मासा परिमाण, शहदमें मिलाकर सेवन करे और पीछेसे खैरखार, सालईकी जड और विजयसारकी जड तीनोंको गोमूत्रमें पीसकर और शहद डालकर अनुपानरूपसे सेवन करे तो श्लीपदरोग नाशको प्राप्त होताहै ॥ ९२–९४ ॥

श्लीपदहर लेप ।

गुडूची कटुका शुंठी देवदारु विडंगकम् ।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तो लेपः श्लीपदनाशनः ॥ ९५ ॥

(४९) गिलोय, कुटकी, सोंठ, देवदारु और वायविडंग इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्लीपद रोग दूर होताहै ॥ ५५ ॥

वल्मीकरोग ।

प्रतिमेष रस ।

ब्राह्मीपलाशयोः क्वाथे रीतिपत्रं विनिक्षिपेत् ।
दिनद्वयं ततस्तानि पुनस्तेनैव घर्षयेत् ॥ ५६ ॥
लघुभाण्डे समादाय चूर्णं कूष्मांडवारिणा ।
महात्रिवारं कुर्वीत पुटं ककुभवारिणा ॥ ५७ ॥
मर्दयित्वा पुटं दद्यादजामूत्रेण भावयेत् ।
ततोऽप्येकं पुटं दत्त्वा तिस्रस्त्रिकटुभावनाः ॥ ५८ ॥
अमर्यंजाविडंगाऽग्निगोजलैरथ भावितः ।
प्रतिमेषः सुसंसिद्धो रसो वल्मीकमृद्रसैः ॥ ५९ ॥
वल्लत्रयमितो देयो वल्मीके तस्य मृत्स्नया ।
वल्मीकं संविलिप्यैतत्कृमिसंघप्रशांतये ॥ ६० ॥

(४६) ब्राह्मी और ढाकके पंचांगके काढेमें पीतलके कंटकवेधी पत्रोंको डालकर दो दिन तक रक्खा रहने देवे । तीसरे दिन उन पत्रोंको निकालकर गजपुटमें पकाकर चूर्ण करलेवे । फिर समस्तचूर्णको ब्राह्मी और ढाकके काढेमें खरल करके गजपुटमें फूंके । फिर पेठेके रसमें घोट घोटकर तीनबार महापुट देवे । पश्चात् अर्जुन वृक्षकी छालके काढेमें घोटकर एकबार गजपुट देवे । फिर बकरीके मूत्रमें पीसकर १ गजपुट देवे । फिर त्रिकुटेकी तीन भावना देकर छोटी तुलसी, वडी तुलसी, वायविडंग और चीता इन प्रत्येकके रस और गोमूत्रमें एक २ बार भावना देकर सुखा

लेवे । इस प्रकार यह प्रतिमेष रस तैयार होता है । इस रसको प्रतिदिन तीन २ रत्ती परिमाण लेकर बाँबीकी मिट्टीके रसके साथ पीसकर पान करावे और बाँबीकी मिट्टीकोही पीसकर लेपकरे तो वल्मीक रोगमें विशेष उपकार होता है । कृमिसमूहको और श्लीपद रोगको शान्त करनेके लिये भी यह रस उपयोगी है ॥ ५६–६०

क्षुद्ररोगोंके सामान्य उपाय ।

रसैरुत्तरवारुण्याः सभ्रमं हंति मारुतम् ।
वासानीरानुपानेन जयेत्कफसमीरणम् ॥ ६१ ॥
विडंगं नागरं क्षारं कालंलोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित् ॥ ६२ ॥
वरासनाभयः पत्रनिशाक्वाथं मधुप्लुतम् ।
द्विरदस्थूलदेहोऽपि पिबेन्मासात्कृशो भवेत् ॥ ६३ ॥
विपरीते रते प्राप्ते लिंगे दाहः प्रजायते ।
कार्श्यं च सर्वगात्रेषु तत्प्रतीकार उच्यते ॥ ६४ ॥
प्रत्यग्रस्तन्निबद्धचैव लिंगे चोषणमाचरेत् ।
क्षणे त्वेतस्य संजाते क्षालयेच्छीतलांबुना ॥ ६५ ॥
कोलनिर्यासमादाय पाययेत्तं सशर्करम् ।
शाल्मलीदूर्वयोर्मूलीरसपायसमाशयेत् ॥ ६६ ॥
पुरुषव्याधिनुत्यर्थं रक्तस्रावो हि पृष्ठके ।
भक्षणं बोलबद्धस्य मत्स्याक्षीमूललेपनम् ॥ ६७ ॥
जानुरुग्ग्रंथिनुत्यर्थं यवचिंचाः प्रलेपयेत् ।
सामुद्रकांजिकाभ्यां हि लेपं विधेहि सत्वरम् ॥
सर्वरक्तविकारेषु बोलबद्धस्य सेवनम् ॥ ६८ ॥

मेषीक्षीरं द्रवं चूर्णं कटुतुंबे विनिक्षिपेत् ।
प्रलेपनेन सातत्यादस्थिभंगः प्रशाम्यति ॥ ६९ ॥
स्नायुकस्यापनुत्यर्थमस्पर्शारिप्रलेपनम् ।
दैवेनातिरते स्त्रीणां विषमोत्कटकासनात् ॥ ७० ॥
जायंते व्यापदो योनौ दुष्टबीजासेवात्तवः ।
पिष्टी तारार्कयोरेका तैले गन्धस्य पाचिता ॥ ७१ ॥
सेविता मधुसर्पिर्भ्यां गुह्यरोगान्नियच्छति ।
निंबुद्रावैः सुसंपिष्टं निंबैरण्डस्य बीजकम् ॥ ७२ ॥
योनिशूलहरं पीत्वा गोलकं योनिमध्यगम् ।
सोमराजीदेवदारुनिंबदारुनिशाऽसनम् ॥ ७३ ॥
तक्रपिष्टं प्रलेपोयं योन्यामयहरो भवेत् ।
लशुनं गृहधूमं तु विशाला सविडंगकम् ॥ ७४ ॥
कण्टकारीफलं तोयैः पिष्ट्वा योनौ प्रलेपयेत् ॥
कृमिशूलहरं ख्यातं सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ७५ ॥
त्रियोनिरसगुंजैकं त्रिनिष्कमभयागुडम् ।
पुष्परोधहरं खादेत्पलैकं तिलजीवनम् ॥ ७६ ॥
ततः शीतोदकं क्षिप्त्वा पुष्पं स्रवति तत्क्षणात् ।
लांगलीकंदचूर्णं वा मूलं वाप्यापमार्गजम् ॥ ७७ ॥
इंद्रवारुणिमूलं वा योनिस्थं पुष्परोधनुत् ।
तिलमूलकषायं वा ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ॥ ७८ ॥
यष्टीत्रिकटुकं चूर्णं क्वाथयुक्तं हि पाययेत् ॥ ७९ ॥
पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रीणां सद्यः प्रशस्यते ॥ ८० ॥

चणकानां रसं चैव शृतं क्षीरं घृतेन वा ।
शर्करामधुसंयुक्तं रक्तदोषहरं पिबेत् ॥ ८१ ॥
तिलक्काथो गुडं व्योषं तिलभार्ङ्गीयुतं पिबेत् ।
क्काथ रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेऽथ पाययेत् ॥ ८२ ॥
ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां धत्तूरस्य तु मूलकम् ।
कटीं बध्वा रमेत्स्वेच्छं न गर्भः संभवेत्क्वचित्॥८३॥
मुक्ते च लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् ॥ ८४ ॥
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभवेत्क्वचित॥ ८५ ॥
ऋतौ जाते क्षिपेद्योनौ तिलतैलाक्तसैंधवम् ।
द्रवत तत्क्षणादेव तच्छुक्रं पुष्पितामपि ॥ ८६ ॥
देवालये तु तच्चूर्णं कर्षकं तोयपेषितम् ।
पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात् ॥ ८७ ॥

(४७) इन्द्रायनकी जडके रसको प्रतिदिन दो दो तोले परिमाण सेवन करनेसे; भ्रमयुक्त वात, अर्थात् चक्करोंका आना दूर होताहै । एवं इन्द्रायनकी जड और अडूसेकी जडके क्काथको पीनेसे कफ और वात शान्त होते हैं । (४८) वायविडंग, सोंठ, जवाखार, कान्तलोहभस्म, जौ और आमले इन औषधियोंके समान भाग चूर्णको प्रतिदिन शहदमें मिलाकर चाटे । यह प्रयोग अत्यन्त बढी हुई स्थूलता (मुटापे) को शीघ्र दूर करता है । (४९) त्रिफला, विजयसार, चीता, तेजपात और हल्दी इनके काढेको प्रतिदिन शहद डालकर एक महीनेतक सेवन करनेसे हाथीके समान स्थूलशरीरवाला मनुष्यभी कृश (दुबला) होजाता है ॥ ६२ ॥ (५०) विपरीत प्रकारसे (अर्थात् स्त्रीके नीचे लेटकर या गुदामैथुन, हस्तमैथुन आदिके द्वारा) मैथुन करनेपर लिंगमें

दाह (जलन) होने लगती है और उससे संपूर्ण शरीर कृश होजाताहै। इसको दूर करनेके लिये निम्नलिखित उपाय करे। (५१) प्रथम लिंगके अग्रभागको धीरेसे बाँधकर थोडा २ चूसे, फिर उसको शीतल जलसे खूब धोवे और बेरोंका क्वाथ बनाकर उसमें खाँड डालकर पान करे। अथवा सेमलकी जड और दूबकी जडको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उसकी दूधमें खीर बनाकर खावे तथा पीठके बाँसकी फस्त खुलवाकर रक्त निकलवा देवे। लिंगव्याधिको नष्ट करनेके लिये ये अत्यन्त उपयोगी उपाय है। अथवा बोलबद्ध नामक रसको सेवन करे और मछेछी घासको पानीमें पीसकर लिंगपर लेप करे।(५२) जानुओं (साँथल) में उत्पन्न हुई पीडा और ग्रन्थिको नष्ट करनेके लिये कुम्भेरकी जडको पानीमें पीसकर प्रलेप करे। अथवा समुद्रनमकको काँजीमें पीसकर लेपकरे तो जानुगत ग्रन्थि और पीडा शीघ्र शान्त होती है। (५३) सर्वप्रकारके रक्तविकारोंमें बोलबद्ध रसका सेवन करना अत्यन्त उपयोगी है (५४) कडवी तोंबीके चूर्णको भेडके दूध और चूनेके पानीमें पीसकर निरन्तर लेप करनेसे टूटी हुई हड्डी जुडजाती है। (५५) स्नायुक (नहरुआ) रोगको नष्ट करनेके लिये धमासेको पानीमें पीसकर लेप करे। (५६) प्रारब्ध वशसे, अथवा अधिक मैथुन करनेसे, ऊँचे नीचे या कठिन आसनपर बैठनेसे अथवा रज और वीर्यके दूषित होनेसे स्त्रियोंकी योनिमें नानाप्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होजाती हैं। (५७) योनिरोगको नष्ट करनेके लिये चाँदी और ताँबेकी पिट्टीको समभाग लेकर गन्धकके तेलमें पकावे, फिर उसको शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे। यह प्रयोग स्त्री तथा पुरुषोंके गुह्यरोगोंको शीघ्र दूर करताहै। (५८) नीमकी निबौली अण्डके बीज दोनोंकी गिरीको समान भाग लेकर नींबूके रसमें खरल करके गोलियाँ बनाकर सुखालेवे। उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करनेसे और एक २ गोली योनिमें रखनेसे योनिकी पीडा दूर

होती है (५९) बावची, देवदारु, नीमके पत्ते, दारुहल्दी और विजयसार इन सबको मट्ठेमें पीसकर योनिमें प्रलेप करनेसे योनिके सब रोग नष्ट होते हैं । (६०) लहसन, घरका धुआँ, इन्द्रायनकी जड, वायविडंग और कटेरीके फल इन औषधियोंको जलमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनिगत कृमि और उसकी पीडा एक सप्ताहमें अवश्य नाश होती है । (६१) त्रियोनि नामक रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण लेकर १ तोला हरडके चूर्ण और गुडमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे ४ तोले तिलके तेलका अनुपान करे तो नष्ट हुआ आर्त्तव फिर होने लगता है । उक्त औषधको खाकर ऊपरसे शीतल जल पीनेसे बन्द हुआ ऋतु स्राव तत्काल फिर होनेलगता है । (६२) कलिहारीकी जडका चूर्ण अथवा चिरचिटेकी जडका चूर्ण या इन्द्रायनकी जडका चूर्ण इन मेंसे किसी एकको योनिमें रखनेसे नष्ट हुआ ऋतु धर्म पुनःप्रवर्तित होजाताहै । (६३) ब्रह्मदण्डीकी जडके चूर्णको तिलोंकी जडके काढेमें मिलाकर पान करावे, अथवा मुलैठी और त्रिकुटेके चूर्णको तिलोंकी जडके काढेके साथ पिलावे तो स्त्रियोंके ऋतुस्राव बन्द होनेपर उत्पन्न हुए रक्तगुल्म रोगमें शीघ्र लाभ होताहै और नष्ट आर्त्तवभी फिर जारी होजाता है । (६४) दूधमें घी डालकर अच्छीतरह औटावे । जब वह खूब ठंढा होजाय तब उसमें चनोंका स्वरस, शहद और खाँड मिलाकर पान करनेसे रक्तबिकार दूर होता है । (६५) गुड, त्रिकुटा, तिल और भारंगी इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर उस चूर्णको तिलोंके काढेमें डालकर पान करावे । इससे रक्तगुल्ममें और नष्ट आर्त्तवमें विशेष उपकार होता है (६६)गर्भ न रहने और गर्भस्राव करनेका उपाय कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन धतूरेकी जडको लाकर उसको कमरमें बाँधकर यथेच्छरूपसे रमणकरे तोभी स्त्रीके कभी गर्भ नहीं रहता । और उस जडको खोलकर फिर रमण करनेसे गर्भ

स्थित होजाताहै, ऐसा श्रीनागार्जुन मुनिने कहा है। (६७) अथवा कृष्ण चतुर्दशीके दिन धतूरेकी जडको लाकर बारीक पीसकर कपडछान करलेवे उस चूर्णको योनिमें रखनेसे भी कभी गर्भ नहीं रहता। (६८) मासिकधर्म होनेके बाद सैंधेनमकको तिलके तेलमें मिलाकर योनिमें रक्खे तो सम्भोग करनेपर मिले हुए भीरज और वीर्य तत्काल स्खलित होजाते हैं। (६९) यदि गर्भवती स्त्री किसी देवालयमें जाकार सैंधेनमकके १ तोला चूर्णको जलमें पीसकर और तिलके तेलमें मिलाकर पान करे तो तत्काल गर्भस्राव होजाता है ॥ ६१-८७ ॥

मंजिष्ठादि घृत ।

मंजिष्ठा तगरं कुष्टं त्रिफला शर्करावचा ।
मेदा यष्टी हरिद्रे द्वे दीप्यकं कटुरोहिणी ॥ ८८ ॥
पयस्यां हिंगु काकोली वाजिगंधा शतावरी ॥८९॥
प्रत्येकं चूर्णयेत्कर्षं द्वात्रिंशत्पलकं घृतम् ।
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत् ॥ ९० ॥
योनिशूले शुक्रदोषे गर्भिणीनां च पाययेत् ॥ ९१ ॥

(७०) मँजीठ, तगर, कूठ, त्रिफला, खाँड, वच, मेदा, मुलैठी, हल्दी, दारुहल्दी, अजवायन, कुटकी, क्षीरकाकोली, हींग, काकोली, असगन्ध और शतावर इन औषधियोंको एक २ तोला लेकर चूर्ण करके कल्क बनालेवे। उस कल्कको ३२ पल घृत और घृतसे चौगुने दूधमें मिलाकर पकावे जब पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इस घृतको योनिशूल और शुक्र सम्बन्धी रोगोंमें पान करानेसे तथा गर्भिणी स्त्रियोंके रोगोंमें प्रयोग करनेसे शीघ्र आरोग्य लाभ होता है ॥ ८८-९१ ॥

क्षुद्ररोगोंके सामान्य उपचार ।

कांडमेरण्डपत्रस्य योनावष्टांगुलं क्षिपेत् ।

चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥ ९२ ॥
निर्गुण्डीद्रवसंपिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम् ।
कर्षं भुक्त्वा पतत्याशु गर्भो रंडाकुलोद्भवः ॥ ९३ ॥
मूलं तु शरपुंखायास्तंडुलांबुप्रपेपितम् ।
पाययेत्कर्षमात्रं तदतिरक्तप्रशांतये ॥ ९४ ॥
स्त्रीणां रक्ते पूयके वा प्रवृत्ते सैसं चूर्णं पेटकारी-
भवं वा । दद्यात्प्रातर्मल्लखण्डेन सार्धं
दत्त्वा सूतं त्वर्कमूर्तिं घृतेन ॥ ९५ ॥
योनौ शूले निंबवातारि पिष्टीं कुर्याद्यद्वा
नागकर्णोत्थमूलैः । तैलं क्वाथं व्योपयष्टि-
प्रयुक्तं दद्यात्स्त्रीणां रक्तदोषापनुत्त्यै ॥ ९६ ॥

(७१) अण्डके पत्तोंका ८ अँगुल लम्बा डंठल लेकर उसको योनिमें रखनेसे ४ महीनेका गर्भ तत्काल गिरजाता है ॥ (७२) चीतेकी जडको निर्गुण्डीके रसमें पीसकर उसमें एक तोला शहद डालकर पान करानेसे विधवा स्त्रीके रहाहुआ गर्भ शीघ्र पतित होजाता है । (७३) सरफोंकाकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर एक २ तोला परिमाण सेवन करानेसे स्त्रियोंके अधिक रक्तका स्राव होना बन्द होता है । (७४) स्त्रियोंके रक्तप्रदर या श्वेतप्रदर होनेपर सीसेकी भस्म और पेटकारीवृक्ष (अभावमें अरणी) के चूर्णको उपयुक्त मात्रासे प्रतिदिन प्रातःकाल पानके साथ सेवन करावे, अथवा अर्कमूर्त्ति नामक रसको घृतके साथ सेवन कराकर तथा नीमकी निबौली और अण्डीकी गिरीको पिट्ठीके समान पीसकर योनिमें रखनेसे रक्तस्राव और योनिका शूल नष्ट होता है । अथवा लाल अण्डकी जडके कल्क और क्वाथके साथ

तैलको पकाकर उसमें त्रिकुटा और मुलैठीका चूर्ण डालकर पान करावे । यह तैल स्त्रियोंके रक्तस्राव आदि सम्पूर्ण रक्तविकारोंको नष्ट करनेके लिये उपयोगी है ॥ ९२-९६ ॥

पुष्यानुगचूर्ण ।

पाठाजम्ब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम् ।
अबष्ठां शाल्मलीं पिच्छा समङ्गां वत्सकत्वचम् ॥ ९७ ॥
बाह्लीकबिल्वातिविषालोध्रतोयदगैरिकम् ।
शुंठीमधुकमाद्वीकं रक्तचंदनकट्फलम् ॥ ९८ ॥
कट्वङ्गवत्सकानंताधातकीमधुकांजनम् ।
पुष्ये गृहीत्वा संचूर्ण्य सक्षौद्रं तंडुलांबुना ॥ ९९ ॥
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेशयेत् ।
दोषागंतुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥ १०० ॥
योनिदोषं रजोदोषं श्यावं श्वेतारुणं त्विदम् ।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १०१ ॥

(७९) पाढ, जामुन और आमकी गुठली, शिलाजीत, रसौंत, मोइया वृक्षकी जड, सेमलका गोंद, मँजीठ, कुडेकी छाल, केसर, बेलका गूदा, अतीस, लोध, नागरमोथा, गेरू, सोंठ, मुलैठी, मुनक्का, लाल चन्दन, कायफल, अरबू, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, महुवा और काला सुरमा इन सब औषधियोंको पुष्यनक्षत्रमें समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछन करलेवे । फिर इस चूर्णको अर्शरोगमें अथवा रक्तातिसारमें या रक्तप्रदरमें शहद और चावलोंके जलके साथ सेवन करे । यह चूर्ण वात,पित्तादि दोषोंके द्वारा अथवा आगन्तुक कारणोंसे उत्पन्न हुए स्त्रियोंके सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है । एवं योनिसम्बन्धी

विकार, रजोदोष, कालाप्रदर, लाल प्रदर, श्वेतप्रदर आदि व्याधियोंको शीघ्र विनाश करता है। यह पुष्यानुग नामक चूर्ण आत्रेयऋषिका बनाया हुआ है। उपर्युक्त रोगोंके लिये यह विशेष हितकारी है ॥ ९७-१०१ ॥

स्थावर और जंगम विषका उपाय।

यत्कंदमूलादिषु जायते ततो विषाद्विषं
स्थावरमुग्रवीर्यम् । सर्पादिकं जंगममुच्यते
तद्भवैरनेकैः कृतकं च यत्तत् ॥ १०२ ॥
घनसारजटा हंति विषं स्थावरजंगमम् ।
ज्येष्ठाम्बुसूतराजेन पीता भीरुशिफा तथा ॥१०३॥
सुरभिशकृद्रसभाविलशशिराजीचूर्णसंयुतः सूतः ।
स्थावरजंगमकृत्रिमविषजिद्गुंजामितोऽभ्यस्तः ।१०४।
अभ्रकं तालकं तार्क्ष्यं शिलाजित्कुनटी रसः ।
देवदालीरसो व्योषं लेपनाद्विषनाशनम् ॥ १०५ ॥
रसेन चक्रमर्दस्य पुटितः पुटपाचितः ।
एरण्डस्नेहसंयुक्तः सूतो लूताविकारनुत् ॥ १०६ ॥
जलेन नागदमनीमूलनस्यं प्रयोजितम् ।
महासर्पस्य विषमं विषं नश्यति तत्क्षणात् ॥१०७॥
जलपिष्टं शिरीषस्य पञ्चांगं यः पिबेन्नरः ।
सनागराजदष्टोऽपि मानुषो निर्विषो भवेत्॥ १०८ ॥
अश्वगंधाभवं कंदं बंध्याया वाथ यः पिबेत् ।
तस्य देहांतरं याति विषं स्थावरजंगमम् ॥ १०९ ॥

(१) जो विष कन्द-मूल, फल आदिमें होताहै तथा जिसमेंसे सत्त्वके समान विष निकलता है, वह, अत्यन्त उग्रवीर्यवाला होताहै और स्थावर विष कहलाता है । सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओंके विषको जंगम विष कहते हैं । उक्त विषको अनेक प्रकारके द्रवपदार्थोंमें मिलाकर जो विष तैयार कियाजाताहै वह कृत्रिम विष कहलाता है ॥ १०१ ॥ (२) चौलाईकी जडको या कपूरकी जडको पानीमें पीसकर पिलानेसे स्थावर और जंगम दोनों प्रकारका विष नाश होताहै । (३) शतावरकी जड और पारेकी भस्मको चावलोंके धोवनके पानीमें या त्रिफलेके पानीमें पीसकर पान करनेसे अथवा बाबचीके चूर्णको गायके गोवरके रसमें भावना देकर उसमें समान भाग पारेकी भस्म मिलाकर खरल करलेवे । उस चूर्णको एक २ रत्ती परिमाण सेवन करनेसे स्थावर जंगम और कृत्रिम तीनों प्रकारका विष नाशको प्राप्त होताहै ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ (४) अभ्रक, हरताल, सोनामाखी, शिलाजीत, मैनासिल, पारा और त्रिकुटा सबको समान भाग लेकर बंदालके रसमें घोटकर उबटनसा बनालेवे । इसको शरीरपर मालिश करनेसे सब प्रकारका विषविकार दूर होताहै ॥ १०४ ॥ (५) शुद्ध पारेको चकबडके रसके साथ खरल करके पुट पाक करे । जब पारा मूर्च्छित होजाय तब फिर पारेको चक बडके रसमें घोटकर गोलासा बनाकर पुटदेवे । पश्चात् उसको अण्डीके तेलमें मिलाकर योग्य मात्रासे सेवन करे तो मकडीका फलजाना और मकडीका विष दूर होताहै ॥ १०५ ॥ (६) नागदौनकी जडको पानीमें पीसकर उसकी नस्य देनेसे महा भयंकर सर्पका विषम विषभी तत्काल उतर जाता है ॥ १०६ ॥ (७) सिरसके पंचांगको जलमें पीसकर पान करनेसे शेषनागके द्वारा डसाहुआभी मनुष्य विषके विकारसे मुक्त होजाता है अर्थात् उसका विष तुरन्त उतर जाता है ॥ १०७ ॥ (८) असगन्धके कन्दको अथवा बाँझककोडेके कन्दको पानीमें पीसकर पीनेसे

स्थावर या जंगम सब प्रकारका विष मनुष्यके शरीरसे बाहर निकल-जाता है ॥ १०९ ॥

व्योषैरण्डस्रावपक्वं तु तैलं
लेपायोक्तं वृश्चिकानां सदैव ॥ ११० ॥
सार्सिदुवारतगरं मृतं संजीवनं विषम् ।
शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ॥ १११ ॥
देवदारु नतं मांसी द्रामिली बाकुची विषम् ।
कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम्॥ ११२ ॥
सर्पादिविषनाशाय टंकणस्य रजोऽम्भसा ।
पानाभ्यञ्जननस्याद्यैरतिगुह्योपदंशिना ॥ ११३ ॥
मनोह्वा सैंधवं हिंगुमालतीपल्लवानि च ।
गोशकृद्रसपिष्टानि गुलिका वृश्चिकापहा ॥ ११४ ॥
अर्कस्नूहीपयसा भल्लातराभाविर्तैर्मुहुर्बीजैः ।
गुलिका कृताप्रयत्नाद्वृश्चिकविषमाशुनाशयति ११५
कनकसारसुतीक्ष्णानिदिग्धिका हपुषासिद्ध-
कलांशनिषेवणात् । जयति साधु युवा धन-
कांक्षया गणिकया परिदत्तगरोषधम् ॥ ११६ ॥
पुराणवृक्षाम्लयुतं कटुत्रयं नरेण भुक्तं त्वश-
नावसाने । असारवृत्तावलयाऽर्थकांक्षया
सहान्नदत्तं विषमाशु नाशयेत् ॥ ११७ ॥

(९) त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) और अण्डके बीजोंकी गिरी दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र क्वाथ करलेवे । उस क्वाथमें

तिलके तेलको पकाकर लगानेसे बिच्छूका विष शीघ्र उतर जाता है। (१०) सिह्वालु, तगर, मृतसंजीवन रस, वत्सनाभ विष, सिरसके फूल, पत्ते इन सबको एकत्र कूट पीसकर सेवन करनेसे चूहेके विष तथा अन्यान्य जन्तुओंका विष दूर होता है। (११) देवदारु, तगर जटामांसी, फटकरी, बावची, वत्सनाभ और कूठ इन औषधियोंको एकत्र कर पीने और लेप करनेसे सब प्रकारका विष नाश होता है। (१२) सुहागेके चूर्णको पानीमें पीसकर पान, अभ्य-ञ्जन और नस्य द्वारा प्रयोग करनेसे सर्प आदि जन्तुओंका विष दूर होता है और गुह्यस्थानमें हुई उपदंश आदि व्याधियाँ नाश होती हैं। (१३) मैनासिल, सैंधानमक, हींग और चमेलीके पत्ते इनके गायके गोबरके रसमें पीसकर गोलियां बनालेवे। इन गोलियोंको खानेसे और जलमें घिसकर लगानेसे बिच्छूका विष उतर जाताहै। (१४) ढाकके बीजोंको आकके दूधमें और थूहरके दूधमें अनेक बार भावना देकर गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको पानीमें घिसकर काटे हुए स्थानपर लगानेसे और पान करनेसे बिच्छूका विष तत्काल नाश होता है। (१५) धतूरेके पत्तोंका रस, तीक्ष्ण लोहकी भस्म, कटेरीकी जड, हाऊबेर और सरसों सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको एक २ मासा परिमाण सेवन करनेसे-धन प्राप्तिकी इच्छासे वेश्याके द्वारा दिया हुआ विष या विषैली औषधिका असर शीघ्र दूर होजाता है और युवापुरुष बचजाता है। (१६) भोजन करनेके बाद पुराना चूकेका शाक और त्रिकुटा दोनोंके चूर्णको सेवन करनेसे-धनकी अभिलाषासे वेश्या स्त्रीके द्वारा अन्नके साथ दिया हुआ विष तत्काल नाश होता है॥ ११०-१३७॥

ताक्ष्यसूत रस।

सूतं गंधं टंकणं हेमयुक्तं घर्षेद्यामं मेघनादी-रसेन। गोलं कृत्वा कांतपाषाणमूषा-

मध्ये क्षिप्त्वा भूधरे तं पुटेत्त ॥ ११८ ॥
पश्चाद्धर्षेन्मेघनादीरसेन सूतः सिद्धस्त्वेष-
ताक्ष्यों विषारिः । ताक्ष्यं वंध्या भक्षयेद्रक्तिमानं-
सूतं तस्माद्यांति नाशं विषाणि ॥ ११९ ॥

पारा, गन्धक, सुहागा और सोनेके वर्क सबको समान भाग लेकर चौलाईके रसमें २ घंटेतक घोटे । फिर गोला बनाकर उसको कान्तपाषाण (चुम्बक पत्थर) की मूषामें बन्द करके ऊपरसे कपरौटीकर भूधर पुटदेवे । स्वाङ्गशीतल होनेपर गोलेको निकालकर फिर चौलाईके रसमें खरल करे तो यह ताक्ष्र्य रस सिद्ध होता है । यह रस–सब प्रकारके विषको नाश करनेवाला है । इस रसको एक २ रत्ती परिमाण लेकर बांझ ककोडेके कन्दके चूर्णके साथ सेवन करोइसके सेवनसे सम्पूर्ण विष शीघ्र नाश होते हैं११८॥११९

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां
पञ्चविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २३ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

रसायन

और उसके गुण ।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेंद्रियबलोदयम् ॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कांतिमवाप्नोति रसायनात्॥ १ ॥
पंथाः शीतं कदन्नानि वयोवृद्धाश्च योषितः ।
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः ॥ २ ॥
हलिनीरसंपिष्टौ तुल्यांशौ रसगंधकौ ।

हस्तिपर्णीलवलिकामत्स्याक्षीकल्कवेष्टितौ ॥ ३ ॥
त्रिःपक्वौ मूकमूषायां सव्योषौ वार्धकापहौ ॥ ४ ॥

रसायनके सेवन करनेसे दीर्घ आयु, स्मृतिशक्ति, सुबुद्धि, आरोग्यता, युवावस्था, प्रभा, सुन्दररूप, स्वरकी मधुरता, शरीर और इन्द्रियोंके बलकी वृद्धि, तथा वाक्सिद्धि, पुष्टि और कान्ति ये सम्पूर्ण गुण प्राप्त होते हैं। वृद्धावस्था (बुढापा) प्राप्त होनेके मुख्य पाँच कारण हैं। १ कुमार्गमें चलना, २ शीतलपदार्थोंका अधिक सेवन करना, ३ खराब, गला सडा या बासी अन्न खाना, ४ अपनेसे ज्यादह उम्रवाली या वृद्ध अवस्थावाली स्त्रीके साथ संसर्ग करना, और ५ किसी कारणसे मनमें आघात होना या मनका दूषित रहना। रसबलि प्रयोग (१) शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक दोनोंको समानभाग लेकर कलिहारीके रसमें घोटकर गोलाबनालेवे। फिर ककडीके बीज, हरफा रेवडी और मछेछी घास तीनोंको एकत्र पीसकर कल्ककरले और उस कल्कका उक्त गोलेके ऊपर एक २ अँगुल ऊँचा लेप करके सुखालेवे। फिर उसको अन्धमूषामें बन्द करके भूधरपुटमें पकावे। इस प्रकार तीनबार भूधरपुट देवे। प्रत्येक पुटके अन्तमें कलिहारीके रसमें घोटकर गोलाबनाकर उसपर उक्त कल्कका लेप करना चाहिये। इसके पश्चात् उसमें समानभाग त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर रखदेवे। इस रसको योग्यमात्रासे सेवन करने पर अलपकालमेंही वृद्धावस्था दूर होती है ॥ १-४ ॥

उदयादित्य रस ।

आवर्तिते रसपलं क्षिप्त्वा द्विपलगंधकम् ।
आर्द्रकद्रवमुष्टीनां विंशत्या मर्दितं पचेत् ॥ ५ ॥
मृद्गूढताम्रमूषायां तं गुंजाप्रमितं रसम् ।
ससर्पिर्नागरं भुक्त्वा तप्तांबुप्रसृतं पिबेत् ॥ ६ ॥

रसोऽयमुदयादित्यः स्याज्जरारजनीहरः ।
मूषां तिंदुकविस्तारामायामे षोडशांगुलाम् ॥ ७ ॥
भाण्डबाह्यस्थपादांशां वालुकाभिः प्रपूरयेत् ।
तस्यां निवेश्य द्विगुणगंधगर्भगतं रसम् ॥ ८ ॥
याममात्रं पचेच्चुल्ह्यां क्षिपेद्गंधस्य तूद्गमे ।
वायसीनागिनीमत्तमेघनादरसं क्रमात् ॥
स रसः सर्वरोगघ्नो वलीपलितजिद्भवेत् ॥ ९ ॥

(२) पारा ४ तोले और गन्धक ८ तोले दोनोंकी एकत्र कज्जली करके उसको अदरखके रसमें खरल करे । घोटते २ जब उसमें अदरखका २० तोले रस शुष्क होजाय तब उसका गोला बनाकर सुखालेवे और उसको शुद्ध ताँबेकी मूषामें बन्द करके ऊपरसे कपरौटी कर गजपुटमें पकावे । स्वांगशीतल होजानेपर गोलेको निकाल कर सम्पुट सहित खरल करलेवे । इस रसको प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण सेवन करे और ऊपरसे सोंठके चूर्णको घृतमें मिलाकर चाटे तथा १६ तोले उष्ण जलका अनुपान करे । यह उदयादित्य रस-जरा (बुढापा) रूप रात्रिको विनाश करनेके लिये बाल सूर्यके समान है । (३) तेंदूके फलके समान चौडी और १६ अंगुल-लम्बी मिट्टीकी, लोहेकी अथवा काँचकी शीशीके समान आकार वाली मजबूत मूषा बनाकर उसको बालुकायन्त्रमें तीन हिस्से गाड देवे और ऊपरका १ भाग बाहरको निकलारहने देवे । फिर उस मूषामें दो भाग गन्धक और १ भाग पारेकी कज्जली भरकर मूषाके मुहको बन्द करदेवे । फिर उस यन्त्रको चूल्हेपर चढाकर एक प्रहरतक पकावे । जब गन्धक उडजाय तब उसमें कौआठोडी, नागदौन, धतूरा, और चौलाई इन प्रत्येकके रसको क्रमसे आठ २ तोले परिमाण डाले । जब एक औषधिका रस शुष्क हो तब दूसरा रस डाले । इसप्रकार समस्त औषधियोंका रस डालनेके बाद

स्वांगशीतल होनेपर मूषाको निकालकर उसमेंसे रस निकाल लेवे और खरल करके रखलेवे यह रस-सब प्रकारके रोगोंको विनाश करनेवाला तथा वली (असमय शरीरमें झुरियें पडना) और पलित (विना समय बालोंका पकना) रोगको नष्ट करनेवाला है ॥ ५-९ ॥

रसगंधकमध्वाज्यशिलाजत्वम्लवेतसम् ।
द्विमाषप्रमितं वेगान्मासमात्राज्जरां जयेत् ॥ १० ॥
विष्णुक्रांताऽरुणाऽगास्तिक्षीरिणीतंडुलीयकैः ।
रसगंधकयोः पिष्टी स्त्रीस्तन्येन च मर्दिता ॥ ११ ॥
यवास्तिला घृतक्षौद्रमेषामुद्वर्तनं जयेत् ।
कार्श्यं जरां च षण्मासाद्विधत्ते वृद्धिमायुषः ॥ १२ ॥
शिलाजतुक्षौद्रविडंगसर्पिर्लोहाऽभयापारदताप्यभक्षः । आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशांकः ॥ १३ ॥
हेम धात्रीफलं क्षौद्रं गायत्रीरसमादृतम् ।
लिहन्ननु पिबन्क्षीरं दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥ १४॥
मधुमागधिकाविडंगसारात्रिफलाहेमघृतं सितां च खादन् । जरयानवलीढदेहकांतिः समधातुश्च समाः शतं स जीवेत् ॥ १५ ॥

(४) पारा, गन्धक, शिलाजित और अम्लबेत सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके रखलेवे । फिर प्रतिदिन दो दो मासे परिमाण लेकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे । इस रसको

एक महीनेतक सेवन करनेसे वृद्धावस्था दूर होती है । (५) विष्णु क्रान्ता, मँजीठ अशस्तके फूल, क्षीरकाकोली और चौलाईकी जड इन औषधियोंका अलग २ क्वाथ बनाकर उस प्रत्येक क्वाथमें पारे और गन्धककी कज्जलीको क्रमसे मर्दन करे । फिर स्त्रीके दूधमें खरल करके सुखालेवे । और बारीक पीसकर रखलेवे । इस रसको प्रतिदिन उपयुक्त मात्रासे सेवनकरे और जौका आटा तिल, घृत, शहद इन सबको एकत्र मिलाकर शरीरपर उवटनकरे, फिर साबुन मलकर गरम जलसे स्नान करे । इस प्रकार इस प्रयोगको ६ महीनेतक सेवन करनेसे दुर्बलता और बुढापा दूर होकर आयुकी वृद्धि होती है । (६) शिलाजीत, बायविंडग, लोहभस्म, हरड, पारेकी भस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे । फिर प्रतिदिन उचित मात्रासे शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे । इस औषधके सेवनसे दुर्बल शरीर और शुष्क धातुवाला मनुष्य पन्द्रह दिनमें पूर्ण चन्द्रमाकी समान धातुओंसे पूर्ण और पुष्ट होता है । (७) सोनेके वर्क और आमलोंका चूर्ण दोनोंको समानभाग लेकर खैरसार (कत्थे) के रसमें खरल करके और शहदमें मिलाकर सेवन करे और दूध खावे । अथवा सोनेके वर्क, आमलोंका चूर्ण और शुद्ध खैरसार (कत्था) तीनोंको समभाग लेकर एकत्र मिलालेवे, फिर तीन २ रत्ती परिमाण शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे गरम दूध पीवे तो कृश शरीरवाला और धातुओंके क्षीण होजानेसे मरणप्राय मनुष्यभी जीवित होता है और दो महीने तक निरन्तर सेवन करनेसे शरीर पुष्ट होता है । (८) पीपल, बायबिडङ्गके बीजोंकी गिरी, त्रिफला और सोनेके वर्क चारोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करके प्रतिदिन योग्य मात्रासे शहद घृत और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करनेवाला मनुष्य वृद्धावस्थासे मुक्त होकर शरीरकी नवीन कान्तिसे युक्त होता है । उसकी सातों धातुयें समानरूपसे पुष्ट होती हैं और वह सौ वर्षतक

जीता है ॥ १०-१५ ॥

ज्योतिष्मतीनाम लता पीता पीतफलोज्ज्वला ।
आषाढे पूर्वपक्षे स्याद्गृहीत्वा बीजमुत्तमम् ॥ १६ ॥
आहरेत्तिलवत्तैलं मुष्टिना वाऽपि तत्पचेत् ।
क्षीरतुल्यं चतुर्थांशमाक्षिकं तैलशेषितम् ॥ १७ ॥
ततस्तत्कोलकर्पूरत्वग्जातीफलमिश्रितम् ।
स्निग्धभाण्डगतं धान्येष्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ १८ ॥
पिबेत्सूर्योदये तैलात्पलं याति विसंज्ञताम् ।
ततः संज्ञां शनैर्लब्ध्वा ततः क्रन्दति रोदिति ॥१९॥
एवं मासे श्रुतधरः परस्मिन्सूर्यसन्निभः ।
तृतीये पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते ॥ २० ॥
खेचरः पञ्चमे षष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे ।
विष्णोः समदिनं जीवेज्जीवन्मुक्तोऽष्टमे भवेत् ॥ २१॥
भूमावरत्निमात्रायां ताम्रं तैलेन पूरयेत् ।
षण्मासं तापयेदूर्ध्वं मृदुना तुषवह्निना ॥ २२ ॥
पीत्वा माषादिनिष्क्रान्तं तत्रिवर्षान्महाकविः ॥२३॥
तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं चतुष्प्रस्थं पयः पचेत् ।
द्विप्रस्थशेषं तत्पीत्वा मासं त्रिपुरुषायुषः ॥ २४ ॥
तैलं पिबेद्घृतक्षौद्रक्षीरान्यतमामिश्रितम् ।
कुर्याच्च तैलमध्वाज्यैर्नस्यं क्षीरघृताशनम् ॥
भुक्त्वा शतायुः षण्मासात्सहस्रायुस्त्रिवर्षतः ॥ २५ ॥

मधुकेन तुगाक्षीरी पिप्पली क्षौद्रसर्पिषा ।
विडंगपिप्पलीभ्यां च त्रिफला लवणेन च ॥ २६ ॥
संवत्सरप्रयोगेण स्मृतिमेधावलप्रदा ।
भवत्यायुःप्रदा पुंसां जरा रोगनिबर्हिणी ॥ २७ ॥
खदिराऽसनभृंगसातलां कृमिशत्रूदकभाविता
मुहुः । गुडमाक्षिकसर्पिरन्विता त्रिफला
हंति जरां च वत्सरात् ॥ २८ ॥
त्रिफलामसनोदकेन पिष्ट्वा रजनीपर्युषितामयः
कपाले । मधुरां मधुना लिहन्निहनास्ति स्थविमानं
जरसं गदांश्च सर्वान् ॥ २९ ॥
कांताभ्रकाशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम् ।
शीलितं मधुसर्पिर्भ्यां व्याधिवार्धकमृत्युजित् ॥३०॥
गंधं लोहं भस्म मध्वाज्ययुक्तं सेव्यं वर्षं वारिणा
त्रैफलेन । शुभ्रे केशे कालिमा दीर्घदृष्टिः पुष्टि-
र्वीर्यं जायते दीर्घमायुः ॥ ३१ ॥
नीलज्योतिः कांतचूर्णं रुदंती धात्रीपत्रैर्वारिणा
त्रैफलेन । मध्वाज्याभ्यां वत्सरार्धप्रयोगात्कुष्ठं
शुभ्रं रोगजातं निहंति ॥ ३२ ॥
देहे दार्ढ्यं दिव्यदृष्टिः सुपुष्टिर्वीर्यं शौर्यं जायते
दीर्घमायुः ॥ ३३ ॥
ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्यं सगंधं गुंजावृद्ध्या सेव-
येन्मासमात्रम् । यावच्च स्यात्तस्तु स प्राप्य मूर्ति-
र्मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियक्ष्माः ॥ ३४ ॥

कांताभ्रत्रिफलाविडंगरजनीताप्यांब्ददेवद्रुम-
व्योषैलाग्निपुनर्नवाङ्घ्रिगिरिजांकोलैः समं गुग्गुलुम् ।
पिष्ट्वा भृंगजलेन सूक्ष्मगुटिकां खादेद्यथासात्म्यतो
मेदःश्लेष्मसमीरणोल्बणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः ॥ ३५ ॥
कांतं तुल्याभ्रसत्त्वं चरणपरिमितं हेम तत्तुल्यमर्कं
वैक्रांतं ताप्यरूपं कृमिहरकटुकैस्तुल्यभागैः समेतम् ।
लीढं देवद्रुतैलैर्विरचयति नृणां देहसिद्धिं समृद्धां
पथ्यं कल्पोक्तमुक्तं हरति च सकलान् रोगपुंजाञ्जवेन ३६
तदेतत्सर्वरोगघ्नं रम्यं कांतरसायनम् ।
सेव्यं वृष्यं सुपुत्रीयं मंगल्यं दीपनं परम् ॥ ३७ ॥
रात्रौ कांतशरावके सुचणका भिन्ना जलैः स्वादुभिः
प्रातर्मुष्टिमिताः खलु प्रतिदिनं षण्मासमासेविताः ।
हन्युः पित्तकफामयान्बहुविधं कुष्ठं प्रमेहांस्तथा
पाण्डुं यक्ष्मगदं च कामलगदं पथ्यं च तक्रं तथा॥३८
त्रिफलामस्तुसंयुक्तं कांतं सर्वरसायनम् ॥ ३९ ॥
एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं कांतस्य दिव्यामृतं
सम्यक्सिद्धरसायनं त्रिकटुकीवेल्लाज्यमध्वन्वितम् ।
हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
प्रोक्तं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः४०
सिद्धमभ्रं समं कांतं मर्दयेदार्द्रवारिणा ॥
कलांशं हेमचूर्णस्य बीजपूररसे पुनः ॥ ४१ ॥

मर्दयेत्खल्वमध्यस्थं यावत्सप्तदिनावधि ।
आढरूषरसेनैव तथा मुण्डीरसेन वा ॥ ४२ ॥
तालमूलीरसेनैव दशमूलीरसेन वा ।
तत्तद्रोगहरैः क्राथैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ ४३ ॥
त्रिफलाव्योषचूर्णं च मध्वाज्याभ्यां प्रयोजयेत् ।
पञ्चकर्मविशुद्धेन सेव्यमेतद्रसायनम् ॥ ४४ ॥
पाण्डुशोफोदरानाहग्रहणीशोषकासजित् ।
संततं सततं चैव पुराणं विषमं ज्वरम् ॥ ४५ ॥
निहन्यात्सर्वकुष्ठानि प्रमेहान्विंशतिं जयेत् ।
कांताभ्रकमिदं प्रोक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥ ४६ ॥

पालाशोलूखले तन्मलवियुजि विमर्द्योद्धृतैराढकांशैर्मिश्रं ब्राह्मीरसैस्तैर्विधिवदिह पचेत्प्रस्थमात्रं गवाज्यम् । पाठाधात्रीहरिद्रात्रिवृदुपराचितेनापि कल्केन सिद्धं योवा कीटारिकृष्णासलवणजाटिलाभिर्विलीढःसदास्यात् ॥ सौकर्यः सप्तरात्रान्मातिमतिविशदां पक्षतो मासमात्राच्चातुर्यं सत्कवित्वं चरसकलकलाऽभिज्ञतां प्राप्नुयात्सः ॥ ४७ ॥

ताप्याभ्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजकांतमंकोल्ललोहमलटंकणसैंधवं च । भृंगीरसेन वटकांश्च मसूरमात्रान्खादेद्रसायनवरं सकलामयघ्नम् ॥ ४८ ॥

(१) मालकाँगनी नामवाली लता (बेल) पीले रंगकी, छोटे फलवाली और अत्यन्त उज्वल होती है । उस माल-

कॉंगनीके उत्तम बीजोंको आषाढ महीनेके शुक्लपक्षमें लाकर उनको तिलोंके समान पेलकर तेल निकाले अथवा उनको पीसकर मुट्ठीसे दबाकर या कपडेकी पोटलीके द्वारा निचोडकर तेल निकाल लेवे और वस्त्रमें छान लेवे । फिर उसमें समान भाग दूध और तेलसे चौथाई शहद डालकर पकावे । जब पककर तेलमात्र शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे । उसको एक चिकने वर्त्तनमें या शीशीमें भरकर उसमें चव्य, कपूर, तज और जायफल इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको (तेलसे अष्टमांश) डालकर उस पात्रके मुँहको बन्द करके धानोंके ढेरमें गाडदेवे । फिर २१ दिनके बाद उसको निकालकर वस्त्रमें छानलेवे । इस तेलको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्यो- दयके समय चार तोले परिमाण सेवन करे । इसके पान करनेपर मनुष्य थोडी देरमें बेहोश होजाता है । फिर धीरे धीरे होशमें आकर चिल्लाता है और रोता है । जब उसको क्षुधा लगे तब दूध, भातका भोजन करावे । यह तेल प्रकृतिके अनुकूल होनेतक पहले दिनकी समानही रोगीकी अवस्था रखता है । परन्तु कुछ दिनों तक अर्थात् १५–२० दिनतक यह स्थिति रहती है, फिर दूर होजाती है । इस तेलको निरन्तर सेवन करनेसे एक महीनेमें मनुष्य श्रुतधर (सुनी हुई बातको याद रखनेवाला) होता है । दूसरे महीनेमें सूर्यकी समान कान्तिवाला, तीसरे महीनेमें देवताओंसे पूजनीय, चौथे महीनेमें अदृश्य अर्थात् स्थूलशरीरको गुप्त रखने वाला, और पाँचवें महीनेमें पक्षियोंके समान आकाशमें उडनेवाला होजाता है । छठे महीनेमें सिद्ध पुरुषोंके साथ इच्छानुसार मिलता है, सातवें महीनेमें विष्णुकी जितनी आयु होती है, उतने वर्षों तक जीवित रहता और आठवें महीने जन्म मरणसे मुक्त होकर अजर अमर होजाता है । (१०) भूमिमें एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें एक ताँबेका बर्तन रखकर उसमें १०० तोला माल- काँगनीका तेल भरदेवे और उस बर्तनके मुँहको किसी धातुके

पात्रसे ढककर चूनेसे उसकी सन्धियोंको बन्द करके उस गड्ढेको अच्छी तरह मिट्टीसे पाट देवे । इस प्रकार ६ महीने तक उसको गाड रक्खे । ६ महीनेके पश्चात् उस गड्ढेके ऊपरकी कुछ धूल मिट्टी हटाके धानकी भूसीकी मन्द मन्द अग्निके द्वारा उस तेलको तपावे । फिर स्वाङ्गशीतल होजाने पर उस वर्त्तनको निकालकर तेल पान करना प्रारम्भ करे । पहले दिन १ मासा, दूसरे दिन २ मासे, तीसरे दिन ३ मासे और चौथे दिन ४ मासे पीवे फिर प्रतिदिन चार २ मासेकी मात्रासे सेवन करना चाहिये इस प्रकार इस तेलको तीन वर्ष बराबर पान करनेसे मनुष्य महाकवि होजाता है । (११) मालकॉगनीका तेल ६४ तोले, घी ६४ तोले और दूध २५६ तोले तीनोंको एकत्र मिलाकर पकावे । जब पककर दूध सब जलजाय और दो प्रस्थ तेल, घि शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । इस तेलको एक महीने तक सेवन करनेसे ३०० वर्षतक मनुष्यकी आयु होती है (१२) घी, शहद और दूध इन तीनोंमेंसे किसी एकके साथ तिलका अथवा सरसोंका तेल मिलाकर योग्यमात्रासे पान करे । तेल, शहद और घी तीनोंको एकत्र मिलाकर नस्य लेवे और दूध, घी मिलाकर भोजन करे । इस प्रकार ६ महीनेतक इस प्रयोगको सेवन करनेसे मनुष्य १०० वर्षकी आयुवाला और तीनवर्ष तक सेवन करनेसे १००० वर्षकी आयुवाला होता है। (१३) शहद और वंशलोचन, शहद, घी और पीपल वाय विडङ्ग, पीपल और त्रिफला इनका समानभाग चूर्ण अथवा त्रिफला और सैंधेनमक समभागका चूर्ण इन चारों प्रयोगोंमेंसे किसी एक प्रयोगको एक वर्षतक बराबर सेवन करनेसे मनुष्योंके स्मरणशक्ति, बुद्धि और बलकी वृद्धि होती है, वृद्धाअवस्था और सबप्रकारके रोगोंसे रहित दीर्घायु प्राप्त होती है । (१४) त्रिफलाके चूर्णको खैरसार, विजयसार, भँागरा, सातला (एक प्रकारका थूहर) और वायविडङ्ग इन प्रत्येकके रसमें एक एक भावना देकर सुखालेवे । वह चूर्ण गुड,

शहद और घृतमें मिलाकर एक वर्ष तक सेवन करनेसे वृद्धावस्थाको दूर करता है। (१५) त्रिफलेके चूर्णको विजयसारके रससें पीसकर उसको लोहेके कटोरेमें भरकर और ढककर रखदेवे। रातभर रक्खा रहनेके बाद प्रातः काल उसमें मुलैठीका चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करनेसे यह प्रयोग स्थिर स्थूलता (मुटाई,) वृद्धावस्था और उसके समस्त रोगोंको नष्ट करता है। (१६) कान्ता लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शिलाजीत, शुद्ध मीठा तेलिया, रस सिंदूर और सोनामाखीकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। यह प्रयोग मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु इन तीनोंको जीतनेवाला है। (१७) शुद्ध गन्धक और लोहभस्म दोनोंको समानभाग लेकर मधु और घृतमें मिश्रित करके सेवन करे और ऊपरसे त्रिफलेका जल पान करे। इस प्रकार एक वर्षतक इस रसायनको सेवनकरनेसे सफेद बाल काले होजाते हैं, दिव्यदृष्टि होती है, शरीरकी पुष्टि, वीर्य्यकी वृद्धि, और दीर्घायु प्राप्त होती है। (१८) बावची और कान्तलोहको समान भागलेकर रुद्रदन्ती, आमलोंके पत्ते और त्रिफला इनके रसमें क्रमसे एकएक भावना देकर सुखाकर रखलेवे। फिर प्रतिदिन योग्यमात्रासे और घृतमें मिलाकर ६ महीनेतक सेवन करे। इस औषधके प्रयोगसे अनेक प्रकारके रोगोंके साथ उत्पन्न हुआ श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है। शरीरमें दृढता दिव्यदृष्टि, अत्यन्त पुष्टि, वीर्य्यवृद्धि, शूरता और चिरायुकी उत्पत्ति होती है। (१९) मालकाँगनीका तेल, घी और शुद्ध गन्धक तीनोंको समानभाग लेकर एकत्र पकावे। फिर शीतल होजाने पर जो उसको एक २ रत्तीकी मात्रासे लेकर एक मासेकी मात्रातक सेवन करे अथवा शुद्ध गन्धकको मालकाँगनीके तेल और घीमें मिलाकर उक्त परिमाणसे सेवन करे तो शरीरके समस्तरोग निर्मूल होते हैं और वह मनुष्य जबतक जीवित रहता है तबतक अत्यन्त कान्तिवाला, बुद्धिमान्, दिव्य-

दृष्टिवाला और राजयक्ष्मा रोगसे निर्मुक्त होता है । (२०) कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, त्रिफला, वायविडङ्ग, हल्दी, सोनामाखीकी भस्म, नागरमोथा, देवदारु, त्रिकुटा, इलायची, चीता, पुनर्नवाकी जड,शिलाजीत और अङ्कोलके बीज इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । उस चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको भाँगरेके रसमें खरल करके छोटी छोटी गोलियाँ बनालेवे । इन गोलियोंको मनुष्य प्रकृतिके अनुकूल मात्रासे सेवन करेतो मेद (चर्वी) , कफ, वायु और सन्निपात इनके द्वारा तथा अन्यान्य कारणोंसे उत्पन्न होनेवाले भयंकर रोगोंमें विशेष लाभ होता है । (२१) कान्तलोहभस्म ४ भाग,अभ्रकभस्म४ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग,ताम्रभस्म १ भाग, वैक्रान्तभस्म, सोनामाखीकी भस्म, वायविडङ्ग और त्रिकुटा ये प्रत्येक उक्त सब औषधियोंकी बराबर २ भाग लेकर सबको अलग २ बारीक पीसकर खरल करलेवे और शीशीमें भरकर रखदेवे । फिर इसको प्रतिदिन देवदारुके तेलमें मिलाकर यथोचित मात्रासे चाटे तो यह रस मनुष्योंके शरीरको अत्यन्त दृढ, कान्तिमान् और वृद्धावस्थासे मुक्त करता है । एवं सब प्रकारके रोगसमूहोंको शीघ्र नष्ट करता है । इसलिये इस सम्पूर्ण रोगोंको हरनेवाली श्रेष्ठ कान्तरसायनको अवश्य सेवन करना डाहिये । यह अत्यन्त पुष्टिकारक, सुपुत्रदायक, मङ्गलजनक और अत्यन्त अग्निप्रदीपक है । (२२) रात्रिके समय एक कान्तलोहके वर्त्तनमें एक मुठी उत्तम चनोंको शीतल, मधुर जलसे भिजोकर रखदेवे । फिर प्रतिदिन प्रातः काल शौचादिसे निवृत्त होकर उनको चाबलिया करे । इस प्रकार ६ महीनेतक चनोंको सेवन करनेसे पित्त और कफके द्वारा होनेवाले राग, अनेक प्रकारके कुष्ठ, प्रमेह,पाण्डु, यक्ष्मा और कामला ये सब व्याधियाँ दूर होती हैं इसपर मट्टेका पथ्य सेवन करना चाहिये । (२३) कान्तलोहकी भस्मको उचित मात्रासे त्रिफलेके क्काथ और दहीके पानीमें मिला-

कर सेवनकरे तो इससे समस्त रसायनोंके समान उत्तम गुण प्राप्त होता है। (२४) कान्तलोहकीभस्म, त्रिकुटा और वायविडङ्ग तीनोंको समानभाग लेकर एकत्र खरल करलेवे। फिर प्रतिदिन चार २ मासेकी मात्रासे शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे। उत्तम प्रकारसे सिद्ध की हुई यह दिव्यामृत नामक रसायन वृद्धावस्था, मृत्यु और सम्पूर्ण रोगोंको विनाश करती है, और सत्पुत्रको प्रदान करती है। पूर्वकालमें श्रीमहादेवजीने कालयवनके पितासे पुत्रोत्पत्तिके लिये यह प्रयोग कहाथा, अत एव उसके कालयवन जैसा पराक्रमी पुत्र हुआ। (२५) अभ्रकभस्म और कान्तलोह भस्म दोनोंको समभाग लेकर अदरखके रसमें खरल करे, फिर उसमें सोलहवाँ भाग सुवर्णका चूर्ण अथवा सोनेके वर्क मिलाकर बिजोरेनींबूके रसमें सात दिनतक घोटे । इसके पश्चात् वैद्य अड्डूसा, गोरखमुण्डी, मुसली और दशमूल इन प्रत्येकके रसमें एक एक भावना देकर जिन जिन रोगोंको शमन करनेके लिये यह रस तैयार करना हो, उन्हीं उन्हीं रोगोंको हरनेवाली औषधियोंके रसमें सात २ वार भावना देकर सिद्ध करे। प्रथम वमन विरेचनादि पञ्चकर्मोंसे शरीरको शुद्ध करके फिर इस रसायनको यथोचित मात्रासे त्रिफला और त्रिकुटेके चूर्णके साथ शहद और घृतमें मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। पाण्डु, शोथ, उदररोग, अफरा, संग्रहणी, धातुशोष, खाँसी, सन्ततज्वर, सततज्वर, पुराणाज्वर, विषमज्वर, सब प्रकारके कुष्ठ और बीसों प्रकारके प्रमेह इन सब रोगोंको नष्ट करनेके लिये यह कान्ताभ्रक नामक रसायन अत्युत्तम कहीगई है। (२६) ब्राह्मीके नवीन पत्रोंको लाकर जलसे साफ करके ढाककी लकडीकी बनी हुई ओखलीमें डालकर खूब कूटे, फिर कपडेमें निचोडकर उसका एक आढक (२५६ तोले) परिमाण रस निकाले। पाढ, आमले, हल्दी और निसोत इन प्रत्येकके आठ आठ तोले चूर्णको थोडेसे उक्त रसके साथ खरल करके

कल्क बनालेवे । उस कल्कको शेष रसमें घोलकर उसमें एक प्रस्थ गौका घी मिश्रित करके विधिपूर्वक पकावे । जब पककर रस सब जलजाय और घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । जो बायविडंग, पीपल, सैंधानमक और जटामांसी इनके समान भाग मिश्रित कपडछन किये हुए ३ मासे चूर्णमें ६ मासे यह घृत मिलाकर सात दिनतक सेवन करे तो वह मनुष्य विद्वानोंके बीचमें अत्यन्त निर्मल और सूक्ष्म बुद्धिवाला होता है । १५ दिन अथवा एक महिनेतक सेवन करनेसे चतुरता, अपूर्व कवित्वशक्ति और सम्पूर्ण श्रेष्ठ कलाओंमें निपुणता प्राप्त करता है । (२७) सोनामाखीकी भस्म, अभ्रक भस्म, त्रिकुटा, तूतियाकी भस्म, शिलाजीत, कान्तलोहभस्म अंकोलके बीज, मण्डूर भस्म, सुहागा और सैंधानमक इन सबको सम भाग लेकर भाँगरेके रसमें खरल करके मसूरकी बराबर गोलियाँ बनाकर सेवन करे । यह उत्तम रसायन समस्त रोग समूहोंको नाश करनेवाली है ॥१६–४८॥

कमलाविलासरस ।

लोहाभ्रौ बलिसूतहाटकपविस्तुल्यं कुमारीरसे
पक्वैरण्डदलैर्निबध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम् ।
क्षिप्त्वोद्धृत्य विचूर्णितं मधुवरायुक्तं यथासात्म्यतः
कृष्णात्रेयविनिर्मितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम् ।४९।
आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वप्रमेहप्रणु-
त्कासं पञ्चविधं तथैव तनुगं पाण्डुं च हिक्कां व्रणम् ।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्च मन्दानलं
कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्याञ्जयेत् ५०॥
गोप्याद्गोप्यतरः सुखेन सुलभः सर्वत्र सिद्धोऽस्त्ययं
वैद्यानां कमलाविलासकरसोऽत्यंतं यशस्कारकः ५१

(२८) लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, सुवर्णभस्म और हीरेकी भस्म सबको समान भाग लेकर घीग्वारके रसमें खरल करके गोला बनालेवे। उस गोलेको पके हुए अण्डके पत्तोंसे लपेटकर डोरेसे खूब मजबूत करके बाँधदेवे और उत्तम धानोंके ढेरमें गाडकर तीन दिनतक रक्खा रहनेदेवे। फिर चौथे दिन उसको निकालकर बारीक पीसलेवे और शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको अपनी जठराग्निके बलाबलके अनुसार और प्रकृतिके अनुकूल उचित मात्रासे त्रिफलेके चूर्ण और शहदमें मिलाकर सेवन करे। कृष्णात्रेयमुनिका निर्माण किया हुआ यह रस सर्व प्रकारके रोग और वृद्धावस्थाको नष्ट करनेवाला और सुख प्रदान करनेवाला है। यह श्रेष्ठ रसायन इच्छानुसार कार्य करनेवाली पाचों प्रकारकी खाँसी, शरीरकी पाण्डुता, हिचकी, व्रण, कफ, वात, हलीमक, मन्दाग्नि, खुजली, कुष्ठ, विसर्प, विद्रधि, मुख रोग, अपस्मार आदि सम्पूर्ण रोगोंको निर्मूल करनेवाली है। इस रसको गोप्यवस्तुसेभी अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये; क्योंकि यह सर्वत्र सहजमेंही सबको प्राप्त होसकता है और सिद्धिप्रदान करती है। यह कमलाविलास रस वैद्योंको अत्यन्त यश प्रदान करनेवाला है॥ ४९-५१॥

लक्ष्मीविलास रस।

वेदेन्दुनेत्राङ्करसाङ्कभागा भूसूतगंधोषणतिंदुटंकाः। भृंगार्द्रगुंजाजवनीनवाभिर्भाव्यं त्रिशः स्वेद्यमदोऽर्कपत्रे॥ लक्ष्मीविलासः स विशाललक्ष्मीं तनौ तनोति क्षयिणः प्रयोगैः॥ ५२॥

(२९) लोहभस्म ४ भाग, पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, मिरच आठ भाग, कुचला ६ भाग, सुहागा ८ भाग सबको एकत्र

पीसकर भाँगरा, अदरख, चौंटलीकी जड, तुलसी और शतावर इन औषधियोंके रसमें क्रमसे तीन २ दिन तक भावना देकर गोला बनालव । उस गोलेको आकके पत्तोंमें लपेटकर थोडी देर तक मन्द मन्द अग्निके द्वारा स्वेददेवे । फिर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे । यह लक्ष्मीविलास रस नियमपूर्वक सेवन किये जानेसे क्षयरोगीके शरीरमें विशाल शोभाको विस्तृत करता है ॥ ५२ ॥

सौश्रुतनारिकेल ।

वाराहीमुशलीकंदकनकाऽहिखरस्तथा ।
वानरीफलसंयुक्तं चूर्णयित्वा पृथक् पृथक् ॥ ५३ ॥
कार्पासमज्जदुग्धेन उत्कलय्य यथाक्रमम् ।
भावनासप्तकं दत्त्वा सूर्यतापे विशोषयेत् ॥ ५४ ॥
नारिकेरं च संभृत्य द्वारं रुध्वा यथाविधि ।
गोदुग्धेन तु तत्कल्पषोडशद्वयमात्रतः ॥ ५५ ॥
दर्व्या संवर्तितं भाण्डे यथा दार्ढ्यं न याति च ।
शीतं [illegible]कृतं पक्वमाज्येन प्रपचेन्नरः ॥ ५६ ॥
जाती[illegible] लवंगं च एलाचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
निष्पन्नं शाणमात्रं तु गृहीत्वा प्रपिबेत्पयः ॥ ५७ ॥
वातरोगान्प्रमेहांश्च बलक्षयमथोल्बणम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण प्रशमं याति सर्वतः ॥ ५८ ॥
वृद्धोऽपि तरुणत्वं स प्रहर्षति सदा नरः ।
सौश्रुताख्यं नारिकेलं गुरुणा परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

(३०) वाराही कन्द, मुसली, धतूरेकी जड, खसखस और कौंचके बीज इन सबको समान भाग लेकर पृथक् पृथक् चूर्ण करके प्रत्येक चूर्णको बिनौलोंके दूधमें क्रम क्रमसे भिजो देवे। फिर सबको एकत्र मिलाकर बिनौलोंके रसमें सात भावना देवे और प्रत्येक भावनाके अन्तमें सूर्यकी तीक्ष्णधूपमें सुखालिया करे। इसके पश्चात् उस चूर्णको नारियल (गोलाके) भीतर भरकर उसके मुँहको अच्छे प्रकारसे बन्द करके उसको कल्कसे ३२ गुने गो दुग्धके साथ कढाईमें डालकर पकावे और करछीसे चलाताजाय जिससे कि वह गोला खूब जलकर फट न जाय। जब सब दूध जलजाय तब उस गोलेको निकालकर शीतल करके जलसे धोकर पीसलेवे। फिर घीमें भूनकर उसमें जायफल, लौंग और इलायचीका चूर्ण मिलाकरके शीशीमें भरकर रखदेवे। इस प्रकार सिद्ध की हुई इस औषधको प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण लेकर सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे। यह रस सातादिन तक सेवन करनेसे संपूर्ण वात रोग, प्रमेह, बल क्षय, और सब प्रकारके भयंकर रोगोंको शीघ्र शमन करता है। इसके सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्यभी तरुण होजाता है और वह मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है। यह सौश्रुत नारिकेल रसायन परम्परागत गुरुओंके द्वारा वर्णन की गई है॥५३-५९॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

वाजीकरणम् ।

वाजीकरणके गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान् ।
पुष्टिस्तुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संस्थितम् ॥ १ ॥
वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः ।

तद्वाजीकरणं विद्धि देहस्योजस्करं परम् ॥ २ ॥
शुक्रं तु चिन्ताव्यायामव्याधिभिर्देहकर्षणात् ।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥ ३ ॥
तस्मात्प्रयोगान्वक्ष्यामि दुर्बलानां बलप्रदान् ।
सुखोपयोगाद्बालानां भूयश्च बलवर्धनान् ॥ ४ ॥
शुद्धकायो यथाशक्ति वृष्ययोगान्प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

बिषयी मनुष्यको वाजीकरण औषधियोंका निरन्तर सेवन करना चाहिये । शरीरकी पुष्टि, मनमें प्रसन्नता और गुणवान् सन्तानका उत्पन्न होना ये सब गुण वाजीकरणमें रहते हैं । जिसके सेवनसे मनुष्य घोडेकी समान अत्यन्त बलवान् होकर विना किसी विघ्न बाधाके निरन्तर स्त्रियोंके साथ रमण करसके उसको वाजीकरण जानना चाहिये । वाजीकरण औषध शरीरकी ओजधातुकी अत्यन्त वृद्धि करती है । अधिक चिन्ता अधिक परिश्रम, रोग आदिके कारण शरीरके सूखनेसे, लंघन करनेसे और स्त्रियोंको अत्यन्त भोगनेसे वीर्य नाश होता है । इसलिये दुर्बल मनुष्योंको बल प्रदान करनेवाले और सुखपूर्वक बालकोंके बलकी वृद्धि करनेवाले प्रयोगोंको मैं ग्रन्थकार कहता हूँ । वैद्य प्रथम वमन, विरेचनादिके द्वारा यथाशक्ति शारीरिक शुद्धि करके फिर पौष्टिक प्रयोगोंको प्रयोग करे ॥ १–५ ॥

वाजीकरण शशांक रस ।

मुशलीकदलीकंदवाजिगंधाकसेरुकैः ।
मर्दितं हेमसूताभ्रं मूषास्थं पुटपाचितम् ॥ ६ ॥
शाल्मलीचूर्णसंयुक्तं वासराण्येकविंशतिः ।
भक्षयित्वा चतुर्माषं गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥ ७ ॥

सर्वांगोद्वर्तनं कुर्यात्सयवैः शाल्मलीरसैः ।
अन्वहं मधुराहारः सहस्रं रमते स्त्रियः ॥
शशांकोऽयं रसः प्रोक्तो वाजीकरणपूर्वकः ॥ ८ ॥

सुवर्णभस्म, पारेकी भस्म(रससिन्दूर) और अभ्रकभस्म तीनोंको समान भाग लेकर एकत्र मिलालेवे । फिर मुसली, केलेका कन्द, असगन्ध और कसेरू इन प्रत्येकके रसके साथ क्रमसे खरल करके मूषामें रखकर पुटपाक करे । जब स्वांगशीतल होजाय तब चूर्ण करके उसमें समान भाग सेमलके गोंदका चूर्ण मिलाकर खूब बारीक खरल करके रखलेवे।जो मनुष्य इस रसको प्रतिदिन चार २ मासे परिमाण भक्षण करके गोदुग्धका अनुपान करता हुआ २१ दिन तक सेवन करे और सेमलके रसमें जौ पीसकर उनसे सारे शरीरमें उबटन करके स्नान करे । एवं मधुर पदार्थोंका आहार करे तो वह हजारों स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है । इसको वाजीकरण शशांक रस कहते हैं ॥ ६–८ ॥

कामदेव रस ।

हेमपादयुतः सूतो मर्दितः शाल्मलीरसैः ।
कदलीकंदनिर्यासे क्षीरेक्षुरसगोघृते ॥ ९ ॥
माक्षिके चासकृत्स्विन्नः शाल्मलीक्षीरगोक्षुरैः ।
शर्करामलकद्राक्षामुशलीमाषमाक्षिकैः ॥ १० ॥
युक्तो रंभाफलं दत्त्वा कामदेव इति स्मृतः ।
सेवनादूर्ध्वलिंगः स्याद्द्रावयेद्वनिताशतम् ॥ ११ ॥

सोनेकी भस्म अथवा सोनेके वर्क १ भाग और पारेकी भस्म (रस सिन्दूर) ४ भाग दोनोंको सेमलके गोंदके रसमें एक दिनतक घोट करके गोला बनालेवे । उस गोलेको कपडेमें बाँधकर दोला-यन्त्रमें अधर लटका करके केलेके कन्दके रसमें तथा दूध, ईखका

रस और गौका घी इन तीनों मिले हुए पदार्थोंमें एवं शहद, और समान भाग मिश्रित सेमलकी जडके रस, दूध और गोखुरूके क्राथमें क्रमानुसार एक २ दिन तक स्वेददेवे । फिर खूब बारीक खरल करके उसको शीशीमें भरकर रखदेवे । इसके पश्चात् खाँड, आमलोंका चूर्ण, दाख, मुसली और उडद इनके समान भाग मिश्रित बारीक चूर्णको और उक्त रसको समान भाग लेकर शहदमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । और ऊपरसे केला भक्षण करना चाहिये इसको कामदेव रस कहते हैं । इस रसके सेवनसे ऊर्ध्वलिङ्ग (ऊपरको खडा हुआ है लिङ्ग जिसका ऐसा) पुरुष सैकडों स्त्रियोंको द्रवित करसकता है ॥ ९-११ ॥

मदन सुन्दर रस ।

गंधकेन रसः पिष्टः कल्हाररसमर्दितः ।
विपक्वो वालुकायन्त्रे वृष्यो मदनसुंदरः ॥ १२ ॥

गन्धकके साथ समान भाग पारेको पीसकर दोनोंकी कज्जली करलेवे । उसको लाल कमलके रसमें घोटकर विधिपूर्वक बालुकायन्त्रमें पकावे । और स्वांग शतिल होजानेपर बारीक चूर्ण करके सेवन करे । यह मदनसुन्दर रस अत्यन्त पौष्टिक है ॥ १२ ॥

पूर्णचन्द्र रस ।

कामदेव इह सोच्चटारसो रक्तपुष्पमुनिसार-
भावितः । पूर्णचंद्र इति विश्रुतो रसः
प्राणिनां चरमधातुपूरकः ॥ १३ ॥
रहस्यं कुसुमास्त्रस्य शृंगारस्याऽधिदैवतम् ।
कार्मणं सुदृशामूचे रसत्रयमिदं हरः ॥ १४ ॥

उपर्युक्त कामदेव रसको चोंटलीकी जड और लाल

फूलकी अगस्तियाके रसमें एक एक बार भावना देनेसे उसीको पूर्ण चन्द्ररस कहते हैं। यह रस मनुष्योंकी शुक्रधातुको पूर्ण करनेवाला है और कामदेवका रहस्य तथा शृङ्गार रसका अधिष्ठातृ देवता कहाजाता है। सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंको वशीभूत करनेवाले इन उपर्युक्त तीनों रसोंको श्रीमहादेवजीने वर्णन किया है ॥१३-१४॥

मदनसुन्मद्रस ।

मासार्धमात्रं हरजं विमर्द्य रसेन मोचस्य रसेन तेन । त्रिःसप्तसंख्यानि दिनानि गंधं तत्सम्मितं गोघृतमध्यपक्कम् ॥ १५ ॥

विभाव्य तेनैव विशोष्य युंज्यात्काचस्थयोर्नागलतादलेन । तयोर्विमर्द्याथ निषेव्यदुग्धं पिबेन्निशायां कदलीफलं तत्॥ १६ ॥

मदनं मदयन्मदमुज्ज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् । सुरतैः सुखदैर्गतविच्यवनैर्भवसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ १७ ॥

पारेको १५ दिनतक मोचरस (सेमलका गोंद) के रसमें घोटकर उसमें गोघृतमें शुद्ध की हुई समानभाग गन्धक मिलाकर फिर २१ दिनतक मोचरसके रसमें खरल करके सुखालेवे । इसके पश्चात् दोनोंको कॉचके बर्त्तनमें भरकर नागरबेलके पानके रसके साथ एक दिनतक घोटकर सुखालेवे । फिर इस रसको रात्रिमें यथोचित मात्रासे सेवन करके ऊपरसे दुग्धपान करे और केला भक्षण करे। यह रस कामदेवको उत्तेजित करता है। कामदेवके मदको प्रकाशित करता है और सैकडों स्त्रियोंको अत्यन्त विह्वल करता है। अस्खलित वीर्यवाले और सुखोत्पादक सम्भोगके द्वारा सांसारिक आनन्दको प्राप्त करनेकी इच्छावाले मनुष्योंको तो यह रस सन्मित्रकी समान है ॥ १५-१७ ॥

कुसुमायुध रस।

सूतस्य द्विपलं चतुष्पलमितो गंधो मृतं काञ्चनं
पादन्यूनपलं सुवर्णविमलातार्प्यं रसेनोन्मितम्।
लोहं कांतमलस्तथा सितघनं कर्षोन्मितावेकशो
हन्तव्यं दरदेन लोहमखिलं चूर्णं ततो मर्दितम् ॥ १८॥
मूषायां विगतावृतौ सिकतया यन्त्रे कृते स्थापये-
द्ब्राह्मीवारि दिनं निधेहि तदनु प्रत्येकमेकात्र्यहम्।
वासाकुञ्जरशुंठिकात्रिकटुकं मेषी च निर्गुंडिका
तालीकुञ्जरशुण्डिकाहुतवहस्तोयानि दत्त्वा पचेत् १९
ततस्तं निखिलांभोभिर्विमर्द्य पुटयेल्लघु।
निर्यासैः शाल्मलेर्ग्राह्यो वल्लत्रयमितो रसः।
वलीपलितनाशार्थं त्रिमासं मधुराशनः ॥ २० ॥
सुरतेषु सुलोचनाशतैर्गतवीर्यश्च्यवनैर्मनोयदि।
तदमुं रसमाश्रयाश्रयं कुसुमास्त्रस्य चिराय धन्विनः २१
यदि संति सहस्रशः स्त्रियश्चतुराश्लेषमनोहराः
प्रसन्नाः। सुकवेरिव गुंफना गिरां रसुसोऽनेन युवा
रसेन भूयात् ॥ २२ ॥

पारा ८ तोले, गन्धक १६ तोले, हिंगुलमें की हुई सुवर्ण भस्म ३ तोले, सोनामाखीकी भस्म ८ तोले, रूपामाखीकी भस्म ८ तोले, सिंगरफके द्वारा की हुई लोहभस्म १ तोला और कान्तलोहमल (मण्डूर) की भस्म १ तोला इन सबको एकत्र खरल करके खुले हुये मुँहवाली मूषामें भरकर उस मूषाको वालुकायन्त्रमें रख नीचे

अग्नि जलावे और मूषामें ब्राह्मीका रस डालता जावे। जब रस सूखजाय तब उसमें उतनाही रस और डाल देवे अर्थात् एक दिनमें २४ घंटे बराबर एक एक घंटेमें रस डालता रहे और बीच २ में उसको चलाताजाय। फिर अडूसेके कोमल पत्ते, सोंठ, त्रिकुटा, मेढासिंगी, निर्गुण्डी, ताड, गजपीपल और चीता इन प्रत्येकके रसको क्रमसे तीन तीन दिन तक मूषामें डालकर पकावे। (इन आठों औषधियोंके रसको अखंड अग्नि जलाता हुआ २४ दिन और २४ रात तक बराबर डालता रहे ।) जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब मूषामेंसे उस रसको निकालकर उपर्युक्त आठों औषधियोंके रसमें क्रमशः एक २ दिन तक खरल करके रात्रिमें लघु वाराहपुट देवे। फिर बारीक पीसकर शीशीमें भरकर रखदेवे। इस रसको प्रतिदिन सेमलके गोंदके चूर्णमें तीन २ रत्ती परिमाण मिलाकर सेवन करना चाहिये और मधुर पदार्थोंका आहार करना चाहिये। तीन महीने तक इसको सेवन करनेसे वली और पलित रोग नाश होता है। सुन्दर नेत्रोंवाली सैकडों स्त्रियोंके साथ सुरतक्रीडा करनेमें चिरकालतक अस्खलित वीर्य रखनेकी इच्छावाला मनुष्य कामदेवके आश्रय रहनेवाले इस रसको सेवन करे। प्रसन्न मुखवाली, आलिङ्गन करनेमें चतुर और मनको हरनेवाली यदि हजारों स्त्रिया हों तो उनकोभी जैसे महा कविकी वाणीकी रचना क्षणभरके लियेभी क्षीण नहीं होती, उसी प्रकार इस रसके सेवनसे युवा पुरुष सन्तुष्ट करता हुआ अर्थात् सुरतक्रीडाका आनन्द भोगता हुआ क्षीण नहीं होता ॥ १८–२२ ॥

सूतेन्द्र रस ।

मुक्ताफलं प्रवालं च सुवर्णं रौप्यमेव च ।
रसो गंधश्च तत्सर्वं तोलैकैकं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
रक्तोत्पलैः पत्ररसैर्मर्दयेत्पत्तलीकृते ।

मर्दयेत्तत्पुनर्दत्त्वा गंधं माषचतुष्टयम् ॥ २४ ॥
तन्मध्ये गंधकं दत्त्वा मर्दयेत्तदनंतरम् ।
शीक्ष्याकाचघटीमध्ये सन्निरुध्य प्रयत्नतः ॥ २५ ॥
वालुकायंत्रमध्यस्थां कृत्वा काचघटीं ततः ।
पाकस्तत्र तथा कार्यो भवेद्यामत्रयं यथा ॥ २६ ॥
काचपात्रेसमाकर्षेत्सिद्धं सूतं ततः परम् ।
भक्षयेद्रत्तिकाः पञ्च रोगैराक्रांतयुग्गलः ॥ २७ ॥
भोजनं पूर्वरोगोक्तं यत्नतः कारयेद्भिषक् ।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ॥ २८ ॥
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभंगं च नाशयेत् ।
मासेनैकेन सूतेन्द्रो रोगनाशाय कल्पते ॥ २९ ॥
शालयो मुद्गयुक्ताश्च गोधूमा भोजने हिताः ।
घृतं गव्यं तथा क्षीरं स्निग्धं पथ्यं प्रयोजयेत् ॥
पारावतस्य मांसं च तित्तिरेर्लावकस्य च ॥ ३० ॥

सच्चे मोती, मूँगेकी पिष्टी, सुवर्ण भस्म, चाँदीकी भस्म, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक इन औषधियोंको एक २ तोला लेकर लाल कमलके पत्तोंके रसमें एक दिन तक खरल करे। जब वह खूब पतली होजायँ तब उसमें चार मासे गन्धक डालकर उक्त रसके साथ घोटकर सुखालेवे। पश्चात् उसको आतसी शीशीमें भर-कर ऊपरसे कपरौटी करके बालुकायन्त्रमें रखकर तीन प्रहर तक तीक्ष्ण अग्निके द्वारा पकावे। जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब रसको निकालकर बारीक खरल करके शीशीमें भरकर रखदेवे। वैद्य इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह रस प्रत्येक रोगसे आक्रान्त और पीडायुक्त मनुष्यको पाँच २ रत्ती परिमाण सेवन करावे और

पूर्वरोगोंमें कहे हुये मधुर पदार्थों (अर्थात् दूध, घी खाँड आदि) का भोजन करावे । यह सूतेन्द्र रस अत्यन्त दुर्बल शरीरको बलवान् और वीर्यकी वृद्धि करता तथा ध्वजभङ्गरोगको नष्ट करता है । एक महीने तक सेवन करनेसे सब प्रकारके रोगोंको नाश कर सकता है । इसपर भोजनमें शालिधानोंके चावल, मूँग, गेहूँ आदि अन्न हितकारी हैं । एवं गोघृत, गोदुग्ध, स्निग्ध पदार्थ, पायरेका मांस, तीतरका मांस और लवापक्षीका मांस ये सब पथ्य रूपसे प्रयोग करने चाहिये ॥ २३–३० ॥

मदनकामदेव रस ।

गोलं गंधकसूतयोस्त्रिकटुकक्काथेन बध्वाऽथ भू-
कुष्माण्डान्तरवास्थितं विपिहितं तेनैव लिप्त्वोपरि ।
मापैद्वचंगुलमाज्यपक्कमथ तत्कूष्माण्डमध्याद्धरे-
त्तच्चूर्णेन च सम्मिते सुरकृताचूर्णस्य मुष्टिद्वयम् ॥ ३१ ॥
जयाशतावरी कृष्णा कपिकच्छूफलं तिलाः ।
प्रत्येकं पलसंमाना यवाः पञ्चपलोन्मिताः ॥ ३२ ॥
तावन्मोचफलं द्वौ च यष्टी मुष्टिद्वयं शुभा ।
निक्षिप्य सप्त सप्ताऽत्र भावनाः क्रमशश्चरेत् ॥ ३३ ॥
महाबलाबलानागबलाभिर्द्राक्षयाऽपि च ।
कृष्णाधात्रीक्षुभिश्चापि दन्तपात्रे निवेश्य च ॥ ३४ ॥
मत्स्यण्डिकायुतं वल्लद्वयमानं भजेन्निशि ।
अनुपानमिह प्रोक्तं धारोष्णं सुरभेः पयः ॥ ३५ ॥
दोषमात्रवर्जं हत्वा कुर्याद्वीर्यप्रवर्धनम् ।
ध्वजोत्साहं तथा स्त्रीषु वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥

अलं मलयवायुना कुमुदबांधवेनाप्यलं
मधुव्रतसखायिनः कलितपञ्चमाः के पिकाः ।
अतो भज विशंकितं रतिसरोजिनीभास्करं
मनोजपरिदैवतं मदनकामदेवं रसम् ॥ ३७ ॥

पारे और गन्धकको समान भाग लेकर दोनोंकी एकत्र कज्जली करके त्रिकुटेके क्वाथमें घोटकर गोला बनालेवे । और सुखालेवे । फिर एक विदारीकन्दको थोडा सा तराशकर भीतरसे खाली करके उसमें उस गोलेको रखदेवे और उसके काटे हुए टुकडेसे उस छिद्रको ढककर उसके ऊपर उडदोंकी पिट्ठीका दो अङ्गुल ऊँचा लेप करके सुखालेवे । फिर एक कढाईमें घी भरकर उसको चूल्हे पर चढा करके नीचे अग्नि जलावे । जब घी खूब गरम होजाय तब उसमें उक्त गोलेको डालकर पकावे । पकते २ जब वह खूब लाल हो जाय तब उसको पका हुआ जानकर नीचे उतार लेवे और विदारीकन्दमेंसे उस रसको निकालकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर आठ तोले उस चूर्णमें तुलसीके पत्तोंका चूर्ण ८ तोले, भाँग, शतावर, पीपल, कौंचके बीज और तिल ये प्रत्येक चार २ तोले जौका चूर्ण २० तोले, सेमलके फलोंका चूर्ण ८ तोले और मुलैठीका चूर्ण ८ तोले मिलाकर सबको एकत्र खरल करलेवे फिर सहदेई, खिरैंटी, गंगेरन, दाख, पीपल, आमले और ईख इन प्रत्येक औषधियोंके रसकी क्रमसे सात सात भावना देकर सुखालेवे और बारीक पीसकर हाथीदाँतके बनेहुए बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इस रसको प्रतिदिन रात्रिमें दो दो रत्तीकी मात्रासे खाँडमें मिलाकर सेवन करे और इसके ऊपर धारोष्ण गोदुग्धका अनुपान करे । यह रस स्त्रियोंके ऋतुसम्बन्धी समस्त दोषोंको नष्ट करके ऋतुको सुधारता है । वीर्यकी अत्यन्त वृद्धि करताहै । ध्वजभङ्गरोगको शमन करके स्त्रियोंमें रमण करनेके समय इन्द्रियको जाग्रत करता है

और अत्युत्तम वाजीकरण है । कामदेवके जागृत करनेकी इच्छावाले मनुष्यको कमलोंके स्पर्शसे सुगन्धित मलयाचलकी वायुके सेवनसे, चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी और भौंरोंके मित्र कोकिलाओंके पञ्चम स्वरवाले मधुर गायनोंको श्रवण करनेसे भी क्या लाभ अर्थात् इनकी कुछ आवश्यकता नहीं । इस लिये निश्शंक होकर केवल रतिरूपी कमलिनीको प्रकाशितकरनेवाले और कामदेवके अधिष्ठातृदेव इस मदनकामदेव रसको सेवन करना चाहिये ॥ ३१-३७ ॥

कामधेनु रस ।

हेमाभ्रसत्त्वकांताऽर्काः प्रत्येकं पलमात्रकाः ।
एकत्र द्राविताः सर्वे कर्षभूनागसत्त्वकाः ॥ ३८ ॥
पलविंशतिसूतेन तैश्च पिष्टीं प्रकल्पयेत् ।
शतधा पातयेत्सूतं पिष्टीं कृत्वा पुनश्च तैः ॥ ३९ ॥
शिष्टं द्विपलिकं सूतं सन्यासाद्भस्मतां नयेत् ।
भस्मीभूते रसे तस्मिञ्छिष्टे चैकपले ततः ॥ ४० ॥
वज्रं निष्कमितं चाभ्रसत्वं षट्पलिकं क्षिपेत् ।
द्विपलं गंधकं शुद्धं द्विदिनं मर्दयेत्ततः ॥ ४१ ॥
तत्सर्वं लोहजे पात्रे क्षिप्त्वा च मृदुवह्निना ।
शाल्मलीमूलजं क्राथं चत्वारिंशत्पलोन्मितम् ॥ ४२ ॥
जारयेद्रसराजस्य दत्त्वा दत्त्वाऽल्पमल्पकम् ।
स्वांगशीतं रसं हृत्वा सुगाढं परिमर्दयेत् ॥ ४३ ॥
नालीपातेन तत्क्राथरजो दुग्धं प्रदापयेत् ।
ततः करण्डके क्षिप्त्वा यत्नेन स्थापयेत्खलु ॥ ४४ ॥
गुंजामात्रः स च घृतयुतः सेवितो हन्ति रोगा-

स्तत्तद्दोषप्रभवकुटिलान्दुःखसाध्यान्समस्तान् ।
दद्याद्दीप्तिं जठरशिखिनं स्त्रीशतं सेव्य वृष्य-
स्थैर्यं कुर्यादपि च वपुषो नामतः कामधेनुः ॥४९ ॥

उत्तम प्रकारसे शुद्ध किया हुआ सुवर्ण ४ तोले, शतपुटी अथवा सहस्रपुटी अभ्रक भस्म ४ तोले, शुद्ध कान्तलोह ४ तोले शुद्ध ताम्र ४ तोले और कैंचुओंका सत्त्व १ तोला इन सबको एक मूषामें भरकर अग्निमें फूँक करके द्रुति करलेवे । जब सब रस मिल कर एकम एक होजायँ तब अग्निसे नीचे उतारकर शीतल करके खरल करलेवे । फिर उसके साथ ८० तोले शुद्ध पारा मिलाकर पारेकी पिट्ठी बनालेवे । उस पिट्ठीको उन रसों तिर्यक् पातन यन्त्रमें डालकर पारेको उडावे जब सब पारा उडजाय तब फिर उतनेही सुवर्णादि रसोंके साथ उतनेही पारेकी पिट्ठी बनाकरके उक्तविधिसे पारेको उडावे । इस प्रकार सौ बार पारेको उडाना चाहिये । जब पारा उडते २ आठ तोले शेष रहजाय तब उसको अग्निके द्वारा भस्म करलेवे । उस पारेकी भस्म होजाने पर जब ८ तोले पारेमेंसे ४ तोले पारा शेष रहजाय तब उस पारेकी भस्ममें हीरेकी भस्म ४ मासे अभ्रकभस्म २४ तोले और शुद्ध गन्धक ८ तोले डालकर दो दिनतक खरल करे । फिर सबको लोहेकी कढा-ईमें डालकर उसके नीचे मन्द मन्द अग्निसे जलावे और सेमलकी जडका क्वाथ उसमें थोडा २ डालता जावे । जब क्वाथ सूखजाय तभी उसमें और थोडासा क्वाथ डालदेवे । इस प्रकार १६० तोले क्वाथ डालकर पारेको जारण करे फिर स्वांगशीतल होजानेपर रसको निकालकर बारीक पीसलेवे । इसके पश्चात् उस पारेको उक्त क्वाथ और कल्कके साथ नालिका यन्त्रके द्वारा दग्ध करके शीशीमें भरकर यत्नपूर्वक रक्खे । यह रस एक २ रत्ती घीमें मिला-कर सेवन करनेसे पृथक् पृथक् दोषोंसे उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त

भयङ्कर और कष्टसाध्य सम्पूर्ण रोगोंको समूल नष्ट करता है जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता है सैकडों स्त्रियोंके भोगने योग्य वीर्यकी वृद्धि तथा स्थिरता उत्पन्न करता है और शरीरको अत्यन्त दृढ बनाता है । इसको कामधेनु रस कहते हैं ॥ ३८--४५ ॥

उमापति रस ।

कृष्णाभ्रकस्य धान्याभ्रं कृत्वा भृंगांबुनि क्षिपेत् ।
तस्मिंश्च तुत्थकं देयं सूक्ष्मं ताप्यभवं रजः ॥ ४६ ॥
टंकणं चाग्निना भृष्टं तावदेव विनिक्षिपेत् ।
छागास्थिसंभवं चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
रसभस्माष्टमांशं च गुडगुंजापुरस्तथा ।
पश्चाज्येन विनिष्पिष्य गोलीकृत्य विशोष्य च ॥४८॥
ततो नूतनभाण्डस्य जलघृष्टेन पाण्डुना ।
विलिप्य वटिकाः सर्वा हरेत्सर्वं पुरोक्तवत् ॥ ४९ ॥
महाभ्रसत्त्वमेतत्स्यादेकमप्यखिलार्तिनुत् ।
त्रिफलाक्वथितैः सार्धं पुटितं च शतावधिम् ॥ ५०॥
इत्थं महाभ्रसत्वं तन्मृतं शाणचतुष्टयम् ।
एकशाणमितं सम्यग्रसराजस्य भस्म च ॥ ५१ ॥
एकशाणमितं गंधं त्रिफला च त्रिशाणिका ।
कांतपात्रे क्षिपेदेतत्सर्वं घृतासितायुतम् ॥ ५२ ॥
मर्दयेदतियत्नेन यावत्स्यात्प्रहराष्टकम् ।
तत्कल्कं निक्षिपेत्कांतलोहजातकरण्डके ॥ ५३ ॥

उमापती रसः सोऽयमुमापातिरिवाऽपरः ॥ ५४ ॥
संसिद्धोऽयमुमापातिर्वररसो गुंजामितः सेवितो
मासेनैव महामयान्प्रशमयेत्पथ्यादियुक्तिं विना ।
नित्यं क्षीरघृताशनेन च पुनः संसेविते नाशये-
दब्देनैव जरां वलीपलितकैर्दद्याच्छताब्दं वयः ॥ ५५ ॥

काली अभ्रकका धान्याभ्रक बनाकर ४० तोले लेकर उसमें नीलाथोथा, सोनामाखीका बारीकचूर्ण और फूला हुआ सुहागा ये तीनों समान भाग मिश्रित ४० तोले तथा बकरेकी हड्डीका चूर्ण १० तोले एवं गुड, चोटली और शुद्ध गूगल ये प्रत्येक ५-५ तोले डालकर सबको बकरीके दुध, दही, घी, लीद और मूत्र इस प्रत्येकके साथ बारीक पीसकर भाँगरेके रसमें खरल करके बडे बडे गोले बनाकर सुखालेवे । फिर मिट्टीके एक नवीन पात्रमें उन गोलोंको रखकर उस पात्रके मुखपर ढक्कन ढक करके जलमें पीसी हुई पीली मिट्टीसे सन्धियोंको बन्द करके सुखालेवे । और गजपुटमें रखकर तीक्ष्ण अग्नि देवे। जब स्वांगशीतल होजाय तब रसको निकाल कर बारीक चूर्ण करलेवे । इस प्रकार जबतक अभ्रक निश्चन्द्र न हो तबतक उसको उर्युक्त औषधियोंके साथ मिलाकर और भाँगरेके रसमें घोट २ कर गजपुट देवे तो महाभ्रसत्त्व सिद्ध होता है । यह एक महाभ्रसत्त्वही सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला है । इस महाभ्रसत्त्वको त्रिफलेके क्वाथके साथ १० बार गजपुट देनेसे महाभ्रसत्त्वकी शुद्ध भस्म होती है । इस प्रकार की हुई महाभ्रसत्त्वकी भस्म १६ मासे, उत्तम प्रकारसे की हुई पारेकी भस्म ४ मासे, शुद्ध गन्धक ४ मासे और त्रिफलेका चूर्ण १२ मासे इन चारोंको कान्त लोहके पात्रमें एकात्रित करके घृत और मिश्रीमें मिलाकर आठ प्रहर (१२ घंटे) तक अच्छे प्रकारसे घोटे, फिर उस कल्कको कान्तलोहकी बनीहुई डिबियामें

भरकर रखदेवे । यह उमापति रस दूसरे उमापति (महादेवजी) की समान अमोघ फलको देनेवाला है । इस प्रकार उत्तम प्रकारसे सिद्ध किया हुआ यह उमापति रस एक २ रत्ती परिमाण एक महीनेतक सेवन करनेसे और विना किसी परहेजके कियेही बडे बडे भयङ्कर रोगोंको शीघ्र शमन करता है । एवं नित्यप्रति दूध, घी, खाँड, भात आदि पदार्थोंका भोजन करके एक वर्षतक इस रसको सेवन करे तो यह रस वृद्धावस्था और बली पलित रोगको नाश करता है और१००वर्षकी पूर्ण आयुप्रदान करताहै॥४६–५५॥

महाकनकसुन्दर रस ।

कांतकांचनगंधाश्मजारितं मारितं रसम् ।
चतुर्निष्कामितं चाथ स्वर्णं निष्कामितं मृतम् ॥५६॥
निक्षिप्य कांतपात्रे तु पञ्चाशन्निष्कसंमितम् ।
जारयेद्गन्धकं शुद्धमन्धेन वडवाग्निना ॥ ५७ ॥
निष्कतुल्यामिदं चूर्णं श्लक्ष्णीकृत्य प्रयत्नतः ।
निक्षिपेन्मधुसंपूर्णे घृतसुस्निग्धभाण्डके ॥ ५८ ॥
अमुनैव प्रकारेण पथ्यानां षष्टिसंयुतम् ।
त्रिशतं साधयेद्यत्नाच्छास्त्रदृष्टाविधानतः ॥ ५९ ॥
त्रिधा विभज्य तत्रैकां समादाय हरीतकीम् ।
एकपादं दिनाभ्यां च द्वितीयं दिवसैस्त्रिभिः ॥६० ॥
तृतीयं च ततः पादं चतुर्भिर्दिवसैर्भजेत् ।
एकैकां च ततः पथ्यां भजेदावत्सरं नरः ॥ ६१ ॥
जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपालितवर्जितः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो नित्यं स्त्रीशतसेवकः ॥ ६२ ॥
बलवान्वीर्यवांश्चैव पूर्णसर्वेंद्रियोदयः ।

जायते नात्र संदेह आज्ञेयं पारमेश्वरी ॥ ६३ ॥
हन्यादक्षिगदांश्च कुष्ठमखिलं मासान्तमासेवितः
पाण्डुं च ग्रहणीं प्रमेहगुदजान्गुल्मांश्च शूलामयान् ।
स्थूलत्वं च तथा महाग्निसदनं रोगांस्तथैवापरान्
न्कुर्याद्दीपनपाचनं खलु नृणां भाव्यामयारोधनम् ६४
अयं रसायनं दिव्यं महाकनकसुंदरः ॥ ६५ ॥

कान्तलोह, सुवर्ण और गन्धकके द्वारा जारण करके भस्म किया हुआ पारा १६ मासे, सुवर्णभस्म अथवा सोनेके वर्क ४ मासे और शुद्ध गन्धक५० निष्क तीनोंको कान्तलोहके पात्रमें डालकर उसको अन्धमूषामें बन्द करके वडवाग्निके द्वारा गन्धकको जारण करे। इस प्रकार जारण किये हुए इस रसको चार मासे खूब बारीक चूर्ण करके घृतसे चिकने किये हुए बर्त्तनमें डालदेवे और उसको शहदसे भरकर उत्तम प्रकारसे मिलादेवे। फिर शास्त्रोक्त विधिसे तीनसौ साठ ३६० हरडोंको पानीमें पकाकर उसे शहदसे भरे हुए बर्तनमें डालदेवे और उस बर्तनका मुँह बन्द करके एक महीनेतक रक्खा रहनेदेवे, फिर उनको सेवन करना आरम्भ करे। उसमेंसे प्रथम एक हरड लेकर उसके तीन टुकडे करके पहले दिन एक टुकडा खावे, फिर दूसरे दिनसे तीसरे दिनतक दो २ टुकडे और चौथे दिन तीन २ टुकडे भक्षण करे। इसके पश्चात् पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें दिन हरडके तीन २ टुकडे तीन बार सेवन करने चाहिये। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल एक एक हरड एक वर्षपर्यंत सेवन करनी चाहिये। इस प्रकार इस हरडको सेवन करनेवाला मनुष्य वली पलितरोगसे मुक्त होकर १०० वर्षतक जीता है। एवं सम्पूर्ण व्याधियोंसे रहित, नित्य सैकडों स्त्रियोंको सेवन करनेवाला बलवान्, वीर्यवान् और समस्त इंद्रियोंकी पूर्ण शक्तिसे सम्पन्न होता है। यह श्रीमहादेवजीने कहा है, इसलिये इसमें किञ्चित्

मात्रभी सन्देह नहीं है । यह रसएक महीनेतक सेवन करनेसे नेत्ररोग, सम्पूर्ण कुष्ठ, पाण्डु, संग्रहणी, प्रमेह, अर्श, गुल्म, शूल, स्थूलता, अत्यन्त मन्दाग्नि तथा अन्यान्य सब प्रकारके रोगोंको शीघ्र नष्ट करता है । एवं अग्निको अत्यन्त दीपन, खाद्य पदार्थका पचन और मनुष्योंके भावी रोगोंका अवरोध करता है । यह महाकनक सुन्दर रस अत्यन्त दिव्य रसायन है ॥ ५६-६५ ॥

अमृतार्णव रस ।

कृत्वा कंटकवेध्यानि पलस्वर्णदलान्यथ ।
हिंगुहिंगुलगंधाश्मताप्यनीलाञ्जनैः समैः ॥
अष्टांशरसलिप्तानि निक्षिपेदुपले त्र्यहम् ॥ ६६ ॥
कृतं चूर्णमधश्चोर्ध्वं पत्राणां विनिधाय च ॥ ६७ ॥
शतवारं पुटेत्सम्यङ् निरुत्थं भस्म जायते ।
तद्भस्माद्द्विगुणं सूतं तस्माद्द्विगुणहिंगुलः ॥ ६८ ॥
तस्माच्च द्विगुणं ताप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
रसेन मातुलुंगस्य निरंतरादिनद्वयम् ॥ ६९ ॥
तुषैः पुटत्रयं दद्याद्गोकरीषैः पुटत्रयम् ।
पुटानि दश विंशत्या छागणानां प्रकल्पयेत् ॥
त्रिंशद्भिश्छगणैर्दद्यात्पुटानामथ विंशतिम् ॥ ७० ॥
तस्मिन्वैक्रांतजं भस्म निक्षिपेत्पादमात्रया ।
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य भृंगराजानिजद्रवैः ॥ ७१ ॥
भावयेत्सप्तवाराणि सिद्ध्यत्येवममयं रसः ।
श्रीमता नंदिना प्रोक्तो रसोयममृतार्णवः ॥ ७२ ॥
गुंजाबीजमितः सिताघृतकणासंयोजितः सेवितः
कुर्याद्वृष्यमनेकशो वरवधूसंतोषसंपोषणः।

यक्ष्मव्याधिविधूननो गरहरः पर्याप्तदीप्तानलो
मूलव्याधिनिवारणः किमपरं सर्वामयध्वंसनः ॥७३॥
रम्भापक्कफलं घृतं दधिपयः क्षैरेयकं मण्डका
बालं तालफलं सिता च पललं संतानिका मोदकाः ।
खर्जूरं वरपानकं च वटकाः पुंड्रेक्षवः सारसं
गुर्वन्नं पनसं तथा शिखरिणी पथ्यं रसेऽस्मिन्मतम् ७४

चार तोले सुवर्णके कण्टक वेधी पत्र बनाकर उनमें ६ मासे पारा मिलाकर दोनोंको तीन दिनतक खरल करे । फिर हींग, सिंगरफ, गन्धक, सोनामाखी और काला सुरमा इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको सवाचार तोले लेकर एक सम्पुटमें आधा नीचे और आधा ऊपर रक्खे और उसके बीचमें पत्थरके ऊपर सोनेके पत्रोंको रखकर कपरौटी करके गजपुटमें पकावे । इस प्रकार १०० बार पुट देनेसे उत्तम प्रकारसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजाती है । उस भस्मसे दुगुना पारा, पारेसे दुगुना सिंगरफ और सिंगरफसे दुगुनी सुवर्ण माक्षिककी भस्म लेकर सबको एकत्र खरल कर लेवे । फिर बिजौरा नींबूके रसमें निरन्तर दो दिनतक घोटकर गोला बनाकर सुखालेवे, उस गोलेको सम्पुटमें रखकर ऊपरसे कपरौटी करके एक मटकेमें नीचे ऊपर धानोंकी भूसी भरकर उसके बीचमें सम्पुटको दाबकर पुटदेवे । इस प्रकार बिजौरे नींबूके रसमें घोट घोटकर तीन बार भूसीमें पुटदेवे । फिर गौके गोबरके उपलोंकी अग्निके द्वारा तीन बाराह पुटदेवे । फिर बिजौरे नींबूके रसमें घोटकर २० आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा १० पुटदेवे । इसके पश्चात् ३० आरने उपलोंकी आग्निसे २० पुटदेवे और प्रत्येक पुटके अन्तमें बिजौरे नींबूके रसमें घोटता जाय । फिर उसमें चौथाई भाग वैक्रान्तमणिकी भस्म डालकर खरल करके भांगरेके रसमें सात बार भावना देकर सुखालेवे । इस प्रकार यह

अमृतार्णव रस सिद्ध होता है । इस रसको श्रीमान् नान्दि नामवाले आचार्यने वर्णन किया है । इस रसका मिश्री, घृत और पीपलके चूर्णके साथ एक २ रत्ती परिमाण मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि होती है और वह मनुष्य अनेकों सुन्दर युवति-स्त्रियोंको सन्तुष्ट करनेमें स्थिर वीर्य होता है । यह रसराज यक्ष्मा रोगको निर्मूल करता है, विषके विकारको हरता है, जठराग्निको अत्यन्त दीपन करता, अर्शरोगको समूल नाश करता और क्या सब प्रकारके रोगोंको विनाश करनेवाला है । पकीहुई केलेकी फली घी, दही, दूध, दूधके बने पदार्थ खीर, रबडी, ताडके कच्चे फल, मिश्री, मांस, मलाई, लड्डू, खजूर, उत्तम प्रकारके शर्बत आदि पेयपदार्थ, बडे, पौंडा ईखका रस, सारस पक्षीका मांस, भारी अन्न कटहल और शिखरिणी ये सब पदार्थ इस रसपर सेवन करने उपयोगी है ॥ ६६–७४ ॥

मदन संजीवन रस ।

त्रिपलं पारदं शुद्धं गंधकं च चतुष्पलम् ।
मृतमभ्रकसत्वं च स्वर्णकांतं च कार्षिकम् ॥ ७५ ॥
द्विपलं हेमविमलं भूनागायाः पलत्रयम् ।
एभिः सर्वैश्च संपेष्य प्रकुर्यान्नष्टपिष्टिकाम् ॥ ७६ ॥
वालुकायंत्रविन्यस्तलोहपात्रे क्षिपेत्ततः ।
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं कारयेत्तदनंतरम् ॥ ७७ ॥
मण्डूकब्राह्मिकायाश्च मुसल्याश्चित्रकस्य च ।
हस्तिशुण्डयास्तथा कृष्णनिर्गुण्डया गोक्षुरस्य च ॥
रसं कुडवमानेन क्षिपेत्खल्वे मुहुर्मुहुः ॥ ७८ ॥
तत आकृष्य संपिष्य मधुना सह यत्नतः ।
मल्लमूपोदरे क्षिप्त्वा विनिरुध्य विशोष्य च ॥ ७९ ॥

दशाभिरुछगणैर्देयं पुटं संपूज्य भैरवम् ।
करण्डे क्षेपयेत्सिद्धा समभ्यर्चितकन्यकः ॥ ८० ॥
रसः ख्यातो नाम्ना भुवि मदनसंजीवन इति
द्विवल्लाभ्यां तुल्यो घृतमधुसितादुग्धसहितः ।
निपीतः सप्ताहं प्रचुरमधुराहारसहितो
नरं कुर्यान्नारीशतसुरतसुप्रीतहृदयम् ॥ ८१ ॥
हन्यादुन्मादमुग्रं क्षयगदमरुचिं कामलामम्लपित्तं
सर्वान्पित्तोत्थरोगान्रुधिरभवगदान्रक्तपित्तज्वरांश्च ।
रक्तार्शःपित्तगुल्मं सततमातिमहाऽऽनाहमन्तर्विदाहं
पाण्डुं मेहांश्च मोहं प्रदरगदमपि स्त्रीजनस्योग्रमाशु ॥ ८२ ॥

शुद्ध पारा १२ तोले, शुद्ध गन्धक १६ तोले, अभ्रकभस्म १ तोला, सुवर्णभस्म १ तोला, कान्तलोहभस्म १ तोला, सोनामाखीकी भस्म ८ तोले और कैंचुओंका सत्त्व १२ तोले इन सबको एकत्र बारीक पीसकर वालुकायन्त्रमें रक्खे हुए लोहेके तप्तखरलमें भरदेवे और उस रसको करछीसे चलाकर एकम एक करके उसके नीचे अग्नि जलाता जावे । फिर ब्राह्मी, मुसली, चीना, हाथीशुण्डा, काली निर्गुण्डी और गोखुरू इन प्रत्येक औषधिका रस सोलह २ तोले क्रम क्रमसे खरलमें वारम्वार डालता जावे । सब रसोंको क्रमशः डालदेनेके पश्चात् स्वाङ्गशीतल होजानेपर वालुकायन्त्रमेंसे तप्तखरलको निकालकर मधुके साथ बारीक पीस लेवे । उसको लोहेकी मूषामें बन्द करके कपरौटी करके सुखालेवे, फिर भैरव नाथका यथाविधि पूजन करके दश आरने उपलोंकी अग्निके द्वारा उसको पुटदेवे । जब स्वांगशीतल होजाय तब बारीक पीसकर उसको शीशीमें भरकर रखदेवे । यह रस पृथ्वीपर मदनसंजीवन

नामसे प्रसिद्ध है । इस रसको मनुष्य प्रथम कुँवारी कन्याओंका पूजन करके प्रतिदिन दो २ रत्तीकी मात्रासे घी, मधु और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करे और ऊपर दुग्ध पान करे । इस प्रकार सात दिनतक इसको सेवन करे और मधुरपदार्थोंका विशेषरूपसे आहार करे तो यह रस उस मनुष्यको सैकडों स्त्रियोंके साथ सुरत सुखका यथेच्छ आनन्द मिलनेसे प्रसन्न हृदयवाला बना देता है । तथा भयङ्कर उन्माद, क्षय, अरुचि, कामला, अम्लपित्त, सब प्रकारके पित्तजन्यरोग, रक्तविकार, रक्तपित्त, ज्वर, खूनी बबासीर, पित्त, गुल्म, सर्वदा रहनेवाला अत्यन्त भयङ्कर अफरा, आभ्यन्तारिक दाह, पाण्डु, प्रमेह, मोह और स्त्रियोंका अत्युग्र प्रदररोग इन सबको बहुत शीघ्र नाश करता है । ॥ ७९-८२ ॥

पुष्पधन्वा रस ।

रम्भाकन्दे हेमतारार्कपिष्टी पक्का यंत्रे भूधरे तं पचेत । गंधं दत्त्वा षड्गुणार्धं क्रमेण पश्चात्कांतं तेन तुल्यं क्रमेण ॥ ८३ ॥

दत्त्वा खल्वे शाल्मलीयष्टितोयैः पक्षैकं तन्मर्दये-न्नागवल्ल्याः । नीरैर्यामं पुष्पधन्वा रसः स्याद्वल्लं दद्यादस्य पूर्वोक्तयुक्त्या ॥ ८४ ॥

पुष्टिं वीर्यं दीपनं सोत्र दद्याद्धन्याद्रोगान्रोग-योग्यानुपानैः ॥ ८५ ॥

सुवर्ण, चाँदी और ताँबा इन तीनोंकी पिष्ठीको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके केलेके कन्दमें छिद्र करके उसमें भर देवे । फिर उस छिद्रको बन्द करके उसपर कपरौटीकर भूधरपुटमें पकावे । स्वाङ्गशीतल होजानेपर रसको निकालकर बारीक पीसलेवे । फिर उसमें छैगुनी गन्धक और उतनेही कान्तलोहभस्म क्रम क्रमसे

डालकर सेमल और मुलैठीके रसके साथ १५ दिनतक खरल करे । फिर नागर पानके रसमें ३ घंटे तक घोटकर सुखालेवे तो पुष्पधन्वा रस तैयार होता है । इस रसको पूर्वोक्त विधिसे प्रतिदिन एक २ रत्ती परिमाण मधु, घृत और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह रस शरीरकी पुष्टि, वीर्य्यकी वृद्धि और अग्निको दीपन करता है । इसको रोगानुसार अनुपानोंके साथ देनेसे सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ८३–८५ ॥

रसेन्द्रचूडामणि ।

सूतहेमभुजगाभ्रवङ्गकाः कांतताप्यविमलाः समाक्षिकाः ॥ भागवृद्धिमिलिता विमर्दिता धूर्तपत्रविजयासलिलेन ॥ ८६ ॥

सप्त सप्त चपलाऽमृतवल्लीभार्ङ्गिकासुरलताजलतोयैः । वारिवाहमृतयष्टिकावरीवानरीभुजगहृष्ट्युदकेन ॥ ८७ ॥

अर्धभागमहिफेनकं न्यसन्मर्दयेत्सुरसपुष्परसेन । चंदनार्ककरहाटपिप्पलीश्रावणीकृतरसौ पृथगेव।८८॥

कुङ्कुमेन च तता विभावयेन्नाभिजद्रवयुतं विभावयेत् । सिद्धिमेति रसराडयं शुभः कामिनीमदविधूननदक्षः ॥ ८९ ॥

शर्करामधुयुतो द्विमाषकः स्तम्भकृन्निधुवने वनितानाम् ॥ ९० ॥

संसेव्य सूतं न च रात्रिभोज्यं कुर्वीत पेयं पय एव केवलम् ॥ ९१ ॥

तृतीययामे रससेवनं तु कृत्वा निशायाः प्रहरे व्यतीते ॥ ९२ ॥

सेवेत कांतां कमनीयगात्रां घनस्तनीमुज्ज्वलचारु-वस्त्राम् । रत्युत्सुकां कातरलोलनेत्रां विलोलहारावलिमादधानाम् ॥ ९३ ॥

किं कामे तनुकामिनां मलयजेनावश्यजेनाशु किं किं चन्द्रेण परोपकारजनिना पुंस्कोकिलेनापि किम् ॥ ९४ ॥

सहस्रशः संति यदा तरुण्यो मदालसाः पीनपयोधरा दृढाः । तदा रसेंद्रः परिषेवणीयो विकारकारी भवतीह नान्यथा ॥ ९५ ॥

पारा १ भाग, सुवर्णभस्म २ भाग सीसेकीभस्म ३ भाग, अभ्रक भस्म ४ भाग, वङ्गभस्म ५ भाग, कान्तलोहभस्म ६ भाग, चाँदीकी भस्म ७भाग सोनामाखीकी भस्म भाग८सबको एकत्र मिलाकर धतूरेके पत्तोंके रस और भाँगके रसमें खरलकरे । फिर पीपल,गिलोय, भारंगी, अमरबेल,सुगन्धवाला,नागरमोथा,शुद्ध मीठा तेलिया,मुलैठी,शतावर, कौंच और सरहटी इन प्रत्येकके रसमें सात २ भावना देवे । इसके पश्चात् उसमें आधाभाग अफीम डालकर तुलसीके फूलोंके रसमें खरल करे । फिर चन्दन, आक, मैनफल, पीपल, मुंडी, केसर और कमलकन्द प्रत्येकके रसमें उत्तरोत्तर क्रमसे एक एक बार भावना देवे तो यह रसराज उत्तम प्रकारसे सिद्ध होता है । यह रस कामिनी स्त्रियोंके मदको विध्वंस करनेमें अत्यन्त निपुण है । इसको प्रतिदिन २ मासे खाँड और शहदमें मिलाकर सेवन करना चाहिये । यह वीर्यको अत्यन्त स्तम्भन करनेवाला और स्त्रियोंके गर्वको शमन करनेमें अतिप्रबल है । इस रसको सेवन करके रात्रिमें भोजन नहीं करना चाहिये, केवल दुग्धपान करना चाहिये । दिनके तीसरे

प्रहरमें (अर्थात् ३ घंटे) बीत जानेपर सुन्दर शरीरवाली, कठिन स्तनोंवाली, अत्यन्त उज्वल और मनोहर वस्त्रोंको धारण करनेवाली, रतिक्रीडा करनेमें उत्सुक, कातर और चपलनेत्रोंवाली तथा चञ्चल हार और शुभ लक्षणोंको धारण करनेवाली ऐसी स्त्रीके साथ सम्भोग करे । अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको यथेच्छकाम शक्तिके प्राप्त करनेमें मलयाचलकी सुगन्धित वायुके सेवनसे क्या तथा तत्काल कामोत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे क्या ? कामीजनोंका परोपकार (अर्थात् चित्तको आह्लादित) करनेवाली चन्द्रमाकी चाँदनीसे क्या ? और कोकिलाओंके मधुर स्वरवाले गानोंको श्रवण करनेसे क्या लाभ ? अर्थात् कुछ नहीं । इसलिये अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको यह रसेन्द्रचूडामणि रस सेवन करना चाहिये । इसके सेवन करनेपर फिर उनको किसीभी कामोत्तेजक पदार्थको सेवन करनेकी आवश्यकता नहीं, मनोहारी मलयाचलकी वायुकी कुछ जरूरत नहीं, कामीजनोंके चित्तको आह्लादित करना ही है परोपकार जिसका ऐसी चन्द्रमाकी चाँदनी और कोकिला मधुर स्वरवाले गानोंको सुननेकी कामके उत्तेजित करनेमें कुछभी आवश्यकता नहीं । केवल यही रस उनकी यथेष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ है । यदि जिस पुरुषके मदोन्मत्त और अत्यन्त कठिन तथा स्थूल स्तनोंवाली हजारों युवति स्त्रियाँ हों तो उस पुरुषको यह रसेन्द्रचूडामणि रस सेवन करना चाहिये। इस रसकी समान कोईभी औषध कामको जाग्रत नहीं कर सकती है । इस रसपर पथ्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, अन्यथा यह विकार उत्पन्न करता है । ॥ ८६–९५ ॥

पूर्णचन्द्र रस ।

सूतं गंधं चाश्वगंधा गुडूचीयष्टीतोयैर्वासरैकं विघृष्य । क्षुद्रं शंखं मौक्तिकं लोहकिट्टं भस्मीभूतं सूततुल्यं हि दद्यात् ॥ ९६ ॥

भूकुष्माण्डैर्वासरैकं विघृष्य गोलं कृत्वा भूधरे तं पुटेत । चूर्णं कृत्वा नागवल्लीरसेन दद्यादेवं मर्दयित्वा दिनैकम् ॥ ९७ ॥
मध्वाज्याभ्यां पूर्णचंद्रं रसेंद्रं पुष्टिं वीर्यं दीपनंचैव कुर्यात् । योज्यश्चायं पित्तरोगे ग्रहण्या-मर्शो-रोगे पित्तजे बोलयुक्तः ॥ ९८ ॥
स्त्रीणां तापे शाल्मलीनीरयुक्तो देयो मात्रां देशकालं विचिन्त्य ॥ ९९ ॥

पारा और गन्धकको समान भाग लेकर कज्जली करलेवे । फिर उसको असगन्ध, गिलोय और मुलेठी इन तीनोंका एकत्र क्वाथ बनाकर उसके साथ एक दिनतक खरल करके सुखालेवे । फिर छोटे शंखकी भस्म मोतीकी भस्म, और मण्डूरभस्म इन सबको पारेकी बराबर लेकर उनके साथ उक्त कज्जलीको मिलाकर विदारी कन्दके रसमें एक दिनतक खरल करके गोला बनाकर उसको भूधर पुटमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करके नागरपानके रसमें एक दिनतक मर्दन कर सुखालेवे और शीशीमें भरकर रखदेवे । इस पूर्णचन्द्र रसको एक या दो रत्ती परिमाण शहद और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे तो यह रस शरीरकी पुष्टि, वीर्यकी वृद्धि और अग्निको अत्यन्त दीपन करता है । इसको पित्तरोग, संग्रहणी और पित्तजनित अर्शरोगमें बोलके साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिये । तथा स्त्रियोंके प्रदर अथवा दाह होनेपर सेमलके रसके साथ देश, कालकी विचार करके यथोचित मात्रासे देना चाहिये ॥ ९६-९९ ॥

महाकल्क (दिव्यामृत रस)

धान्याभ्रकं विनिक्षिप्य मुशलीरसमर्दितम् ।
स्थाल्यांक्षिप्त्वा निरुध्याऽथापिधान्यामध्यरन्ध्रया १००

स्थाल्यधो ज्वालयेद्वह्निं यामपर्यंतमुद्धतम् ।
ततः क्षिपेत्पिधान्यां हि व्योम्नस्त्वष्टगुणं पयः ॥ १०१ ॥
जीर्णे पयसि पिष्ट्वा तत्तालमूलीरसैः पुनः ।
इत्थं हि साधयेद्व्योम त्रिवारमतियत्नतः ॥ १०२ ॥
अजादुग्धैः पुटेत्पश्चाद्वाराणि खलु विंशतिः ।
कम्पिल्लकरसेनापि विष्णुक्रांतारसेन च ॥ १०३ ॥
कदलीकंदतोयेन तालमूलीरसेन च ।
शतवारं पुटेदेवं भवेद्व्योम रसायनम् ॥ १०४ ॥
तद्व्योमभसितं ताप्यभस्म तारस्य भस्म च ।
शुल्वभस्म च तत्सर्वं समांशं परिकल्पयेत् ॥ १०५ ॥
भावयेत्सप्तधा निंबरसैर्लोध्ररसेन च ।
केतक्या मार्कवस्यापि कदल्यास्त्रिफलस्य च १०६ ॥
कोरकस्यापि सारेण तावद्वाराणि यत्नतः ।
इति निष्पन्नकल्केऽस्मिंस्तत्समां त्रिफलां क्षिपेत् ॥
भस्मसूतं सितां व्योषं चित्रकं च पृथक् पृथक् १०७ ॥
मधुना गुटिकाः कार्याः शाणेन प्रमिताः खलु ।
महाकल्क इति ख्यातो दस्राभ्यां परिकीर्तितः १०८
एकां गोलीं समारभ्य तथैकैकां विवर्धयेत् ।
चतुर्गोलकपर्यंतं मण्डले मण्डले खलु ॥ १०९ ॥
सेवितो द्वादशाब्दं तु जरामृत्युविवर्जितः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो दृढदीपनपाचनः ॥ ११० ॥

भीमतुल्यबलः श्रीमान्पुत्रसंततिसंयुतः ।
सर्वारोग्यमयो भीमसमानभुजविक्रमः ॥ १११ ॥
सर्वायाससहिष्णुश्च शीतातपसहस्तथा ।
अमन्दसंमदोपेतः प्रौढस्त्रीरातिरञ्जनः ॥ ११२ ॥
दृढसर्वेन्द्रियो भूत्वा जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं तथैवाष्टौ महागदान् ॥ ११३ ॥
मण्डलार्धेन शमयेज्ज्वरादीनां तु का कथा ।
सर्वगोरससंयुक्तं पथ्यं कार्यं रसायने ॥ ११४ ॥
रोगोचितमथान्यच्च ददति खलु रोगिणे ।
संसारसुखमिच्छद्भिः सुखं जीवितुमिच्छुभिः ॥
नित्यं रसो निषेव्योऽयं दिव्यामृतसमो गुणैः। ११५॥

धान्याभ्रकको मुसलीके रसमें घोटकर एक मटकेमें भरदेवे और उसके ऊपर जिसके बीचमें एक छेद हो ऐसा ढक्कन ढककर (ढक्कन अभ्रककी बराबर वजनमें लेवे और अभ्रकसे अठगुना दूध जिसमें आसके इतना चौडा होना चाहिये) मटकेके मुँहकी सन्धियोंको मिट्टीसे बन्द करके उसके नीचे ३ घंटेतक तीक्ष्ण अग्नि जलावे । फिर उस ढकनेमें अभ्रकसे अठगुना दूध भरदेवे । जब पककर दूध सब जलजाय तब मटकेको नीचे उतारकर शीतल करके उसमेंसे अभ्रकको निकाललेवे और फिर मुसलीके रसमें घोटकर इसी प्रकार मटकेमें बन्द करके और अठगुना दूध डालकर तीनबार यत्न पूर्वक अभ्रकको सिद्ध करे । इसके पश्चात् अभ्रकको बकरीके दूधमें घोट घोटकर बीस बार गजपुट देवे । तदनन्तर कबीलाके रस, विष्णुक्रान्ताके रस, केलेके रस और मुसलीके रसके साथ क्रम क्रमसे बीस २ बार खरल करके बीस बीस

बार गजपुट देवे । इसी प्रकार फिर पाँचों औषधियोंके मिले रसमें सौबार घोटकर १०० बार पुटदेवे तो यह व्योमरसायन सिद्ध होती है । इस विधिसे तैयार की हुई व्योमभस्म, सोनामाखीकी भस्म, चाँदीकी भस्म और ताँबेकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र मिलालेवे, फिर नीमके रस, लोधके रस, केवडेके रस, भाँगरेके रस, केलेके स्वरस, त्रिफलेके क्वाथ और भटेउरके रसके साथ क्रमपूर्वक सात २ बार भावना देकर छायामें सुखालेवे । इस प्रकार सिद्ध किये हुए इस कल्कमें त्रिफलेका चूर्ण, रससिन्दूर, मिश्री, त्रिकुटेका चूर्ण और चीतेकी जडका चूर्ण ये प्रत्येक कल्ककी समान भाग मिलाकर उत्तम प्रकारसे खरल करके शहदके संयोगसे चार २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । इस महाकल्क नामसे प्रसिद्ध रसको अश्विनीकुमारोंने कियाहै । पहले चालीस दिनतक इसकी एक २ गोली सेवन करे । फिर (४० दिनके बाद) ४० दिनतक दो दो गोली सेवन करे । तीसरी बार ४० दिनतक तीन २ गोली और चौथी बार ४० दिनतक चार २ गोली सेवनकरे । इस प्रकार इसकी एक गोलीसे लेकर ४ गोलीतक मात्रा बढाकर फिर नित्यप्रति १२ वर्षतक चार २ गोली सेवन करनेसे मनुष्य जरा, मरण और सम्पूर्ण व्याधियोंसे निर्मुक्त होकर अत्यन्त दृढ शरीरवाला और प्रदीप्त अग्निवाला होता है । उसके भुक्त पदार्थोंका उत्तम प्रकारसे पाचन होताहै और वह भीमकी समान बलवान्, अत्यन्त शोभायमान तथा पुत्र पौत्रादि सन्ततिसे युक्त होता है । सब प्रकारसे आरोग्य, भीमकी समान भुजाओंमें पराक्रमी, सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला, शीत और धूपको सहन करनेमें समर्थ, कामदेवके मदसे उन्मत्त हुई प्रौढा स्त्रीके साथ रतिक्रीडामें आनन्द करनेवाला, और सम्पूर्ण दृढ इन्द्रियोंसे युक्त होकर वह मनुष्य ३०० वर्षतक जीवित रहता है । श्वास, खाँसी, क्षय, पाण्डु और आठ प्रकारके महारोगोंको यह रस २० दिनमेंही शमन कर देताहै, फिर ज्वरादि सामान्य रोगोंकी तो बातही क्या है । इस

रसायनके सेवन करनेपर समस्त गोरसोंसे युक्त अर्थात् गोदुग्ध, घृत, दही, माखन, छाछ आदि पदार्थोंके साथ पथ्य पदार्थोंका आहार करना चाहिये और रोगके अनुकूल अन्यान्य पदार्थभी रोगीको सेवन करावे संसार सुखकी इच्छा करनेवाले तथा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी इच्छावाले मनुष्योंको गुणोंमें दिव्य अमृतकी समान यह रस नित्य सेवन करना चाहिये ॥ १००-११९ ॥

मदनमोदक ।

त्रैलोक्यविजयापत्रं घृतेनाभर्जितं कियत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता कुष्ठसैंधवधान्यकम् ॥११६॥
शठी तालीसपत्रं च कट्फलं नागकेसरम् ।
अजमोदा यवानी च यष्टी मधुकमेव च ॥ ११७ ॥
मेथी जीरकयुग्मं च सबीजं भर्जितं तथा ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ ११८॥
तावत्येव सिता ग्राह्या यावत्या याति बन्धनम् ।
घृतेन मधुना युक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ११९ ॥
त्रिसुगंधसमामुक्तं कर्पूरेणापि वासयेत् ।
स्थापयेद्घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकान् ।१२०॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ।
कासघ्नं सर्वशूलघ्नं वलीपलितनाशनम् ॥ १२१ ॥
आमवातविकारघ्नं संग्रहग्रहणीहरम् ।
सदा निषेवयेद्धीमान् रुच्यमग्निविवर्धनम् ॥ १२२ ॥
एतत्कामविवृद्ध्यर्थं नारदेन प्रकीर्तितम् ।
तेन स्त्रीणां सहस्राणि रेमे स यदुनंदनः ॥ १२३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, सैंधानमक, धनियाँ, कचूर, तामें भुनीहुई मेथी, जीरा और काला जीरा इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करके कपडेमें छान लेवे। फिर जितना इन औषधियोंका चूर्ण हो, उसकी बराबर घीमें भुनीहुई भाँगका चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलालेवे। फिर उतनी मिश्री मिलानी चाहिये, जितनीसे लड्डू अच्छी तरह बँधसके इसके पश्चात् घृत और मधुके साथ मिलाकर तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात और कपूर इनके चूर्णसे सुवासित करके लड्डू बनालेवे और घीके चिकने बर्तनमें भरकर रखदेवे। बुद्धिमान् मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नानादिसे निवृत्त होकर इन मदन मोदकोंको यथोचित मात्रासे सेवन करे। ये मोदकवात और कफके विकार, खाँसी, सब प्रकारके शूल वलीपलितरोग, आमवातरोग और संग्रहणी इन सब रोगोंको नाश करते हैं। अत्यन्त रुचि कारक और अग्निवर्द्धक है। कामकी अत्यन्त वृद्धि होनेके लिये नारदजीने इन मोदकोंको वर्णन किया है। इन्हींके प्रभावसे श्रीकृष्णचन्द्र हजारों स्त्रियोंके साथ रमण करते थे ॥११९-१२३॥

कामेश्वरमोदक ।

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगंधा वचा
मेथी मोचरसो विदारिमुसलीगोक्षूरकेक्षूरकम् ।
रंभाकंदशतावरी ह्यजमुदा माषास्तिला धान्यकं
यष्टी नागबला कचूरमदनं जातीफलं सैंधवम् ॥१२४॥
भार्ङ्गी कर्कटशृंगिका त्रिकटुकं द्वे जीरके चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी वालकम् ।
शाल्मल्यंघ्रिफलात्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेच्चूर्णा-
शाविजयासिताद्विगुणितामध्वाज्यमिश्रंतुतत ॥१२५

कर्षार्धां गुलिकां विलेह्यमथवा कृत्वा च तत्सेवये-
त्पेया क्षीरसिताऽनुवीर्यकरणे स्तंभेऽप्यलं कामिनाम् ।
रामावश्यकरः सुखातिसुखदः प्रौढांगनाद्रावकः
क्षीणे पुष्टिकरः क्षयक्षयकरो नानामयध्वंसकः १२६॥
नित्यानन्दकरो विशेषकविताबाचाविलासोद्भवं
धत्ते सर्वगुणं महास्थिरवयो ध्यानावधानेप्यलम् ।
अभ्यासेन निहंति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरा-
त्सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीनित्यनाथेन वै १२७

उत्तम प्रकारसे भस्म किया हुआ अभ्रक, कायफल, कुठ, असगन्ध, वच, मेथी, सेमलकागोंद, विदारीकन्द, मुसली, गोखुरू, तालमखाना, केलेकी फली, शतावर, अजमोद, उडद, तिल, धनियां, मुलैठी, गंगेरन, कचूर, मैनफल, जायफल, सैंधानमक, भारंगी, काकडासिंगी, त्रिकुटा, जीरा, कालाजीरा, चीता, दारचीनी इलायची, तेजपात, नागकसर, पुननवा, गजपीपल, दाख, कचूर, सुगन्बबाला, सेमलकी मुसली, त्रिफला, और कौंचके बीज इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। उस चूर्णकी बराबर घीमें भुनी हुई भाँगका चूर्ण और सबसे दुगुनी मिश्री लेकर सबको शहद और घृतमें मिश्रित करके ६-६ मासेकी गोलियाँ बनाकर सेवन करे अथवा वैसेही प्रतिदिन छः २ मासे परिमाण चाटे और ऊपरसे मिश्री मिलाकर दूध पीवे । ये मोदक कामी पुरुषोंके वीर्य स्तम्भन करनेमें पूर्ण तथा समर्थ है। एवं स्त्रियोंको वशीभूत करनेवाले अत्यन्त सुखदायक प्रौढा स्त्रियोंको द्रवित करनेवाले, शरीरके क्षीण होजानेपर उसकी पुष्टि करनेवाले, क्षय आदि नानाप्रकारके रोगोंको विध्वंस करनेवाले और नित्य आनन्द उत्पन्न करनेवाले हैं। विशेषकर वह मनुष्य

कवित्वशक्ति और वाचाल शक्तिसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके गुणोंको धारण करता है । यह प्रयोग चिरकालतक अवस्थाको स्थिर करनेवाला और ध्यान, धारणा (समाधि) आदि योगके कार्योंमें मनको जीतनेमेंभी समर्थ है । इन मोदकोंको एक वर्षतक निरन्तर सेवन करनेसे सफेद बाल काले होते हैं और मृत्युका भय दूर होता है । ये कामेश्वर मोदक सब मनुष्योंके लिये हितकारी हैं, ऐसा श्रीनित्यनाथजीने कहा है ॥ १२४–१२७ ॥

वाजीकरणमें सामान्य उपाय ।

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः सदा भवेत् ॥ १२८ ॥
कुलीरशृंग्या यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत् ।
सिताघृतपयोन्नाशी स नारीषु वृषायते ॥ १२९ ॥
स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते ॥ १३० ॥
बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत्ससितान्गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ १३१ ॥
गंधकेन समं सूतं श्वेतांकोलजटारसैः ।
त्रिदिनं मर्दितं तेन रसेन गुटिकीकृतम् ॥ १३२ ॥
रक्तचित्रकवाराहीपत्रनिर्यासपेषिते ।
सद्योहताजमांसस्य पिण्डे न्यस्तं विपाचितम् ॥ १३३ ॥
तप्ततैले मज्जयीत यावत्सिंदूरसन्निभम् ।
भक्षयेन्मधुसर्पिभ्यां गोक्षीरं च पिबेदनु ॥ १३४ ॥
स्त्रियः सेवेत तस्याग्रे यतः स्फुटति लोचनम् ।

न क्रामति रसः पुंसि क्रांते स खलु मन्मथः ॥१२५॥
सिद्धं सूतं वाजिगंधां च यष्टीं पक्त्वा दुग्धं
तत्र काश्यें ददीत। एवं वाप्यं वापयित्वा
च दद्याद्यद्वा यष्टीं मागधीं वाजिगंधाम् ॥ १२६ ॥
मध्वाज्याभ्यांशाल्मलीसत्त्वयुक्तां
शम्बूकैर्वा भर्जितैर्वाण्यमिश्रैः ॥ १२७ ॥
शुद्धं गंधं वाजिगंधां च यष्टीं शैलेयं वा सूत-
भस्माऽजगंधाम् ॥ मध्वाज्याभ्यां शाल्मली
सत्त्वयुक्तां शम्बूकैर्वा भुज्यते वाज्यमिश्रैः ॥ १२८ ॥

एक तोला मुलैठीके चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर जो मनुष्य प्रतिदिन सेवन करे और दुग्धका अनुपान करे तो वीर्यकी वृद्धि होती है और कामोत्तेजना होती है । जो मनुष्य २ मासे काकडासिंगीको दूधमें पीसकर फिर दूधमें मिलाकर पानकरे और मिश्री, घृत, दूध, भात आदिका भोजन करे तो वह मनुष्य स्त्रियोंमें वृषभकी समान शक्तिशाली होता है। कौंचके बीज और तालमखाना दोनोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपड-छान करलेवे। फिर उसमें समानभाग खाँड मिलाकर प्रतिदिन धारोष्ण दुग्धके साथ पान करनेसे मनुष्य गदहेकी समान बलवान् होता है। बकरेके अण्डकोषोंको पानीमें पीसकर १६ गुने दूधमें पकावे। जब पककर अष्टमांश दूध शेष रहजाय तब उसमें रात्रिमें काले तिलोंको भिजोकर सबेरे सुखालेवे। इस प्रकार २५ बार भावना देकर जो मनुष्य उन तिलोंको मिश्री मिलाकर भक्षण करे तो वह सैकडों स्त्रियोंको भोगनेकी अपूर्व शक्तिको प्राप्त होता है। गन्धक और पारेको समान भाग लेकर सफेद अङ्कोलकी जडके रसमें तीन दिनतक खरल करके गोला बनाकर सुखालेवे। फिर

तत्काल वध किये हुए बकरेके मांसको लालचीता और वाराही कन्दके पत्तोंके रसमें बहुत बारीक पीसकर उपयुक्त पारे गन्धकके गोलेपर दो अंगुल ऊँचा लेप करके खूब तपाये हुए तेलमें डालकर पकावे । जब वह पककर सिन्दूरकी समान लाल होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस औषधको प्रतिदिन योग्यमात्रासे शहद और घृतमें मिलाकर भक्षण करे फिर गौके दूधका अनुपान करे वह मनुष्य तत्काल सैकडों स्त्रियोंको सेवन करे । यदि मनुष्य इस रसको सेवन कर स्त्रीसेवन न करे तो उसके नेत्र फूट जाते हैं; और शरीरकी अत्यन्त हानि होती है कामोत्तेजना होनेपर वीर्य मनुष्यके नेत्र-मार्गसे बाहर निकलता है । इसको सेवन करनेवाला मनुष्य जाग्रत रहता हुआ कामको दबाकर कदापि इन्द्रिय दमन नहीं करसकता । और जो मनुष्य इस रसको सेवन करके जितेन्द्रिय होकर ब्रह्म-चर्यका पालन करसके तो वह मनुष्य निश्चय कामदेवकी समान रूपवान् होता है । पूर्वोक्त सूतेंद्र नामक रस १ रत्ती असगन्ध १॥ मासा और मुलैठीका चूर्ण ३ मासे इनको दूधमें पकाकर शरीरकी कृशतामें रोगीको सेवन करानेसे शरीर पुष्ट होता है । अथवा कूठको उक्त रसमें मिलाकर सेवन करावे । मुलैठी, पीपल, असगन्ध और सेमलका सत्त्व सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे वह चूर्ण ६ मासे और सूतेन्द्र रस १ रत्ती दोनोंको मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे शरीर पुष्ट होता है । अथवा घोंघेकी भस्म, कूठ, असगन्ध और मुलैठीके चूर्णके साथ सूतेन्द्र रसको यथोचित मात्रासे दूधमें पकाकर पीनेसे दुर्बल मनुष्य पुष्ट होता है । शुद्ध गन्धक, असगन्ध, मुलैठी, शिलाजीत, रससिन्दूर, वनतुलसीकी मञ्जरी और सेमलका सत्त्व इन सबको समान भाग लेकर शहद और घृतमें मिश्रित करके योग्यमात्रासे सेवन करे । अथवा उक्त चूर्णमें घोंघेकी भस्म और घृत मिलाकर

सेवन करे तो वीर्यस्तम्भन होता है और शरीरकी पुष्टि होती है। १२८-१३८ ॥

लिङ्गलेप-द्रावण।

शशिसूतकटंकणमागधिकं घृतसूरणमाक्षिकहेमरसम् । मुनिपत्ररसप्लुतलेपवरं युवतीमदपातनवश्यकरम् ॥ १३९ ॥
योषागर्भरजः सूतं मधुना सह लेपयेत् ।
अवश्यं द्रावयेन्नारीं शुष्ककाष्ठोपमामपि ॥ १४० ॥
सिंदूरमधुनो लेपं लिंगस्य कुरुते यदि ।
अत्यर्थं रमते नारीं द्रावयेद्वशमानयेत् ॥ १४१ ॥
कृकवाकूग्रपिच्छं तु मुद्रिकाकारकं कृतम् ।
ऊर्णनाभेः सुजालेन वेष्टयित्वाऽथ धारयेत् ॥
वामहस्तकनिष्ठायां नरो वीर्यं न मुञ्चति ॥ १४२ ॥
कर्पूरं टंकणं सूतं मुनिपुष्परसं मधु ।
मर्दयित्वा लिपेत्तेन लेपो यावत्तु तिष्ठति ॥ १४३ ॥
लिंगं तु पुण्डरीकस्य चूर्णीकृत्य प्रयोजयेत् ।
मधुना तिलकं कृत्वा रेतःस्तंभं करोत्यलम् ॥ १४४ ॥
कर्पूरं रससंयुक्तं सौभाग्यं रससंयुतम् ।
लेपाय क्रियते नित्यं नाम्ना मदनजीवनः ॥ १४५ ॥

कपूर, पारदभस्म, सुहागा, पीपल, जिमीकन्द, धतूरेके पत्तोंका रस और अगस्तियाके पत्तोंका रस इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके सुखालेवे। फिर उसको घृत और मधुमें मिलाकर लिंगपर लेप करके स्त्री प्रसंग करे। यह प्रयोग युवति

स्त्रियोंके मदको दूरकर स्त्रियोंको वशीभूत करानेवाला है । असमय पतित हुए स्त्रीके गर्भको सुखाकर किया हुआ चूर्ण और समान भाग पारा दोनोंको शहदके साथ मिलाकर लिंगपर लेप करे तो वह मनुष्य सूखे हुए काठके समान स्त्रीकोभी अवश्य द्रवित करता है। यदि सिन्दूरको शहदमें मिलाकर लिंगके ऊपर लेप करे तो अत्यन्त प्रसंग करनेपरभी वीर्यस्तम्भन होता है और वह मनुष्य स्त्रीको द्रवितकर वशमें करलेता है । कृकवाकु अर्थात् मयूर अथवा मुर्गीके तीक्ष्ण पिच्छ (पंख) को अंगूठीके समान बनाकर उसको मकडीके जालेसे लपेट करके बायें हाथकी कनिष्ठिका (कनकी) अङ्गुलीमें धारण कर मनुष्य स्त्रीप्रसंग करे तो वीर्य स्खलित नहीं होता । कपूर, सुहागा, पारेकी भस्म, अगस्तियाके फूलोंका रस और मधु इनको एकत्र खरल करके लेप करे । जबतक यह लेप रहेगा तबतक वीर्य स्तम्भित रहेगा । सफेद कमलके फूलोंकी मोटी २ पंखडियोंको सुखाकर चूर्ण करलेवे, उस चूर्णको शहदमें मिलाकर उसका तिलक करके प्रसंग करनेसे अत्यन्त वीर्य स्तम्भन होता है । कपूर और पारेकी भस्म अथवा सुहागा और पारेकी भस्मको एकत्र मिलाकर लिंगपर लेप करे तो यह मदन जीवन नामसे प्रसिद्ध रस नित्य कामदेवको जागृत रखता है अर्थात् वीर्य स्तम्भन करता और स्त्रियोंको द्रावित करता है ॥ १३९–१४९ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

लोहकल्प ।

सप्तधातुशोधनभस्म ।

अल्पमात्रोपयोज्यत्वादरुचेरप्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ १ ॥

लोहं मृतं कंदविषं सूतं चेति निगद्यते ।
कार्यः पानकषायोऽस्मिन्षोडशांशावशोषितः ॥ २ ॥
अथ पञ्चमृदा लिप्तं हेम्नः पत्रं पुटानले ।
विपचेन्नागमावाप्य रूप्यं चोर्ध्वाग्निना धमेत् ॥ ३ ॥
स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लकृतलेपनम् ।
तप्ततास्रस्य निर्गुण्ड्या रसे सिंचेत्पुनः पुनः ॥ ४ ॥
वंगं नागं रसे तस्मिंस्तन्मूलेनावचूर्णकम् ।
यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिंदुर्न सर्पति ॥ ५ ॥
तारेणावर्तते यत्तत्कान्तलोहं तु तत्स्मृतम् ।
अयसामुत्तमं सिञ्चेत्तप्तं तप्तं वरारसे ॥ ६ ॥
एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित् ।
मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटानले ॥ ७ ॥
पचेत्तुल्यस्य वा ताप्य गंधाश्महरतेजसः ।
अथवा मृतनागेन स्नुहीक्षीरेण काञ्चनम् ॥ ८ ॥
रूप्यं स्नुक्क्षीरतालाभ्यां ताम्रं मूत्राम्लगंधकैः ।
हरितालपलाशाभ्यां बंगं नागं मनोह्वया ॥ ९ ॥
पारिभद्रस्य च रसेनाऽथवा भर्जयेत्त्रपु ।
चिञ्चाक्षकेक्षुवीरद्रुबोधिवृक्षैरहिं पुनः ॥ १० ॥
अहिमाराहिदमनीवासावज्रलतार्जुनैः ।
स्त्रीस्तन्योर्हिंगुलेनायः पचेल्लिप्त्वा पुटेऽनले ॥ ११ ॥
सर्वमेव मृतं लोहं सोत्थानं यदि सेवनात् ।
शुकपूर्णाभकण्ठत्वक्स्फोटाऽरुचिविबन्धकृत् ॥ १२ ॥

पक्वं यावन्निरुत्थानं सेव्यं वारितरं हि तत् ।
कांतं पुनः कलभागताप्ये सक्षौद्रसर्पिषि ॥ १३ ॥
क्षिप्तमावर्तितं तारं स्वप्रमाणं भवेद्यदि ।
जानीयात्तन्निरुत्थानं सोत्थानं च मुहुर्मुहुः ॥
त्रिफलाक्वाथसंपृक्तं विपचेत्पुटपावके ॥ १४ ॥

अल्पमात्रामें प्रयोग करनेसे अधिक लाभ करता है, अरुचिको नष्ट करता है और मनुष्यको शीघ्र आरोग्य प्रदान करता है, इस लिये रस सब औषधियोंसे अधिक श्रेष्ठ होता है । लोहभस्म, कन्द विष और पारा इत्यादिको शास्त्रोक्त विधिसे मिश्रित करनेको रस कहते हैं । सोनेके पत्रोंको पिघलाकर उसमें १६ वॉ भाग सीसा मिला लेवे फिर नदीका गार, खेतकी मिट्टी, ईंटकी मिट्टी, खड़िया मिट्टी और बॅबईकी मिट्टी इन पाँचों मिट्टियोंको समान भाग लेकर नागरपानके क्वाथसे घोटकर उस मिट्टीका उक्त सोनेके पत्रोंपर लेप करके गजपुटमें पकावे तो सुवर्ण शुद्ध होता है । पानका क्वाथ बनानेकी विधि यह है—पानोंको १६ गुने पानीमें डालकर पकावे । जब १६ वॉ भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । थूहरका दूध, आकका दूध, सेंधानमक और जवाखार इन सबको काँजीमें अथवा नींबूके रसमें घोटकर उसका चाँदीके पत्रोंपर लेप करके उनको ऊर्ध्व अग्निके द्वारा फूँके तो चाँदी शुद्ध होती है । ताँबेके पत्रोंको बारम्बार तपाकर बार बार निर्गुण्डीके रसमें बुझावे । इस प्रकार सात बार करनेसे ताँबा शुद्ध होता है । बंग अथवा सीसेको पिघलाकर सात बार निर्गुण्डीके रसमें बुझावे । फिर उसको एक मिट्टीके बर्त्तनमें डालकर अग्निपर पिघलावे, जब वह पिघलकर पतला होजाय तब उसको निर्गुण्डीकी जडसे घोटे । घोटते २ जब बारीक चूर्ण होजाय तब उसको शुद्ध हुआ जानना चाहिये । फिर

जिस औषधिके साथ उसको भस्म करना हो, उसके रसमें घोटकर पुटदेवे। जस्तकोभी इसी प्रकार शुद्ध करना चाहिये। जिस पात्रमें भरे हुये पानीमें डालीहुई तेलकी बूँद नहीं फैलती जैसीकी तैसी रहती है और जो तारसे हिलानेसे चलती है, वह कान्तलोह सब प्रकारके लोहोंमें उत्तम कहाजाता है। उसके बारीक पत्र बनाकर तपा तपा करके त्रिफलेके काथमें बुझावे तो कान्तलोह शुद्ध होताहै। तीक्ष्णलोह अथवा अन्यसाधारण लोहभी इसी प्रकार शुद्ध होते हैं। जिस धातुओंको शुद्ध करना हो तो प्रथम उसके बारीक २ पत्र करके किसी खटाईके साथ एक दिनतक घोटे, फिर भस्म करने-वाली धातुसे चौथाई भाग पारेकी भस्म लेकर उसको खटाईमें घोट-कर उपर्युक्त धातुके साथ १ दिन तक खरल करके गोला बनालेवे और उसको सुखाकर, गजपुटमें पकावे। इस प्रकार सात बार पुट देवे सब प्रकारकी धातुयें शुद्ध होजाती हैं। अथवा जिस धातुको भस्म करनी हो तो प्रथम उसके कंटकवेधी पत्र बनालेवे। फिर सोनामाखी, गन्धक और पारा इन तीनोंको समानभाग मिश्रित पत्रोंकी बराबर लेकर खटाईमें खरल करके उक्त पत्रोंपर लेपकर गज-पुटमें पकावे। इसप्रकार सुवर्ण माक्षिक आदि औषधियोंका लेप-कर करके सातबार पुट देनेसे भस्म होजाती है। सुवर्णमाक्षिक आदि औषधियाँ पहले पुटमें जितनी मिलाई गई हो, उतनी ही प्रत्येक पुटमें मिलानी चाहिये। सोनेसे १६ वाँ भाग सीसेकी भस्म लेकर उसको थूहरके दूधमें पीसकर सोनेके पत्रोंपर लेपकरके गज-पुटमें पकावे। इस प्रकार सातबार गजपुट देनेसे उत्तम भस्म होती है। चाँदीके पत्रोंसे अष्टमांश हरताल लेकर उसको थूहरके दूधमें खरल करके पत्रोंपर लेपकर सातबार गजपुट देनेसे चाँदीकी उत्तम भस्म होती है। ताँबेके पत्रोंकी बराबर गन्धक लेकर उसको गोमूत्र और खटाईमें १ दिनतक घोटकर उक्त पत्रोंपर लेपकरके गजपुटमें पकावे। इस प्रकार सातपुट देनेसे ताँबा भस्म होजाता है। यदि

उस भस्मके सेवनसे वमन आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो फिर उसको और अधिक पुट देने चाहिये । बंगसे ८ वाँ भाग हरताल लेकर उसको ढाकके बीजोंके रसमें एक दिनतक खरल करके बंग (राँग) के पत्रोंपर लेपकर सात गजपुट देनेसे बंगभस्म होती है । सीसेसे अष्टमांश मैनसिलको फरहदके रसमें घोटकर उपयुक्त विधिसे किये हुए सीसेके चूर्णमें मिलाकर खरल करके गोला बनालेवे । फिर उसको सुखाकर गजपुटमें फूँक देवे । इस प्रकार सात बार मैनसिलको मिला २ कर सात पुटदेनेसे सीसा भस्म होजाता है। अथवा दुर्गन्धखैर, नागदमन, अडूसा, हडसंहारी और अर्जुनवृक्षकी छाल इन सबका एकत्र क्काथ बनाकर उस क्काथमें सीसेके चूर्णको खरल करके गोला बनालेवे और गजपुटमें रखकर फूँकदेवे । इसतरह ७ बार पुट देनेसेभी सीसेकी भस्म होजाती है । अथवा उक्त पाँचों औषधियोंके निकाले हुए खारको अग्निपर पिघलाकर सीसेमें थोडा २ ढालता जावे और चलाता जावे । जब वह खूब पतला होजाय तब उसको उन्हीं औषधियोंके क्काथमें घोटकरके गोला बनाकर गजपुटमें पकावे तो नागभस्म होती है । इमली, बहेडा, ईख, भिलावे और पीपल वृक्ष इन सबके स्वरसके साथ एक दिनतक बराबर जस्तको खरल करके रात्रिमें गजपुट देवे । इस प्रकार घोट घोट कर सात बार पुटदेने जस्तकी भस्म होती है । अथवा उपर्युक्त औषधियोंके खारको थोडा २ जस्तमें डालता जावे और चलाता जावे और उसके नीचे तीक्ष्ण अग्नि जलाता जावे तो भी जस्तभस्म होजाता है । तीक्ष्ण लोहसे आठवाँ भाग सिंगरफ लेकर उसको स्त्रीके दूधमें खरल करके तीक्ष्ण लोहके पत्रोंपर लेपकर उनको गजपुटमें पकावे । इस विधिसे ७ गजपुट देनेसे उत्तम लोहभस्म होती है । सम्पूर्ण धातुओंकी उत्थित (अपक्क) भस्मको सेवन करनेसे गलेमें शूल, खरास, शरीरमें फोडे, फुन्सी, अरुचि, मलविबन्ध आदि वायुके उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

इस लिये प्रत्येक धातुकी भस्म जब निरुत्थ और जलमें तैरने वाली हो जाय तब सेवन करनी चाहिये । सोनेकी भस्मको १६ वें भाग सुवर्ण माक्षिक, मधु और घृतमें मिलाकर पुट देनेपर जितनी सुवर्णभस्म डाली हो यदि उतनीही वजनमें रहे और सोना जीवित न हो तो उसको निरुत्थभस्म और जो सोना जीवित होजाय तो उसको उत्थित भस्म जानना चाहिये । इसी प्रकार अन्य सब धातुओंकी भस्मोंकोभी मधु, घृत, सुहागा, त्रिफलेका क्वाथ आदि औषधियोंमें मिलाकर बारबार गजपुटमें पकानेसे उनकी पुनरुज्जीविता नष्ट होजाती है । उनको उत्तम प्रकारसे निरुत्थ हुआ जानकर प्रयोग करना चाहिये ॥ १–१४ ॥

मृत्युहारी रस ।

अयस्पात्रं तिलोत्सेधं प्रतप्तं चतुरंगुलम् ।
एकविंशतिपर्यायं धात्र्या निर्वापयेद्रसे ॥ १५ ॥
ततः शतपलं स्थाल्यां क्षिप्त्वा धात्रीरसोत्तमम् ।
कृत्वा ततः सुपिहितं भस्मराशौ विनिक्षिपेत् ॥ १६ ॥
मासि मासि समुद्धृत्य लोहदण्डेन घट्टयेत् ।
तस्मिन्विशुष्यति प्राग्वद्रसं धात्र्या विनिक्षिपेत् १७ ॥
द्रवीभवति तत्सर्वं वत्सरात्पत्रमायसम् ।
ततः समं ततोंगुष्ठपर्वमात्रमुखेन तु ॥ १८ ॥
आयसेन स्रुवेणायस्पात्रे कल्कीकृतं ततः ।
शृतं पृथक्समांशेन सेवेत मधुसर्पिषा ॥ १९ ॥
जीर्णे साज्यं रसक्षीरयूषान्यतममिश्रितम् ।
षष्टिकोदनमश्नीयादुपयुज्येत वत्सरम् ॥ २० ॥
वर्षमन्यच्च शिष्टान्नो यंत्रितात्मा कुटीं वसेत् ।

अधृष्यो रुग्जरामृत्युशस्त्राग्निविषवारिभिः ॥
जीवेद्वर्षसहस्रं वै सर्वभावेष्वतीन्द्रियः ॥ २१ ॥
ताम्ररूप्यसुवर्णानामयमेव पृथग्विधिः ।
द्विगुणं तद्गुणोत्कर्षाज्जानीयादुत्तरोत्तरम् ॥ २२ ॥

तिलकी समान ऊँचे, चार अङ्गुल चौडे और २१ अङ्गुल लम्बे लोहेके पात्रको लेकर आग्निमें तपा तपाकर आमलोंके रसमें बुझावे । फिर घीके चिकने १ मिट्टीके वर्तनमें १०० पल आमलोंका उत्तम स्वरस या रस भरकर उसमें उक्त पात्रको डाल देवे और वर्त्तनके मुँहको अच्छी ढक्कनसे ढककर ऊपरसे कपरौटी करके राखके ढेरमें गाड देवे । इसके पश्चात् महीने महीने भरमें उसको निकालकर लोहेके मुसलेसे घोटकर फिर वैसेही बन्द करके गाड देवे । जब आमलोंका रस सूखजाय तब और रस डालदेवे । इस प्रकार एक वर्ष तक रखनेसे लोहेका पात्र गल जाता है । फिर उसको उस बर्त्तनमेंसे निकालकर लोहेकी कढाईमें डालकर मन्द मन्द आग्निसे पकावे और अँगूठेकी गाँठकी समान अग्रभागवाले लोहेके स्रुवे (दंडे) से घोट घोटकर कल्क बना लेवे । फिर उस कल्ककी तीन २ मासेकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन एकसे लेकर तीन गोली तक उन्हींकी समानभाग शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे । यदि आवश्यकता हो तो शहद और घृतको मिलाकर ऊपरसे और चाटलेवे । औषधके जीर्ण होजानेपर जब क्षुधा लगे तब घी, रस, दूध, यूष, साठी चावलोंका भात आदि पदार्थोंको मिलाकर भोजन करे । इस प्रकार एक वर्ष तक इस रसको सेवन करे । फिर दूसरे वर्षमें औषध सेवन न करे, केवल हल्के और हितकर पदार्थोंका भोजन करे और नियमित रूपसे व्यवहार करता हुआ कुटीमें बास करे । अर्थात् घरसे बाहर न निकले । दूसरे वर्षको इस प्रकार व्यतीत करके फिर इच्छानुसार आहार विहार करे । इस

प्रकार बराबर दो वर्ष तक इस प्रयोगको सेवन करनेवाला मनुष्य जीवनपर्यन्त सब प्रकारके रोग, वृद्धावस्था, मृत्यु, शस्त्र, अग्नि, विष, जलके उत्पात आदि किसीभी विकारसे ग्रसित न होकर १ हजार वर्ष तक जीता है। और सम्पूर्ण कार्योंके करनेमें अतीन्द्रिय अर्थात् (जितेन्द्रिय) होता है। ऊपर लोहका प्रयोग बताया गया है। उसमें तीक्ष्ण लोह अथवा कान्त लोहके पात्रोंको लेना चाहिये। ताँबा, चाँदी और सुवर्ण इन प्रत्येकके प्रयोगकी यही विधि है। इन धातुओंमें गुणोंका उत्कर्ष होनेके कारण उत्तरोत्तर क्रमसे एकसे दूसरेको दुगुना गुण करनेवाली जानना चाहिये। (अर्थात् लोहेसे ताँबा, ताँबेसे चाँदी, और चाँदीसे सोनेका प्रयोग दुगुना गुण करता है।) इस प्रयोगमें हरे आमलोंका स्वरस लेना चाहिये १५-२२ ॥

कान्तलोह रसायन ।

क्षिप्तं पक्वेष्टिकायंत्रे द्रावितं जलसन्निभम् ॥ २३ ॥
निषिक्तं त्रिफलाक्काथे पर्पटीभूतमायसम् ।
संचूर्ण्य तेन क्काथेन पिष्ट्वा स्थाल्यां विपाचितम् ॥ २४ ॥
षोडशांगुलगर्तान्तः संपुटे च परिक्षिपेत् ।
आर्द्रकाभीरुमुशलीविदारीभृंगहस्तिजैः ॥ २५ ॥
रसैस्तथा मुहुस्ताम्रं धान्याभ्रं कांजिके प्लुतम् ।
तेन पिष्टं घृतक्षौद्रैर्मत्स्याक्षीमेघनादयोः ॥ २६ ॥
जयन्त्यास्तीक्ष्णशार्ङ्गेयोर्मुशलीमाणिमन्थयोः ।
वज्रिणीसातलावन्ध्यावर्षाभूणां रसेन च ॥ २७ ॥
क्षीरेण च पृथक्कुर्यात्पेषणादिक्रियात्रयम् ।
कज्जलाभं त्रयं चैतद्यथा क्काथं विभावयेत् ॥ २८ ॥
पलानि पञ्च कांतस्य शुल्बकाभ्रकचूर्णयोः ।

सार्धं द्वे सप्त सप्तैव वाते पित्ते पुनः क्रमात् ॥ २९ ॥
पञ्चपादेन युक्तानि पञ्च पञ्च कफे पुनः ।
कांतताम्राभ्रके क्षिप्त्वा त्रिफलाक्वाथमाढकम् ॥ ३० ॥
प्रस्थितानि गुणस्याष्टौ क्वाथस्य पयसस्तथा ।
पलानि षोडशाज्यस्य सिञ्चेत्पाकवशात्पुनः ॥ ३१ ॥
वाताद्यपेक्षया पङ्कोत्कारिकावालुकानिभे ।
अफेने वर्णगंधाढ्ये कटूष्णे पीतसर्पिषि ॥ ३२ ॥
दंत्यादिचूर्णमावाप्य स्थापितेनेतरेण वा ।
घृतेन पेषितं भाण्डे घृतस्निग्धे निधापयेत् ॥ ३३ ॥
कुर्यात्तत्कल्पनापाको श्लेष्मणीव रसायने ।
स्वस्थः शरान्निदाघाभ्यामन्यथा कृतशोधनः ॥ ३४ ॥
घृतमाक्षिकमात्रा वा लौहे लौहेन मर्दितः ।
रसायनं द्वौ दिवसौ द्वे द्वे गुञ्जे ततः परम् ॥ ३५ ॥
द्वंद्ववृद्ध्या दिने द्वे द्वे परं विंशतिवासरान् ।
प्रातर्विंशतिगुंजानां भागौ द्वौ भागमेव च ॥ ३६ ॥
प्राग्भक्तमर्धमर्धं वा भक्षयेदुक्तकालयोः ।
एवं मात्राविभागेन व्याधिक्षीणोपि सर्वदा ॥ ३७ ॥
पश्चादष्टपलक्षीरं धारोष्णं शृतमेव वा ।
वयःस्तंभेऽनुपातव्यं व्याधौ क्वाथो यथोदितः ॥ ३८ ॥
आस्वाद्य चानु मुस्तानां निर्यासं दन्तपीडितम् ।
मूलानि भक्षयेत्तासामास्यवैरस्यनुत्तये ॥ ३९ ॥
क्रूरकोष्ठस्तु दीप्ताग्निरनुलोमयितुं मलान् ।

तप्तं क्षीरं पिबेद्भूयस्तांबूलं भक्षयेन्मुहुः ॥ ४० ॥
स्नानमर्दनविष्टम्भिविदाह्यम्लमजांगलम् ।
सप्तसप्ताहमथवा त्रिःसप्ताहं परित्यजेत् ॥ ४१ ॥
शालिमुद्गरसं सर्पिर्वैत्राग्रं बृहतीद्वयम् ।
दीर्घं पटोलं वार्ताकं तालकं मूलकन्दकम् ॥ ४२ ॥
शतावरीं सजीवंतीं शृंगाटं सुनिषण्णकम् ।
तंडुलीयकधान्याकं सराजवृक्षवास्तुकम् ॥ ४३ ॥
जांगलं शफराः कृष्णमीना रोहितमुद्गरौ ।
द्राक्षादाडिमखर्जूररम्भाकोलं च शस्यते ॥ ४४ ॥
जीर्णौषधस्तु दीप्तेऽग्नौ प्रातः पित्ताद्बुभुक्षितः ।
अर्धमात्रं पिबेत्क्षीरं सार्धमात्रं कृशो नरः ॥ ४५ ॥
दिवसाः सप्त सप्तास्मिन्दिने द्वित्रिगुणाः क्रमात् ।
जघन्यमध्यप्रवरः सेवाकालो विधीयते ॥ ४६ ॥
पूर्णक्रियेयं द्विगुणा सोत्तरा नात्र यन्त्रणा ।
यथाकालं मलोत्सर्गः शरीरोदरलाघवम् ॥ ४७ ॥
हृदयोद्गारशुद्धिश्च जीर्णलोहस्य जायते ।
लोहाप्रवृत्तौ सामत्वं लोहकिट्टप्रशांतये ॥ ४८ ॥
उष्णांबु सयवक्षारं त्रिदिनात्त्रिदिनात्पिबेत् ।
रसेनाऽगस्त्यपत्राणां विडंगं चान्तरान्तरा ॥ ४९ ॥
क्वाथमश्वत्थपत्राणां प्रसङ्गे छर्दिशूलयोः ।
सामान्यसिद्धमावाप्य भावनापुटपाचनैः ॥ ५० ॥

यथायोगयुतं पक्वं त्रिफलाक्वाथसर्पिषा ।
साधितं भक्षयेत्कांतमेकं वा केवलाभ्रकम् ॥ ९१ ॥
इह चानु पिबेत्क्षीरं न कुर्यात्तेन भोजनम् ।
मुद्गयूषं पिबेत्तोये कोष्णं वा नियतो भवेत् ॥ ९२ ॥
एतल्लोहरसायनाख्यममृतं पक्वं यथोक्तं क्रमा-
द्भुञ्जानः प्रतिवत्सरं नववपुः सार्धं तु वर्णेन्द्रियैः ।
दीर्घायुर्नवयौवनोन्नतकुचप्रौढांगनावल्लभो
माद्यद्दंतिबलो जराविरहितः पुत्रावृतः स्यान्नरः॥९३।

पकी हुई ईटके यन्त्रमें अथवा पकी हुई मूषामें कान्तलोहको डालकर फूँके। जब वह गलकर पतला होजाय तब उसको त्रिफलेके क्वाथमें बुझादेवे। जब उसकी पर्पटी होजाय तब उसका बारीक चूर्ण कर त्रिफलेके क्वाथमें एक, दिन तक खरल करके लोहेकी कढाईमें पकावे। उसके गल जाने पर फिर त्रिफलेके क्वाथमें डालकर बुझावे और उसी क्वाथमें १ दिन तक घोटकर गोला बना करके शराब सम्पुटमें बन्द कर देवे। फिर १६ अंगुल लम्बा चौडा और उतनाही गहरा जमीनमें एक गड्ढा खोदकर उसमें आरने उपलोंको भरकर उनके बीचमें उक्त सम्पुटको रखकर अग्नि जलावे। इस प्रकार पुट देनेसे जबतक जलमें तैरनेवाली भस्म न हो तबतक बराबर पुटदेवे। लगभग ४० पुट देनेसे जलपर तैरनेवाली भस्म होजाती है। इस विधिसे कान्तलोहकी भस्म तैयार करनी चाहिये। इसीके अनुसार नीचे लिखी ताम्रभस्म तैयार करनी चाहिये। अदरख, शतावर, मुसली, विदारीकन्द, भाँगरा और गजपीपल इनको समानभाग लेकर सबका एकत्र क्वाथ बनालेवे। फिर उत्तम नैपाली ताँबेकी मूषामें जलकी समान पतला गलाकर उपर्युक्त क्वाथमें बुझावे। फिर उस ताँबेको रेतीसे

रेतकर खूब बारीक चूर्ण करके उसी क्वाथमें एक दिनतक घोटकर कढाईमें डालकर पकावे। जब वह गलकर पतला होजाय तब फिर उक्त क्वाथमें बुझाकर उसी क्वाथके साथ एक दिनतक खरल करके गोला बनालेवे और उसको शराव सम्पुटमें बन्द करके पूर्ववत् १६ अंगुल लम्बे चौडे गड्ढेमें आरने उपलोंके बीचमें रखकर पकावे। इस प्रकार उक्त क्वाथमें घोट २ कर ६० पुटदेने। ताँबेकी वान्तिहर और जलपर तैरनेवाली भस्म होती है। फिर निम्नलिखित विधिसे अभ्रक भस्म तैयार करे। प्रथम काँजीमें धान्याभ्रकको तैयार करके फिर ताम्रभस्ममें कही हुई अदरख आदि औषाधियोंके क्वाथमें खरल करके गोला बनाकर सुखालेवे। फिर उसको पूर्वोक्त विधिसे गड्ढेमें रखकर आरने उपलोंकी अग्नि देवे इस प्रकार पुटदेनेसे जबतक निश्चन्द्र भस्म न हो तबतक उक्त क्वाथमें घोट घोटकर बराबर पुटदेवे। लगभग ७० पुटदेनेसे अभ्रककी निश्चन्द्र भस्म होती है। इसके पश्चात् उपर्युक्त विधिसे सिद्ध की हुई कान्तलोहकी भस्मको घी, शहद, मछैछी घास और चौलाईका शाक इन प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार खरल करे। उसके बाद उक्त विधिसे तैयार की हुई ताम्रभस्मको अरणी, मोखा वृक्ष, शार्ङ्गेरी, मुसली और सैंधानमक इन प्रत्येकके रसमें एक २ भावना देवे। फिर उपर्युक्त अभ्रक भस्मको हडसंहारी, विशेष प्रकारका थूहर, बाँझककोडा, अथवा बाँदा और पुनर्नवा इन औषधियोंके रसमें उत्तरोत्तर क्रमसे खरल करके फिर दूधमें एक भावना देकर सिद्ध करे। जिस औषधिका स्वरस न निकले, उसका क्वाथ बनालेना चाहिये। इन तीनों भस्मोंको काजलकी समान खूब बारीक पीसकर तैयार करे।

लोहरसायन बनानेकी क्रिया।

यदि वात प्रकृतिवाले रोगीके लिये यह रसायन बनानी हो तो कान्तलोहभस्म २० तोले, ताम्रभस्म ५८ तोले और अभ्रक भस्म ५८ तोले लेवे और पित्त प्राधनवाले रोगीके लिये यह रसायन बनानी हो तो कान्तलोहभस्म २० तोले, ताम्रभस्म २१ तोले

और अभ्रकभस्म २१ तोले। तथा कफ प्रकृतिवाले रोगीके लिये यह रसायन बनायाजाय तो कान्तलोह भस्म २० तोले, ताम्रभस्म २० तोले और अभ्रकभस्म २० तोले लेवे। इस प्रकार लेकर इन भस्मोंको कढाईमें डालकर उसमें एक आढक परिमाण त्रिफलेके क्वाथ और कान्तलोह भस्म, ताम्रभस्म तथा अभ्रकभस्म इन तीनोंका जितना बजन हो उससे अठगुने दूधमें मिलाकर लोहेकी कढाईमें पकावे। जब पककर पानीका सब भाग जलजाय तब उसको खूब घोटकर फिर उसमें ६४ तोले घी डालकर पकावे। वात प्रकृतिवाले रोगीके लिये यह औषध तैयार करनी हो तो कींचडकी समान पाक करना चाहिये। यदि पित्त प्रकृतिवाले रोगीको यह औषध सेवन करानी हो तो रबडीकी समान बनावे और कफ प्रकृतिवाले रोगीको सेवन करानेके लिये यह औषध गंगाजीके बालु (रेत) की समान पकानी चाहिये। जब झाग-रहित, उत्तम वर्ण और सुगन्धसे युक्त घृतके पान करनेपर स्वादमें चरपरापन और उष्णता मालूम हो तब उस पाकको अग्निसे नीचे उतारलेवे। फिर पूर्वोक्त तीनों भस्मोंके परिमाणकी बारबर आगे कहा हुआ दन्त्यादि चूर्ण लेकर उसमें उपर्युक्त विधिसे तैयार किया हुआ घृत थोडा २ डालता जावे और दोनों हाथोंसे मर्दन करता जावे। जब वह सब मिलकर एकम एक होजाय तब गोलासा बनाकर घीके द्वारा चिकने किये हुए बर्त्तनमें भरकर रखदेवे। कफके रोगोंको शमन करनेके लिये इस लोहरसायनमें जो विधि विधान की गई है, उसीके अनुसार यदि इसको विशेष रूपसे सिद्ध किया जाय तो यह रसायन सब प्रकारके रोगोंको नाश करती है और रसायनकी समान उत्तम गुण करती है। स्वस्थ मनुष्य शहद अथवा ग्रीष्मऋतुमें वमन, विरेचनादिके द्वारा शारीरिक शुद्धि करके इस रसायनको सेवन करना प्रारम्भ करे। पहले दिन एक तोला घी और १॥ तोले मधुके साथ दो रत्ती इस रसायनको

लोहेके पात्रमें लोहेके मुसलेसे घोटकर सेवन करे और दूसरे दिन भी इसी प्रकार सेवन करे। फिर इसको तीसरे दिन ४ रत्ती, चौथे दिन ४ रत्ती, पाँचवें दिन ६ रत्ती, छठे दिन ६ रत्ती, सातवें दिन और आठवें दिन आठ २ रत्ती, नववें और दशवें दिन १०–१० रत्ती, ग्यारहवें दिन और बारहवें दिन १२–१२ रत्ती तेरहवें और चौदहवें दिन १४–१४ रत्ती, १५ वें और १६ वे दिन १६–१६ रत्ती १७ वें और१८वें दिन१८–१८ रत्ती, और१९वें तथा२०वें दिन२०–२० रत्ती परिमाण उपर्युक्त विधिसे घृत और मधुके साथ लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डेसे खरल करके सेवन करे। फिर २१ वें दिनसे आगे जो इसको सेवन करना हो तो प्रतिदिन २०–२० रत्तीकी मात्रासे सेवन करे। परंतु १० रत्ती प्रातःकाल और१० रत्ती सायङ्कालमें इस प्रकार दो भाग करके सेवन करे। २० रत्तीकी मात्रा एक साथ सेवन नहीं करनी चाहिये। सम्पूर्ण व्याधियोंसे क्षीण हुआ मनुष्य अथवा रसायनके गुणोंको चाहनेवाला मनुष्य इस प्रकार मात्राका विभाग करके इस रसायनको सदैव सेवन करे। और ऊपरसे उक्त दोनों समयोंमें ३२–३२ तोले धारोष्ण दूध अथवा औटा करके शीतल किया हुआ दूध पानकरे। आयुको स्थिर रखनेके लिये और वृद्धावस्थाको निवारण करनेके लिये औषध सेवन करनेके पश्चात् १९ दिन तक तो एक वक्त २० तोले दूध पीवे और २० वें दिनसे ४० तोले दूधका दोनों वक्तोंमें अनुपान करे। परन्तु किसी रोगके होनेपर उस रोगको निवारण करनेके लिये जो इस रसायनको सेवन करना हो तो इस पर उस रोगको शमन करनेवाली किसी औषधिके क्वाथका अनुपान करे। इस औषधको सेवन करके पीछेसे नागरमोथेकी जडको दाँतोंसे चबाकर उसका रस चूसलेवे अथवा उसको खालेवे तो मुखकी विरसता दूर होती है। जिसका कोठा बहुत कठिनहो और हमेशा मल विबन्ध रहताहो वह मनुष्य इस औषधको खाकर मलको अनुलोमित करनेके लिये ऊपरसे

खूब गरम दूध पीवे और बार बार ताम्बूल भक्षण करे । इस प्रकार करनेसे कोष्ठसम्बन्धी सब विकार दूर होकर अग्नि अत्यन्त दीपन होती है । इसको सेवन करनेवाले मनुष्यको स्नान, तेलमर्दन विष्टम्भजनक, दाहकारक और खट्टे पदार्थ तथा ग्राम्यपशुओंका मांस ये सब ४९ दिन अथवा २१ दिनतक सर्वथा त्यागदेने चाहिये । इसपर शालिधानोंके चावल, मूंगका यूष, घी, वेंतका अग्रभाग, कटेरी, बडी कटेरी, बडे परवल, बेंगन, ताडके फल, मूली, शतावर, जीवन्ती, सिंघाडे, सिरिआरीका शाक, चौलाईका शाक, धनियाँ, अमलतास, बथुआ, जंगली पशुओंके मांस, शफरी नामवाली मछली, काली मछली, रोहित और मद्गुर नामक मच्छ, दाख, दाडिमी, खजूर, केला और बेर ये सब पदार्थ सेवन करने चाहिये । प्रातःकालमें इस औषधको सेवन करनेपर जब वह जीर्ण होजाय और अग्निके दीपन होनेपर भूख लगे तब इतना दूध पीवे, जितनेसे कि आधी भूखनिवृत्त होजाय।परन्तु दुर्बल मनुष्य क्षुधाके अनुसार दो तीन बार थोडा२दुग्ध पान करे इस औषधके ७ दिनतक सेवन करनेको कनिष्ठकाल, १४ दिनतक सेवन करनेको मध्यम काल और २१ दिनतक सेवन करनेको उत्तम सेवन काल कहा गया है । १४ दिन अथवा २१ दिनतक इसको सेवन करनेसे शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं रहती । २१ दिनतक इसको सेवन करके फिर यदि सेवन करनेकी इच्छा हो तो विशेष पथ्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है । यथा समय मलका त्याग, शरीर और उदरमें हल्कापन, हृदयकी शुद्धि और डकारका शुद्ध आना ये सब लक्षण लोहके जीर्ण होनेपर उत्पन्न होते हैं । और औषधके न पचनेपर आमके लक्षण प्रकट होते हैं और औषधका छूटा हुआ मैल पेटमें जम जाता है । ऐसा होनेपर उक्त विकारोंको शमन करनेके लिये गरम जलमें जवाखार डालकर तीसरे तीसरे दिनतक पीवे और बीचमें २ अगस्तियाके पत्तोंके रसमें वायविडंगको पीसकर पानकरे । यदि औषध

सेवन करनेपर वमन या शूल हो तो पीपलके पत्तोंका क्वाथ पान करना चाहिये । यदि उपर्युक्त विधिसे लोहरसायन सिद्ध न होसके तो सामान्य विधिसे अर्थात् त्रिफलेके क्वाथ और घृतके साथ भावना देकर और विधिपूर्वक पुट पाक करके सिद्ध करलेवे । इस प्रकार सिद्ध की हुई कान्तलोहकी भस्म अथवा केवल अभ्रककी भस्मको पूर्वोक्त विधिसे सेवन करनेपर भी वैसाही गुण होता है । इस कान्तलोह अथवा अभ्रकभस्मके सेवन करनेपर पीछेसे दूधका अनुपान करे, किन्तु उसीसे भोजन न करे । भोजनमें मूँगका यूष और जलमें जल अथवा औटा करके शीतल किया हुआ जलपान करे । इस लोहरसायन नामक अमृतको यथोक्त विधिसे सिद्ध करके जो मनुष्य प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें २१ दिनतक सेवन करे तो वह सुन्दर वर्ण और इन्द्रियोंकी शक्तिसे सम्पन्न नव यौवन युक्त शरीरको प्राप्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है और नव यौवनसे उन्नत स्तनोंवाली प्रौढा स्त्रियोंका प्रिय होता है । मदोन्मत्त हाथीकी समान बलवान्, और वृद्धावस्थासे रहित होकर वह मनुष्य पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त होता है ॥ २३-९३ ॥

दन्त्यादिगण ।

दंतीत्रिवृच्चित्रकहस्तिकर्णीव्योषाष्टवर्गात्रिफला विडंगम् । पलाशबीजाम्बुजजीरकैला व्याघ्री द्रवंत्यादिरिह प्रदिष्टः ॥ ९४ ॥

दन्तीकी जड, निसोत, चीता, हस्तिकर्ण (पलाशभेद), त्रिकुटा, अष्टवर्ग (मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि) की औषधियाँ, त्रिफला वायविडंग, ढाकके बीज, कमल, जीरा, इलायची, कटेरी, मूषाकानी ये सब औषधियां दन्त्यादिगणमें कहीं गई हैं ॥ ९४ ॥

ताम्रद्रुति ।

आर्द्रालकुचभृंगाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।

गंधकेन समांशेन प्रागवत्ताम्रं च मारितम् ॥ ५५ ॥
कन्दुकस्थमिह त्रिंशत्कर्षं चूर्णितगंधकम् ॥ ५६ ॥
दत्त्वाऽल्पशोऽग्निनाऽल्पेन दत्त्वा धूमं विवर्जयेत् ।
प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रसादान्निःसृतं युतम् ॥ ५७॥
तुत्थनीलशिलाज्याभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोधयेत् ।
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिका ॥ ५८ ॥
काचार्मपिल्लाभिष्यंदव्रणशुक्रगतिप्रणुत् ।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभपामादींल्लेपनाज्जयेत् ॥ ५९ ॥

अदरख, वडहल और भाँगरा इन तीनोंमेंसे किसी[1] एकके रसमें गन्धकको घोटकर समान भाग ताँबेके पत्रोंपर लेप करके पूर्ववत् ताम्र भस्म करलेवे । इस ताम्र भस्मको ३० कर्ष लेकरके एक लोहेकी कढाईमें डाले उसको मन्द मन्द अग्नि देवे और उस कढाईमें शुद्ध गन्धकका थोडा २ चूर्ण डालकर ढकेदेवे और बीच २ में उसके धुयेंको निकालता जाय । इस प्रकार ३० कर्ष गन्धकको जारन करके या उसको अग्निसे नीचे उतारकर उसमें १ प्रस्थ जल डालकर खूब मर्दन करे । जब वह फूल जाय तब उसक पानीको नितारदेवें । फिर उसमें नीलाथोथा और शिलाजीत ये प्रत्येक एक २ तोला मिलाकर खटाईके रसमें खरल करके धूपमें सुखालेवे । जब ताँबेकी द्रुति होजाय तब उसको शीशीमें भरकर रखदेवे । यह ताम्रद्रुति, घी, स्त्रीका दूध और शहदके साथ मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मोतियाबिन्द, अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द, नेत्रव्रण, नेत्रशुक्र, नेत्रगति आदि नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करती है । इस ताम्रद्रुतिको बनाते हुए जो मैल निकलता है, वह मैल लेप करनेसे दाद, किटिभकुष्ठ और खुजली आदि त्वचा विकारोंको दूर करती है ॥ ५५–५९ ॥

खण्डखाद्य रसायन ।

वासाभार्ङ्ग्यमृताभीरुवचाखादिरपुष्करैः ।
मुसलीभिक्षुकोरण्टैः सूपं चापां च मुष्टिकैः ॥ ६० ॥
पक्वेष्टशिष्टे ताम्रस्थे प्रस्थांशे खण्डसर्पिषी ।
ताप्येन रुक्मलोहस्य हतस्याप्यञ्जलित्रयम् ॥ ६१ ॥
पक्वेऽस्मिल्लेहतां याते कुस्तुंबुरु शिलाजतु ।
शृंगीविडंगत्रिफलाजातीफलकटुत्रिकम् ॥ ६२ ॥
चातुर्जातं च शुक्त्यंशं प्रस्थार्धं च मधु क्षिपेत् ।
खण्डखाद्यमिदं लीढं कर्षमात्रं रसायनम् ॥ ६३ ॥
क्षीरानुपास्य क्षपयेत्क्षयकासारुचिक्लमान् ।
शीतपित्ताम्लपित्तास्रवातपित्तास्रकामलाः ॥ ६४ ॥
कुष्ठमेहाग्निहानाहकार्श्यं शूलं च पक्तिजम् ॥ ६५ ॥

अडूसा, भारंगी, गिलोय, शतावर, वच, खैरसार, पोहकरमूल, मुसली, तालमखाना और पीली कटसैरया इन सबको पृथक् २ चार २ तोले लेकर एकत्र कूट करके ६४ सेर जलमें पकावे। जब पककर १६ वॉ भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतार कर छान लेवे। फिर उस क्वाथको तॉबेके पात्रमें भरकर उसमें एक प्रस्थ खॉड एक प्रस्थ घी, और सोनामाखीकी भस्मके द्वारा मारे हुए कान्त लोहकी भस्मको ९६ तोले डालकर पकावे। पककर जब वह अवलेहकी समान गाढा होजाय तब नीचे उतारकर उसमें धनियॉं, शिलाजीत, काकडासिंगी, वायविडङ्ग, त्रिफला, जायफल, त्रिकुटा और चातुर्जातक इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण दो दो तोले और शहद ३२ तोले डालकर अच्छे प्रकारसे मिलादेवे। इस खण्डखाद्य रसायनको प्रतिदिन एक २ तोला सेवन करके ऊपरसे

दुग्धका अनुपान करे । यह रसायन क्षय, खाँसी, अरुचि, क्लान्ति, शीत, पित्त, अम्लपित्त, वातरक्त, रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहा, आनाह, कृशता, शूल और पक्तिशूल इन सब व्याधियोंको नाश करती है ॥ ६०–६५ ॥

प्रत्येक धातुकी भस्मके पृथक् २
सामान्य प्रयोग ।

हेम्नो रूप्यस्य वा भस्म वरीभृंगाम्बुभावितम् ॥ ६६ ॥
गुंजाप्रमाणं त्रिफलासितामध्वाज्यामिश्रितम् ।
बृंहणं वृष्यमायुष्यं कामलापाण्डुकुष्ठजित् ॥ ६७ ॥
गंधकेन समांशेन प्राग्वत्ताम्रं च मारितम् ।
धान्याभ्रकं च तुत्थं च दशनिष्कं पृथक्पृथक् ॥ ६८ ॥
भावितं मातुलुंगाम्लेनाऽऽर्द्रकस्य रसेन च ।
ताम्रं सोष्णोदकं गुल्मप्लीहशूलामवातजित् ॥ ६९ ॥
मारितं त्रपुसीसं वा हारिणं शृंगमाकुली ।
कार्पासवासितं तक्रं माहिषं च प्रमेहजित् ॥ ७० ॥
नवनवतिस्त्रिफलाया मृतस्य नागस्य शततमो भागः ।
दार्व्याकुलीफलत्रयकनकजलप्रस्थपोषितं निखिलं ७१
शतगुलिकाप्रमितं तत्पीतं तक्रेण मेहहरम् ।
पिबतः कषायमभयादार्व्यक्षसमांशपाठायाः ॥ ७२ ॥
कृष्णलोहेन योक्तव्यो बालेनोपचितो हि सः ।
कुमारयूनमध्ये तु वरमध्यावरे क्रमात् ॥ ७३ ॥
एकद्वित्रिगुणात्कालादुपयुक्तं गुणावहम् ।
एरण्डवाह्लिशम्बूकवर्षाभूव्योषसैंधवम् ॥ ७४ ॥

अंतर्धूमविदग्धायाश्चूर्णं सोष्णांबु शूलजित् ॥ ७५ ॥
त्रिफलामृतनिर्गुंडीमेघनादपुनर्नवा ।
कासमर्दाग्निधत्तूरवाज्रिणीनां रसैरिदम् ॥ ७६ ॥
भावितं गुडमध्वाज्यैर्जलतक्रानुपायिनः ।
स्वल्पक्षीररसांशस्य हन्याज्जीर्णज्वरं क्षयम् ॥
कुष्ठास्थिस्रावपांडूर्ध्वपक्तिशूलप्लिहामयान् ॥ ७७ ॥
बाकुचीनिंबपञ्चांगं वेल्लचित्रकवत्सकम् ।
पथ्यानागरशम्याकगुडूचीकटुकीफलम् ॥ ७८ ॥
खदिरासनसारेण भावितं लोहभस्म च ।
कर्षमात्रं समध्वाज्यं क्षयकुष्ठनिषूदनम् ॥ ७९ ॥
गुडस्य कुडवे पक्वं लोहभस्म पलोन्मितम् ।
कोलप्रमाणं रोगेषु तैस्तैर्योगैः प्रयोजयेत् ॥ ८० ॥
व्योषादिनवकस्यांशस्तथांशो लोहभस्मनः ।
अंशोऽश्मजतुनः खण्डस्याष्टौ सर्वं समाक्षिकम् ॥
कांतपात्रगतं यक्ष्मज्वरापस्मारपस्मरम् ॥ ८१ ॥
निंबसारात्रिमधुरात्रिफलालोहगंधकम् ।
चूर्णमर्जुनपत्राणां सभृंगत्रिफलायुतम् ॥ ८२ ॥
सेवितं मधुसर्पिर्भ्यां जरावैरूप्यनाशनम् ॥ ८३ ॥
मधुकं मृतलोहं च धात्री च त्रिगुणोत्तरम् ।
रसेन भावितं छिन्नरुहायाः साज्यमाक्षिकम् ॥ ८४ ॥
सेवितं भोजनस्यादौ वातपित्तामयाञ्जयेत् ।
मध्ये प्रविष्टमन्तेऽम्लपित्तं शूलं च पक्तिजम् ॥ ८५ ॥

भल्लातकसहस्राभ्यां त्रिफलामुस्तचित्रकैः ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गसहदेवीकुठेरकैः ॥ ८६ ॥
कणामूलाऽमृताचव्यैर्द्रोणेऽपां कुडवोन्मितैः ॥
पक्के पदस्थे लोहस्थे तुलार्धं तीक्ष्णलोहतः ॥ ८७ ॥
मानिकां च घृतात्पक्त्वा विडंगं चित्रकं त्वचम् ।
त्रिफला पंचलवणं त्र्यूषणं च पृथक् पलम् ॥ ८८ ॥
पलानि सूरणस्याष्टौ वाराह्या वृद्धदारकात् ।
चतुष्पलं पुष्परसस्यार्धप्रस्थं च निक्षिपेत ॥ ८९ ॥
प्रातर्भोजनकाले वा लीढमेतद्रसायनम् ।
निहंति च ग्रहण्यर्शःशूलगुल्मकृमिक्षयान् ॥ ९० ॥
अंकोल्ललोहमणिटंकणमाणिमन्थताप्यार्द्रकात्रि-
कटुतुत्थशिलाजतूनाम् । भृंगोदकेन वटिकां च
मसूरमात्रां खादेज्जयाय जरसः सकलामयानाम् ९१
अंकोल्लवेल्लाभ्रककांतताप्यशिलाजतुव्योषफल-
त्रयाणाम् । चूर्णं मुशल्याः समभागमेतत्
कुष्ठानि लीढं मधुना धुनोति ॥ ९२ ॥
कांताभ्रत्रिफलाविडंगरजनीताप्याब्ददेवद्रुम-
व्योषैलाग्निपुनर्नवाग्निगिरिजाङ्कोल्लैः समं गुग्गुलुम् ।
पिष्ट्वा भृंगजलेन सूक्ष्मगुटिकां खादेद्यथासात्मतो
मेदःश्लेष्मसमीरणोल्बणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः॥ ९३ ॥
व्योषं कृष्णातिलासनस्य कुसुमं मण्डूरसैरेयकं
दोषाशेलुसितात्रिवृत्कृमिहरं भृंगानि भल्लातकम् ।

श्रेष्ठावाकुचिकांतलोहरजसस्तत्कांतपात्रे स्थितं
खादेत्कुष्ठहरं रसायनवरं मध्वाज्यसंयोजितम् ॥९४॥
मंडूरात्रिफलासितेतरतिलाजातीविडंगाकुली-
बाकुच्यभ्रककांतगंधकानिशामाधूकसारं रजः ।
पिष्ट्वा भृंगरसेन तस्य वटकान्खादेत्पयःपाचितान्
सर्वव्याधिहरान्रसायनवरान्मृत्योश्च मृत्युप्रदान् ९५॥
बध्वान्यस्तमहस्त्रयं कमलिनीपत्रे सधात्रीरसे
धौतं भृंगरसेन चुंबकरजोयुक्तं द्विभागोत्तरम् ।
स्थाल्यां षड्गुणरक्तमारिषरसे यद्दारुदर्व्या धृतौ
संचाल्यांभासि कल्कशोषितमिदं शीतक्षणाद्गालयेत् ९६
तस्मादादाय मूषायां स्वल्पायां द्रावयेद्धनम् ।
कांतनागोऽयमुदकेनाञ्जनं नयनामृतम् ॥
कांतपात्रे शृतं क्षीरं रसायनमनुत्तमम् ॥ ९७ ॥
अथोष्णवारिपिष्टेन कांतलोहं ससिंधुना ।
कफे कुठारच्छिन्नेन पित्ते वाते बलाम्बुना ॥
उभयेन वयःस्तंभे ताप्येन गलरुक्षु च ॥ ९८ ॥
कण्ड्वां मनोह्वया स्रोतोविबन्धे मारिचाग्रिणा ।
हेमधात्रीफलं क्षौद्रं गायत्रीरसभावितम् ॥
लिहन्ननुपिबन्क्षीरं दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥ ९९ ॥
मधुमागधिकाविडंगसारात्रिफलाहेमघृतं सितां च
खादन् । जरयानवलीढदेहकांतिः समधातुश्च
समाः शतं स जीवेत् ॥ १०० ॥

आयुःकामः शंखपुष्प्या समेतं मेधाकामः कांचनं सोग्रगंधम् । लक्ष्मीकामः पद्मकिंजल्कयुक्तं खादेत्कामं कामकामो विदार्या ॥ १०१ ॥

सपद्मबीजामलकाभयाक्षं सर्पिर्मधुभ्यां कनकं लिहंतः । दीर्घायुषो मंदजरोपतापाः सरीसृपाणां च भवन्त्यगम्याः ॥ १०२ ॥

मृतानि लोहानि रसीभवंति निघ्नंति रोगान्परिशीलितानि । किंचोपचारस्य समग्रयोगात्पुष्यंति धातूनंतिदीर्घमायुः ॥ १०३ ॥

(१) सुवर्ण अथवा चाँदीकी भस्मको शतावर और भाँगरेके रसमें भावना देकर प्रतिदिन एक २ रत्ती प्रमाण त्रिफलेके चूर्ण, मिश्री, मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे सातों धातुओंकी पुष्टि वीर्यकी वृद्धि और आयुकी वृद्धि होती है । तथा कामला, पाण्डु और कुष्ठ रोग दूर होता है । (२) समान भाग गन्धकके द्वारा पूर्ववत् माराहुआ ताँबा, धान्याभ्रककी भस्म, और शुद्ध नीलाथोथा इन तीनोंको १०-१० निष्क लेकर एकत्र मिश्रित करके विजौरा नींबूके रस और अदरखके रसमें एक एक बार भावना देवे । इस ताम्रप्रयोगको मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करना चाहिये । इसके सेवनसे गुल्म, प्लीहा, शूल और आमवात ये सब रोग नष्ट होते हैं । (३) जस्त अथवा सीसेकी भस्म, हिरनके सींगकी भस्म, नाकुली कन्दके बीज इन तीनोंको समान भाग लेकर बिनौलोंके रसमें खरल करके सुखालेवे । फिर प्रतिदिन यथोचित मत्रासे भैंसके मट्ठेमें मिलाकर सेवन करनेसे प्रमेहरोग नष्ट होता है । (४) निन्न्या नवे भाग त्रिफलेका चूर्ण और १०० भाग सीसेकी भस्म दोनोंको एकत्र मिलाकर दारुहल्दी, नाकुलीकन्द, त्रिफला, और धतूरेकी

जड इन प्रत्येकके १६ तोले रसमें खरल करके १०० गोलियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे । उनमेंसे प्रतिदिन एक २ गोली भैंसके मट्ठेके साथ सेवन कर पीछेसे हरड, दारुहल्दी, वहेडा और पाढ समानभाग मिश्रित इन औषधियोंका काथ पान करे तो प्रमेहरोग दूर होता है । कान्तलोहकी भस्मके साथ प्रयोग की हुई यह औषध बालकोंके लिये अत्यन्त लाभ दायक होती है । कुमार अवस्थामें यह विशेष लाभ, युवावस्थामें साधारण और मध्यम अवस्थामें बहुत थोडा गुण करती है । अर्थात् कुमार अवस्था-वाले मनुष्यको थोडे समयमेंही गुण करती है, युवा पुरुषको उससे दुगुने समयमें और मध्यम अवस्थावाले मनुष्यको तिगुने समयमें आरोग्य करती है।(५)अण्डीके बीजोंकी गिरी, चीता, शंखा-हुली,पुनर्नवा,त्रिकुटा,सैंधानमक और अन्तर्धूमकी विधिसे दग्ध की हुई कौडीकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्णकरके कप-डछान करलेवे। इस चूर्णको गरम जलकेसाथ सेवन करनेसे शूलरोगनष्ट होताहै । (६) त्रिफला, गिलोय, निसोत, चौलाई, पुनर्नवा, कसौंदी, आकाशबेल, धतूरा और थूहर इन प्रत्येकके रसमें उपर्युक्त एर-ण्डादि चूर्णको भावना देकर सिद्ध करे । फिर उचित मात्रासे गुड, शहद और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे और जल मिली हुई छाछका अनुपान करे तथा दूध और मांस रसका भोजन करे तो जीर्णज्वर, क्षय, कुष्ठ, अस्थिस्राव (नाडीव्रण), पाण्डुरोग, अर्श, पक्तिशूल, और प्लीहा (तिल्ली) ये सब रोग नाश होते हैं । (७) बावची, नीमका पञ्चाङ्ग, वायविडङ्ग, चीता, कुडेकी छाल, हरड, सोंठ, अमलतास, गिलोय, कुटकी और लोहभस्म इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछानकर लेवे । फिर खैरसार (कत्था) और विजयसारके रसमें एक २ भावना देकर तैयार करे । यह रसायन एक २ तोला परिमाण मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे क्षय और कुष्ठको नष्ट करती है ।

(८) एक कुडव (१६ तोले) गुडमें चार तोले लोहभस्म मिला-कर पका लेवे । फिर प्रत्येक रोगमें रोगानुसार अनुपानोंके साथ एक २ तोला व आधा २ तोला परिमाण प्रयोग करे । (९) सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, नागरमोथा अजवायन, और जीरा ये प्रत्येक एक एक तोला, लोहभस्म ९ तोले, शिलाजीत ९ तोले और खाँड सबसे अठगुनी लेकर सबको शहदमें मिलाकर कान्तलोहके बर्त्तनमें भरकर रखदेवे । इसके सेवनसे यक्ष्मा, ज्वर, अपस्मार और हिस्टेरिया आदि रोग नष्ट होते हैं । (१०) नीमका गोंद, शतावर, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, त्रिफला, लोहभस्म और शुद्ध गन्धक इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा अर्जुनवृक्षके पत्तोंका चूर्ण, भाँगरा त्रिफला और लोहभस्म इनको समभाग लेकर शहद और घृतमें मिश्रित करके सेवन करनेसे वृद्धावस्था और उसके विकार नाश होते हैं । (११) मुलैठी, लोहभस्म और आमले इन प्रत्येक उत्तरोत्तर क्रमसे दुगुना लेकर गिलोयके स्वरसमें भावना देकर तैयार करे । फिर घृत और मधुमें मिलाकर भोजन करनेसे पहले सेवन करे तो वात, पित्त सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं । यह औषध भोजनके मध्यमें सेवन करनेसे अम्लपित्तको और भोजनके अन्तमें सेवन करनेस पक्तिशूलको नष्ट करती है ।(१२)भिलावे१०००एवं त्रिफला, नागरमोथा, चीता, गजपीपल, चिराचिटा, सहदेई, तुलसी, पीपलामूल, गिलोय और चव्य ये प्रत्येक सोलह २ तोले परिमाण लेकर प्रथम भिलावोंको छेद लेवे, फिर अन्य औषधियोंको एकत्र कूट करके सबको एक द्रोण (१२४ तोले) जलमें डालकर पकावे । जब जल पककर चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर लोहेके पात्रमें भरकर उसमें तीक्ष्ण लोहकी भस्म ५० पल और घी ३२ तोले डालकर पकावे । उत्तम प्रकारसे पकजानेपर वाय-

विडङ्ग, चीता, दारचीनी, त्रिफला, पाँचों नमक और त्रिकुटा ये प्रत्येक चार २ तोले, जिमीकन्दका चूर्ण ३२ तोले, वाराहीकन्द १६ तोले, विधायरा १६ तोले और शहद ३२ तोले डालकर मिलादेवे। इस रसायनको प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा भोजनके समय चाटे। यह ग्रहणी, अर्श, शूल, गुल्म, कृमि और क्षय इन सब रोगोंको नष्ट करती है। (१३) अंकोलके बीज, लोहभस्म, माणिकभस्म, सुहागा, सैंधानमक, सोनामाखीकी भस्म, अदरख, त्रिकुटा, तूतिया, शिलाजीत इन सबको समान भाग लेकर भाँगरेके रसमें खरल करके मसूरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे इस रसको वृद्धावस्थाके जीतनेके लिये और सम्पूर्ण व्याधियोंको नाश करनेके लिये सेवन करना चाहिये। (१४) अंकोलके बीज, वायविडङ्ग, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शिलाजीत, त्रिकुटा, त्रिफला और मुसली इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं। (१५) कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, त्रिफला, वायविडंग, हल्दी, सोनामाखीकी भस्म, नागरमोथा, देवदारु, त्रिकुटा, इलायची, चीता, पुनर्नवाकी जड, शिलाजीत और अङ्कोलके बीज इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके कपडछान करलेवे। फिर उस चूर्णके बराबर भाग शुद्ध गूगल मिलाकर भाँगरेके रसमें खरल करके छोटी छोटी (१-१ मासेकी) गोलियाँ बनालेवे। इन गोलियोंको अपनी प्रकृतिके अनुकूल उचित मात्रासे मेद (चर्बी) कफ और वात इनके भयङ्कर विकारोंमें तथा अन्यान्य रोगोंमें सेवन करनेवाला मनुष्य आरोग्यलाभ करता है। (१६) त्रिकुटा, काले तिल, विजयसारके फूल, मण्डूर भस्म, कटसरैयाके बीज, हल्दी, लसौडे, मिश्री, निसोत, वायविडंग, भाँगरा, भिलावे, शतावर, बापची और कान्तलोहकी भस्म इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूटपीस करके कपडछान करलेवे और कान्त

लोहके पात्रमें भरकर रख देवे । इस उत्तम रसायनको मधु और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे कुष्ठ रोग दूर होता है । (१७) मण्डूरकी भस्म, त्रिफला, काले तिल, जायफल, वायविडङ्ग, नकुलकन्द, बापची, अभ्रकभस्म, कान्त लोहभस्म, गन्धक, हल्दी, मुलैठीका सत्त्व और पित्तपापडा इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके भाँगरेके रसमें पीसकर बडे बनालेवे और उनको दूधमें पकालेवे । फिर सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाले उत्तम रसायन और मृत्युको भी नाश करनेवाले इन बडोंको यथोचित मात्रासे सेवन करे । (१८) चुम्बक लोहका चूर्ण १ भाग और सीसेका चूर्ण दो भाग दोनोंको एकत्र खरल करके एक कपडेमें बाँधकर पोटली बना लेवे । उस पोटलीको एक पात्रमें भरे हुये कमलके पत्तोंके और आमलोंके समानभाग मिश्रित रसमें अधर लटकाकर तीन दिन तक रक्खे । फिर चौथे दिन पोटलीमेंसे उस चूर्णको निकालकर भाँगरेके रससे घोटलेवे । फिर एक कढाईमें उक्त चूर्णसे छःगुना लाल चौलाईका रस भरकर उसमें उस चूर्णको डालकर पकावे और लकडीकी करछीसे चलाता जावे जब वह पककर कल्ककी समान होजाय तब उसको उतारकर शीतल होजानेपर छानलेवे । इसके पश्चात् उस लुगदीको छोटी मूषामें रखकर धौंकनीसे फूँके । जब वह उत्तम प्रकारसे गलजाय तब उसकी सलाई बनालेवे । इसको कान्तनाग कहते हैं । यह कान्तनाग जलमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंको अमृतकी समान गुण प्रदान करता है । (१९) कान्तलोहके पात्रमें दूधको पकानेसे वह अत्युत्तम रसायन बनजाता है । (२०) कान्तलोहकी भस्मको कफरोगमें सैंधेनमकके साथ गुनगुना जलमें पीसकर सेवन करनेसे पित्तरोगमें गिलोयके स्वरसके साथ और वातरोगमें खिरैंटीकी जडके क्वाथके साथ सेवन करनेसे शीघ्र लाभ होता है । युवावस्थाको स्थिर रखनेके लिये कान्तलोह भस्मको नीमके भीतरकी छाल और खिरैंटीकी जडके रसके साथ

सेवन करे । गलेके रोगोंमें सोनामाखीकी भस्मके साथ, खुजलीमें मैनासिलकी भस्मके साथ और मल मूत्रका अवरोध होनेपर मिरचोंकी जडके क्काथके साथ सेवन करे । (२१) सुवर्णभस्म और आमलोंका चूर्ण दोनोंको खैरसारके रसमें भावना देकर हमेशा शहदके साथ सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे तो मृत्युको प्राप्त होनेवाला मनुष्यभी जीवित होता है । (२२) पीपल, वायविडङ्ग, खैरसार, त्रिफला और सुवर्णभस्म इनको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । जो मनुष्य इस चूर्णको घृत, मधु और मिश्रीमें मिलाकर नित्य सेवन करे तो वह वृद्धावस्थासे पीडीत होता हुवा नवी युवककी समान शरीरकी नवीन कान्ति और रस रक्तादि सातों धातुओंकी समतासे युक्त होकर १०० वर्षतक जीता है । (२३) आयुकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शंखपुष्पीके साथ, बुद्धिकी कामना करनेवाला वचके चूर्णके साथ, लक्ष्मी (शोभा) की इच्छा करनेवाला कमलकी केसरके साथ और कामको सदैव जागृत रखनेकी अभिलाषावाला मनुष्य विदारीकन्दके चूर्णके साथ सुवर्णभस्मको सेवन करे । (२४) कमलके बीज, आमले, हरड, बहेडा और सुवर्णभस्म इन सबको समानरूपसे एकत्र मिलाकर घृत और शहदके साथ सेवन करनेवाले मनुष्य दीर्घायुषी होते हैं तथा रोग और वृद्धावस्थाके सम्पूर्ण विकारोंसे रहित होते हैं और सर्पादि जन्तुओंके भयसेभी मुक्त होजाते हैं । उत्तम प्रकारसे शुद्ध करके भस्म की हुई सम्पूर्ण धातु रसायनकी समान गुण प्रदान करती हैं तथा पृथक् पृथक् अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके रोगोंको नाश करती हैं । रस, रक्त, मांस आदि धातुओंको पुष्ट करती हैं और दीर्घायु प्रदान करती हैं । इसलिये अन्य समस्त योगोंके व्यवहारसे क्या लाभ ? केवल धातुयेंही सेवन करनी चाहिये ॥ ६६–१०३ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चयेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

विषकल्पः ।

विषोत्पत्तिस्तद्भेदश्च ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्रोत्पन्नं महाविषम् ।
भेदांस्तस्य वरारोहे यत्र यत्र सविस्तरम् ॥ १ ॥
देवदैत्योरगाः सिद्धा गंधर्वा यक्षराक्षसाः ।
पिशाचाः किन्नराश्चैव मिलित्वा च वरानने ॥ २ ॥
एकता बलिराजश्च ब्रह्माद्याश्च तथैकतः ।
मंथानं मंदरं कृत्वा नागराजेन वेष्टितम् ॥ ३ ॥
क्षीराब्धिमथनं तत्र प्रारब्धं सुरसुंदरि ।
निर्गतास्तत्र रत्नौघाः कामधेन्वादयः प्रिये ॥ ४ ॥
अमला कमलोत्पन्ना पश्चादुच्चैःश्रवास्ततः ।
ऐरावतो महाकायो निर्गतं देवि चामृतम् ॥ ५ ॥
अतीव मन्थनाद्देवि मंदराघातवेगतः ।
अहिराजश्रमाद्देवि विषज्वाला विनिर्गता ॥ ६ ॥
ततोऽतिघोरा सा ज्वाला निमग्ना क्षीरसागरे ।
तया तत्रैव चोत्पन्नं कालकूटं महाविषम् ॥ ७ ॥
प्रलयानलसंकाशं क्रुद्धः काल इवोत्कटम् ।
तद्दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे दानवाश्च महाबलाः ॥ ८ ॥
विषण्णवदनाः सद्यः प्राप्ताश्चैव मदंतिकम् ।
ततस्तैः प्रार्थ्यमानोहमपिबं विषमुत्तमम् ॥ ९ ॥
ततोऽवशिष्टमभवन्मूलरूपेण तद्विषम् ।

पत्ररूपेण कुत्रापि मृत्तिकारूपतः क्वचित् ॥ १० ॥
कुत्रचित्तोयरूपेण धातुरूपेण कुत्रचित् ।
कंदरूपेण कुत्रापि त्रयोदशविधं विषम् ॥ ११ ॥
तेषु श्रेष्ठं कन्दविषं तत्त्रयोदशधा स्मृतम् ।
कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ॥ १२ ॥
वालुकं कर्दमं चैव सक्तुकं मूलकं तथा ।
सर्षपं शृंगकं देवि मुस्तकं च महाविषम् ॥
हारिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं विषम् ॥ १३ ॥
कर्कटं कपिवर्णं स्यात्काकचंचुनिभं पुनः ॥ १४ ॥
कालकूटं ततो ज्ञेयं वत्सनाभं तु पाण्डुरम् ।
भंगुराकन्दवद्देवि नीलवर्णं हलाहलम् ॥ १५ ॥
वालुकं वालुकाभं च कर्दमं कर्दमोपमम् ।
सक्तुकं श्वेतवर्णं स्याच्छुक्लकंदं तु मूलकम् ॥ १६ ॥
सर्पषं पीतवर्णं स्याच्छृंगकिं कृष्णपिंगलम् ।
मुस्ताभं मुस्तकं प्रोक्तं रक्तवर्णं महाविषम् ॥
हारिद्रकं पीतवर्णं विषभेदा प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥
चतुर्धा वर्णभेदेन विषं ज्ञेयं मनीषिभिः
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः श्वेतरक्ताश्च पीतकाः ॥ १८ ॥
कृष्णवर्णः क्रमाज्ज्ञेयो वर्णानामनुपूर्वशः ।
मारणे कृष्णवर्णं स्याद्रक्तं तु रसकर्मणि ॥ १९ ॥
पीतवर्णं क्षुद्रकार्ये श्वेतवर्णं रसायने ॥ २० ॥
क्षीरोदसागरे देवि मथ्यमाने वरानने ।

उत्पन्नममृतं देवि तथोत्पन्नं महाविषम् ॥ २१ ॥
मात्रया भक्षितं देवि विषमप्यमृतायते ।
मात्राधिकं वरारोहे ह्यमृतं हि विषं भवेत् ॥ २२ ॥
विषं युंजीत नित्यं वै रसायनगुणैषिणः ।
घृतोपस्कृतदेहस्य विशुद्धस्य हिताशिनः ॥ २३ ॥
सात्त्विकस्योदिते भानौ योज्यं शीतवसंतयोः ।
ग्रीष्मे चात्ययिके व्याधौ न वर्षासु न दुर्दिने ॥ २४॥
न क्रोधिते न पित्तार्ते न क्लीबे राजवेश्मनि ।
क्षुत्तृष्णाश्रमघर्माध्वव्याध्यंतरनिपीडिते ॥
गर्भिण्यां बालवृद्धेषु न रूक्षेषु न मर्मसु ॥ २५ ॥
अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्जनीयान्विवर्जयेत् ।
कट्वम्ललवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् ॥ २६ ॥
दृग्विभ्रमं कर्णरुजमन्यांश्चानिलजान्गदान् ।
विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेवं त्वजीर्णिनः ॥ २७ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे देवि, हे वरारोहे, जहाँपर यह महा विष उत्पन्न हुआ है उसको और उसके भेदोंको विस्तारपूर्वक कहताहूं सुनो। हे वरानने, एक समय ब्रह्माको आदिलेकर देवता,दैत्य, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, किन्नर और बलिराज ये सब सम्मिलित होकर क्षीरसमुद्रको मथनेकी इच्छासे वहाँ पर गये। तब मन्दराचलको मन्थान दण्ड (रई)बनाकर उसको शेष नागसे लपेट करके एक तरफसे देवता और दूसरी तरफसे दैत्योंने समुद्रको मथा। हे सुरसुन्दरि, प्रिये, उस समय उसमेंसे कामधेनु आदि रत्नोंके समूह उत्पन्न हुए। प्रथम अत्यन्त निर्मल लक्ष्मी उत्पन्न हुई पीछेसे उच्चैःश्रवा घोडा, बडेभारी शरीरवाला ऐरावत

हाथी और अमृत निकला। हे देवि! फिर अधिकतर मथनेके कारण मन्दराचलके अत्यन्त आघातके द्वारा शेषनागको उत्पन्न हुआ जो श्रम उससे अत्यन्त भयङ्कर विषकी ज्वाला उत्पन्न होकर क्षीरसागरमें निमग्न होगयी। फिर उस ज्वालाके द्वारा उसमें कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ। वह प्रलयकालमें कुपित हुई भयङ्कर कालाग्निकी समान था। उसको देखकर मुरझागये हैं मुख जिनके ऐसे सम्पूर्ण देवता और बडे बडे बलवान् दानव तत्कालही मेरे पास आये और आकर उन्होंने मेरी बहुतसी प्रार्थना की। तब मैं उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करके उस उत्तम विषको पान करगया। उसमेंसे बचा हुआ जो विष इधर उधर गिरगया था, वह कहीं तो मूलरूपसे, कहीं पत्ररूपसे, कहीं मृत्तिका रूपसे, कहीं जलरूपसे कहीं धातुरूपसे और कहीं कन्दरूपसे इस तरह तेरह प्रकारका विष उत्पन्न होगया। उन सब विषोंमें कन्दविष अत्युत्तम होता है वहभी तेरह प्रकारका कहगया है। कर्कट, कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, वालुक, कर्दम, सक्तुक, मूलक, सर्षप, शृङ्गिक, मुस्तक, महाविष और हारिद्रक इन नामभेदोंसे विष तेरह प्रकारका कहाजाता है। कर्कट विष कपिश वर्णका, कालकूट विष कौवेकी चोंचकी समान, वत्सनाभ विष पीले रंगका, हलाहल विष भाँगरेके कन्दकी समान नीले रंगका, वालुक विष वालु (रेत) की समान, कर्दम विष कीचकी समान, सक्तुक विष श्वेतवर्णका, मूलक विष श्वेतवर्णका, सर्षप विष पीला, शृङ्गिक विष काला और पीला मिले हुए वर्णका, मुस्तक विष मोथेकी समान, महाविष लाल रंगका और हारिद्र विष पीले वर्णका होता है। इस प्रकार विषोंके भेद कहे गये हैं। वर्णभेदोंसे विद्वानोंको विष चार प्रकारका जानना चाहिये। जैसे श्वेत वर्णका विष ब्राह्मण, लाल रंगका क्षत्रिय, पीले रंगका वैश्य और काले रंगका विष शूद्र वर्णका होता है। इस क्रमसे चार वर्णोंके अनुसार विष समझना चाहिये। कृष्ण वर्णका विष मारनेमें, लाल

रंगका विष रसक्रियामें, पीले वर्णका विष साधारण कार्योंमें और श्वेतवर्णका विष रसायनकर्ममें लेना चाहिये । हे सुन्दर मुखवाली देवि यद्यपि क्षीरसागरके मथनेपर अमृत और महाविष दोनोंही पदार्थ उत्पन्न हुए हैं तथापि उपयुक्त मात्रासे सेवन किया हुआ विषभी अमृतकी समान गुण करता है । और हे सुन्दरि ! मात्रासे अधिक सेवन किया हुआ अमृतभी विषकी समान हानिकारक होजाता है । रसायनिक गुणको चाहनेवाले वमन विरेचनादिके द्वारा शारीरिक शुद्धि करके नित्य हितकर पथ्य पदार्थोंका भोजन करनेवाले और शरीरपर घृतकी मालिश करनेवाले सात्त्विक प्रकृतिके मनुष्यको शिशिर और वसन्तऋतुमें प्रतिदिन सूर्योदयके समय विषका यथोचित मात्रासे युक्तिपूर्वक उपयोग करना चाहिये । परन्तु अत्यन्त शीघ्र विनाश करनेवाली व्याधिके होनेपर यदि विषके द्वारा उस रोगके दूर होनेकी आशा होतो ग्रीष्मऋतुमें, बर्षाऋतु और दुर्दिनमें कदापि विष सेवन नहीं करना चाहिये । तथा क्रोधी मनुष्य पित्तरोगसे पीडित और नपुंसक व्यक्तिके लिये एवं राजमहलमें अथवा भूख, पास, भ्रम, धूप, मार्ग इनसे श्रम या किसी रोगके कारण मनके व्यथित होनेपर मनुष्यको विष सेवन नहीं करना चाहिये । एवं गर्भिणी, बालक, वृद्ध, रूक्ष प्रकृतिवाले और मर्मस्थानके रोगसे पीडित व्यक्तियोंमें विषका प्रयोग नहीं करना चाहिये । विष सेवन करनेका पूर्णरूपसे अभ्यास होजानेपर भी पथ्यपदार्थोंका सेवन करना चाहिये और कटु (चरपरे), खट्टे, नमकीन, तेल आदि पदार्थ तथा दिनमें सोना, अग्नि और धूपका सेवन करना इन समस्त त्याज्य विषयोंको यत्न पूर्वक त्याग देवे । विष सेवन करनेवाले मनुष्यके रूक्ष पदार्थोंको सेवन करनेसे नेत्रोंमें विकार, कर्णरोग तथा अन्यान्य वातरोग उत्पन्न होते हैं । अजीर्णरोगवाला मनुष्य यदि विष सेवन करे तो उसकी अवश्य मृत्यु होजाती है ॥ १-२७ ॥

विषविद्रावणघृत ।

विजया पिप्पलीमूलं पिप्पलीद्वयचित्रकैः ।
पुष्कराह्वा सटी द्राक्षा यवानीक्षारदीप्यकैः ॥ २८ ॥
सितायष्टिद्विबृहतीसैंधवैः पालिकैः पचेत् ।
सविषार्धपलैः प्रस्थं घृतात्तज्जीर्णभुक् पिबेत् ॥२९॥
दुर्नाममेहगुल्मार्मतिमिरक्रिमिपाण्डुकान् ।
गलग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानि च नियच्छति ॥
विषविद्रावणं नाम घृतं विषरुजं हरेत् ॥ ३० ॥

भाँग, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, चीता, पोहकर मूल, कचूर, दाख, अजवायन, जवाखार, अजमोद, मिश्री, मुलैठी, कटेरी, बडी कटेरी और सैंधानमक ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले और शुद्ध विष २ तोले इन सबको एकत्र कूटकर अठगुने जलमें अष्टमांशावशिष्ट क्वाथ बना लेवे । उस क्वाथमें एक प्रस्थ घी डालकर उसको उत्तम प्रकारसे पकाकर सिद्ध कर लेवे और छानकर शीशीमें भरकर रखदेवे । इस घृतको प्रतिदिन खूब भूख लगने पर उचित मात्रासे सेवन करे तो यह विषविद्रावण नामक घृत– बवासीर, प्रमेह, गुल्म, अर्म, तिमिर आदि नेत्ररोग, कृमिरोग, पाण्डुरोग, गलग्रह, ग्रहबाधा, उन्माद और कुष्ठ इन सब रोगोंको तथा विषसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंको शीघ्र दूर करता है ॥ २८–३० ॥

श्वित्रारि तैल ।

लाक्षासुराह्वमंजिष्ठाकुष्ठपद्मकसारिवाः ।
गुंजा मही कुरबको लांगली वज्रकंदकः ॥ ३१ ॥
वाराहीकंदकास्फोता सप्ताह्वा गिरिकर्णिका ।
अर्काश्वमारयोर्मूलं नागपुष्पं नतं निशे ॥ ३२ ॥

दंतीविषं हस्तिविषं पिप्पल्यो मरिचानि च ।
तैस्तैलं कटुतैलं वा चित्रस्याभ्यञ्जनं पचेत् ॥
सवर्णकरणं श्रेष्ठमास्तिकस्य वचो यथा ॥ ३२ ॥

लाख, देवदारु, मँजीठ, कूठ, पद्माख, सारिवा, चोंटली, लाल कटसरैया, हुलहुलका शाक, कलिहारी, शकरकन्द, वाहारीकन्द, कोयल, सतौना, जवासा, आककी जड, कनेरकी जड, नागकेसर, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीकी जड, वत्सनाभ विष, हस्तिविष, पीपल, गजपीपल और मिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लेवे। फिर गोमूत्रमें कल्क बनाकर उस कल्क और उससे चौगुने गोमूत्रके साथ तिलका तेल अथवा सरसोंका तेल मिलाकर पकावे। यह तेल श्वेतकुष्ठके ऊपर मालिस करनेसे कुष्ठको दूर करके त्वचाके वर्णको समान वर्ण करनेके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है, ऐसा श्रीआस्तिकमुनिका वचन है ॥ ३१-३२ ॥

सूर्यप्रभावर्त्ती ।

रक्तचंदनमंजिष्ठा तिंतिणीफलसक्तुकैः ।
अभयालोध्रकतकनिशाशंखकणोषणैः ॥ ३४ ॥
मनः शिलाकरंजाक्षबीजाब्धिफेनसैंधवैः ।
अजाक्षीरैः समाविषैर्वर्त्तयो विहिता हिताः ॥
शुक्लार्ममांसपिल्लेषु ग्रंथिगंडार्बुदेषु च ॥ ३५ ॥

लाल चन्दन, मँजीठ, इमली पकी हुई, सक्तुक नामक शुद्ध विष, हरड, लोध, निर्मली, हल्दी, शंख, पीपल, मिरच, मैनासिल, करंजुयेकी जड, बहेडेकी गिरी, वच, समुद्रफेन, सैंधानमक और शुद्ध वत्सनाभ विष इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। फिर उस चूर्णको बकरीके दूधमें खरल करके बत्तियाँ बनाकर छायामें सुखा लेवे। यह बत्ती पानीमें

घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे सफेद फूला, अर्म, मांसपिल्ल (आँखके-तारे पर छाया हुआ मांसका जाला अथवा बहुत बाहरको निकला हुआ डेला) आदि नेत्ररोगोंमें और ग्रन्थि (गाँठ), गण्डमाला, रसौली आदिमें लेप करनेसे शीघ्र लाभ करती है ॥ ३४–३५ ॥

विषादि गुटिका ।

विषशुल्बरसव्योषगंधकानां पलं पलम् ।
पलद्वयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम् ॥ ३६ ॥
कौंती मुस्ता चतुर्जातं कर्षांशं च विचूर्णितम् ।
त्रिगुणश्च गुडः कार्या वटिका माषसम्मिता ॥ ३७ ॥
भक्षयेत्तां जराग्रस्तो महारोगैश्च पीडितः ॥ ३८ ॥

शुद्ध मीठा तेलिया, ताम्रभस्म, पारा, गन्धक और त्रिकुटा ये प्रत्येक चार ४ तोले, हरड ८ तोले, चीतेकी जड १२ तोले, रेणुका, नागरमोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके कपडछान कर लेवे । फिर उस चूर्णको तिगुने गुडमें मिलाकर एक एक मासेकी गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियोंको वृद्धावस्थासे ग्रसित और बडे २ भयङ्कर रोगोंसे पीडित मनुष्य नियमपूर्वक सेवन करे तो अवश्य आरोग्य लाभ करता है ॥ ३६–३८ ॥

जयागुटी ।

भस्मसूतगुडक्षौद्रघृतैः सह निषेवितम् ।
जरां जयेदतो नाम्ना गुलिकेयं जयोदिता ॥ ३९ ॥

पारेकी भस्म और शुद्ध मीठा तेलिया इन दोनोंको समानभाग गुडमें मिलाकर गोली बना लेवे । फिर उस गोलीको शहद और घृतके साथ मिलाकर नित्य प्राति सेवन करे । भह जयागुटिका जरा (वृद्धावस्था) को जीतती है, इस लिये यह जयागुटी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३९ ॥

द्वितीया जयागुटी ।

वासाऽमृताखदिरनिम्बविडंगपथ्याक्काथे विषत्रि-
कटुचित्रकलोहतिक्ताः । आवाप्य माषतुलिता
वटिका प्रणीता क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठ-
जातम् ॥ ४० ॥

अडूसा, गिलोय, खैरसार, नीमकी छाल, वायविडङ्ग और हरड इनके क्काथमें शुद्ध मीठा तेलिया, त्रिकुटा, चीता, लोहभस्म और कुटकी इनके समानभाग मिश्रित चूर्णको एक दिनतक भावना देकर एक २ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । यह गुटिका शहदमें मिला-कर सेवन करनेसे क्षय और कुष्ठरोगमें उत्पन्न हुए विकारोंको नष्ट करती है ॥ ४० ॥

तृतीया जयागुटी ।

वचाऽश्वगंधामरिचोपकुल्या तालीसमुस्तापिचुमं-
दपाठाः । विषं च तेषां वटिका जयन्त्यः फले
प्रयोगे च जयासमाना ॥ ४१ ॥

वच, असगन्ध, मिरच, पीपल, तालीसपत्र, नागरमोथा, नीमकी छाल, पाढ और शुद्ध वत्सनाभ विष इन सबको समान भाग लेकर पानीके साथ पीसकरके एक २ मासेकी गोलियाँ बना लेवे । यह गोलियाँ फलमें और उपयोगमें उपर्युक्त गोलियोंकी समान है ॥ ४१ ॥

विषकल्प ।

आरोटं भक्षयेद्देवि विषं सर्षपमात्रकम् ।
प्रथमे दिवसे पश्चाद्द्वितीयादौ द्विसर्षपम् ॥ ४२ ॥
पञ्चमे दिवसे देवि भक्षयेत्सर्षपत्रयम् ।

षट्सप्ताष्टदिनेष्वेवं नवमे वेदसंख्यया ॥ ४३ ॥
भक्षयेद्राजिकावृद्ध्या यावद्गुंजामितं भवेत् ।
मासत्रयप्रयोगेण कुष्ठान्यष्ट हरेद्विषम् ॥ ४४ ॥
पुण्डरीकं सविस्फोटं श्वेतमौदुंबरं तथा ।
छिन्नभिन्नं कपालाख्यं क्लिन्नाह्वं शवगंधि च ॥
कुष्ठानि गदितान्यष्ट हन्याद्देवि महाविषम् ॥ ४५ ॥
षण्मासस्य प्रयोगेण कामरूपो भवेन्नरः ।
संवत्सरप्रयोगेण सर्वरोगान्व्यपोहति ॥
द्विवत्सरप्रयोगेण दिव्यदेहो भवेन्नरः ॥ ४६ ॥

हे देवि, आरोट नामक विषको अथवा शोधित मीठे तेलियेको कल्पकी विधिसे सेवन करे। अर्थात् पहले दिन एक सरसोंकी बराबर फिर दूसरे दिनसे लेकर चौथे दिनतक दो दो सरसोंकी बराबर, पाँचवें दिन ३ सरसों भर और ६ ठे, ७ वें, ८ वें दिनभी तीन २ सरसोंकी बराबर, और नवें दिन ४ सरसोंकी बराबर विष सेवन करना चाहिये। इसके पश्चात् प्रतिदिन एक २ राईकी बराबर मात्रा बढाता हुआ सेवन करे। जब एक रत्तीभरकी मात्रा होजाय तब फिर मात्रा न बढाकर हमेशा एक २ रत्ती परिमाण सेवन करे। इस प्रकार तीन महीनेतक विषको सेवन करनेसे आठों प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं। पुण्डरीक नामवाला कुष्ठ, फोडा, श्वेतकुष्ठ, औदुम्बर कुष्ठ, छिन्न भिन्न हुआ कुष्ठ, कमल नामक कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, और शवगन्धि कुष्ठ ये आठ प्रकारके कुष्ठ कहे गये हैं। हे देवि, इन सब कुष्ठोंको यह विषका प्रयोग अवश्य नाश करता है। इसको ६ महीनेतक सेवन करनेसे मनुष्य कामदेवकी समान रूपवान् होजाता है। एक वर्षतक प्रयोग करनेसे विष सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है और दो वर्षके प्रयोगसे वह मनुष्य दिव्यदेहधारी होता है ॥ ४२-४६ ॥

विषके सामान्य प्रयोग ।

अथ गोमूत्रसंयुक्तमातपे शोषयेत्र्यहम् ।
विषं बृंहणमेतद्धि विषस्यादौ प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
तत्पिबेन्मस्तुना वातज्वरे क्षीरेण पित्तजे ।
अजामूत्रेण कफजे सर्वजे त्रिफलाम्भसा ॥ ४८ ॥
रोध्रचंदनपद्मैश्च तथा शर्करा घृतमाक्षिकैः ।
क्षीरेण च विषं युक्तं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ४९ ॥
निकुंभकुंभात्रिफलासर्पिर्मधुविषैः कृतः ।
निहंति मोदको जीर्णज्वरमेहत्वगामयान् ॥ ५० ॥
शिखिकर्णिरसोपेतं विषमज्वराजिद्विषम् ॥ ५१ ॥
विषं यष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकन्दकम् ।
तंदुलोदकपीतानि रक्तपित्तस्य भेषजम् ॥ ५२ ॥
रास्नाविडंगत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ।
पद्मकं क्षौद्रममृताविषं च श्वासकासजित् ॥ ५३ ॥
सितारसविषाक्षीरप्रवालमधुकान्विता ।
श्वासहिक्कापहा लीढाश्छर्दिघ्नास्तु विषान्विताः ५४॥
क्षीरोशीरमधुक्षाररजनीकुटजत्वचः ।
च्यवनप्राशनोपेतं विषं क्षपयति क्षयम् ॥ ५५ ॥
मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रीतिविषाविषम् ।
धातकीमोचनिर्यासं चूतास्थि ग्रहणीहरम् ॥ ५६ ॥
कृच्छ्रघ्नं विषपथ्याग्नि दंती द्राक्षा निशा वृषा ।
शिलाजतु विषं त्र्यूषमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ ५७ ॥

गोमूत्रक्षारसिंधूत्थविषपाषाणभेदकम् ।
वज्रवद्दारयत्येतदेकतः पीतमश्मरीम् ॥ ५८ ॥
त्रिफलास्वर्जिकाक्षारैर्विषं गुल्मप्रभेदनम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं विषं शूलहरं तथा ॥ ५९ ॥
विषं द्रवंती मधुकं द्राक्षा रास्ना शठी कणा ।
विषा वेल्लं मिशी क्षारं गुल्मप्लीहानिबर्हणम् ॥ ६० ॥
प्लीहोदरघ्नं पयसा शतारुष्कामिजिद्विषम् ।
वायसीमूलनिष्क्राथपीतं कुष्ठहरं विषम् ॥ ६१ ॥
पयस्या राजवृक्षत्वक् त्रायंती बाकुची बला ।
प्लीहघ्नीभकणाभ्यां च विषं क्राथेन कुष्ठजित् ॥ ६२ ॥
अवल्गुजैडगजयोर्बीजं क्षारद्वयं विषम् ।
लेपः ससैंधवः पिष्टो वारिणा कुष्ठनाशनः ॥ ६३ ॥
चित्रकार्कजटाहस्तिपिप्पलीबाकुचीविषैः ।
सचन्द्रकैरंडगजकरंजफलसैंधवैः ॥ ६४ ॥
सव्योषस्वर्जिकाक्षारयवक्षारनिशाह्वयैः ।
अगारधूमसहितैर्बस्तमूत्रेण कल्कितैः ॥ ६५ ॥
भल्लातकाग्निशम्याकविषैर्वा मूत्रपेषितैः ।
लेपो विचर्चिकादद्रूरसिकाकिटिभापहः ॥ ६६ ॥
शम्याकपत्रत्वङ्मूलं विषं तक्रं च तद्गुणम् ॥ ६७ ॥
कुष्ठतुंबरुबीजानि वाजिगंधाम्लवेतसम् ।
हरिद्रा वायसी रास्ना हरितालं मनःशिला ॥ ६८ ॥
पटोलनिम्बपत्राणि कणागंधकसैंधवम् ।

विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥६९॥
करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचंदनैः ।
आस्फोटाकुष्ठमंजिष्ठासप्तच्छदनिशान्तैः ॥ ७० ॥
सिंदुवारवचाक्ष्वेडैर्गवां मूत्रे चतुर्गुण ।
सिद्धं कुष्ठहरं तैलं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ ७१ ॥
कुष्ठाश्वमारभृंगार्कमूलस्नुक्क्षीरसैंधवैः ।
तैलं सिद्धं विषावापमभ्यंगात्कुष्ठजित्परम् ॥ ७२ ॥
भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः ।
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ॥ ७३ ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ ७४ ॥
विषं भल्लातकीद्वीपिगुंजानिंबफलैर्जयेत् ॥ ७५ ॥
लेपोऽम्लपिष्टैः श्वित्राणि पुण्डरीकं च दारुणम् ॥७६॥
ककुभारुष्करद्वीपिस्पृक्कापत्रैलवालुकम् ।
पिष्टं खादिरतोयेन त्रिरात्रमुषितं पिबेत् ॥ ७७ ॥
श्वित्रीविषेण संघृष्टं तत्तत्स्फोटान्किलासजान् ।
कण्टकेन विभिद्याशु लेपैर्लिपेच्च कौष्किकैः ॥७८॥
अथवा करवीरार्कमूलवाकुचिकाविषैः ।
बस्तांबुपिष्टैः सद्वीपिद्विपपिप्पल्यरुष्करैः ॥ ७९ ॥
एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पीतं वातार्तस्त्वमपोहति ॥ ८० ॥

कोरकं चीरनिष्क्वाथे लांगलीविषसर्षपैः ।
गंधकांकोलमरिचैः सस्नुक्क्षीरैर्विपाचितम् ॥
जयेज्ज्योतिष्मतीतैलमनलत्वग्गदानपि ॥ ८१ ॥
स्वरसं बीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसं घृतम् ।
वन्ध्या पिबेत सविषं सुपुत्रैः परिवार्यते ॥ ८२ ॥
वीरालांगलिकादंतीविषपाषाणभेदकैः ।
प्रयोज्यो मूढगर्भाणां प्रलेपो गर्भमोचनः ॥ ८३ ॥
देवदारुविषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका ।
वचा वाक्स्खलनं हंति बुद्धेश्च परिवर्धनम् ॥ ८४ ॥
विषं सर्पिः सिता क्षौद्रं तिमिरापहमञ्जनम् ।
विषं चैकमजाक्षीरकल्कितं घृतधूपितम् ॥ ८५ ॥
विषं धात्रीफलरसैरसकृत्परिभावितम् ।
अञ्जनं शंखसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ ८६ ॥
विषमिन्द्रायुधं स्तन्यैर्घृष्टं काचजिदञ्जनम् ॥ ८७ ॥
बीजपूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ।
विषं मागधिका द्वे च निशे काचघ्नमंजनम् ॥ ८८ ॥
शुक्लार्मजिद्विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभावितम् ॥ ८९ ॥
समुद्रफेनं स्फटिका कुरुविन्दं रसांजनम् ।
कूर्मपृष्ठं च तुल्यानि तेभ्योऽर्धांशा मनःशिला ॥९०॥
अर्धमानानि मरिचसैंधवायोरजांसि च ।
अथो यथोत्तरं दद्यादयसा च समं विषम् ॥९१॥
आगारधूमसहितैर्बस्तमूत्रेण कल्कितैः ।

रसक्रियेयं मधुना शुक्तपिष्टार्भकाचनुत् ॥
अभीक्ष्णं शीततोयेन सिञ्चेन्नेत्रं विषांजितम् ॥९२॥

एक घडेमें गोमूत्र भरकर उसमें वत्सनाभ विष अथवा जिस विषसे सेवन करना हो उसको डालकर तीन दिनतक धूपमें रक्खा रहनेदेवे । फिर उसको निकालकर अच्छे प्रकारसे सुखालेवे और बारीक चूर्ण सेवन करे । इस प्रकार गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ विष पौष्टिक गुणवाला होजाता है । किसीभी प्रकारका विष क्यों न सेवन करना हो, उसको पहले गोमूत्रमें अवश्य शुद्ध करलेना चाहिये । प्रयोग (१) वातज्वरमें दहीके पानीके साथ, पित्तज्वरमें दूधके साथ, कफ ज्वरमें बकराके मूत्रके साथ और सन्निपातज्वरमें त्रिफलेके क्वाथके साथ विष सेवन करना चाहिये । (२) लोध, चन्दन, पीपलामूल इन तीनोंका क्वाथ बनाकर उसमें खाँड, घी और शहद डालकर उसके साथ विषको सेवन करनेसे अथवा केवल दूधके साथ सेवन करनेसे जीर्णज्वर (पुराना बुखार) दूर होता है । (३) दन्तीकी जड, निसोतकी जड, त्रिफला और शुद्ध मीठा तेलिया इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे । फिर घृत और मधुके संयोगसे इस चूर्णके मोदक बनाकर यथोचित मात्रासे सेवन करे । यह मोदक जीर्णज्वर, प्रमेह और त्वचाके समस्त रोगोंको नष्ट करते हैं । (४) अरणीकी जडके रसके साथ सेवन किया हुआ विष विषमज्वरको दूर करता है । (५) शुद्ध मीठातेलिया, मुलैठी, रास्ना और कमलकन्द इनके समान भाग मिश्रित चूर्णको चावलोंके धोये हुए जलके साथ सेवन करना रक्त पित्त रोगकी उत्तम औषध है । (६) रास्ना, वायविडंग, त्रिफला, देवदारु, त्रिकुटा, पद्माख, गिलोय, और शुद्ध वत्सनाभ विष सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे । यह प्रयोग श्वास और खाँसीको जीतनेवाला है । (७) पारा, अतीसकी कली, प्रवालभस्म और शुद्ध मीठातेलिया इन सबको समान

भाग लेकर एकत्र खरल करके मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे तो श्वासरोग, हिचकी और वमन होना दूर होता है । (८) खस, मुलैठी, जवाखार, हल्दी, कुडेकी छाल और शुद्ध मीठातेलिया इनके समान भाग चूर्णको च्यवनप्राश अवलेहमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे तो क्षयरोग शीघ्र शमन होता है । (९) नागरमोथा, कुडेकी छाल, पाढ, चीता, त्रिकुटा, अतीस, शुद्ध वत्सनाभ, धायके फूल, मोचरस और आमकी गुठलीकी गिरी इनका समान भाग चूर्ण जलके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीको दूर करता है । (१०) वत्सनाभ विष, हरड, चीता, दन्तीकी जड, दाख, हल्दी और अडूसा इनका चूर्ण मूत्रकृच्छ्र नाशक है । (११) शिलाजीत, वत्सनाभ और त्रिकुटा इनका प्रयोग करनेसे आवर्त्त और पथरीरोग नष्ट होता है। (१२) जवाखार, सैंधानमक, मीठा तेलिया, और पाषाणभेद इन सबके चूर्णको समान भाग लेकर गोमूत्रके साथ सेवन करे तो केवल यह चूर्णही वज्रकी समान पथरीको तोडकर निकाल देताहै। (१३) त्रिफला, सज्जी और वत्सनाभ इनका समानांश चूर्ण गुल्मरोगनाशक है । (१४) पीपल, पीपलामूल और विष इन तीनोंको सेवन करनेसे शूलरोग दूर होता है । (१५) वत्सनाभ विष, मूसाकानी, मुलैठी, दाख, रास्ना, कचूर, पीपल, अतीस, वायविडंग, सोंफ और जवाखार इन सबके समानभाग चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे गुल्मरोग और तिल्ली दूर होती है । (१६) शतावर, वायविडंग और विष इनके चूर्णको दूधके साथ सेवन करे तो तिल्ली और उदररोग नष्ट होते हैं । (१७) मालकाँगनीकी जडके क्काथके साथ सेवन किया हुआ विष कुष्ठको दूर करता है । (१८) क्षीरकाकोली, अमलतास, तज, त्रायमाण, बावची, खिरैंटी, रोहेडावृक्षकी छाल, गजपीपल इन सबको समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्काथ बनालेवे । उस क्काथके साथ विषको सेवन

करनेसे कुष्ठ दूर होता है । (१९) बावची, अण्डके बीजोंकी गिरी, जवाखार, सज्जी, विष और सैंधानमक इनको पानीमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ नाश होता है । (२०) चीता, आककी जड, गजपीपल, बावची, विष, कपूर, अण्डके बीजोंकी गिरी, करञ्जकी गिरी, सैंधानमक, त्रिकुटा, सज्जी, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, और घरका धुआँ इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे । फिर उस चूर्णको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं । (२१) भिलावे, चीता, अमलतास और विष इनके समान भाग चूर्णको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेपकरनेसे विचर्चिका, दाद, खुजली, किटिभ कुष्ठ आदि विकार दूर होते हैं । (२२) अमलतासके पत्ते, छाल, जड और विष इनको मट्ठेमें पीसकर किया हुआ प्रलेपभी उसीकी समान गुण करता है । (२३) कूठ, तुम्बरूके बीज, असगन्ध, अमलबेंत, हल्दी, कठूमर, रास्ना, हरताल, मैनसिल, पटोलपात, नीमके पत्ते, पीपल, गन्धक, सैंधानमक, विष, देवदारु और सिरसकी जड इन औषधियोंके समानभाग चूर्णको मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग शमन होता है । (२४) करञ्जकी जड, कनेरकी जड, आककी जड, चमेलीकी जड, लाल चन्दन, नेवारीकी जड, कूठ, मंजीठ,सतवन, हल्दी, तगर, सिह्मालूके पत्ते, वच, और विष इनके चूर्णको समानभाग लेकर चौगुने गोमूत्रमें पीसलेवे । फिर उसको गोमूत्रसे चौथाई भाग तिलके तेलमें डालकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे यह तेल प्रलेप करनेसे कुष्ठको हरता और दुष्टव्रण (नासूर) का शोधन करता है । (२५) कूठ, कनेर, भाँगरा, आककी जड, थूहरका दूध, सैंधानमक और विष इनको समानभाग लेकर चौगुने गोमूत्रमें पीसलेवे । फिर उस कल्कके साथ गोमूत्रसे आधा तिलका तेल मिलाकर उसको विधिपूर्वक सिद्ध करे । उस तेलमें विष डालकर मालिश करनेसे सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं । (२६) चन्दन, देवदारु, मिरच, हल्दी, दारु-

हल्दी, निसोत और नागरमोथा ये प्रत्येक चार २ तोले और वत्स-नाभ दो तोले लेकर सबको गोमूत्रमें पीसलेवे । फिर उसमें ब्राह्मीका रस ६४ तोले, आकका दूध, ६४ तोले, गौके गोबरका रस ६४ तोले और सरसोंका तेल ६४ तोले डालकर यथाविधि तेलको पकावे । यह तेल पान, प्रलेप, मर्दन आदिके द्वारा प्रयोग करनेसे कुष्ठ, दुष्टव्रण, नाडीव्रण, और अपची इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करता है । (२७) विष, भिलावे, चीता, चोंटली और नीमकी निबौली इनको खटाईके साथ पीसकर लेप करनेसे श्वेत-कुष्ठ, पुण्डरीक नामक कुष्ठ और दारुण नामवाला कुष्ठ दूर होता है । (२८) अर्जुनवृक्षकी छाल, भिलावे, चीता, असवरग, तेज-पात और एलुआ इनके समान भाग मिश्रित २ तोले चूर्णको खरसारके क्वाथमें पीसकर खैरसारके रसमें भिगोकर तीन दिनतक रक्खा रहने देवे । फिर चौथे दिन उसमें यथोचित मात्रासे विष मिलाकर पान करे और श्वेतकुष्ठपर इस औषधका प्रलेप करे तो इससे श्वेतकुष्ठके स्थानमें छाले पडजाते हैं । उनको कांटेसे भेदकर फिर उनके ऊपर इस औषधका प्रलेप करनेसे श्वेतकुष्ठ शीघ्र नष्ट होता है । (२९) कनेर, आककी जड, बावची, विष, समुद्र-फेन, गजपीपल और भिलावे सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर लगानेसे श्वेतकुष्ठ अथवा श्वेतकुष्ठके छाले शान्त होते हैं । (३०) अण्डीका तेल, त्रिफला, चीता, विष और गोमूत्र इनका एकत्र कल्क बनाकर उस कल्ककी बराबर घी और उससे चौगुना पानी लेकर सबको एकत्र मिश्रित करके घृतको पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे वातकी पीडा शमन होती है । (३१) शीतलचीनी, कलि-हारी, विष, सरसों, गन्धक, अंकोलके बीज, मिरच, थूहरका दूध इन सबको समान भाग लेकर कपासकी जडके क्वाथमें पीस करके कल्क बनालेवे । उस कल्ककी बराबर मालकाँगनीका तेल और तेलसे चौगुना कपासकी जडका क्वाथ लेकर सबको एकत्रित करके

करके तेलको सिद्धकरे । यह तेल पान करनेसे जठराग्निको दीपन करता है और मालिस करनेसे त्वचाके विकारोंको दूर करता है । (३२) बिजौरानींबूका स्वरस, वचका रस और ब्राह्मीका रस ये सब समान भाग और सबकी बराबर गौका घी इनको एकत्र मिलाकर पकावे । जब पककर घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । इस घृतमें विषको मिलाकर सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री उत्तम पुत्र पौत्रोंसे सम्पन्न होती है । (३३) बडी शतावर, कलिहारी, दन्तीकी जड, विष और पाषाणभेद इन औषधियोंको जलमें पीसकर मूढगर्भा स्त्रियोंके योनिस्थानमें प्रलेप करनेसे शीघ्र गर्भस्राव होता है । (३४) देवदारु, विष कटेरी और वच इनको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीस करक कल्क बनालेवे । फिर उस कल्कको समान भाग घृत और चौगुने गोमूत्रमें मिलाकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह घृत जिह्वास्तम्भ रोगको दूर करता है और बुद्धिका बढाता है । (३५) वत्सनाभ विषको घी, मिश्री और शहदम उत्तम प्रकारसे खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे तिमिररोग नष्ट होता है । (३६) केवल विषको बकरीके दूधमें पीसकर कल्क कर लेवे । उस कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके नेत्रोंमें लगानेसेभी तिमिररोग नाश होता है । (३७) विषको आमलोंके रसमें अनेक बार भावना देकर उसमें शङ्खका समानभाग चूर्ण डाल-कर खूब बारीक खरल करके अँजन बनालेवे । यह अञ्जन नेत्रोंमें आंजनेपर बहुत दिनोंके पुराने तिमिररोगको दूर करता है । (३८) कन्दविषको दूधमें पीसकर अञ्जन बनाकर आँजनेसे काचरोग (मोतियाबिन्द) दूर होता है । (३९) बिजौरे नींबूके रसके साथ वत्सनाभ विष और मिश्रीको पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे मोतियाबिन्द नष्ट होता है । (४०) विष और पीपलको एक साथ पीसकर रात्रिके समय आँजनेसे मोतियाबिन्द रोग आरोग्य होता है (४१) विष और पीपलको गोमूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका

फूला और अर्मरोग दूर होता है । (४२) समुद्रफेन, फटकरी, नागरमोथा, रसौत और कछुएकी पीठका चमडा ये प्रत्येक एक एक तोला, मैनसिल २॥ तोले, मिरच, सैंधानमक और लोहचूर्ण ये तीनों २॥ तोले, वत्सनाभ विष यथोत्तर क्रमसे लोहेकी बराबर अर्थात् ७९ रत्तीभर और घरका धुआं १ तोला इन सबको एकत्र खरल करके बकरेके मूत्रमे पीसे । फिर उसका गोलासा बनाकर उसको अण्डके पत्तोंमें लपेट करके ऊपरसे कपरौटीकर अग्निमें पकावे । जब मिट्टी पककर लाल होजाय तब उसको निकालकर शीतल होजानेपर उसमें उक्त कल्कके गोलेको निकालकरके अंजनकी समान बारीक चूर्ण करलेवे । इस अञ्जनको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे सफेद फूला, बाहरको निकलाहुआ डेला, जाला, मोतियाबिन्द आदि सब नेत्ररोग नष्ट होते हैं । विषघ्नी औषधको नेत्रोंमें लगानेपर निरन्तर शीतलजलसे नेत्रोंको धोना चाहिये४७-९२

विषके अन्य सामान्य प्रयोग ।

भल्लातकाग्निशम्याकविषैर्वा मूत्रपोषितैः ।
लेपो विचर्चिकादद्रुरसिकाकिटिभापहः ॥ ९३ ॥
शम्याकपत्रत्वङ्मूलं विषं तक्रं च तद्गुणम् ॥ ९४ ॥
विषा तुवरुबाजानि वाजिगन्धाऽम्लवेतसम् ।
हरिद्रा वायसी रास्ना ह्यरिताल मनःशिला ॥९५ ॥
पटोलनिंबपत्राणि कणागंधकसैंधवम् ।
विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥ ९६॥
करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचंदनैः ।
आस्फोटाकुष्ठमंजिष्ठाक्षतच्छदनिशान्तैः ॥ ९७ ॥
सिंदुवारवचाक्ष्वेडैर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।

सिद्धं कुष्ठहरं तैलं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ ९८ ॥
कुष्ठाश्वमारभृंगार्कमूलस्नुक्क्षीरसैंधवैः ।
तैलं सिद्धं विषावापमभ्यंगात्कुष्ठजित्परम् ॥ ९९ ॥
भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः ।
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ॥ १०० ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिध्ममाशु व्यपोहति ॥ १०१ ॥
रसोनकंदमरिचविषसर्षपसैंधवैः ।
पिल्लेक्षणहितं कार्यं सुरसारसपेषितः ॥
पूरयेत्सर्पिषा चानु सर्पिरेव च पाययेत् ॥ १०२ ॥
मधूकसारमधुकाविषक्षीरजलैर्घृतम् ।
पक्वं संतर्पणं श्रेष्ठं नक्तांध्ये त्वचिरोत्थिते ॥ १०३ ॥
अञ्जनं नरपित्तेन रोचनामधुशृंगिभिः ।
स्वर्जिकाक्षारसिंधूत्थं शुक्ते शुक्तं वरं विषम् ॥
कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिबर्हणम् ॥ १०४ ॥
नस्यं शिरोरुक्शमनं प्रत्यक्पुष्पीसितविषम् ।
अथवा घृतयष्ट्याह्वशर्कराविषसंयुताः ॥
शुंठी पथ्या विषं पाठा त्रायंती पूतिनासजित् ॥ १०५ ॥
प्रपौण्डरीकमंजिष्ठाविषातिंदुसमुद्भवैः ।
निहंति साधितं तैलं गण्डूषेण मुखामयान् ॥ १०६ ॥
एलाखदिरकंकोलजातीकर्पूरचन्दनैः ।

बोलाब्दवालैर्द्विगुणविषैः साराम्बुपोषितैः ॥
समूत्रा वटिकाः क्लृप्ता धृता घ्नंति मुखामयान् १०७॥
कटुतैलविषं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ १०८ ॥
स्नुह्यर्कक्षीरभृंगाम्बुगोमूत्रहलिनीविषैः ।
गुंजाविशालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥
खलतिं शमयत्यम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ॥ १०९ ॥
सिन्धूत्थकार्पासफलं पिण्डितं सह सर्पिषा ।
क्षीरेणाजेन वा लेपाद्विषदिग्धायुधव्रणुत् ॥ ११० ॥
विषं रसाञ्जनं भार्ङ्गी वृश्चिकाली महासहा ।
सवेदने सपाके च व्रणे दुष्टे प्रलेपनम् ॥ १११ ॥
कृतमालार्कपूतीकवत्सकातिविषाविषम् ।
सिद्धं यादिंगुदक्वाथैः सर्पिस्तदपचीहरम् ॥ ११२ ॥
काकादनीमागधिकानालिकातुण्डिकाफलैः ।
जीमूतबीजकर्कोटविशालाकृतवेधनैः ॥ ११३ ॥
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुंडीस्वरसाढके ॥ ११४ ॥
तज्जयेदपचीं घोरां नावनाभ्यंगपानतः ॥ ११५ ॥
गुंजाटंकणशिग्रुमूलरजनीशम्याकभल्लातक-
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैंधववचाकुष्ठाभयालांगलीः ।
वर्षाभूशठिभूङ्गिशिरीषवरणव्योषाश्वमारा विषं
गोमूत्रं शमयेद्विलिप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदान् ।११६।

अन्येष्वपि च रोगेषु शेषोपायपरिक्षये ।
प्रत्यहं विषकन्दस्य त्रियवं यवमेव वा ॥
शुद्धस्य राजिकावृद्ध्या वर्षं भुक्त्वा जयेद्गदान् ॥ ११७ ॥
वचागन्धकसिंधूत्थत्रायमाणाम्लवेतसम् ।
व्योषाग्निवेल्लपाठाम्लपर्णीकरिकणाविषम् ॥ ११८ ॥
शार्ङ्गरीनागदमनीवायसीत्रिफलारसैः ।
भावितं मधुसर्पिर्भ्यां भक्षितं स्याद्रसायनम् ॥ ११९ ॥
हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ।
मुस्ता विडंगं मूत्रेण पिष्टमाजेन पिण्डितम् ॥ १२० ॥
भावनाञ्जनपानेषु गोमूत्रासृग्रसाञ्जनैः ।
जयेत्प्रयुक्तं विषमज्वरान्सघृतसाधितम् ॥ १२१ ॥
सर्वजं समधुव्योषं गवां मूत्रेण शीतकम् ।
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तं वृषस्य वा ॥ १२२ ॥
क्षयं क्षीराश्वगंधाभ्यां कासं श्वासं समाक्षिकम् ।
तक्रेण ग्रहणीरोगं कृच्छ्रं तंडुलवारिणा ॥ १२३ ॥
प्रमेहं मधुना गुल्मं शूलं च गुडवारिणा ।
पाण्डुशोफं गवां क्षीरेणाम्भसा त्रैफलेन वा ॥ १२४ ॥
गवां मूत्रेण कुष्ठानि क्षौद्रेणोदुम्बराह्वयम् ।
तक्रेण युक्तं चालेपाद्दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ १२५ ॥
पीतमुष्णाम्भसा वायुं तुलस्या लेपनाद्ग्रहान् ।
समूत्रं विस्मृतिं नस्येनाञ्जनेन दृगामयान् ॥ १२६ ॥
स्पन्दाधिमन्थौ सस्तन्यमर्मकोपं सशोणितम् ।

सकासमर्दं काचादीन्सभृंगोदं निशान्धताम् ॥ १२७ ॥
रंभाकन्दाम्भसा पुष्पं पिल्लं ताम्रमधूत्कटम् ।
सतूलमार्तिं दन्तानां गण्डूषेण विलेपनात् ॥ १२८ ॥
सगोमूत्रं शिरःशूलं सक्षौद्राम्लं क्षतव्रणान् ।
भगंदरापचीग्रंथीन्सक्षौद्रं सगुडं व्रणान् ॥ १२९ ॥
नारिकेराम्भसा लिंगविकारान्सेवनात्पुनः ।
प्रदरं भृंगसारेण नागपुष्पस्य सर्पिषा ॥ १३० ॥
रम्भाकन्दाम्बुसर्पिभ्यां पीतं लिप्तमहेर्विषम् ।
गीतकनरमूत्राभ्यामथाऽऽखोर्वृश्चिकस्य च ॥ १३१ ॥
सार्कक्षीरं विलेपेन लूतानां तु विषं जयेत् ।
शतपत्ररसाज्याभ्यां विषं सर्वं च सर्वथा ॥ १३२ ॥
कांताभ्रकाशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम् ।
शीलितं मधुसर्पिभ्यां व्याधिवार्धकमृत्युजित् ॥ १३३ ॥
नष्टशुक्रः पयोद्राक्षाकपिकच्छुमहाविषम् ।
शीलयेन्मधुसर्पिभ्यां सखर्जूरं सयाष्टिकम् ॥ १३४ ॥
क्षीरक्षौद्रघृतैर्युक्तं पीतं हन्ति विषं विषम् ।
ससिंदुवारतगरं मृतसंजीवनं विषम् ॥ १३५ ॥
शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ।
देवदारुनतं मांसी द्राभिली बाकुची विषम् ॥ १३६ ॥
कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम् ।
मनःशिलाञ्जनाऽऽलैलासिन्दुवारामराह्वयम् ॥

सरक्तं कुंकुमविषं ध्मातं निःसंज्ञबोधनम् ॥ १२७ ॥
दाहे विषोद्भवे लेपः सक्तुक्षीरघृतैर्युतः ॥ १२८ ॥

(४३) भिलावे, चीता, अमलतास और विष इन चारोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विचर्चिका, दाद, खुजली और किटिभ कुष्ठ दूर होता है । (४४) अमलतासके पत्ते, छाल, जड और विष इनको मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसेभी उक्त विकार नाश होते हैं । (४५) अतीस, तुम्बरुके बीज, असगन्ध, अम्लबेंत, हल्दी, कठूमर, रारना, हरताल, मैनासिल, पटोलपात, नीमके पत्ते, पीपल, गन्धक, सैंधानमक, विष, देवदारु और सिरसकी जड इन सबको मट्ठेके साथ पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है । (४६) करंजकी जड, कनेरकी जड, आककी जड, चमेलीकी जड, लालचन्दन, नेवारकी जड, कूठ, मंजीठ, सतौना, हल्दी, तगर, सिरूहालु वच और विष इन सबको समान भाग लेकर चौगुने गोमूत्रमे कल्क बनाकर उसमें सरसोंका तेल डालकर सिद्ध करे । इस तेलको मालिश करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है और दुष्टव्रण शुद्ध होता है । (४७) कूठ, कनेर, भाँगरा आककी जड,थूहरका दूध, और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें यथाविधि तेलको सिद्ध करके उसमें विष डालकर मालिश करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है । (४८) चन्दन, देवदारु, मिरच, हल्दी, दारु हल्दी, निसोत और नागरमोथा ये प्रत्येक चार २ तोले और विष २ तोले इन सबको गोमूत्रमें पीसकर उसमें ब्राह्मीका रस, आकका दूध, गोबरका रस और सरसोंका तेल ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ डालकर उत्तम प्रकारसे तिलको सिद्ध करे । यह तेल सिध्म कुष्ठको शीघ्र दूर करता है । (४९) लहसुन, मिरच, विष, सरसों और सैंधानमक इन औषधियोंको समान भाग लेकर तुलसीके रसमें खरल करके बत्तियाँ बनालेवे । और छायामें सुखा लेवे । इन बत्तियोंको पानीमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंका फूला, जाला आदि

विकार दूर होकर आरोग्य लाभ होता है। इस बत्तीको नेत्रमें लगानेपर पीछेसे घीकी दो तीन बूँदे नेत्रमें डाले और घृतही पान करावे। (५०) मुलैठीका सत्त, महुवेके फूल और विष इनको जलमें पीसकर कल्क कर लेवे। उस कल्कको समान भाग घृत और चौगुने दूधमें डालकर विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृत अल्पकालके नक्तान्ध (रतौंधा) रोगमें नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंको अत्यन्त तृप्त करता है और उक्त रोगको नष्ट करता है। (५१) मनुष्यका पित्त, गोरोचन, महुवेके फूल, काकडासिंगी, सज्जी, सैंधानमक और श्वेत विष इन सबको समान भाग लेकर शहदमें खरल करके अंजन बनालेवे। इस अंजनको नेत्रोंकी सफेदीमें लगाना विशेष उपयोगी है। और उक्त औषधियोंको पानीमें पीसकर कानोंमें डालनेसे कानका तीव्र शूल नष्ट होता है। (५२) चिरचिटेका पञ्चाङ्ग मिश्री और विष इनको पानीमें पीसकर नस्य लेनेसे शिरकी पीडा शमन होती है। (५३) अथवा मुलैठी, खाँड और विष इनके चूर्णको घृतमें मिलाकर नस्य लेनेसे मस्तककी पीडा शान्त होती है। (५४) सोंठ, हरड, विष, पाढ और त्रायमाणलता इनके चूर्णकी नस्य लेनेसे नाककी दुर्गन्ध दूर होती है। (५५) श्वेत कमल, मंजीठ और कुचला इनके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल कुरले करनेसे मुखके समस्त रोगोंको नष्ट करता है। (५६) इलायची, खैरसार, शीतलचीनी, चमेलीकी जड, कपूर, चन्दन, बोल, नागरमोथा, सुगन्धवाला ये सब समान भाग और सबसे दुगुना विष लेकर सबको खैरसारके रस और गोमूत्रमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियाँ बनालेवे। ये गोलियाँ मुखमें धारण करनेसे सब प्रकारके मुखके रोगोंको शमन करती हैं। (५७) सरसोंके तेलमें विषको मिलाकर नस्य लेनेसे पलित (असमय) बालोंका पकना) रोग और अरुंषिका रोग दूर होता है। (५८) थूहरका दूध, आकका दूध, भाँगरेका रस, गोमूत्र, कलिहारी, विष

चोंटलीकी जड, इन्द्रायनकी जड और मिरच ये सब समान भाग और सरसोंका तेल विषसे अठगुना लेवे । फिर उक्त औषधियोंको खटाईमें पीसकर तेलमें डालकर उत्तम प्रकारसे पकावे । यह तेल शिरमें मालिश करनेसे गंजरोगको दूर करता है ।(५९) सेंधानमक और कपासके फल दोनोंको घृतके साथ खरल करके गोलियाँ बनालेवे । इनगोलियोंको बकरीके दूधमें घिसकर लगानेसे विषमें बुझाये हुये शस्त्रका घाव शीघ्र नष्ट होता है । (६०) विष, रसौत, भारंगी, बिछैछी घास और मपवन इन सबको पानीमें पीसकर पके हुये और वेदनायुक्त दुष्ट व्रण पर प्रलेप करना उपयोगी है ।(६१) अमलतास, आक, दुर्गन्ध करञ्ज, कुडेकी छाल, अतीस और विष इनको इंगुदीके क्काथमें पीसकर उसमें घृत डालकर पकावे । यह घृत प्रलेप करनेसे अपची (रसौली) रोगको शीघ्र नाश करता है । (६२) कौआठोडी, मुलैठी, नली, कन्दूरीके फल, नागरमोथा, ककोडा, इन्द्रायनकी जड, अमलतास और पाढ ये प्रत्येक दो दो तोले और विष एक कर्ष सबको पानीमें पीसकर कल्क बनालेवे । फिर इस कल्कको और एक प्रस्थ करञ्जके तेलको एक आढक निर्गुण्डीके स्वरसमें डालकर पकावे । जब पककर तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । यह तेल नस्य अभ्यङ्ग और पान द्वारा प्रयोग किये जानेसे भयङ्कर अपची (रसौली) को शमन करता है ।(६३) घुंघुची, सुहागा, सहिंजनेकी जड, हल्दी, अमलतास, भिलावे, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, करञ्जुआ, सैंधानमक, वच, कूठ, हरड, कलिहारी, पुनर्नवा, कचूर, लभेडा, वरनाकी छाल, त्रिकुटा, कनेर और विष इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अपची, गाँठ, अर्बुद और श्लीपद (पीलपाया) ये सब रोग नाश होते हैं । (६४) इनके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक रोगोंमें यदि सम्पूर्ण उपायोंके करनेपर भी लाभ न हो तो प्रतिदिन शुद्ध कन्दविषको एक२राईकी मात्रासे

बढाता हुआ एक जो अथवा तीन जौकी मात्रातक एक वर्ष पर्यन्त सेवन करनेसे सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। (६५) वच, गन्धक, सैंधा, त्रायमाणलता, अम्लबेंत, त्रिकुटा, चीता, वायविडङ्ग, पाढ, नोनिया, गजपीपल और विष इनके समान भाग चूर्णको शार्ङ्गेरी, नागदौनी, कौआठोडी और त्रिफला इनके क्वाथमें भावना देकर मधु और घृतके साथ सेवन करनेसे रसायनकी समान गुण प्राप्त होता है। (६६) हल्दी, नीमके पत्ते, पीपल, मिरच, नागरमोथा और वायविडङ्ग इनके चूर्णको गोमूत्रमें अथवा बकरीके मूत्रमें पीसकर नस्य लेनेसे वा गोमूत्र और बकरीके रुधिरमें पीसकर नस्य लेनेसे अथवा रसौतके साथ पीसकर नस्य लेने, नेत्रोंमें आँजने और घीमें पकाकर पान करनेसे विषम आदि ज्वर दूर होते हैं। (६७) विष, मधु और त्रिकुटा तीनोंको एकत्र मिलाकर देनेसे सान्निपात ज्वर, तथा गोमूत्रके साथ देनेसे शीतज्वर, चन्दनके क्वाथ अथवा अडूसेके क्वाथके साथ सेवन करानेसे रक्तपित्त रोग दूर होताहै। (६८) वत्सनाभ विषको दूध और असगन्धके चूर्णके साथ सेवन करनेसे क्षय रोग, मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे खाँसी, श्वास मट्ठेके साथ सेवन करनेसे संग्रहणी और चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होताहै। (६९) विष मधुके साथ प्रयोग करनेसे प्रमेहको, गुडके पानीके साथ सेवन करनेसे गुल्म तथा शूलको, गोदुग्ध अथवा त्रिफलेके क्वाथके साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोग और शोथको शमन करता है। (७०) गोमूत्रके साथ सेवन किया हुआ विष कुष्ठको, शहदके साथ सेवन करनेसे औदुम्बर कुष्ठको और मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे दाद, खुजली, विचार्चिका आदि त्वचाके विकारोंको दूर करता है। तथा गरम जलके साथ पान करनेसे वायुको और तुलसीके रसमें घोटकर लेप करनेसे ग्रहोंकी पीडाको हरता है। इसको गोमूत्रमें घिसकर नस्य लेनेसे स्मरण शक्ति बढती है और नेत्रोंमें आँजनेसे दृष्टिगत रोग नष्ट होते हैं। (७१) विषको स्त्रीके

दूधमें पीसकर आँजनेसे स्यन्द और अधिमन्थ नामक नेत्ररोग, रक्तविकार सहित अर्मकोप आदि नेत्ररोग तथा कसौंदीके रसमें घोटकर आँजनेसे मोतियाबिन्द और भाँगरेके रसमें घोटकर नेत्रोंमें लगानेसे रतौंधा आना दूर होता है । केलेकी फलीके रसमें विषको खरल करके आँजनेसे फूला, और ताँबेके पात्रमें शहदके साथ घिसकर लगानेसे आँखका बढा हुआ मांसका डेला कम दूर होता है । (७२) विषको कपासकी जडके क्वाथमें खरल करके उसके कुल्ले करनेसे अथवा लेपकरनेसे दाँतोंकी पीडा शमन होती है । गोमूत्रमें पीसकर नस्य लेनेसे मस्तक शूल दूर होता है और शहद अथवा खटाईमें पीसकर लगानेसे शस्त्रके द्वारा उत्पन्न हुए घाव और व्रण शीघ्र भर जाते हैं । तथा शहदके साथ मिलाकर लगानेसे विष भगन्दर, रसौली और गाँठको और गुडके साथ मिलाकर लगानेसे सब प्रकारके व्रणोंको शमन करता है । (७३) विषको नारियलके जलमें पीसकर सेवन करनेसे वह लिंगके सब विकारोंको, और भाँगरेके रस अथवा नागकेसरके रसके साथ पकाये हुए घृतके साथ सेवन करनेसे प्रदर रोगको नष्ट करता है। केलेके कन्दके रस और घृतमें विषको मिलाकर पीनेसे और लेप करनेसे सर्पका विष दूर होता है । गौका मठा और मनुष्यका मूत्र इन दोनोंके साथ मिलाकर पान किया हुआ विष चूहे और विच्छूके विषको दूर करता है । और आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे मकडीका विष अर्थात् मकडीका फलना दूर होता है । कमलके रस और घृतके साथ सेवन किया हुआ विष सब प्रकारके विषोंको दूर करदेता है । (७४) कान्तलोह भस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध मीठातेलिया, शुद्ध पारेकी भस्म और सोनामाखीकी भस्म इन सब रसको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके मधु और घृतके साथ सेवन करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण रोग, वृद्धावस्था और मृत्युसे विजय प्राप्त करता है । (७५) नष्ट

होगया है शुक्र जिसका ऐसा मनुष्य दाख, कौंचके बीज, महाविष, खजूर और मुलैठी इन सबके समान भाग चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दुग्धपान करे तो वीर्यकी वृद्धि और पुष्टि होती है। (७६) शहद और घृतमें विषको मिलाकर सेवन करने और दूधका अनुपान करनेसे चूहा, बिच्छू आदि सब जन्तुओंके विष नष्ट होते हैं। (७७) सिम्हालू, तगर और विष इनको समभाग लेकर मधु और घृतके साथ सेवन करके ऊपरसे दुग्धपान करे तो यह प्रयोग मृतप्राय मनुष्यको संजीवनकी समान गुण करता है। (७८) सिरसके फूल, पत्ते और वत्सनाभ विष इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे चूहेका विष दूर होता है। (७९) देवदारु, तगर, बालछड, फटकरी, बावची, वत्सनाभ और कूठ इन समस्त औषधियोंको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करके भक्षण करने और प्रलेप करनेसे सब प्रकारके विष नाश होते हैं। (८०) मैनसिल, सुरमा, हरताल, इलायची, सिम्हालु, देवदारु, सिन्दूर , केसर और वत्सनाभ विष इन समान भाग मिश्रित औषधियोंको बारीक चूर्ण करके कपडछान करलेवे। इस चूर्णका नस्य देनेसे संज्ञाहीन मनुष्य चैतन्यलाभ करता है। तथा विषके सेवन करनेसे शरीरमें दाहके उत्पन्न होनेपर इस चूर्णको सत्तू, दूध और घृतके साथ मिलाकर सारे शरीरमें प्रलेप करनेसे दाह शान्त होती है ॥ ९३–१३८ ॥

विषमें पथ्यापथ्य आदि विचारोंका वर्णन।

अमृतं सहसा युक्तं शीलितं विषमेव च।
सात्म्याऽसात्म्यं विकाराय मृत्यवे च वरानने ॥ १३९॥
वेगान्यष्ट प्रजायंते सहसा विषशीलिनः ॥ १४० ॥
प्रथमे त्वग्विकारः स्याद्द्वितीये वेपथुर्भवेत्।
दाहो वेगे तृतीये स्याच्चतुर्थे विकृतो भवेत् ॥ १४१॥

फेनोद्गतिः पञ्चमे स्यात्स्कन्धयोर्भंगता ततः ।
जाड्यता सप्तमे वेगे चाष्टमे मरणं ध्रुवम् ॥
एवं ज्ञात्वा वरारोहे प्रतीकारं समाचरेत् ॥ १४२ ॥
पित्तान्तं वमनं कुर्यादामान्तं रेचनं चरेत् ।
जातिनीलीश्वरीसिंधुकाकमाच्यद्रिकार्णिकाः॥ १४३॥
त्रिफला करवीरं च कुष्टं मधुकजीरकम् ।
क्षीरवृक्षत्वगेलेति विषघ्नोऽयं गणः स्मृतः ॥
विषघ्नं गोघृतं देवि मांगल्यं जीवनं स्मृतम् ॥ १४४ ॥
अश्वगंधां सगोजिह्वां त्रिशूलीं त्रिफलामपि ।
प्रथमं भक्षयित्वा च सेवयेद्गरलं ततः ॥ १४५ ॥
ब्रह्मचर्यं वरारोहे विषकाले समाचरेत् ।
पथ्यं स्वस्थमना भुक्त्वा तदा सिद्धिर्न संशयः १४६॥
गव्ये क्षीरघृते पेये शाल्यन्नामिदमेव च ।
शीतलं च पिबेत्तोयं पित्तलानि च वर्जयेत् ॥ १४७॥
जांगलानि च मांसानि छागलोहं च मद्गुरान् ।
शर्करां माक्षिकं क्षीरं सेवनीयं प्रयत्नतः ॥
सेव्यं देवि सदा पथ्यमपथ्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १४८ ॥
उद्धृतं फलपाकेन नवं स्निग्धं घनं गुरु ।
अव्यापन्नं विषहरैरवातातपशोषितम् ॥ १४९ ॥
रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारितम् ।
सक्तुकं मुस्तकं शृंगी वालुकं सर्षपाह्वयम् ॥
वत्सनाभं च कर्मण्यं कालकूटादिकं ततः ॥ १५० ॥

न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं विषे तीक्ष्णे च चारिते ।
अतिमात्रे च कर्मण्ये पेयं घृतमनन्तरम् ॥
सभार्ङ्गीदधिघर्मोत्थं सारिवा तंदुलीयकम् ॥ १५१॥
आगारधूममंजिष्ठायष्ट्याह्वैर्वा समन्वितम् ।
लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां चूर्णितामर्जुनत्वचम् ॥
टंकणं मेघनादेन मधुना वाऽऽलिपल्लवान् ॥ १५२ ॥
विषे प्रतिविषं युंज्यान्मंत्रतंत्रैरसिद्धयति ।
अतीते पञ्चमे वेगे सप्तमे चानातिक्रमे ॥
युंज्यान्मूलविषं सर्पदष्टानां पानलेपयोः ॥ १५३ ॥
चतुर्भिः षड्भिरष्टाभिर्हीनमध्योत्तमा यवैः ।
मात्रां विषस्य मूलस्य प्रयुंजीत च सर्वदा ॥ १५४॥
दष्टस्य द्वौ यवौ कीटैस्तिलमात्रं तु वृश्चिकैः ।
नैव त्वसृक्स्थे पाने तु लूतादष्टस्य नेष्यते ॥
वृश्चया लेपयेद्दंशं तस्य ज्ञात्वा सुनिश्चितम् ॥१५५॥
शत्रुप्रयुक्ताद्विषतो गराद्वा लूताभुजंगाखुविषाज्ज-
रायाः । अकालमृत्युग्रहपाप्मनोपि विषाशिनो
नास्ति भयं नरस्य ॥ १५६ ॥

हे वरानने, सात्म्य (प्रकृतिके अनुकूल) और असात्म्य प्रकृतिके विरुद्ध) का विचार किये विना सहसा उपयोग किया हुआ अमृत अथवा विष अनेक प्रकारका विकार और मृत्युको उत्पन्न करते हैं । विना नियम और मात्राका विचार किये विना सहसा विषका सेवन करनेवाले मनुष्यके शरीरमें आठ प्रकारके

वेग उत्पन्न होते हैं। प्रथम त्वचाका विकार अर्थात् त्वचाका फटना और तमतमाना, दूसरे शरीरका कॉपना, तीसरे वेगमें दाह होना, चौथे वेगमें ऑख, कान आदि इन्द्रियोंमें विकार होना, पाँचवें वेगमें मुँहमेंसे झागोंका निकलना, छठे वेगमें कन्धोंका टूटना, सातवें वेगमे इन्द्रियोंमें जडता और आठवें वेगमें होनेपर मृत्यु होजाती है। हे शुभानने, इस प्रकार विषके विकारोंको जानकर तदनुसार उनका प्रतीकार करना चाहिये। प्रथम जबतक पित्त निकले तबतक वमन करावे। फिर सम्पूर्ण आमके निकलनेतक विरेचन (दस्त) करावे। एवं विषारिगणकी औषधियोंके क्काथको पान करावे अथवा उस क्काथके साथ घृतको सिद्ध करके सेवन करावे। चमेलीकी जड, नीलवृक्षकी जड, शिवलिङ्गी, सेंधानमक, मकोय, विष्णुक्रान्ता, त्रिफला, कनेर, कूठ, मुलैठी, जीरा, दूध-वाले वृक्षोंकी छाल और इलायची इन औषधियोंके समूहको विषारिगण कहते हैं। हे देवि! यह विषारिगण गोघृतके साथ मिलाकर प्रयोग करनेसे विषके सब उपद्रवोंको दूर करके मनुष्यको मांगलिक जीवन प्रदान करता है॥

विषपरपथ्य।

प्रथम असगन्ध, गोजिया, त्रिशूली घास और त्रिफला इनके समानभाग चूर्णको भक्षण करके फिर विषको सेवन करे। और ठीक है विष सेवन करते समय ब्रह्मचर्यव्रतको अवश्य पालन करे तथा स्वस्थ चित्तसे रहता हुआ पथ्य पदार्थोंका सेवन करे तो मनुष्य अवश्य सिद्धिको प्राप्त होता है। इस पर गौका घी, दूध शाली धानोंके चावल आदि हलके पदार्थोंका आहार और शीतल जलका पान करना चाहिये और पित्तकारक पदार्थोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये। तथा जंगली पशुओंका मांस, बकरीका रुधिर, मद्गुर नामक मछली, खांड, शहद, दूध ये सब पदार्थ यत्नपूर्वक सेवन करने चाहिये। हे देवि, इसपर सदैव पथ्यपदा-

र्थोंका सेवन और अपथ्य पदार्थोंको दूरसेही त्याग देना चाहिये । सक्तुक, मुस्तक, शृंगिक, बालुक, सर्षपक और वत्सनाभ इनमेंसे किसी विषको जब वह पूर्णरूपसे पकजाय तब उस नवीन स्निग्ध गाढे और भारी (वजनदार) विषको लाकर सेवन करना चाहिये । तथा जो विषनाशक पदार्थोंके द्वारा गुणहीन न हुआ हो और वायु अथवा धूपके द्वारा सूखकर हीन वीर्य न हुआ हो ऐसे विषको सेवन करना चाहिये । विषको सेवन करनेसे पहले उसको राईके तेलमें भिजोकर कपडेमें बाँधकरके तीन दिनतक रक्खा रहने देवे । फिर गोमूत्रमें शुद्ध करके सेवन करे । सक्तुक, मुस्तक, शृंगी, बालुक, सर्षपक, वत्सनाभ, कालकूटादि विषको सेवन करते समय और कोई विषैला पदार्थ कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिये । तीक्ष्ण विषका उपयोग करनेपर अथवा विषकी मात्रा अधिक होजानेपर निरन्तर घृतपान करना चाहिये । एवं भारंगी, दही, बडके अङ्कुर, जड, सारिवा, चौलाईका शाक, घरका धुआँ, मंजीठ और मुलैठी इन सबके समान भाग चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करे अथवा अर्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको शहद और घृतके साथ मिलाकर भक्षण करे या चौलाईके रसमें सुहागा पीसकर पान करे किंवा अरणीके पत्तोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करे । विषके उपद्रव अधिक बढनेपर मूल विषको योग्य मात्रासे व्यवहार करे तो विष विषको उतार देता है । मात्रा बढाकर किसी शत्रुके द्वारा दिया हुआ विष अथवा सर्पके काटनेसे चढा हुआ विष जब मन्त्र तन्त्र आदि उपायोंके द्वारा न उतरे तब पाँचवे वेगके व्यतीत होजानेपर सातवें वेगका आक्रमण होनेसे पहले मूलविषको पान करावे और उसीका प्रलेप करे तो रोगी आरोग्य होजाता है । चार जौकी मात्रा हीन, ६ जौकी मध्यम और ८ जौकी बराबर मात्रा उत्तम होती है । मूल (कन्द) विषकी मात्राको सदैव इन्हीं मात्राओंके अनुसार प्रयोग करना

चाहिये । कानखजूरा आदि जन्तुओंसे काटे हुए मनुष्यको दो जौकी बराबर और बिच्छूसे काटे हुए मनुष्यको एक तिलकी बराबर उक्त विष सेवन करना चाहिये । विषको पान करनेपर अथवा सर्पादिसे काटे हुए विषके रुधिरमें मिलजानेपर उसको उतारनेके लिये विष सेवन नहीं कराना चाहिये तथा मकडी जोंक आदि विषैलेजन्तुओंसे काटे हुए मनुष्यकोभी विष सेवन करना नही चाहिये । परन्तु बिच्छूके काटनेका निश्चय करके उस स्थान-पर विषका लेप करे । विष सेवन करनेवाले मनुष्यको शत्रुके द्वारा दिये हुए विषसे तथा किसी प्रकारकेभी उपविषसे मकडी, सर्प चूहाआदि जंतुओंके विषसे एवं वृद्धावस्था, अकालमृत्यु और पापग्रहोंकी पीडाकाभी भय नहीं होता ॥ १३९–१५६ ॥

इति श्रीवाग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

(रसकल्प)

पारदभस्म विधि ।

गुंजासैंधवयोश्चूर्णं देवदालीदलद्रवैः ।
टंकणं किंशुकरसैर्जंबीराम्लेन चूलिकाम् ॥ १ ॥
मूलकक्षारगोमूत्रप्रसादेन च गन्धकम् ।
स्वर्जिकां भूखगं व्योषशिग्रुमूलरसेन च ॥ २ ॥
शतशो भावयेत्सर्वं बिडोयं वडवानलः ॥ ३ ॥
एवमग्निसहो लोहसंयुक्तः केवलोऽथ वा ।
नियामकौषधासिताऽङ्कोलमूलरसादिभिः ॥ ४ ॥
वैक्रांतप्रमुखैर्वापि रसेन्द्रः सह मर्दितः ।
यंत्रस्थः क्रमवृद्धेन वह्निनोर्ध्वेन पाचितः ॥ ५ ॥

मृतोऽधराग्निना ततोऽप्यक्षीणो नोर्ध्वमाश्रयेत् ।
अथाऽपामार्गतैलेन तथा पुष्करतंदुलैः ॥ ६ ॥
अथवा मलयूक्षीरभावितश्वेताहिंगुना ।
मर्दितः पुटपाकेन भस्मतां प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥
गोमूत्रद्रोणपुष्पाभ्यां पाकाद्वा कांतभाजने ।
कङ्कुणीकृष्णधत्तूरतैलाभ्यां वा विमर्दितः ॥ ८ ॥
मृणालतंतुवर्तिस्थः पीतगंधर्वतैलयुक् ।
ज्वलितो याममात्रं वा मृतवैक्रांतसंयुतः ॥ ९ ॥
वंध्याऽमृताकंदगतः पचनाद्भूधरेऽथ वा ।
चपलोपलनिर्गुंडीरसाभ्यां रसकेन वा ॥ १० ॥
वाराहीरसयुक्तेन चक्रमर्दरसेन वा ।
गंधपाषाणयुक्तेन बद्धं वा वाससा रसम् ॥
पचेद्गंधकतैलेन यावदाखोटबंधनम् ॥ ११ ॥
गंधाश्मापिष्टं द्विगुणगंधं वा कान्तसंपुटे ॥ १२ ॥
गंधकाद्वा तृतीयांशं कांतपर्पटमिश्रितम् ।
मूलिकामर्दितं लोहपर्पटान्तगतं धमेत् ॥ १३ ॥
यद्वा गंधकपादेन मर्दितं मूलिकारसैः ।
लोहसंपुटमध्यस्थमंगारैर्ध्मातमुत्खनेत् ॥ १४ ॥

चौंटली और सैंधे नमकके चूर्णको देवदाली (बंदाल) लताके रसमें सौ बार भावना देवे । एवं सुहागेको ढाकके रसमें, नवसादरको जम्बीरी नींबूके रसमें, गन्धकको मूलीके खार और गोमूत्रमें, सज्जीको, त्रिकुटा और सहिंजनेकी जडके रसमें सौ सौ बार भावना

देकर सबको एकत्र मिला लेवे । इसको बडवानल विड्‌ कहते हैं । इस बडवानल विडमें पारेको पीसकर अग्निदेनेसे पारा अग्निसह (अर्थात् अग्निको सहने वाला) हो जाता है । यह विड्‌ जारण कर्ममें बहुत उपयोगी है । पारेको भस्म करनेसे पहले इस विडसे पारेको अग्निसह बना लेना अत्युत्तम है । इस प्रकार पारेको अग्नि-सह बनाकर फिर किसी धातुके साथ मिलाकर, अथवा केवल पारेको नियामक औषधियोंके साथ या मिश्री और अङ्कोलकी जडक रसके साथ अथवा वैक्रान्त आदि रत्नोंके साथ मर्दन करे । फिर यंत्रमें रखकर उसके क्रम क्रमसे ऊपर अग्निकी वृद्धि करता हुआ पकावे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब पारेकी भस्मको निकालकर बारीक पीस लेवे । नीचेकी अग्निसे तपा हुआ भी पारा न तो कम होता है और न उड सकता है । चिरचिटेके तेल अथवा पोहकरमूलके रसमें पीसे हुए चावलोंके कल्कमें अथवा कठू-मरके दूधमें पीसी हुई श्वेतहींगसे कल्कमें पारेको मर्दन करके पुटपाककी विधिसे पकावे तो पारा भस्म होजाता है । द्रोणपुष्पी (गूमा) के पञ्चाङ्गको गोमूत्रमें पीसकर उसमें पारेको खरल करके कान्तलोहके सम्पुटमें पकानेसे पारा भस्म होता है मालकाँ-गनीके तेल और काले धतूरेके तेलके साथ घोटकर पकानेसे पारेकी भस्म होजाती है । कमलकी नालके तन्तुओंकी अण्डीके तेलमें बत्ती बनाकर उसमें पारेको खरल करके तीन घंटेतक अग्नि देनेसे कमलकी नालके तन्तुओंका अण्डीके तेलमें कल्क बनाकर उसके बीचमें पारेको रखकर तीन घंटे तक पकानेसे पारा भस्म होजाता है । वैक्रान्त मणिकी भस्मके साथ पारेको घोटकर बॉझककोडेके कन्दमें अथवा गिलोयके कन्दमें रखकर भूधरपुटमें पकानेसे पारा भस्म होता है । पारेको चपलधातु और निर्गुण्डीके रसमें घोटकर अग्नि देनेसे अथवा खपरिया और बाराहीकन्दके रसके साथ किम्वा खपरिया और चकबडके रसमें घोटकर अग्नि देनेसे भस्म होजाताहै ।

ऊपर नीचे गन्धकका चूर्ण और बीचमें पारा रखकर कपडेकी पोटली बनावे । उस पोटलीको गन्धकके तेलसे भरे हुए दोलायन्त्रमें अधर लटका कर उसके नीचे अग्नि जलावे । जब गन्धकके साथ मिलकर एक रूप होजाय तब भस्म तैयार हुई समझनी चाहिये । पारेको समान भाग गन्धकके साथ पीसकर कज्जली कर लेवे । फिर पारेसे दुगुनी गन्धक लेकर उसको पीसकरके कान्तलोहके सम्पुटमें नीचे ऊपर बिछाकर उसके बीचमें उक्त कज्जलीको रक्खे फिर सम्पुट पर कपरौटी करके अग्निदेवे तो पारेकी भस्म होती है । गन्धक तीन भाग और पारा १ भाग दोनोंको मूलीके रसमें घोटकर कान्तलोहके सम्पुटमें बन्द करके अग्नि देनेसे पारा भस्म होता है । केवल मूलीके रसमें घोटकर अग्नि देनेसेभी पारा भस्म होजाता है । पारेमें चौथाई भाग गन्धक मिलाकर मूलीके रसमें खरल करके लोहेके सम्पुटमें बन्दकर अँगारोंकी अग्निमें फूंकनेसे पारा भस्म होजाता है ॥ १-१४ ॥

पारेका जारण ।

पीतासवाम्लं खात्सत्वं कांतं वा तीक्ष्णमेव वा ।
चतुःषष्टितमांशेन प्रमितं क्षिप्तमल्पशः ॥ १५ ॥
तप्तखल्वेऽम्लयोगेन श्लक्ष्णवस्त्रं विमर्दयेत् ।
भूर्जे क्षाराम्ललवणस्नुह्यर्कक्षीरलेपिते ॥ १६ ॥
बद्धं वस्त्रावृते स्विन्नमम्ले समरसे रसम् ।
धौतमुष्णारनालेन शुष्कमंगुलिमार्दितम् ॥ १७ ॥
पचेत्कच्छपयंत्रस्थमष्टमांशबिडान्वितम् ।
स्वप्रमाणरसास्तद्वज्जीर्णे ग्रासे त्वजीर्यति ॥ १८ ॥
पातयेदासवाम्लेन मर्दयेत्स्वेदयेच्च तम् ।
जारणे जारणे वह्निं ग्रासं च परिवर्धयेत् ॥ १९ ॥

द्विगुणं योजयेदेवं सत्वमभ्रकसंभवम् ।
पूतिलोहं विषं मूत्रं रसकं गंधकत्रयम् ॥
न युंज्याज्जारणे सूतस्तज्जीर्णैः स्फोटकुष्ठकृत् ॥२०॥
कुर्याल्लोहमयीं मूषामायामे द्वादशांगुलाम् ।
मर्दितं हेमवाराही गृह्न्यासरसै रसम् ॥ २१ ॥
रसोनपिण्डे दधतीं लोहमय्या सुरन्ध्रया ।
निर्गुंडीपत्रनिर्यासपीतपादांशगंधया ॥ २२ ॥
गर्भमूषिकया युक्तां सचक्रां सपिधानकाम् ।
लम्बितां जलपात्रस्थखर्परद्वारि पाचयेत् ॥ २३ ॥
ऊर्ध्वं वनोत्पलैश्चित्रैरङ्गारैः खादिरैरधः ।
एवमष्टगुणे जीर्णे गंधके क्षयकुष्ठजित् ॥ २४ ॥

दारुहल्दी, आसवकी खटाई, अभ्रकका सत्त्व, कान्तलोह भस्म अथवा तीक्ष्णलोहकी भस्म इन सबको समानभाग लेकर एकत्र खरल कर लेवे । फिर इस चूर्णमें चौंसठ गुना पारा मिलाकर सबको तप्त खरलमें डाल करके थोडी थोडी खट्टी कॉंजी डालता हुआ उसके साथ खूब बारीक खरल कर गोला बना लेवे । फिर जवाखार काँजी, नमक, थूहरका दूध और आकका दूध इन सबको एकत्र पीसकर भोजपत्रके ऊपर लेप करे और उसके ऊपर उपर्युक्त गोलेको रखकर उसको कपडेमें बाँध कर पोटली बना लेवे । फिर दोलायन्त्रमें उस पोटलीको अधर लटका देवे और उसमें उक्त औषधियोंसे दुगुनी काँजी भरकर उस यन्त्रके नीचे अग्नि जलावे । जब कॉंजी सब जलजाय तब उसमेंसे पोटलीको निकालकर उसमेंसे पारेको निकाल लेवे और गरम काँजीसे धोकर सुखालेवे । फिर उसको अङ्कोलके तेलमें घोटकर गोला बनालेवे और एक सम्पुटमें नीचे ऊपर अष्टमांश पूर्वोक्त वडवानल विडको बिछाकर

उसके बीचमें उक्त गोलेको रखकर बन्द करदेवे, फिर उस सम्पुटको कच्छपयन्त्रमें रखकर पकावे । इस प्रकार पुटदेनेसे पारा घटता नहीं है और ग्रास दी हुई वस्तुओंके जारण होजानेपरभी पारा उतना ही रहता है। इस तरह पारेको एक बार जारण करनेके बाद तिर्यक्पातनयन्त्रके द्वारा उडावे और फिर निम्नलिखित विधिसे जारण करे। दारु हल्दी, आसवकी खटाई, अभ्रकभस्म, कान्तलोहकी भस्म अथवा तीक्ष्णलोहकी भस्म इन सबको पहलेसे दुगुने वजनमें लेकर एकत्र मिश्रित करके उसमें तिर्यक्पातनयन्त्रके द्वारा उडाये हुए पारेको डालकर खूब बारीक खरल करके गोला बनालेवे । फिर उपर्युक्त जवाखार आदि औषधियोंके द्वारा लेप किये हुए भोजपत्रपर उस गोलेको रखकर वस्त्रमें बाँध करके उसकी पोटली बनालेवे । फिर दोलायन्त्रमें उक्त औषधिसे दुगुनी काँजी भरकर उसमें पारेकी पोटलीको अधर लटका देवे । और उसके नीचे अग्नि जलावे। जब काँजी सब जलजाय तब पोटलीमेंसे पारेको निकाल-कर गरम काँजीसे धोकरके सुखालेवे। फिर पारेको अङ्कोलके तेलमें घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेको सम्पुटमें अष्टमांश बिछाये हुए बडवानल बिडके बीचमें रखकरके कच्छपयन्त्रमें पकावे । इस प्रकार दूसरी बार जारण करनेपर पारेको तिर्यक्पातनयन्त्रके द्वारा उडा करके फिर जारण करे। इस विधिसे पारेको ७ बार जारण करे। परन्तु प्रत्येक बारके जारणमें उपर्युक्त दारुहल्दी आदि जारण करनेवाली औषधियोंका वजन बढाता जाय, उसी प्रमाणके अनुसार दोलायन्त्रमें काँजीको भी बढाकर डाले । अग्निभी अधिक देवे और बडबानल बिडकीभी मात्रा बढाकर डाले। एवं प्रत्येक वारमें अङ्कोलके तेलमें घोट २ कर कच्छपयन्त्रमें अग्नि देवे । इस प्रकार प्रत्येक बारके जारणमें सब वस्तुओंको दुगुना करता जावे । पारेको जारण करनेमें सीसा, बंग, विष, मूत्र, खपरि या, गन्धक, हरताल और मैनसिल इन चीजोंको न डाले । कारण,

इनके द्वारा जारण करनेसे पारा फोडे, फुन्सी, कुष्ठ आदि विकारोंको उत्पन्न करनेवाला होजाता है ।

पारेको जारण करनेकी दूसरी विधि ।

प्रथम बारह अङ्गुल लम्बी लोहेकी मूषा बनावे । फिर पीला धतूरा, बाराहीकन्द और घीग्वारके रसके साथ पारेको खरल करके गोला बनाकर सुखालेवे । फिर उस गोलेको लहसुनके कल्कमें खूब लपेटकर और सुखाकर उपर्युक्त मूषामें रखकर उसके ऊपर तलीमें एक छोटीसी मूषाको इस प्रकार ढके कि वह बडी मूषामें दो दो अँगुल नीचेको फँसजावे । फिर पारेसे चौथाई भाग गन्धकको निर्गुण्डीके पत्तोंके रसमें घोटकर सुखालेवे । और उसको छिद्रवाली छोटी मूषामें उसी मार्गसे भरकर उस छिद्रको चक्रकी समान गोल लोहेके ढक्कनसे ढकदेवे । और दोनों मूषाओंके ऊपर कपरौटी करके सुखालेवे । फिर पानीसे भरे हुए लोहेके कढावमें मिट्टीका एक बडा कूँडा रखकर उसकी तलीमें इस मूषाके सम्पुटको अधर लटका कर रक्खे और उस सम्पुटपर एक बडा कूंडा औंधा मुँह करके ढकदेवे फिर उस कूँडेके ऊपर आरने उपलोंकी अग्नि जलावे और नीचे खैरकी लकडीकी अग्नि जलाता हुआ पकावे । जब स्वाङ्ग शीतल होजाय तब पारेको उसमेंसे निकाल लेवे । यह एक बार गन्धक जारण हुआ । इसी प्रकार जितना पारा हो उससे अठगुनी गन्धक जबतक जारण हो तबतक बारम्बार उपर्युक्त विधिसे जारण करे और प्रत्येक बारमें गन्धकको पारेसे आठवॉ भाग डाले । इस प्रकार ३२ बार अठगुनी गन्धकमें जारण होनेपर पारा क्षय और कुष्ठ रोगको अवश्य नष्ट करता है । ॥ १९–२४ ॥

वज्रपञ्जर रस ।

क्षेत्रीकरणमित्युक्तं वज्रभस्मसमं रसम् ।
हंसपादीरसैर्घृष्टं विपचेत्तत्पुटानले ॥ २५ ॥

तुल्यमन्यं रसं तेन पूर्ववन्मर्दितं पचेत् ।
यावच्छक्यं चतुर्थांशमानेन रसभस्मना ॥ २६ ॥
अम्लपिष्टेन सौवर्णं पत्रमम्लेन मारयेत् ।
राजिकार्धार्धमारभ्य यावन्माषं विवर्धितः ॥ २७ ॥
चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थतीक्ष्णासौवर्चलैः सह ।
सेवितः पलपर्यंतं रसोऽयं वज्रपञ्जरः ॥
शरण्यः परिभूतानां व्याधिवार्धकमृत्युभिः ॥ २८ ॥

हीरेकी भस्मके साथ समान भाग शुद्ध पारेके मिलानेको क्षेत्रीकरण' कहते हैं । उस क्षेत्रीकरणको लाल रंगकी लज्जालुके रसमें घोटकर भूधरपुटमें रखकर पकावे । स्वांगशीतल होजानेपर फिर उसको पूर्ववत् लज्जालुके रसमें खरल करके भूधर पुटमें पकावे । इस प्रकार पुट देनेसे जब पारेकी भस्म होजाय तब उसको निकाल कर खरलकर लेवे । पारेकी भस्म १ भाग और सोनेके कंटकवेधी पत्र चार भाग लेकर प्रथम पारेकी भस्मको नींबूके रसमें घोटकर सोनेके पत्रोंपर लेप करके उनको भूधरपुटमें पकावे तो सुवर्णभस्म होजाती है । इसीको वज्रंपचरस तैयार हुआ समझना चाहिये । इस रसको पहले दिन चौथाई राईकी बराबर दूसरे दिन आधी राई, तीसरे दिन पौन राई और चौथे दिन १ राईकी बराबर इस प्रकार प्रतिदिन चौथाई २ राईकी बराबर मात्रा बढाता हुआ एक उडदकी बराबर तक मात्रा करके फिर प्रतिदिन एक एक उडदकी बराबरही चीता, अदरख, सैंधानमक, मिरच और काला नमक इनके समान भाग मिश्रित तीन मासे चूर्णके साथ सेवन करे । अथवा अपनी प्रकृति और रोगानुसार अनुपानकी कल्पना करके उसके साथ सेवन करे । यह वज्रपञ्जर रस चार तोलेकी मात्रातक सेवन करनेसे नाना प्रकारके रोग, वृद्धावस्था और

मृत्युके भयके कारण व्याकुल हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ २७-२८ ॥

पञ्चामृतरस ।

हेममाक्षिककांताभ्रवज्रभस्म प्रवेशयेत् ।
रसे सहेम्नि सप्ताहं मूलिकारसमर्दिताम् ॥ २९ ॥
तां पिष्टीं यन्त्रयोगेन पचेत्पञ्चामृताह्वयः ।
रसोऽयं मधुसर्पिभ्यां युक्तः पूर्वाऽधिको गुणैः ॥ ३० ॥

एक भाग शुद्ध पारेमें समान भाग सोनेके वर्क डालकर इस प्रकार घोटे कि दोनों मिलकर एकम एक होजायँ । फिर उस पिष्टीमें सोनामाखीकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, अभ्रकभस्म और हीरेकी भस्म ये प्रत्येक एक एक भाग डालकर सबको सात दिन-तक मूलीके रसमें खरल करे । फिर उसका गोला बनाकर सुखालेवे और भूधरपुटमें रखकर मन्द मन्द अग्निसे थोडी देरतक पकावे । जब स्वांगशीतल होजाय तब उसको निकालकर बारीक चूर्ण करके शीशीमें भरकर रखदेवे । इस पञ्चामृत नामक रसको योग्यमात्रासे मधु और घृतके साथ मिलाकर सेवन करे । यह रस पूर्वोक्त वज्र-पञ्जररसके गुणोंसेभी अधिक गुण करनेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥

मृतसंजीवनीवटी ।

कांताभ्रताप्यसत्वानां वज्रहेम्नो रसस्य च ।
सप्ताहमम्लपिष्टानां गोलके लेपितेऽन्वहम् ॥ ३१ ॥
गोजिह्वा वायसी पथ्या निर्गुंडी मधु सैंधवम् ।
स्विन्ने भूमध्ययंत्रस्थे पक्षात्कठिनतां गते ॥ ३२ ॥
यवचिंचापलाशाक्षराजिकापासतंदुलैः ।
आवर्तितान्तर्लिप्तायां मूषायां खादिराग्निना ॥ ३३ ॥

टंकणं चुंबकांतं च दत्त्वा दत्त्वा विशोषिते ।
मूषायां बिडयोगेन समांशं हेम जारयेत् ॥ ३४ ॥
संवत्सरं मुखधृता मृतसंजीवनी मता ।
गुटिका शस्त्रस्तंभं च कुरुते वार्धमृत्युजित् ॥ ३५ ॥

कान्तलोहकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सोनामाखीकी भस्म, हीरेकी भस्म, सुवर्ण भस्म और आठ संस्कार किया हुआ पारा इन सबको समान भाग लेकर सात दिनतक खटाईमें घोटकर गोला बनालेवे । फिर उस गोलेके ऊपर गोजिया, मकोय, हरड, निर्गुण्डी, शहद और सैंधानमक इन सबको पानीमें पीसकर दो दो अङ्गुल ऊँचा लेप करके सुखालेवे और भूधरयन्त्रमें रखकर पकावे। स्वाङ्गशीतल होजानेपर गोलेको बाहर निकालकर विना खरल कियेही फिर उसके ऊपर उपर्युक्त कल्कका लेप करके भूधरपुटमें पकावें । इस प्रकार पन्द्रह दिनतक १५ पुट देनेसे जब वह गोला खूब कठिन होजाय तब एक लोहेकी मूषाके भीतर खिरनीकी जड, ढाककी जड, बहेडेकी छाल, राई और कपासके चावल (बिनौले) इन सबके कल्कका चारों तरफ लेप करके उसमें उक्त गोलेको रखकर खैरकी लकडीकी अग्निमें धौंकनीसे फूँके । फिर सुहागा और चुम्बक लोहेके चूर्णको समान भाग लेकर उसको थोडा थोडा मूषामें डालता जावे । जब गोलेके परिमाणको यह चूर्ण न खासके तब मूषाको शीतल करके उस गोलेकी बराबर भाग सुवर्ण मिलाकर उसको बडवानल विडके साथ यन्त्रद्वारा जारण करे । फिर उचित मात्राकी गोलियाँ बनाकर रखलेवे । यह मृतसञ्जीवनी गोलियाँ एक वर्षपर्यंत मुखमें धारण करनेसे मनुष्यके शरीरको शस्त्रसेभी न कटने योग्य दृढ करती है और वृद्धावस्था तथा मृत्युको जीतती है ॥ ३१-३५ ॥

महानीलतैल ।

वटप्ररोहपिण्डीतमूलत्वक्कृष्णसैर्यकैः ।
केतकीस्तनभृंगार्यःशकलत्रिफलार्जुनैः ॥ ३६ ॥
पृथग्दशपलैः सार्धं चतुर्द्रोणेष्वपां पचेत् ।
अष्टभागावशिष्टेऽस्मिन्भृंगस्वरसपेशितैः ॥ ३७ ॥
त्रिफलानीलययश्चूर्णैः पृथग्द्विपलिकैर्युतम् ।
तैलाढकं समक्षीरं पक्त्वा मृतरसान्वितम् ॥ ३८ ॥
महानीलं सुभाण्डस्थं मण्डलं धान्यमध्यगम् ।
अभ्यंगविधियोगेन केशानां रंजनं परम् ॥ ३९ ॥

बडके अङ्कुर, मैनफलकी जडकी छाल, काले फूलकी कटसरैया, केतकी वृक्ष (केवडाके) स्तन, भाँगरा, लोहचूर्ण, त्रिफला और अर्जुन वृक्षकी छाल प्रत्येकको चालीस २ तोले लेकर एकत्र कूट लेवे । फिर सबको चार द्रोण जलमें डालकर पकावे । जब पककर आठवाँ भाग जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर त्रिफला, नीलवृक्षकी जड और लोहका चूर्ण इन प्रत्येकको आठ २ तोले लेकर भाँगरेके रसमें खूब बारीक पीस करके उपर्युक्त क्वाथमें मिलादेवे । फिर १ आढक तिलका तेल और १ आढक दूध डालकर पकावे पककर जब पानीका भाग सब जलजाय और तेलमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे और उसमें चार तोले पारेकी भस्म मिलादेवे । इसके पश्चात् उस महानील तेलको एक चिकने बर्त्तनमें भरकर उसको अच्छे प्रकार धानोंकी राशिमें गाडदेवे और ४० दिनतक रक्खा रहने देवे । ४० दिनके बाद निकालकर उस तेलकी मालिश करनेसे बाल अत्यन्त काले होजाते है ॥ ३६–३९ ॥

पारेकी भस्मके सामान्य प्रयोग ।

रोगोक्तयोगयुक्तोऽयं तत्तद्रोगहरो भवेत् ।

समुस्तपर्पटक्काथो भस्मसूतो हरेज्ज्वरम् ॥ ४० ॥
दशमूलकषायेण पिप्पल्या च समस्तजम् ।
माक्षिकाऽभयया वासापिप्पल्या चास्रपित्तनुत् ४१॥
कण्टकारीकषायेण पिप्पल्या च सकासजित् ।
अजायाः क्षीरसिद्धेन कणायुक्तेन सर्पिषा ॥
त्रिफलागंधकव्योषगुडैर्वा क्षपयेत्क्षयम् ॥ ४२ ॥
हिक्कां निहंति रुचकबीजपूराम्लमाक्षिकैः ।
छर्दिदाहौ मधुसिताळाजामुद्गसिताम्बुभिः ॥ ४३ ॥
अर्शांसि तैलसिन्धूत्थपुटपाचितसूरणैः ।
त्वक्पल्लवैः कषायेण शृतेनोदश्विदम्भसा ॥ ४४ ॥
क्षीरिण्या वाप्यतीसारं विषूचीं कणहिंगुना ।
अजीर्णं कांजिकैरण्डक्काथपथ्यावलेहतः ॥ ४५ ॥
कषायपल्लवैः पक्वं बालबिल्वं सनागरम् ।
सगुडं सरसं हंति बिम्बिसीं दारुणामपि ॥ ४६ ॥
बिल्वकर्कटिकागर्भं मसूरक्काथिताम्बु वा ।
कृच्छ्रं मृतरसक्षीरक्षीरिणीक्षूरमाक्षिकैः ॥ ४७ ॥
पारदभस्माशिलाजतुकृष्णालोहमलात्रिफला-
कुलिबीजम् । ताप्य निशारजतोपलकान्त--
व्योषरजः खपुरश्च कपित्थात् ॥ ४८ ॥
सर्वमिदं परिचूर्ण्य समांशं भावितभृंगरसं
दिवसादौ । विंशतिवारमिदं मधुलीढं
विंशतिमेहहरं हरिद्दृष्टम्॥ ४९ ॥

न्यग्रोधाद्यसनाद्यैर्वा क्वाथयुक्तो मृतो रसः।
पथ्यालशुनगोमूत्रैः प्लीहगुल्मनिबर्हणः ॥ ८० ॥
कलाययूषशम्बूकक्षाराभ्यां पंक्तिशूलनुत् ।
सत्र्यूषणातिलक्काथेनामशूलस्य नाशनः ॥ ८१ ॥
नवनीतसुधाक्षारभावितोऽभययोदरे ।
स हितः सहितो यष्टीवारिणा कामलामये ॥ ८२ ॥
फलत्रिकादिक्काथेन पाण्डुशोफे सकामले ।
शोफे सविश्वभूनिंबक्काथगोमूत्रसंयुतः ॥ ८३ ॥
निम्बामलककंकुष्ठैः प्रशस्तः स मृतो रसः ॥ ८४ ॥
रसोनराजिकावह्निनीलिमार्कवपल्लवैः ।
तुल्यं भल्लातकं क्षिप्त्वा क्षीरे तैलं विपाचितम्॥८५॥
भूशिरीषसुपर्णाक्षोः पञ्चांगं माक्षिकं घृतम् ।
रसं च लीढ्वा कुष्ठार्तो लिम्पेत्त्रिकटुना तनुम् ॥
रसगंधकपिष्ट्या वा कटुतैलाभियुक्तया ॥ ८६ ॥
कर्पूरवल्लीसहनिम्बतैलपातालमूलीरसभावि-
तेन। रसेन लिह्यात्सकलं हठं वा
विचूर्णितं पुष्परसेन कुष्ठी ॥ ८७ ॥
फेनिलफलाहिदर्वीकन्दरसं खादतोऽनुदिनम् ।
फेनिलमूलोद्वर्तनमाचरतोपि च कुतः कुष्ठम् ॥८८॥
चित्रकवानरिवायसितुण्डी बाकुचिकाद्विगुणाः
परिपीताः । मूत्रयुता मृतसूतसमेता-
स्तक्रभुजः शमयंति किलासम् ॥ ८९ ॥

द्रुतगगनमरीचीबाकुचीतालपत्र्यौ सलिलरिपुन-
कुलयौ कृष्णशुंठ्यौ सभृंगम् । मरिचमसितसोम-
श्वित्रकांकोलबीजं वरतिलशशिलेखे
त्वक् च शाखोटकस्य ॥ ६० ॥
फलत्रयं च तत्सर्वं मृतसूतसमन्वितम् ।
क्षीरान्नवर्तनो जग्ध्वा श्वित्रमाशु निवर्तयेत् ॥ ६१ ॥
सनिम्बपल्लवक्षौद्रः कृमीन्हन्ति मृतो रसः ।
पीतो लशुनसिद्धेन तैलेनानिलजान्गदान् ॥ ६२ ॥
विश्वैरण्डशृतक्षीरसहितो गृध्रसीं जयेत् ।
गुडाभयागुडूच्यम्बुयुक्तः पवनशोणितम् ॥ ६३ ॥
त्रिकटुत्रिफलावेल्लैः समांशो गुग्गुलुर्जयेत् ।
वातारितैलसंयुक्तः स्थौल्यं भस्मरसान्वितः ॥६४ ॥
मधूदकाभ्यां युक्तो वा कार्श्यं तु शर्करान्वितः ।
हिंगुसौवर्चलव्योषमूत्रसिद्धेन सर्पिषा ॥
रसो हन्यादपस्मारमुन्मादं च तथाञ्जनात् ॥ ६५ ॥
मधूककुनटीतार्क्ष्यपारावतमलैर्युतः ॥ ६६ ॥
धान्याम्लपिष्टाष्टमपिप्पलीकान्कार्पासबीजाङ्कु-
रमर्दनेन । आदाय तैलं मृतसूतयुक्तमक्ष्णि
प्रयुंजीत विशीर्णरोम्णि ॥ ६७ ॥

भिन्न भिन्न रोगोंके प्रकरणमें जो योग कहे गये हैं उन योगोंके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर सेवन करनेसे पारा उन सब रोगोंको समूल नष्ट करदेता है। (१) नागरमोथा और पित्त-

पापडेके क्काथके साथ पारेकी भस्मको सेवन करनेसे ज्वर दूर होताहै। (२) दशमूलके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर उसके साथ पारेकी भस्मको सेवन करनेसे सन्निपातज्वर शमन होता है । (३) शहद और हरडोंके चूर्णके साथ अथवा अडूसा और पीपलके चूर्णके साथ पारद भस्मको सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है । (४) कटेरीके क्काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर उसके साथ सेवन की हुई पारेकी भस्म खाँसीको दूर करती है । (५) बकरीके दूधमें पीपलका कल्क बनाकर उसके साथ घृतको पका कर सिद्ध कर लेवे । उस घृतके साथ अथवा त्रिफला, गन्धक, त्रिकुटा और गुड इन औषधियोंके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर सेवन करनेसे क्षयरोग नष्ट होता है । (६) काला नमक, बिजौरा नींबूका रस और मधु इनके साथ सेवन की हुई पारेकी भस्म हिचकी रोगको शमन करती है । (७) शहद,मिश्री और खीलोंके पानीके साथ अथवा मूँगके यूषमें मिश्री डालकर उसके साथ सेवन करनेसे पारेकी भस्म वमन और दाहको शान्त करती है । (८) पुटपाककी विधिसे पकाये हुए जिमींकन्दके चूर्णको और पारेकी भस्मको तेल और सैंधेनमकमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा जिमींकन्दकी छाल और पत्तोंका मठेके साथ क्काथ बनाकर उस क्काथके साथ पारेकी भस्मको सेवन करनेसे सब प्रकारका अर्शरोग (बवासीर) दूर होता है । (९) पारेकी भस्मको दुद्धी वृक्षके पञ्चाङ्गके रसके साथ सेवन करनेसे अतिसार (दस्तोंका होना) रोग और पीपल तथा हींगके साथ सेवन करनेसे विषूचिका (हैजा) रोग एवं काँजी और अण्डकी जडके क्काथ अथवा हरडके अवलेहके साथ सेवन करनेसे अजीर्ण रोग नाशको प्राप्त

---

१ इन सब प्रयोगोंमें पारदभस्मकी मात्रा और अनुपानकी मात्रा नहीं लिखी गई है । परन्तु इनकी मात्रा रोगके उपद्रव, दोषोंके प्रकोप रोगीकी अवस्था और देश, कालप्रकृतिका विचार करके देनी चाहिये ।

होता है । (१०) कच्चा बेल और सोंठ दोनोंको समान भाग लेकर वड, गूलर, पीपल, पाखर, बैंत इनके पत्तोंके क्वाथमें पीसकर गोला बना लेवे । उस गोलेके ऊपर कपरौटी करके उसको पुटपाक की विधिसे पकावे । स्वाङ्गशीतल होजानेपर बारीक चूर्ण करके उसमें गुड और पारेकी भस्म मिलाकर सेवन करनेसे दारुण बिम्बिसी रोग नष्ट होता है । (११) बेल, ककडीका गर्भ, मसूरका क्वाथ, दूध, खिरनीका रस, तालमखाना और शहद इन सबको साथ पारेकी भस्मको मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होता है । (१२) पारेकी भस्म, शिलाजीत, पीपल, मण्डूरभस्म, त्रिफला, नकुलकन्दके बीज, सोनामाखीकी भस्म, हल्दी, चाँदीकी भस्म, सूर्यकान्तमणिकी भस्म, त्रिकुटा अभ्रकभस्म, शुद्ध गूगल और कैथका गूदा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकरके भाँगरेके रसमें एक दिन तक भावना देकर सुखा लेवे । 'निदानमें' जो २० प्रकारके प्रमेह वर्णन किये है, उन प्रत्येकमें क्रम क्रमसे बीस दिन तक इस रसको शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह रस बीसों प्रकारके प्रमेहोंको नष्ट कर देता है । यह प्रयोग श्रीहरि नामवाले आचार्यका अनुभव किया हुआ है । (१३) न्यग्रोधादि गण और आसनादि गणकी औषधियोंके क्वाथके साथ पारेकी भस्मको सेवन कर ऊपरसे गोमूत्रमें पीसा हुआ हरड और लहसुनका कल्क भक्षण करनेसे प्लीहा (तिल्ली) और गुल्मरोग निवारण होता है । (१४) मटरके यूष और शङ्खकी भस्मके साथ पारदभस्मको प्रयोग करनेसे परिणाम शूल दूर होता है । (१५) तिलोंके क्वाथमें त्रिकुटेके चूर्णको पारेकी भस्मको मिलाकर खानेसे आमका शूल नाश होता है । (१६) उदर रोगमें हरडके चूर्णको प्रथम नैनी घीमें, फिर थूहरके क्षारमें भावना देकर उसके साथ पारद भस्म मिलाकर सेवन करनी चाहिये । (१७) पारेकी भस्मको मुलैठीके रसके साथ सेवन

करना कामला रोगमें उपयोगी है । परन्तु कामला सहित पाण्डु-रोग और शोथरोग (सूजन) में त्रिफलादिके क्वाथके साथ सेवन करना उचित है । (१८) सोंठ और चिरायतेके क्वाथको गोमूत्रमें मिलाकर उसके साथ पारेकी भस्मको सेवन करनेसे शोथरोग (सूजन) में शीघ्र लाभ होता है । (१९) शोथरोग (सूजन) में नीमकी छाल ऑवले और कंकुष्ठ (मुर्दासंग) इनके चूर्णके साथ पारदभस्मको सेवन करना अत्यन्त श्रेष्ठ है । (२०) लहसुन, राई, चीता, नीलवृक्ष और भॉगरेके पत्ते ये सब समान भाग और सबकी बराबर भिलावे लेकर सबको एकत्र कूट पीस करके दूधमें कल्क बनालेवे । फिर उस कल्कके साथ विधिपूर्वक तेलको पकाकर उसमें पारेकी भस्मको मिलाकर लगानेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है।(२१) कुष्ठरोगी सिरस और पाताल गरुडीलताके पञ्चाङ्गको बारीक चूर्ण करके शहद,घृत और पारेकी भस्ममें मिलाकर सेवन करे और त्रिकु-टेके चूर्णके साथ मिलाकर शरीरपर मालिश करे तो कुष्ठरोग दूर होता है । (२२) पारेकी भस्मकी बराबर शुद्ध गन्धक लेकर दोनों की एकत्र पिट्ठी पीस करके उसको सरसोंके तेलमें मिलाकर योग्य मात्रासे सेवन करनेवाला कुष्ठरोगी आरोग्य लाभ करता है । (२३) कपूर[1] नामवाली बेलका रस, नीमका तेल और पाताल गरुडी (छिरहिटा) लताकी जडका रस प्रत्येकमें पारेकी भस्मको एक २ बार भावना देकर उसको कुष्ठरोगी शहदके साथ मिलाकर सेवन करे अथवा उक्त तीनों औषधियोंके चूर्णके साथ पारदभस्मको मिला-कर शहदके साथ सेवन करे तो कुष्ठरोग शीघ्र शमन होता है । (२४) रीठोंकी गिरी और नागदौनका कन्द दोनोंके चूर्णके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर प्रतिदिन खानेसे और रीठोंकी जडका

---

१ यह बेल जंगलमें होती है । इसके पत्ते लम्बे होते हैं और समस्त पञ्चाङ्गमें कपूरकी समान सुगन्ध आती है । यदि यह बेल न मिलसके तो कपूरके वृक्षके पत्ते लेवे । यह वृक्ष हर जगह बगीचोंमें मिल जाता है ।

कल्क शरीरपर मलनेसे कुष्ठ कहाँ ? अर्थात् कुष्ठ समूल निर्मूल होजाता है। (२५) चीता १ तोला, कौंचके बीज २ तोले, मकोयकी जड ४ तोले, कन्दूरीकी जड ८ तोले और बाबची १६ तोले इन सबको एकत्र चूर्ण करके गोमूत्रमें तीन बार भावना देवे। फिर उसमें पारेकी भस्मको मिलाकर सेवन करे और मठेके साथ भोजन करे तो ये औषधियाँ श्वेतकुष्ठको शमन करती है। (२६) अभ्रकभस्म, सूर्यकान्तमणि, बावची मूषाकानी,सालिलरिपु (?), नकुलकन्द, पीपल, सोंठ, भाँगरा, मिरच, धौं वृक्ष, कपूर, चीता, अंकोलके वीज, कालेतिल, बावची, सहोरावृक्षकी छाल, त्रिफला और पारेकी भस्म ये प्रत्येक एक २ भाग और बाबची दो भाग लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके यथोचित मात्रासे सेवन करे और प्रतिदिन दूध-भातका भोजन करे। इसके सेवनसे श्वेतकुष्ठ शीघ्र नष्ट होता है। (२७) नीमके कोमल पत्तोंको पीसकर उसमें शहद और पारेकी भस्म मिलाकर सेवन करनेसे कृमि रोग नष्ट होताहै। (२८) लहसुनके कल्क और क्वाथके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलकेसाथ पारेकी भस्मको सेवन करनेसे वातजरोग शमन होते है। (२९) सोंठ और अण्डकी जडके क्वाथमें दूधको पकावे। जब पककर दूधमात्र शेष रहजाय तब उस दूधके साथ पारेकी भस्मको सवन करनेसे गृध्रसी रोग दूर होता है। (३०) गुड, हरड और गिलोयका स्वरस इनके साथ पारदभस्मको मिश्रित करके भक्षण करनेसे वातरक्तरोग शान्त होता है। (३१) त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडङ्ग इन सबका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको अण्डीके तेलमें मिलाकर उसके साथ सेवन की हुई पारद भस्म स्थूलताको दूर करती ह। (३२) शहदको पानीमें घोलकर उसमें खाँड और पारदभस्म मिलाकर सेवन करनेसे कृशता दूर होती है। (३३) हींग, कालानमक और त्रिकुटा इनके कल्क और गोमूत्रके साथ सिद्ध किये हुए

घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे पारेकी भस्म अपस्मार रोग और उन्माद रोगको नष्ट करती है । (३४) महुआ, मैनसिल, नीला-थोथा और पायरा पक्षीकी विष्ठा इनके साथ पारेकी भस्मको खरल करके नेत्रोंमें आँजनेसे भी उन्माद रोग शमन होता है । (३५) बिनौलोंकी गिरी १ भाग और पीपल ८ भाग दोनोंको काँजीमें पीसकर धूपमें रक्खे और हाथसे मसल मसलकर उसका तेल निकाल लेवे उस तेलके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे पलकोंके बालोंका गिरना दूर होता है और उनमें नवीन बाल उत्पन्न होते हैं । ॥ ४०–६७ ॥

पारदभस्मके अन्य सामान्य प्रयोग ।

बर्बूरनिम्बकिसलाजपुरीषधूमैः कांस्येक्षुराश्मन
नितास्तनजेन घृष्टम् । भल्लातधूपितरसांजनमंज-
यित्वा साभ्यंजनस्नपनमाक्षिण रुजं निहंति ॥ ६८ ॥
महाभेरीमूलं तुरगपृथुकाम्भोधिकुवलं
रसो जंबीराम्लं जयति तिमिरं काचमपि च ।
उपात्तं जीमूताद्द्विजधरपर्णाबुमृदिता--
द्रसस्तैलं लेपादिह विविधजाड्यं च गुदजान् ॥ ६९ ॥
त्रिफलापटोलमूलव्योषगुडूचीविडंगबीजानि ।
समगुग्गुलूनि मारितरसमिलितानि व्रणघ्नानि ॥ ७० ॥
ग्रंथीन्विलेपयेत्तेषां लेपान्मूलरसान्वितम् ।
नारिकेरोदकं तद्वत्पीतं हंति मसूरिकाः ॥ ७१ ॥
मंजिष्ठाशबरोद्भवं तुवरिका लाक्षा हरिद्राद्वयं
नेपालीहरितालकुंकुमगदान्गोरोचनागैरिकम् ।

पत्रं पाण्डुवटस्य चन्दनयुगं कालेयकं पारदं
धत्तूरं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा केसरम् ॥ ७२ ॥
सिक्थं तुत्थं लोहकिट्टं वसाज्यमाजं क्षीरं क्षीर-
वृक्षाम्बु चाग्नौ । सिद्धं सिध्मव्यंगनील्यादिनाशो
वक्रच्छायामैन्दवीमाशु धत्ते ॥ ७३ ॥
कार्पासपल्लवानन्तारसतैलयुतो हितः ।
अस्थिस्रावे मृतरसो विषे स्थावरजंगमे ॥ ७४ ॥
तन्दुलीयकमूलेन वीरामूलेन वा युतः ।
तन्दुलोदकसंमिश्रः पाननावनलेपने ॥ ७५ ॥
सुरभिशकृद्रसभावितकर्पूरसमन्वितो मृतः सूतः ।
स्थावरजंगमकृत्रिमविषजिद्भुंजामितो दध्ना ॥ ७६ ॥
यक्षाक्षफेनिलरसोनकटुत्रयोग्राराजीवराङ्घ्रिबकुलं
लकुचाम्बुपिष्टम् । छायाविशोषितमिदं नरवारि-
घृष्टं सर्पापहं सरसमञ्जनतस्त्रिवारान् ॥ ७७ ॥
पिशाचपञ्चवर्णस्य बीजं मूलं पुनर्नवात् ।
देवदाल्याः फलं मूलं मूलं च विषपर्णतः ॥ ७८ ॥
पेषितं नरमूत्रेण सर्वथाऽहिविषापहम् ।
कपित्थपञ्चकं नीरं रसं चाखुविषापहम् ॥ ७९ ॥
कांस्ये तांबुल्या नागरं पिष्टमाद्भिः पत्रं शैरीषं
पिप्पलीछागदुग्धैः । पत्रं कार्पासात्सर्षपैर्वा वाऽपि
लेपात्सूतेनोपेतं वृश्चिकानां विषघ्नम् ॥ ८० ॥
भावितश्चणकाम्लेन वज्रमम्लेन मर्दयेत् ।

तेन बाकुचिचक्राह्वकार्पासागस्तिपल्लवान् ॥ ८१ ॥
एकस्य लकुचस्याम्ले स्वरसेन रसेन यः ।
प्रक्षालितः प्रयात्येव विषदिग्धव्रणः शमम् ॥ ८२ ॥
रसायनोक्तविधिना शुद्धो लब्धबलः पुनः ।
प्रातः प्रातः कणापथ्याविश्वसैंधवचित्रकम् ॥
पीत्वा संरक्षणायाग्नेरीषदुष्णेन वारिणा ॥ ८३ ॥
भृंगामलकनिर्यासे भावितं व्योमकांतयोः ।
भस्माऽयःसंपुटे धान्ये स्थापितं मधुसर्पिषा ॥ ८४॥
खादेन्निशि कणा पथ्या मासमेकं तथा पुनः ॥ ८५॥
पातनाभस्मना युक्तमथ सूतस्य भस्मना ।
जीर्णाऽल्पहेम्नः षण्मासाच्छतावर्या रसेन च ॥ ८६ ॥
त्रिफलां मधुसर्पिर्भ्यां खादिरासनभाविताम् ।
मृतहेमरसोपेतां भक्षयेद्रक्षयेज्जराम् ॥ ८७ ॥
गंधकेन हतं सूतं कांतं धात्रीरसेन च ।
त्रिफलासहितं खादेज्जीवेदाचंद्रतारकम् ॥ ८८ ॥
चित्रकं त्रिफला भृंगो हरिद्राञ्जनपत्रिका ।
रसस्त्रिमधुरश्चापि जरावैरूप्यनाशनः ॥ ८९ ॥
रसौषधीनां रसभावितानां सितायुतैः क्षीरमधूदकाज्यैः । जरां रसो हंति च कांतपात्रे क्षीरं शृतं काञ्चनपादपिष्ट्या ॥ ९० ॥
समचीर्णजीर्णहेममाक्षिकयोगेन मारितो वृष्यः ।
घृतमधुशतावरीरसदुग्धयुतो मदनवर्धनःसूतः ९१ ॥

लोहिताागस्तिसारेण कृष्णारंभाफलं घृतम् ।
रसं च घनसारं च पीत्वा स्त्रीषु वृषायते ॥ ९२ ॥
घनसारचतुर्जातकंकोल्लकटुकीपलम् ।
पलं ताम्बूलवल्लीनां रसस्याक्रमणं परम् ॥ ९३ ॥
भुंजीत शालिगोधूमयवषाष्ठिकजांगलम् ।
मुद्गयूपं गवां क्षीरं मस्तु स्नायात्सुखांभसा ॥ ९४ ॥
रूपयौवनसंपन्नामनुरूपां प्रियां भजेत् ।
अभ्यंगं कटुतैलेन कांजीतैलं सुरां दधि ॥ ९५ ॥
कालिंगकारवेल्लाम्ललशुनासुरिमूलकम् ।
द्विदलं बिल्ववार्ताकं छत्राकं काकमाचिकाम् ॥९६॥
अंगसंमर्दनं रात्रौ जागरं स्वपनं दिवा ।
अत्यम्लातिक्तलवणं स्वादूष्णं शिशिरौषधम् ॥ ९७ ॥
शोकवातातपक्रोधचिन्तां च परिवर्जयेत् ।
साहसं रसलोहानां मारकं च विशेषतः ॥
सेवया परिहार्याणां रसस्याऽजरणा भवेत् ॥ ९८ ॥
शूलो नाभितले जाड्यं निद्रालस्यं ज्वरस्तमः ।
अङ्गभंगोऽरुचिर्दाहः पिबेत्तत्र दिनत्रयम् ॥ ९९ ॥
सौवर्चलं सगोमूत्रं कर्कोटीमूलवारिणा ।
मातुलुंगस्य वाऽम्लेन माणिमंथं सनागरम् ॥१००॥
नागवंगयुतः सूतः प्रमादाद्भक्षितो यदि ।
सैंधवं कारवेल्लस्य कंदं मूत्रैः पिबेद्व्यहम् ॥ १०१ ॥
कर्कोटीगरुडीपथ्याशरपुंखैर्विपाचितैः ।

अष्टभागावशिष्टं वा गोमूत्रं सैंधवान्वितम् ॥ १०२ ॥
यत्क्षेत्रीकरणं पूर्वं वेधकं च रसं ततः ॥ १०३ ॥
सेवेत तस्य सिद्धिः स्यादन्यथा मरणं ध्रुवम् ॥ १०४ ॥

(३६) बकूलके और नीमके कोमलपत्ते, बकरेकी विष्ठा, घरका धुआँ, कासेकी भस्म, ईखका रस, मैनसिल और भिलावोंके धूम्रके द्वारा धूपित की हुई रसौत इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट-पीस करके स्त्रीके दूधमें घोटकर अञ्जन बनालेवे । इस अञ्जनको नेत्रोंमें आँजते समय नेत्रोंके लिये हितकारी पदार्थोंका आहार करे और नित्य त्रिफलेके जलसे नेत्रोंको धोवे तो नेत्रसम्बन्धी सब रोग नष्ट होते हैं । (३७) वच, असगन्ध, हिङ्गुपत्री, समुद्रफेन, कमल और पारा इन सबको नींबूके रसमें घोटकर सुखालेवे । फिर बारीक चूर्ण करके नेत्रोंमें आँजे तो नेत्रोंका तिमिररोग और मोतिया बिन्द रोग दूर होता है । (३८) नागरमोथा और तलवनके पत्ते दोनोंको जलमें पीसकर रस निकाललेवे । उस रसके साथ तेलको सिद्ध करके उसको नेत्रोंपर लेप करनेसे अनेक प्रकारकी नेत्रोंकी जडता और अर्शरोग दूर होता है । (३९) त्रिफला, पटोल (परवल) की जड, त्रिकुटा, गिलोय, वायविडङ्गके बीज और पारेकी भस्म ये प्रत्येक समान भाग और सबकी बराबर शुद्ध गूगल लेकर सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके सेवन करनेसे सब प्रकारके व्रण और रक्त विकार शमन होते हैं । तथा इन औषधियोंकी जडके रसमें गूग-लको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थियाँ (गाँठें) बैठ जाती हैं । (४०) नारियलके जलके साथ उक्त गूगलको सेवन करनेसे मसूरिकारोग नष्ट होता है । (४१) मंजीठ, सफेद लोध, फटकरी, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मैनासिल, हरताल, केसर, कूठ, गोरोचन, गेरू, बडके पके हुए पीले पत्ते, चन्दन, लाल चन्दन, काली अगर, पारेकी भस्म, पतंग, धतूरेकी छाल, कमलकी डंडी, कमलके बीज कमलकी केसर, मोम, तूतिया, लोहेकी कीट, चर्बी, घी,

और बकरीका दूध इन सबको समान भाग लेकर बड, गूलर, पीपल आदि दूधवाले वृक्षोंके रसमें पीसकर कल्क बना लेवे। उस कल्कके साथ सिद्ध किये हुए तेलकी मालिश करनेसे सफेद कोढ मुखकी झाईं, काले दाग आदि विकार शीघ्र नष्ट होकर मुखकी कान्ति चन्द्रमाकी समान निर्मल होजाती है। (४२) कपासके पत्ते और अनन्तमूल दोनोंके रस और तेलके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर आस्थिस्राव (नासूर) में सेवन करनेसे लाभ होता है॥ (४३) स्थावर (कन्द, मूल आदिके) विषको खालेने पर और जंगम विष अर्थात् सर्पादिके काटलेनेपर चौलाईकी जडके चूर्ण अथवा शतावरकी जडके चूर्णको चावलोंके धोये हुए पानीमें पीसकर उसके साथ पारेकी भस्मको मिलाकर पीने, नस्य लेने और लेपकरनेसे दोनों प्रकारके विष उतर जाते हैं और रोगी आरोग्य होजाता है। (४४) गौके गोबरके रसमें कपूरको भावना देकर उसमें एक रत्ती पारेकी भस्मको मिलाकर दहीके साथ खानेसे स्थावर जंगम और कृत्रिम तीनों प्रकारके विष नष्ट होते हैं। (४५) विरोजा, बहेडा, समुद्रफेन, लहसुन, त्रिकुटा, वच, राई, शतावरकी जड, मौलसिरीकी जड और पारेकी भस्म इन सबको बडहलके रसमें घोटकर गोली बनाकर छायामें सुखा लेवे। उस गोलीको मनुष्यके मूत्रमें घिसकर तीन बार नेत्रोंमें आँजनेसे सर्पका विष नष्ट होता है। (४६) बहेडेकी गिरी, पुनर्नवेकी जड, देवदाली (बंदाल) के फल, तथा जड और बिछैछी घासकी जड इनको मनुष्यके मूत्रमें पीस कर लेप करनेसे सर्पका विष बिल्कुल दूर होजाता है। (४७) कैथका गूदा, अण्डीके बीजोंकी गिरी, गोरखमुण्डी और पारा सबको पानीमें पीसकर लगानेसे चूहेका विष दूर होता है। (४८) काँसीके बर्त्तनमें नागरबेलके रसके साथ पारेकी भस्म और सोंठको पीसकर लेप करनेसे अथवा सिरसके पत्ते और पारेको पानीमें पीसकर लगानेसे या पीपल और पारेको बकरीके दूधमें पीसकर किम्वा कपासके

पत्तों और पारदभस्मको घीके साथ पीसकर लेप करनेसे विच्छूका विष नष्ट होता है । (४९) चनोंके खारमें एक कपडेके टुकडेको भिजोकर आठ दिन तक रक्खा रहने देवे । फिर खारको छानकर उसको बावची, पमाडके पत्ते, कपासके पत्ते और अगस्तियाके पत्ते इन सबके स्वरस या रसके साथ खूब बारीक पीसकर उसमें पारेकी भस्म डालकरके उस खारसे उक्त वस्त्रके द्वारा विषसे उत्पन्न हुए व्रणको धोनेसे अथवा केवल बडहलके खार स्वरस अथवा रससे धोनेसे विषका व्रण शीघ्र शमन होता है । (५०) रसाय-नोक्त विधिसे विषका विकार दूर होजानेपर जब शरीरमें शक्ति उत्पन्न हो जावे तब प्रतिदिन प्रातःकाल पीपल, हरड, सोंठ, सैंधा-नमक और चीता इनके समानभाग चूर्णको मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करे तो जठराग्नि दीपन होती है । (५१) अभ्रकभस्म और कान्तलोहकी भस्म दोनोंको भाँगरेके रस और आमलोंके रसमें एक २ बार भावना देकर लोहेके सम्पुटमें बन्द करके धानोंके ढेरमें गाड देवे । सात दिनतकके पश्चात् उसको निकालकर उसमें पीपल, हरड, पारेकी भस्म अथवा सुवर्णके द्वारा जारण किया हुआ पारा इन सबको समानभाग मिलाकर प्रतिदिन रात्रिके समयमें मधु और घृतके साथ सेवन करे और ऊपरसे शतावरका रस पान करे । इस प्रकार ६ महीनेतक इसको सेवन करनेसे वृद्धावस्था पलायन होजातीहै। (५२) त्रिफलेके चूर्णको खैरसार और विजयसारके रसमें भावना देकर उसको सुवर्णभस्म और पारेकी भस्मको समानरूपसे मिला-कर शहद और घृतके साथ भक्षण करनेसे यह प्रयोग वृद्धावस्थाको भक्षण करजाता है । (५३) गन्धकके द्वारा मारा हुआ पारा और आमलोंके रसके द्वारा माराहुआ कान्तलोह दोनोंको समान भागसे त्रिफलेके चूर्णमें मिलाकर सेवन करनेवाला मनुष्य जबतक आकाशमें चंद्रमा और तारे हैं, उतने वर्षोंतक जीवित रहता है । (५४) चीता, त्रिफला, भाँगरा, हल्दी, रसौत, और पारेकी भस्म समभाग मिश्रित

इन सबको मधु, घृत और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धावस्था और विरूपता नष्ट होकर मनुष्य स्वरूपवान् होता है। (५५) रसायनके गुणवाली औषधियोंके चूर्णको उन्हीं औषधियोंके रसमें २१ बार भावना देकर उसमें समान भाग पारेकी भस्मको मिलाकरके दूध, शहदका पानी, घी और मिश्री इन सबके साथ सेवन करनेसे वृद्धता दूर होती है। (५६) कान्तलोहकी कढाईमें दूधको औटाकर उसमें चौथाई भाग सुवर्णके द्वारा जारण किये हुए पारेकी भस्मको मिलाकर सेवन करे तो यह रस वृद्धावस्थाको नाश करदेता है। (५७) पारेमें समान भाग सोनामाखीको जारण करके फिर पारेको भस्म करे घृत, मधु, शतावरके रस अथवा दूधके साथ सेवन करनेसे पारा अत्यन्त वृष्य होकर कामकी वृद्धि करता है। (५८) पीपल, पारेकी भस्म और कपूर इन तीनोंको समान भाग लेकर पकी हुई केलेकी फलीमें घृतके साथ मिलाकर सेवन करे ऊपरसे लाल फूलकी अगस्तियाके रसका अनुपान करे। इस प्रकार इसको सेवन करनेसे मनुष्य स्त्रियोंमें वृषभकी समान रमण करता है। अर्थात् अत्यन्त कामकी जागृति प्रबल शक्तिकी उत्पत्ति और वीर्य स्तम्भन होता है।

पारेकी भस्म सेवन करनेपर पथ्य ।

पारेकी भस्मको सेवन करनेपर यदि कोई उपद्रव उत्पन्न हो तो कपूर, दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, शीतलचीनी और कुटकी इनके समान भाग मिश्रित चार तोले चूर्णको चार तोले नागवल्लीके पानके रसमें मिलाकर सेवन करना चाहिये। इससे पारेके सब उपद्रव शान्त होते हैं। पारा सेवन करनेवाले मनुष्यको विशेषकर शालिधानोंके चावल गेहूँ, जौ, साठीके चावल, जंगली पशुओंका मांस, मूँगका यूष, गौका दूध, और दहीका पानी ये सब पदार्थ भक्षण करने चाहिये। तथा सुहाते २ गरम जलसे स्नान करना, रूप यौवनसे युक्त अपने और मनके अनुकूल स्त्रीको भोगना और सरसोंके तेलकी शरीरपर मालिश करनी चाहिये।

पारा सेवन करनेपर अपथ्य ।

कॉजी, तेल, मद्य, दही, तरबूज, करेला, खट्टे पदार्थ, लहसन, फटकरी, मूली, दो दलवाले अन्न (दाल) बेल, बैंगन, साँपकी छतरी और मकोय इन सब पदार्थोंको भक्षण नहीं करना चाहिये । एवं शरीरको मर्दन करना, रात्रिमें जागना, दिनमें सोना, अत्यन्त खट्टे, कडवे, और अति नमकवाले, पदार्थोंका सेवन करना निषिद्ध है । केवल मधुर रसवाले पदार्थोंका भक्षण करना चाहिये । बहुत गरम और बहुत शीतल औषधियाँ सेवन नहीं करनी चाहिये । तथा शोक, तीक्ष्ण वायु और तीक्ष्ण धूपका सेवन, क्रोध और चिन्ता इन सबको त्याग देना चाहिये । पारेकी भस्म या किसी धातुकी भस्मको सेवन करनेवाले मनुष्यको विशेषकर त्याज्य पदार्थोंका सेवन करनेसे पारा जीर्ण न होकर (अर्थात् हजम न होकर) उसको एकदम मार देता है । अथवा अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न करदेता है ।

पारेके विकारोंकी शान्ति ।

पारा सेवन करनेवाले मनुष्यकी नाभिके नीचे शूल हो शरीर जकडजाय, निद्रा, आलस्य, ज्वर, नेत्रोंका स्तम्भित होना, अङ्गोंका टूटना, अरुचि, और शरीरमें दाह आदि उपद्रवोंके होनेपर गोमूत्रके साथ ककोडेकी जडको पीसकर उसका रस निचोड करके उसमें काला नमक डालकर तीन दिन तक पान करे अथवा बिजौरा नींबूके रसमें सैंधानमक और सोंठको पीसकर ३ दिन तक पीवे तो उक्त उपद्रव शात होजाते हैं। यदि असावधानीसे सीसेकी भस्म या बंगभस्मके साथ पारा सेवन किया गया हो तो गोमूत्रके साथ करेलेके कन्द और सैंधेनकमको पीसकर पानकरे । अथवा ककोडेकी जड, पातालगरुडी, हरड, और शरफोंकाकी जड इन सबको समान भाग लेकर एकत्र कूट करके अठगुने गोमूत्र मिलाकर पकावे । जब वह पककर आठवाँ भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । उस गोमूत्रमें सैंधानमक डालकर पान करानेसे उक्त

विकार शीघ्र शमन होते हैं। इन पारेके प्रयोगोंमें अष्टसंस्कार किये हुए पारेकी भस्मको अथवा पहले जो क्षेत्रीकरण क्रिया कही है, उसके अनुसार पारेको भस्म करके या वेधे हुए पारेका सेवन करे अथवा पूर्ण चन्द्रोदय, रससिन्दूर या हर गौरीकी क्रियाके अनुसार तैयारकी हुई पारेकी भस्मको सेवन करनेसे मनुष्यको पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। और अपक्व या दूषित पारदभस्मको सेवन करनेसे उसकी अवश्य मृत्यु होजाती है। ॥ ६८-१०४ ॥

ग्रन्थका उपसंहार ।

(१) युगस्वभावाद्यदि चौषधीनां क्रियासु शक्तिःपरिकल्प्यतेऽल्पा। आयुर्बलादिष्वपि सा तथेति-तस्मान्निषेव्यानि रसायनानि ॥ १०५ ॥

(२) न चौषधीनामपि सर्वथैव प्रभावहानिः परिकल्पनीया । फलं प्रयात्यूर्ध्वमधास्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्य न सिद्धमेतत् ॥ १०६ ॥

(३) अदेशकालोपहितान्यसात्म्यान्यत्युष्णतीक्ष्णानि यथौषधानि। नाशं नयंते सहसैव देहं सम्यक्प्रवृत्तानि तथैव वृद्धिम् ॥ १०७ ॥

जित्वा तस्मादिन्द्रियादिप्रदुष्टान्कालोपेतः श्रद्धानो यथावत् । आयुः प्रज्ञातेजसां यद्विवृद्ध्यै वीर्योपेतं शीलयेदौषधं सत् ॥ १०८ ॥

(४) शास्त्रानुसारिणी चर्या चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः ।
बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम् ॥ १०९ ॥
दानं शीलं दया सत्यं ब्रह्मचर्यं कृतज्ञता ।
रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गणः ॥ ११० ॥

एतदागमसिद्धत्वात्प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
मंत्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कदाचन ॥ १११ ॥
(५) क्षोभयंत्यातुरं मूर्खा विचित्रैः कर्मकौशलैः ।
तेभ्यो रक्षेत्सदात्मानमात्मा यस्मात्सुदुर्लभः॥ ११२॥
ते घुणाक्षरवत्कंचिदुत्थाप्य नियतायुषम् ।
घ्नंति वैद्याभिमानेन शतान्यनियतायुषाम् ॥ ११३॥
अज्ञातशास्त्रसद्भावाञ्छास्त्रमात्रपरायणान् ।
तान्वर्जयेद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव॥ ११४ ॥
(६) प्रदीपभूतं शास्त्रं हि दर्शितं विपुला मतिः ।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ११५
क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ।
क्वचिदभ्यासयोगश्च चिकित्सा नास्ति निष्फला ११६
ये क्रियां विक्रियां कुर्वंत्युपेक्षंते स्खलंति वा ।
खादंति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥ ११७॥
यावदुच्छ्वसिति प्राणी यावद्भेषजमत्ति च ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या दैवस्य कुटिला गतिः ११८
अनाथान् रोगिणो वैद्यः पुत्रवत्समुपाचरेत् ।
प्राणाचार्यश्च पितृवत्संपूज्यः शक्तिभक्तितः ॥ ११९॥
न प्राणिरहितो देशो न च प्राणी निरामयः ।
तस्मात्सर्वत्र भिषजां कल्पिता एव वृत्तयः ॥ १२०॥
(७) यज्ञस्य च शिरश्छिन्नमश्विभ्यां संधितं पुरा ।
पातिता दशनाः पूष्णो भगस्य च विलोचने॥ १२१॥

राजयक्ष्मार्दितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव चिकित्सितः ।
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः॥१२२॥
वीर्यवर्णबलोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ।
एभिश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ॥ १२३ ॥
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां महात्मनाम् ।
सौत्रामण्यां च भगवानश्विभ्यां सह मोदते॥१२४॥
अश्विभ्यां सहितः सोमं प्रायः पिबति वासवः ।
अश्विभ्यां कल्पितो भागो यज्ञेषु च महर्षिभिः १२५
अश्विनावग्निरिंद्रश्च वेदेषु सुतरां स्तुताः ।
वैद्यावित्यश्विनौ देवौ पूज्येते विबुधैरपि ॥ १२६ ॥
अजरैरमरैर्नित्यं सुखितैरेवमादृतैः ।
व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।
किं पुनर्भिषजो मर्त्यैः पूज्याः स्युर्नातिशक्तितः १२७

(१) यदि युगके स्वभावसे औषधियोंकी अपना कार्य करनेमें शक्ति कम होगयी है, ऐसी कोई कल्पना करे तो उसको साथ साथमें यहभी मानना पडेगा कि युगका प्रभाव जैसे औषधियोंकी शक्ति क्षीण करनेमें समर्थ है,उसी प्रकार आयु, बल और शारीरिक स्थिति आदिमें भी प्राचीन कालकी अपेक्षा वर्त्तमान युगके प्रभावसे अत्यन्त हीनता उत्पन्न होगयी है । (वर्त्तमान समयके परिवर्त्तनसे शारीरिक स्थितिमें तो हीनता उत्पन्न हुई स्पष्ट दिखायी देती है, परन्तु औषधियोंकी शक्ति कम होगयी है, यह बात नहीं मानी जासकती । क्योंकि औषधियाँ तो शास्त्रमें लिखे अनुसार अबभी प्रत्यक्ष फल देती हैं) प्राचीनकालमें जैसी शारीरिक स्थिति होती थी, उसीके अनुसार औषधियोंमें भी तेज और गुण होता

था । और प्राचीन् कालमें औषधियोंमें जो तेज और गुण होता था, उसको सहन करनेकी शक्ति इस समयके शरीर धारियोंमें नहीं रही है । इसलिये वर्त्तमान कालकी औषधियोंमें जितना गुण होनेकी कल्पना की जाती है, उतनी तेज और गुण इस समयके प्राणियोंको सहन करनेके लिये काफी है । अत एव रासायनिक औषधियाँ सेवन करनी चाहिये । उनके सेवनसे शास्त्रोक्त फल मिलसकता है। (२) बुद्धिमान् मनुष्यको औषधियोंकी शक्ति बिलकुलही क्षीण होगयी है; ऐसी कल्पना कदापि नहीं करनी चाहिये । क्योंकि मैन-फलको वमन कारक और निसोतको रेचक गुणवाला जैसा कि शास्त्रकार पूर्वकालमें लिखगये हैं, उतनी ही मात्रासे सेवन करायी हुई उक्त दोनों औषधियोंके इस गुणका प्रत्यक्ष रूपसे किस मनुष्यको अनुभव नहीं हुआ है ? (साधारण रूपसे विचार करने-परभी यह निश्चय होसकता है कि जो मनुष्य ऐसा कहते हैं कि युगके प्रभावसे औषधियोंके गुणोंकी शक्ति क्षीण होगई है । कदाचित् यह मानलिया जाय कि किसी औषधिकी शक्ति क्षीण होगयी है । तो क्या सम्पूर्ण वनौषधियोंकी शक्ति हीन होगई है या मानी जासकती है । युगका प्रभाव अमुक औषधिपर होता है। और अमुक औषधिपर नहीं होता । यदि यह बात नहीं होती तो ऊपर कहे हुए वमन, विरेचनादि शुद्धि कार्योंमें सेवन योग्य बहुतसी औषधियाँ हैं उनमेंसे कितनीही औषधियोंके अति प्राचीन कालमें महर्षिगण जितनी मात्रासे सेवन करनेसे जो गुण होने लिख गये हैं, उन गुणोंको आजभी हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं । एवं कितनी एक औषधियाँ ऐसी हैं कि हम उनके गुणोंको स्पष्ट जानभी नहीं सकते और वे चिरकालमें हमारे आभ्यन्तरीय सूक्ष्म अवयवोंपर अपना चमत्कारिक गुण डालकर रोगको निर्मूल कर देती है । इसलिये किसी प्रकारसेभी औषधियोंकी

शक्तिको हीन समझना बुद्धिमान् मनुष्योंकी बुद्धिकी हीनता कहा जासकता है ।) (३) देश, कालका विचार किये विना और अपनी प्रकृतिके विरुद्ध, तथा अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त तीक्ष्ण औषधियाँ जैसे सेवन करतेही एकदम शरीरका नाश करदेती हैं। उसी प्रकार देश, काल, प्रकृति आदिका विचार करके विधिपूर्वक सेवन की हुई औषध उत्तम प्रकारसे शरीरकी वृद्धि और पुष्टि करती है । इसलिये दुष्ट इन्द्रियोंको जीतकर देना, काल आदिका विचार करके श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक औषधियोंका उपयोग करना चाहिये। एवं आयु, बुद्धि और तेजकी अत्यन्त वृद्धि होनेके लिये बुद्धिमान् मनुष्यको शास्त्रोंपर विश्वास रखकर उत्तम वीर्यवर्द्धक औषधियाँ सेवन करनी चाहिये । (४) जो शास्त्रके अनुसार औषधिका सेवन करताहो, समीपवर्त्ती मनुष्य उसके मनका अभिप्राय जाननेवाले हो और सम्पूर्ण कार्योंमे अखण्ड बुद्धि रखता हो, वह मनुष्य वास्तवमें रसायनके गुणोंको पूर्ण रूपसे प्राप्त करता है। सत्पात्रको दान देना, सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये प्रिय शान्त स्वभाव रखना, दयालु होना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालन करना, दूसरेके किये हुये उपकारको मानना, उत्तम प्रकारकी शास्त्रीय रसायन औषधियेंको सेवन करना और सब मनुष्योंके साथ सच्ची मित्रता करना ये सब बातें पुण्य और आयुको बढानेवाली हैं। इस लिये शास्त्रद्वारा सिद्ध होनेसे और प्रत्यक्ष फल देनेसे औषधको मन्त्रके समान प्रयोग करना चाहिये । उसमें किसी प्रकारका संशय या तर्क वितर्क कदापि नहीं करना चाहिये । (५) मूर्ख (शास्त्रज्ञान और गुरुज्ञानसे विमुख) वैद्य नाना प्रकारकी चतुराईयोंसे अर्थात् चालाकीसे रोगीको लुभाते हैं । ऐसे प्रपाञ्चियोंसे सदैव अपनी आत्माकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि यह मनुष्य जन्म पाना बहुतही दुर्लभ है । वे मूर्ख वैद्य कदाचित् घुणाक्षर न्यायके समान नियमित आयुवाले किसी

रोगीको आरोग्य कर देते हैं, परन्तु फिर वैद्यके अभिमानसे अनियमित आयुवाले सैकडों प्राणियोंका संहार करते हैं । जो लोग अल्पज्ञ हो होनेके कारण आयुर्वेद शास्त्रको न पढकर केवल भाषाकी पुस्तकोंद्वारा उसका अर्थ सीखकर तर्क वितर्क करते हुए चिकित्सा करते हैं, इस लिये गुरु मुखसे शास्त्राध्ययन न करनेके कारण उसके गुह्य और उत्तम भावोंको नहीं समझ सकते, ऐसे उन भिषक्पाशों अर्थात् वैद्यकुवैद्योंको यमराजकी पाशके समान अर्थात् मृत्युकारक समझकर सर्वथा त्याग देना चाहिये । अर्थात् रोगीको ऐसे वैद्योंके पास चिकित्सार्थ कदापि नहीं जाना चाहिये ।

विद्वान् वैद्यका कर्त्तव्य ।

(६) जिसने विशेष परिश्रमके द्वारा गुरुमुखसे विधिपूर्वक शास्त्रका ज्ञान प्राप्त किया हो और गुरुके समीप रहकर रोगोंका अनुभव किया हो वह वैद्य यदि अपनी प्रतिभाका विकाश करता हुआ बहुतही विचारपूर्वक उपर्युक्त दोनों साधनोंके द्वारा चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त हो तो वह अपराधी नहीं कहा जा सकता । चिकित्सा करनेसे कहीं धन मिलता है कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म प्राप्त होता है, कहीं यश मिलता है और कहीं अनुभव प्राप्त होता है । इस लिये किसीभी रोगीकी चिकित्सा करना निष्फल नहीं होता । जो वैद्य शास्त्रके विपरीत चिकित्सा करते हैं । अर्थात् अमुक प्रकारसे करने योग्य उपायको जानकरभी उसको उल्टे प्रकारसे करते हैं अथवा उपेक्षा (लापरवाही) करते हैं या भूल करते हैं तो वे दूसरोंको तो प्राणोंकी हानी करते हैं और अपने पुण्योंको नाश करदेते हैं । जबतक रोगी श्वास लेता रहे और जबतक वह औषधि खाता रहे उस समयतक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कारण दैवकी गति बडी विचित्र है । जिसकी आशा नहीं होती वह मनुष्यभी बच जाता है सद्वैद्य अनाथ और दरिद्री रोगियोंको पुत्रके समान समझकर उनकी चिकित्सा करे और रोगी प्राणाचार्य

(प्राणोंके बचानेवाले वैद्य) को पिताके समान समझकर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उनका सत्कार करे। ऐसा कोई देश नहीं है, जो मनुष्योंसे रहित हो और न कोई ऐसा मनुष्य है, जो रोगसे निर्मुक्त हो इस लिये सब जगह वैद्योंकी आजीविकायें सहजमेंही चल सकती है। अत एव वैद्योंको अपनी जीविकाके संबंधमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये । सदुद्देश्य और शुद्ध अन्तःकरणसे रोगीके उपचार करनेकीही चिन्ता रखनी चाहिये । (७) पूर्वकालमें वीरभद्रके द्वारा काटे हुए दक्षप्रजापतिके शिरको आश्विनी कुमारोंने जोडाथा । पूषा देवताके टूटे हुए दाँतोंको और भगदेवताकी फूटी हुई आँखोंको फिर ठीक किया था। उन्होंनेही राजयक्ष्मारोगसे पीडित चन्द्रमाको अपनी चिकित्सासे आरोग्य किया था। और भृगुऋषिके पुत्र च्यवन ऋषि जो अत्यन्त वृद्ध होनेपरभी कामके वशीभूत होकर स्त्रीप्रसङ्ग करनेमें अत्यन्त उत्कण्ठित होरहे थे, उनको फिर वीर्य, वर्ण और बलसे पूर्ण करके युवा बनादिया था। इनसे और अन्यान्य अनेक प्रकारके कार्योंके करनेसे दोनों उत्तम वैद्य (अश्विनीकुमार) इन्द्रादि देवताओंके बीचमें अत्यन्त पूजनीय हुए थे। सौत्रामणि नामक यज्ञमें भगवान् इन्द्र अश्विनीकुमारोंके साथ आनन्द भोगता है और उन्हींके साथ प्रायः सोमरसपान करता है। महर्षियोंने भी यज्ञोंमें अश्विनीकुमारोंके लिये भाग कल्पित किये हैं और वेदोंमें भी आश्विनीकुमार, अग्नि और इन्द्र इनकी अत्यन्त स्तुति की गई है। देवता अजर, अमर और सुखी रहनेपरभी अश्विनीकुमारोंको देव वैद्य जानकर आदरपूर्वक पूजते हैं जो रोग, मृत्यु और वृद्धावस्थासे ग्रसित हों तथा दुःख सागरमें डूबे हुए हों ऐसे सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको सद्वैद्यके द्वारा आरोग्य होनेपर क्या फिर अपनी शक्तिके अनुसार उनका सम्मान नहीं करना चाहिये ? ॥ १०९–१२७ ॥

ग्रन्थकर्त्ताकी विज्ञप्ति ।

रसरत्नसमुच्चयो मयेत्थं रचितः साधु नितान्त-माद्रियन्ताम् । सुधियो यदि विद्यतेऽत्र दोषः क्वचिदर्हंति ममाप्यलं विसोढुम् ॥ १२८ ॥

इति श्रीवाग्भटाऽऽचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये त्रिंशोऽध्यायः ३०

मैंने (ग्रन्थकर्त्ताने) इस प्रकार (अर्थात् ऊपर वर्णन किये अनुसार) विशेष परिश्रम करके इस रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थको रचा है । यदि इस ग्रन्थमें कहीं विद्वानोंको कोई दोष (भूल या गलती) मालूम हो तो वे उसको सुधारकर इसका आदर करें और मुझको क्षमा प्रदान करें, यही मेरी विनय है १२८॥

इतिश्रीग्भटाचार्यविरचिते रसरत्नसमुच्चये भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस. कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस. खेतवाडी-मुंबई.